# श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

✵✵✵

## मध्य-लीला

✵✵✵

### पञ्चदश परिच्छेद

**कथासार**—रथयात्रा के भली-भाँति समाप्त होने पर श्रीअद्वैत प्रभु ने महाप्रभु की पुष्प-तुलसी देकर पूजा की, महाप्रभु ने भी पूजा के पात्र में बचे हुए पुष्प-तुलसी देकर अद्वैताचार्य की 'योऽसि सोऽसि'-मन्त्र से पूजा की। उसके बाद अद्वैताचार्य ने महाप्रभु को निमन्त्रण करके भोजन करवाया। नन्दोत्सव के दिन प्रभु ने अपने परिकरों सहित गोपवेश धारण करके आनन्दोत्सव मनाया। विजया दशमी के दिन लङ्का विजय-उत्सव में प्रभु ने अपने भक्तों को वानर सेना के रूप में सजाकर स्वयं हनुमान के आवेश में बहुत आनन्द प्रकाशित किया। उसके बाद अन्यान्य उत्सवों को देखने के बाद महाप्रभु ने समागत भक्तों को गौड़देश जाने की आज्ञा दी। महाप्रभु ने रामदास, दास गदाधर आदि कुछेक वैष्णवों के साथ नित्यानन्द प्रभु को भी गौड़देश में भेजा। दैन्य पूर्ण वचनों के साथ (श्रीवास के हाथ) अपनी माता के लिये प्रसाद [तथा जगन्नाथ का प्रसादी] वस्त्र आदि भिजवाया। महाप्रभु ने राघव पण्डित, वासुदेव दत्त, कुलीनग्रामवासी भक्त आदि सभी वैष्णवों के अनेक गुणों की व्याख्या करके उन्हें विदायी दी। रामानन्द और सत्यराज के प्रश्नों के उत्तर में महाप्रभु ने गृहस्थ-वैष्णवों के लिये शुद्ध नाम परायण वैष्णवों की सेवा की अनुमति दी। खण्डवासी-वैष्णवों के माहात्म्य (एवं सेवा-निर्देश), सार्वभौम और विद्यावाचस्पति को (दारु और जलब्रह्म की सेवा का आदेश) एवं मुरारि गुप्त की श्रीराम के चरणों में निष्ठा की व्याख्या करके वासुदेव दत्त की सम्पूर्ण वैष्णवोचित प्रार्थना के अनुसार कृष्ण के (अनायास) जगत-मोचन के सामर्थ्य का विचार प्रकाशित किया। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा सार्वभौम के घर पर भिक्षा ग्रहण के समय अमोघ में दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई, अगले दिन प्रातः वह विसूचिका (हैजा) नामक रोग से आक्रान्त हुआ। प्रभु ने उसे कृपा करके रोग से मुक्त कराके कृष्ण-नाम में रुचि प्रदान की।

(अः प्रः भा)

अपने निन्दुक अमोघ को आत्मसात
करने वाले गौरसुन्दर—

**सार्वभौमगृहे भुञ्जन् स्वनिन्दकममोघकम्।**
**अङ्गीकुर्वन् स्फुटां चक्रे गौरः स्वां भक्तवश्यताम्॥१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१। गौरचन्द्र ने सार्वभौम के घर में भोजन करके अपनी निन्दा करने वाले अमोघ भट्टाचार्य को अङ्गीकार करके स्पष्ट रूप से ही उसे अपनी भक्ति के वशीभूत किया था।

**अनुभाष्य**

१। गौरः सार्वभौमगृहे (भट्टाचार्यभवने) भुञ्जन् (भिक्षां स्वीकुर्वन्) स्वनिन्दकं (निजनिन्दाकारिणम्) अमोघकं (तन्नामकं सार्वभौमदुहितृ-षष्ठी-पतिम्) अङ्गीकुर्वन् (निजदासगणमध्ये गणयन्) स्वां (निजा) भक्तवश्यतां (अनुगत-जनाबाध्यतां) स्फुटां (व्यक्तीभूतां) चक्रे (कृतवान्)।

**जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प॰ अनु॰—**श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्रीगौर भक्तों की जय हो।

चैतन्यचरित्र का श्रवण करने वाले
व्यक्तियों की जय—

**जय श्रीचैतन्यचरितामृत-श्रोतागण।**
**चैतन्यचरितामृत—जाँर प्राणधन॥३॥**

**३। प॰ अनु॰—**श्रीचैतन्य महाप्रभु का चरित रूपी अमृत ही जिनका प्राणधन है, उन श्रीचैतन्य-चरितामृत के श्रोताओं की जय हो।

भक्तों के साथ प्रभु की पुरुषोत्तम में लीला—

**एइमत महाप्रभु भक्तगण-सङ्गे।**
**नीलाचले रहि' करे नृत्यगीत रङ्गे॥४॥**

**४। प॰ अनु॰—**इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु भक्तों के साथ नीलाचल में रहकर आनन्दपूर्वक नृत्य-गीत करते थे।

**प्रथम-वत्सरे जगन्नाथ दरशन।**
**नृत्यगीत करे दण्ड, परणाम, स्तवन॥ ५॥**

**५। प॰ अनु॰—**संन्यास ग्रहण करने के बाद जगन्नाथ पुरी में आकर प्रथम वर्ष में श्रीचैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ जी के दर्शन करते एवं उनके समक्ष नृत्यगीत, दण्ड्वत-प्रणाम करके उनकी स्तुति करते।

मध्याह्न भोग के बाद समय मिलने
पर हरिदास के साथ साक्षात्कार—

**'उपल भोग' लागिले करे बाहिरे विजय।**
**हरिदास मिलि आइसे आपन-निलय॥६॥**

**६। प॰ अनु॰—**श्रीजगन्नाथ जी के 'उपलभोग' लगने पर श्रीचैतन्य महाप्रभु मन्दिर से चले आते तथा श्रील हरिदास ठाकुर से मिलने के बाद अपने आवास-स्थान पर आ जाते।

**अनुभाष्य**

६। मध्याह्न काल (दोपहर) में भोगवर्द्धन-खण्ड में भोग अर्थात् उपल भोग लगने पर प्रभु श्रीमन्दिर के बाहर की ओर गमन करते। उससे पहले गरुड़ स्तम्भ के पीछे खड़े होकर दण्डवत् प्रणाम और स्तव आदि करते। लौटते समय 'सिद्धबकुल' में हरिदास ठाकुर के साथ साक्षात्कार करके अपने वास स्थान काशीमिश्र भवन में आगमन करते।

अपने वासस्थान पर आकर नामकीर्त्तन, अद्वैत द्वारा
प्रभु की पूजा—

**घरे बसि' करे प्रभु नाम-सङ्कीर्तन।**
**अद्वैत आसिया करे प्रभुर पूजन॥७॥**

**७। प० अनु०—**एकदिन श्रीमन्महाप्रभु अपनी भजन-कुटीर में बैठकर नाम-सङ्कीर्तन करने लगे तथा श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने आकर श्रीमन्महाप्रभु की पूजा की।

**सुगन्धि-सलिले देन पाद्य, आचमन।**
**सर्वाङ्गे लेपये प्रभुर सुगन्धि चन्दन॥८॥**

**८। प० अनु०—**श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने सुगन्धित-जल से श्रीमन्महाप्रभु को पाद्य (चरण धोने के लिये जल) तथा आचमन प्रदान किया एवं श्रीमन्महाप्रभु के समस्त अङ्गों पर सुगन्धित चन्दन का लेपन भी किया।

**गले माला देन, माथाय दिल तुलसी-मञ्जरी।**
**जोड़-हाते स्तुति करे पदे नमस्करि'॥९॥**

**९। प० अनु०—**श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु के गले में माला पहनाई, उनके मस्तक पर तुलसी-मञ्जरी प्रदान की एवं अपने हाथों को जोड़कर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति की।

प्रभु के द्वारा अद्वैत का प्रतिपूजन—
**पूजा-पात्रे पुष्प-तुलसी शेष जे आछिल।**
**सेइ सब लञा प्रभु आचार्ये पूजिल॥१०॥**

**१०। प० अनु०—**श्रीअद्वैताचार्य के पूजा-सामग्री वाले पात्र में जो भी पुष्प तथा तुलसी बच गयी, श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उनके द्वारा श्रीअद्वैताचार्य की पूजा की।

**"योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते" एइ मन्त्र पड़े।**
**मुखवाद्य करि' प्रभु हासाय आचार्येरे॥११॥**

**११। प० अनु०—**'तुम जो भी हो, हो अथवा तुम जो कोई भी क्यों न हो, तुम्हें नमस्कार करता हूँ'—यह मन्त्र पढ़कर तथा अपने मुख से वाद्ययन्त्र की भाँति शब्द करते हुए श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीअद्वैताचार्य को हँसाया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११। 'तुम जो हो, सो हो, मैं तुम्हें ही नमस्कार करता हूँ, यह मन्त्र पढ़कर आचार्य की पूजा की।

**अनुभाष्य**

११। कोई-कोई यह पाठ बोलते है,—'राधे कृष्ण रमे विष्णो सीते राम शिवे शिव। योऽसि सोऽसि नमो नित्यं योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥"

**एइमत अन्योन्ये करेन नमस्कार।**
**प्रभुरे निमन्त्रण करे आचार्य बार बार॥१२॥**

**१२। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु तथा श्रीअद्वैताचार्य ने परस्पर एक-दूसरे को नमस्कार किया तथा श्रीअद्वैताचार्य ने बारम्बार श्रीमन्महाप्रभु को अपने घर पर भोजन हेतु निमन्त्रण किया।

आचार्य के वासस्थान पर प्रभु की भिक्षा—चैतन्य भागवत में वर्णित—
**आचार्येर निमन्त्रण—आश्चर्य-कथन।**
**विस्तारि' वर्णियाछेन दास-वृन्दावन॥१३॥**

**१३। प० अनु०—**श्रीअद्वैताचार्य के द्वारा किये जाने वाले निमन्त्रण की बात भी बहुत आश्चर्यजनक है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने श्रीचैतन्य भागवत में इसका विस्तार से वर्णन किया है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३। श्रीचैतन्यभागवत, अन्त्यखण्ड, नवम अध्याय द्रष्टव्य।

एक-एक भक्त के घर में सगण प्रभु का निमन्त्रण—
**पुनरुक्ति हय ताहा, ना कैलुँ वर्णन।**
**आर भक्तगण करे प्रभुरे निमन्त्रण॥१४॥**

**१४। प० अनु०—**यदि मैं उसका फिर से

वर्णन करूँगा तो पुनरूक्ति दोष हो जायेगा, इसलिए मैं इसका यहाँ पर वर्णन नहीं कर रहा हूँ। अन्यान्य भक्त भी श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण देते थे।

**एक एक दिन एक एक भक्तगृहे महोत्सव।**
**प्रभु-सङ्गे ताँहा भोजन करे भक्त सब॥१५॥**

**१५। प० अनु०—**एक-एक दिन एक-एक भक्त के घर पर महोत्सव होता तथा श्रीमन्महाप्रभु के साथ समस्त भक्त भी वहाँ पर भोजन करते।

प्रभु के साथ गौड़ीयगणों के चारमास-व्यतीत—

**चारिमास रहिला सबे महाप्रभु-सङ्गे।**
**जगन्नाथेर नाना यात्रा देखे महारङ्गे॥१६॥**

**१६। प० अनु०—**इस प्रकार बङ्गाल से आये समस्त भक्त चार मास तक श्रीमन्महाप्रभु के साथ रहे तथा उन्होंने अत्यधिक आनन्द पूर्वक श्रीजगन्नाथदेव के अनेक महोत्सवों का दर्शन किया।

नन्दोत्सव के दिन गोपवेश में भक्तों के साथ व्रज की लीला का अभिनय—

**कृष्णजन्मयात्रा-दिने नन्द-महोत्सव।**
**गोपवेश हैला प्रभु लञा भक्त सब॥१७॥**

**१७। प० अनु०—**श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव के दिन अर्थात् श्रीनन्द उत्सव के आने पर श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्तों सहित गोप वेश धारण किया।

**अनुभाष्य**

१७। कृष्णजन्मयात्रा-दिन,—जन्माष्टमी से अगला दिन अर्थात् नन्दोत्सव के दिन।

**दधिदुग्ध-भार प्रभु निज-स्कन्धे करि'।**
**महोत्सव-स्थाने आइला बलि 'हरि' 'हरि'॥१८॥**

**१८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु दूध तथा दही से भरे पात्रों को अपने कन्धों पर उठाकर 'हरि' 'हरि' उच्चारण करते हुए महोत्सव वाले स्थान पर आये।

कानाइ-खुटिया और जगन्नाथ-माहाति का यथाक्रम 'नन्द' और 'यशोदा'-वेश—

**कानाई-खुटिया आछेन 'नन्द'-वेश धरि'।**
**जगन्नाथ-माहाति ह्ञाछेन 'व्रजेश्वरी'॥१९॥**

**१९। प० अनु०—**श्रीकानाई खुटिया ने श्रीनन्द महाराज जी के वेश को धारण किया हुआ था तथा श्रीजगन्नाथ-माहाति ने ब्रजेश्वरी श्रीयशोदा जी का वेश धारण किया था।

**अनुभाष्य**

**१९।** खुटिया,—उड़ीसावासी ब्राह्मण की उपाधि-विशेष; माहाति,—उड़ीसावासी कायस्थों की उपाधि-विशेष।

राजा, मिश्र, भट्ट और तुलसी-पड़िछा के साथ प्रभु का लीलारङ्ग—

**आपने प्रतापरुद्र, आर मिश्र-काशी।**
**सार्वभौम, आर पड़िछा-पात्र तुलसी॥२०॥**
**इहा-सबा लञा प्रभु करे नृत्य-रङ्ग।**
**दधि-दुग्ध हरिद्रा-जले भरे सबार अङ्ग॥२१॥**

**२०-२१। प० अनु०—**स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु महाराज प्रतापरुद्र, काशीमिश्र, सार्वभौम भट्टाचार्य तथा तुलसी पात्र नामक पड़िछा को अपने साथ लेकर आनन्दपूर्वक नृत्य कर रहे थे तथा दही-दूध और हल्दी वाले जल को उड़ेलकर सभी के अङ्गों को ऊपर से नीचे तक पूरी तरह से उसी में डुबो रहे थे।

**अनुभाष्य**

**२०।** पात्र—उड़ीसावासी सम्मानित व्यक्तियों की उपाधि।

लाठी खेलकर अपने गोपस्वरूप को
दिखलाने का अनुरोध—

**अद्वैत कहे,—"सत्य कहि, ना करिह कोप।**
**लगुड़ फिराइते पार, तबे जानि गोप॥"२२॥**

**२२। प॰ अनु॰—**श्रीअद्वैताचार्य ने कहा—मैं सच कहता हूँ, आप क्रोध मत करना। यदि आप लाठी घुमाकर दिखा पाएँ, तभी मैं मानूँगा कि आप गोप है।

**अनुभाष्य**

२२। लगुड़,—लाठी; लाठी खेलने में गोप अथवा गौड़गण ही सबसे आगे।

प्रभु के द्वारा लाठी को घुमाकर गोप-लीला-प्रदर्शन—

**तबे लगुड़ लञा प्रभु फिराइते लागिला।**
**बार-बार आकाशे फेलि' लुफिया धरिला॥२३॥**

**२३। प॰ अनु॰—**श्रीअद्वैताचार्य की बात सुनकर श्रीचैतन्य महाप्रभु लाठी को घुमाने लगे तथा लाठी को बार-बार आकाश की ओर फैंककर उसे ऊपर कूदकर पकड़ने लगे।

**शिरेर उपरे, सम्मुखे, पृष्ठे, दुइ-पाशे।**
**पादसन्ध्ये फिराय लगुड़,—देखि' लोक हासे॥२४॥**

**२४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु को सिर के ऊपर, सामने, पीठ की ओर, दाँई तथा बाई ओर एवं दोनों जंघाओं के बीच लाठी को घुमाते देखकर सभी लोग हँस रहे थे।

**अनुभाष्य**

२४। पादसन्ध्ये,—दोनों पैरों के बीच के सन्धिस्थान में।

उसे देख सभी को विस्मय—

**अलात-चक्रेर प्राय लगुड़ फिराय।**
**देखि' सर्वलोक-चिते चमत्कार पाय॥२५॥**

**२५। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु लाठी को अलात-चक्र की भाँति घुमाने लगे, जिसे देखकर सभी लोगों का चित्त आश्चर्यचकित हो गया।

**अनुभाष्य**

२५। अलातचक्र,—जलते हुए अङ्गारे के टुकड़े को तेजी से घुमाने पर जैसे वह एक बहुत बड़े अग्नि के गोलचक्रकी भाँति प्रतीत होता है, प्रभु ने भी उसी प्रकार बहुत तेजी से लाठी को घुमाकर सर्वत्र लाठी के अवस्थान को प्रदर्शित किया।

निताई के द्वारा भी इस प्रकार लाठी घुमाकर
स्वयं का गोप स्वरूप-प्रदर्शन—

**एइमत नित्यानन्द फिराय लगुड़।**
**के बुझिबे ताँहा, दुँहार गोपभाव गूढ़॥२६॥**

**२६। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु की भाँति श्री नित्यानन्द प्रभु भी लाठी घुमा रहे थे, वहाँ दोनों के गूढ़ गोपभाव को कौन समझ सकता था?

प्रभु के मस्तक पर तुलसी-पड़िछा के द्वारा
लाये गये प्रसादी-वस्त्र को बाँधना—

**प्रतापरुद्रेर आज्ञाय पड़िछा-तुलसी।**
**जगन्नाथेर-प्रसाद-वस्त्र एक लञा आसि'॥२७॥**
**बहुमूल्य वस्त्र प्रभु मस्तके बान्धिल।**
**आचार्यादि प्रभुर गणेरे पराइल॥२८॥**

**२७-२८। प॰ अनु॰—**महाराज प्रतापरुद्र की आज्ञा से तुलसी पड़िछा भगवान् श्रीजगन्नाथ का एक प्रसादी वस्त्र ले आये। श्रीतुलसी पड़िछा ने उस बहुमूल्य अर्थात् दुर्लभ वस्त्र के एक अंश को श्रीमन्महाप्रभु के मस्तक पर बाँध दिया तथा उन्होंने श्रीअद्वैताचार्य आदि प्रभु के भक्तों के गले में भी उस प्रसादी वस्त्र के अंश को पहनाया।

कानाइ और जगन्नाथ का धन आदि-वितरण—

**कानाञि-खुटिया, जगन्नाथ,—दुइ जन।**
**आवेशे बिलाइल, घरे छिल जत धन॥२९॥**

**२९। प॰ अनु॰—**कानाञि खुटिया और जगन्नाथ

माहाति—इन दो व्यक्तियों के घर में जितना भी धन था, इन्होंने आवेश में वह समस्त धन बाँट दिया।

**अनुभाष्य**

२९। भागवत १०/३/९ संख्या द्रष्टव्य।

प्रभु का सन्तोष और माता-पिता को प्रणाम—

**देखि' महाप्रभु बड़ सन्तोष-पाइला।**
**मातापिता-ज्ञाने दुँहे नमस्कार कैला॥३०॥**
**परम-आवेशे प्रभु आइला निज-घर।**
**एइमत लीला करे गौराङ्गसुन्दर॥३१॥**

**३०-३१। प॰ अनु॰—**उन्हें इस प्रकार धन बाँटते देख श्रीमन्महाप्रभु बहुत सन्तुष्ट हुए। श्रीमन्महाप्रभु ने उन दोनों को माता-पिता मानकर उन्हें प्रणाम किया। परम आवेश में भरकर श्रीमन्महाप्रभु अपनी भजन कुटीर में आ गये। श्रीगौराङ्ग सुन्दर इस प्रकार की लीलाएँ करते हैं।

विजय-दशमी-तिथि में भक्तों को वानर-सेना के रूप में सजाकर स्वयं हनुमान की लीला का अभिनय—

**विजया-दशमी—लङ्का-विजयेर दिने।**
**वानर-सैन्य कैला प्रभु लञा भक्तगणे॥३२॥**
**हनुमान-आवेशे प्रभु वृक्षशाखा लञा।**
**लङ्का-गड़े चड़ि' फेले लङ्का भाङ्गिया॥३३॥**

**३२-३३। प॰ अनु॰—**विजया दशमी (दशहरे के दिन)—भगवान् श्रीरामचन्द्र द्वारा लंका की ओर जाने के दिन श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्तों को बानर-सेना के रूप में सजाया। स्वयं हनुमान के आवेश में प्रभु वृक्ष की शाखा को लेकर लंका नगरी की चारदीवारी पर चढ़ गये तथा उसे तोड़कर फैंकने लगे।

**अनुभाष्य**

३३। लङ्का-गड़—लङ्का नगरी के चारों ओर का गड़ अथवा परिखा।

रावण-वध-लीला में उद्यत प्रभु—

**'काँहारे रावणा' प्रभु कहे क्रोधावेशे।**
**'जगन्माता हरे पापी, मारिमु सवंशे॥'३४॥**

**३४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु क्रोध में भरकर कहने लगे,—'रावण कहाँ हैं' पापी रावण ने जगन्माता सीता का हरण किया है, इसलिए मैं उसे वंश सहित मार डालूँगा।

**अनुभाष्य**

३४। जगन्माता,—सीतादेवी।

लोगों का विस्मय और जयध्वनि—

**गोसाञिर आवेश देखि' लोके चमत्कार।**
**सर्वलोक 'जय' 'जय' करे बार बार॥३५॥**

**३५। प॰ अनु॰—**श्रीचैतन्य गोसाञि के आवेश को देखकर लोक आश्चर्य चकित हो उठे। सभी लोग बारम्बार 'जय' 'जयकार' देने लगे।

कार्तिक मास के वैष्णव-पर्व आदि का दर्शन—

**एइमत रासयात्रा, आर दीपावली।**
**उत्थान-द्वादशी-यात्रा देखिला सकलि॥३६॥**

**३६। प॰ अनु॰—**श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसी प्रकार रासलीला, दीपावली तथा कार्तिक मास की देवोत्थान द्वादशी अर्थात् शुक्ला-द्वादशी के दिन का उत्सव इत्यादि सब कुछ देखा।

**अनुभाष्य**

३६। दीपावली,—दीवाली, कार्तिक मास की अमावस्या; उत्थान-द्वादशी यात्रा,—कार्तिकी शुक्ला-द्वादशी; चातुर्मास्यान्तव्रत, समुद्रस्नान, नगर-परिक्रमा आदि यात्री-कृत्य।

निताई के साथ एकान्त स्थान पर परामर्श—

**एकदिन महाप्रभु नित्यानन्दे लञा।**
**दुइभाइ युक्ति कैल निभृते बसिया॥३७॥**

**३७। प॰ अनु॰—**एकदिन श्रीमन्महाप्रभु ने

श्रीनित्यानन्द प्रभु को लेकर—दोनों भाइयों ने एकान्त में बैठकर एक परामर्श किया।

बाद में फल को देखकर भक्तों के
द्वारा कारण का अनुमान—

**किबा युक्ति कैल दुँहे, केह नाहि जाने।**
**फले अनुमान पाछे कैल भक्तगणे॥३८॥**

**३८। प० अनु०—**दोनों ने क्या परामर्श किया, इसे कोई नहीं जानता था। बाद में भक्तों ने उसके फल से उसका अनुमान लगाया।

समस्त गौड़ीय-भक्तों को प्रतिवर्ष गुण्डिचा में
साक्षात्कार के लिये उपदेश देकर विदायी प्रदान—

**तबे महाप्रभु सब भक्ते बोलाइल।**
**'गौड़देशे जाह' सबे विदाय करिल॥३९॥**
**सबारे कहिल,—"प्रतिवत्सर आसिया।**
**गुण्डिचा देखिया जाबे आमारे मिलिया॥"४०॥**

**३९-४०। प० अनु०—**तब श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों को बुलवाया तथा उन्होंने सभी की ''गौड़देश जाओ'' कहकर विदायी की। श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों से कहा,—तुम सभी भक्त प्रत्येक वर्ष आकर गुण्डिचा अर्थात् रथ-यात्रा देखकर तथा मुझसे मिलकर जाना।

अद्वैत को प्रचार का आदेश—

**आचार्येरे आज्ञा दिल करिया सम्मान।**
**'आ-चण्डाल आदि कृष्णभक्ति दिओ दान॥'४१॥**

**४१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्री अद्वैताचार्य का सम्मान करके उन्हें आज्ञा दी कि चण्डाल से लेकर ब्राह्मण आदि तक सभी को कृष्णभक्ति का दान करना।

निताई को प्रचार का आदेश—

**नित्यानन्दे आज्ञा दिल,—"जाह गौड़देशे।**
**अनर्गल प्रेमभक्ति करिह प्रकाशे॥४२॥**

**४२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को आज्ञा दी कि आप गौड़देश में जाकर अनर्गल अर्थात् बिना किसी प्रतिबन्ध के प्रेमभक्ति को प्रकाशित करना।

**अनुभाष्य**

४२। नित्यानन्दे (नित्यानन्द को) आज्ञा,—प्राकृत-सहजियाओं का दल अभिन्न-रोहिणीनन्दन श्रीनित्यानन्दप्रभु के प्रति प्राकृत-बुद्धि करने के कारण बोलते है, 'श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को वंश की रक्षा (?) करने के लिये श्रीनीलाचल से श्रीगौड़देश में भेजा।' श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणों में अपराध से ही ऐसी पाषण्ड बुद्धि उदित हुई है। इस श्रेणी के सभी लोग समस्त ईश्वरविग्रह-विष्णु तत्त्व के मूल आकर श्रीमन् नित्यानन्द को अपनी भाँति एक 'कुणपात्म-वादी' (तीन धातुओं से बने इस शरीर को आत्मा मानने वाले) एवं जड़ीय भाव से इन्द्रिय तर्पण में रत यम के दण्ड के भागी मर्त्यजीव मात्र मानकर नरक के पथ के ही पथिक बनते हैं। ऐसे कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा लोभी, व्यवसायी-स्वभाव वाले, स्वार्थपरायण व्यक्ति अपने उर्वर मस्तिष्क में ऐसे शास्त्र विरुद्ध मत को उत्पन्न करके नित्यानन्द का नाम लेकर उनकी ईश्वर-चेष्टा द्वारा अपने व्यवसाय, अज्ञानी लोगों की प्रवञ्चना तथा दुर्भावनावशतः सर्वत्र घृणित स्त्री सङ्ग की स्पृहा और गृहव्रत अथवा गृहमेध धर्म का अन्याय और अशास्त्रीय भाव से समर्थन करने का सुयोग ढूँढ़ते हैं। वास्तव में, कृष्णप्रेमदाता महावदान्य श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा—उनके प्रकाश विग्रह उनसे अभिन्न श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु को रजोगुण आश्रित प्रजापतियों की भाँति वंशवृद्धि के द्वारा सृष्टि की रक्षा, अथवा कृष्ण विमुख जीव के जड़ीय भाव से इन्द्रिय तर्पण रूपी कार्य का समर्थन करने के यन्त्र विशेष के रूप में व्यवहृत होने के लिये—ऐसे

किसी आदेश को प्रदान करने की बात किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में ही लिपिबद्ध नहीं है, हो भी नहीं सकती,—क्योकि, वह सम्पूर्ण रूप से श्रवण के अयोग्य है। ऐसी बात प्रचार करके प्राकृत-स्त्री-सङ्गी-सहजियागण स्वयं भी परमार्थ से वञ्चित होते है, एवं सद् और असद् के विवेक से हीन जगत् की भी वञ्चना करके जगत् में अमङ्गल ही उत्पन्न करते हैं।

निताई के प्रचार के सङ्गी—अभिराम और दास- गदाधर—

**रामदास, गदाधर आदि कत जने।**
**तोमार सहाय लागि' दिलुँ तोमार सने॥४३॥**

**४३। प० अनु०—**मैं रामदास, गदाधर आदि कुछेक भक्तों को आपकी सहायता के लिये आपके साथ भेज रहा हूँ।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४३। गदाधर,—आँड़ियादह-वासी गदाधर-दास।

अदृश्य रहकर गौड़ में निताई के नृत्य के दर्शन को अङ्गीकार करना—

**मध्ये मध्ये आमि तोमार निकटे जाइब।**
**अलक्षिते रहि' तोमार नृत्य देखिब॥''४४॥**

**४४। प० अनु०—**बीच-बीच में मैं तुम्हारे निकट जाऊँगा तथा अलक्षित रूप में रहकर तुम्हारे नृत्य को देखूँगा।

श्रीवास-अङ्गन में नित्य नृत्य करने को अङ्गीकार करना—

**श्रीवास-पण्डिते प्रभु करि' आलिङ्गन।**
**कण्ठे धरि' कहे ताँरे मधुर वचन॥४५॥**
**"तोमार घरे कीर्त्तने आमि नित्य नाचिब।**
**तुमि देखा पाबे, आर केह ना देखिब॥४६॥**

**४५-४६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु श्रीवास पण्डित को आलिङ्गन करके उनके कण्ठ को धारण करते हुए उन्हें मधुर वचन कहने लगे—तुम्हारे घर में होने वाले कीर्त्तन में मैं नित्य नृत्य करूँगा, तुम मुझे नृत्य करते हुए देख पाओगे, अन्य कोई भी नहीं देख पायेगा।

मातृवत्सल प्रभु का माता को सान्त्वना देने के लिये श्रीवास के हाथ में वस्त्र के टुकड़े को प्रदान करना और माता को छोड़ देने के कारण होने वाले अपराध के लिये क्षमा-प्रार्थना—

**एइ वस्त्र माताके दिह', एइ सब प्रसाद।**
**दण्डवत करि' आमार क्षमाइह अपराध॥४७॥**

**४७। प० अनु०—**वस्त्र के एक खण्ड को देते हुए श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'यह वस्त्र माता को दे देना तथा यह सब प्रसाद भी देना। मेरी ओर से उन्हें दण्ड्वत करके मेरे द्वारा किये गये अपराध के लिये उनसे क्षमा माँगना।

वात्सल्य रस-विरोधी सन्यास-वेष-ग्रहण-हेतु स्वयं को धिक्कार-प्रदान—

**ताँर सेवा छाड़ि' आमि करियाछि सन्यास।**
**धर्म नहे, करि आमि, निज-धर्मनाश॥४८॥**
**ताँर प्रेम-वश आमि, ताँर सेवा—धर्म।**
**ताहा छाड़ि' करियाछि वातुलेर कर्म॥४९॥**
**वातुल बालकेर माता नाहि लय दोष।**
**एइ जानि' माता मोरे ना करय रोष॥५०॥**
**कि काय सन्यासे मोर, प्रेम निज-धन।**
**जे-काले सन्यास कैलुँ, छन्न हैल मन॥५१॥**

**४८-५१। प० अनु०—**उनकी सेवा को छोड़कर मैंने सन्यास ग्रहण किया है, यह कोई धर्म का कार्य नहीं है। ऐसा करके मैंने अपने धर्म का नाश किया है। मैं उनके प्रेम के वशीभूत हूँ, तथा उनकी सेवा करना ही मेरा धर्म है। उस धर्म को छोड़कर मैंने पागल व्यक्ति जैसा कार्य किया है।

माता अपने पागल बालक का कोई दोष नहीं लेती। ऐसा जानकर ही माता मेरे प्रति क्रोध नहीं करती। सन्यास मेरे किस काम का है? वास्तव में तो कृष्ण-प्रेम ही निज-धन है। मैंने जिस समय सन्यास ग्रहण किया था, उस समय मेरा मन अच्छे-बुरे के ज्ञान से रहित हो गया था।

**अनुभाष्य**

४८। मैं सन्यास लेकर माता के सेवा रूपी धर्म का पालन नही करके धर्म से भ्रष्ट हुआ हूँ।

आज तक भी मायापुर में बीच-बीच में शची के दर्शन के लिये आगमन अङ्गीकार—

**नीलाचले आछि मुञि ताँहार आज्ञाते।**
**मध्ये मध्ये आसिमु, ताँर चरण देखिते॥५२॥**

**५२। प० अनु०—**मैं नीलाचल में उन्हीं की आज्ञा से ही वास कर रहा हूँ। मैं बीच-बीच में उनके चरणों का दर्शन करने के लिये आऊँगा।

नित्य ही शची के साथ साक्षात्कार, किन्तु प्रभु की माया के प्रभाव से शची का संशय—

**नित्य जाइ' देखि मुञि ताँहार चरणे।**
**स्फूर्त्ति-ज्ञाने तेंहो ताहा सत्य नाहि माने॥५३॥**

**५३। प० अनु०—**वैसे तो मैं नित्यप्रति जाकर उनके चरणों का दर्शन करता हूँ, किन्तु वे इसे स्फूर्ति समझने के कारण उसे सत्य नहीं मानती।

शची के विश्वास को उत्पन्न करने के लिये एक दिन की घटना का वर्णन—

**एकदिन शाल्यन्न, व्यञ्जन पाँच-सात।**
**शाक, मोचा-घण्ट, भृष्ट-पटोल-निम्बपात॥५४॥**
**लेम्बु-आदाखण्ड, दधि, दुग्ध, खण्ड-सार।**
**शालग्रामे समर्पिलेन बहु उपहार॥५५॥**

**५४-५५। प० अनु०—**एक दिन माता शची ने शाल्यन्न नामक (पाँच महीने में खेत में पकने वाला) चावल, पाँच-सात व्यञ्चन, साग, केले के फूलों की बनी सब्जी, नीम की पत्तियों के साथ बने परमल, नीबूँ तथा अदरक के टुकड़े, दही, दूध तथा खण्डसार इत्यादि बहुत से पदार्थ शालग्राम को समर्पित किये।

**अनुभाष्य**

५४। शाल्यन्न,—शलि-धान के चावल का अन्न; भृष्ट-पटोल-निम्बपात,—नीम के पत्तों के साथ परमल को मिलाकर बनायी गयी सूखी भाजी।

**प्रसाद लञा कोले करेन क्रन्दन।**
**'निमाइर प्रिय मोर—एसब व्यञ्जन॥५६॥**

५६। **प० अनु०—**प्रसाद को अपने हाथों में उठाने के बाद माता रोने लगी तथा कहने लगी कि "यह व्यञ्जन मेरे निमाई को बहुत प्रिय हैं।

**निमाञि नाहिक एथा, के करे भोजन।'**
**मोर ध्याने अश्रुजले भरिल नयन॥५७॥**
**शीघ्र जाइ' मुञि सब करिनु भक्षण।**
**शून्यपात्र देखि' अश्रु करिया मार्जन॥५८॥**

**५७-५८। प० अनु०—**किन्तु निमाई यहाँ पर नहीं है, भोजन कौन करेगा!" इस प्रकार मेरा ध्यान करते समय उनके नेत्र अश्रुओं के जल से भर गये। मैंने शीघ्रतापूर्वक जाकर उन सब वस्तुओं को खा लिया। माता ने पात्र को खाली देखकर अपने आसुँओं को पौंछा।

**'के अन्न-व्यञ्जन खाइल, शून्य केने पात?**
**बालगोपाल किबा खाइल सब भात??५९॥**

**५९। प० अनु०—**माता कहने लगी—"किसने चावल तथा ये सब व्यञ्जन खाये, पात्र खाली क्यों है? क्या बालगोपाल ने सब चावल खा लिये है?

**किबा मोर कथाय मने भ्रम हञा गेल!**
**किबा कोन जन्तु आसि' सकल खाइल??६०॥**

६०। **प॰ अनु॰—**या फिर मेरी बातों से मेरे ही मन में भ्रम उत्पन्न हो गया है। या फिर किसी जन्तु ने आकर यह सब खा लिया है?

**किबा आमि अन्नपात्रे भ्रमे ना बाड़िल।'**
**एत चिन्ति' पाक-पात्र जाइया देखिल॥६१॥**

६१। **प॰ अनु॰—**या फिर मैंने इस पात्र में भ्रमवशतः कुछ रखा ही नहीं था!" इतना सोचकर माता रसोई बनाने वाले बर्तनों को जाकर देखने लगी।

**अन्नव्यञ्जन पूर्ण देखि' सकल भाजने।**
**देखिया संशय हैल किछु चमत्कार मने॥६२॥**

६२। **प॰ अनु॰—**चावल तथा अन्यान्य सभी व्यञ्जनों को पात्रों में पूर्ण देखकर माता के मन में कुछ संशय हुआ तथा साथ ही मन कुछ आश्चर्यचकित भी हुआ।

**अनुभाष्य**

६२। भाजन,—आधार, पात्र।

**ईशाने बोलाञा पुनः स्थान लेपाइल।**
**पुनरपि गोपालके अन्न समर्पिल॥६३॥**

६३। **प॰ अनु॰—**माता ने ईशान को बुलवाकर पुनः रसोई घर को लिपवाया तथा उन्होंने पुनः गोपाल को अन्न समर्पित किया।

**अनुभाष्य**

६३। ईशान,—आदि दशम परिच्छेद ११० संख्या द्रष्टव्य।

**एइमत जबे करेन उत्तम रन्धन।**
**मोरे खाउयाइते करे उत्कण्ठाय रोदन॥६४॥**

६४। **प॰ अनु॰—**इस प्रकार माता जब भी उत्तम-उत्तम रसोई बनाती है, तभी मुझे खिलाने के लिये उत्कण्ठापूर्वक रोती हैं।

**ताँर प्रेमे आनि' आमाय कराय भोजने।**
**अन्तरे सुख माने तेंहो, बाह्ये नाहि माने॥६५॥**

६५। **प॰ अनु॰—**उनका प्रेम मुझे वहाँ ले जाकर मुझे भोजन कराता है। माता अपने मन में तो सुखी होती है किन्तु बाहर से मेरे आने को नहीं मानती।

पिछली विजया-दशमी में भी इसी प्रकार माता के द्वारा बनाये गये अन्न का भोजन—

**एइ विजया-दशमीते हैल ऐइ रीति।**
**ताँहाके पुछिया ताँर कराइह प्रतीति॥"६६॥**

**६६। प॰ अनु॰—**इसी विजया-दशमी के दिन भी ऐसा ही हुआ था। माता से इस विषय में पूछकर उन्हें इसका विश्वास दिलाना।"

भक्तों के विच्छेद में प्रभु की विह्वलता—

**एतेक कहिते प्रभु विह्वल हइला।**
**लोक विदाय करिते प्रभु धैर्य धरिला॥६७॥**

**६७। प॰ अनु॰—**इतना कहते-कहते श्रीमन्महाप्रभु विह्वल हो उठे अर्थात् भाव में विभोर हो गये, किन्तु लोगों को विदायी देने के लिये प्रभु ने धैर्य धारण कर लिया।

प्रेमवशतः प्रभु के द्वारा राघव-पण्डित की शुद्धकृष्ण सेवा की प्रचेष्टा का वर्णन—

**राघव-पण्डिते कहेन वचन सरस।**
**"तोमार निष्ठा-प्रेमे आमि हइ' तोमार वश॥"६८॥**
**इँहार कृष्णसेवार कथा शुन, सर्वजन।**
**परम-पवित्र सेवा अति सर्वोत्तम॥६९॥**

**६८-६९। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने राघव-पण्डित से मधुर वचन कहते हुए कहा—'तुम्हारी निष्ठा तथा तुम्हारे प्रेम के कारण मैं तुम्हारे वश में

हो जाता हूँ'। श्रीमन्महाप्रभु उपस्थित भक्तों के सम्मुख होकर कहने लगे—सभी लोग श्रीराघव पण्डित के द्वारा की जाने वाली परम-पवित्र तथा अत्यधिक सर्वोत्तम श्रीकृष्णसेवा के विषय में सुनो।

राघव के द्वारा प्रभु को अपूर्व नारियल का भोग प्रदान करने का वैशिष्ट्य—

**आर द्रव्य रहु,—शुन नारिकेलेर कथा।**
**पाँच गण्डा करि' नारिकेल बिकाय तथा॥७०॥**

**७०। प॰ अनु॰—**अन्य द्रव्यों की बात तो छोड़ दो, नारियल की ही बात सुनो। इनके गाँव पाणिहाटी में नारियल 'पाँच गण्डे' (एक पैसे) का मिलता है।

**बाड़िते कत शत वृक्षे लक्ष लक्ष फल।**
**तथापि शुनेन, यथा मिष्ट नारिकेल॥७१॥**
**एक एक फलेर मूल्य दिया चारि चारि पण।**
**दशक्रोश हैते आनाय करिया यतन॥७२॥**

७१-७२। **प॰ अनु॰—**इनके अपने घर में नारियल के सैंकड़ों वृक्षों पर लाखों फल लगे हुए है। तब भी यदि ये कही पर होने वाले मीठे नारियल की बात सुनते है, तब एक-एक फल का चार-चार आना (अर्थात् सोलह पैसे) मूल्य देकर दस कोस (तीस किलो मीटर) की दूरी से भी उन फलों को बहुत ही यत्नपूर्वक मँगवाते है।

**प्रतिदिन पाँच-सात फल, छोलाञा।**
**सुशीतल करिया राखे जले डुबाञा॥७३॥**

**७३। प॰ अनु॰—**प्रतिदिन पाँच-सात फलों को छीलकर उन्हें सुशीतल करने के लिये जल में डुबो करके रखते है।

**भोगेर समय पुनः छूलि' संस्करि'।**
**कृष्णे समर्पण करे, मुख छिद्र करि'॥७४॥**

७४। **प॰ अनु॰—**भोग के समय पुनः नारियल को साफ करके उसके ऊपर से मुख को खोलकर उसे श्रीकृष्ण को समर्पित करते हैं।

**कृष्ण सेइ नारिकेल-जल पान करि'।**
**कभु शून्य फल राखेन, कभु जल भरि'॥७५॥**

**७५। प॰ अनु॰—**भगवान् श्रीकृष्ण उस नारियल के जल का पान करके कभी तो फल को खाली कर देते हैं तथा कभी उसे पुनः जल से भर देते हैं।

**जलशून्य फल देखि' पण्डित—हरषित।**
**फल भाङ्गि' शस्ये करे शतपात्र पूरित॥७६॥**

७६। **प॰ अनु॰—**जल से रहित नारियल को देखकर राघव पण्डित बहुत प्रसन्न होते हैं। नारियल को तोड़कर उसकी मलाई को अनेक पात्रों में भर देते हैं।

**शस्य समर्पण करि' बाहिरे धेयान।**
**शस्य खाञा कृष्ण करे शून्य भाजन॥७७॥**

**७७। प॰ अनु॰—**नारियल की मलाई को श्रीकृष्ण को समर्पित करके बाहर बैठकर ध्यान करते है। तथा श्रीकृष्ण मलाई को खाकर उस भोजन के पात्र को खाली कर देते है।

**कभु शस्य खाञा पुनः पात्र भरे शाँसे।**
**श्रद्धा बाड़े पण्डितेर, प्रेमसिन्धु भासे॥७८॥**

**७८। प॰ अनु॰—**कभी-कभी श्रीकृष्ण मलाई खाकर पुनः उस पात्र को मलाई से भर देते हैं। यह सब देखकर राघव पण्डित की श्रद्धा बढ़ जाती है तथा वे प्रेम-सिन्धु में निमग्न हो जाते हैं।

एक दिन की घटना का वर्णन—

**एक दिन फलदश संस्कार करिया।**
**भोग लागाइते सेवक आइल लञा॥७९॥**

**७९। प॰ अनु॰—**किसी एक दिन राघव पण्डित का सेवक दस नारियलों को छीलकर उनका भोग लगाने के लिये लेकर आया।

**अवसर नाहि हय, विलम्ब हइल।**
**फल-पात्र-हाते सेवक द्वारे त' रहिल॥८०॥**

**८०। प॰ अनु॰—**राघव पण्डित अन्य किसी सेवा-कार्य में व्यस्त थे, इसलिए समय नहीं मिलने के कारण इन्हें बाहर आने में देर लगी तथा सेवक अपने हाथ में नारियल के पात्र को लेकर द्वार पर ही खड़ा रहा।

**द्वारेर उपर-भिते तेंहो हात दिल।**
**सेइ हाते फल छुँइल, पण्डित देखिल॥८१॥**

८१। **प॰ अनु॰—**सेवक ने द्वार के ऊपर वाली दीवार पर अपना हाथ रखा तथा उसने पुनः उसी हाथ से नारियल को छू लिया,—जब उसने ऐसा किया, तब राघव पण्डित ने उसे देख लिया।

**अनुभाष्य**

८१। उपर-भिते,—ऊपर की दीवार पर; तेंहो,—राघव पण्डित के सेवक।

**पण्डित कहे,—'द्वारे लोक करे गतायाते।**
**तार पदधूलि उड़ि' लागे उपर-भिते॥८२॥**
**सेइ भित्ते हात दिया फल परशिला।**
**कृष्ण-योग्य नहे, फल अपवित्र हैला॥'८३॥**

**८२-८३। प॰ अनु॰—**राघव पण्डित ने उस सेवक से कहा—'द्वार पर लोग आवागमन करते हैं। उनके पैरों की धूलि उड़कर ऊपर की दीवार पर लग जाती है। उसी दीवार पर हाथ लगाकर तुमने नारियल को स्पर्श किया है। इसी कारण यह फल कृष्ण को समर्पित करने के योग्य नहीं हैं, ये अपवित्र हो गये हैं।

**अनुभाष्य**

८१-८३। श्रीराघव पण्डित जड़ीय 'शुचि-वायु-रोग'-ग्रस्त (सफाई प्रिय) कर्मजड़ व्यक्ति अथवा प्राकृत कनिष्ठ भक्त की भाँति द्वैत-बुद्धि- विशिष्ट होकर 'भौमे इज्यधी' अर्थात् जड़ में चिद् वस्तु का आरोप करने वाले मनोधर्मी नहीं थे—वे नित्य सिद्ध कृष्ण सेवक थे; वे जड़ीय कामनाओं की गन्ध से रहित अप्राकृत-सेवा के भाव में निमग्न रहकर सब समय अपनी आराध्य वस्तु की सेवा करते थे। पक्षान्तर में, स्वार्थपर कर्म मिश्र विद्ध (अशुद्ध) भक्तों के द्वारा अप्राकृत-सेवा-बुद्धि-विशिष्ट नहीं होकर केवल राघव पण्डित के बाह्य आचरण का अनुकरण करने पर जड़ीय कृत्रिम शुचि-अशुचि का विचार करने से ही उनके शुद्ध कृष्ण भक्ति अथवा कृष्णप्रीतिवाञ्छा का परिचय प्रदान करना नहीं होता—''भद्राभद्र-वस्तु-ज्ञान नाहि अप्राकृते। द्वैते भद्राभद्र-ज्ञान,—सब मनोधर्म। एइ भाल, एइ मन्द,—एइ सब भ्रम।''—(अन्त्य चतुर्थ परिच्छेद १७४, १७६ संख्या एवं भागवत ११/२८/४ श्लोक द्रष्टव्य।

जगत में राघव की अपूर्व पवित्र कृष्णसेवा—
**एत बलि' फल फेले प्राचीर लङ्घिया।**
**ऐछे पवित्र प्रेम-सेवा जगत् जिनिया॥८४॥**

**८४। प॰ अनु॰—**इतना कहकर राघव पण्डित ने उन नारियलों को चारदीवारी के दूसरी ओर फैंक दिया। इनकी इतनी पवित्र-प्रेम-सेवा जगत् के हृदय को जीतने वाली है।

**तबे आर नारिकेल संस्कार कराइल।**
**परम पवित्र करि' भोग लागाइल॥८५॥**

**८५। प॰ अनु॰—**राघव पण्डित ने पुनः अन्य नारियलों को छिलवाया तथा परम पवित्र करके उनका भोग लगाया।

**एइमत कला, आम्र, नारङ्ग, काँठाल।**
**जाहा जाहा दूर-ग्रामे शुनियाछे भाल॥८६॥**
**बहुमूल्य दिया आनि' करिया यतन।**
**पवित्र संस्कार करि' करे निवेदन॥८७॥**

८६-८७। **प० अनु०—**इसी प्रकार केले, आम, संतरे, कटहल तथा अन्यान्य जिन-जिन पदार्थों के विषय में सुनते हैं कि 'उस स्थान पर अच्छे वाले मिलते हैं'—ये बहुत अधिक मूल्य देकर अत्यन्त यत्नपूर्वक उन्हें मँगवाते है, तथा अत्यधिक पवित्रतापूर्वक उन्हें छीलकर भगवान् को निवेदन करते हैं।

**एइ मत व्यञ्जनेर शाक, मूल, फल।**
**एइ मत चिड़ा, हुडुम, सन्देश सकल॥८८॥**
**एइमत पिठा-पाना, क्षीर-उदन।**
**परम पवित्र, आर करे सर्वोत्तम॥८९॥**

८८-८९। **प० अनु०—**इसी प्रकार व्यञ्जन बनाने के लिये शाक, मूल, फल आदि तथा चिड़वा, हुडुम (सख्त मुड़ि) सब प्रकार के सन्देश, पीठा-पाना एवं घनी खीर आदि को अत्यन्त पवित्रता पूर्वक अत्यधिक स्वादिष्ट बनाते।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८८। हड्डुम—एक प्रकार का धान, इसकी खील उड़ीसा में बहुत प्रचलित है (पूर्वीबङ्गाल में 'मुड़ि' को 'हुड्डुम' कहते हैं)।

**अनुभाष्य**

८९। क्षीर-उदन,—दूध में बनाये गये चावल की खीर।

**काशमदि, आचार आदि अनेक प्रकार।**
**गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार, सर्वद्रव्य-सार॥९०॥**

९०। **प० अनु०—**कासन्दी (राई से बनी चटनी) तथा अनेक प्रकार के आचार आदि भी कृष्ण को निवेदित करते। राघव पण्डित इतर आदि सुगन्धित तेल, वस्त्र तथा अलङ्कार आदि भी वही निवेदन करते है, जो सबसे अच्छे होते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९०। काशमृदि—कासुन्दि (राई के दानों से बनी तीखी चटनी)।

**एइमत प्रेमेर सेवा करे अनुपम।**
**जाहा देखि' सर्वलोकेर जुड़ाय नयन॥''९१॥**

९१। **प० अनु०—**इस प्रकार श्रीराघव पण्डित प्रेमपूर्वक अनुपम सेवा करते हैं। जिसे देखकर सभी लोगों के नेत्र अत्यधिक सन्तुष्ट होते हैं।

प्रभु के द्वारा सभी भक्तों
का यथायोग्य अभिनन्दन—

**एत बलि' राघवेरे कैल आलिङ्गने।**
**एइमत सम्मानिल सर्व भक्तगणे॥९२॥**

९२। **प० अनु०—**इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीराघव पण्डित को आलिङ्गन किया तथा इसी प्रकार उन्होंने सभी भक्तों को सम्मानित किया।

शिवानन्द को असञ्चयी वासुदेव-दत्त का
तत्त्वावधायक (ध्यान रखने वाले)
बनने का आदेश—

**शिवानन्द सेने कहे करिया सम्मान।**
**''वासुदेव-दत्तेर तुमि करिह समाधान॥९३॥**
**परम उदार इँहो, जे दिन जे आइसे।**
**सेइ दिने व्यय करे, नाहि राखि शेषे॥९४॥**

**९३-९४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीशिवानन्द सेन का सम्मान करते हुए उनसे कहा कि आप वासुदेव दत्त की देखभाल करना। वासुदेव दत्त परम उदार है, जिस दिन इनके पास जो कुछ भी आता है, ये उसे उसी दिन ही खर्च कर देते हैं, अपने पास कुछ भी बचाकर नहीं रखते।

**अनुभाष्य**

९३। श्रीशिवानन्द सेन और वासुदेव दत्त ठाकुर,—दोनों ही उस समय कुमारहट्ट अथवा हालिशहर एवं काँचड़ापाड़ा में वास करते थे।

गृहस्थ वैष्णवों के लिये लौकिक-कर्त्तव्य का उपदेश—

**'गृहस्थ' हयेन इँहो, चाहिये सञ्चय।**
**सञ्चय ना कैले कुटुम्ब-भरण नाहि हय॥९५॥**
**इहार घरेर आय-व्यय, सब—तोमार स्थाने।**
**'सरखेल' ह्ञा तुमि करिह समाधाने॥९६॥**

**९५-९६। प० अनु०—**वासुदेव दत्त 'गृहस्थ' हैं, इसलिए उन्हें कुछ-न-कुछ सञ्चय करने की आवश्यकता है, सञ्चय किये बिना कुटुम्ब का भरण-पोषण नहीं होता, इनके घर के आय-व्यय आदि का सबकुछ तुम स्वयं इनके 'सरखेल' (लेखक-जोखक) के रूप में ध्यान रखना।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९६। सरखेल,—तत्वावधायक (हिसाब-किताब रखने वाले)।

प्रत्येक वर्ष सभी भक्तों को 'कर-समाधान' पूर्वक पुरी में लाने की आज्ञा—

**प्रतिवर्षे आमार सब भक्तगण लञा।**
**गुण्डिचाय आसिबे सबाय पालन करिया॥''९७॥**

**९७। प० अनु०—**हे शिवानन्द सेन! प्रत्येक वर्ष मेरे सब भक्तों का पालन-पोषण करते हुए उन्हें अपने साथ लेकर रथ यात्रा के समय आना।

सत्यराज रामानन्द को प्रतिवर्ष पट्ट डोरी लाने का आदेश—

**कुलीनग्रामीरे कहे सम्मान करिया।**
**''प्रत्यब्द आसिबे यात्राय पट्टडोरी लञा॥९८॥**

**९८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कुलीनग्राम वासियों को सम्मानपूर्वक सम्बोधित करते हुए कहा कि आप लोग प्रत्येक वर्ष रथयात्रा में पट्ट (पाट से बनी) डोरी लेकर आना।

श्रीमुख से मालाधर-वसु-कृत 'श्रीकृष्णविजय' की महिमा का वर्णन—

**गुणराज-खाँन कैल श्रीकृष्णविजय।**
**ताँहा एकवाक्य ताँर आछे प्रेममय॥९९॥**

**९९। प० अनु०—**कुलीन ग्राम के श्रीगुणराज खाँन ने श्रीकृष्ण विजय नामक ग्रन्थ की रचना की है। उस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के प्रति उनके हृदय के प्रेम को प्रकाशित करने वाला एक वाक्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९९। 'श्रीकृष्णविजय',—ग्रन्थ विशेष। बहुत से लोगों ने विवेचना की है कि यह ग्रन्थ ही बङ्गला भाषा का सर्वप्रथम पद्य-काव्यमय ग्रन्थ है।

**अनुभाष्य**

९९। ''आदिकवि गुणराज खाँन महाशय तेरह सौ पिचानवें (१३९५) शकाब्द में इस ग्रन्थ की रचना करने में नियुक्त हुए एवं चौदह सौ दो (१४०२) शकाब्द में ग्रन्थ को समाप्त किया।

श्रीकृष्ण विजय-ग्रन्थ की रचना—अत्यधिक सरल है, यहाँ तक कि, बङ्गाल की अर्द्धशिक्षित महिलाएँ तथा साधारण वर्णज्ञान से युक्त निम्नश्रेणी के व्यक्ति भी इस ग्रन्थ को अनायास ही पढ़ तथा समझ सकते हैं। इस ग्रन्थ की भाषा अलंकृत नहीं है—इसके पद्य अनेक स्थानों पर अत्यधिक मधुर भी नहीं हैं, चौदह अक्षरों वाले पयार में अनेक स्थानों पर सोलह-सत्तरह अक्षर अथवा बारह-तेरह अक्षर दिखलायी देते हैं एवं इसके अनेक शब्द ही तात्कालिक व्यवहार में आने वाले शब्द है। उन सब शब्दों के अर्थ केवल राढ़ देश वासी

लोगों के अतिरिक्त दूसरे नहीं समझ सकते। इस पुस्तक का अभाव रहने पर किसी बङ्गीय पुस्कालय को 'सम्पूर्ण' नहीं कहा जा सकता।

यह ग्रन्थ पारमार्थिक-लोगों के लिये परम आदरणीय है। वैष्णवाग्रगण्य पूज्यपाद श्रीगुणराज खाँन महाशय ने सर्वशास्त्र-शिरोमणि श्रीमद्भागवत ग्रन्थ के दशम और एकादश स्कन्ध का साधारण व्यक्तियों के द्वारा आदरणीय अनुवाद करके इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इस कारण वैष्णव-जगत में यह ग्रन्थ सर्वत्र पूजनीय है। जिस ग्रन्थ को पढ़कर महाप्रभु ने इतनी प्रशंसा की है, वह ग्रन्थ गौड़ीय-वैष्णव-समाज में कितना आदर प्राप्त करेगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। अतएव यह काव्य बङ्ग वासियों के लिये बहुत ही आदरणीय धन है; विशेषतः कोई-कोई कहते हैं,—यह ग्रन्थ ही बङ्गाली भाषा का सर्वप्रथम काव्य है।

श्रीश्रीमहाप्रभु के आविर्भाव से दो वर्ष पूर्व १४०५ शकाब्द में श्रीदेवानन्द वसु के हाथ से यह ग्रन्थ लिखा गया अर्थात् किसी पाण्डुलिपि से उन्होंने देखकर नकल कर ली। (श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर-लिखित 'श्रीकृष्ण-विजय'-ग्रन्थ की 'उपक्रमणिका' से उद्धृत)।

बङ्गीय सम्राट आदिशूर कान्यकुब्ज (कन्नौज) से पाँच सुब्राह्मणों के साथ जिन पाँच सुकायस्थों को लाये थे, उनमें से दशरथ वसु—अन्यतम अर्थात् एक थे; उन्हीं के ही वंश मे तेरहवीं पीढ़ी में श्रीगुणराज-खाँन उत्पन्न हुए। इनका वास्तविक नाम—श्रीमालाधर वसु है, गौड़ीय सम्राट के द्वारा प्रदान की गयी उपाधि—गुणराज खाँन है। वंश परम्परा यथाः—

१) दशरथ वसु, २) कुशल, ३) शुभशङ्कर, ४) हंस, ५) शक्ति राम (बागाण्डा), ५) मुक्तिराम (माइनगर), ५) अलङ्कार (बङ्गज)।

५) मुक्तिराम, ६) दामोदर, ७) अनन्तराम, ८) गुणीनायक, ८) वीणानायक।

८) गुणीनायक, ९) माधव, १०) लक्ष्मीनाथ, १०) चक्रपाणि, १०) उदयचाँद, १०) लौह, १०) तौहुँ, १०) श्रीपति, १०) अच्युतानन्द।

१०) श्रीपति, ११) यज्ञेश्वर, ११) त्रिलोचन, ११) वटेश्वर, ११) प्रजापति, ११) इशान, ११) सागर, ११) कृपाराम।

११) यज्ञेश्वर, ११) भगीरथ, १२) कामेश्वर, १२) सदानन्द, १२) वशिष्ठ।

१२) भगीरथ, १३) मालाधार वसु—उपाधि—गुणराज खाँन।

इनके चौदह पुत्र थे, उनमें से द्वितीय लक्ष्मीनाथवसु की उपाधि—सत्यराज खाँन है; उन्ही के ही पुत्र—श्री रामानन्द वसु हैं, अतएव श्रीरामानन्द वसु—प्रन्दहवीं पीढ़ी के हैं।

श्रीमालाधर वसु महाशय अत्यधिक प्रसिद्ध धनशाली व्यक्ति थे। उनके गढ़ और देवालय (मन्दिर) आदि का दर्शन करने से लगता है, उनकी राज श्री (अर्थात् राज्य की धन-सम्पत्ति) अत्यन्त समृद्धिशाली थी। गुणराज खाँन महाशय के एक सामाजिक साहस का परिचय यह है कि, उन्होंने बङ्गाली कौलीन्य (कुल परम्परा के माध्यम से चली आ रही) प्रथा को सारहीन जानकर अपने-आत्मीय पुरन्दर खाँन के भी अनुरोध को अस्वीकार करके कान्यकुब्ज से समागत श्री पुरुषोत्तम दत्त-वंशीय त्रयोदश पीढ़ी पर्यन्त श्रीपति दत्त महाशय की कन्या के साथ अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाह का कार्य सम्पन्न किया'' (१२९२ साल के शीतकाल में श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बनाये गये श्रीकुलीन ग्राम-पाट से संगृहीत)।

ग्रन्थ में वर्णित एक वचन से ही प्रभु का स्वयं को उनके वंश के लिये आत्म-विक्रम (स्वयं को बेचना)—

**"नन्दनन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ।"**
**एइ वाक्ये बिकाइनु ताँर वंशेर हात॥१००॥**

**१००। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—''नन्दनन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाथ हैं''—गुणराज खान के इस वाक्य के कारण मैं उनके वंश के हाथ बिक गया हूँ।

**अनुभाष्य**

१००। मूलपद्य यह है—''एक भावे वन्द हरि जोड़ करि' हात। नन्द-नन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ॥''

श्रीमुख से कुलीन-ग्राम के माहात्म्य का वर्णन—

**तोमार कि कथा, तोमार ग्रामेर कुकुर।**
**सेह मोर प्रिय, अन्यजन रहु दूर॥१०१॥**

**१०१। प० अनु०—**इसलिए आप लोगों का तो कहना ही क्या, आपके ग्राम का कुत्ता भी मेरा प्रिय है, अन्य लोगों की तो फिर बात ही क्या है।

रामानन्द और सत्यराज के द्वारा गृहस्थ-वैष्णव के कर्त्तव्य साध्य की जिज्ञासा—

**तबे रामानन्द, आर सत्यराज खाँन।**
**प्रभुर चरणे किछु कैल निवेदन॥१०२॥**
**"गृहस्थ विषयी आमि, कि मोर साधने।**
**श्रीमुखे करेन आज्ञा, निवेदि चरणे॥"१०३॥**

**१०२-१०३। प० अनु०—**तब श्रीरामानन्द और सत्यराजखान ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में कुछ निवेदन किया। हम गृहस्थ तथा विषयी हैं, हमारा क्या कर्त्तव्य है। हम आपके श्रीचरणों में निवेदन करते है कि आप इस विषय में हमें श्रीमुख से आज्ञा प्रदान कीजिए।

प्रभु का उत्तर—

**प्रभु कहेन,—"कृष्णसेवा', 'वैष्णव-सेवन'।**
**निरन्तर कर कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन॥"१०४॥**

**१०४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'कृष्णसेवा', 'वैष्णव-सेवा' तथा निरन्तर कृष्णनाम का सङ्कीर्त्तन करो'।

सत्यराज के द्वारा वैष्णव को पहचानने के उपाय की जिज्ञासा—

**सत्यराज बले,—''वैष्णव चिनिब केमने?**
**के वैष्णव, कह ताँर सामान्य लक्षणे॥"१०५॥**

**१०५। प० अनु०—**श्रीसत्यराज खान ने कहा—'हम वैष्णव को कैसे पहचानेगे? कौन वैष्णव है, कृपया उनके सामान्य लक्षण के विषय में बतलाइये'।

प्रभु के द्वारा 'कनिष्ठ-वैष्णव' के लक्षण का निर्देश—

**प्रभु कहे,—"जाँर मुखे शुनि एकबार।**
**कृष्णनाम, सेइ पूज्य,—श्रेष्ठ सबाकार॥१०६॥**

**१०६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—जिनके मुख से एकबार भी कृष्णनाम सुनायी दे, वही सबसे श्रेष्ठ तथा पूज्य वैष्णव है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०२-१०६। वसु रामानन्द और उनके पिता सत्यराज खाँन,—ये बङ्ग देश के उज्ज्वल कायस्थ वसु वंशजात गृहस्थ-वैष्णव थे; इन्होंने प्रभु से जिज्ञासा की, 'गृहस्थ वैष्णवों का कर्त्तव्य क्या है?' प्रभु ने उत्तर दिया,—कृष्णसेवा, वैष्णवसेवा एवं निरन्तर कृष्णनाम कीर्त्तन ही गृहस्थ वैष्णवों का एकमात्र कार्य है।

इस पर सत्यराज ने प्रश्न किया,— 'कृष्णसेवा' और कृष्णनाम कीर्त्तन तो सहज में ही समझा जा सकता है किन्तु वैष्णव को पहचान नहीं पाने से वैष्णव-सेवन रूपी कार्य बहुत ही कठिन होता है। अतएव हे प्रभो, वैष्णव कौन है एवं उसके सामान्य (साधारण) लक्षण क्या है?' प्रभु ने उत्तर दिया,—जिसके मुख से एकबार कृष्णनाम सुना

जाता है, वही सबसे श्रेष्ठ तथा पूज्य-वैष्णव है।'

**अनुभाष्य**

१०६। एकमात्र श्री कृष्णनाम में सर्वसिद्धि होती है,—ऐसे श्रद्धावान् व्यक्ति को 'वैष्णव' कहकर जानना; क्योकि ऐसी श्रद्धा ही वैष्णव होने की प्रारम्भिक योग्यता प्रदान करती है। किन्तु यह बात सत्य होने पर भी कृष्णनाम में उसकी कोमल श्रद्धा के प्रकटित होने के कारण वह निरन्तर नाम ग्रहण नहीं करता है। श्रीरूप-गोस्वामिप्रभु ने स्व-लिखित 'उपदेशामृत में' कहा है—''कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत दीक्षास्ति चेत''। जो श्रीनाम को अप्राकृत चिन्तामणि, कृष्णचैतन्य-रसविग्रह, पूर्ण, शुद्ध, नित्यमुक्त एवं नाम और नामी में अभेद—जानकर परम श्रद्धा के साथ अर्चन करते हैं, परन्तु अपनी बद्धावस्था के कारण भक्ति सिद्धान्त-विचार-रहित होकर भक्ति के उपादान (अङ्गों) को और शुद्धभक्त को सम्पूर्ण 'अप्राकृत' के रूप में समझ नहीं पाते, वे भी शुद्धभक्त और श्रीगुरु की सेवा से एवं उनके मुख से शुद्ध भक्ति सिद्धान्त के श्रवण के फल से क्रमशः सब प्रकार के पापों के नष्ट होने पर अप्राकृत अनुभूति अथवा दिव्यसम्बन्ध-ज्ञान-प्राप्त करते हैं। (भागवत ११/२/४७)—'अर्च्चायामेव हरये यः पूजां श्रद्धयेहते। न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥" श्रीसनातन-शिक्षा में (मध्य २२ परिच्छेद ६४, ६७ संख्या में) ''श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, श्रद्धा-अनुसारि॥'' ''जाहार कोमल श्रद्धा, से 'कनिष्ठ' जन। क्रमे-क्रमे तेंह भक्त हइबे उत्तम। रति-प्रेम-तारतम्ये भक्ति-तरतम॥'' सबाकार श्रेष्ठ (सबसे श्रेष्ठ) अर्थात् देवीधाम में सर्वश्रेष्ठ। पुण्य-कर्मी और ज्ञानी की अपेक्षा भी श्रीविष्णु के नामात्मक मन्त्र के अर्चनकारी कनिष्ठ भक्त श्रेष्ठ है; क्योंकि कर्मी अथवा ज्ञानी—वह जितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, उसका वास्तव-वस्तु श्रीविष्णु की नित्य सेवा करने में विश्वास नहीं होता। अतएव मुख से वेद मानने पर भी वे वास्तव में नास्तिक हैं; और श्रीविष्णु का अर्चक,—अप्राकृत-भजन राज्य में उसकी कितनी भी कम महिमा क्यों न हो,—अन्ततः वह श्रीविष्णु की अर्चा के वास्तव-सत्यविग्रह होने को श्रीगुरु के मुख से सुनकर उसके प्रति श्रद्धाविशिष्ट तो है।

एक कृष्णनाम के फल की महिमा का वर्णन—

**एक कृष्णनामे करे सर्व-पाप क्षय।**
**नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय॥१०७॥**

**१०७। प० अनु—**ऐसा व्यक्ति एक कृष्णनाम के उच्चारण से सभी पापों का क्षय (नाश) कर देता है। नवधा भक्ति कृष्ण नाम से ही पूर्ण होती है।

**अनुभाष्य**

१०७। नव-विधा भक्ति,—(भा ७/५/२३) ''श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। इति पुंसार्पिता विष्णो भक्तिश्चेत् नवलक्षणा॥''

नामापराध छोड़कर एकमात्र कृष्णनाम के आश्रय से ही सब प्रकार के पापों के नष्ट होने पर जीव की पुण्य-पापात्मक प्राकृत भोगवासना सम्पूर्ण रूप से नष्ट होती है। श्रीनाम ग्रहण करने वाला ही सबसे श्रेष्ठ और पूजनीय है। श्रीनाम-भजन से ही नवधा भक्ति पूर्णता को प्राप्त करती है (''यद्यप्यन्या भक्तिः कलौ कर्त्तव्या, तदा कीर्त्तनाख्य-भक्ति- संयोगेनैव''—भक्तिसन्दर्भ १७३ संख्या)।

'स्वयं प्रभु-कृष्ण' होने के कारण श्रीनाम—अन्य कार्य-निरपेक्ष—

**दीक्षा-पुरश्चर्या-विधि अपेक्षा ना करे।**
**जिह्वा-स्पर्शे आ-चण्डाले सबारे उद्धारे॥१०८॥**

**१०८। प० अनु०—**श्रीकृष्ण नाम दीक्षा तथा पुरश्चर्या-विधि की अपेक्षा नहीं रखते, जिह्वा से स्पर्श होने मात्र से ही चण्डाल पर्यन्त सभी का उद्धार कर देते हैं।

**अनुभाष्य**

१०८। **दीक्षा**—श्रीजीवप्रभु के भक्तिसन्दर्भ में २८३ संख्या में उद्धृत आगमवाक्य—'दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्। तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्व-कोविदैः॥'' जिससे अप्राकृत दिव्य ज्ञान का उदय एवं पापों का सम्पूर्ण रूप से नाश होता है, तत्वशास्त्रविद् पण्डितों ने उसे ही 'दीक्षा' कहकर वास्तविक रूप में संज्ञा प्रदान की है।

**दीक्षा-विधि,** (हः भः विः द्वितीय विः और भक्तिसन्दर्भ में २८३ संख्या में उद्धृत आगम-वचन)—'द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माधायनादिषु। यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादनु। तथात्रा-दीक्षितानां तु मन्त्रदेवार्च्चनादिषु। नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्तुतम्॥'' उपवीत (जनेऊ) रहित विप्र का जिस प्रकार स्वकर्म अध्ययन आदि में अधिकार नहीं होता, उपवीत-ग्रहण करने के बाद ही अधिकार होता है, उसी प्रकार अदीक्षित व्यक्ति का भी मन्त्र देवता की पूजा आदि में अधिकार नहीं होता। इसलिए आत्मा को मङ्गलमय (पवित्र) करने के उद्देश्य से निःश्रेय सार्थी (मङ्गलकामी) 'दीक्षा' ग्रहण करेंगे; कारण, (हः भः विः, द्वितीय विः-धृत विष्णु-यामल-वचन)—''अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वम् निरर्थकम्। पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षा-विरहितो जनः।'' [अर्थात् हे वामोरु! दीक्षा-रहित व्यक्ति के द्वारा किये गये सभी अनुष्ठान निरर्थक होते हैं। दीक्षा रहित व्यक्ति पशु-योनि प्राप्त करता है।]

(उसी हः भः विः और भक्तिसन्दर्भ की २८३ संख्या में उद्धृत यामल अथवा आगम-वचन)—'अतो गुरुं प्रणम्येवं सर्वस्वं विनिवेद्य च। गृह्णीयादैष्णवं मन्त्रं दीक्षापूर्वं विधानतः॥'' [अर्थात् अतएव श्रीगुरुदेव को प्रणाम करके सर्वस्व समर्पण करके दीक्षापूर्वक यथाविधि वैष्णव मन्त्र ग्रहण करने चाहिए] (भक्तिसन्दर्भ २९८ संख्या में उद्धृत तत्त्व-सागर वचन)—यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः। तथा दीक्षा-विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥'' [अर्थात् जिस प्रकार कांसा रसायनिक विधि के अनुसार स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार दीक्षा के विधान द्वारा व्यक्ति द्विजत्व (ब्राह्मणता) प्राप्त करता है]

**पुरश्चर्या,**—(हः भः विः, १७ विः-धृत अगस्त्य-संहिता-वचन)—''पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च। होमो-ब्राह्मणभूक्तिश्च पुरश्चरण-मुच्चते॥ गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य प्रसादेन यथाविधि। पञ्चाङ्गोपासना सिद्धये पुरश्चैताद्विधीयते॥'' प्रातः, दोपहर और सन्ध्या,—इन तीनों कालों में नित्य पूजा, नित्य जप, नित्य तर्पण, नित्य होम और नित्य ब्राह्मण भोजन,—इन पाँच अङ्गों को 'पुरश्चरण' कहते हैं। गुरु की कृपा से प्राप्त मन्त्रों की सिद्धि के लिये सर्वप्रथम पञ्चाङ्गोपासना (उपरोक्त पाँच अङ्गों की उपासना) का विधान है; इसलिए यह क्रिया पुरश्चरण के नाम से जानी जाती है।

**पुरश्चर्या-विधि**, (हःभःविः १७ विः-धृत आगम-वचन)—''बिना येन सिद्धः स्यान्मन्त्रो वर्षशतेरपि। कृतेन येन न लभते साधको वाञ्छितं फलम्॥ पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फल दायकः। अतः पुरष्क्रियां कुर्यात् मन्त्रवित् सिद्धिकाङ्क्षया॥ पुरष्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानां वीर्यमुच्यते। वीर्यहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः। पुरश्चरणहीनो हि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः॥'' [अर्थात् जिसके बिना

सैकड़ों वर्षों में भी सिद्धि नहीं होती एवं जिसका अनुष्ठान करने से साधक वाञ्छित फल प्राप्त करता है, उस पुरश्चरण से सम्पन्न मन्त्र ही फल प्रदान करने वाला होता है—अतएव सिद्धि प्राप्ति के लिये मन्त्रविद् व्यक्ति पुरश्चरण करें। पुरश्चरण मन्त्रों की प्रधान शक्ति कहलाता है। वीर्य हीन व्यक्ति जिस प्रकार सभी कार्यों में असमर्थ होता है, पुरश्चरण रहित मन्त्र भी वैसा ही कहलाता है। ]

श्रीजीवप्रभु ('भक्तिसन्दर्भ में २८३ संख्या)—''यद्यपि श्रीभागवतमते पञ्चरात्रादिवत् अर्चनमार्गस्य आवश्यकत्वं नास्ति, तद्विनापि शरणापत्यादीनामेकतरेणपि पुरुषार्थसिद्धेरभिहितत्वात् तथापि श्री नारदादि-वर्त्मानुसरद्भिः श्रीभगवता सह सम्बन्ध-विशेषं दीक्षा-विधानेन श्रीगुरुचरण सम्पादितं चिकीर्षद्भिः कृतायां दीक्षायामर्च्चनमवश्यं क्रियेतैव। ''एवं (उसी की २८४ संख्या) (दीक्षाद्यपेक्षा) यद्यपि स्वरूपतो नास्ति, तथापि प्रायः स्वभावतो देहादिसम्बन्धेन कदर्यशीलानां विक्षिप्तचित्तानां जनानां तत्तत्संकोचीकरणाय श्रीमदृऋषिप्रभृतिभिरत्रार्च्चनमार्गे क्वचित् क्वचित् काचित् काचिन्मर्यादा स्थापितास्ति।'' रामार्चनचन्द्रिकाय—''बिनैव दीक्षां विपेन्द्र पुरश्चर्यां बिनैव हि। बिनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदा॥'' [ अर्थात् यद्यपि भागवत के मतानुसार पञ्चरात्र आदि की भाँति अर्चन मार्ग की आवश्यकता नहीं है एवं अर्चन के बिना भी आत्मनिवेदन आदि किसी एक अंग के द्वारा भी पुरुषार्थ की सिद्धि होती है, ऐसा कहा जाता है, तथापि श्रीनारद आदि महाजनों के पथ के अनुसार जो सब व्यक्ति भगवान् के साथ श्रीगुरु के द्वारा सम्पादित दीक्षा के विधान के द्वारा सम्बन्ध स्थापन में इच्छुक, वे दीक्षा के अनुष्ठान के बाद अवश्य ही अर्चन करेंगे। यद्यपि स्वरूपतः दीक्षा की अपेक्षा नहीं है, तथापि देह आदि के सम्बन्ध के कारण कु-स्वभाव से युक्त विक्षिप्त चित्त वाले व्यक्तियों की वैसी प्रवृत्ति को संकुचित करने के लिये श्रीमद् ऋषि आदि महापुरुषों ने इस अर्चन मार्ग में किसी-किसी स्थान पर कोई-कोई मर्यादा स्थापित की है। श्रीरामार्चन चन्द्रिका में कहा गया है, हे विप्र वर! यह मन्त्र—दीक्षा, पुरश्चरण एवं न्यास विधान के बिना ही जप मात्र से सिद्धि प्रदान किया करता है। ]

**नाम की दीक्षा-विधि की निरपेक्षता**,—पाञ्चरात्रिक मन्त्र अप्राकृत ज्ञान को उदित कराके प्राकृत-अभिनिवेश को ध्वंस करता है। अप्राकृत होने पर मन्त्र और देवता में अभिन्न बुद्धि होती है। नाम और मन्त्र में 'शब्द सामान्य' (इन्द्रियों की तृप्ति करने वाले मनः कल्पित अन्य साधारण शब्दों के साथ समान, ऐसी) बुद्धि करने पर नरक में वास होता है। अप्राकृत बुद्धि से ही मन्त्र देवता के अर्चन का विधान है। दीक्षा के समय शास्त्रों के विधानानुसार ही मन्त्र-ग्रहण की विधि है; किन्तु कृष्णनाम,—बद्ध और मुक्त, दोनों के लिये ही आदरणीय हैं अर्थात् बद्धव्यक्ति कृष्णनाम-ग्रहण करने पर प्राकृतज्ञान से मुक्त होते हैं, दूसरी ओर, मुक्त होने पर ही शुद्ध कृष्णनाम ग्रहण कर सकते हैं। ''कृष्णमन्त्र हैते हय संसार मोचन। कृष्णनाम हैते पाबे कृष्णेर चरण॥'' (आदि सप्तम परिच्छेद ७३ संख्या द्रष्टव्य) कृष्ण से अभिन्न कृष्णनाम साक्षात् महामन्त्र होने के कारण किसी पाञ्चरात्रिक विधान के अनुगत नहीं है।

**नाम की पुरश्चर्या-विधि-निरपेक्षता,**—मन्त्र-सिद्धि के लिये ही पुरश्चरण की व्यवस्था है; श्रीनाम-महामन्त्र को वैसी पुरश्चरणविधि की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती। एकबार नाम के उच्चारण के फल से ही पुरश्चर्या के द्वारा प्राप्त होने वाले सब फलों की प्राप्ति होती है, इसलिए श्रीनाम को

पुरश्चरण की अपेक्षा नहीं है।

**नाम के जिह्वा से स्पर्श होने से ही उद्धार-साधन,**—यहाँ जिह्वा शब्द से 'सेवोन्मुख' जिह्वा को ही समझना चाहिये, नहीं तो जड़ीय भोगोन्मुख जिह्वा पर अपराधों के विद्यमान रहने पर, उस पर श्रीकृष्णनाम कभी भी उदित नहीं होते—(भः रः सिः, पूर्व-विः साधन भक्ति लहरी में)—"अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः। सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयंमेव स्फुरत्यदः॥" मध्य, १७ परिच्छेद १०४ संख्या—"अतएव कृष्णेर नाम, देह, विलास। प्राकृतेन्द्रिय-ग्राह्य नहे, हय स्व-प्रकाश॥" (भक्ति सन्दर्भ २५६-२७६ और २८३ संख्या द्रष्टव्य)।

अन्त्य तृतीय परिच्छेद ५९-६९, ७५-८०, १७६-१८०, १८२-१८७; विंश परिच्छेद ११, १३ संख्या, भागवत १/१/१४, ६/२/२९, ३९ द्रष्टव्य।

प्रेम का उदय ही श्रीनाम सेवन का मुख्य फल,
संसार-क्षय—गौण फल—

**अनुषङ्ग-फले करे संसारेर क्षय।**
**चित्त आकर्षिया कराय कृष्णे प्रेमोदय॥१०९॥**

**१०९। प० अनु०—**श्रीकृष्णनाम अपने आनुसङ्गिक फल से संसार का क्षय कर देते हैं तथा चित्त को आकर्षित करके कृष्ण के प्रति प्रेम को उदित करा देते हैं।

सेवोन्मुख का कृष्णनाम—
पद्यावली (२९ में) उद्धृत श्रीधरस्वामि कृत
'नाम-कौमुदी'-श्लोक—

**आकृष्टिः कृतचेतसां सुमनसामुच्चाटनं**
**चांहसा-माचण्डालममुकलोकसुलभो वश्यश्च मुक्तिश्रियः।**
**नो दीक्षां न च सत्क्रियां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते**
**मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥११०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**११०।** बहुत सुकृतिशाली साधुओं के चित्त के आकर्षण-स्वरूप, पापनाशक, मूक के अतिरिक्त चण्डाल से आरम्भ करके सभी लोगों के लिये सुलभ, मुक्तिरूपी ऐश्वर्य को वशीभूत करने वाले,—ऐसे श्रीकृष्णनाम स्वरूप यह महामन्त्र जिह्वा के स्पर्श मात्र से ही फल प्रदान करते हैं, दीक्षा आदि अथवा पुरश्चरण, इन सबकी लेशमात्र भी अपेक्षा नहीं करते।

**अनुभाष्य**

**११०।** श्रीकृष्णनामात्मकः अयं मन्त्रः कृतचेतसां (मुक्त कुलाना) सुमहतां (त्रिगुणातीतानां, 'सुमनसाम्' इति पाठे—मनस्विनाम्) आकृष्टिः (आकर्षकः 'आकृष्टीकृतचेतसाम्' इति पाठे आकृष्टीकृतं चेतो येसां तेषाम्), अंहसां (प्राकृतअभिनिवेशज-चेष्टानां पुण्यपापानाम्) उच्चाटनम् (उन्मूलनम्) आचण्डालं (चण्डालपर्यन्तम्) अमूकलोकसुलभः (अमूकलोकानां मूकव्यतिरिक्तानां जनानां वाक्-शक्तिमताम् एवं सुलभः सहजप्राप्यः इत्यर्थः) मुक्ति श्रियः (मोक्षाश्रय-चिन्तामणिस्वरूपस्य) वश्यः (वशीकारकः) च; (स चायं नाम महामन्त्रः) दीक्षां (पाप-नाश-दिव्यज्ञान-विधायक-साधन-मयीम्) सत् क्रियां (फलसिद्धार्थां दक्षिणां पुरश्चर्यां च पञ्चाङ्गोपासनात्मिकां क्रिया) मनाक् (ईषत्) अपि न इक्षते (नापेक्षते परं तु) रसनास्पृक् (सेवोन्मुख-जिह्वा-स्पर्श-मात्रेण एव) फलति (फलप्रदो भवति)।

'कनिष्ठ-वैष्णव'
का लक्षण—

**अतएव जाँर मुखे एक कृष्णनाम।**
**सेइ त' वैष्णव, करिह ताँहार सम्मान॥"१११॥**

**१११। प० अनु०—**अतएव जिसके मुख में एक कृष्णनाम भी उदित हुआ है, वही वैष्णव है, उसका सम्मान करना।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१११। अतएव गृहस्थ लोगों के लिये वैष्णव-

सेवा हेतु एक कृष्णनामपरायण वैष्णव होने से ही सेवा-कार्यसिद्धि होती है; मन्त्र-दीक्षित वैष्णव को यहाँ पर विचार में नहीं लाया गया। इसका कारण यह है कि विष्णु मन्त्र में दीक्षित बहुत से व्यक्ति तत्वज्ञान-शून्यता-वशतः मायावाद आदि दोषों से दूषित हो सकते हैं, किन्तु नामापराधशून्य कृष्णनाम-उच्चारणकारी वैष्णव में उन सब दोषों के रहने की सम्भावना नहीं है। मन्त्र दीक्षित व्यक्ति—वैष्णवप्राय हैं, किन्तु जिसने निरपराध होकर एक बार कृष्णनाम किया है, वे सबसे कनिष्ठ होने पर भी 'शुद्ध वैष्णव' है,—गृहस्थ वैष्णव वैसे वैष्णव की ही सेवा करेंगे।

**अनुभाष्य**

१११। श्रील रूप प्रभु ने स्व-लिखित श्रीउप-देशामृत में कहा है—''कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत दीक्षास्ति चेत्'' अर्थात् सद्‌गुरु के निकट जो लब्धदीक्ष (दीक्षा प्राप्त) व्यक्ति अप्राकृत श्रद्धायुक्त होकर मुख से श्रीकृष्णनाम उच्चारण करता है, मध्यमाधिकारी उसका मन-मन में आदर करेंगे—यही विधि है।

तीन प्रधान खण्डवासी—

**खण्डेर मुकुन्ददास, श्रीरघुनन्दन।**
**श्रीनरहरि,—एइ मुख्य तिनजन॥११२॥**

**११२। प० अनु०—**खण्डवासियों में श्री मुकुन्द दास, श्रीरघुनन्दन तथा श्रीनरहरि—ये तीन जन मुख्य हैं।

प्रभु के द्वारा मुकुन्ददास से रघुनन्दन के साथ सम्बन्ध की जिज्ञासा—

**मुकुन्द दासेरे पुछे शचीर नन्दन।**
**"तुमि—पिता, पुत्र तोमार—श्रीरघुनन्दन??११३॥**
**किबा रघुनन्दन—पिता, तुमि—तार तनय?**
**निश्चय करिया कह, जाउक संशय॥"११४॥**

**११३-११४। प० अनु०—**श्रीशचीनन्दन ने श्रीमुकुन्ददास से पूछा—"आप पिता हैं तथा श्रीरघुनन्दन आपके पुत्र हैं? अथवा रघुनन्दन पिता है और आप उनके पुत्र हैं? आप निश्चय करके बतलाइये, जिससे संशय दूर हो सके।"

रघुनन्दन को कृष्णभक्त जानकर अमानी मानद मुकुन्द के द्वारा पुत्र बुद्धि का त्याग और गुरु-बुद्धि रखना—

**मुकुन्द कहे,—''रघुनन्दन आमार 'पिता' हय।**
**आमि तार 'पुत्र',—एइ आमार निश्चय॥११५॥**
**आमा सबार कृष्णभक्ति रघुनन्दन हैते।**
**अतएव पिता—रघुनन्दन, आमार निश्चिते॥''११६॥**

**११५-११६। प० अनु०—**श्रीमुकुन्ददास ने कहा—"रघुनन्दन मेरा 'पिता' लगता है तथा मैं उनका पुत्र हूँ—मेरा यही निश्चय है। हम सबकी कृष्णभक्ति रघुनन्दन से ही हुयी है। अतएव मैं निश्चय करके ही कहता हूँ कि पिता रघुनन्दन ही है।"

मुकुन्द के सद्-उत्तर को सुनकर प्रभु का हर्ष, 'सद्‌गुरु' अथवा 'वास्तविक पिता' की संज्ञा—

**शुनि' हर्षे कहे प्रभु,—"कहिले निश्चय।**
**जाँहा हैते कृष्णभक्ति सेइ गुरु हय॥"११७॥**

**११७। प० अनु०—**श्रीमुकुन्ददास की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक कहा—"आपने ठीक ही कहा है। जिनसे कृष्णभक्ति की प्राप्ति होती है, वही गुरु होता है।"

भक्त का जयगान करने में मत्त भगवान्—

**भक्तेर महिमा कहिते प्रभु पाय सुख।**
**भक्तेर महिमा कहिते हय पञ्चमुख॥११८॥**

**११८। प० अनु०—**भक्तों की महिमा को कहने से श्रीमन्महाप्रभु को प्रसन्नता की प्राप्ति होती है, श्रीमन्महाप्रभु भक्तों की महिमा कहते समय मानो पाँच मुख वाले हो जाते।

भक्तों के समक्ष मुकुन्द के कृष्ण-प्रेम का वर्णन—

**भक्तगणे कहे,—"शुन मुकुन्देर प्रेम।**
**निर्मल, निगूढ़ प्रेम, जेन शुद्ध हेम॥११९॥**

**११९। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु भक्तों से कहने लगे—"मुकुन्द के प्रेम के विषय में सुनो। इनका निर्मल, निगूढ़ प्रेम ऐसा है मानो शुद्ध स्वर्ण हो।

बाह्य लोक-व्यवहार, अन्तर में कृष्ण-निष्ठा—

**बाह्ये राजवैद्य इँहो, करे राज-सेवा।**
**अन्तरे प्रेम इँहार जानिबेक केबा॥१२०॥**

१२०। **प॰ अनु॰—**बाहरी रूप से तो मुकुन्द एक राजवैद्य है तथा राज-सेवा करते है। किन्तु इनके हृदय में जो प्रेम विराजमान है, उसे भला कौन जान सकता है?

**अनुभाष्य**

१२०। यद्यपि मुकुन्द साधारण लोगों की दृष्टि में राजवैद्य की नौकरी करते थे, किन्तु वास्तव में वे प्रकृत प्रेमिक भक्त (अर्थात् गृहस्थ वैष्णव के वेष में महाभागवत परमहंस) थे; साधारण लोग उसे जान नहीं पाये।

एक दिन की घटना का वर्णन; मुकुन्द और बादशाह का वृतान्त—

**एक दिन म्लेच्छ-राजार उच्च-टुङ्गिते।**
**चिकित्सार बात कहे इँहार अग्रेते॥१२१॥**
**हेनकाले एक मयूर-पुच्छेर आड़ानी।**
**राज-शिरोपरि धरे एक सेवक आनि'॥१२२॥**

**१२१-१२२। प॰ अनु॰—**एकदिन म्लेच्छ राजा के उच्च मञ्च पर मुकुन्द उनके समक्ष उनकी चिकित्सा से सम्बन्धित कोई बात कह रहे थे कि उसी समय राजा का एक सेवक एक मयूर के पंख से बने छाते को राजा के सिर के ऊपर लेकर खड़ा हो गया।

**अनुभाष्य**

१२१। उच्च-टुङ्गिते,—उच्च स्थान पर निर्मित छोटे से कमरे में।

१२२। आड़ानी,—आत पत्र अर्थात् धूप से बचाने वाला छाता, आड़े में बहुत बड़ा पंखा।

**शिखिपिच्छ देखि' मुकुन्द प्रेमाविष्ट हैला।**
**अति-उच्च टुङ्गि हैते भूमिते पड़िला॥१२३॥**

**१२३। प॰ अनु॰—**मयूर के पंख को देखकर मुकुन्द प्रेम में आविष्ट हो गया तथा अत्यधिक उच्च मञ्च से भूमि पर गिर पड़ा।

**राजार ज्ञान,—राज-वैद्येर हइल मरण।**
**आपने नामिया तबे कराइल चेतन॥१२४॥**

**१२४। प॰ अनु॰—**राजा को लगा कि राजवैद्य की मृत्यु हो गयी है। राजा ने स्वयं मञ्च से उतरकर मुकुन्द को चेतन कराया।

**राजा बले,—'व्यथा तुमि पाइले कोन् ठाञि?'**
**मुकुन्द कहे,—'अतिबड़ व्यथा पाइ नाइ॥'१२५॥**

**१२५। प॰ अनु॰—**राजा ने पूछा—'तुम्हें कहाँ पर दर्द है?' मुकुन्द ने कहा—'मुझे कोई बहुत अधिक दर्द नहीं है।'

**राजा कहे,—'मुकुन्द, तुमि पड़िला कि लागि'?**
**मुकुन्द कहे,—'राजा, मोर व्याधि आछे मृगी॥'१२६॥**

**१२६। प॰ अनु॰—**राजा ने पूछा—'मुकुन्द, तुम किस कारण गिर पड़े?' मुकुन्द ने कहा—'राजा, मुझे मृगी की बीमारी है।"

मुकुन्द के द्वारा छलना और आत्मगोपन करने पर भी राजा के द्वारा उन्हें 'महापुरुष' के रूप में पहचानना—

**महाविदग्ध राजा, सेइ सब जाने।**
**मुकुन्देरे हैल ताँर 'महासिद्ध'-ज्ञाने॥"१२७॥**

**१२७। प० अनु०—**राजा अत्यधिक विदग्ध थे, वे सब जानते थे, इसलिए उन्होंने मुकुन्द को महासिद्ध पुरुष के रूप में जान लिया।

**अनुभाष्य**

१२७। महाविदग्ध,—विशेष नीति-चतुर; महा-सिद्ध,—अलौकिक मुक्त पुरुष।

रघुनन्दन की कृष्णसेवा का दृष्टान्त—

**''रघुनन्दन सेवा करे कृष्णेर मन्दिरे।**
**द्वारे पुष्करिणी, तार घाटेर उपरे॥१२८॥**
**कदम्बेर एक वृक्षे फुटे बारमासे।**
**नित्य दुइ फूल हय कृष्ण-अवतंसे॥''१२९॥**

**१२७-१२९। प० अनु०—**रघुनन्दन कृष्ण के मन्दिर में सेवा करता है, मन्दिर के द्वार पर एक पुष्करिणी[*] के घाट पर ही लगे कदम्ब के एकवृक्ष पर बारहों महीने नित्यप्रति दो फूल कृष्ण के शृङ्गार के लिये खिलते हैं।

**अनुभाष्य**

**१२९।** अवतंसे,—भूषण, कर्णभूषण, शिरोभूषण, उसके लिये।

प्रभु के द्वारा तीनों की सेवा का विभाग—
१) मुकुन्द की सेवा—

**मुकुन्देरे कहे पुनः मधुर वचन।**
**''तोमार कार्य—धर्म-धन-उपार्जन॥१३०॥**

**१३०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने पुनः मुकुन्द से मधुर वचन कहे—'तुम्हारा कार्य धर्मपूर्वक धन उपार्जन करना है।

२) रघुनन्दन की सेवा—

**रघुनन्दनेर कार्य—कृष्णेर सेवन।**
**कृष्ण-सेवा बिना इँहार अन्य नाहि मन॥१३१॥**

**१३१। प० अनु०—**रघुनन्दन का कार्य श्रीकृष्ण की सेवा करना है। श्रीकृष्ण की सेवा के अलावा इसका मन अन्य किसी वस्तु में नहीं है।

३) नरहरि की सेवा—

**नरहरि रहु आमार भक्तगण-सने।**
**एइ तिन कार्य सदा करह तिन-जने॥"१३२॥**

**१३२। प० अनु०—**नरहरि मेरे भक्तों के साथ में रहे। तुम तीनों सदैव ये तीनों कार्य (धन उपार्जन, कृष्ण सेवा तथा भक्तों का सङ्ग) करो।"

**अनुभाष्य**

१३०-१३२। श्रीमहाप्रभु मुकुन्द को अत्यन्त प्रिय अन्तरङ्ग भक्त के रूप में जानते थे; इसलिए दोनों भ्राताओं तथा पुत्र के सेवा-कार्य का विभाग करते समय मुकुन्द के धर्म और धन-उपार्जन, रघुनन्दन के श्रीमूर्त्तिसेवन और नरहरि के भक्तों के साथ अवस्थान रूपी सेवा-भेद का निरुपण किया।

सार्वभौम और वाचस्पति, दोनों को कृष्णसेवा का निर्देश—

**सार्वभौम, विद्यावाचस्पति,—दुइ भाइ।**
**दुइ जने कृपा करि' कहेन गोसाञि॥१३३॥**
**'दारु'-'जल'-रूपे कृष्ण प्रकट सम्प्रति।**
**'दरशन'-'स्नाने' करे जीवेर मुकति॥१३४॥**
**'दारुब्रह्म'-रूपे—साक्षात् श्रीपुरुषोत्तम।**
**भागीरथी हन साक्षात् 'जलब्रह्म'-सम॥१३५॥**

**१३३-१३५। प० अनु०—**सार्वभौम और विद्या-वाचस्पति—ये दोनों भाई है। इन दोनों भाइयों पर कृपा करके श्रीचैतन्य गोसाञि ने कहा—वर्त्तमान समय में श्रीकृष्ण दारु (काष्ठ) तथा जल के रूप में प्रकट है तथा क्रमशः दर्शन और स्नान से

---

[*] ऐसा सरोवर जिसकी लम्बाई और चौड़ाई एक समान होती है।

जीवों को मुक्त करते हैं। वे 'दारुब्रह्म' के रूप में साक्षात् श्रीपुरुषोत्तम है तथा भागीरथी साक्षात् 'जलब्रह्म'-स्वरूप हैं।

सार्वभौम को जगन्नाथ और वाचस्पति को गंगा की सेवा की आज्ञा—

**सार्वभौम, कर 'दारुब्रह्म'-आराधन।**
**वाचस्पति, कर 'जलब्रह्मेर' सेवन॥''१३६॥**

**१३६। प० अनु०—**सार्वभौम दारुब्रह्म (जगन्नाथ) की आराधना करें तथा वाचस्पति जलब्रह्म (गङ्गा) की सेवा करें।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१३६।** हे सार्वभौम, आप दारुब्रह्मरूपी जगन्नाथ देव की आराधना करो, और हे विद्यावाचस्पति, आप श्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत विद्यानगर में बैठकर जल-ब्रह्मरूप गङ्गा की सेवा करो।

प्रभु के द्वारा मुरारि की स्व-सेवा-निष्ठा की महिमा का वर्णन—

**मुरारि-गुप्तेरे प्रभु करि' आलिङ्गन।**
**ताँर भक्तिनिष्ठा कहेन,—''शुन भक्तगण॥१३७॥**

**१३७। प० अनु०—**मुरारि गुप्त को आलिङ्गन करके श्रीचैतन्य महाप्रभु उनकी भक्ति की निष्ठा का वर्णन करते हुए कहने लगे—हे भक्तगण सुनो!

पहले प्रभु द्वारा मुरारि को कृष्ण भजन का प्रलोभन (लालच)—

**पूर्वे आमि ईँहारे लोभाइल बार बार।**
**'परम मधुर, गुप्त! व्रजेन्द्रकुमार॥१३८॥**
**स्वयं भगवान् कृष्ण—सर्वांशी, सर्वाश्रय।**
**विशुद्ध-निर्मल-प्रेम, सर्वरसमय॥१३९॥**
**सकल-सद्गुण-वृन्द-रत्न-रत्नाकर।**
**विदग्ध, चतुर, धीर, रसिक-शेखर॥१४०॥**
**मधुर-चरित्र कृष्णेर मधुर-विलास।**
**चातुर्य, वैदग्ध्य करे जाँर लीला-रस॥१४१॥**

**१३८-१४१। प० अनु०—**पहले मैंने इसे बारम्बार लोभ दिखाया कि हे मुरारि गुप्त! व्रजेन्द्र कुमार श्रीकृष्ण परम मधुर हैं। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् है, वे सबके अंशी, सभी के आश्रय, विशुद्ध निर्मल प्रेम रूप, सब प्रकार के रसों के भण्डार, समस्त प्रकार के सद्गुणरूपी रत्नों के सागर, विदग्ध, अत्यन्त बुद्धिमान, धीर एवं रसिक शेखर हैं। मधुर चरित्र वाले श्रीकृष्ण के विलास भी मधुर हैं जिनकी चतुरता और विदग्धता से लीला-रस उत्पन्न होता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३८। (पहले) यह बात बोलकर मैंने उसे कृष्णभजन में अधिक लोभ दिखलाया था कि, ''हे गुप्त, श्रीव्रजेन्द्रकुमार—परम मधुर'' हैं इत्यादि।

कृष्णोपासना की ही सर्वश्रेष्ठता का कथन—

**सेइ कृष्ण भज तुमि, हओ कृष्णाश्रय।**
**कृष्ण बिना अन्य-उपासना मने नाहि लय॥१४२॥**

**१४२। प० अनु०—**हे मुरारि गुप्त! तुम उन्हीं श्री कृष्ण का भजन करो। कृष्ण के आश्रित बन जाओ। कृष्ण के अलावा अन्य किसी की उपासना की बात को मन में भी मत लाओ।

प्रभु के प्रलोभन से मुरारि का क्षणिक चित्त-परिवर्त्तन—

**एइमत बार-बार शुनिया वचन।**
**आमार गौरवे किछु फिरि' गेला मन॥१४३॥**

**१४३। प० अनु०—**बार-बार इस प्रकार के वचन सुनकर मेरे प्रति गौरव बुद्धि के कारण मुरारि गुप्त का मन कुछ बदल गया।

प्रभु के वचनों में दृढ़ विश्वास और दैन्य का ज्ञापन—

**आमारे कहेन,—''आमि तोमार किङ्कर।**
**तोमार आज्ञाकारी आमि, नाहि स्वतन्तर॥''१४४॥**

**१४४। प० अनु०—**मुरारि गुप्त ने मुझसे कहा—

''मैं आपका दास हूँ। आपका आज्ञाकारी हूँ, मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ।

राम की उपासना के त्याग की चिन्ता से मुरारि की अनिद्रा, क्रन्दन और मृत्यु की वासना—

**एत बलि' घरे गेल, चिन्ति' रात्रिकाले।**
**रघुनाथ-त्याग-चिन्ताय हइल विकले॥१४५॥**
**केमने छाड़िब रघुनाथेर चरण!**
**आजि रात्र्ये प्रभु मोर कराह मरण!॥१४६॥**
**एइ मत सर्व-रात्रि करेन क्रन्दन।**
**मने सोयास्ति नाहि, रात्रि करेन जागरण॥१४७॥**

**१४५-१४७। प० अनु०—**इतना कहकर मुरारि गुप्त अपने घर चला गया। रात्रि के समय में रघुनाथ भगवान् श्रीरामचन्द्र की उपासना को त्यागने के विषय में सोचते-सोचते द्विधा बोध करने लगा। मैं किस प्रकार श्रीरघुनाथ के चरणों को छोड़ूँगा! हे प्रभु! आप आज रात को ही मेरी मृत्यु करा दो! इस प्रकार चिन्ता करते-करते मुरारि गुप्त सारी रात रोते रहे। उनका मन बिल्कुल भी ठीक नहीं था, उन्होंने सारी रात जागरण किया।

**अनुभाष्य**

१४५। प्रभु,—जीव के नित्यसेव्य, आराध्य अथवा उपास्य तत्व कृष्ण; मध्य चतुर्थ परिच्छेद १८६, सप्तम परिच्छेद ८, त्रयोदश परिच्छेद १४० (पूर्वार्द्ध) द्रष्टव्य; अन्त्य चतुर्थ परिच्छेद ४६-४७ संख्या—''सेई भक्त—धन्य, जे ना छाड़े प्रभुर चरण। सेइ प्रभु—धन्य, जे ना छाड़े निज जन॥ दुर्दैवे सेवक यदि जाय अन्य स्थाने। सेइ ठाकुर—धन्य, जे तारे चूले धरि' आने॥''

प्रातःकाल आकर राम-भजन के त्यागने और प्रभु की आज्ञा के पालन में असमर्थता बतलाकर दोनों विपत्तियों में पड़कर मृत्यु की अभिलाषा—

**प्रातःकाले आसि' मोर धरिल चरण।**
**कान्दिते कान्दिते किछु करे निवेदन॥१४८॥**
**'रघुनाथेर पाय मुञि बेचियाछों माथा।**
**काड़िते ना पारि माथा, मने पाइ व्यथा॥१४९॥**
**श्रीरघुनाथ-चरण छाड़ान ना जाय।**
**तव आज्ञा-भङ्ग हय, कि करि उपाय!१५०॥**
**ताते मोरे एइ कृपा कर, दयामय।**
**तोमार आगे मृत्यु हउक, याउक संशय॥'१५१॥**

**१४८-१५१। प० अनु०—**प्रातःकाल में आकर मुरारि गुप्त ने मेरे चरण पकड़ लिये। ये रोते-रोते कुछ निवेदन करने लगे—मैंने श्री रघुनाथ के चरणों में अपने सिर को बेच दिया है। मैं अपने सिर को उनके चरणों के आश्रय से नहीं उठा पा रहा हूँ तथा मन में व्यथा प्राप्त कर रहा हूँ। मेरे द्वारा श्रीरघुनाथ के चरणों को छोड़ा नहीं जा सकता। दूसरी ओर, आपकी आज्ञा का उल्लंघन हो रहा है, मैं क्या उपाय करूँ। हे दयामय! अतः आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए, जिससे आपके समक्ष ही मेरी मृत्यु हो जाये तथा मेरा संशय दूर हो जाएँ।

**अनुभाष्य**

**१४९।** ''श्रीनाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि। तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचन॥''

मुरारि के वचनों से प्रभु का हर्ष और प्रशंसा—

**एत शुनि' आमि बड़ मने सुख पाइलुँ।**
**इँहारे उठाया तबे आलिङ्गन कैलुँ॥१५२॥**
**साधु, साधु, गुप्त! तोमार सुदृढ़ भजन।**
**आमार वचनेह तोमार ना टलिल मन॥१५३॥**

**१५२-१५३। प० अनु०—**मुरारि गुप्त की इस बात को सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ। तब मैंने इसे उठाकर इसका आलिङ्गन किया। बहुत प्रसन्नता की बात है, बहुत प्रसन्नता की बात है गुप्त! तुम्हारा भजन बहुत सुदृढ़ है, मेरे वचन सुनकर भी तुम्हारा मन परिवर्तित नहीं हुआ।

सेवक और सेव्य का परस्पर के
प्रति आदर्श व्यवहार—

**एइमत सेवकेर प्रीति चाहि प्रभु-पाय।**
**प्रभु छाड़ाइलेह, पद छाड़ान ना जाय॥१५४॥**

**१५४। प॰ अनु॰—**प्रभु के प्रति सेवक की ऐसी ही प्रीति होनी चाहिए। प्रभु के द्वारा छुड़ाने पर भी, उनके चरणों को छोड़ा नहीं जा सकता।

प्रभु के द्वारा मुरारि की उपास्य के प्रति निष्ठा की परीक्षा, मुरारि का परीक्षा में उत्तीर्ण होना—

**एइमत तोमार निष्ठा जानिवार तरे।**
**तोमारे आग्रह आमि कैलुँ बारे-बारे॥१५५॥**

**१५५। प॰ अनु॰—**इस प्रकार की तुम्हारी निष्ठा को जानने के लिये ही मैंने तुमसे बार-बार आग्रह किया था।

**अनुभाष्य**

**१५५। जानिवार** (जानने के लिये)—परीक्षा करने के लिये; **आग्रह**—कृष्णभजन करवाने के लिये निर्बन्ध।

दैन्य के अवतार मुरारि—साक्षात् हनुमद्-विग्रह—

**साक्षात्-हनुमान् तुमि श्रीराम-किङ्कर।**
**तुमि केने छाड़िबे ताँर चरण-कमल॥१५६॥**

**१५६। प॰ अनु॰—**तुम श्रीराम के दास साक्षात् हनुमान हो। तुम उनके चरण-कमलों को क्यों छोड़ोगे?

**सेइ मुरारि-गुप्त ऐई—मोर प्राण सम।**
**इँहार दैन्य शुनि' मोर फाटये जीवन॥१५७॥**

**१५७। प॰ अनु॰—**वही ये मुरारि गुप्त मेरे प्राणों के समान हैं। इनका दैन्य सुनकर मेरा हृदय फटता है।

**अनुभाष्य**

१३७-१५७। इस प्रसङ्ग में अन्त्य चतुर्थ परिच्छेद ३०-४५ संख्या में श्रीजीव के पिता श्री अनुपम अथवा वल्लभ की श्री राम-निष्ठा आलोच्य है।

प्रभु के द्वारा वासुदेव दत्त की प्रशंसा—

**तबे वासुदेवे प्रभु करि' आलिङ्गन।**
**ताँर गुण कहे हञा सहस्र-वदन॥१५८॥**

**१५८। प॰ अनु॰—**तब श्रीमन्महाप्रभु श्रीवासुदेव दत्त को आलिङ्गन करने के बाद उनके गुणों का ऐसे बखान करने लगे, मानो उनके सैकड़ो मुख हो।

प्रभु के चरणों में वासुदेव का
कातर-प्राण से निवेदन—

**निज-गुण शुनि' दत्त मने लज्जा पाञा।**
**निवेदन करे प्रभुर चरणे धरिया॥१५९॥**
**"जगत् तारिते प्रभु तोमार अवतार।**
**मोर निवेदन एक करह अङ्गीकार॥१६०॥**
**करिते समर्थ तुमि, हओ दयामय।**
**तुमि मन कर, तबे अनायासे हय॥१६१॥**

**१५९-१६१। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के मुख से अपने गुणों को सुनकर श्रीवासुदेव दत्त मन-ही-मन बहुत अधिक लज्जित हुए तथा श्रीमन्महाप्रभु के च रणों को धारण करके निवेदन करने लगे—हे प्रभु! जगत् का उद्धार करने के उद्देश्य से ही आपका अवतार हुआ है, आप कृपया मेरा एक निवेदन स्वीकार कीजिए। जो निवेदन मैं करने जा रहा हूँ, हे दयामय! उसे पूर्ण करने में आप समर्थ हैं। यदि आप इच्छा करें, तो वह अनायास ही पूर्ण हो सकता है।

अलौकिक परदुःखदुःखी गौरदास
वासुदेव-दत्त-ठाकुर—

**जीवेर दुःख देखि' मोर हृदय विदरे।**
**सर्वजीवेर पाप प्रभु देह' मोर शिरे॥१६२॥**

**जीवेर पाप लञा मुञि करि नरक भोग।**
**सकल जीवेर, प्रभु, घुचाह भवरोग॥१६३॥**

**१६२-१६३। प० अनु०—**जीवों के दुःखों को देखकर मेरा हृदय फटता है, हे प्रभु! आप सभी जीवों के पापों को मेरे सिर पर मड़ दीजिए। जीवों के पापों को लेकर मैं नरक भोग करूँगा तथा हे प्रभु! आप सभी जीवों के भवरोग को दूर कर दीजिए।

**अनुभाष्य**

१६२-१६३। पाश्चात्य-राज्यों के खृष्ट (ईसाई) भक्तों में यह विश्वास है कि, उनके गुरु एकमात्र महामति यीशुखृष्ट ही जीवों के सभी पापों के भार को ग्रहण करने के लिये प्रस्तुत (तैयार) होकर ही जगत में अवतीर्ण हुए थे; किन्तु श्री गौरपार्षदों में श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर ने श्रील हरिदास ठाकुर की भाँति यीशु खृष्ट की अपेक्षा अनन्त कोटि गुणा अधिकतर उन्नत और उदार सार्वजनिक विश्व वैष्णव-प्रेम-भाव की जगत् के जीवों को शिक्षा दी है। श्री वासुदेव दत्त ठाकुर में जड़ीय स्वार्थत्याग रूप 'निस्वार्थ', विष्णु-सेवारूप चिन्मय 'परार्थ' और 'स्वार्थ' अपूर्वभाव से एकत्र सम्मिलित हैं। उन्होंने गौरसुन्दर के प्रति साक्षात् वास्तव-वस्तु निरस्त-कुहक स्वयं भगवद्ज्ञान से समस्त जीवों के कृष्ण-विमुखता रूप भवरोग (केवल पाप नहीं, सब प्रकार के पापों की अपेक्षा भी भीषणतम अपराध-राशि) को अपने कन्धे पर ग्रहण करके उनके भवरोग को दूर करने के लिये काय-मनो-वाक्य से सम्पूर्ण निष्कपट रूप से प्रार्थना करके जिस दया का आदर्श प्रदर्शित किया है, वह सम्पूर्ण जगत् में, केवल जगत् में ही क्यों, सम्पूर्ण चतुर्दश भुवन में सर्वश्रेष्ठ कर्मी एवं ज्ञानी की भी कल्पना से अतीत है। माया के वशीभूत होने के कारण द्वितीय अभिनिवेश-निबन्धन भेद-बुद्धि-हेतु हिंसा-वृत्ति-प्रधान जीव द्वैत जगत में कर्म और ज्ञान के आदर्श का ही बहुमानन करते हैं, इसलिए उनमें से अधिकांश व्यक्ति ही कुकर्मी और कुज्ञानी हैं; उनके द्वारा वैकुण्ठसेवक वासुदेव दत्त ठाकुर की नरक भोग वाञ्छा को सुनकर स्वाभाविक ईर्ष्या और द्वन्द्वभाव के आधार पर उल्लास से उत्साहित होकर उन्हें एक 'पुण्यवान् सतकर्मी, अथवा 'ब्रह्मज्ञानी' के स्तर का मानकर प्रचुर सम्मान अथवा प्रतिष्ठा प्रदान करने पर भी, दत्त ठाकुर उसकी अपेक्षा भी जो अनन्त कोटि गुणा अधिक जीव के प्रति 'दया'- प्रवृत्ति विशिष्ट हैं, यह बिल्कुल भी अतिरञ्जित प्रशंसा (अतिश्योक्ति) अथवा अर्थवाद नहीं है, अति निरपेक्ष सत्यकथा है। वास्तव में उनके समान ''पर दुःख दुःखी'' गौरदास गण के आगमन से पृथ्वी धन्या, केवल प्रपञ्च नहीं, समस्त जीव कुल भी धन्य हो गया है। ऐसे गौरभक्त के गुणगान में ही वाग्मि (बोलने वाले) जीवों की जिह्वा का फल निहित है; और उनके समान अकिञ्चना-भगवद्भक्ति विशिष्ट महाभागवत के गुण वर्णन के कार्य में ही कवि और ऐतिहासिक व्यक्तियों की लेखनी जड़ानुसन्धान रहित होकर अपनी सर्वश्रेष्ठ-सार्थकता सम्पादित करती है,— महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्य के दास इतने ''महतोऽपि महीयान् और गरीयसोऽपि गरीयान्'' हैं।

प्रियतम सेवक की प्रार्थना से प्रभु विचलित—

**एत शुनि' महाप्रभुर चित्त द्रविला।**
**अश्रु-कम्प-स्वरभङ्गे कहिते लागिला॥१६४॥**

**१६४। प० अनु०—**इतना सुनकर श्रीमन्महाप्रभु का चित्त द्रवित हो गया तथा उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे, उनका कलेवर काँपने लगा और वे गद्गद स्वर से कहने लगे—

वासुदेव-दत्तठाकुर—साक्षात् प्रह्लाद—

**"तोमार विचित्र नहे, तुमि—साक्षात् प्रह्लाद।**
**तोमार उपरे कृष्णेर सम्पूर्ण प्रसाद॥१६५॥**

**१६५। प॰ अनु॰—**हे वासुदेव! ऐसी बात कहना तुम्हारे लिये कोई विचित्र बात नहीं है, क्योंकि तुम साक्षात् प्रह्लाद हो, तुम पर भगवान् श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण कृपा है।

कृष्ण और भक्त का परस्पर में व्यवहार—

**कृष्ण सेइ सत्य करे, जेई मागे भृत्य।**
**भृत्य-वाञ्छा-पूरण बिना नाहि अन्य कृत्य॥१६६॥**

**१६६। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण उस बात को सच कर देते हैं, जो उनका दास माँगता है। श्रीकृष्ण का दास की इच्छा को पूर्ण करने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं है।

ब्रह्माण्डवासी सभी के उद्धार के विषय
में ही सत्य आश्वासन-दान—

**ब्रह्माण्ड जीवेर तुमि वाञ्छिले निस्तार।**
**बिना पाप-भोगे हबे सबार उद्धार॥१६७॥**

**१६७। प॰ अनु॰—**तुमने ब्रह्माण्ड के समस्त जीवों के उद्धार की कामना की है, अतः बिना पाप भोगे ही उन सबका उद्धार होगा।

स्वयं भगवान् कृष्ण की
सर्वशक्तिमता का वर्णन—

**असमर्थ नहे कृष्ण, धरे सर्व बल।**
**तोमाके वा केने भुञ्जाइबे पाप-फल?१६८॥**
**तुमि जाँर हित वाञ्छ', से हइल 'वैष्णव'।**
**वैष्णवेर पाप कृष्ण दूर करे सब॥१६९॥**

**१६८-१६९। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण असमर्थ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण शक्ति को धारण करने वाले हैं, वे तुम्हें भी सबके द्वारा किये गये पापों के फल को किसलिए भोग करायेंगे? तुम जिनके हित की कामना करते हो, वह 'वैष्णव' बन जाता है तथा श्रीकृष्ण वैष्णवों के समस्त पापों को दूर कर देते हैं।

**अनुभाष्य**

१६७-१६९। प्रभु वासुदेव को कह रहे हैं,—''श्रीकृष्ण—सर्वशक्तिमान् हैं; वे समस्त जीवों को जीवों की जड़भोगवासना से सम्पूर्ण रूप में मुक्त कर सकते हैं। तुमने जब समदर्शी होकर, उच्च-नीच सभी जीवों की ओर से उनके मङ्गल की प्रार्थना की है, तब तुम्हारी प्रार्थनानुसार पाप भोग के बिना ही सभी का उद्धार होगा; उसके बदले तुम्हें उनके लिये पाप के फल का भोग नहीं करना पड़ेगा। तुम जिनके मङ्गल की कामना करोगे, वे ही 'वैष्णव' बन जायेंगे एवं वैष्णवों के प्राचीन-दुष्कृति-समूह के फलभोग से भी कृष्ण उनकी रक्षा करेंगे अर्थात् वे पाप-पुण्य की सेवा को छोड़कर शुद्ध कृष्ण सेवक बन जायेंगे। पाद्मे—'अप्रारब्धफलं पापं कूटं बीजं फलोन्मुखम्। क्रमेणैव प्रलीयेत् विष्णु भक्ति-रतात्मनाम्॥'' भाः ६/२/१७ श्लोक द्रष्टव्य।

सर्वफलप्रदाता गोविन्द की वन्दना—
ब्रह्मसंहिता (५/५४) में—

**यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्र महो स्वकर्म-**
**बन्धानुरूप-फल भाजनमातनोति।**
**कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां**
**गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥१७०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७०। जो इन्द्रगोप नामक कीट से आरम्भ करके देवेन्द्र तक सभी जीवों को उनके कर्म बन्धन अनुसार फल भाजन (भोग) विस्तार (विधान) करते हैं, किन्तु जो भक्ति करने वाले व्यक्तियों के समस्त कर्मों का ही सम्पूर्ण रूप से दहन करते अर्थात् जलाते हैं, अहो! मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ।

### अनुभाष्य

१७०। यः (गोविन्दः) तु इन्द्रगोपं (रक्तवर्णक्षुद्र-कीट विशेषम्) अथवा इन्द्रं (देवाधिपतिं) स्वकर्म-बन्धनानुरूपफलभाजनं (स्वस्य कर्मबन्धानुरूपस्य फलस्य भाजनम्) आतनोति (सम्यक् विदधाति) किन्तु भक्ति भाजां (हरिसेवापराणां) च कर्माणि (प्रारब्धाणि अप्रारब्धाणि च भोगयोग्यानि कर्म-फलानि) निर्दहति (विनाशयति), तम् आदि पुरुषं (मूलदेवं) गोविन्दम् (अहं) भजामि।

भक्त की इच्छा से कृष्ण के द्वारा अनायास ही ब्रह्माण्ड के मोचन का साधन—

**तोमार इच्छा-मात्रे हबे ब्रह्माण्ड-मोचन।**
**सर्व मुक्त करिते कृष्णेर नाहि परिश्रम॥१७१॥**

**१७१। प॰ अनु॰—**हे वासुदेव! तुम्हारे इच्छा करने मात्र से ही ब्रह्माण्ड का उद्धार हो जायेगा। ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणियों को मुक्त करने में श्रीकृष्ण का कुछ भी परिश्रम नहीं होता।

विरजा अथवा कारण-समुद्र में तैरते हुए अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड—

**एकइ उडुम्बर-वृक्षे लागे कोटि-फले।**
**कोटि जे ब्रह्माण्ड भासे विरजार जले॥१७२॥**

**१७२। प॰ अनु॰—**जिस प्रकार एक उडुम्बर (गुलर) के वृक्ष पर करोड़ों फल लगते है उसी प्रकार विरजा नदी के जल में करोड़ो ब्रह्माण्ड तैरते रहते हैं।

### अनुभाष्य

१७२। अप्राकृत ब्रह्मधाम के बाहरी भाग में—विरजा नदी है। उसके एक ओर आलोकमय ब्रह्मधाम के द्वारा मण्डित सविशेष-वैकुण्ठ-धाम है। विरजा नदी के दूसरी ओर—यह देवीधाम अथवा प्राकृत राज्य है; देवी-धाम में त्रिगुण विद्यमान है एवं विरजा नदी में तीनों गुणों की साम्यावस्था विराजमान है।

ब्रह्माण्ड के उद्धार के साथ डुमुर के फल के गिरने की उपमा—

**तार एक फल पड़ि' यदि नष्ट हय।**
**तथापि वृक्ष नाहि जाने निज-अपचय॥१७३॥**

**१७३। प॰ अनु॰—**यदि उस गुलर वृक्ष का एक फल गिरकर नष्ट हो जाता है, तब भी वह वृक्ष उसमें अपनी कोई हानि नहीं समझता।

कृष्ण के लिये केवल एक ब्रह्माण्ड का उद्धार—अत्यन्त तुच्छ और अग्राह्य कार्य—

**तैछे एक ब्रह्माण्ड यदि मुक्त हय।**
**तबु अल्प-हानि कृष्णेर मने नाहि लय॥१७४॥**

**१७४। प॰ अनु॰—**उसी प्रकार यदि एक ब्रह्माण्ड मुक्त हो जाता है, तब श्रीकृष्ण को उसमें थोड़ी सी हानि का भी अनुभव नहीं होता।

परव्योम के बाहरी स्थान पर स्थित कारण-सागर का वर्णन—

**अनन्त ऐश्वर्य कृष्णेर वैकुण्ठादि-धाम।**
**तार गड़खाई—कारणाब्धि जार नाम॥१७५॥**
**ताते भासे माया, लञा अनन्त ब्रह्माण्ड।**
**गड़खाइते भासे जेन राइ-पूर्ण भाण्ड॥१७६॥**
**तार एक राई-नाशे, हानि नाहि मानि।**
**ऐछे एक अण्ड-नाशे कृष्णेर नाहि हानि॥१७७॥**

**१७५-१७७। प॰ अनु॰—**वैकुण्ठ आदि धाम श्रीकृष्ण के अनन्त ऐश्वर्य का परिचय हैं, उसी वैकुण्ठ लोक के चारों ओर की खाई ही कारणसमुद्र के नाम से प्रसिद्ध है। उसी कारणसमुद्र में माया अपने अनन्त ब्रह्माण्डों को लेकर तैरते हुए ऐसे प्रतीत होती हैं, मानो खाई में राई (सरसों) के दानों से भरे हुए पात्र हो। जिस प्रकार उस राई से भरे

पात्र में से एक राई के दाने के नष्ट होने को हानि नहीं माना जाता, उसी प्रकार एक ब्रह्माण्ड के नष्ट होने पर श्रीकृष्ण की कोई हानि नहीं होती।

**अनुभाष्य**

१७५। आदि द्वितीय परिच्छेद ५३ संख्या, पञ्चम परिच्छेद ५२-५५, मध्य विंश परिच्छेद २६८-२७९, एकविंश परिच्छेद की ५२ संख्या द्रष्टव्य है। वैकुण्ठ-धाम में माया की किसी भी प्रकार की कुण्ठता (कुंठा) नहीं है। वैकुण्ठ सब ओर से कारण समुद्र से घिरा हुआ है। प्राकृत देवीधाम की विचित्रता का कारणजल ही कारणब्धि है।

१७६। गड़खाई,—घेरने वाला जल। विरजा-नदी अथवा कारणब्धि—गड़खाई के समान है, एवं अनन्त असंख्य ब्रह्माण्ड-समूह असंख्य—छोटे-छोटे राई के दाने के समान, और माया भाण्ड (पात्र) के समान है।

माया के साथ अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के
ध्वंस से भी कृष्ण को कोई नुकसान नही—

**सब ब्रह्माण्ड सह यदि 'माया' र हय क्षय।**
**तथापि ना माने कृष्ण किछु अपचय॥१७८॥**
**कोटि-कामधेनु-पतिर छागी जैछे मरे।**
**षडेश्वर्यपति कृष्णेर माया किबा करे??१७९॥**

**१७८-१७९। प॰ अनु॰**—एक ब्रह्माण्ड का तो कहना ही क्या, सभी ब्रह्माण्डों के साथ यदि माया का भी नाश हो जाता है, तब भी श्रीकृष्ण इसे हानि ही नहीं मानते। करोड़ों कामधेनुओं के पालक की बकरी के मर जाने से जिस प्रकार कोई हानि नहीं होती, उसी प्रकार षड़-ऐश्वर्यपति श्रीकृष्ण को माया के नष्ट होने से क्या हानि हो सकती है?

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७१-१७९। इन पद्यों का शब्दार्थ—सरल, किन्तु भावार्थ—कठिन है; भावार्थ यह है—जीव के कृष्ण बहिर्मुख होकर मायाबन्धन में पड़ने पर, माया अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि करके उन जीवों को कृष्ण-विमुखता के फलस्वरूप कर्म फल भोग कराती है। कृष्ण बहिर्मुख लोगों को कर्मफल अवश्य ही भोग करना पड़ता है। कृष्ण सम्मुख (कृष्णोन्मुख) व्यक्तियों का वह कर्मबन्धन कृष्ण की इच्छा से सम्पूर्ण रूप में नष्ट हो जाता है; इसमें यदि वितर्क किया जाये कि 'भक्त होने से ही यदि कर्म बन्धन नष्ट हुआ एवं किसी भक्त के द्वारा इच्छा करने पर ही यदि बिना दण्ड के ही सभी जीवों ने उद्धार प्राप्त किया, तब भक्त की इच्छा से ही ब्रह्माण्ड रहे, या नहीं रहे, ऐसा हो सकता है; तो फिर कृष्ण का जगत् किस प्रकार से ठीक-ठाक नियमित हो सकता है?' प्रभु ने कहा,—'कृष्ण का चिद् जगत—अनन्त और अपरिमेय (जिसका परिमाप नहीं किया जा सकता) है; स्वरूप-शक्ति के गण वहाँ कामधेनु के रूप में पतिस्वरूप कृष्ण की सेवा करते हैं। वह (स्वरूप शक्ति का वैभव) चिद्जगत्—त्रिपाद (विभूति) है। उस चित्जगत् की छाया रूप माया से अधिकृत यह जड़जगत्—एकपाद है। माया स्वरूपशक्ति की छाया मात्र है, अतएव करोड़ों कामधेनु पति कृष्ण के लिये एक बकरी मात्र है। शुद्ध भक्तों की इच्छानुसार अथवा शुद्धभक्तों के अनुरोध मात्र से यदि एक मायिक ब्रह्माण्ड का उद्धार हो जाता है, तो उसमें कृष्ण की क्षति प्रतीत नहीं होती; उसकी बात छोड़ो, यदि समस्त मायिक ब्रह्माण्ड के साथ बकरी स्वरूप माया का अस्तित्व भी लोप हो, तो भी करोड़ो कामधेनु के पति रूप षड़ ऐश्वर्यों के ईश्वर कृष्ण की लेशमात्र भी हानि नहीं होती अर्थात् छाया के नष्ट होने पर क्या स्वरूप-वस्तु की हानि हो सकती है?

श्रीमद्भागवत में (१०/८७/१४)—

**जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां**
**त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः।**
**अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते**
**क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः॥"१८०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८०। जिसके (द्वारा) सत्व, रज और तमोगुण दोष के रूप में गृहीत हुआ है, हे अजित, उस चराचर अजा (अविद्या अथवा माया) को आप विनष्ट करके (अपनी जीत दिखाओ, जीत दिखलाओ); क्योकि, आत्मशक्ति के क्रम से माया-तीत आपमें (स्वरूपतः) समस्त ऐश्वर्य अवरुद्ध (आबद्ध) हैं, आप ही जगत् की समस्त शक्तियों के अवबोधक (उद्बोधक अन्तर्यामी) हैं; आप आत्म-शक्ति में ही विपुल चित् जगत में लीला करते है एवं किसी कारणवशतः आप अपनी छाया-शक्ति, माया के प्रति ईक्षण (दृष्टिपात) करके उसके द्वारा (सृष्टिादि) लीला करते हैं,—वेद आपकी इन दो प्रकार की लीलाओं का ही वर्णन (करके प्रतिपादन) करते है।

**अनुभाष्य**

१८०। जनलोक में ब्रह्म सत्र यज्ञ में सेवा करने के अभिलाषी ऋषियों के समीप चतुःसन में से एक ब्रह्मर्षि सनन्दन श्रुतियों के द्वारा की गयी भगवद् स्तुति का वर्णन कर रहे हैं—

हे अजित, (मायाद्यनभिभूत,) जय जय (निजोत्कर्षमवश्यमावि कुरु, कथं वा न करोषीति आदरे वीप्सा) दोष-गृभीतगुणां (दोषाय आनन्दाधाव-रणाय गृभीता गृहीताः गुणाः यया ता) अगजदोकसां (अगानि स्थावराणि जगन्ति जङ्गमानि उकांसि शरीराणि येषां तेषां जीवानाम्) अजां (मायाम् अविद्या) जहि (नाशय-यथा पुनरेषा) सृष्टयादौ प्रवृतान् जीवान् न दुनोतीति भावः) यत् (यस्मात्) त्वम् आत्मना (स्वरूप-भूतेन परमानन्देनैव तदभिन्न-यैव शक्तया) समवरुद्धसमस्तभगः (सम्प्राप्त-समग्रै-श्वर्यः) असि (वशीकृत-मायत्वात् त्वमेव) अखि-लशक्त्यवबोधक (अखिलाः प्राकृताप्राकृताः याः शक्तयः तासां सर्वासाम् अवबोधक, भोक्तः, अधीरवरः इति यावत्) क्वचित् (कदाचित् सृष्ट्या-दिसमये) अजया (मायया) आत्मना (अङ्गाभासेन, स्वयं तु निर्लिप्तः) चरतः (इक्षणक्रीड़तः) ते (तव त्वां—कर्मणि पष्ठी) निगमः (वेदः) अनुचरेत् (प्रतिपादयेत "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते", "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रतिणोति तस्मै", "य आत्मनि तिष्ठन", "सतां ज्ञानमनन्त ब्रहम इत्यादि श्रुतिभ्यः)।

सभी भक्तों को प्रभु द्वारा विदायी-प्रदान—

**एइ मत सर्वभक्तेर कहि' सब गुण।**
**सबारे विदाय दिल करि' आलिङ्गन॥१८१॥**

**१८१। प० अनु०—**इस प्रकार सभी भक्तों के समस्त गुणों का वर्णन करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु ने उन सभी भक्तों को आलिङ्गन करके उन्हें विदायी दी।

परस्पर के भावि-विरह की आशङ्का में
भक्त और भगवान् का विषाद—

**प्रभुर विच्छेदे भक्त करेन रोदन।**
**भक्तेर विच्छेदे प्रभुर विषण्ण हैल मन॥१८२॥**

**१८२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु से विच्छेद होने पर भक्त रोने लगे तथा भक्त के विच्छेद से प्रभु का मन भी खिन्न हो गया।

गदाधर को टोटा-गोपीनाथ की सेवा-प्रदान—

**गदाधर-पण्डित रहिला प्रभुर पाशे।**
**यमेश्वरे प्रभु जाँरे कराइला आवासे॥१८३॥**

**१८३। प० अनु०—**श्रीगदाधर पण्डित श्रीमन्महा-प्रभु के पास ही रह गये, श्री मन्महाप्रभु ने उन्हें यमेश्वर में आवास स्थान प्रदान किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८३। पाठान्तर में-'जलेश्वरे' अर्थात् 'जलेश्वर में'; यह पाठ शुद्ध और सार्थक नहीं लगता, क्योंकि, जलेश्वर ग्राम में गदाधर पण्डित की किसी लीला का उल्लेख नहीं है। समुद्र-बालु के पथ से यमेश्वर-टोटा में श्रीटोटा गोपीनाथ का मन्दिर है, वही गदाधर पण्डित (गोस्वामी) गोपीनाथ की सेवा और महाप्रभु की सेवा में आविष्ट होकर रहते थे।

**अनुभाष्य**

१८३। **यमेश्वर**—पुरुषोत्तम में श्रीमन्दिर के दक्षिण-पश्चिम कोण में बालुका के ऊपर यमेश्वर-टोटा अथवा बागान; उस स्थान पर महाप्रभु ने गदाधर पण्डित को वास स्थान दिया।

छह भक्तों के साथ प्रभु का पुरी में अवस्थान—

**पुरी-गोसाञि, जगदानन्द, स्वरूप-दामोदर।**
**दामोदर-पण्डित, आर गोविन्द, काशीश्वर॥१८४॥**
**एइ सब सङ्गे प्रभु बैसे नीलाचले।**
**जगन्नाथ-दरशन नित्य करे प्रातःकाले॥१८५॥**

**१८४-१८५। प० अनु०**—श्रीपरमानन्द पुरी गोस्वामी, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीदामोदर पण्डित, श्रीगोविन्द प्रभु तथा श्री काशीश्वर के साथ श्रीमन्महाप्रभु ने नीलाचल में वास किया तथा वे नित्यप्रति प्रातः काल भगवान् श्री जगन्नाथ का दर्शन करते थे।

सार्वभौम का प्रभु को एकमास का निमन्त्रण—

**प्रभु-पाश आसि' सार्वभौम एक दिन।**
**जोड़हात करि' किछु कैल निवेदन॥१८६॥**
**''एबे सब वैष्णव गौड़देशे चलि' गेल।**
**एबे प्रभुर निमन्त्रणे अवसर हैल॥१८७॥**

**१८६-१८७। प०अ०**—एक दिन श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु के पास आकर हाथ जोड़कर कुछ निवेदन किया—हे प्रभु! अब तो सब वैष्णव बङ्गाल लौट गये है तथा अब आप को निमन्त्रण करने का अवसर आ गया है।

'एक मास के निमन्त्रण' को सुनकर प्रभु की आपत्ति; एवं संन्यास धर्म के विरुद्ध कहकर भिक्षा के समय को कम करना—

**एबे मोर घरे भिक्षा करह 'मास' भरि'।''**
**प्रभु कहे,—''धर्म नहे, करिते ना पारि॥''१८८॥**

**१८८। प० अनु०**—अब आप एक मास तक नित्यप्रति मेरे घर पर भिक्षा कीजिए, श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'ऐसा करना धर्म-सङ्गत नहीं है, इसलिए मैं ऐसा नहीं कर सकता।'

सार्वभौम भट्टाचार्य के द्वारा भिक्षा के समय का वर्द्धन और प्रभु के द्वारा उसे कम करने की चेष्टा के चलते केवल एकदिन भिक्षा में ही प्रभु की सम्मति—

**सार्वभौम कहे,—''भिक्षा करह 'विंश' दिन।''**
**प्रभु कहे,—''ए नहे यतिधर्म-चिह्न॥''१८९॥**
**सार्वभौम कहे पुनः,—''दिन 'पञ्चदश'।**
**प्रभु कहे,—''तोमार भिक्षा 'एक' दिवस॥''१९०॥**

**१८९-१९०। प० अनु०**—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा—'अच्छा तो फिर बीस दिन तक भिक्षा स्वीकार कीजिए।' श्रीमन्महाप्रभु ने उत्तर में कहा—'ऐसा करना संन्यास धर्म का लक्षण नहीं है।' पुनः सार्वभौम ने कहा—'तो कम-से-कम पन्द्रह दिन तो भिक्षा स्वीकार कर लिजिए। यह सुनकर प्रभु ने कहा—'तुम्हारे घर एक दिन भिक्षा ग्रहण करूँगा।'

बहुत दैन्य-विनय से भट्ट की दस दिन करने की चेष्टा—

**तबे सार्वभौम प्रभुर चरण धरिया।**
**'दशदिन भिक्षा कर' कहे विनति करिया॥१९१॥**

**१९१। प० अनु०—**तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य श्रीमन्महाप्रभु के चरण पकड़कर विनती करते हुए कहने लगे—'अन्ततः दस दिन भिक्षा ग्रहण करो'।

अन्त में पाँच दिन की भिक्षा-स्वीकार—

**प्रभु क्रमे-क्रमे पाँच दिन घाटाइल।**
**पाँच-दिन ताँर भिक्षा-निमन्त्रण निल॥१९२॥**

**१९२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने क्रमशः पाँच दिन कम किये तथा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर पाँच दिन भिक्षा का निमन्त्रण स्वीकार किया।

### अनुभाष्य

१८८-१९२। भक्तवत्सल होने पर भी प्रभु का [ सन्यास ] आश्रम धर्मपालन [ करना ही है ]।

दस सन्यासियों के निमन्त्रण की व्यवस्था—

**तबे सार्वभौम करे आर निवेदन।**
**''तोमार सङ्गे सन्यासी आछे दशजन॥१९३॥**

परमानन्द-पुरी को पाँच दिन भिक्षा-दान—

**पुरी-गोसाञिर भिक्षा पाँचदिन मोर घरे।**
**पूर्वे आमि कहियाछों तोमार गोचरे॥१९४॥**

**१९३-१९४। प० अनु०—**तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने एक अन्य निवेदन करते हुए कहा कि आपके साथ दस सन्यासी है। उनमें से श्री परमानन्द पुरी गोस्वामी मेरे घर पर पाँच दिन भिक्षा ग्रहण करेंगे, उसके विषय में मैंने आपको पहले भी अवगत कराया है।

### अनुभाष्य

१९३। दस सन्यासी,—१) परमानन्द पुरी, २) दामोदर स्वरूप, ३) ब्रह्मानन्द पुरी, ४) ब्रह्मानन्द भारती, ५) विष्णुपुरी, ६) केशव-पुरी, ७) कृष्णानन्द पुरी, ८) नृसिंह-तीर्थ, ९) सुखानन्द-पुरी, १०) सत्यानन्द-भारती।

स्वरूप को कभी तो प्रभु के साथ, कभी अकेले चार दिन भिक्षा-प्रदान स्वीकार—

**दामोदर-स्वरूप,—एइ बान्धव आमार।**
**कभु तोमार सङ्गे जाबे, कभु एकेश्वर॥१९५॥**

**१९५। प० अनु०—**श्रीस्वरूप दामोदर मेरे बान्धव हैं, ये कभी तो आपके साथ तथा कभी अकेले ही मेरे घर पर भिक्षा के लिये जायेंगे।

बाकी आठ सन्यासियों को
सोलह दिन भिक्षा-प्रदान—

**आर अष्ट सन्यासीर भिक्षा दुइ दुइ दिवसे।**
**एक एकदिन, एक एक जने पूर्ण हैल मासे॥१९६॥**

**१९६। प० अनु०—**अन्य आठ सन्यासी दो-दो दिन मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करेंगे, एक-एक व्यक्ति को एक-एक दिन भिक्षा कराने से पूरा मास ही हो जायेगा।

### अनुभाष्य

१९६। आर अष्ट संन्यासी (और आठ सन्यासी),—परमानन्द पुरी और दामोदर स्वरूप के अतिरिक्त बाकी दूसरे आठ लोग। पूर्ण हैल मासे (मास पूर्ण हो गया)—श्रीमहाप्रभु के ५ दिन, परमानन्दपुरी के ५ दिन, दामोदर स्वरूप के ४ दिन, ८ जन सन्यासियों के १६ दिन—कुल ३० दिन होने से एक मास पूर्ण हो गया।

दस सन्यासियों को एक साथ भिक्षा कराने से
यथायोग्य मर्यादा के संरक्षण में असम्भावना-हेतु
अपराध की आशङ्का—

**बहुत सन्यासी यदि आइसे एक ठाञि।**
**सम्मान करिते नारि, अपराध पाइ॥१९७॥**

**१९७। प० अनु०—**बहुत से सन्यासी यदि एक ही साथ आ जायेंगे, तो मैं उनका सम्मान ठीक से नहीं कर पाऊँगा तथा अपराध कर बैठूँगा।

कभी तो अकेले, और कभी स्वरूप के साथ निमन्त्रण—

**तुमिह निज-छाये आसिबे मोर घरे।**
**कभु सङ्गे आनिबे स्वरूप-दामोदरे॥''१९८॥**

**१९८। प० अनु०—**आप भी अपनी छाया के साथ अर्थात् अकेले ही मेरे घर पर आना तथा कभी स्वरूप दामोदर को अपने साथ लाना।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९८। निज-छाये,—अपनी छाया लेकर अर्थात् अकेले।

प्रभु के अनुमोदन (स्वीकारोक्ति) से प्रभु को निमन्त्रण—

**प्रभुर इङ्गित पाञा आनन्दित मन।**
**सेइ दिन महाप्रभुर कैल निमन्त्रण॥१९९॥**

**१९९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के इशारे को देखकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य का मन आनन्दित हो गया, उस दिन उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण किया।

भट्ट की पत्नी षाठी की माता—प्रभु की भक्त—

**'षाठीर माता' नाम, भट्टाचार्येर गृहिणी।**
**प्रभुर महाभक्त तिंहो, स्नेहेते जननी॥२००॥**

**२००। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य की पत्नी 'षाठी की माता' के नाम से प्रसिद्ध थी, वे भी श्रीमन्महाप्रभु की परम भक्त तथा स्नेह में उनकी माता के समान ही थी।

षाठी की माता का रन्धन—

**घरे आसि' भट्टाचार्य ताँरे आज्ञा दिल।**
**आनन्दे षाठीर माता पाक चड़ाइल॥२०१॥**

**२०१। प० अनु०—**घर पहुँचकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें रन्धन करने की आज्ञा दी। षाठी की माता ने आनन्दपूर्वक रन्धन करना प्रारम्भ कर दिया।

शाक-फल आदि अनेक नैवेद्य का संग्रह—

**भट्टाचार्येर गृहे सब द्रव्य आछे भरि'।**
**जेबा शाकफलादिक, आनिल आहरि'॥२०२॥**

**२०२। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के घर में सभी द्रव्य परिपूर्ण मात्रा में उपलब्ध थे। समयानुसार साग, फल आदि को वे स्वयं संग्रह करके ले आये।

**अनुभाष्य**

२०२। भरि'—पूर्ण; आहरि'—जुगाड़ करके।

स्वयं भट्ट के द्वारा पत्नी की रन्धन-कार्य में सहायता—

**आपनि भट्टाचार्य करे पाकेर सब कर्म।**
**षाठीर माता—विचक्षणा, जाने पाकेर कर्म॥२०३॥**

**२०३। प० अनु०—**श्री सार्वभौम भट्टाचार्य स्वयं रन्धन का सब कार्य करने लगे। षाठी की माता भी रन्धन के कार्य को करने में विचक्षण (अनुभवी) थी।

रन्धन-भोगगृह का वर्णन—

**पाकशालार दक्षिणे—दुइ भोगालय।**
**एक घरे शालग्रामेर भोग-सेवा हय॥२०४॥**
**आर घर महाप्रभुर भिक्षार लागिया।**
**निभृते करियाछे भट्ट नूतन करिया॥२०५॥**
**बाह्ये एक द्वार तार, प्रभु प्रवेशिते।**
**पाकशालार एक द्वार अन्न परिवेशिते॥२०६॥**

**२०४-२०६। प० अनु०—**रसोई घर के दक्षिण की ओर भोग लगाने के लिये दो कमरे थे। उनमें से एक कमरे में शालग्राम भगवान् की भोग-सेवा होती थी। श्री सार्वभौम भट्टाचार्य ने दूसरा कमरा श्रीमन्महाप्रभु की भिक्षा के लिये एकान्त में नया बनवाया था। उस कमरे को ऐसे बनाया गया था कि उसका एक द्वार तो श्रीमन्महाप्रभु के प्रवेश करने के लिये बाहर की ओर था तथा उसका

एक अन्य द्वार रसोई घर से जुड़ा हुआ था जहाँ से भोजन परिवेशन किया जा सकता था।

विचित्र नैवेद्य-वर्णन—

**बत्तिशा-आठिया कलार आङ्गटिया पाते।**
**तिन-मान तण्डुलेर उभारिल भाते॥२०७॥**
**पीत-सुगन्धि-घृते अन्न सिक्त कैल।**
**चारिदिके पाते घृत बहिया चलिल॥२०८॥**
**केयापत्र-कलाखोला-डोंगा सारि-सारि।**
**चारिदिके धरियाछे नाना व्यञ्जन भरि'॥२०९॥**
**दशप्रकार शाक, निम्ब-तिक्त-सुख्त-झोल।**
**मरिचेर झाल, छानाबड़ा, बड़ा, घोल॥२१०॥**
**दुग्धतुम्बी, दुग्ध कुष्माण्ड, बेसर, लाफरा।**
**मोचाघण्ट, मोचाभाजा, विविध शाकरा॥२११॥**
**वृद्ध कुष्माण्डबड़ीर व्यञ्जन अपार।**
**फुलबड़ी-फल-मूल विविध प्रकार॥२१२॥**
**नव-निम्बपत्र-सह भृष्ट-वार्त्ताकी।**
**फुलबड़ी, पटोल-भाजा, कुष्माण्ड मान-चाकी॥२१३॥**
**भृष्ट-माष-मुद्ग-सूप अमृत निन्दय।**
**मधुराम्ल, बड़ाम्लादि अम्ल पाँच छय॥२१४॥**
**मुदगबड़ा, माषबड़ा, कलाबड़ा, मिष्ट।**
**क्षीरपुलि, नारिकेलपुली, आर जत पिष्ट॥२१५॥**
**काँजिबड़ा, दुग्ध-चिड़ा, दुग्ध-लकलकी।**
**आर जत पिठा कैल, कहिते ना शकि॥२१६॥**
**घृत-सिक्त परमान्न, मृतकुण्डिका भरि'।**
**चाँपाकला-घनदुग्ध-आम्र ताहा धरि'॥२१७॥**
**रसाला-मथित दधि, सन्देश-अपार।**
**गौड़े-उत्कले जत भक्ष्येर प्रकार॥२१८॥**

**२०७-२१८। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने बत्तिशा-आठिया केले के पत्ते पर तीन मान (बारह किलो) चावल को परोसा। फिर उन्होंने इतना अधिक चावलों पर पीला सुगन्धित घी डाला कि घी पत्ते में चारों ओर से बहने लगा। उन्होंने उस पत्ते के चारों ओर पास-पास में रखे ढाक और केले के पत्तों से बने दोनों में नाना प्रकार के व्यञ्जनों को भरकर रख दिया। जिनमें दस प्रकार के साग, नीम के पत्ते, करेले तथा कच्चे केले आदि से बना शुकते का झोल, मिर्च का झोल, छैने का बड़ा तथा अन्यान्य वस्तुओं के बने बड़े तथा मठ्ठा आदि था। उन दोनों में दुग्धतुम्बी (लौकी की खीर), दुग्ध कुष्माण्ड (हरे पेठे की खीर), बेसर (सरसों डालकर बनायी गयी सब्जी), लाफड़ा (मिली हुयी सब्जियाँ), मोचाघण्ट (केले के फूलों की सब्जी), मोचा-भाजा, अनेक प्रकार के शाकरा (मीठा डालकर बनायी गयी सब्जियाँ), वृद्धकुष्माण्ड बड़ी से बने अनेक व्यञ्जन, फुलबड़ी, फल तथा अनेक प्रकार के कन्द, कोमल नीम की पत्तियों के साथ बेंगन का भाजा, फूलबड़ी, परमल की भाजी, कुष्माण्ड (कच्चे पेठे की सब्जी) मान-चाकी (जंगली अरबी की सब्जी), अमृत को भी निन्दित करने वाला भृष्ट-माष-मुद्ग (भुनी हुई उड़द और मूँग की दाल) का सूप, मीठी चटनी, पाँच छह प्रकार की खट्टी चटनी आदि, मुद्गबड़ा (मूँग की दाल का मीठा बड़ा), माषबड़ा (उड़द की दाल का मीठा बड़ा) कलाबड़ा (पके केले का मीठा बड़ा), क्षीर पुलि (पनीर के बड़े की खीर), नारियल की पुली (नारियल का पीठा) और जितने भी प्रकार के मीठे व्यञ्जन हो सकते हैं, उन सबको परोसा। काँजिबड़ा (काँजी में बड़े डालकर मीठी शिकंजी), दूध में भिगोकर बनाया गया चिड़ा, लौकी की खीर तथा अन्यान्य जितने प्रकार के मीठे व्यञ्जन बनाये, उनका वर्णन करने में भी मैं असमर्थ हूँ। घी डालकर बनायी गयी खीर को मिट्टी के पात्र में भरकर उसमें चाँपाकला (एक प्रकार का केला), घने दूध तथा आम को मिला दिया। अत्यधिक स्वादिष्ट लस्सी तथा भाँति-भाँति की सन्देश नामक मिठाई तथा बङ्गाल और उड़ीसा में खाये जाने

वाले अनेक खाद्य पदार्थों को बनाया।

**अनुभाष्य**

२०७। उभारिल,—टाल दिया।

२११। दुग्धतुम्भी,—दूध में पकी हुई लौकी; बेसर—सरसों को पीसकर बनायी गयी सब्जी, उड़ीसा में उसे 'बेसर' कहते हैं; शाकरा,—चीनी डालकर बनायी गयी सब्जी।

२१३। भृष्ट-वार्त्ताकी,—बैंगन-भाजा; कुष्माण्ड-मानचाकी,—छोटे-छोटे टुकड़े करके पैठा और मान-कोचु की सब्जी।

२१४। मधुराम्ल,—चटनी अथवा मीठा खट्टा अथवा खट्ाई; बड़ाम्ल,—दाल की बड़ी के साथ बनाई गयी चटनी; भृष्ट-माष-मुद्ग-सूप,—भूनी उड़द की दाल और भूनी मूँग की दाल।

२१५। माष-बड़ा,—उड़द की दाल का बड़ा।

२१६। दुग्ध-लक्लकी,—चुषी-पुलि।

आसन और नैवेद्य-सज्जा—

**श्रद्धा करि' भट्टाचार्य सब कराइल।**
**शुभ्र-पीठोपरि सूक्ष्म वसन पातिल॥२१९॥**
**दुई-पाशे सुगन्धि शीतल जल-झारी।**
**अन्न-व्यञ्जनोपरि दिल तुलसी-मञ्जरी॥२२०॥**

**२१९-२२०। प० अनु०—**इस प्रकार अत्यधिक श्रद्धापूर्वक श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने सब प्रकार के व्यञ्जनों को प्रस्तुत कराया। उन्होंने सफेद लकड़ी के आसन पर एक महीन वस्त्र बिछा दिया। उन्होंने आसन के दोनों ओर सुगन्धित शीतल जल से भरी झारियाँ रख दी। उन्होंने अन्न-व्यञ्जनों पर तुलसी मञ्जरी रख दी।

**अनुभाष्य**

२१९। **शुभ्रपीठ,—**सफेद पीड़ी के ऊपर एक सूक्ष्म-वस्त्र के द्वारा आसन दिया गया।

**अमृत-गुटिका, पिठा-पाना आनाइल।**
**जगन्नाथ-प्रसाद सब पृथक् धरिल॥२२१॥**

**२२१। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीजगन्नाथ मन्दिर से अमृत-गुटिका तथा पीठा-पाना आदि मँगवाया, किन्तु उन्होंने जगन्नाथ जी के प्रसाद को अलग से रख दिया।

**अनुभाष्य**

२०७-२२१। ग्रन्थकार श्रीमद् कविराज गोस्वामी भोग के सुष्ठु वर्णन के द्वारा अपने अति उत्कृष्ट रन्धन (रसोई) और परिवेशन में निपुणता को प्रकाशित कर रहे हैं। मध्य तृतीय परिच्छेद ४४-४५ संख्या द्रष्टव्य।

**अनुभाष्य**

२२१। जगन्नाथ-प्रसाद के साथ अपने घर पर बनाये गये अप्रसादी अथवा अनर्पित-नैवेद्य को मिलाकर एक नहीं कर दिया, उसके प्रति सावधान थे; दोनों मिल नहीं जाये, इस प्रकार उन्हें पृथक-पृथक रखा।

मध्याह्न-स्नान के बाद अकेले प्रभु का आगमन—

**हेनकाले महाप्रभु मध्याह्न करिया।**
**एकले आइल ताँर हृदय जानिया॥२२२॥**

**२२२। प० अनु०—**इतने में ही श्रीमन्महाप्रभु दोपहर का स्नान करने के बाद श्री सार्वभौम भट्टाचार्य की हृदय की अभिलाषा के अनुसार अकेले ही उनके घर पर आये।

पाद-प्रक्षालन पूर्वक (चरण धुलाकर) भट्ट का प्रभु को गृह में लाना—

**भट्टाचार्य कैल तबे पाद-प्रक्षालन।**
**घरेर भितरे गेला करिते भोजन॥२२३॥**

**२२३। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणकमलों को धोया तथा तब श्रीमन्महाप्रभु भोजन करने के लिये कमरे के अन्दर गये।

नैवेद्य को देखकर प्रभु का
विस्मय और भोग की प्रशंसा—

**अन्नादि देखिया प्रभु विस्मित हञा।**
**भट्टाचार्ये कहे किछु भङ्गि करिया॥२२४॥**
**"अलौकिक एइ सब अन्न-व्यञ्जन।**
**दुइ प्रहर भितरे कैछे हैल रन्धन??२२५॥**
**शत चुलाय शत जन पाक यदि करे।**
**तबु शीघ्र एत द्रव्य रान्धिते ना पारे॥२२६॥**

**२२४-२२६। प० अनु०—**अन्न-व्यञ्जनादि को देखकर श्रीमन्महाप्रभु बहुत विस्मित हुए तथा उन्होंने भङ्गीपूर्वक श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य से कहा—ये सब अन्न-व्यञ्जन तो बहुत अलौकिक है। दो प्रहर (छह घंटे) के समय में इतना रन्धन कैसे हो गया। सौ चूल्हों पर सौ व्यक्ति भी यदि रन्धन करे, तब भी इतनी जल्दी इतने सारे द्रव्यों का रन्धन नहीं कर सकते।

तुलसी-मञ्जरी के दर्शन से कृष्ण के भोग का अनुमान—

**कृष्णेर भोग लागाञाछे,—अनुमान करि।**
**उपरे देखिये जाते तुलसी-मञ्जरी॥२२७॥**
**भाग्यवान् तुमि, सफल तोमार उद्योग।**
**राधाकृष्णे लागाञाछ एतादृश भोग॥२२८॥**
**अन्नेर सौरभ्य, वर्ण—अति मनोरम।**
**राधाकृष्ण साक्षात् इँहा करयाछेन भोजन॥२२९॥**

**२२७-२२९। प० अनु०—**सभी व्यञ्जनों पर तुलसी मञ्जरी को देखकर मैं अनुमान लगा रहा हूँ कि आपने श्रीकृष्ण को इनका भोग लगाया है। आप बहुत भाग्यवान् है, आपके द्वारा किया गया परिश्रम सफल है, क्योकि आपने श्रीराधाकृष्ण को ऐसा भोग लगाया है। अन्न की सुगन्धि, वर्ण आदि अत्यधिक मनोरम है। श्रीराधाकृष्ण ने साक्षात् रूप से इसका भोजन किया है।

### अनुभाष्य

२२९। **सौरभ्य,—**सुघ्राण (बहुत उत्कृष्ट सुगन्धि); **वर्ण—शुभ्र** (सफेद) वर्ण।

भोग की प्रशंसा के बाद प्रभु
द्वारा अपने भाग्य की प्रशंसा—

**तोमार बहुत भाग्य कत प्रशंसिब।**
**आमि—भाग्यवान्, इहार अवशेष पाब॥२३०॥**

**२३०। प० अनु०—**आपका भाग्य बहुत अच्छा है, उसकी कितनी प्रशंसा करूँ, मैं भी भाग्यवान् हूँ जो कि इसका अवशेष प्राप्त करूँगा।

कृष्ण के आसन को उठाकर
अलग पात्र में प्रसाद की प्रार्थना—

**कृष्णेर आसन-पीठ राख उठाञा।**
**मोरे प्रसाद देह' भिन्न पात्र करिया॥"२३१॥**

**२३१। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के आसन और पीढ़ी (चौकी) को उठाकर दूसरी ओर रख दो तथा मुझे अलग पात्र में प्रसाद प्रदान करो।

भट्ट के द्वारा प्रभु की कृपा के प्रभाव का वर्णन—

**भट्टाचार्य बले,—"प्रभु, ना करह विस्मय।**
**जेइ खाबे, ताँर शक्तये भोग सिद्ध हय॥२३२॥**
**उद्योग ना छिल मोर गृहिणीर रन्धने।**
**जाँर शक्तये भोग सिद्ध, सेइ ताहा जाने॥२३३॥**

**२३२-२३३। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा—हे प्रभु, आप विस्मित मत होइएँ, जो भी भोजन करता है, उसी की शक्ति से ही भोग बनना सिद्ध (सम्भवपर) होता है। मेरी पत्नी ने रन्धन करने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया, जिनकी कृपा से भोग बना है, वही इसे जानता है।

प्रभु को भोग का आसन अङ्गीकार करने के
लिये अनुरोध, प्रभु के द्वारा कृष्ण के
आसन के प्रति मर्यादा-बुद्धि के कारण
उसे स्वीकार करने में असम्मति—

**एइत आसने बसि' करह भोजन।"**
**प्रभु कहे,—"पूज्य एइ कृष्णेर आसन॥"२३४॥**

**२३४। प० अनु०—**आप इसी आसन पर ही बैठकर भोजन कीजिए। श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—श्रीकृष्ण का यह आसन पूजनीय है।

कृष्ण के द्वारा भुक्त (ग्रहण किया गया)
अन्न और आसन, दोनों ही प्रसाद—

**भट्ट कहे,—"अन्न, पीठ,—समान प्रसाद।**
**अन्न खाबे, पीठे बसिते काँहा अपराध??"२३५॥**

**२३५। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा—अन्न प्रसाद तथा आसन प्रसाद—दोनों ही तो प्रसाद है। जब अन्न खाने में कोई अपराध नहीं है तो फिर आसन पर बैठने में कैसा अपराध है?

### अनुभाष्य

२३५। अन्न और पीठ अथवा पिंड़ि—दोनों ही कृष्ण के द्वारा भुक्त निर्माल्य है; भोग के अन्न को 'भगवान् का उच्छिष्ट' जानकर भोजन करके सम्मान एवं भगवान् के आसन के कार्य में लगा हुआ जानकर पीठ को भी उनका अवशेष 'प्रसाद' समझ कर ग्रहण करने से अपराध किस प्रकार हो सकता है?

प्रभु के द्वारा भट्ट के सुसिद्धान्त की
प्रंशसा और (आसन) अङ्गीकार—

**प्रभु कहे,—"भाल कैले, शास्त्र-आज्ञा हय।**
**कृष्णेर सकल शेष भृत्य आस्वादय॥२३६॥**

**२३६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—आपने बहुत अच्छा ही विचार किया है। शास्त्र की भी आज्ञा है कि कृष्ण के द्वारा छोड़ी गयी सभी वस्तुओं का ही दास आस्वादन करता है।

भगवान् के द्वारा पाये गये प्रसाद को स्वीकार करने से ही दुष्पार माया से जय—
श्रीमद्भागवत (११/६/४६) में—

**त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः।**
**उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि॥२३७॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

२३७। आपको माला, गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार इत्यादि जो कुछ अर्पित हुआ है, उससे विभूषित होकर आपके दास स्वरूप हम आपके उच्छिष्ट का भोजन करते-करते ही आपकी माया को जय करने में निश्चय ही समर्थ होंगे।

### अनुभाष्य

२३७। भगवान् और उद्धव के कथोपकथन अथवा उद्धव गीता के आरम्भ होने से पूर्व भगवान् की इच्छा से द्वारका में महाउत्पात आरम्भ होने पर श्रीकृष्ण के द्वारा प्रपञ्च में प्रकट-लीला का संगोपन एवं अप्रकट-लीला में प्रवेश करने की इच्छा को जानकर प्रियतम सेवक उद्धव अत्यधिक प्रीतिपूर्वक कृष्ण का स्तव कर रहे हैं— त्वयोपभुक्त-स्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः (भवदुपभुक्त-माला-चन्दनवस्त्रभूषणैः) चर्चिताः अलंकृताः) उच्छिष्ट-भोजिनः (उच्छिष्टं प्रसादान्नं भोक्तुं शीलं येषां ते) दासाः वयं (किङ्कराः) हि (निश्चयार्थे) तव मायां (दुरत्ययां प्रकृतिं) जयेम (जेतुं शक्नुयाम्)।

प्रभु की प्रचुर अन्न को ग्रहण करने में आपत्ति;
भट्ट का अनुयोग (शिकायत)—

**तथापि एतेक अन्न खाउन ना जाय।"**
**भट्ट कहे,—"जानि, खाओ जतेक जुयाय॥"२३८॥**
**नीलाचले भोजन तुमि कर बायान्न बार।**
**एक एक भोगेर अन्न शत शत भार॥२३९॥**

**२३८-२३९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'तब भी इतना अन्न थोड़े ही न खाया जा सकता है।' श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा—जानता हूँ परन्तु आप जितना खा सके, उतना तो खाइये। नीलाचल जगन्नाथ मन्दिर में आप बावन बार भोजन करते है तथा एक बार का भोग ही इससे सौ गुणा अधिक होता है।

प्रभु का द्वारका, मथुरा और व्रजलीला
में भोजन का प्रकार—

**द्वारकाते षोल-सहस्र महिषी मन्दिरे।**
**अष्टादश माता, आर यादवेर घरे॥२४०॥**
**व्रजे ज्येठा, खुड़ा, मामा, पिसादि गोपगण।**
**सखावृन्द सबार घरे द्विसन्ध्या-भोजन॥२४१॥**

**२४०-२४१। प॰ अनु॰—**द्वारका में सोलह हजार महिषियों के घर में, अठारह माताओं तथा यादवों के घर में एवं व्रज में ताऊ, चाचा, मामा, फूफा आदि गोपों और सभी सखाओं के घर पर दोनों सन्ध्याओं में भोजन करते हो।

**अनुभाष्य**

२४०। **अष्टादश माता,**—देवकी, रोहिणी इत्यादि।

२४१। **व्रजे ज्येठा (ताया)**, (श्रीरूप प्रभु कृत श्रीकृष्णगणोद्देश दीपिका में)—"उपनन्दोऽभिनन्दश्च पितृव्यौ पूर्वजौ पितुः" अर्थात् 'उपनन्द' और 'अभिनन्द'—ये दोनों कृष्ण के ताया जी हैं।

**खुड़ा (चाचा)**,—(श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिका में)—'पितृव्यौ तु कनीयांसौ स्यातां सनन्द-नन्दनौ" अर्थात् 'सनन्द' और 'नन्दन' अथवा 'सुनन्द' और 'पाण्डव'—ये कृष्ण के चाचा हैं।

**मामा,**—उसी कृष्णगणोद्देशदीपिका में)—''यशोधर-यशोदेव-सुदेवाद्यस्तु मातुलाः'' अर्थात् 'यशोधर', 'यशोदेव एवं 'सुदेव' आदि कृष्ण के मामा हैं।

**फुफा,**—(उसी कृष्णगणोद्देशदीपिका में)—''महानीलः सुनीलश्च रमणावेतयोः क्रमात'' अर्थात् 'महानील' और 'सुनील'—कृष्ण के ये दो फुफा हैं, वे 'सानन्दा' और 'नन्दिनी'-नामक दो बुआओं के पति हैं।

**सखावृन्द,**—(उसी कृष्णगणोद्देशदीपिका के परिशिष्ट में)—''विशाल-वृष भौजस्वि-देवप्रस्थ-वरुथपाः। मन्दारः कुसुमापीड़गणिबन्धकन्धमाः॥ मन्दरश्चन्दनः कुन्दः कलिन्दकुलिकादयः। 'कनिष्ठ-कल्पाः' सेवायां सखायो विपुलाग्रहाः॥'' ''श्रीदामा दामा सुदामा वसुदामा तथैव च। किङ्किनी (?) भद्रसेनांशु स्तोककृष्णाः विलासिनः। पुण्डरीकविट-ङ्काक्ष-कलविङ्क-प्रियङ्कराः। एते 'प्रियसख्यः, शान्ताः कृष्णप्राण-समा मताः। ''सुबलार्ज्जुन-गन्धर्व-वसन्तोज्ज्वल-कोकिलाः। सनन्दन-विदग्धाद्याः 'प्रियनर्मसखाः' मताः।''

उसके परिमाण की तुलना में भट्ट के द्वारा
अर्पित-अन्न—अति सामान्य अर्थात् बहुत कम—

**गोवर्धन-यज्ञे अन्न खाइला राशि राशि।**
**तार लेखाय एइ अन्न नहे एक ग्रासी॥२४२॥**

**२४२। प॰ अनु॰—**गोवर्धन के यज्ञ (अन्नकूट) में भी आपने कितनी ही तरह का भोजन किया था, उसकी तुलना में यह अन्न तो एक ग्रास भी नहीं है।

**अनुभाष्य**

२४२। तार लेखाय,—उनकी तुलना अथवा अनुपात में।

भट्ट का दैन्य—

**तुमि त' ईश्वर, मुञि—क्षुद्र जीव छार।**
**एक-ग्रास माधुकरी करह अङ्गीकार॥२४३॥**

**२४३। प॰ अनु॰—**आप तो ईश्वर हैं और मैं एक क्षुद्र अधम जीव हूँ। कृपया मेरे द्वारा प्रदत्त इस एक ग्रास माधुकरी को स्वीकार कीजिए।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**२४३।** माधुकरी,—मधुकर-वृत्ति द्वारा प्राप्त ग्रास।

भट्ट के वचन सुनकर प्रभु द्वारा प्रसाद-सेवन—

**एत शुनि' हासि' प्रभु बसिला भोजने।**
**जगन्नाथेर प्रसाद भट्ट देन हर्ष-मने॥२४४॥**

**२४४। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के मुख से ऐसा सुनकर श्रीमन्महाप्रभु मुस्कराते हुए भोजन करने के लिये बैठे। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य आनन्दपूर्वक उन्हें श्रीजगन्नाथ का प्रसाद भी लाकर देने लगे।

भट्ट का जामाता (जमाई)—षाठी का पति
प्रभु निन्दुक 'अमोघ'—

**हेनकाले 'अमोघ',—भट्टाचार्येर जामाता।**
**कुलीन, निन्दक तिंहो, षाठी-कन्यार भर्ता॥२४५॥**

**२४५। प० अनु०—**इसी समय श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य की कन्या षाठी का पति अमोघ आ गया। यद्यपि वह कुलीन अर्थात् उच्च कुल का ब्राह्मण था, तथापि वह था निन्दुक ही।

लाठी हाथ में लिये भट्ट को देखकर अमोघ का भय—

**भोजन देखिते चाहे, आसिते ना पारे।**
**लाठी-हाते भट्टाचार्य आछेन दुयारे॥२४६॥**

**२४६। प० अनु०—**यद्यपि वह क्या-क्या भोजन बना है, उसे देखना चाहता था किन्तु आकर देख नहीं पा रहा था, कारण श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य अपने हाथ में लाठी लेकर द्वार पर बैठे हुए थे।

भट्ट के इधर-उधर ध्यान बटने पर प्रभु के पात्र में बहुत अन्न को देखकर प्रभु की निन्दा—

**तिंहो यदि प्रसाद दिते हैला आन-मन।**
**अमोघ आसि' अन्न देखि' करये निन्दन॥२४७॥**
**''एइ अन्ने तृप्त हय दश बार जन।**
**एकेला सन्यासी करे एतेक भक्षण!!''२४८॥**

**२४७-२४८। प० अनु०—**जैसे ही श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य श्रीमन्महाप्रभु को प्रसाद देने के लिये गये तथा उनका मन उस ओर लग गया, उसी समय अमोघ ने आकर भोजन को देख लिया तथा निन्दा करने लगा। इतने भोजन से तो दस-बारह व्यक्ति तृप्त हो सकते हैं और यहाँ केवल एक ही सन्यासी इतना अधिक भोजन कर रहा है।

भट्टाचार्य के मुड़कर देखते ही अमोघ का दौड़ लगाना—

**शुनि' भट्टाचार्य तबे उलटि' चाहिल।**
**ताँर अवधान देखि' अमोघ पलाइल॥२४९॥**

**२४९। प० अनु०—**अमोघ के मुख से ऐसा सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने उसे टेढ़ी नजर से देखा। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के द्वारा उसकी बात की ओर ध्यान देने पर अमोघ वहाँ से भाग गया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**२४९।** अवधान—मनोयोग।

लाठी हाथ में लेकर भट्ट का उसके पीछे दौड़ना—

**भट्टाचार्य लाठि लञा मारिते धाइल।**
**पलाइल अमोघ, तार लाग ना पाइल॥२५०॥**

**२५०। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य लाठी लेकर उसे मारने के लिये दौड़े, किन्तु अमोघ भाग गया, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य उसे पकड़ नहीं पाये।

प्रभु निन्दक अमोघ की भट्ट के द्वारा तीव्र भर्त्सना (निन्दा) और शाप—

**तबे गलि, शाप दिते भट्टाचार्य आइला।**
**निन्दा शुनि' महाप्रभु हासिते लागिला॥२५१॥**

**२५१। प० अनु०—**तब श्री सार्वभौम भट्टाचार्य उसे गाली निकालते हुए तथा शाप देते हुए लौट आये। श्रीसार्वभौम के मुख से अमोघ की निन्दा को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु हँसने लगे।

प्रभु की निन्दा के श्रवण से भट्ट की पत्नी में क्षोभ—

**शुनि' षाठीर माता शिरे-बुके घात मारे।**
**'षाठी राण्डी हउक'—इहा बले बारे बारे॥२५२॥**

**२५२। प० अनु०—**अमोघ के विषय में सुनकर षाठी की माता अपने सिर तथा वक्ष:स्थल पर

आघात करने लगी तथा वे बार-बार यही कह रही थी कि 'षाठी विधवा हो जाएँ।'

प्रभु के द्वारा दोनों को सान्त्वना प्रदान करने के बाद प्रसाद-सेवन—

**दुँहार दुःख देखि' प्रभु दुँहा प्रबोधिया।**
**दुहाँर इच्छाते भोजन कैल तुष्ट हञा॥२५३॥**

**२५३। प॰ अनु॰—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी पत्नी को दुःखी होते देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने दोनों की प्रसन्नता हेतु दोनों की इच्छा से सन्तुष्ट होकर भोजन ग्रहण किया।

प्रभु द्वारा आचमन—

**आचमन कराञा भट्ट दिल मुखवास।**
**तुलसी-मञ्जरी, लवङ्ग, एलाचि, रसवास॥२५४॥**

**२५४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु को आचमन कराने के बाद श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें तुलसी मञ्जरी, लौंग, इलायची, कबाबचीनी आदि मुख-वास प्रदान किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२५४। एलाचि रसवास,—रस और सुगन्धि युक्त इलाएची।

**सर्वाङ्गे लेपिल प्रभुर सुगन्धि चन्दन।**
**दण्डवत हञा बले सदैन्य वचन॥२५५॥**

**२५५। प॰ अनु॰—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु के सर्वाङ्गों में चन्दन का लेप किया तथा दण्ड्वत प्रणाम करके अत्यधिक दीनतापूर्वक कहने लगे—

अमोघ द्वारा की गयी निन्दा के लिये क्षमा-प्रार्थना—

**निन्दा कराइते तोमा आनिनु निज-घरे।**
**एइ अपराध, प्रभु, क्षमा कर मोरे॥२५६॥**

**२५६। प॰ अनु॰—**मैंने आपकी निन्दा करवाने के लिये आपको अपने घर पर बुलाया था। हे प्रभु! आप मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिए।

अदोषदर्शी प्रभु—

**प्रभु कहे,—"निन्दा नहे, 'सहज' कहिल।**
**इहाते तोमार तार कि अपराध हैल??"२५७॥**

**२५७। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—अमोघ ने निन्दा नहीं, बल्कि सहज बात ही कही है। इसमें तुम्हारा या फिर उसका क्या अपराध हुआ?

प्रभु के पीछे-पीछे भट्ट का चलना (अनुव्रज्या)—

**एत बलि' महाप्रभु चलिला भवने।**
**भट्टाचार्य ताँर घरे गेला ताँर सने॥२५८॥**

**२५८। प॰ अनु॰—**इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु अपने घर की ओर चल दिये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य भी उनके साथ उनके घर तक गये।

भट्ट का बहुत दैन्य और शरणागति—

**प्रभु-पदे पड़ि' बहु आत्मनिन्दा कैल।**
**ताँरे शान्त करि' प्रभु घरे पाठाइल॥२५९॥**

**२५९। प॰ अनु॰—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में पड़कर अपनी बहुत ही निन्द की। श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें शान्त करके उनके घर भेजा।

घर में पत्नी के साथ भट्ट की गम्भीर खेद-उक्ति—

**घरे आसि' भट्टाचार्य, षाठीर माता-सने।**
**आपना निन्दिया किछु बलेन वचने॥२६०॥**

**२६०। प॰ अनु॰—**घर पर लौटकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य अपनी पत्नी षाठी की माता के साथ बैठकर अपनी निन्दा करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

चैतन्य के निन्दुक का वध ही उसके द्वारा
किये गये अपराध का प्रायश्चित—

**''चैतन्य-गोसाञिर निन्दा शुनि जाहा हैते।**
**तारे वध कैले, हय पाप-प्रायश्चित्ते॥२६१॥**

**२६१। प० अनु०—**श्रीचैतन्य गोसाञि की निन्दा जिसके मुख से सुनी है, उसका वध करने से ही निन्दा सुनने से लगे पाप का प्रायश्चित हो सकता है।

**अनुभाष्य**

२६१। **वैष्णव-निन्दा का फल—**(हः भः विः, १० म विः-धृत) स्कन्द पुराण के मार्कण्डेय-भगीरथ-संवाद में से)—"यो हि भागवतं लोकमुपहासं नृपोत्तम। करोति तस्य नश्यन्ति अर्थ धर्म यशः सुताः॥ निन्दां कुर्वन्ति ये मूढ़ा वैष्णवानां महात्मनाम्। पतन्ति पितृभिः साद्धं महारौरवसंज्ञिते॥ हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति। क्रुध्यते याति नो हर्षं दर्शने, 'पतनानि षट्॥'' (इसी हः भः विः, १०म विः-धृत द्वारकामाहात्म्य में प्रहलाद-बलि के संवाद में)—'करपत्रैश्च फाल्यन्ते सुतीव्रैर्षमशासनैः। निन्दां कुर्वन्ति ये पापा वैष्णवानां महात्मनाम्।'' [अर्थात् हे नृपवर! जो वैष्णव का उपहास करते हैं, उसका अर्थ, धर्म, यश तथा सन्तान इत्यादि विनष्ट होता है। जो सब मूढ़ व्यक्ति महात्मा वैष्णवों की निन्दा करते हैं, वे पितृ-पुरुषों सहित महारौरव नामक नरक में पतित होते हैं। वैष्णव पर प्रहार, उनकी निन्दा, उनसे विद्वेष, प्रणाम आदि द्वारा उनका अभिनन्दन नहीं करना, वैष्णव के प्रति क्रोध प्रकाशित करना एवं वैष्णव के दर्शन से आनन्दित नहीं होना—यह छह पतन के कारण है। जो समस्त पापी महात्मा वैष्णवों की निन्दा करते हैं, वे यम के शासन के कारण अत्यधिक तीखे करपत्र जैसे अस्त्र के द्वारा खण्डित किये जाते हैं]

**विष्णुनिन्दा-फल,—**(भक्तिसन्दर्भ में ३१४ संख्या में उद्धृत भाः ७/१/१६ २२ श्लोक की टीका द्रष्टव्या) ''ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्तं पुण्यरुपिणम्। शतजन्मार्जितं पुण्यं तेशां नश्यति निश्चितम्॥ ते पच्यन्ते महाघोरे कुम्भीपाके भयानके। भक्षिताः कीटसङ्घेन यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ श्रीविष्णो-रवमानवाद् गुरुतरं श्रीवैष्णवोल्लङ्घनम्। तदीय दूषकजनान् न पश्येत् पुरुषाधमान्। तैः साद्धं वञ्चकजनैः सहवासं न कारयेत्॥'' श्रीजीव प्रभु कृत 'भक्तिसन्दर्भ में'—नामपराधान्तर्गत 'साधुनिन्दा'-फल-वर्णन-प्रसङ्ग में २६५ संख्या में उद्धृत (भा १०/७४/४०)—'निन्दां भगवतः श्रृण्वन् तत्परस्य जनस्य वा। ततो नापैति यः सोऽपि यातध्यः सुकृतात् च्युतः॥' ततोऽपगमश्चासमर्थस्य एव; समर्थेन तु निन्दकजिह्वा छेतव्या; तत्राप्यसमर्थेन स्वप्राणपरित्यागोऽपि कर्त्तव्यः। यथोक्तं देव्या (भा ४/४/१७)-''कर्णौपिधाय निरियाद् यदकल्प ईशे धर्मावितर्यश्रृणिभिर्नृभिरस्यमाने। छिन्द्यात् प्रसह्य रुषतीमसतां प्रभुश्चेजिह्वामसूनपि ततो विसृजेत स धर्मः॥'' इति। [अर्थात् जो श्रीहृषीकेश एवं उनके पवित्र भक्तों की निन्दा करते हैं, उनके सौ जन्मों में अर्जित पुण्य निश्चित रूप से विनष्ट हो जाते हैं। जब तक चन्द्र और सूर्य विद्यमान रहते हैं, वे तब तक भयानक महाघोर कुम्भीपाक नरक में कीट समूह द्वारा खाये जाते हैं। भगवान् श्रीविष्णु की अवमानना की अपेक्षा श्रीवैष्णव का उल्लंघन गुरुतर अपराध है। अतएव विष्णु भक्तों के अपवादकारी अर्थात् उन्हें गाली निकालने वाले अधम पुरुषों का दर्शन मत करना एवं ऐसे प्रतारकों के साथ एकत्र वास भी मत करना। श्रीभक्तिसन्दर्भ में साधुनिन्दा के फल के वर्णन के प्रसंग में "श्रीभगवान् अथवा भगवद्भक्त की निन्दा श्रवण करके जो उस स्थान का परित्याग नहीं करते, वे भी सुकृति से च्युत होकर अधोगति को प्राप्त करते हैं।"—यहां पर जो उस स्थान से चले

जाने का विधान है, वह केवल असमर्थ के पक्ष में है। समर्थ के पक्ष में किन्तु उक्त निन्दुक की जिह्वा छेद करने योग्य है, उसमें भी असमर्थ होने पर अपने प्राणों का परित्याग करना भी कर्त्तव्य बन जाता है। यथा, श्रीपार्वती ने कहा,—'यदि कोई दुर्दान्त व्यक्ति धर्म के रक्षक महापुरुष की निन्दा करे, तो फिर यदि उक्त निन्दुक के विनाश अथवा अपने प्राणों के परित्याग में कोई समर्थ नहीं हो तो दोनों कानों को बन्द करके उस स्थान से चले जाना ही कर्त्तव्य है। समर्थ होने पर उस दुर्जन की कटुभाषिणी जिह्वा का बलपूर्वक छेदन करके स्वयं प्राण त्याग करना—यही धर्म के रूप में उक्त हुआ है।']

ऐसे करने में असमर्थ व्यक्ति के लिये प्राण-त्याग; किन्तु स्वयं और जमाता, दोनों ही 'शौक्र-ब्राह्मण' होने के कारण हत्या के अयोग्य—

**किम्वा निज-प्राण यदि करि विमोचन।**
**दुइ योग्य नहे, दुइ—शरीर ब्राह्मण॥२६२॥**

**२६२। प० अनु०—**या फिर यदि अपने प्राणों का त्याग कर दूँ। किन्तु यह दोनों कार्य करना ही उचित नहीं है, क्योंकि हम दोनों ही शरीर से ब्राह्मण हैं।

हरि-गुरु-वैष्णव के निन्दुक का सङ्ग सम्पूर्ण रूप से परित्याग करने योग्य, उनके मुख का दर्शन भी नहीं करना चाहिए—

**पुनः सेइ निन्दकेर मुख ना देखिब।**
**परित्याग कैलुँ, तार नाम ना लइब॥२६३॥**

**२६३। प० अनु०—**मैं फिर कभी भी उस निन्दुक का मुख नहीं देखूँगा। मैं उसका परित्याग करता हूँ, आज के बाद मैं उसका नाम तक भी उच्चारण नहीं करूँगा।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२६२-२६३। अमोघ—ब्राह्मण, उसका वध नही किया जा सकता; स्वयं भी ब्राह्मण हैं, आत्महत्या भी अनुचित हैं, दोनों कार्य ही अयोग्य हैं। अतएव उस निन्दक का मुख नहीं देखना ही कर्त्तव्य है।

**अनुभाष्य**

२६२। भाः १/७/५३ श्लोक—''ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः—इसकी श्रीधरटीका में उद्धृत स्मृति के वचन में ब्रह्म-बन्धु-वध-समर्थन व्यवस्था—''आततायिन-मायान्तमपि वेदान्तपारगम्। जिघांसन्तं जिंघासीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत्।'' पुनः (भा १/७/५७ श्लोक)—''वपनं द्रविणादानं स्थाना-न्निर्यापणं तथा। एष हि ब्रह्मबन्धुनां वधो नान्योऽस्ति देहिकः॥'' [अर्थात् 'ब्राह्मण के अधम होने पर भी उसे मारना उचित नहीं है, आततायी वध के योग्य है' (भा. १/७/५३)। इसकी श्रीधरपाद-कृत टीका में,—'हनन की इच्छा से आने वाले वेदान्त पारग आततायी को मारने से उसके द्वारा ब्रह्म हत्या नहीं होती।' मस्तक मुण्डन, धन-छीन लेना एवं उसे उसके स्थान से निकाल देना—इसी प्रकार ही अधम ब्राह्मणों का वध हुआ करता है; उनके लिये मस्तक-छेदन आदि अन्य देहिक वध का विधान नहीं है]—श्लोक में ब्रह्मबन्धु का देहिक वध निषिद्ध है।

हरि-गुरु-वैष्णव-द्वेषी पति—पत्नी के द्वारा निश्चित रूप से त्याग करने योग्य—

**षाठीरे कह—तारे छाडुक, से हइल 'पतित'।**
**पतित हइले भर्त्ता, त्यजिते उचित॥''२६४॥**

**२६४। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने अपनी पत्नी से कहा कि तुम षाठी से कहो कि वह उसे छोड़ दे, क्योकि वह पतित हो गया है। पति के पतित हो जाने पर उसे त्याग करना ही उचित है।

**अनुभाष्य**

२६४। (भा ५/५/१८)—''न पतिश्च स स्यात् न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम्'' अर्थात् जो स्वयं कृष्ण भजन नहीं करते, और न ही कृष्णविमुखता अथवा कृष्ण-विस्मृति रूपी निकट उपस्थित मृत्यु के हाथ से पत्नी की रक्षा कर सकते हैं, वे पतित हैं, अतएव पति नहीं हैं। बाहरी दृष्टिकोण से—कृष्ण के प्रति समर्पित आत्मा पत्नीरूपी कोई भक्त यदि निष्कपट रूप से शुद्ध कृष्ण भजन के उद्देश्य से द्विजपत्नियों की भाँति कृष्ण के अभक्त अथवा विरोधी 'पति'-अभिमानी व्यक्ति के सङ्ग को परित्याग करके घर में अवस्थान करें, तब उनके द्वारा किसी भी विधि का उल्लंघन नहीं होता; इस विषय में स्वयं भगवान् की ही उक्ति (भाः १०/२३/३१-३२)—''कृष्ण की इच्छा से पति, पिता, भाई, पुत्र तथा लोग भी उनसे असूया (द्वेष) नहीं कर पायेंगे; कृष्ण की आज्ञा से देवता भी उनके आचरण का सदैव अनुमोदन करेंगे; वास्तव में, इस जड़जगत् में अङ्ग के अङ्ग से परस्पर सङ्ग से ही प्रीति अथवा स्नेह की वृद्धि होती है, वैसा नहीं; कृष्ण में शुद्ध भाव से सतत मन का संयोग करने से शीघ्र ही कृष्ण की प्राप्ति होती है।''

स्मृति वचन—

**''पतिञ्च पतितं त्यजेत॥''२६५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२६५। पतित पति का परित्याग करना। (भा ७/११/२८)—''सन्तुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रिय-सत्य-वाक्। अप्रमता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत्॥''

**अनुभाष्य**

२६५। भा ७/११/२८ श्लोक की श्रीधरटीका में उद्धृत याज्ञवल्क्यवाक्य—''आः शुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकः दूषितः।''

अमोघ को विसूचिका-रोग—

**सेइ रात्रे अमोघ काँहा पलाञा रहिल।**
**प्रातःकाले तार विसूचिका-व्याधि हैल॥२६६॥**

**२६६। प० अनु०—**उस रात अमोघ कहीं भाग गया अर्थात् छिपकर रहा। अगले दिन प्रातःकाल उसे विसूचिका (हैजा) नामक व्याधि हो गयी।

चैतन्य के विद्वेषी की मृत्यु की
सम्भावना को सुनकर भट्ट का हर्ष—

**अमोघ मरेन—शुनि' कहे भट्टाचार्य।**
**"सहाय हइया दैव, कैल मोर कार्य॥२६७॥**

**२६७। प० अनु०—**अमोघ को विसूचिका नामक व्याधि हो गयी है, ऐसा सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा—अमोघ मर जाएँ। दैव (विधाता) मेरे सहायक अर्थात् अनुकूल हो गये हैं, उन्होंने मेरा कार्य बना दिया।

ईश्वर के प्रति किये गये अपराध
का फल तत्क्षणात् दृष्ट—

**ईश्वरे त' अपराध फले ततक्षणे।**
**एत बलि' पड़े दुइ शास्त्रेर वचने॥२६८॥**

**२६८। प० अनु०—**ईश्वर के प्रति किये गये अपराध का फल तो तत्क्षणात् ही मिलता है, इतना कहकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने शास्त्रों के दो श्लोकों का उच्चारण किया।

महाभारत के वन पर्व (२४१/१५) में—

**महता हि प्रयत्नेन हस्त्यश्वरथपत्तिभिः।**
**अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम्॥२६९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**२६९।** हाथी, घोड़े, रथ, पदातिक (पैदल चलकर युद्ध करने वाली) सेना का प्रचुर रूप से संग्रह करके अत्यधिक प्रयत्न पूर्वक हमें जो करना पड़ता, गन्धर्वों ने वह कर दिया है।

**अनुभाष्य**

२६९। कर्ण के द्वारा चलायमान दुर्योधन आदि कौरवों के घोष-यात्रा (भ्रमण) में आकर अपने कर्मों के फलस्वरूप गन्धर्वराज चित्रसेन के द्वारा सपरिवार अवरुद्ध होने पर दुर्योधन भयभीत होकर अपने सम्बन्धी वनवासी युधिष्ठर आदि पाण्डवों के निकट शरणागत हुए, तथा उनके द्वारा गन्धर्व के चंगुल से उद्धार हेतु प्रार्थना करने पर, दुर्योधन आदि के पूर्वकाल में किये गये अत्याचारों का स्मरण करके प्रतिशोध (बदला) लेने के इच्छुक भीमसेन की उक्ति—

महता (अतिशयेन) प्रयत्नेन (प्रयासेन) हस्त्यश्वरथपत्तिभिः (गजराजिरथैः पत्तिभिः पदातिभिः 'सन्नह्य गज राजिभिः' इति पाठान्तरञ्च) यत् (दुर्योधनादि-कौरव-पराजय कार्यम्) अनुष्ठेयं (सम्पादनीयम् अद्य) गन्धर्वैः (चित्रसेनचालितैः कर्तृभूतैः) तत् अनुष्ठितम् (सम्पदितं—कौरवदयः शत्रवः पराजिताः इत्यर्थः)।

विष्णु-वैष्णव-विद्वेष का फल—
श्रीमद्भागवत (१०/४/४६)—

**आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।**
**हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥२७०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**२७०।** आयु, श्री, यश, धर्म, लोक और आशीर्वाद,—ये सब श्रेष्ठ वस्तुएँ ही मनुष्य के महद् अतिक्रम (महान् व्यक्ति के अनादर अथवा मर्यादा के भङ्ग) करने से नाश हो जाती हैं।

*पञ्चदश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

**अनुभाष्य**

२७०। भोजराज कंस ने बहिन देवकी की कन्यारूपी योगमाया को मारने में असमर्थ होकर, उसके मुख से अपने पूर्वशत्रु विष्णु के आविर्भाव के संवाद को श्रवण करके असुर स्वभाव वाले विष्णु वैष्णव विद्वेषी मन्त्रियों के साथ परामर्श करने के बाद विष्णु भक्त साधु ऋषियों की हिंसा करने के लिये दानवों को आज्ञा प्रदान की थी, श्रीशुकदेव के द्वारा परीक्षित के निकट वैसे विष्णु वैष्णव विद्वेष के फल का वर्णन—

महदतिक्रमः (महतां विष्णुवैष्णवानाम् अतिक्रमः कायिक-मानसिक-वाचनिकानादरः, अतः वैष्णवापराधः) पुंसः (नरस्य) आयुः, श्रियं, यशः, धर्मं, लोकान् (धर्म साध्य-स्वर्गादीन्) आशिषः (निज-वाञ्छितानि सर्वाणि श्रेयांसि साध्यसाधनानि कल्याणानि) च हन्ति (विनाशयति) एव। अन्त्य, तृतीय परिच्छेद १४६ और १६३ संख्या द्रष्टव्य।

गोपीनाथ से प्रभु द्वारा भट्ट के संवाद की जिज्ञासा—

**गोपीनाथाचार्य गेला प्रभु-दरशने।**
**प्रभु-ताँरे पुछिल भट्टाचार्य विवरणे॥२७१॥**

**२७१। प॰ अनु॰—**श्रीगोपीनाथ आचार्य जब श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने के लिये गये तब श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे श्री सार्वभौम भट्टाचार्य के विषय में जिज्ञासा की।

गोपीनाथ के मुख से पत्नी-सहित भट्ट का प्रभु की निन्दा को श्रवण करने के कारण उपवास और अमोघ की मुमुर्षा का श्रवण—

**आचार्य कहे,—"उपवास कैल दुइजन।**
**विसूचिका-व्याधिते अमोघ छाड़िछे जीवन॥२७२॥**

**२७२। प॰ अनु॰—**श्रीगोपीनाथ आचार्य ने कहा कि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी पत्नी—दोनों ने ही उपवास किया है तथा विसूचिका व्याधि के कारण अमोघ अपने शरीर को छोड़ रहा है।

प्रभु का तेजी से जाना और अमोघ को सदुपदेश—

**शुनि' कृपामय प्रभु आइला धाइया।**
**अमोघेरे कहे तार बुके हस्त दिया॥२७३॥**

**२७३। प० अनु०—**श्रीगोपीनाथ आचार्य के मुख से इतना सुनते ही कृपामय प्रभु दौड़कर अमोघ के पास पहुँच गये तथा उसकी छाती पर हाथ रखकर उससे कहने लगे—।

प्रभु के द्वारा 'ब्राह्मण' की संज्ञा का निर्देश—

**''सहजे निर्मल एइ 'ब्राह्मण'-हृदय।**
**कृष्णेर बसिते एइ योग्यस्थान हय॥२७४॥**
**'मात्सर्य'-चण्डाल केने इँहा बसाइला।**
**परम पवित्र स्थान अपवित्र कैला॥२७५॥**

**२७४-२७५। प० अनु०—**ब्राह्मण का हृदय तो सहज ही निर्मल होता है तथा श्रीकृष्ण के वास के लिये यही निर्मल हृदय ही योग्य स्थान होता है। तुमने इसमें मात्सर्य (ईर्ष्या) रूपी चण्डाल को क्यों बैठाया है। तुमने परम पवित्र स्थान को अपवित्र कर दिया है।

'जाड्य' रूपी अपराध से विमुक्त होने पर
ही शुद्ध नाम का उदय—

**सार्वभौम-सङ्गे तोमार 'कलुष' हैल क्षय।**
**'कल्मष' घुचिले जीव 'कृष्णनाम' लय॥२७६॥**

अमोघ को कृष्णनाम-ग्रहण
करने की आज्ञा—

**उठह, अमोघ, तुमि लओ कृष्णनाम।**
**अचिरे तोमारे कृपा करिबे भगवान्॥''२७७॥**

**२७६-२७७। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के सङ्ग से तुम्हारा कलुष (अपराध) दूर हो गया है। अपराध के दूर होने पर जीव कृष्ण का नाम लेता है। हे अमोघ, उठो! तुम कृष्णनाम का उच्चारण करो। शीघ्र ही भगवान् तुम पर कृपा करेंगे।

### अनुभाष्य

२७४-२७७। 'ब्रह्म', 'परमात्मा' और 'भगवान्' अथवा 'विष्णु'—अद्वयज्ञानतत्व के ये तीन आविर्भाव हैं। ब्रह्मज्ञ का नाम 'ब्राह्मण' एवं ब्रह्मज्ञ भगवद् उपासक का नाम ही 'वैष्णव' है। पूर्ण-आविर्भाव तत्व ही 'भगवान' एवं असम्पूर्ण आविर्भाव तत्त्व ही 'ब्रह्म' है। केवल ब्राह्मण के मुख में ही 'नामाभास' उदित होते हैं। किन्तु अद्वय ज्ञान विष्णु के साथ सम्बन्ध ज्ञान रूपी योग से युक्त ब्राह्मण ही 'अभिधेय'-वृत्तियुक्त अथवा सेवा-सूत्र में आबद्ध होने पर अर्थात् भजन करने से 'भागवत' अथवा 'वैष्णव' हो सकते हैं। तभी अविद्या से उत्पन्न 'कल्मष' अथवा 'अपराध' दूर होने पर उसके मुख में शुद्धनाम उदित होते हैं। निर्विशेषवादी विवर्त्तवाद का अवलम्बन करके ब्रह्म की जिन पाँच प्रकार की सगुण उपासना की कल्पना करते हैं, वह कभी भी अद्वय-ज्ञानतत्त्व-निर्देशक नहीं है। विवर्तवादी स्वयं को 'ब्राह्मण' मानकर अभिमान करके सकाम अनुभूति में ही 'ब्राह्मणता' आबद्ध है, ऐसा स्थिर करते हैं, परन्तु जीव के स्वरूप में 'ब्रह्मज्ञ' धर्म ही नित्य वर्त्तमान है। विष्णु की कृपा से मायावाद को छोड़ देने पर ब्राह्मण ही 'अविमिश्र ब्राह्मण' अथवा 'वैष्णव' बनता है। अतएव वैष्णवों में ब्राह्मणत्व नित्य अनुस्यूत (क्रोड़ीभूत) है, इसमें कोई सन्देह नहीं। गरुड़ पुराण में ''ब्राह्मणानां सहस्त्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते। सत्रयाजिसहस्त्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः। सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते॥'' अतएव वृत्तब्राह्मणता के अभाव में भक्तिपथ में कोई भी प्रविष्ट नहीं हो सकता।

वास्तविक ब्राह्मण के हृदय में अद्वयज्ञान विद्यमान रहता है, उसमें द्वैतबुद्धि वशतः नित्याराध्य विष्णु अथवा वैष्णवों के विरोधी खण्ड स्वार्थसिद्धि अथवा अपनी जड़ीय इन्द्रियों के तर्पण की वाञ्छा से उत्पन्न मात्सर्य, ईर्ष्या अथवा द्वन्द्वभाव रह ही नहीं सकता; जहाँ वह विद्यमान होता है, उस स्थान पर अच्युतात्मा के अभाव में निश्चय ही (भाः

११/५/३)—''न भजन्त्यव जानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः'' अर्थात् अपने स्थान से भ्रंश अथवा अधः पतन घटता है।

अमोघ की तत्क्षणात् इह-रोग और भवरोग
से मुक्ति एवं कृष्णप्रेम-प्राप्त—

**शुनि' 'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि' अमोघ उठिला।**
**प्रेमोन्मादे मत्त हञा नाचिते लागिला॥२७८॥**

**२७८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु की बात सुनकर अमोघ 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुए उठ बैठा। वह प्रेम के उन्माद में मत्त होकर नृत्य करने लगा।

अमोघ द्वारा प्रभु के चरणों में क्षमा-प्रार्थना—

**कम्प, अश्रु, पुलक, स्तम्भ, स्वेद, स्वरभङ्ग।**
**प्रभु हासे देखि' तार प्रेमेर तरङ्ग॥२७९॥**
**प्रभुर चरणे धरि' करये विनय।**
**''अपराध क्षम मोरे, प्रभु, दयामय॥२८०॥**

**२७९-२८०। प० अनु०—**अमोघ में कम्प, अश्रु, पुलक, स्तम्भ, स्वेद तथा स्वरभङ्ग आदि प्रेम की तरङ्गों को देखकर श्रीमन्महाप्रभु हँसने लगे। अमोघ श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़कर दीनतापूर्वक कहने लगे—हे दयामय प्रभु! मेरे अपराध को क्षमा कीजिए।

अपने द्वारा किये गये अपराध के स्मरण से
अपने गाल पर थप्पड़ मारना—

**एइ छार मुखे तोमार करिनु निन्दने।''**
**एत बलि' आपन गाले चड़ाय आपने॥२८१॥**

**२८१। प० अनु०—**मैंने इस घृणित मुख से आपकी निन्दा की है। इतना कहकर अमोघ स्वयं अपने हाथों से अपने गाल पर थप्पड़ मारने लगा।

गाल को फूलते देख गोपीनाथ द्वारा उन्हें रोकना—

**चड़ाइते चड़ाइते गाल फुलाइल।**
**हाते धरि' गोपीनाथाचार्य निषेधिल॥२८२॥**

**२८२। प० अनु०—**अपने गाल पर मारते-मारते अमोघ ने अपने गाल को फुला दिया। श्रीगोपीनाथ आचार्य ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें ऐसा करने के लिये मना किया।

प्रभु के द्वारा उन्हें सान्त्वना और भट्ट के
सम्बन्ध के कारण स्नेह-आशीर्वाद—

**प्रभु आश्वासन करे स्पर्शि' तार गात्र।**
**''सार्वभौम-सम्बन्धे तुमि मोर स्नेहपात्र॥२८३॥**

**२८३। प० अनु०—**श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उसकी देह को स्पर्श करके उसे आश्वासन दिया कि सार्वभौम भट्टाचार्य के सम्बन्ध से तुम मेरे स्नेह के पात्र हो।

शुद्धभक्त भट्ट के परिवार से प्रभु की प्रीति—

**सार्वभौम-गृहे दास-दासी, जे कुकुर।**
**सेह मोर प्रिय, अन्य जन रहु दूर॥२८४॥**

**२८४। प० अनु०—**सार्वभौम भट्टाचार्य के घर के दास-दासी तथा कुकुर (कुत्ता) भी मुझे प्रिय है, दूसरों लोगों की बात तो फिर बहुत दूर की है अर्थात् उनके विषय में तो कहना ही क्या है।

अमोघ को कृष्णनाम
लेने का आदेश—

**'अपराध' नाहि तव, लओ कृष्णनाम।''**
**एत बलि' प्रभु आइला सार्वभौम-स्थान॥२८५॥**

**२८५। प० अनु०—**अब तुम्हारा कोई अपराध नहीं रह गया, अब तुम कृष्ण के नाम का उच्चारण करो। इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु श्री सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर आ गये।

भट्ट के निकट आकर प्रभु का बैठना—

**प्रभु देखि' सार्वभौम धरिला चरणे।**
**प्रभु ताँरि आलिङ्गिया बसिला आसने॥२८६॥**

**२८६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को देखकर

श्री सार्वभौम भट्टाचार्य ने उनके चरण पकड़ लिये, श्रीमन्महाप्रभु उन्हें आलिङ्गन करके आसन पर बैठ गये।

बालक तुल्य अमोघ के अपराध के कारण क्रोध अथवा उपवास की अकर्त्तव्यता—

**प्रभु कहे,—"अमोघ शिशु, किबा तार दोष।**
**केने उपवास कर, केने कर रोष॥२८७॥**

**२८७। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा कि अमोघ तो बालक है, उसका क्या दोष है। आप उपवास क्यों कर रहे हैं, क्यों इतना रोष करते हैं।

भोजन करने के लिये भट्ट को अनुरोध—

**उठ, स्नान कर, देख जगन्नाथ-मुख।**
**शीघ्र आसि' भोजन कर, तबे मोर सुख॥२८८॥**

**२८८। प॰ अनु॰—**अब उठो, स्नान करो, भगवान् श्री जगन्नाथ के मुख का दर्शन करो। जल्दी से लौटकर भोजन करो, तभी मुझे प्रसन्नता होगी।

भट्ट के प्रसाद-सम्मान तक प्रतीक्षा करने की प्रतिज्ञा—

**तावत् रहिब आमि एथाय बसिया।**
**यावत् ना पाइबा तुमि प्रसाद आनिया॥"२८९॥**

**२८९। प॰ अनु॰—**जब तक आप लौटकर प्रसाद लाकर पा नहीं लेते, तब तक मैं यही पर ही बैठा रहूँगा।

अमोघ के प्रति भट्ट का क्रोध-प्रकाश—

**प्रभु-पद धरि' भट्ट कहिते लागिला।**
**"मरित' अमोघ, तारे केने जीयाइला॥"२९०॥**

**२९०। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़कर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य कहने लगे कि अमोघ को मरने देते, आपने उसे जीवित क्यों किया?

बालक-समझकर अमोघ को क्षमा-करने का उपदेश—

**प्रभु कहे,—"अमोघ शिशु, तोमार बालक।**
**बालक-दोष ना लय पिता, ताह्यते पालक॥२९१॥**

**२९१। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—अमोघ शिशु है, उस पर भी आपका बालक है। पिता बालक के दोष को नहीं लेते, क्योंकि वे तो बालक के पालक होते हैं।

अमोघ के अपराध के समाप्त होने पर वैष्णवता-हेतु भट्ट को प्रसन्न होने के लिये अनुरोध—

**एबे 'वैष्णव' हैल, तार गेल 'अपराध'।**
**ताहार उपरे एबे करह प्रसाद॥"२९२॥**

**२९२। प॰ अनु॰—**अब अमोघ वैष्णव बन गया है, उसका अपराध दूर हो गया है, अब आप भी उस पर कृपा कीजिए।

भट्ट का क्रोध त्याग—

**भट्ट कहे,—"चल, प्रभु, ईश्वर-दरशने।**
**स्नान करि' हेथा मुञि आसिलाङ्‌ एखने॥२९३॥**

**२९३। प॰ अनु॰—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा—हे प्रभु, आप जाकर श्रीजगन्नाथ का दर्शन कीजिए। मैं भी स्नान करके अभी वहीं पहुँचता हूँ।

भट्ट की प्रसाद सेवा के दर्शन के लिये गोपीनाथ को अपेक्षा करने हेतु आदेश—

**प्रभु कहे,—"गोपीनाथ, इहाञि रहिबा।**
**इँहो प्रसाद पाइले, वार्त्ता आमाके कहिबा॥"२९४॥**

**२९४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्री गोपीनाथ आचार्य को कहा कि गोपीनाथ, आप यहीं पर ही रहना, श्री सार्वभौम भट्टाचार्य के प्रसाद पाने पर मुझे आकर संवाद देना।

**अनुभाष्य**

२९४। इँहो,—सार्वभौम भट्टाचार्य।

भट्ट का प्रसाद-सेवन—

**एत बलि' प्रभु गेला ईश्वर-दरशने।**
**भट्ट स्नान-दर्शन करि' करिला भोजने॥२९५॥**

**२९५। प० अनु०—**इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु तो श्रीजगन्नाथ का दर्शन करने के लिये चले गये, इधर श्री सार्वभौम भट्टाचार्य ने स्नान तथा श्रीजगन्नाथ का दर्शन करके भोजन ग्रहण किया।

प्रभु के एकान्तिक भक्त महाशान्त-प्रकृति वाले अमोघ—

**सेइ अमोघ हैल प्रभुर भक्त 'एकान्त'।**
**प्रेमे नाचे, कृष्णनाम लय महाशान्त॥२९६॥**

**२९६। प० अनु०—**वह अमोघ श्रीमन्महाप्रभु का एकान्तिक भक्त बन गया। अब वे सब समय प्रेम में नृत्य करते, कृष्णनाम का उच्चारण करते तथा महाशान्त हो गये।

**अनुभाष्य**

२९६। शाखा-निर्णयामृत में,—"अमोघ पण्डितं वन्दे श्रीगौरेणात्मसात्कृतम्। प्रेमगद्‌गदसान्द्राङ्गं पुलकाकुलविग्रहम्॥"

प्रभु की ऐसी लीला—

**ऐछे चित्र-लीला करे शचीर नन्दन।**
**जेई देखे, शुने, ताँर विस्मय हय मन॥२९७॥**

**२९७। प० अनु०—**श्रीशचीनन्दन ऐसी विचित्र-लीलाएँ करते है। जो भी उनके द्वारा की गयी लीलाओं को देखता-सुनता है, उसका मन विस्मित हो जाता है।

भट्ट के घर में प्रभु का भोजन
और भट्ट की प्रभु के प्रति प्रीति—

**ऐछे भट्ट-गृहे करे भोजन-विलास।**
**तार मध्ये नाना चित्र-चरित्र-प्रकाश॥२९८॥**

**२९८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु इस प्रकार श्री सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर भोजन विलास करते है। उसी में उनके अनेक विचित्र-चरित्र प्रकाशित होते हैं।

**सार्वभौम-घरे एइ भोजन-चरित।**
**सार्वभौम-प्रेम जाँहा हइला विदित॥२९९॥**

भट्ट की पत्नी की प्रभु के प्रति प्रीति, भक्त के सम्बन्ध से अपराध-क्षमा—

**षाठीर मातार प्रेम, आर प्रभुर प्रसाद।**
**भक्त-सम्बन्धे जाहा क्षमिल उपराध॥३००॥**

**२९९-३००। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर यह जो भोजन-चरित हैं, इससे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य तथा षाठी की माता का प्रेम तथा श्रीमन्महाप्रभु की कृपा प्रकाशित हुई है, जिसमें उन्होंने भक्त के सम्बन्ध से अपराध के लिये क्षमा कर दिया।

**अनुभाष्य**

३००। अमोघ प्रभु की निन्दा करने पर अपराधी बना था। अपराध के फल से उसे प्राणों का अन्त कर देने वाली विसूचिका व्याधि हुई। व्याधिग्रस्त होने के बाद अमोघ को अपराध दूर करने का सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। सार्वभौम और उनकी पत्नी प्रभु की अत्यन्त कृपा के पात्र थे। उनके सम्बन्ध से प्रभु ने इस अपराधी अमोघ के प्रति दण्डविधान के बदले उसके अपराध को क्षमा किया तथा उसके प्राणों की रक्षा करके कृष्णभक्ति प्रदान की। श्रीमन्महाप्रभु के प्रति सार्वभौम की पत्नी का प्रगाढ़ भक्तिपूर्ण सम्बन्ध था। लौकिक दृष्टि में अमोघ सार्वभौम के साथ पाल्य जमाता के सम्बन्ध से जुड़े हुए थे; अतएव उसका अपराध क्षमा न करने से उसके पालक भट्ट को ही गौण रूप से दण्ड विधान करना हो जायेगा। इसलिए उसे क्षमा करके प्रभु ने अपने ऐश्वर्य, गाम्भीर्य और औदार्य को प्रकाशित किया।

*पञ्चदश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

भट्ट के घर में भोजन लीला के श्रवण से चैतन्य की प्राप्ति—

**श्रद्धा करि' एइ लीला शुने जेइ जन।**
**अचिरात पाय सेइ चैतन्य-चरण॥३०१॥**

**३०१। प॰ अनु॰—**जो भी कोई श्रद्धापूर्वक इस लीला का श्रवण करता है, उसे बिना किसी विलम्ब के ही श्रीचैतन्य-चरणों की प्राप्ति हो जाती है।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥३०२॥**

*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्य खण्ड में सार्वभौम गृह में भोजन विलास नामक पञ्चदश-परिच्छेद समाप्त।*

**३०२। प॰ अनु॰—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य-चरितामृत का गान कर रहा है।

✵✵✵

# षोड़श परिच्छेद

**कथासार—**महाप्रभु के द्वारा वृन्दावन जाने की इच्छा करने पर रामानन्द और सार्वभौम अनेक प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न करने लगे। क्रमशः गौड़ीय-भक्त तीसरे वर्ष नीलाचल आये। इस बार वैष्णवों की पत्नियाँ श्रीमन्महाप्रभु को अपने वासस्थान पर निमन्त्रण करने के लिये उनकी प्रिय बहुत सी खाद्य-वस्तुओं को बङ्गाल से लायी थी। गौड़ीय भक्तों के श्रीक्षेत्र में पहुँचने पर महाप्रभु ने माला भेजकर उनका सम्मान किया। उस वर्ष भी गुण्डिचा मन्दिर में सफाई का कार्य पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति हुआ। चातुर्मास्य के सम्पूर्ण होने पर भक्तगण बङ्गाल जाने लगे। महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को प्रत्येक वर्ष नीलाचल आने से मना किया। कुलीनग्रामवासियों के प्रश्नानुसार उन्होंने पुनः वैष्णव के लक्षण के विषय में बतलाया। इस वर्ष विधानिधि ने नीलाचल में रहकर 'उड़न षष्ठी' का दर्शन किया। भक्तों के विदा होने पर महाप्रभु ने वृन्दावन जाने की दृढ़ता प्रकाशित की एवं विजया-दशमी के दिन प्रस्थान किया। प्रतापरुद्र-राजा ने महाप्रभु के जाने वाले मार्ग पर अनेक प्रकार की व्यवस्था की। चित्रोत्पला नदी पार होने पर रामानन्द, मङ्गराज (मदराज ?) और हरिचन्दन महाप्रभु को साथ लेकर चले। गदाधर पण्डित को महाप्रभु द्वारा नीलाचल लौट जाने का अनुरोध करने पर उन्होंने सुना नहीं। कट्टक से महाप्रभु ने पण्डित गोस्वामी को शपथ देकर वृन्दावन भेजा एवं भद्रक से रामानन्द को विदायी दी। (उसके बाद) उद्रदेश की सीमा पर पहुँचकर नौका के माध्यम से यवन अधिकारी की सहायता से पाणिहाटि तक गये। उसके बाद महाप्रभु राघव पण्डित के घर से कुमारहट्ट होकर कुलिया ग्राम में आये तथा अनेक लोगों का अपराध दूर किया। वहाँ से रामकेलि में जाकर श्रीरूप और श्रीसनातन को अङ्गीकार किया। रामकेलि से लौटकर रघुनाथ को शिक्षा देकर घर भेजा। पुनः नीलाचल में आकर महाप्रभु अकेले वृन्दावन जाने का परामर्श करने लगे।

(अः प्रः भाः)

गौड़ देश में जाकर लोगों का
उद्धार करने में रत श्रीगौरसुन्दर—

**गौड़ोद्यानं गौरमेघः सिञ्चन् स्वलोकनामृतैः।**
**भवाग्निदग्धजनता-वीरुधः समजीवयत्॥१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१।** गौड़ोद्याने (गौड़देश रूपी उद्यान में) गौररूप मेघने अपनी दर्शनामृत रूपी वर्षा के द्वारा भवाग्नि दग्ध लोक संघ रूपी लता को जीवित किया था।

**अनुभाष्य**

१। गौरमेघः (श्रीगौरजलधरः) स्वालोकनामृतैः (निजदर्शनसुधाभिः) गौड़ोद्यानं (गौड़देशरूपम् उद्यान) सिञ्चन् (वर्षन्) भवाग्निदग्धजनता-वीरुधः (संसार-दाव-वह्निना दग्धाः याः जनताः लोकपुञ्जाः ता एव वीरुधः लताः ताः) समजीवयत् (जीवयामास)।

**जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प० अनु०—**श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय

हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

प्रभु की वृन्दावन जाने की इच्छा; राजा का विषाद—

**प्रभुर हइल इच्छा जाइते वृन्दावन।**
**शुनिया प्रतापरुद्र हइला विमन॥३॥**

**३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु की वृन्दावन जाने की इच्छा हुई, इसे सुनकर श्रीप्रतापरुद्र महाराज का मन विचलित हो उठा।

भट्ट और राय को बुलाकर प्रभु को नहीं जाने देने हेतु प्रार्थना—

**सार्वभौम, रामानन्द, आनि' दुइ जन।**
**दुँहाके कहेन राजा विनय-वचन॥४॥**
**''नीलाद्रि छाड़ि' प्रभुर मन अन्यत्र जाइते।**
**तोमरा करह यत्न ताँहारे राखिते॥५॥**
**ताँहा बिना एइ राज्य मोरे नाहि भाय।**
**गोसाञि राखिते करह नाना उपाय॥''६॥**

**४-६। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य तथा श्रीरामानन्द राय—इन दोनों को अपने पास बुलवाकर राजा ने दोनों को दीनतापूर्वक कहा—श्रीमन्महाप्रभु का मन नीलाचल को छोड़कर और कहीं जाने का है। आप दोनों उन्हें यहीं पर ही रखने का प्रयास कीजिए। श्रीमन्महाप्रभु के बिना यह राज्य मुझे नहीं सुहाता, श्रीचैतन्य गोसाञि को यहीं पर रखने के अनेक उपाय कीजिए।

प्रभु का वृन्दावन जाने हेतु राय और भट्ट के साथ परामर्श—

**रामानन्द, सार्वभौम, दुइजना-स्थाने।**
**तबे युक्ति करे प्रभु,—'जाब वृन्दावने'॥७॥**

**७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने जब श्रीरामानन्द और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य को देखा तो उन्होंने उन दोनों से परामर्श करते हुए कहा कि मैं वृन्दावन जाऊँगा।

विच्छेद के भय से दोनों के द्वारा प्रभु को वृन्दावन की बात भुलाकर मना करना—

**दुँहे कहे,—''रथयात्रा कर दरशन।**
**कार्तिक आइले, तबे करिह गमन॥''८॥**
**कार्तिक आइले कहे,—''एबे महा-शीत।**
**दोलयात्रा देखि' जाओ,—एइ भाल रीत।''९॥**
**आजि-कालि करि' उठाय विविध उपाय।**
**जाइते सम्मति ना देय, विच्छेदेर भय॥१०॥**

**८-१०। प० अनु०—**श्रीरायरामानन्द एवं श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा कि आप अभी यहीं पर रहकर रथ-यात्रा का दर्शन कीजिए। कार्तिक मास के आने पर तब वृन्दावन के लिये जाना। कार्तिक मास के आने पर उन्होंने कहा कि अभी तो बहुत अधिक ठण्ड पड़ रही है, दोल यात्रा (होली) के दर्शन करके जाना—यही अति उत्तम होगा। आज-कल करके वे बहुत प्रकार के उपाय निकालते तथा विच्छेद के भय से श्रीमन्महाप्रभु को जाने की सम्मति न देते।

भगवान् स्वतन्त्र होने पर भी भक्तवश—

**यद्यपि स्वतन्त्र प्रभु, नहे निवारण।**
**भक्त-इच्छा बिना प्रभु ना करे गमन॥११॥**

**११। प० अनु०—**यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु स्वतन्त्र हैं, उन्हें कोई रोक नहीं सकता, तब भी भक्त की इच्छा के बिना प्रभु कभी गमन नहीं करते।

तीसरे-वर्ष गौड़ीय भक्तों की प्रभु के दर्शन करने की इच्छा—

**तृतीय वत्सरे सब गौड़ेर भक्तगण।**
**नीलाचले चलिते सबार हैल मन॥१२॥**

**१२। प० अनु०—**तीसरे वर्ष भी गौड़देश के सभी भक्तों का नीलाचल जाने का मन हुआ।

प्रवीण अद्वैताचार्य के निकट सभी
का जाना और अद्वैत की पुरी यात्रा—

**सबे मेलि' गेला अद्वैत-आचार्येर पाशे।**
**प्रभु देखिते आचार्य चलिला उल्लासे॥१३॥**

**१३। प॰ अनु॰—**सभी भक्त मिलकर श्री अद्वैताचार्य के पास गये तथा श्री अद्वैताचार्य भी श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये अत्यधिक उल्लास पूर्वक चल दिये।

प्रभु के निषेध करने पर भी प्रभु के प्रेमिक भक्त
निताई की प्रभु के दर्शन हेतु पुरी-यात्रा—

**यद्यपि प्रभुर आज्ञा गौड़ेते रहिते।**
**नित्यानन्द-प्रभुके प्रेमभक्ति-प्रकाशिते॥१४॥**
**तथापि चलिला महाप्रभुरे देखिते।**
**नित्यानन्देर प्रेम-चेष्टा के पारे बुझिते॥१५॥**

**१४-१५। प॰ अनु॰—**यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को प्रेमभक्ति को प्रकाशित करने के लिये बङ्गाल में रहने की ही आज्ञा दी थी, तब भी वे श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये चल पड़े। श्रीनित्यानन्द प्रभु की प्रेममयी चेष्टाओं को कौन समझ सकता है।

गौड़ीय-भक्तों की यात्रा—

**आचार्यरत्न, विद्यानिधि, श्रीवास, रामाई।**
**वासुदेव, मुरारि, गोविन्दादि तिन-भाई॥१६॥**

**१६। प॰ अनु॰—**आचार्यरत्न, विद्यानिधि, श्री वास, रामाई, वासुदेव, मुरारि तथा गोविन्द आदि तीन भाई भी चल पड़े।

पाणिहाटी के राघव, कुलीन ग्राम
के सत्यराज आदि का गमन—

**राघव पण्डित निज-झालि साजाञा।**
**कुलीन-ग्रामवासी चले पट्टडोरी लञा॥१७॥**

**१७। प॰ अनु॰—**श्रीराघव पण्डित अलग-अलग वस्तुओं की बहुत सी पोटलियों को सजाकर तथा कुलीन ग्रामवासी पट्टडोरी (पाट की बनी रस्सी) को लेकर चल दिये।

खण्ड से नरहरि आदि की यात्रा—

**खण्डवासी नरहरि, श्री रघुनन्दन।**
**सर्व-भक्त चले, तार के करे गणन॥१८॥**

**१८। प॰ अनु॰—**खण्डवासी नरहरि, श्रीरघुनन्दन तथा और भी बहुत से भक्त चलने लगे, उन सबकी गणना कौन कर सकता है?

सभी के तत्वावधायक और परिचालक
पथज्ञ (पथ जानने वाले) शिवानन्द—

**शिवानन्द-सेन करे घाटि समाधान।**
**सबारे पालन करि' सुखे लञा जान॥१९॥**

**१९। प॰ अनु॰—**श्रीशिवानन्द सेन घाटी-समाधान कर रहे थे तथा सभी का पालन करते हुए उन्हें सुखपूर्वक लेकर जा रहे थे।

**अनुभाष्य**

१९। घाटी-समाधान,—अर्थकृच्छता-पूरण (जिसके पास अर्थ का अभाव है, उसके अभाव को दूर कर देते) अथवा निर्दिष्ट पथ और नदीघाट को पार करने के लिये यात्रियों के द्वारा दिये जाने वाले कर को चुका देते।

**सबार सर्वकार्य करेन, देन वासा-स्थान।**
**शिवानन्द जाने उड़िया-पथेर सन्धान॥२०॥**

**२०। प॰ अनु॰—**श्रीशिवानन्द सेन सभी के समस्त कार्यों को कर देते तथा उन्हें रहने का स्थान प्रदान करते। वे उड़ीसा के मार्ग के विषय में सब जानते थे।

प्रभु के दर्शन के लिये वैष्णव-गृहणीगणों का जाना—
(१) अद्वैतपत्नी की यात्रा—

**से वत्सर प्रभु देखिते सब ठाकुराणी।**
**चलिला आचार्य-सङ्गे अच्युत जननी॥२१॥**

**२१। प० अनु०—**उस वर्ष श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये सभी भक्तों की पत्नियाँ भी उनके साथ आयीं। श्रीअद्वैताचार्य के साथ उनकी पत्नी अच्युत की माता भी चल पड़ी।

(२) श्रीवास पण्डित की पत्नी एवं (३) शिवानन्द सेन की पत्नी की यात्रा—

**श्रीवास-पण्डित-सङ्गे चलिला मालिनी।**
**शिवानन्द-सङ्गे चले ताँहार गृहिणी॥२२॥**

**२२। प० अनु०—**श्रीवास पण्डित के साथ उनकी पत्नी श्रीमालिनी तथा श्रीशिवानन्द सेन के साथ उनकी पत्नी चलने लगी।

शिवानन्द-पुत्र चैतन्यदास की यात्रा—

**शिवानन्देर बालक, नाम—चैतन्य-दास।**
**तिंहो चलियाछे प्रभुरे देखिते उल्लास॥२३॥**

**२३। प० अनु०—**श्रीशिवानन्द सेन के पुत्र, जिनका नाम चैतन्यदास था, वह भी उल्लासपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये चल पड़े।

(४) चन्द्रशेखर की पत्नी की यात्रा—

**आचार्यरत्न-सङ्गे चले ताँहार गृहिणी।**
**ताँहार प्रेमेर कथा कहिते ना जानि॥२४॥**

**२४। प० अनु०—**श्रीआचार्यरत्न के साथ उनकी पत्नी चल रही थी, मैं नही जानता कि उनके श्रीमन्महाप्रभु के प्रति प्रेम की कथा का किस प्रकार से वर्णन किया जाये।

प्रभु की सेवा के उद्देश्य से साथ में प्रभु को प्रिय लगने वाली वस्तुओं को लेना—

**सब ठाकुराणी महाप्रभुके भिक्षा दिते।**
**प्रभुर नाना प्रिय द्रव्य निल घर हैते॥२५॥**

**२५। प० अनु०—**सभी भक्तों की पत्नियों ने श्रीमन्महाप्रभु के भोजन के लिये उन्हें प्रिय लगने वाले द्रव्यों को अपने घर से ले लिया।

शिवानन्द के द्वारा सभी कार्यों का सम्पादन—

**शिवासेन-सेन करे सब समाधान।**
**घाटियाल प्रबोधि' देन सबारे वासा-स्थान॥२६॥**
**भक्ष्य दिया करेन सबार सर्वत्र पालने।**
**परम आनन्दे जान प्रभुर दरशने॥२७॥**

**२६-२७। प० अनु०—**श्रीशिवानन्द सेन सब प्रकार के समाधान कर देते थे, वे घाटी के लोगों को प्रसन्न करके सभी भक्तों को रहने का स्थान प्रदान करते। भोजन की वस्तुएँ देकर वे सभी का सर्वत्र पालन करते तथा परम आनन्द पूर्वक श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये जा रहे थे।

### अनुभाष्य

२६। घाटियाल,—पथ को दिखलाने वाले; ये यात्रियों से अन्याय पूर्वक अवैध रूप से अधिक अर्थ संग्रह करते हैं; शिवानन्द ने उनके न्याय से प्राप्त करने योग्य अर्थ को देकर उन्हें अधिक माँगने की भावना का त्याग करने का अनुरोध किया।

रेमुणा में सभी का गोपीनाथ-दर्शन, माधवपुरी के अनुसरण में अद्वैत का नृत्य-कीर्त्तन—

**रेमुणाय आसिया कैल गोपीनाथ-दरशन।**
**आचार्य करिल ताँहा कीर्त्तन, नर्त्तन॥२८॥**

**२८। प० अनु०—**रेमुणा में आकर सभी ने (क्षीरचोरा) गोपीनाथ का दर्शन किया। श्रीअद्वैत आचार्य ने वहाँ कीर्त्तन तथा नृत्य किया।

पूर्व परिचय के कारण सेवकों द्वारा नित्यानन्द का अभिनन्दन—

**नित्यानन्देर परिचय सब-लोक-सने।**
**बहुत सम्मान आसि' कैल सेवकगणे॥२९॥**

**२९। प० अनु०—**श्रीनित्यानन्द प्रभु का वहाँ के सभी लोगों के साथ परिचय था, श्री गोपीनाथ के सेवकों ने आकर उनका बहुत अधिक सम्मान किया।

सभी के द्वारा वहाँ पर रात्रि व्यतीत
करना और खीर प्रसाद का सम्मान—

**सेइ रात्रि सब महान्त ताहाञि रहिला।**
**बार क्षीर आनि' आगे सेवक धरिला॥३०॥**
**क्षीर बाँटि' सबारे दिल प्रभु-नित्यानन्द।**
**क्षीर-प्रसाद पाञा सबार बाड़िल आनन्द॥३१॥**

**३०-३१। प० अनु०—**उस रात्रि सभी महान्त वहीं पर ही रह गये, श्रीगोपीनाथ के सेवक ने बारह खीर के कुल्हड़ लाकर उनके आगे रख दिये। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने खीर को सभी में बाँट दिया। खीर प्रसाद पाकर सभी का आनन्द बढ़ गया।

नित्यानन्द द्वारा श्रीमाधवेन्द्र पुरी, गोपाल एवं
गोपीनाथ के आगमन के वृतान्त का वर्णन—

**माधवपुरीर कथा, गोपाल-स्थापन।**
**ताँहारे गोपाल जैछे मागिल चन्दन॥३२॥**

पिछली यात्रा में महाप्रभु के मुख से सुने
हुए विषय का वर्णन, भक्तों में हर्ष—

**ताँर लागि' गोपीनाथ क्षीर चुरि कैल।**
**महाप्रभुर मुखे आगे ए कथा शुनिल॥३३॥**
**सेइ कथा सबार मध्ये कहे नित्यानन्द।**
**शुनिया वैष्णव-मने बाड़िल आनन्द॥३४॥**

**३२-३४। प० अनु०—**श्रीनित्यानन्द प्रभु ने 'श्रीमाधवेन्द्रपुरी की कथा, गोवर्धन में गोपाल की स्थापना, गोपाल के द्वारा श्रीमाधवेन्द्र पुरी से चन्दन माँगना तथा उनके लिये गोपीनाथ के द्वारा खीर की चोरी करना' श्रीमन्महाप्रभु के मुख से पहले जो ये सब कथाएँ श्रवण की थी, उन्होंने सभी भक्तों को उन कथाओं का श्रवण कराया। कथाओं को सुनकर वैष्णवों के मन में आनन्द बहुत अधिक बढ़ गया।

### अनुभाष्य

**३२-३४।** महाप्रभु के मुख से,—महाप्रभु ने पहले श्रीपाद ईश्वरी पुरी के मुख से श्रवण किया था (मध्य चतुर्थ परिच्छेद १८ संख्या); शान्तिपुर में श्रीअद्वैत के घर पर कुछ दिन रहकर श्रीमन्महाप्रभु ने नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर पण्डित और मुकुन्द के साथ नीलाचल जाने के मार्ग में रेमुणा आकर उन्हें—श्रीमाधवेन्द्र पुरी, वृन्दावन के गिरिधारी गोपाल और रेमुणा के क्षीरचोरा गोपीनाथ के उपाख्यान का वर्णन किया था। मध्य चतुर्थ परिच्छेद १९-१९० संख्या द्रष्टव्य)।

सभी का कट्टक में आगमन, साक्षीगोपाल-दर्शन
और निताई के द्वारा साक्षीगोपाल की
कहानी का वर्णन—

**एइमत चलि' चलि' कटक आइला।**
**साक्षीगोपाल देखि' सबे से दिन रहिला॥३५॥**
**साक्षीगोपालेर कथा कहे नित्यानन्द।**
**शुनिया वैष्णव-मने बाड़िल आनन्द॥३६॥**

**३५-३६। प० अनु०—**इस प्रकार चलते-चलते भक्तगण कट्टक आ पहुँचे। वहाँ पर साक्षीगोपाल के दर्शन करके सभी उस दिन वहीं पर रह गये। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने साक्षी गोपाल की कथा सुनायी, जिसे सुनकर वैष्णवों के मन का आनन्द बढ़ गया।

### अनुभाष्य

**३६।** साक्षी गोपाल की कथा,—मध्य पञ्चम परिच्छेद ८-१३८ संख्या द्रष्टव्य।

प्रभु के दर्शन के लिये व्यग्र सभी का
द्रुत-गति से पुरी में आगमन—

**प्रभुके मिलिते सबार उत्कण्ठा अन्तरे।**
**शीघ्र करि' आइला सबे श्रीनीलाचले॥३७॥**

**३७। प० अनु०—**सभी भक्तों के हृदय में श्रीमन्महाप्रभु से मिलने की उत्कण्ठा थी, इसलिए सभी बहुत जल्दी से श्रीनीलाचल में आ गये।

गौड़ीय-भक्तों के आठारनाला में आगमन के संवाद को सुनकर प्रभु द्वारा भक्तों की अगवानी के लिये गोविन्द के हाथ माला-भेजना—

**आठारनालाके आइला गोसाञि शुनिया।**
**दुइमाला पाठाइला गोविन्द हाते दिया॥३८॥**

**३८। प॰ अनु॰—**जब श्रीचैतन्य गोसाञि ने सुना कि भक्त आठारनाला आ पहुँचे है तब उन्होंने गोविन्द के हाथ दो मालाएँ भिजवाई।

**अनुभाष्य**

३८। आठारनाला,—श्रीपुरुषोत्तम-नगर के प्रान्त-भाग में पुल-विशेष।

निताई और अद्वैत का माला ग्रहण करना—

**दुइ माला गोविन्द दुइजने पराइल।**
**अद्वैत, अवधूत-गोसाञि बड़ सुख पाइल॥३९॥**

**३९। प॰ अनु॰—**श्रीगोविन्द प्रभु ने वे दो मालाएँ श्रीअद्वैताचार्य तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु के गले में पहनायी। श्रीअद्वैताचार्य तथा अवधूत श्रीनित्यानन्द गोसाञि बहुत प्रसन्न हुए।

वहाँ से सभी का जाते हुए नृत्य-कीर्त्तन-आरम्भ—

**ताहाञि आरम्भ कैल कृष्ण-सङ्कीर्त्तन।**
**नाचिते नाचिते चलि' आइला दुइजन॥४०॥**

**४०। प॰ अनु॰—**वहीं से ही सभी ने कृष्ण-सङ्कीर्त्तन करना आरम्भ कर दिया। श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभु नाचते-नाचते हुए चलने लगे।

स्वरूप आदि के द्वारा प्रभु का फिर से माला भेजना—

**पुनः माला दिया स्वरूपादि निजगणे।**
**आगु बाड़ि' पाठाइल शचीर नन्दने॥४१॥**

**४१। प॰ अनु॰—**श्रीशचीनन्दन ने पुनः श्री स्वरूप आदि निजगणों को माला देकर भक्तों की अभ्यर्थना (अगवानी) करने के लिये भेजा।

नरेन्द्र सरोवर पर मिलकर सभी को माला-प्रदान—

**नरेन्द्र आसिया, ताँहा सबारे मिलिला।**
**महाप्रभुर दत्त माला सबारे पराइला॥४२॥**

**४२। प॰ अनु॰—**श्रीस्वरूप दामोदर आदि नरेन्द्र सरोवर पर सभी भक्तों से मिले तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा प्रदत्त मालाएँ सभी को पहनायी।

स्वयं सिंहद्वार पर आकर सभी भक्तों के साथ प्रभु का मिलन—

**सिंहद्वार-निकटे आइला शुनि' गौरराय।**
**आपने आसिया प्रभु मिलिला सबाय॥४३॥**

**४३। प॰ अनु॰—**'भक्तजन सिंहद्वार के निकट आ गये हैं'—ऐसा सुनकर श्रीगौरराय स्वयं आकर सभी भक्तों से मिले।

जगन्नाथ-दर्शन के बाद सभी भक्तों के साथ वासस्थान पर आगमन—

**सबा लञा कैल जगन्नाथ-दरशन।**
**सबा लञा आइला पुनः आपन-भवन॥४४॥**

**४४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने सभी को अपने साथ लेकर जगन्नाथ का दर्शन किया तथा फिर सभी भक्तों को अपने वासस्थान पर ले आये।

सभी को वाणीनाथ और काशीमिश्र द्वारा लाया गया प्रसाद-प्रदान—

**वाणीनाथ, काशीमिश्र प्रसाद आनिल।**
**स्वहस्ते सबारे प्रभु प्रसाद खाओयाइल॥४५॥**

**४५। प॰ अनु॰—**श्रीवाणीनाथ और श्री काशीमिश्र भगवान् श्री जगन्नाथ का प्रसाद लेकर आये तथा श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं अपने हाथों से सभी को प्रसाद परिवेशन किया।

सभी को पूर्ववर्ष की भाँति, निर्दिष्ट
वास-स्थान आदि प्रदान—

**पूर्व-वत्सरे जाँर जेइ वासा-स्थान।**
**ताँहा सबा पाठाञा कराइल विश्राम॥४६॥**

४६। **प० अनु०—**पिछले वर्ष जिस भक्त का जो वासस्थान था, श्रीमन्महाप्रभु ने उन सभी को वहीं भेजकर विश्राम करवाया अर्थात् उनके वही पर रहने की व्यवस्था की।

भक्तों का प्रभु के साथ पुरी में चार मास अवस्थान—

**एइमत भक्तगण रहिला चारि मास।**
**प्रभुर सहित करे कीर्तन-विलास॥४७॥**

**४७। प० अनु०—**इस प्रकार सभी भक्तों ने चार मास तक वही रहकर श्रीमन्महाप्रभु के साथ कीर्त्तन-विलास किया।

रथयात्रा के समय सभी के द्वारा गुण्डिचा-मार्जन—

**पूर्ववत् रथयात्रा-काल जबे आइल।**
**सबा लञा गुण्डिचा-मन्दिर प्रक्षालिल॥४८॥**

**४८। प० अनु०—**पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति जब रथ यात्रा का समय आया, श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों को अपने साथ लेकर गुण्डिचा-मन्दिर की धुलाई की।

सत्यराज आदि का जगन्नाथ को प्रभु
द्वारा आदेश दी गयी पट्टडोरी-प्रदान—

**कुलीनग्रामी पट्टडोरी जगन्नाथे दिल।**
**पूर्ववत् रथ-अग्रे नर्तन करिल॥४९॥**

**४९। प० अनु०—**कुलीन ग्राम वासी भक्तों ने पट्टडोरी जगन्नाथ के लिये दी। श्रीमन्महाप्रभु ने पूर्व वर्ष की भाँति ही रथ के आगे नृत्य किया।

रथ के आगे नृत्य के बाद सभी का उपवन में विश्राम—

**बहु नृत्य करि' पुनः चलिल उद्याने।**
**वापी-तीरे ताँहा जा'ई करिल विश्रामे॥५०॥**

**५०। प० अनु०—**बहुत अधिक नृत्य करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु पुनः जगन्नाथ वल्लभ उद्यान की ओर चल दिये तथा वहाँ वापी (बावड़ी) के तट पर पहुँच कर उन्होंने विश्राम किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५०। वापी,—बावड़ी, (सीढ़ी वाला कुआँ ) जलाशय।

**अनुभाष्य**

५०। उद्याने,—जगन्नाथ वल्लभ नामक उद्यान में; वापीतीरे,—नरेन्द्र सरोवर के तट पर।

राढ़-देश के ब्राह्मण कृष्ण दास के द्वारा
प्रभु का अभिषेक और प्रभु को सुख—

**राढ़ी एक विप्र, तिंहो,—नित्यानन्द-दास।**
**महा-भाग्यवान तिंहो, नाम—कृष्णदास॥५१॥**
**घट भरि' प्रभुर तिंहो अभिषेक कैल।**
**ताँर अभिषेके प्रभु महा-तृप्त हैल॥५२॥**

**५१-५२। प० अनु०—**एक राढ़देश के महाभाग्यशाली ब्राह्मण जो कि श्रीनित्यानन्द प्रभु के आश्रित थे, तथा जिनका नाम कृष्णदास था, उन्होंने एक घड़े को भरकर वहीं श्रीमन्महाप्रभु का अभिषेक किया। उसके द्वारा किये गये अभिषेक से श्रीमन्महाप्रभु अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

सभी के द्वारा बलगण्डि में लगे भोग प्रसाद का सम्मान—

**बलगण्डि-भोगेर बहु प्रसाद आइल।**
**सबा सङ्गे महाप्रभु प्रसाद खाइल॥५३॥**

**५३। प० अनु०—**बलगण्डि में लगे भोग का बहुत सा प्रसाद आया तथा श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों के साथ उस प्रसाद को ग्रहण किया।

सभी के द्वारा हेरा-पञ्चमी-यात्रा का दर्शन—

**पूर्ववत् रथयात्रा कैल दरशन।**
**हेरापञ्चमी-यात्रा देखे लञा भक्तगण॥५४॥**

**५४। प० अनु०—**पूर्व वर्ष की भाँति ही श्रीमन्महाप्रभु ने रथयात्रा का दर्शन किया तथा श्री मन्महाप्रभु ने अपने भक्तों को साथ लेकर हेरापञ्चमी-यात्रा का दर्शन किया।

आँधी-तूफान में प्रभु का अकेले अद्वैत के घर में भिक्षा-ग्रहण करना—

**आचार्य-गोसाञि प्रभुर कैल निमन्त्रण।**
**तार मध्ये कैल जैछे झड़-वरिषण॥५५॥**

चैतन्यभागवत में उसका वर्णन—

**विस्तारि' वर्णियाछेन दास-वृन्दावन।**
**श्रीवास प्रभुरे तबे कैल निमन्त्रण॥५६॥**

मालिनीदेवी के द्वारा प्रभु की सेवा—

**प्रभुर प्रिय-व्यञ्जन सब रान्धेन मालिनी।**
**'भक्त्ये दासी'-अभिमान, 'स्नेहेते जननी'॥५७॥**

**५५-५७। प० अनु०—**श्रीअद्वैताचार्य गोसाञि ने श्रीमन्महाप्रभु को प्रसाद पाने के लिये अपने वासस्थान पर निमन्त्रण किया तथा उसी बीच जैसे आँधी-वर्षा आयी। उसका श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने श्रीचैतन्यभागवत में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। श्रीवास पण्डित ने भी श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया। श्रीवास पण्डित की पत्नी श्री मालिनी देवी जो भक्तिवश तो स्वयं में श्रीमन्महाप्रभु की दासी का अभिमान रखती थी तथा वात्सल्य में वह प्रभु में माता की भाँति स्नेह रखती थी, उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को प्रिय लगने वाले सब व्यञ्जनों का रन्धन किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**५५-५६।** चैः भाः अन्त्य, अष्टम अध्याय—एकदिन श्री अद्वैत ने महाप्रभु को निमन्त्रण करके मन में विचार किया,—'यदि अन्य कोई सन्यासी प्रभु के साथ न आये तो प्रभु को अच्छी तरह से खिलाऊँगा।' अन्यान्य सभी सन्यासी मध्याह्न क्रिया हेतु बाहर निकले ही थे कि ऐसे समय तूफान के आ जाने से वे आ नहीं पाये, प्रभु ने अकेले ही आकर श्री अद्वैत के अन्न-व्यञ्जन का भोजन किया।

चन्द्रशेखर के द्वारा प्रभु की सेवा—

**आचार्यरत्न-आदि जत मुख्य भक्तगण।**
**मध्ये मध्ये प्रभुरे करेन निमन्त्रण॥५८॥**

**५८। प० अनु०—**आचार्यरत्न आदि जितने भी मुख्य-मुख्य भक्त हैं, बीच-बीच में वे सभी श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण देते।

चातुर्मास्य के अन्त में निताई के साथ एकान्त में विचार—

**चातुर्मास्य-अन्ते पुनः नित्यानन्दे लञा।**
**किबा युक्ति करे नित्य निभृते बसिया॥५९॥**

**५९। प० अनु०—**चातुर्मास्य के अन्त में श्री मन्महाप्रभु पुनः श्रीनित्यानन्द प्रभु को नित्यप्रति अपने साथ एकान्त में बैठाकर पता नहीं क्या परामर्श करते थे।

अद्वैत प्रभु के द्वारा रहस्यपूर्ण तर्जा (प्रहेली) का पाठ—

**आचार्य-गोसाञि प्रभुके कहे ठारे-ठोरे।**
**आचार्य तर्ज्जा पड़े, केह बुझिते ना पारे॥६०॥**

**६०। प० अनु०—**श्रीअद्वैताचार्य श्रीमन्महाप्रभु को इङ्गित के माध्यम से कुछ-कुछ कहते तथा बीच-बीच में कुछ प्रहेली बोलते, जिसे कोई समझ नहीं पाता था।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६०। तर्ज्जा,—पयार आदि छन्दमय बात, जिसे दूसरे लोग आसानी से नहीं समझ सकते।

प्रभु के द्वारा प्रहेली में कहे गये विचार
को स्वीकार करने से अद्वैत का आनन्द—

**ताँर मुख देखि' हासे शचीर नन्दन।**
**अङ्गीकार जानि' आचार्य करेन नर्त्तन॥६१॥**

**६१। प० अनु०—**श्री अद्वैताचार्य के मुख को देखकर शचीनन्दन हँसते थे तथा वे इसी से समझ लेते कि श्रीमन्महाप्रभु ने मेरी बात को स्वीकार कर लिया है तथा वे नृत्य करने लगते।

गौर और अद्वैत का परस्पर में संलाप आदि—दूसरों की समझ से परे; प्रभु के द्वारा अद्वैत को विदायी प्रदान—

**किबा प्रार्थना, किबा आज्ञा—केह ना बुझिल।**
**आलिङ्गन करि' प्रभु ताँरे विदाय दिल॥६२॥**

**६२। प० अनु०—**क्या श्रीअद्वैताचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु से कोई प्रार्थना की थी या फिर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को कोई आज्ञा प्रदान की है—इसे कोई भी नहीं समझ पाया। श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें आलिङ्गन प्रदान करके विदायी दी।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६२। श्रीअद्वैताचार्य ने प्रहेली के द्वारा पता नहीं क्या प्रार्थना की एवं श्रीशचीनन्दन के मुस्कुराने का भी न जाने क्या अर्थ हुआ,—उसे अन्य कोई भी नहीं समझ पाया।

निताई को प्रतिवर्ष पुरी में नहीं आकर गौड़देश
में नाम-प्रेम-प्रचार करने का आदेश—

**नित्यानन्दे कहे प्रभु,—''शुनह, श्रीपाद।**
**एइ आमि मागि, तुमि करह प्रसाद॥६३॥**
**प्रतिवर्ष नीलाचले तुमि ना आसिबा।**
**गौड़े रहि' मोर इच्छा सफल करिबा॥६४॥**

**६३-६४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु से कहा—हे श्रीपाद, सुनिये! मैं आपसे कुछ माँगता हूँ, आप कृपा कीजिए। आप प्रत्येक वर्ष नीलाचल मत आना तथा गौड़देश (बङ्गाल) में रहकर मेरी इच्छा को पूर्ण करना।

निताई के माध्यम से प्रभु द्वारा
अत्यन्त कठिन कार्य करना—

**ताँहा सिद्धि करे—हेन अन्ये ना देखिये।**
**आमार 'दुष्कर' कर्म, तोमा हैते हये॥''६५॥**

**६५। प० अनु०—**वहाँ पर अन्य कोई मेरे मन की अभिलाषा को पूर्ण कर पायेगा—ऐसा मैं किसी अन्य को नहीं देखता हूँ। मेरे द्वारा अभिलषित यह अत्यन्त कठिन कार्य केवल आपके द्वारा ही हो सकता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६४-६५। गौड़देश में महाप्रभु की अनुपस्थिति में श्रीनित्यानन्द प्रभु के बिना अन्य किसी के भी द्वारा चण्डाल पर्यन्त सभी को नाम-प्रेमदान रूपी उनके उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

महाप्रभु के भक्त
प्रभु-नित्यानन्द—

**नित्यानन्द कहे,—''आमि 'देह', तुमि 'प्राण'।**
**'देह' 'प्राण' भिन्न नहे,—एइ त' प्रमाण॥६६॥**
**अचिन्त्यशक्तये कर तुमि ताहार घटन।**
**जे कराह, सेइ करि' नाहिक नियम॥''६७॥**

**६६-६७। प० अनु०—**श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा—मैं देह हूँ तथा आप प्राण हैं। देह तथा प्राण भिन्न नहीं है—यही तो प्रमाण है। अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा ही आप उसे घटित कराते हैं। आप मुझसे जो कराते है, मैं वही करता हूँ। मेरा अपना कोई नियम नहीं है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६६-६७। नित्यानन्द ने कहा,—मैं 'देह', और आप 'प्राण' हो; ये दोनों वस्तुएँ कभी भी अलग नहीं हैं; तब भी आप—नीलाचल में, एवं मैं—गौड़ (बङ्गाल) में, ऐसा जो अलग-अलग रहना है, वह केवल आपकी अचिन्त्य शक्ति से ही होता है।

निताई और अन्यान्य सभी भक्तों को विदायी-प्रदान—

**ताँरे विदाय दिल प्रभु करि' आलिङ्गन।**
**एइमत विदाय दिल सब भक्तगण॥६८॥**

**६८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को आलिङ्गन करके उन्हें विदायी दी। इस प्रकार उन्होंने सभी भक्तों को विदायी दी।

सत्यराज आदि की पिछले वर्षों की भाँति प्रभु से अपने कर्त्तव्य के विषय में जिज्ञासा—

**कुलीनग्रामी पूर्ववत् कैल निवेदन।**
**"प्रभु, आज्ञा कर,—आमार कर्त्तव्य साधन॥"६९॥**

**६९। प० अनु०—**कुलीन ग्राम वासियों ने पूर्व वर्ष की भाँति निवेदन करते हुए कहा कि हे प्रभु! हमें आज्ञा दीजिए कि हमारा कर्त्तव्य क्या करना है।

प्रभु का उत्तर—

**प्रभु कहे,—"वैष्णव-सेवा, नाम-सङ्कीर्त्तन।**
**दुइ कर, शीघ्र पाबे श्रीकृष्ण-चरण"॥७०॥**

**७०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने उत्तर दिया—वैष्णव-सेवा तथा नाम-सङ्कीर्तन—इन दो कार्यों को करो, तुम्हें शीघ्र ही श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति होगी।

सत्यराज आदि के द्वारा प्रभु से 'वैष्णव' के लक्षण की जिज्ञासा—

**तेंहो कहे,—"के वैष्णव, कि ताँर लक्षण?"**
**तबे हासि' कहे प्रभु जानि' ताँर मन॥७१॥**

**७१। प० अनु०—**उन्होंने प्रश्न किया—वैष्णव कौन है, उनके लक्षण क्या है? तब श्रीमन्महाप्रभु उनके मन की भावना को जानकर हँसते हुए बोले—।

प्रभु के द्वारा 'मध्यम-वैष्णव' के लक्षण का निर्देश—

**"कृष्णनाम निरन्तर जाँहार वदने।**
**सेइ वैष्णव-श्रेष्ठ, भज ताँहार चरणे॥"७२॥**

**७२। प० अनु०—**कृष्णनाम निरन्तर जिनके मुख में विराजमान रहता है, वे वैष्णवों में श्रेष्ठ हैं, उनके चरणों की सेवा करो।

### अनुभाष्य

**७२।** जिस वैष्णव के मुख से 'निरन्तर' श्रीकृष्णनाम उच्चारित होता है, उसे 'कोमल श्रद्धा वाले सकृत (एकबार) कृष्णनाम का उच्चारण करने वाले कनिष्ठ वैष्णव' की अपेक्षा श्रेष्ठ अर्थात् 'मध्यम भागवत' जानना ; उसके चरणों का भजन करना। श्रीरूप गोस्वामी ने उपदेशामृत' में—"प्रणातिभिश्च भजन्तमीशम्" अर्थात् मध्यमाधिकारी भागवत के परस्पर के प्रति 'प्रणाम' रूपी व्यवहार करने के लिये उपदेश प्रदान किया है। निरन्तर,—'अन्तर' अर्थात् जिसमें व्यवधान—अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान और शिथिलता रूपी चेतन-वृत्तिचालन-राहित्य अर्थात् जाड्य (आलस्य), यथा श्रीरूप प्रभु (भः रः सिः पूर्व विः-प्रथम लहरी—"अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥" अथवा, 'अन्तर'-शब्द से 'देह' (इन्द्रियतृप्ति), 'द्रविण' (अशुल्क अर्थ संग्रह-चेष्टा), 'जनता' (असत्सङ्ग अथवा दुःसङ्ग) 'लोभ' (जिह्वालाम्पट्य अथवा लौल्य) एवं पाषण्डता (विष्णु-विग्रह में शिला, काष्ठ, स्वर्ण, पीतल इत्यादि धातु' बुद्धि, गुरु के प्रति 'मर्त्त्य' बुद्धि, वैष्णव में 'जाति' अथवा 'पार्थिव' बुद्धि, विष्णु-वैष्णव के चरणजल में सामान्य जल-बुद्धि, विष्णु के नाम-मन्त्र में अथवा सद्गुरु द्वारा प्रदत्त नाम में 'जागतिक शब्द सामान्य-बुद्धि, सर्वेश्वरेश्वर विष्णु में अथवा विष्णु परतत्त्व स्वयंरूप श्रीकृष्ण में एवं उनकी स्व-स्व शक्तिवर्ग में अन्यान्य त्रिगुणाश्रित देवताओं के साथ समान बुद्धि, फलस्वरूप अनात्मा अथवा अचित् के आश्रय में अथवा अचित् से आत्मा अथवा चेतना की उपलब्धि की चेष्टा, या फिर

अप्राकृत वास्तव वस्तु को प्राकृत, खण्ड, इन्द्रियों के द्वारा माँप योग्य वस्तु के समान समझना ; अथवा, दूसरे शब्दों में, द्वैतबुद्धि से श्रीहरि-गुरु-वैष्णवों को 'अनात्मीय' समझना)—ये सभी अपराध को उत्पन्न करने वाले हैं। भक्ति सन्दर्भ में श्रीजीवप्रभु की उक्ति (२६५ संख्या में)—''नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतम्'' इत्यादौ देहद्रविणादि-निमित्तक-'पाषण्ड' शब्देन च दश अपराधा लक्ष्यन्ते, पाषण्ड-मयत्वात् तेषाम्।'' (भा ११/२/४६)—''ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च। प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥'' 'सनातन शिक्षा में' मध्य २२ परिच्छेद—'श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी। 'उत्तम', 'मध्यम', 'कनिष्ठ'—श्रद्धा-अनुसारी॥ शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ़ श्रद्धावान्। 'मध्यम अधिकारी' सेइ महाभाग्यवान्॥ रति-प्रेम-तारतम्ये भक्ति तरतम।'' मध्यम-भागवत की श्रीनाम में प्रीति वर्धित होने पर वह श्री नाम की परम प्रीति पूर्वक अनुक्षण कीर्तन-यज्ञ के द्वारा आराधना करके भगवान में 'प्रेम' स्थापित करता है। वह अप्राकृत श्रीनाम में अनुक्षण प्रीति-विशिष्ट होकर अनुशीलन करते-करते स्वयं को 'अप्राकृत कृष्णदास' के रूप में जान पाता है। पुनः, वे कभी-कभी श्रीनाम में अपेक्षाकृत स्वल्प रुचि वाले भक्त को नाम के अप्राकृत स्वरूप के विषय में समझाकर उस पर कृपा करते हैं। शुद्ध भक्त और भगवान् के प्रति सम्पूर्ण रूप से प्रीतिरहित विद्वेषी व्यक्तियों को 'कृष्ण के अप्राकृत-स्वरूप की अनुभूति से रहित आवृत-चेतन-वृत्ति और केवल-प्राकृत जानकर वह उनके सङ्ग का त्याग करता है। मध्यम अधिकारी शुद्धभक्ति के उपादान अथवा उपकरण आदि को भी 'अप्राकृत' कहकर समझ पाता है।

बाद में पुनः उनके द्वारा 'वैष्णव'-लक्षण की जिज्ञासा करने पर प्रभु का उत्तर—

**वर्षान्तरे पुनः ताँरा ऐछे प्रश्न कैल।**
**'वैष्णवेर तारतम्य' प्रभु शिखाइल॥७३॥**

**७३। प० अनु०—**एक वर्ष के बाद पुनः कुलीन-ग्रामवासियों ने ऐसा प्रश्न किया। श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें वैष्णवों के तारतम्य (श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर तथा श्रेष्ठतम) के विषय में सिखलाया।

प्रभु के द्वारा 'उत्तमाधिकारी अथवा महाभागवत' के लक्षण का निर्देश—

**जाँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम।**
**ताँहारे जानिह तुमि 'वैष्णव-प्रधान'॥७४॥**

**७४। प० अनु०—**जिनके दर्शन मात्र से मुख में श्रीकृष्णनाम आकर विराजमान हो जाएँ, उन्हें तुम वैष्णवों में प्रधान समझना।

### अनुभाष्य

७४। जिस वैष्णव को देखकर देखने वाले के मुख में कृष्णनाम स्वाभाविक रूप में ही आ जाता है, उसे स्वरूपसिद्ध 'महाभागवत' जानना। वे सम्पूर्ण रूप से उदबुद्ध, उद्दीप्त अथवा अनावृत चेतन वृत्ति विशिष्ट अथवा कृष्ण की अविमिश्रित शुद्धप्रेम-सेवा में निमग्न रहने के कारण सर्वदा जाग्रत अवस्था में अवस्थान करते हैं। वे भगवान् के ज्ञान और विज्ञान से समन्वित होने के कारण सर्वत्र कृष्ण अथवा कार्ष्ण (कृष्णभक्त, ऐसा देखनेवाले) होते हैं; उनके श्रीमुख से शुद्ध कृष्णनाम भलीभाँति अनुक्षण कीर्तित होता रहता है। वे स्वयं दिव्यनेत्र से युक्त होने के कारण कृष्ण-विस्मृति अथवा कृष्ण-विमुखता रूपी मोह-निद्रा में निद्रित अन्य जीवों के बन्द अज्ञानमय चक्षुओं को खोलकर अर्थात् उन्हें आलस्य से छुड़ाकर

दिव्यनेत्र प्रदान करके चेतन वृत्ति से युक्त कराके सदैव कृष्ण और कार्ष्ण की सेवा में नियुक्त करने में समर्थ हैं। 'ब्रह्माण्ड तारिते शक्ति धरे जने जने'' [ अर्थात्-ब्रह्माण्ड का उद्धार करने की शक्ति प्रत्येक वैष्णव रखता है ] एवं मध्य षष्ठ परिच्छेद २७९ संख्या—''लोहाके यावत् स्पर्शि हेम नाहि करे। तावत् स्पर्शमणि केह चिनिते ना पारे॥''[ अर्थात् जब तक स्पर्शमणि लोहे को स्पर्श करके उसे सोना नहीं बना देती, तब तक स्पर्शमणि को कोई पहचान नहीं पाता ] इत्यादि वाक्य इसी के सम्बन्ध में कहे गये हैं। श्रीरूप गोस्वामी ने 'उपदेशामृत' में—''शुश्रुषया भजनविज्ञ-मनन्यमन्य-निन्दादिशून्यहृदमीप्सित सङ्गलब्ध्या'' कहा है। श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख से कहे गये ''तृणादपि सुनीच'' श्लोक का सम्पूर्ण रूप से आचरण करने वाले एवं मध्य नवम परिच्छेद ३६-३७ संख्या के अनुसार वे आश्रय जातीय कृष्ण अथवा 'महाभागवत' हैं—वे ही शुद्ध हरि कीर्त्तन करने वाले हैं। अतएव ऐसे जड़ीय उच्च-नीच दर्शन से रहित अथवा अन्य व्यक्तियों की निन्दा आदि से रहित हृदय वाले व्यक्ति के निकट ही 'मध्यम-भागवत' सदैव श्रवण का इच्छुक होकर उनकी सब प्रकार से सेवा करके उनका सन्तोष विधान करने पर अन्त में उनकी कृपा के प्रभाव से वह मध्यम अधिकारी ही 'उत्तम-अधिकारी' बनने का सौभाग्य प्राप्त करता है। भा ११/२/४५—''सर्वभूतेषु यः पश्येद्-भगवद्भावमात्मनः। भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागव-तोत्तमः॥'' 'सनातन-शिक्षा में' मध्य २२ परिच्छेद—'श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी। 'उत्तम' 'मध्यम' 'कनिष्ठ' श्रद्धा अनुसारी॥ शास्त्रयुक्तये सुनिपुण, दृढ़ श्रद्धा जाँर। 'उत्तम अधिकारी' सेइ तारये संसार॥'' 'भगवान्, 'भक्ति' और 'भक्त'—इन तीन वस्तुओं में महाभागवत की अप्राकृत असंकुचित प्रेममयी दृष्टि; इसके अलावा उसका अन्य कोई दर्शन नहीं है—''सबे कृष्ण भजे,—एइमात्र जाने'' अर्थात् वे केवल मात्र इतना ही जानते है कि सभी कृष्ण का भजन कर रहे हैं'' अतएव वे कृष्ण के द्वारा ही सम्पूर्ण रूप से अङ्गीकार की गयी वस्तु हैं।

प्रभु के द्वारा तीन प्रकार के अधिकार के वैष्णवों के लक्षण का निर्देश—

**क्रम करि' कहे प्रभु 'वैष्णव'-लक्षण।**
**'वैष्णव', 'वैष्णवतर', आर 'वैष्णवतम'॥७५॥**

**७५। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने क्रमशः 'वैष्णव', 'वैष्णवतर' तथा 'वैष्णवतम' के लक्षण बतलाएँ।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६९-७५। कुलीनग्राम वासी भक्तों के पिछले वर्ष किये गये प्रश्न के उत्तर में अर्थात् 'जाँर मुखे एकबार शुनि कृष्णनाम' इत्यादि सुनकर भी कुलीनग्राम वासियों ने जब इस बार पुनः वही प्रश्न किया, तो प्रभु ने कहा,—जिसके मुख से निरन्तर कृष्णनाम सुनो, उसे 'वैष्णव श्रेष्ठ' जानकर उसके चरण का निरन्तर भजन करो। अगले वर्ष जब कुलीन ग्राम वासियों ने पुनः वही प्रश्न किया तो प्रभु ने उस बार उत्तर दिया,—जिनके दर्शन करने मात्र से ही दर्शक के मुख में कृष्णनाम सहज ही आ जाये, उसे तुम 'वैष्णव-प्रधान' जानना। इस प्रकार तीन वर्षो में तीन प्रकार के उत्तरों का विचार करके देखने पर प्रभु के वचनों में 'वैष्णव', 'वैष्णवतर', एवं 'वैष्णवतम'—इन तीन प्रकार के वैष्णवों के लक्षण मिलते हैं। इन तीन प्रकार के वैष्णवों की सेवा ही गृहस्थ-वैष्णव का कर्त्तव्य है। प्रभु की बात का तात्पर्य यह है कि,—जिन्होंने केवल वैष्णवी-दीक्षा मात्र ग्रहण की है, किन्तु एकबार भी निरपराध (अपराध-रहित)

होकर कृष्णनाम नहीं किया, उसके प्रति वैष्णव-सेवा प्रयोज्य नहीं है; केवल 'सुहृत' 'अतिथि' जानकर उसका सम्मान करना आवश्यक है।

पुण्डरीक के अलावा और सभी का गौड़देश लौटना—

**एइमत सब वैष्णव गौड़े चलिला।**
**विद्यानिधि से-वत्सर नीलाद्रि रहिला॥७६॥**

**७६। प० अनु०—**इस प्रकार सभी वैष्णव गौड़देश की ओर चल दिये। श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि इस वर्ष नीलाद्रि (जगन्नाथ पुरी) में ही रह गये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७६। विद्यानिधि,—पुण्डरीक विद्यानिधि।

स्वरूप के साथ पुण्डरीक का सख्यभाव—

**स्वरूप-सहित ताँर हय सख्य-प्रीति।**
**दुई-जनाय कृष्ण-कथाय एकत्रइ स्थिति॥७७॥**

**७७। प० अनु०—**श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि की श्रीस्वरूप दामोदर प्रभु के साथ सख्य-प्रीति थी। कृष्ण कथा में निमग्न दोनों का एक ही स्थान पर वास था।

प्रेमनिधि (पुण्डरीक विद्यानिधि) का गदाधर को पुनः मन्त्र प्रदान और 'उड़न-षष्ठी' का दर्शन—

**गदाधर-पण्डिते तेंहो पुनः मन्त्र दिल।**
**उड़न-षष्ठीर दिने यात्रा जे देखिल॥७८॥**

**७८। प० अनु०—**श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि ने श्रीगदाधर पण्डित को पुनः मन्त्र प्रदान किया तथा उन्होंने उड़न-षष्ठी के दिन महोत्सव का दर्शन किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७८। ओड़नषष्ठी,—सर्दी के आगमन पर प्रथम षष्ठी को 'ओड़नषष्ठी' कहते हैं। उस दिन जगन्नाथदेव के अङ्ग में सर्दी के वस्त्र अर्पित किये जाते हैं। वह सर्दी के वस्त्र—'मांड लगे हुए वस्त्र' अर्थात् अरारोट से बनने वाले मांड से युक्त बिना धुले वस्त्र होते हैं। देवता को मांड लगे हुए वस्त्र पहनाने पर पुण्डरीक विद्यानिधि ने उस विषय में थोड़ी सी 'खूँटि नाटि' अर्थात् दोष प्रकाश करके उड़ीसा के भक्तों के प्रति थोड़ी घृणा प्रकाशित करने के कारण उसका उपयुक्त फल प्राप्त किया था।

**अनुभाष्य**

७८। चैतन्यभागवत अन्त्य एकादश अध्याय द्रष्टव्य है।

पुण्डरीक और जगन्नाथ के माण्ड से युक्त वस्त्रों के कारण घटे वृतान्त का वर्णन—

**जगन्नाथ परेन तथा 'माड़ुया' वसन।**
**देखिया सघृण हैल विद्यानिधिर मन॥७९॥**
**सेइ रात्र्ये जगन्नाथ-बलाइ आसिया।**
**दुइ-भाई चड़ा' न ताँरे हासिया हासिया॥८०॥**

**७९-८०। प० अनु०—**उस ओड़न षष्ठी के दिन श्रीजगन्नाथदेव ने माँड लगे वस्त्र पहने थे, जिसे देखकर श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि के मन में घृणा की भावना आ गयी। उसी रात श्रीजगन्नाथ तथा श्रीबलदेव—दोनों भाइयों ने उन्हें हँसते-हँसते थप्पड़ लगाये।

चैतन्य भागवत में वर्णित—

**गाल फुलिल, आचार्य अन्तरे उल्लास।**
**विस्तारि' वर्णियाछेन वृन्दावन-दास॥८१॥**

**८१। प० अनु०—**यद्यपि श्री पुण्डरीक विद्यानिधि के गाल फूल गये अर्थात् उनके मुख पर सूजन आ गयी, तब भी उनके हृदय में बहुत उल्लास था। श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने इस लीला का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८१। चैतन्यभागवत के अन्त्य खण्ड में, दशम

और एकादश अध्याय द्रष्टव्य।

**अनुभाष्य**

८०-८१। बलाई,—श्रीबलराम; आचार्य,—आचार्यनिधि।

प्रत्येक वर्ष गौड़ीय-भक्तों का आगमन और दर्शन-आदि—

**एइमत प्रत्यब्द आइसे गौड़ेर भक्तगण।**
**प्रभु-सङ्गे रहि' करे यात्रा-दरशन॥८२॥**

**८२। प० अनु०—**इस प्रकार प्रत्येक वर्ष गौड़ से भक्त आते थे तथा श्रीमन्महाप्रभु के साथ रहकर विभिन्न उत्सवों का दर्शन करते थे।

उनमें से ग्रन्थकार की विशेष-विशेष घटना के वर्णन की प्रतिज्ञा—

**तार मध्ये जे जे वर्षे आछये विशेष।**
**विस्तारिया आगे ताहा कहिब निःशेष॥८३॥**

**८३। प० अनु०—**उनमें से जिन-जिन वर्षों में कुछ विशेष उल्लेखनीय बातें है, उनका मैं विस्तृत रूप में आगे वर्णन करूँगा।

भक्तों के साथ चार-वर्ष नीलाचल-लीला, दो-वर्ष दक्षिण में यातायात—

**एइमत महाप्रभुर चारि वत्सर गेल।**
**दक्षिण याञा आसिते दुइ वत्सर लागिल॥८४॥**

**८४। प० अनु०—**इस प्रकार करते हुए श्री मन्महाप्रभु के चार वर्ष व्यतीत हो गये। दक्षिण भारत की यात्रा में उनके दो वर्ष व्यतीत हो गये।

वृन्दावन जाने के लिये प्रभु की दो वर्ष से इच्छा, किन्तु राय की चेष्टा से नहीं जा पाना—

**आर दुइ वत्सर चाहे वृन्दावन जाइते।**
**रामानन्द-हठे प्रभु ना पारे चलिते॥८५॥**

**८५। प० अनु०—**उसके बाद दो वर्ष तक श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन जाना चाहते थे, किन्तु वे श्रीरामानन्द राय के हठ (जिद्द) के कारण नहीं जा पाये।

**अनुभाष्य**

८५। हठ,—बल का प्रयोग, प्रसभ (बार-बार कुछ बहाने बनाकर रोकना)।

पञ्चम वर्ष गौड़ीय-भक्तों का रथ के दर्शन के बाद गौड़ में लौटना—

**पञ्चम वत्सरे गौड़ेर भक्तगण आइला।**
**रथ देखि' ना रहिला, गौड़ेरे चलिला॥८६॥**

**८६। प० अनु०—**पाँचवे वर्ष बङ्गाल के भक्तगण आये किन्तु रथ-यात्रा के दर्शन के बाद वे जगन्नाथ पुरी में रहे नहीं, बल्कि बङ्गाल लौट गये।

भट्ट और राय के निकट प्रभु की गौड़देश से होकर वृन्दावन जाने हेतु सम्मति की प्रार्थना—

**तबे प्रभु सार्वभौम-रामानन्द-स्थाने।**
**आलिङ्गन करि' कहे मधुर-वचने॥८७॥**
**''बहुत उत्कण्ठा मोर जाइते वृन्दावन।**
**तोमार हठे दुइ वत्सर ना कैलुँ गमन॥८८॥**
**अवश्य चलिब, दुँहे करह सम्मति।**
**तोमा-दुँहा बिना मोर नाहि अन्य गति॥८९॥**

**८७-८९। प० अनु०—**तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्री सार्वभौम भट्टाचार्य और श्रीरामानन्द राय को आलिङ्गन करके मधुर वचन का उपयोग करते हुए कहा—मैं वृन्दावन जाने के लिये बहुत उत्कण्ठित हूँ, किन्तु आप दोनों के हठ के कारण मैं दो वर्ष तक नहीं गया। किन्तु अब मैं अवश्य ही जाऊँगा, इसलिए आप दोनों इसमें अपनी सम्मति प्रदान करो। आप दोनों के अलावा मेरी अन्य कोई गति नहीं है।

गौड़देश में प्रभु की दो पूज्य वस्तुएँ—
१) शचीदेवी और (२) गङ्गादेवी—

**गौड़-देशे हय मोर 'दुइ-समाश्रय'।**
**'जननी' 'जाह्नवी',—एइ दुइ दयामय॥९०॥**
**गौड़-देशे दिया जाब ताँ-सबा देखिया।**
**तुमि दुँहे आज्ञा देह' परसन्न हञा॥''९१॥**

**९०-९१। प॰ अनु॰—**गौड़देश में मेरे दो वास्तविक आश्रय है—जननी (माता शची) तथा जाह्नवी (भगवती गङ्गा)—ये दोनों दयामय हैं। मैं गौड़देश से होते हुए जाऊँगा, जिससे उन सबके दर्शन करते हुए वृन्दावन चला जाऊँगा, आप दोनों मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान कीजिए।

भट्ट और राय की सम्मति, किन्तु वर्षा के कारण विजयादशमी तक अपेक्षा करने का अनुरोध—

**शुनिया प्रभुर वाणी मने विचारय।**
**प्रभु-सने अति हठ कभु भाल नय॥९२॥**
**दुँहे कहे,—''एबे वर्षा, चलिते नारिबा।**
**विजया-दशमी आइले, अवश्य चलिबा॥''९३॥**

**९२-९३। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर दोनों मन-ही-मन में विचार करने लगे कि प्रभु के साथ अधिक हठ करना कभी भी उचित नहीं हो सकता। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और श्री रामानन्द राय ने कहा—अभी वर्षा का समय है, आप मार्ग में चल नहीं पायेंगे, इसलिए विजया-दशमी (दशहरे) के आने पर आप अवश्य ही चल पड़ना।

प्रभु के द्वारा वर्षा का समय व्यतीत करना और विजया-दशमी के दिन वृन्दावन की यात्रा—

**आनन्दे महाप्रभु वर्षा कैल समाधान।**
**विजया-दशमी-दिने करिल पयान॥९४॥**

**९४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने आनन्दपूर्वक वर्षाकाल व्यतीत किया तथा विजया-दशमी के दिन चलना प्रारम्भ किया।

**अनुभाष्य**

९४। पयान,—प्रयाण, यात्रा।

साथ में जगन्नाथ के प्रसाद आदि को लेना—

**जगन्नाथेर प्रसाद प्रभु जत पाञाछिल।**
**कड़ार चन्दन, डोर, सब सङ्गे लैल॥९५॥**

**९५। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु को जगन्नाथ का कड़ार चन्दन, डोर आदि जितना भी प्रसाद मिला, उन्होंने उस सबको अपने साथ ले लिया।

**अनुभाष्य**

९५। कड़ार,—पिङ्गल (तांबे जैसे) वर्ण का, प्रलेप (?); डोर,—रस्सी।

प्रभात में यात्रा, पुरी वासी भक्तों द्वारा प्रभु का अनुसरण—

**जगन्नाथे आज्ञा मागि' प्रभाते चलिला।**
**उड़िया-भक्तगण-सङ्गे पाछे चलि' आइला॥९६॥**

**९६। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथ की आज्ञा लेकर प्रभात में ही चल पड़े। उड़ीसा के भक्त भी उनके साथ उनके पीछे चलने लगे।

पुरीवासी भक्तों को रोकने के बाद साथी-भक्तों के साथ भवानीपुर जाना—

**उड़िया-भक्तगणे-प्रभु यत्ने निवारिला।**
**निजगण-सङ्गे प्रभु 'भवानीपुर' आइला॥९७॥**

**९७। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने अत्यन्त प्रयत्न-पूर्वक उड़िया भक्तों को साथ चलने के लिये मना किया तथा वे अपने भक्तों के साथ 'भवानीपुर' आ पहुँचे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९७। भवानीपुर,—जानकादेइपुर अर्थात् जानकी-देवीपुर के आगे 'भवानीपुर'।

राय का पीछे से आगमन, वाणीनाथ के द्वारा प्रसाद-भेजना—

**रामानन्द आइला पाछे दोलाय चड़िया।**
**वाणीनाथ बहु प्रसाद दिल पाठाञा॥९८॥**

**९८। प० अनु०—**श्रीरामानन्द राय बाद में पालकी पर चढ़कर आये तथा श्रीवाणीनाथ ने बहुत सा प्रसाद भेज दिया।

वहीं पर रात्रि व्यतीत, प्रातः काल भुवनेश्वर में आगमन—

**प्रसाद भोजन करि' तथाय रहिला।**
**प्रातःकाले चलि' प्रभु 'भुवनेश्वर' आइला॥९९॥**

**९९। प० अनु०—**प्रसाद पाकर सभी रात्रि में वहीं पर ही रह गये। प्रातःकाल चलकर श्रीमन्महाप्रभु भुवनेश्वर आ गये।

वहाँ से कट्टक आकर साक्षी गोपाल का दर्शन—

**'कटके' आसिया कैल 'गोपाल' दरशन।**
**स्वप्नेश्वर-विप्र कैल प्रभुर निमन्त्रण॥१००॥**

**१००। प० अनु०—**कट्टक में पहुँचकर श्री मन्महाप्रभु ने साक्षीगोपाल का दर्शन किया। वहाँ पर स्वप्नेश्वर नामक ब्राह्मण ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया।

प्रभु के भक्तों को राय का निमन्त्रण, उपवन में प्रभु का स्थान—

**रामानन्द-राय सब-गणे निमन्त्रिल।**
**बाहिर उद्याने आसि, प्रभु वासा कैल॥१०१॥**

**१०१। प० अनु०—**श्रीरामानन्द राय ने श्रीमन्महाप्रभु के समस्त भक्तों को निमन्त्रण दिया। श्रीमन्ममहाप्रभु ने मन्दिर के बाहर स्थित उद्यान में आकर वास स्थान स्वीकार किया।

वृक्ष के नीचे प्रभु के विश्राम करते समय प्रतापरुद्र को राय के द्वारा संवाद-प्रदान—

**भिक्षा करि' बकुल-तले करिला विश्राम।**
**प्रतापरुद्र-ठाञि राय करिल पयान॥१०२॥**

**१०२। प० अनु०—**प्रसाद पाने के बाद श्रीमन्महाप्रभु ने बकुल के वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर विश्राम किया। श्री रामानन्द राय महाराज प्रतापरुद्र से मिलने के लिये चल पड़े।

राजा का तत्क्षणात् आगमन एवं प्रभु को प्रणाम एवं स्तुति—

**शुनि' आनन्दित राजा अतिशीघ्र आइला।**
**प्रभु देखि' दण्ड्वत भूमेते पड़िला॥१०३॥**
**पुनः उठे, पुनः पड़े प्रणय-विह्वल।**
**स्तुति करे, पुलकाङ्ग, पड़े अश्रुजल॥१०४॥**

**१०३-१०४। प० अनु०—**श्रीराय रामानन्द के मुख से श्रीमन्महाप्रभु के कट्टक में आगमन के विषय में सुनकर महाराज प्रतापरुद्र बहुत आनन्दित हुए तथा बहुत शीघ्रतापूर्वक वे उसी स्थान पर आ गये, जहाँ पर श्रीमन्महाप्रभु विराजमान थे। श्रीमन्महाप्रभु को देखकर महाराज प्रतापरुद्र दण्ड की भाँति भूमि पर गिर गये। राजा प्रतापरुद्र प्रेम में विह्वल होकर पुनः पुनः उठ रहे थे तथा पुनः पुनः भूमि पर गिरकर प्रणाम तथा स्तुति कर रहे थे। उनके समस्त अङ्ग पुलकित हो रहे थे तथा उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे।

राजा की शुद्ध भक्ति को देखकर प्रभु के द्वारा उनका आलिङ्गन—

**ताँर भक्ति देखि' प्रभुर तुष्ट हैल मन।**
**उठि' महाप्रभु ताँरि कैला आलिङ्गन॥१०५॥**
**पुनः स्तुति करि' राजा करये प्रणाम।**
**प्रभु-कृपा-अश्रुते ताँर देह हैल स्नान॥१०६॥**

**१०५-१०६। प० अनु०—**राजा प्रतापरुद्र की भक्ति को देखकर श्रीमन्महाप्रभु का मन बहुत सन्तुष्ट हुआ। श्रीमन्महाप्रभु ने उठकर राजा का आलिङ्गन किया। राजा ने पुनः स्तुति करके श्रीमन्महाप्रभु को प्रणाम किया तथा श्रीमन्महाप्रभु

के कृपा रूपी अश्रुओं से उनकी देह का स्नान हो गया।

### अनुभाष्य

१०६। स्नान,—भीग जाना।

राय के द्वारा राजा को सान्त्वना प्रदान, प्रभु द्वारा उन पर निष्कपट कृपा—

**सुस्थ करि, रामानन्द राजारे बसाइला।**
**कायमनोवाक्ये प्रभु ताँरे कृपा कैला॥१०७॥**

**१०७। प० अनु०—**श्रीरामानन्द राय ने राजा को धैर्य धारण करवाकर बैठा दिया। श्रीमन्महाप्रभु ने काय-मन तथा वचन से राजा पर कृपा की।

तभी से प्रभु का नाम—''प्रतापरुद्र-संत्राता''—

**ऐछे ताँहारे कृपा कैल गौरराय।**
**''प्रतापरुद्र-संत्राता'' नाम हैल जाय॥१०८॥**

**१०८। प० अनु०—**श्रीगौरराय ने राजा पर ऐसी कृपा की, जिससे उनका नाम ही 'प्रतापरुद्र-संत्राता अर्थात् महाराज प्रतापरुद्र के उद्धारक' हो गया।

### अनुभाष्य

१०८। जाय,—जिससे, जिसके कारण।

परिकरों के द्वारा प्रभु की वन्दना, राजा द्वारा प्रभु से विदायी लेना—

**राज-पात्रगण कैल प्रभुर वन्दन।**
**राजारे विदाय दिला शचीर नन्दन॥१०९॥**

**१०९। प० अनु०—**राजा के कर्मचारियों ने भी श्रीमन्महाप्रभु की वन्दना की। श्रीशचीनन्दन ने राजा को विदायी दी।

अपने राज्य में राजा के द्वारा घोषणा-पत्र का प्रचार—

**बाहिरे आसि' राजा आज्ञा-पत्र लेखाइल।**
**निज-राज्ये जत 'विषयी', ताहारे पाठाइल॥११०॥**
**'ग्रामे-ग्रामे' नूतन आवास करिबा।**
**पाँच-सात गृह, सब सामग्रये भरिबा॥१११॥**
**आपनि प्रभुके लञा ताँहा उत्तरिबा।**
**रात्रि-दिवा वेत्रहस्ते सेवाय रहिबा॥''११२॥**

**११०-११२। प० अनु०—**उद्यान से बाहर आकर राजा ने आज्ञा-पत्र लिखवाये तथा उनके राज्य में जितने भी विषयी (कर संग्रह करने वाले कर्मचारी) थे, उन्होंने उन सबके पास आज्ञा-पत्र भिजवायें। उन्होंने सभी के निकट लिखित आदेश भेजा कि गाँव-गाँव में नये घर बनाना तथा पाँच-सात कमरों में सब नित्य प्रयोजनीय सामग्रियाँ भर देना। स्वयं प्रभु को ले जाकर वहाँ पर पहुँचाना तथा उनकी सुरक्षा हेतु रात-दिन हाथ में बेंत (लाठी) पकड़कर उनकी सेवा में रहना।

### अमृतप्रवाह भाष्य

११०। विषयी,—जो राजकर्मचारी गाँव की ओर से कर संग्रह करता है।

दो महापात्रों को आदेश—

**दुइ महापात्र,—'हरिचन्दन', 'मङ्गराज'(?)।**
**ताँरे आज्ञा दिल राजा—''करिह सर्व काज॥११३॥**
**एक नव्य-नौका आनि' राखह नदी-तीरे।**
**जाँहा स्नान करि' प्रभु जा'न नदी-पारे॥११४॥**

**११३-११४। प० अनु०—**राजा प्रतापरुद्र ने श्रीहरिचन्दन तथा श्रीमङ्गराज नामक अपने दो विशेष कर्मचारियों को आज्ञा दी कि मैं जो कुछ भी कहने जा रहा हूँ, तुम लोग वह सब कार्य करना। जहाँ स्नान करके श्रीमन्महाप्रभु नदी को पार करके दूसरी ओर जायेंगे, वहाँ पर एक नयी नौका को लाकर नदी के तट पर रख दो।

### अनुभाष्य

११३। मङ्गराज—'मरदराज' (?)।

राजा का गम्भीर (अत्यन्त गाढ़) गौर-प्रेम—

**ताँहा स्तम्भ रोपण कर 'महातीर्थ' करि'।**
**नित्य स्नान करिब ताँहा, ताँहा जेन मरि॥११५॥**

**११५। प॰ अनु॰—**जहाँ पर श्रीमन्महाप्रभु स्नान करेंगे, उस स्थान को महातीर्थ जानकर वहाँ पर उसकी स्मृति में एक 'स्तम्भ' बना देना, मैं नित्यप्रति वहीं स्नान करूँगा तथा मेरी इच्छा है कि मैं प्राण भी उसी स्थान पर ही त्याग करूँ।

रामानन्द को प्रभु के निकट जाने का अनुरोध—

**चतुर्द्वारे करह उत्तम नव्य वास।**
**रामानन्द, जाह तुमि महाप्रभु-पाश॥''११६॥**

**११६। प॰ अनु॰—**चतुर्द्वार नामक ग्राम में एक उत्तम नये वास स्थान का निर्माण करो। हे रामानन्द प्रभु! अब आप महाप्रभु के निकट जाइये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११६। चतुर्द्वार,—कटक से महानदी पार करके चतुर्द्वार-ग्राम में जाया जा सकता है; उसी को ही साधारणतः 'चोदार' कहते हैं।

**अनुभाष्य**

११६। नव्यवास,—रहने योग्य नया घर।

सन्ध्या के समय स्त्रियों के द्वारा प्रभु के जाने का दर्शन—

**सन्ध्याते चलिबे प्रभु,—नृपति शुनिल।**
**हस्ती-उपर ताम्बुगृहे स्त्रीगणे चड़ाइल॥११७॥**

**११७। प॰ अनु॰—**जब राजा प्रतापरुद्र ने सुना कि सन्ध्या के समय श्रीमन्महाप्रभु यहाँ से चले जायेंगे, तब वे हाथी की पीठ के ऊपर बने तम्बु के घरों में अपने घर की स्त्रियों को बिठाकर उन्हें श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये ले गये।

सन्ध्या के समय प्रभु की कट्टक से यात्रा—

**प्रभुर चलिवार पथे रहे सारि हञा।**
**सन्ध्याते चलिला प्रभु निजगण लञा॥११८॥**

**११८। प॰ अनु॰—**जिस मार्ग से होकर श्रीमन्महाप्रभु जायेंगे, वे सभी उसी मार्ग पर लाइन बनाकर खड़ी हो गयी। सन्ध्या के समय श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तों को लेकर चल पड़े।

महानदी में स्नान, रानियों द्वारा प्रणाम—

**'चित्रोत्पला-नदी' आसि' घाटे कैल स्नान।**
**महिषीसकल देखे, करये प्रणाम॥११९॥**

**११९। प॰ अनु॰—**'चित्रोत्पला-नदी' पहुँचकर श्रीमन्महाप्रभु ने घाट पर स्नान किया। रानियों ने श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन किए तथा उन्हें प्रणाम किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११९। चित्रोत्पला-नदी—कटक से चलते-चलते जिस स्थान पर जाकर महानदी दिखलायी देती है, उसे चित्रोत्पला नदी कहते हैं। उत्कल के पण्डित किसी तन्त्र में से यह बात बतलाते है कि,—'कलौ चित्रोत्पला गङ्गा अर्थात् कलियुग में चित्रोत्पला ही गङ्गा है।

प्रभु के दर्शन से सभी में भावावेश—

**प्रभुर दरशने सबे हैल प्रेममय।**
**'कृष्ण' 'कृष्ण' कहे, नेत्रे अश्रु वरिषय॥१२०॥**

**१२०। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों से सभी रानियाँ प्रेम से ओत-प्रोत हो गयी। वे सभी 'कृष्ण', 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करने लगी तथा उनके नेत्रों से अश्रुओं की वर्षा होने लगी।

अद्भुत करुणा-विग्रहः—

**एमन कृपालु नाहि शुनि त्रिभुवने।**
**कृष्णप्रेमा हय जाँर दूर दरशने॥१२१॥**

**१२१। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु जैसे कृपालु त्रिभुवन में कोई भी नहीं है। जिनके दूर से दर्शन करने मात्र से ही कृष्णप्रेम उदित हो आता है।

नदी को पारकर चतुर्द्वार में आकर प्रतिदिन
पड़िछाओं के द्वारा भेजे गये जगन्नाथ
के प्रसाद का सेवन—

**नौकाते चड़िया प्रभु हैल नदी पार।**
**ज्योत्सनावती रात्र्ये चलि' आइला चतुर्द्वार॥१२२॥**

**१२२। प० अनु०—**नौका पर चढ़कर श्रीमन्महाप्रभु ने नदी पार की। चाँदनी रात्रि में वे चलते हुए चतुर्द्वार नामक गाँव में आ पहुँचे।

**रात्र्ये तथा रहि' प्राते स्नानकृत्य कैल।**
**हेनकाले जगन्नाथेर महाप्रसाद आइल॥१२३॥**

**१२३। प० अनु०—**रात्रि में चतुर्द्वार रहकर श्रीमन्महाप्रभु ने प्रात:काल स्नानकृत्य किया, उसी समय श्रीजगन्नाथ का महाप्रसाद आ गया।

**राजार आज्ञाय पड़िछा पाठाय दिने-दिने।**
**बहुत प्रसाद पाठाय दिया बहु-जने॥१२४॥**

**१२४। प० अनु०—**राजा की आज्ञा से पड़िछा प्रतिदिन जगन्नाथजी का प्रसाद भेजजा था, वे बहुत से लोगों के द्वारा बहुत सा प्रसाद भेजते थे।

**स्वगण सहिते प्रभु प्रसाद अङ्गीकरि'।**
**उठिया चलिला प्रभु बलि' 'हरि' 'हरि'॥१२५॥**

**१२५। प० अनु०—**अपने भक्तों के साथ श्रीमन्महाप्रभु ने प्रसाद को ग्रहण किया तथा 'हरि' 'हरि' बोलते हुए वे उठकर चल दिये।

साथ में राय आदि
तीन राजकर्मचारी—

**रामानन्द, मङ्गराज (?), श्री हरि चन्दन।**
**सङ्गे सेवा करि' चले एइ तिन जन॥१२६॥**

**१२६। प० अनु०—**श्रीरामानन्द राय, मङ्गराज तथा श्रीहरिचन्दन—ये तीनों श्रीमन्महाप्रभु की सेवा करते-करते उनके साथ चलने लगे।

प्रभु की वृन्दावन-यात्रा के प्रधान साथी—

**प्रभु-सङ्गे पुरी-गोसाञि, स्वरूप-दामोदर।**
**जगदानन्द, मुकुन्द, गोविन्द, काशीश्वर॥१२७॥**
**हरिदास ठाकुर, आर पण्डित-वक्रेश्वर।**
**गोपीनाथाचार्य, आर पण्डित-दामोदर॥१२८॥**
**रामाई, नन्दाई, आर बहु भक्तगण।**
**प्रधान कहिलुँ, सबार के करे गणन॥१२९॥**

**१२७-१२८-१२९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के साथ श्रीपरमानन्द पुरी गोसाञि, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीमुकुन्द, श्रीगोविन्द, श्रीकाशीश्वर, श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीगोपीनाथाचार्य, श्रीदामोदर पण्डित, श्रीरामाई, श्रीनन्दाई तथा अन्य और भी अनेक भक्त थे, मैंने प्रधान-प्रधान भक्तों के नामों का उल्लेख किया है, सभी भक्तों के नामों की कौन गणना कर सकता है।

आधे तिल के समान अर्थात् आधे क्षण के
लिये भी प्रभु के विच्छेद में कातर
गदाधर का अतुलनीय गौरप्रेम—

**गदाधर-पण्डित जबे सङ्गेते चलिला।**
**'क्षेत्र-सन्यास ना छाड़िह'—प्रभु निषेधिला॥१३०॥**

**१३०। प० अनु०—**श्रीगदाधर पण्डित जब श्रीमन्महाप्रभु के साथ चलने लगे, तब श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें 'क्षेत्र-संन्यास को मत छोड़ना' कहकर चलने के लिये मना किया।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१३०। क्षेत्र-सन्यास—जो अपने पूर्व घर का त्याग करके किसी विशेष (विष्णु) तीर्थ में अर्थात् पुरुषोत्तम-क्षेत्र में अथवा नवद्वीप धाम अथवा मथुरादिमण्डल में अकेले अथवा सपरिवार परमार्थ बुद्धि सहित वास करते हैं, उनके आश्रम को 'क्षेत्र संन्यास' कहते हैं। यही आश्रम ही कलिकाल का उपयुक्त 'वानप्रस्थधर्म' है। [ श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य

अपने परिवार के साथ परमार्थ बुद्धि सहित श्रीक्षेत्र मण्डल में वास करते थे, अतएव ] सार्वभौम-भट्टाचार्य के भी ऐसे 'क्षेत्र-सन्यास' के विषय में कहा गया है।

प्रभु के सङ्ग के लोभ से धामवासरूपी क्षेत्र संन्यास के त्याग में भी पण्डित अविचलित—

**पण्डित कहे,—"जाँहा तुमि, सेइ नीलाचल।**
**क्षेत्रसंन्यास मोर जाउक रसातल॥"१३१॥**

**१३१। प० अनु०—**श्रीगदाधर पण्डित ने कहा—जहाँ पर आप हैं, वही नीलाचल है। यदि तब भी आप कहें कि नहीं-नहीं ऐसा नहीं हो सकता, तब मेरा कहना है कि मेरा क्षेत्र संन्यास रसातल में चला जाये अर्थात् मुझे उसकी कोई परवाह नहीं है।

प्रभु के सङ्ग के लोभ से सेवा-परित्याग और सेवा की प्रतिज्ञा के उल्लंघन में भी पण्डित अविचलित—

**प्रभु कहे,—"इँहा कर गोपीनाथ-सेवन।"**
**पण्डित कहे,—"कोटि-सेवा त्वत्पाद-दर्शन॥"१३२॥**

**१३२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—नीलाचल में रहकर गोपीनाथ की सेवा करो। श्रीगदाधर पण्डित ने कहा—आपके चरणों के दर्शन से गोपीनाथ की करोड़ गुणा अधिक सेवा हो जाती है।

अपने भावी-कलङ्क की आशङ्का को दिखलाकर प्रभु का पुरी से ही पण्डित को उनके पीछे अनुसरण करने हेतु निषेध—

**प्रभु कहे,—"सेवा छाड़िबे,—आमाय लागे दोष।**
**इँहा रहि' सेवा कर,—आमार सन्तोष॥"१३३॥**

**१३३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—सेवा तुम छोड़ोगे और दोष मुझे लगेगा। इसलिए यहींपर रहकर ही सेवा करो, इसी में मुझे सन्तुष्टि होगी।

गदाधर का अभिमान (रूठ जाना)—

**पण्डित कहे,—"सब दोष आमार उपर।**
**तोमा-सङ्गे ना जाइब, जाइब एकेश्वर॥१३४॥**
**'आई' के देखिते जाइब, ना जाइब तोमा लागि'।**
**'प्रतिज्ञा'-'सेवा'-त्याग-दोष,—तार आमि भागी"॥१३५॥**

**१३४-१३५। प० अनु०—**श्रीगदाधर पण्डित ने कहा—सारा दोष मुझ पर लगने दो। मैं आपके साथ नहीं जाऊँगा, किन्तु मैं अलग से अकेला ही चला जाऊँगा। मैं आई अर्थात् शचीमाता के दर्शनों के लिये जाऊँगा, आपसे मिलने के लिये बङ्गाल नहीं जाऊँगा। 'क्षेत्र-सन्यास की प्रतिज्ञा' तथा 'गोपीनाथ की सेवा' को त्यागने के दोष का मैं ही भागीदार होऊँगा।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१३५। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी ने श्रीगोपीनाथ की सेवा प्राप्त करके उस सेवा में ही जीवन यापन करने की प्रतिज्ञा की थी। प्रभु के साथ गौड़देश में जाने पर उस प्रतिज्ञा के भङ्ग होने के दोष' तथा 'सेवा त्याग करने रूपी दोष'—ये दो दोष होते हैं ; अनुराग मार्ग में इन सब दोषों को महात्मागण स्वीकार करते हैं।

### अनुभाष्य

१३४। एकेश्वर,—आज भी चट्टग्राम-विभाग (इलाके) में 'एकाकी' (अकेले) के अर्थ में 'एकेश्वर' का अपभ्रंश 'अश्वर' प्रचलित है। जीवन में सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले श्री गोपीनाथ के विग्रह की सेवारूपी प्रतिज्ञा को विफल करके श्रीगदाधर पण्डित श्रीगौराङ्ग के सङ्ग लाभ में भगवद् सेवा को भी अत्यधिक अनायास ही हेला (खेल-खेल) में छोड़ देने के लिये प्रस्तुत हुए ; श्रीगदाधर की श्रीगौराङ्ग प्रीति उनके ही समान मर्मी, अन्तरङ्ग बान्धव के अलावा अन्य किसी भी भक्त के बोधगम्य नहीं है।

पुरी से कटक आकर प्रभु द्वारा
पण्डित को निकट बुलाना—

**एत बलि' पण्डित-गोसाञि पृथक् चलिला।**
**कटक आसि' प्रभु ताँरे सङ्गे आनाइला॥१३६॥**

**१३६। प० अनु०—**इतना कहकर श्रीगदाधर पण्डित गोसाञि श्रीमन्महाप्रभु से अलग चलने लगे। कट्टक में पहुँचकर श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें अपने पास आने हेतु बुलवा भेजा।

गदाधर की केवला-गौर प्रीति ऐश्वर्य से मुग्ध
व्यक्तियों की समझ से अतीत (परे)—

**पण्डितेर गौराङ्ग प्रेम बुझन ना जाय।**
**'प्रतिज्ञा', 'श्रीकृष्ण-सेवा' छाड़िल तृणप्राय॥१३७॥**

**१३७। प० अनु०—**श्रीगदाधर पण्डित के गौराङ्ग प्रेम को समझा नहीं जा सकता, उन्होंने अपनी क्षेत्र सन्न्यास की प्रतिज्ञा तथा श्रीगोपीनाथ जी की सेवा को तृण की भाँति त्याग दिया।

प्रभु के अन्तर में सन्तोष होने पर भी
बाहर से कृत्रिम-कोप-उक्ति—

**ताँहार चरित्रे प्रभु अन्तरे सन्तोष।**
**ताँहार हाते धरि' कहे, करि' प्रणय-रोष॥१३८॥**

**१३८। प० अनु०—**श्रीगदाधर पण्डित के आचरण से यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु हृदय में बहुत सन्तुष्ट थे, किन्तु बाहर में श्रीगदाधर पण्डित के हाथों को पकड़कर प्रणय-रोष करते हुए कहने लगे—।

यहाँ तक पण्डित के उद्देश्य की सिद्धि, इसके बाद
पण्डित को पुरी में जाकर गोपीनाथ की सेवा करने
के लिये शपथ (कसम)-प्रदान—

**" 'प्रतिज्ञा', 'सेवा'—छाड़िबे,—ए तोमार 'उद्देश'।**
**से सिद्ध हइल—छाड़ि' आइला दूर देश॥१३९॥**

**१३९। प० अनु०—**तुम्हारा उद्देश्य क्षेत्र सन्यास की प्रतिज्ञा तथा श्रीगोपीनाथ की सेवा का त्याग था, अब तुम्हारा वह उद्देश्य तो पूर्ण हो गया है, क्योकि तुम बहुत दूर आ पहुँचे हो।

भक्त के द्वारा कृष्ण को सुख प्रदान करना तथा
कृष्ण के द्वारा भक्त को सुख प्रदान करना—

**आमार सङ्गे रहिते चाह,—वाञ्छ' निज-सुख।**
**तोमार दुइ धर्म जाय,—आमार हय 'दुःख'॥१४०॥**
**मोर सुख चाह यदि, नीलाचले चल।**
**आमार शपथ, यदि आर किछु बल॥''१४१॥**

**१४०-१४१। प० अनु०—**तुम मेरे साथ रहना चाहते हो—तुम अपने सुख की कामना करते हो। तुम्हारे दोनों धर्म नष्ट हो रहे हैं, जिसे देखकर मुझे दुःख हो रहा है। यदि तुम मेरी प्रसन्नता चाहते हो तो नीलाचल लौट जाओ। तुम्हें मेरी शपथ (कसम) हैं, यदि इसके बाद भी तुमने कुछ बोला।

प्रभु का नौका पर चढ़ना, पण्डित की मूर्च्छा—

**एत बलि' महाप्रभु नौकाते चड़िला।**
**मूर्च्छित हञा तथा पण्डित पड़िला॥१४२॥**

**१४२। प० अनु०—**श्रीगदाधर पण्डित से इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु नौका पर चढ़ गये तथा श्रीगदाधर पण्डित मूर्च्छित होकर वहीं पर गिर पड़े।

प्रभु द्वारा पण्डित को ले जाने के
लिये सार्वभौम को आदेश—

**पण्डिते लञा जाइते सार्वभौमे आज्ञा दिला।**
**भट्टाचार्य कहे,—''उठ, ऐछे प्रभुर लीला॥१४३॥**

**१४३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य को आज्ञा दी कि आप गदाधर पण्डित को जगन्नाथ पुरी ले जाना। श्री सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीगदाधर पण्डित से कहा—उठो! श्रीमन्महाप्रभु की कैसी अद्भुत लीला है।

पण्डित को भट्ट द्वारा सान्त्वना प्रदान—

**तुमि जान, कृष्ण निज-प्रतिज्ञा छाड़िला।**
**भक्त कृपा-वशे भीष्मेर प्रतिज्ञा राखिला॥१४४॥**

**१४४। प० अनु०—**हे गदाधर! तुम तो जानते हो कि कृष्ण ने अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग करके भक्त भीष्म के प्रति कृपा के कारण उनकी प्रतिज्ञा की रक्षा की थी।

भक्त की प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिये भगवान् के द्वारा अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग करना—
श्रीमद्भागवत (१/९/३७) में—

**स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृत-**
**मधिकर्त्तुमवप्लुतो रथस्थः।**
**धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्-**
**गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥१४५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४५। [श्रीभीष्म ने कहा]—'कुरुक्षेत्र युद्ध में मैं अस्त्रधारण नहीं करूँगा'—कृष्णचन्द्र अपनी इस प्रतिज्ञा को त्याग करके मेरी प्रतिज्ञा को ही सत्य करने के अभिप्राय से रथ से उतरकर चक्र धारण पूर्वक उत्तरीय रहित होकर ही मेरा वध करने के लिये चल पड़े थे।

**अनुभाष्य**

१४५। श्रीकृष्ण के साथ समागत युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के निकट भागवतधर्म और अन्यान्य साधारण धर्म का वर्णन करने के बाद स्वेच्छा मृत्यु वाले महाभागवत भीष्मदेव उतरायण काल को उपस्थित हुआ देखकर, अपनी मृत्यु के निकट आने को समझकर सामने उपस्थित श्रीकृष्ण का स्तव कर रहे हैं—

स्वनिगमम् (अस्त्र धारणं बिनैव पाण्डवान् रक्षिष्यामीति निज प्रतिज्ञाम्) अपहाय (परित्याज्य) मत् प्रतिज्ञां (श्रीकृष्णं शस्त्रं ग्राहयिष्यामीति सङ्कल्पम्) ऋतं (सत्यम्) अधि (अधिक) कर्त्तुं रथस्थः अवप्लुतः (सहसा अवतीर्णः सन् एव) धृतरथचरणः (धृतं रथ-चरणं चक्रं येन सः) चलदगुः (संरम्भेण चलन्ती कम्पमाना गौः धरा यस्मात् सः) गतोत्तरीयः (गतं पथि पतितम् उतरीयं तेनैव संरम्भेण यस्य सः) इभं (गज) हन्तं (विनाशयितु) हरिः (सिंहः) इव अभ्ययात् (अग्रतः अधावत्, सः में पतिर्भूयात् इति परेणान्वयः)।

प्रभु के द्वारा पण्डित की प्रतिज्ञा की रक्षा—

**एइमत प्रभु तोमार विच्छेद सहिया।**
**तोमार प्रतिज्ञा रक्षा कैल यत्न करिया॥''१४६॥**

**१४६। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं तुम्हारे विच्छेद को सहन करके भी तुम्हारी प्रतिज्ञा की अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक रक्षा की है।

पण्डित को लेकर भट्ट का पुरी में आगमन—

**एइमत कहि' ताँरे प्रबोध करिला।**
**दुइजने शोकाकुल नीलाचले आइला॥१४७॥**

**१४७। प० अनु०—**श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने इस प्रकार कहकर श्रीगदाधर पण्डित को आश्वासन दिया तथा दोनों ही श्रीमन्महाप्रभु के शोक में व्याकुल होकर नीलाचल लौट आये।

कृष्ण के उद्देश्य से भक्त के द्वारा अनायास ही स्वधर्म-त्याग, कृष्ण का इसी कारण ऋण—

**प्रभु लागि' धर्म-कर्म छाड़े भक्तगण।**
**भक्त-धर्म-हानि प्रभुर ना जाय सहन॥१४८॥**

**१४८। प० अनु०—**भगवान् के लिये भक्त सब प्रकार के धर्म-कर्म को छोड़ देता है तथा भगवान् से भक्तों के धर्म की हानि सहन नहीं होती।

भगवान् के विरह में भक्त की कातरता स्वाभाविक ही है, किन्तु भक्त के विरह में भगवान् की कातरता ही 'प्रेम-विवर्त्त' है; उसके श्रवण से जीव को चैतन्य की प्राप्ति—

**'प्रेमेर विवर्त्त' इहा शुने जेइ जन।**
**अचिरे मिलये ताँरे चैतन्य-चरण॥१४९॥**

**१४९। प० अनु०—**श्रीगदाधर पण्डित के प्रति श्रीमन्महाप्रभु के इस प्रेम के विवर्त्त को जो व्यक्ति श्रवण करता है, उसे बिना किसी विलम्ब के श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों की प्राप्ति होती है।

याजपुर में दोनों महापात्रों को प्रभु द्वारा विदायी-प्रदान—

**दुइ राजपात्र जेइ प्रभु-सङ्गे जाय।**
**'याजपुर' आसि' प्रभु तारे दिलेन विदाय॥१५०॥**

**१५०। प० अनु०—**जो दो राज पात्र श्रीमन्महाप्रभु के साथ जा रहे थे, याजपुर पहुँचने पर श्रीमन्महाप्रभु ने उन दोनों को विदायी दी।

**अनुभाष्य**

१५०। याजपुर,—कटक जिले का एक महकमा, वैतरणी नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित; दाहिने तट पर ऋषियों के यज्ञ कार्य करने से इस स्थान का नाम 'याजपुर' हुआ है ; किसी-किसी के मतानुसार 'ययाति नगर' से 'याजपुर' नाम हुआ है। महाभारत के वन पर्व में ११४ अ:—''एते कलिङ्गाः कौन्तेय यत्र वैतरणी नदी। यत्राहयजत धर्मोऽपि देवान् शरणमेत्य वै। अत्र वै ऋषयोहन्ये च पुरा क्रतुभिरीजिरे॥'' यहाँ असंख्य देवमूर्तियाँ हैं; उनमें से, श्रीवराह देव की मूर्त्ति ही विशेष पूज्य है। शक्ति के उपासक 'वाराही' 'वैष्णवी' और 'इन्द्राणी' इत्यादि माता की पूजा करते हैं। पुनः शिव की अनेक मूर्त्तियाँ और दशाश्वमेघघाट भी है। इस स्थान को 'नाभिगया', 'विरजाक्षेत्र' आदि की संज्ञा भी दी जाती है।

संगी राय के साथ प्रभु का सर्वदा कृष्ण कथा-आलाप—

**प्रभु विदाय दिल, राय जाय ताँर सने।**
**कृष्णकथा रामानन्द-सने रात्रि-दिने॥१५१॥**

**१५१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा उन दोनों राजपात्रों को विदायी देने पर श्रीरामानन्दराय श्रीमन्महाप्रभु के साथ चलने लगे। श्रीमन्महाप्रभु श्रीरामानन्द राय के साथ रात-दिन कृष्णकथा की आलोचना करते।

राजा के आदेश से प्रत्येक ग्राम में राज-कर्मचारियों के द्वारा प्रभु की अगवानी—

**प्रतिग्रामे राज-आज्ञाय राजभृत्यगण।**
**नव्य-गृहे नाना-द्रव्ये करये सेवन॥१५२॥**

**१५२। प० अनु०—**प्रत्येक ग्राम में महाराज प्रतापरुद्र की आज्ञा से राजकर्मचारी नये घरों में अनेक प्रकार के द्रव्यों के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु की सेवा करते।

रेमुणा (?) में राय को विदायी-देना—

**एइमत चलि' प्रभु 'रेमुणा' आइला।**
**तथा हैते रामानन्द-राये विदाय दिला॥१५३॥**

**१५३। प० अनु०—**इस प्रकार चलते-चलते श्रीमन्महाप्रभु रेमुणा आ पहुँचे तथा वहाँ से उन्होंने श्रीरायरामानन्द को भी विदायी प्रदान की।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१५३।** इस प्रकार महाप्रभु ने रामानन्द राय के साथ आते-आते बालेश्वर के निकट रेमुणा में पहुँचने से पहले ही भद्रक से रामानन्द राय को विदायी दी;—ऐसा वर्णन अनेक स्थानों पर है।

**अनुभाष्य**

१५३। तथा हैते (वहाँ से)—पाठान्तर में, 'भद्रक हइते (भद्रक से); तथा हैते' (वहाँ से) के द्वारा रेमुणा से' समझने पर; मध्य प्रथम परिच्छेद १४९ संख्या में लिखित ''रामानन्द राय आइला भद्रक पर्यन्त'' अर्थात् रामानन्द राय भद्रक पर्यन्त आये'' पाठ के साथ मेल नहीं होता। किसी के मतानुसार—'रेमुणा' उस समय भद्रक-प्रदेश के अन्तर्गत था; किन्तु इस विषय में प्रमाण का अभाव है; किसी के मतानुसार,—पूर्वोक्त 'भद्रक'—के स्थान पर 'रेमुणा' पाठ ही सङ्गत है; किन्तु भद्रक से राय का लौटकर

जाना ही अधिकतर सङ्गत लगता है। 'भद्रक'—बालेश्वर से चार योजन (४० मील दक्षिण में अवस्थित, एवं 'रेमुणा'—प्राय आधा योजन (५ मील) पश्चिम में अवस्थित।

राय की मूर्च्छा, प्रभु का क्रन्दन—

**भूमेते पड़िला राय नाहिक चेतन।**
**राये कोले करि' प्रभु करये क्रन्दन॥१५४॥**

**१५४। प॰ अनु॰—**विदायी की बात सुनते ही श्रीरामानन्दराय भूमि पर गिर पड़े, उनमें चेतना नहीं रही अर्थात् वे अचेतन (बेहोश) हो गये। श्री रामानन्दराय को अपनी गोदी में लेकर श्रीमन्महाप्रभु क्रन्दन करने लगे।

राय का प्रभु-विच्छेद अवर्णनीय:—

**रायेर विदाय-भाव ना जाय सहन।**
**कहिते ना पारि एइ ताहार वर्णन॥१५५॥**

**१५५। प॰ अनु॰—**विदायी के समय श्रीरामानन्द राय में उत्पन्न भाव असहनीय हैं, मैं उन भावों का वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ।

उड़ीसा की सीमा में आगमन; राज कर्मचारियों द्वारा प्रभु की सेवा—

**तबे 'उड्देश-सीमा' प्रभु चलि' आइला।**
**तथा राज-अधिकारी प्रभुरे मिलिला॥१५६॥**
**दिन दुइ-चारि तेंहो करिल सेवन।**
**आगे चलिबारे सेइ कहे विवरण॥१५७॥**

**१५६-१५७। प॰ अनु॰—**तब चलते-चलते श्रीमन्महाप्रभु उड़ीसा राज्य की सीमा पर आ पहुँचे। वहाँ पर एक राज-अधिकारी आकर श्रीमन्महाप्रभु से मिला। दो-चार दिनों तक उन्होंने भी श्रीमन्महाप्रभु की सेवा की तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को आगे चलने के मार्ग का विवरण भी दिया।

### अनुभाष्य

१५६। औड्देश-सीमा,—सुवर्णरेखा नदी ही बङ्गाल और उड़ीसा की सीमा है; सुवर्ण रेखा नदी श्रीपाट गोपीवल्लभपुर के पास से होकर उड़ीसा में प्रवाहित हो रही है।

प्रभु को राजकर्मचारियों द्वारा हिन्दु और मुस्लिम राज्यों की सीमा का निर्देश और पथ का विवरण प्रदान—

**"मद्यप यवन-राजार आगे अधिकार।**
**ताँर भये पथे केह नारे चलिवार॥१५८॥**
**पिछलदा पर्यन्त सब ताँर अधिकार।**
**ताँर भये नदी केह हैते नारे पार॥१५९॥**

**१५८-१५९। प॰ अनु॰—**आगे मद्यपान करने वाले यवन राजा का अधिकार है, उसके भय से मार्ग पर कोई जा नहीं सकता। पिछलदा नामक स्थान तक उसका अधिकार है, उसके भय से कोई नदी को भी पार नहीं कर पाता।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१५९। पिछल्दा,—तमलुकेर निकटवर्ती रूप-नारायण नदी के किनारे पिछलदा नामक ग्राम है।

मुस्लिम शासक के साथ सन्धि के बाद प्रभु द्वारा जाने के विषय में सहायता अङ्गीकार—

**दिन कत रह,—सन्धि करि' ताँर सने।**
**तबे सुखे नौकाते कराइब गमने॥१६०॥**

**१६०। प॰ अनु॰—**कुछ दिन तक आप यहीं पर रुक जाइये, मैं उस यवन राजा के साथ मित्रता करके प्रसन्नता पूर्वक आपको नौका में चढ़ाकर भेज दूँगा।

मुस्लिम शासक के किसी एक गुप्तचर द्वारा अपने स्वामी के निकट प्रभु और उनके साथियों की क्रिया और महिमा का वर्णन—

**सेइ काले से यवनेर एक अनुचर।**
**'उड़िया-कटके आइला करि' वेशान्तर॥१६१॥**

**१६१। प० अनु०—**उसी समय उस यवन राजा का एक अनुचर (गुप्तचर) उड़ियाकटक (सैन्यकटक) अर्थात् छावनी में वेश-परिवर्त्तन करके आया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६१। **उड़िया-कटक,—**उड़ीसा देशीय राजा की राज्यसीमा में जो 'सैन्यकटक' अर्थात् छावनी थी, उसी को 'उड़िया-कटक' कहा गया है।

**अनुभाष्य**

१६१। **'करि' वेशान्तर** (वेश परिवर्तन करके), —स्वयं 'यवन' होकर यवन के द्वारा धारण किये जाने वाले वेश के बदले हिन्दु के वेश को ग्रहण करके।

**प्रभुर सेइ अद्‌भुत चरित्र देखिया।**
**हिन्दु-चर कहे, सेइ यवन-पाश गिया॥१६२॥**
**"एक सन्यासी आइल जगन्नाथ हैते।**
**अनेक सिद्ध-पुरुष हय ताँहार सहिते॥१६३॥**

**१६२-१६३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के अद्‌भुत चरित्र को देखकर उस हिन्दु के वेश को धारण करने वाले गुप्तचर ने यवन राजा के पास जाकर कहा—एक सन्यासी जगन्नाथपुरी से आये है तथा उनके साथ बहुत से सिद्ध पुरुष भी हैं।

**अनुभाष्य**

१६२। **चर,—**विपक्ष का हो अथवा प्रजावर्ग का ही हो, गुप्त रूप से अन्दर की सब बातों को जानकर अपने परिचय को छिपाकर अन्य-परिचय प्रदान करके जो व्यक्ति नियोग अथवा भेजने वाले को यथायथ संवाद देता है।

**निरन्तर करे सबे कृष्ण-सङ्कीर्त्तन।**
**सबे हासे, नाचे, गाय, करये क्रन्दन॥१६४॥**

**१६४। प० अनु०—**वे सभी निरन्तर कृष्णनाम का सङ्कीर्त्तन करते हैं तथा सभी हँसते हैं, नाचते हैं, गाते हैं एवं क्रन्दन करते हैं।

**लक्ष लक्ष लोक आइसे ताहा देखिबारे।**
**ताँरै देखि' पुनरपि जाइते नारे घरे॥१६५॥**

**१६५। प० अनु०—**लाखों-लाखों लोग उनके नृत्य-गान को देखने के लिये आते है तथा एक बार उस संन्यासी को देख लेने पर पुनः अपने घर को लौट नहीं पाते।

**सेइ सब लोक हय बाउलेर प्राय।**
**'कृष्ण' कहि' नाचे, कान्दे, गड़ागड़ि जाय॥१६६॥**

**१६६। प० अनु०—**दर्शन के लिये उपस्थित सब लोग भी पागल की भाँति हो जाते हैं तथा 'कृष्ण' कहते-कहते नाचते है, रोते हैं तथा भूमि पर लोट-पोट खाते हैं।

**कहिबार कथा नहे,—देखिले से जानि।**
**ताँहार प्रभावे ताँरै 'ईश्वर' करि' मानि॥"१६७॥**

**१६७। प० अनु०—**उस संन्यासी के प्रभाव के कारण मैं उसे ईश्वर ही मानता हूँ। यह बात कहने की नहीं हैं—देखने पर ही इसका अनुभव किया जा सकता है।

उस गुप्तचर में प्रेमावेश—

**एत कहि' सेइ चर 'हरि' 'कृष्ण' गाय।**
**हासे, कान्दे, नाचे, गाय बाउलेर प्राय॥१६८॥**

**१६८। प० अनु०—**इतना कहकर वह गुप्तचर 'हरि' 'कृष्ण' कहकर गान करने लगा तथा वह भी पागल की भाँति हँसने, रोने, नाचने तथा गाने लगा।

गुप्तचर के मुख से प्रभु की बात सुनकर मुस्लिम शासक का प्रभु के निकट दूत-भेजना—

**एत शुनि' यवनेर मन फिरि' गेल।**
**आपन-'विश्वास' उड़िया-स्थाने पाठाइल॥१६९॥**

**१६९। प० अनु०—**गुप्तचर के मुख से उपरोक्त सब बातों को सुनकर यवन का मन बदल गया। उसने अपने एक अति विश्वसनीय व्यक्ति को उस छावनी में उड़ीसा के राज अधिकारी के पास भेजा।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१६९। विश्वास,—गौड़ देशीय यवन राजा का 'विश्वासखाना' नामक एक 'दफ्तर' था ; उसमें अत्यन्त विश्वसनीय कायस्थों को ही कार्यभार प्राप्त हुआ था। राजा को जब जहाँ मुख्य कार्य पड़ता, वही कायस्थ 'विश्वास' गण ही भेजे जाते।

दूत के द्वारा प्रभु के चरणों की
वन्दना और प्रेमावेश—

**'विश्वास' आसिया प्रभुर चरण वन्दिल।**
**'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' प्रेमे विह्वल हइल॥१७०॥**

**१७०। प० अनु०—**यवन के उस अति विश्व-सनीय व्यक्ति ने आकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना की तथा वह भी 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए प्रेम से विह्वल हो गया।

राज कर्मचारी के निकट उसका कातरभाव से
निवेदन और सन्धि की प्रार्थना—

**धैर्य हञा उड़ियाके कहे नमस्करि'।**
**''तोमा-स्थाने पाठाइला म्लेच्छ अधिकारी॥१७१॥**
**तुमि यदि आज्ञा देह' एथाके आसिया।**
**यवन अधिकारी जाय प्रभुके मिलिया॥१७२॥**
**बहुत उत्कण्ठा ताँर, कराछे विनय।**
**तोमा-सने एइ सन्धि, नाहि युद्ध-भय॥''१७३॥**

**१७१-१७३। प० अनु०—**धैर्य धारण करके उसने उड़ीसा के राज अधिकारी को नमस्कार करके कहा कि म्लेच्छ अधिकारी ने मुझे आपके पास भेजा है। 'यदि आप आज्ञा दें तो यहाँ पर आकर यवन अधिकारी श्रीमन्महाप्रभु से आकर मिल जायें। उनमें श्रीमन्महाप्रभु से मिलने की बहुत उत्कण्ठा है, उन्होंने विनती करने के लिये ही मुझे यहाँ भेजा है। उनका यहाँ पर आना आपसे सन्धि (मित्रता) के लिये ही होगा, इसमें युद्ध का कोई भय नहीं है।

प्रभु के द्वारा किये गये मुस्लिम-शासक के चित्त के
परिवर्त्तन से राजकर्मचारियों का विस्मय—

**शुनि' महापात्र कहे हञा विस्मय।**
**''मद्यप यवनेर चित्त ऐछे के करय!!१७४॥**
**आपने महाप्रभु ताँर मन फिराइल।**
**दर्शन-स्मरणे जाँर जगत् तारिल॥''१७५॥**

**१७४-१७५। प० अनु०—**उसकी बात सुनकर राजकर्मचारी ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा—'मद्यपान करने वाले यवन का चित्त ऐसा किसने बना दिया! स्वयं उन श्रीमन्महाप्रभु ने उसके मन को परिवर्तित कर दिया है, जिनके दर्शन एवं स्मरण ने ही जगत् का उद्धार कर दिया है।

मुस्लिम शासक को प्रभु के
दर्शन की सम्मति प्रदान—

**एत बलि' विश्वासेरे कहिल वचन।**
**''भाग्य ताँर—आसि' करुक प्रभु दरशन॥१७६॥**
**प्रतीत करिये—यदि निरस्त्र हञा।**
**आसे तेंहो पाँच-सात भृत्य सङ्गे लञा॥१७७॥**

**१७६-१७७। प० अनु०—**इतना कहकर राजकर्मचारी ने यवन के विश्वासपात्र से कहा—यवन का सौभाग्य हैं, वे आकर श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करें। किन्तु मैं उनकी बात पर तभी विश्वास करूँगा जब वे बिना किसी अस्त्र के पाँच-सात सेवकों को लेकर ही आयेंगे।'

दूत के द्वारा यह आनन्द संवाद प्रदान, मुस्लिम लोगों द्वारा हिन्दु वेश बदलकर प्रभु के दर्शन के लिये आना—

**'विश्वास' याञा ताँहारे सकल कहिल।**
**हिन्दुवेश धरि' सेइ यवन आइल॥१७८॥**
**दूर हैते प्रभु देखि' भूमेते पड़िया।**
**दण्डवत करे अश्रु-पुलकित हञा॥१७९॥**

**१७८-१७९। प॰ अनु॰—**उस विश्वसनीय व्यक्ति ने जाकर यवन राजा को सबकुछ बतलाया। वह यवन हिन्दु का वेश धारण करके आया। दूर से ही श्रीमन्महाप्रभु को देखकर उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे तथा उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने भूमि पर गिरकर श्रीमन्महाप्रभु को दण्ड्वत किया।

प्रभु के निकट आकर मुस्लिम का कृष्णनाम-ग्रहण—

**महापात्र आनिल ताँरे करिया सम्मान।**
**जोड़-हाते प्रभु-आगे लय कृष्णनाम॥१८०॥**

**१८०। प॰ अनु॰—**राज कर्मचारी उन्हें सम्मान-पूर्वक श्रीमन्महाप्रभु के निकट ले आये, वह यवन हाथ जोड़कर श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष कृष्णनाम का उच्चारण करने लगा।

अपने मुस्लिम जन्म को धिक्कार और निर्वेदपूर्ण उक्ति—

**"अधम यवनकुले केने जन्म हैल।**
**विधि मोरे हिन्दुकुले केने ना जन्माइल॥१८१॥**

**१८१। प॰ अनु॰—**उस यवन के मुख से निकला—मेरा जन्म अधम यवनकुल में क्यों हुआ? विधाता ने मुझे हिन्दुकुल में क्यों नहीं जन्म प्रदान किया?

प्रभु के चरणों की प्राप्ति के बिना मृत्यु की वाञ्छा—

**'हिन्दु' हैले पाइताम तोमार चरण-सन्निधान।**
**व्यर्थ मोर एइ देह, जाउक पराण॥"१८२॥**

**१८२। प॰ अनु॰—**हिन्दुकुल में जन्म लेने पर मुझे आपके चरणों का सान्निध्य प्राप्त होता। मेरी यह देह व्यर्थ ही है, मेरे प्राणों का निकल जाना ही अच्छा है।

उसकी खेदपूर्ण उक्ति को सुनकर राजकर्मचारियों द्वारा भी प्रभु की स्तुति—

**एत शुनि' महापात्र आविष्ट हञा।**
**प्रभुके करेन स्तुति चरणे धरिया॥१८३॥**

**१८३। प॰ अनु॰—**यवन राजा की बात को सुनकर उड़िया राजकर्मचारी भी आविष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़कर उनकी स्तुति करने लगा—।

भगवान के नाम के श्रवण के फलस्वरूप अन्त्यज्य को भी पवित्रता की प्राप्ति—

**"चण्डाल—पवित्र, जाँर श्रीनाम-श्रवणे।**
**हेन-तोमार एइ जीव पाइल दरशने॥१८४॥**

**१८४। प॰ अनु॰—**चण्डाल भी जिनके श्रीनाम का श्रवण करके पवित्र हो गया, ऐसे आपके इस जीव को दर्शन प्राप्त हुए हैं।

भगवान् के दर्शन के फलस्वरूप मुस्लिम का उद्धार बहुत अधिक विस्मय का कारण नही—

**इँहार जे एइ गति, इथे कि विस्मय?**
**तोमार दर्शन-प्रभाव एइमत हय॥"१८५॥**

**१८५। प॰ अनु॰—**इस यवन की जो यह गति हुयी है, इसमें कैसा विस्मय है? आपके दर्शन का प्रभाव ही ऐसा होता है।

भगवान् के नाम के श्रवण, कीर्त्तन अथवा स्मरण से ही अन्त्यज्य की शुद्धि, साक्षात् दर्शन की तो बात ही नहीं—

श्रीमद्भागवत (३/३३/६) में—

**यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनाद्**
**यत्प्रहवणाद यत्स्मरणादपि क्वचित्।**

**श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते**
**कुतः पुनस्ते भगवन्नुदर्शनात्॥१८६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८६। हे भगवन्, जिनके नाम श्रवण, अनुकीर्त्तन, प्रणाम और स्मरण करने मात्र से चण्डाल और यवन कुल में जन्मा व्यक्ति भी तत्क्षणात् सवन-यज्ञ (सोमयज्ञ) करने के योग्य हो जाता है, ऐसे जो प्रभु आप हैं, आपके दर्शन से क्या नहीं हो सकता?

**अनुभाष्य**

१८६। श्रीकपिलदेव के मुख से शुद्धभक्तियोग के श्रवण से माता देवहूति के मोह के आवरण के दूर होने पर वे शुद्ध सांख्यज्ञान के प्रवर्त्तक भगवान् श्रीकपिल देव का स्तव कर रही हैं—

हे भगवन्, क्वचित् यन्नामधेय श्रवणानुकीर्त्तनात् (यस्य भगवतः तव नाम्नः आदौ श्रवणम्, अणु तदनन्तरं कीर्तनञ्च तस्मात्), यत्प्रह्वणात् (यस्य तव शिरसा नमस्कारात्), यत्स्मरणात् (यस्य तव भगवतः स्मरणेन्) च स्वादः (सर्वाधमश्वपच-कुलोद्भूतः) अपि सद्यः (तत्क्षणात्) सवनाय (सोम-यागाय) कल्पते (योग्यो भवति), ते (तव) दर्शनात् पुनः कुतः नु (किं वक्तव्यं, कृतार्थास्मीत्यर्थः)।

मुस्लिम राजा को कृपापूर्वक कृष्णनाम ग्रहण करने का आदेश—

**तबे महाप्रभु ताँरे कृपा-दृष्टि करि'।**
**आश्वासिया कहे,—"तुमि कह 'कृष्ण' 'हरि'॥"१८७॥**

**१८७। प० अनु०—**तब श्रीमन्महाप्रभु ने उस यवन-राजा के प्रति कृपा दृष्टि करके उसे आश्वासन देते हुए कहा कि तुम 'कृष्ण' 'हरि' नाम का उच्चारण करो।

**अनुभाष्य**

१८७। ताँरे (उसे),—उस म्लेच्छ शासक को।

म्लेच्छ शासक के पाप का मोचन और प्रभु की सेवा की याचना—

**सेइ कहे,—"मोरे यदि कैला अङ्गीकार।**
**एक आज्ञा देह,—सेवा करि जे तोमार॥१८८॥**
**गो-ब्राह्मण-वैष्णवे हिंसा करयाछि अपार।**
**सेइ पाप हइते मोर हउक निस्तार॥"१८९॥**

**१८८-१८९। प० अनु०—**उस यवन राजा ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा—आपने यदि मुझे अङ्गीकार किया है तो आप मुझे एक आज्ञा दीजिए जिससे मैं आपकी सेवा कर सकुँ। मैंने गैयाओं, ब्राह्मणों तथा वैष्णवों के प्रति अपार हिंसा की है, उस पाप से मेरा उद्धार हो।

लौकिक-लीला का अभिनय करने वाले प्रभु के लिये मुकुन्द द्वारा यात्रा के पथ में सहायता की प्रार्थना—

**तबे मुकुन्द दत्त कहे,—"शुन, महाशय।**
**गङ्गातीर जाइते महाप्रभुर मन हय॥१९०॥**
**ताँहा जाइते कर तुमि सहाय-प्रकार।**
**एइ बड़ आज्ञा, एइ बड़ उपकार॥१९१॥**

**१९०-१९१। प० अनु०—**तब श्रीमुकुन्द दत्त ने उस यवन राजा से कहा—हे महाशय, सुनो! श्रीमन्महाप्रभु का मन गङ्गा के तट पर जाने का है। वहाँ जाने के लिये जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, तुम वह सहायता करो। यही तुम्हारे प्रति सबसे बड़ी आज्ञा है तथा यही तुम्हारा सबसे बड़ा उपकार होगा।

म्लेच्छ-शासक द्वारा उपरोक्त बात स्वीकार एवं दैन्यपूर्वक सभी को प्रणाम करने के बाद विदायी-ग्रहण—

**तबे सेइ महाप्रभुर चरण वन्दिया।**
**सबार चरण वन्दि' चले हृष्ट हञा॥१९२॥**

**१९२। प० अनु०—**तब वह यवन-शासक श्रीमन्महाप्रभु तथा अन्य सभी भक्तों के चरणों की वन्दना करके प्रसन्न होकर चला गया।

### अनुभाष्य

१९२। सेई (वही),—म्लेच्छ शासक।

राज कर्मचारियों के साथ उसका मिलन और बन्धुत्व—

**महापात्र ताँर सने कैल कोलाकुलि।**
**अनेक सामग्री दिया करिल मितालि॥१९३॥**

**१९३। प० अनु०—**उड़िया राजकर्मचारी ने उसे गले लगाया तथा बहुत सी सामग्री देकर उससे मित्रवत् व्यवहार किया।

### अनुभाष्य

१९३। मितालि,—द्रव्य आदि उपहार प्रदान करके (की जाने वाली) मित्रता।

म्लेच्छ द्वारा प्रातः काल प्रभु की यात्रा में सहायता करना, प्रभु को सगौरव (सम्मान) पूर्वक आहवान—

**प्रातःकाले सेइ बहु नौका साजाजा।**
**प्रभुके आनिते दिल विश्वास पाठाजा॥१९४॥**

**१९४। प० अनु०—**अगले दिन प्रातःकाल उस यवन-शासक ने बहुत-सी नौकाओं को सजाकर श्रीमन्महाप्रभु को लाने के लिये विश्वासपात्र को भेज दिया।

राजकर्मचारियों के साथ प्रभु का जाना और म्लेच्छ द्वारा प्रभु की वन्दना—

**महापात्र चलि' आइला महाप्रभुर सने।**
**म्लेच्छ आसि' कैल प्रभुर चरण-वन्दने॥१९५॥**

**१९५। प० अनु०—**उड़िया राजकर्मचारी भी श्रीमन्महाप्रभु के साथ चला आया। यवन-शासक ने आकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना की।

सब प्रकार की सुविधाओं से युक्त एक नयी नौका-प्रदान—

**एक नवीन नौका, तार मध्ये घर।**
**स्वगणे चड़ाइला प्रभु ताँहार उपर॥१९६॥**

**१९६। प० अनु०—**एक नयी नौका, जिसमें एक घर बना हुआ था, श्रीमन्महाप्रभु ने उसमें अपने भक्तों को चढ़ाया।

राजकर्मचारियों को प्रभु द्वारा नदी के तट पर विदायी प्रदान, उनका क्रन्दन—

**महापात्रे महाप्रभु करिला विदाय।**
**कान्दिते कान्दिते सेई तीरे रहि' जाय॥१९७॥**

**१९७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने उड़िया राज-कर्मचारी को विदा किया तथा वह कर्मचारी रोते-रोते उसी तट पर खड़े-खड़े श्रीमन्महाप्रभु की नौका को जाते हुए देखता रहा।

प्रभु के भक्त उस म्लेच्छ का प्रभु की सुरक्षा करते हुए 'मन्त्रेश्वर' नदी को पार करके 'पिछलदा' तक गमन—

**जलदस्युभये ऐइ यवन चलिल।**
**दश नौका भरि' बहु सैन्य सङ्गे निल॥१९८॥**
**'मन्त्रेश्वर'-दुष्टनदे पार कराइल।**
**'पिछलदा' पर्यन्त सेइ यवन आइल॥१९९॥**

**१९८-१९९। प० अनु०—**जलमार्ग के डाकुओं के भय से वह यवन शासक भी दस नौकाओं में बहुत सी सेना को अपने साथ लेकर चल दिया। उस यवन-शासक ने श्रीमन्महाप्रभु की नौका को 'मन्त्रेश्वर' नामक भयानक नदी के मार्ग से पार कराया तथा वह यवन शासक पिछलदा तक श्रीमन्महाप्रभु के साथ आया।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१९९। मन्त्रेश्वर,—डायमण्ड हारबार के सन्निकट एक बहुत बड़े नद (बहुत तेज धार वाली नदी) का नाम ही 'मन्त्रेश्वर' है ; उस नदी से नौका रूपनारायण-नदी के तट पर स्थित 'पिछलदा' ग्राम में पहुँची। पिछलदा ग्राम का एक तट—मन्त्रेश्वर के साथ संलग्न है (?)।

**अनुभाष्य**

१९९। दुष्टनद,—जल दस्युओं (लुटेरों) से भरा दुर्गम जलपथ; नद के अत्यधिक विशाल होने के कारण तथा वेग के दुर्गम होने के कारण भी उसे दुष्टनद कहा गया है।

पिछलदा में उसे विदायी-प्रदान, उसकी अद्‌भुत आर्ति—

**ताँरे विदाय दिल प्रभु सेइ ग्राम हैते।**
**से-काले ताँर प्रेम-चेष्टा ना पारि वर्णिते॥२००॥**

**२००। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने उस यवन-शासक को पिछलदा नामक ग्राम से विदायी प्रदान की, उस समय उस यवन-शासक की जैसी प्रेम-चेष्टा थी, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता।

चैतन्यलीला को श्रवण करने वाले का ही जन्म सार्थक—

**अलौकिक लीला करे श्रीकृष्णचैतन्य।**
**जेइ इहा शुने, ताँर जन्म, देह-धन्य॥२०१॥**

**२०१। प० अनु०—**श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु अलौकिक लीलाएँ करते हैं, जो उनकी इन लीलाओं का श्रवण करता है, उसी का ही जन्म तथा उसी की ही देह धन्य है।

प्रभु का उसी नौका से पाणिहाटी में राघव-भवन में आगमन, माझी पर कृपा—

**सेइ नौका चड़ि' प्रभु आइला 'पाणिहाटि'।**
**नाविकेरे पराइल प्रभु निज-कृपा-साटी॥२०२॥**

**२०२। प० अनु०—**उसी नौका पर चढ़कर श्रीमन्महाप्रभु 'पाणिहाटि' तक चले आये। नौका चलाने वाले को श्रीमन्महाप्रभु ने अपना कृपा रूपी वस्त्र प्रदान किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०२। पाणिहाटी,—गङ्गा के तटपर श्रीपाट खड़दह से थोड़ी ही दूरी पर 'पाणिहाटी' ग्राम है।

प्रभु के आगमन से लोगों की भीड़—

**'प्रभु आइला' बलि' लोके हैल कोलाहल।**
**मनुष्य भरिल सब, किबा जल, स्थल॥२०३॥**

**२०३। प० अनु०—**'श्रीमन्महाप्रभु आये हैं'—ऐसा सुनकर लोगों में कोलाहल मच गया। क्या जल, क्या स्थल, सभी स्थानों पर लोग भर गये।

भीड़ के कारण बहुत कष्ट से प्रभु को राघव द्वारा अपने घर में लाना—

**राघव-पण्डित आसि' प्रभु लञा गेला।**
**पथे जाइते लोकभिड़े कष्टे-सृष्ट्ये आइला॥२०४॥**

**२०४। प० अनु०—**श्रीराघवपण्डित आकर श्रीमन्महाप्रभु को ले गये। मार्ग में जाते समय लोगों की भीड़ के कारण कुछ असुविधा की सृष्टि हुई।

राघव-भवन में एक दिन रहकर कुमार हट्ट में श्रीवास के घर में आगमन—

**एकदिन प्रभु तथा करिया निवास।**
**प्राते कुमारहट्टे आइला,—जाँहा श्रीनिवास॥२०५॥**

**२०५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु एकदिन वही पर निवास करके अगले दिन प्रातःकाल कुमारहट्ट आ गये, जहाँ पर श्रीवास पण्डित रहते थे।

उसके बाद उसके निकट ही पहले शिवानन्द के घर, बाद में वासुदेव के घर में आगमन—

**ताँहा हैते आगे गेला शिवानन्द-घर।**
**वासुदेव-गृहे पाछे आइला ईश्वर॥२०६॥**

**२०६। प० अनु०—**कुमारहट्ट से श्रीमन्महाप्रभु श्रीशिवानन्द सेन के घर पर गये तथा बाद में भगवान् श्रीमन्महाप्रभु श्रीवासुदेव के घर पर आये।

उसके बाद विद्यानगर में विद्यावाचस्पति के घर आकर बहुत अधिक भीड़ देखकर गुप्त रूप से कुलिया में आगमन—

**'वाचस्पति-गृहे' प्रभु जेमते रहिला।**
**लोक-भिड़-भये जैछे 'कुलिया' आइला॥२०७॥**

**२०७। प० अनु०—**विद्या-वाचस्पति के घर पर श्रीमन्महाप्रभु जिस प्रकार रहे तथा लोगों की भीड़ के भय से जिस प्रकार कुलिया में आये।

**अनुभाष्य**

२०७। वाचस्पति के घर पर प्रभु का पाँच दिन तक अवस्थान,—मध्य, प्रथम परिच्छेद १५१ संख्या द्रष्टव्य।

**वाचस्पति का घर**—कोलद्वीप के निकटवर्ती जह्नुद्वीप के अन्तर्गत 'विद्यानगर' में उस स्थान पर देवानन्द पण्डित का वास—चै:भा:—मध्य, इक्कीसवाँ अध्याय और अन्त्य तृतीय अध्याय द्रष्टव्य।

**कुलिया**,—श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक के नवम अङ्क में (राय के द्वारा प्रेरित एवं नवद्वीप से कटक लौटे व्यक्तियों की राजा के प्रति उक्ति)—''ततः कुमारहट्टे श्रीवासपण्डितवाट्याम-भ्याययो।" ततोऽद्वैत-वाटीमभ्येत्य हरिदासेनाभि-वन्दितस्तथैव तरणीवर्त्मना नवद्वीपपस्य पारे कुलिया-नाम ग्रामे माधवदासवाट्यामुत्तीर्णवान्।" एवं सप्तदिनानि तत्र स्थित्वा पुनस्तट वर्त्मना एव चलितवान्।'' श्रीचैतन्यचरितमहाकाव्य—''अन्येद्युः स श्री नवद्वीप भूमेः पारे गङ्गं पश्चिमे क्वापि देशे। श्रीमान् सर्वप्राणिनां तत्तदङ्गैर्नेत्रानन्दं सम्यगागत्य तेने॥'' चै: भा: अन्त्य, तृतीय अध्याय—''सर्वपारिषद-सङ्गे श्रीगौरसुन्दर। आच-म्बिते आसि' उतरिला ताँर (विद्यावाचस्पतिर) धर॥ नवद्वीपादि सर्वादिके हैल ध्वनि। 'वाचस्पति धरे आइला न्यासि चूड़ामणि'॥ अनन्त अर्बुद लोक बलि' 'हरि' 'हरि'। चलिलेन देखिबारे गौराङ्ग-श्रीहरि॥ पथ नाहि पाय केहो लोकेर गहले। वनडाल भाङ्गि लोक दशदिके चले॥ लोकेर गहले जत अरण्य आछिल। क्षणेके सकल दिव्य पथमय हैल॥ क्षणेके आइल सब लोक खेयाघाटे। खेयारी करिते पार पड़िल सङ्कटे॥ सत्वरे आसिला वाचस्पति महाशय। करिलेन अनेक नौकार समुच्चय॥ नौकार अपेक्षा आर केहो नाहि करे। नाना मते पार हय जे जेमते पारे॥ हेनमते गङ्गा पार हइ' सर्वजन। सभेइ धरेन वाचस्पतिर चरण॥" लुकाञा-गेला प्रभु कुलिया-नगर। कुलि-याय आइलेन वैकुण्ठ ईश्वर॥" सर्वलोक 'हरि' बलि' वाचस्पति सङ्गे। सेइ क्षणे सभे चलिलेन महारङ्गे॥ कुलियानगरे आइलेन न्यासिमणि। सेइक्षणे सर्वदिके हैल महाध्वनि॥ सबे गङ्गा मध्ये नदीयाय-कुलियाय। शुनि' मात्र सर्वलोके महानन्दे धाय॥ वाचस्पतिर ग्रामे (विद्यानगरे) छिल जतेक गहल। तार कोटि कोटिगुणे पुरिल सकल॥ लक्ष लक्ष नौका वा आइल कोथा हैते। ना जानि कतेक पार हय कतमते॥ लक्ष लक्ष लोक भासे जाह्नवीर जले। सभे पार हयेन परम कुतहले॥ गङ्गाय हञा पार आपना-आपनि। कोलाकोलि करि' सभे करे हरिध्वनि॥ क्षणेके कुलिया-ग्राम—नगर-प्रान्तर। परिपूर्ण हैल स्थल, नाहि अवसर॥ क्षणेके आइला महाशय वाचस्पति। तिँहो नाहि पायेन प्रभुर कोथा स्थिति॥" कुलियाय प्रकाशे जतेक पापी हिल। उत्तम, मध्यम, नीच,—सबे पार हैल॥ कुलियाग्रामेते आसि' श्रीकृष्णचैतन्य। हेन नाहि, जारे प्रभु ना करिला धन्य॥'' नित्यानन्द प्रभु का नवद्वीप में वास करते समय परिकरों के साथ सङ्कीर्त्तन—(यथा चै: भा: अन्त्य, पष्ठ अ:) ''खानाजोड़ा, बड़गछि आर दो-गाछिया। गङ्गार ओपार कभु जायेन 'कुलिया'॥'' चैतन्य-मङ्गल में—''गङ्गास्नान करि' प्रभु राढ़-देश दिया। क्रमे क्रमे उतरिल नगर 'कुलिया'॥ मायेर वचने पुनः गेला नवद्वीप। बारकोणा घाट, निज-बाड़ीर समीप॥'' प्रेमदास—"नदीयार माझखाने, सकल-लोकेते जाने, कुलिया पाहाड़पुर' नामे स्थान।''

श्रीनरहरि चक्रवर्ती अथवा घनश्याम दासकृत भक्ति-रत्नाकर (द्वादश तरङ्ग) में ''कुलिया पाहाड़पुर देख, श्रीनिवास। पूर्वे 'कोलद्वीप' पर्वताख्य—ए प्रचार॥'' उन्हीं के द्वारा रचित ''नवद्वीप-परिक्रमा'' में—'कुलिया-पाहाड़पुर ग्राम। पूर्वे कोलद्वीपपर्वताख्यानन्द नाम॥'' अभी भी 'बाहिर-द्वीप' के नाम से परिचित स्थान, वर्त्तमान शहर-नवद्वीप, कोलेरगञ्ज, कोल-आमाद, कोलेर दह, गदखालि प्रभृति स्थान ही 'कुलिया' था, अतएव 'कुलिया का पाट' नामक आधुनिक कल्पित जो ग्राम है, वह कभी भी 'प्राचीन' कुलिया नहीं है।

कुलिया में प्रभु का माधवदास के घर में वास एवं असंख्य लोगों द्वारा प्रभु का दर्शन—

**माधवदास-गृहे तथा शचीर नन्दन।**
**लक्ष-कोटि लोक तथा पाइल दरशन॥२०८॥**

**२०८। प० अनु०—**वहाँ पर माधवदास के घर पर लाखों-करोड़ो लोगों ने शचीनन्दन का दर्शन प्राप्त किया।

### अनुभाष्य

२०८। माधव दास,—श्रीकर चट्टोपाध्याय के वंश में युधिष्ठिर चट्टोपाध्याय ने जन्मग्रहण किया था। वे तथा उनके ज्ञाति (सङ्गे सम्बन्धी) बिल्व-ग्राम और पाटुलि से नवद्वीपके अन्तर्गत 'कुलिया-पाहाड़पुर अथवा 'पाड़पुर' में आकर रहे थे। युधिष्ठिर के ज्येष्ठ (बड़े) पुत्र—माधव-दास, मध्यम (बीच के)—हरिदास एवं कनिष्ठ (छोटे)—कृष्ण-सम्पत्ति चट्टोपाध्याय थे; उनके साधारण नाम क्रमशः—'छकड़ि', 'तिनकड़ि' और 'दुकड़ि' था। माधवदास के पौत्र वंशीवदन तथा उनके पौत्र रामचन्द्र आदि के वंशधर बाघनापाड़ा और बैंची प्रभृति स्थान पर आज तक भी वास कर रहे हैं।

बहुत से अपराधियों के उद्धार हेतु कुलिया ही 'अपराध-भञ्जन का पाट'—

**सात दिन रहि' तथा लोक निस्तारिला।**
**सब अपराधीगणे प्रकारे तारिला॥२०९॥**

**२०९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने सात दिन तक वहाँ पर रहकर लोगों का उद्धार किया तथा समस्त अपराधियों का भी भिन्न-भिन्न प्रकार से उद्धार किया।

### अनुभाष्य

**२०९।** मध्य, प्रथम परिच्छेद १५३-१५४ संख्या द्रष्टव्य।

अद्वैत के घर में जाना और शचीदेवी के साथ मिलन—

**'शान्तिपुराचार्य'-गृहे ऐछे आइला।**
**शची-माता मिलि' ताँर दुःख खण्डाइला॥२१०॥**

**२१०। प० अनु०—**ऐसे करते-करते श्रीमन्महाप्रभु शान्तिपुराचार्य श्री अद्वैत के घर पर आये तथा वहाँ पर उन्होंने शचीमाता से मिलकर उनके दुःख को दूर किया।

### अमृतप्रवाह भाष्य

**२०५-२१०।** कुमारहट्ट का वर्त्तमान नाम-'हालि-शहर' है। महाप्रभु के सन्यास ग्रहण करने पर कुछ ही दिनों में श्रीवास पण्डित ने नवद्वीप के अपने वासस्थान को त्याग करके कुमारहट्ट में गृह का निर्माण किया था। कुमारहट्ट से प्रभु काञ्चनपल्ली में अर्थात् काँचड़ा पाड़ा में शिवानन्द सेन के घर पर गये तथा उसके उपरान्त शिवानन्द के घर के निकटवर्ती स्थान पर वासुदेव दत्त के घर पर गये थे। वहाँ से श्रीनवद्वीप के पश्चिम पार 'श्रीविद्यानगर' में प्रभु ने गमन किया। (लोगों की भीड़ के कारण) विद्यानगर से आकर कुलिया-ग्राम में माधवदास के घर पर रहे। वहाँ सातदिन रहकर देवानन्द आदि के अपराध को दूर किया।

कविराज गोस्वामी के द्वारा इस स्थान पर शान्तिपुर आचार्य के घर पर इस प्रकार आगमन की बात का उल्लेख करने से, बहुत लोगों के मन में यह सन्देह होता है कि काँचड़ापाड़ा के निकट ही कोई 'कुलिया' होगा। इस मिथ्या आशङ्का से कोई 'नवीन कुलियापाट' उत्पन्न हुआ है, ऐसा अनुमान होता है। वास्तव में महाप्रभु वासुदेव के घर से ही शान्तिपुर आचार्य के घर पर गये थे। वहाँ से वे नवद्वीप के दूसरी (पश्चिम) ओर विद्यानगर में विद्या-वाचस्पति के घर और कुलिया-ग्राम में गये थे, इस प्रकार की उक्ति 'श्रीचैतन्यभागवत में' श्रीचैतन्यमङ्गल में' 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक में', 'प्रेमदास की भाषा में' एवं 'श्रीचैतन्यचरित-काव्य में' स्पष्ट रूप से वर्णित है ; श्री कविराज-गोस्वामी ने इस यात्रा का रीतिपूर्वक वर्णन नहीं किया है, इसलिये यह समस्त उत्पात और सन्देहमूलक घटना हुई है।

रामकेलि में आगमन और 'कानाई नाटशाला' से पुनः शान्तिपुर में लौटना—

**तबे 'रामकेलि'-ग्रामे प्रभु जैछे गेला।**
**'नाटशाला' हैते प्रभु पुनः फिरि' आइला॥२११॥**
**शन्तिपुरे पुनः कैल दश-दिन वास।**
**विस्तारि' वर्णियाछेन वृन्दावन-दास॥२१२॥**

**२११-२१२। प० अनु०—**उसके बाद कैसे श्रीमन्महाप्रभु रामकेलि ग्राम में गये तथा कानाइ नाटशाला से श्रीमन्महाप्रभु पुनः कैसे लौट आये। कानाइ नाटशाला से आकर श्रीमन्महाप्रभु ने पुनः शान्तिपुर में किस प्रकार दस दिन तक वास किया, इसका श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१२। श्रीचैतन्य भागवत में अन्त्य खण्ड तृतीय अध्याय द्रष्टव्य।

**अनुभाष्य**

२११। श्रीरूप-सनातन के दर्शन (मिलन) हेतु ही प्रभु का रामकेलि में आगमन, मिलन और आलाप,—मध्य, प्रथम परिच्छेद १६६-२२६ संख्या एवं 'कानाइ नाटशाला-गमन—मध्य, प्रथम परिच्छेद २२७-२३१ संख्या द्रष्टव्य।

२१२। शान्तिपुर में दस दिन,—मध्य प्रथम परिच्छेद २३२-२३३ संख्या द्रष्टव्य।

पहले प्रथम परिच्छेद में सूत्र में अनेक घटनाओं का वर्णन, ग्रन्थ के कलेवर की वृद्धि के भय से पुनः वर्णन करने की अनिच्छा—

**अतएव ईँहा तार ना कैलुँ विस्तार।**
**पुनरुक्ति हय, ग्रन्थ बाड़ये अपार॥२१३॥**
**तार मध्ये मिलिला जैछे रुप-सनातन।**
**नृसिंहानन्द कैल जैछे पथेर साजन॥२१४॥**
**सूत्र मध्ये सेइ लीला आमि त' वर्णिलुँ।**
**अतएव पुनः ताहा ईँहा ना लिखिलुँ॥२१५॥**

**२१३-२१५। प० अनु०—**अतएव इस स्थान पर मैं इस सबका विस्तार से वर्णन नहीं कर रहा हूँ। एक तो इससे पुनरुक्ति होगी, दूसरा ग्रन्थ भी बहुत बड़ा हो जायेगा। उसमें श्रीमन्महाप्रभु कैसे श्रीरूप-श्रीसनातन से मिले तथा श्रीनृसिंहानन्द ने कैसे मार्ग को सजाया। मैंने पहले ही इसका संक्षेप से वर्णन कर दिया है। अतएव पुनः उसे यहाँ पर नहीं लिख रहा हूँ।

**अनुभाष्य**

२१४-२१५। नृसिंहानन्द,—आदि दशम परिच्छेद ३५ संख्या एवं मध्य प्रथम परिच्छेद १५५-१६२ संख्या द्रष्टव्य।

शान्तिपुर में श्रीरघुनाथ का प्रभु के साथ साक्षात्कार—

**पुनरपि प्रभु यदि 'शान्तिपुर' आइला।**
**रघुनाथ-दास आसि' प्रभुरे मिलिला॥२१६॥**

**२१६। प० अनु०—**जब पुनः श्रीमन्महाप्रभु शान्तिपुर लौटकर आये तब श्रीरघुनाथदास ने आकर श्रीमन्महाप्रभु से भेट की।

श्री रघुनाथ का पितृ-परिचय—

***'हिरण्य', 'गोवर्धन',—दुइ सहोदर।***
***सप्तग्रामे बार लक्ष मुद्रार ईश्वर॥२१७॥***
***महेश्वर्ययुक्त दुँहे—वदान्य, ब्रह्मण्य।***
***सदाचारी, सत्कुलीन, धार्मिकाग्रगण्य॥२१८॥***
***नदीया-वासी ब्राह्मणेर उपजीव्य-प्राय।***
***अर्थ, भूमि, ग्राम दिया करेन सहाय॥२१९॥***

**२१७-२१९। प० अनु०—**हिरण्य और गोवर्धन—दो सगे भाई, सप्तग्राम में बारह लाख मुद्राओं के मालिक थे। दोनों ही अत्यधिक ऐश्वर्य से युक्त थे। दोनों ही दानी, ब्राह्मणों का आदर-सम्मान करने वाले, सदाचारी, सद्कुलीन तथा धार्मिकों में अग्रगण्य थे। दोनों भाई नदीया वासी ब्राह्मणों के उपजीव्य (जीवन धारण करने के उपाय) जैसे थे। दोनों भाई धन, भूमि तथा गाँव देकर नदीया के ब्राह्मणों की सहायता करते थे।

**अनुभाष्य**

२१७। **हिरण्य और गोवर्धन**,—हुगली जिले में सप्तग्राम के निकट श्रीकृष्णपुर-ग्राम-निवासी शौक्र-कायस्थकुल में जन्मे दो सगे भाई। इनकी वंशगत उपाधि विशेष रूप से पता नहीं चलती, फिर भी ये सत्कुलीन थे। बड़े भाई का नाम 'हिरण्य' मजूमदार एवं छोटे भाई का नाम 'गोवर्द्धन' मजूमदार था। श्रीरघुनाथ दास गोवर्धन के ही पुत्र थे। हिरण्य और गोवर्धन के पुरोहित बलराम आचार्य—श्रीहरिदास ठाकुर के कृपापात्र थे (अन्त्य, तृतीय परिच्छेद १६५-१६६ संख्या) एवं हिरण्य और गोवर्धन के गुरु-पुरोहित यदुनन्दन आचार्य—श्रीवासुदेव दत्त के अनुगृहीत थे (अन्त्य षष्ठ परिच्छेद १६१ संख्या); इनके सम्बन्ध में अन्यान्य कथा—अन्त्य, तृतीय परिच्छेद १६५, १७१-१७४, १८८-१८९, १९८, २०१ और २०६ संख्या एवं अन्त्य, षष्ठ परिच्छेद १७-३४, ३७-४० संख्या द्रष्टव्य ; प्रभु के श्रीमुख से इनके आचरण का वर्णन अन्त्य, षष्ठ परिच्छेद १९५-१९८ संख्या में द्रष्टव्य।

**सप्तग्राम—**इ. आइ.आर लाइन में हुगली-जिले के अन्तर्गत 'त्रिशबिघा' रेल-स्टेशन के निकट सरस्वती नदी के तट पर अवस्थित प्राचीन बन्दर (गाह) और नगर। १५९२ खृष्टाब्द में पाठानों ने इस स्थान को लूटा तथा सरस्वती नदी की धारा के बन्द होने पर १६३२ खृष्टाब्द में यह बहुत प्राचीन बन्दरगाह लगभग ध्वंस हो गयी। कहा जाता है, सतरहवीं और अठारहवीं शताब्दी में भी यहाँ पुर्तगीज नाविक व्यवसाय के कारण समुद्री जहाज से आगमन करते थे। उस समय के दक्षिण-बङ्गाल में सप्तग्राम एक समृद्धि-सम्पन्न (बहुत ही) विशेष नगर के रूप में प्रसिद्ध था। इस नगर में विपुल सम्पति के अधीश्वर के रूप में, हिरण्य और गोवर्धन, दो भाई वास करते थे। उस समय उनके वार्षिक खजाने की उगाही बारह लाख मुद्राएँ थी। आदि एकादश परिच्छेद ४१ संख्या में 'उद्धारण दत्त' के प्रसङ्ग में अनुभाष्य का प्रथम अंश द्रष्टव्य।

**अनुभाष्य**

२१८-२१९। श्रीमहाप्रभु के समय नवद्वीप समृद्ध नगर होने पर भी वह हिरण्य और गोवर्धन के आश्रित विद्यानुशीलन में रत ब्राह्मणों का ही वासस्थान मात्र था। वे शुद्ध विप्र हिरण्य और गोवर्धन के प्रतिपाल्य रहकर उन्हीं के द्वारा प्रदान किये गये अर्थ, भूमि और ग्राम आदि के द्वारा अध्यापना और जीवनयात्रा का निर्वाह करते थे। हिरण्य और गोवर्धन की ब्राह्मणों के प्रति असाधारण मर्यादा थी एवं उनमें मुक्त हस्त (खुले

हाथ) दान देने के विषय में किसी प्रकार की कुण्ठता नही थी।

प्रभु के साथ परिचय का आदि कारण—

**नीलाम्बर चक्रवर्ती—आराध्य दुँहार।**
**चक्रवर्ती करे दुँहाय 'भातृ'-व्यवहार॥२२०॥**
**मिश्र पुरन्दरेर पूर्वे करयाछेन सेवने।**
**अतएव प्रभु भाल जाने दुइजने॥२२१॥**

**२२०-२२१। प० अनु०—**श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती इन दोनों भाइयों के आराध्य थे। श्री नीलाम्बर चक्रवर्ती इन दोनों के साथ भाई जैसा व्यवहार करते थे। इन दोनों भाइयों ने पहले श्रीजगन्नाथ मिश्र की भी बहुत सेवा की थी, इसलिए श्रीमन्महाप्रभु इन दोनों भाइयों को भली-भाँति जानते थे।

श्रीरघुनाथ का परिचय—

**सेइ गोवर्धनेर पुत्र—रघुनाथ दास।**
**बाल्यकाल हैते तेंहो विषये उदास॥२२२॥**

**२२२। प० अनु०—**उन दोनों भाइयों में से श्रीगोवर्धन के पुत्र का नाम रघुनाथ दास था। रघुनाथ दास बचपन से ही विषयों के प्रति उदासीन थे।

शान्तिपुर में रघुनाथ के द्वारा प्रभु के श्रीचरणों के दर्शन—

**सन्यास करि' प्रभु जबे शान्तिपुर आइला।**
**तबे आसि' रघुनाथ प्रभुरे मिलिला॥२२३॥**

**२२३। प० अनु०—**जब श्रीमन्महाप्रभु संन्यास लेकर शान्तिपुर आये थे, तभी आकर रघुनाथ ने श्रीमन्महाप्रभु से भेंट की थी।

प्रभु के श्रीचरणों में रघुनाथ द्वारा शरण-ग्रहण—

**प्रभुर चरणे पड़े प्रेमाविष्ट हञा।**
**प्रभु पादस्पर्श कैल करुणा करिया॥२२४॥**

**२२४। प० अनु०—**रघुनाथ प्रेमाविष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में गिर पड़े थे, श्रीमन्महाप्रभु ने करूणापूर्वक उन्हें चरण से स्पर्श किया था।

पिता के सम्बन्ध से स्नेहशील अद्वैत की कृपा से रघुनाथ को प्रभु के श्रीचरणों का सङ्ग—

**ताँर पिता सदा करे आचार्य-सेवन।**
**अतएव आचार्य ताँरे हैला परसन्न॥२२५॥**
**आचार्य-प्रसादे पाइल प्रभुर उच्छिष्ट-पात।**
**प्रभुर चरण देखे दिन पाँच-सात॥२२६॥**

**२२५-२२६। प० अनु०—**श्रीरघुनाथ के पिता सदैव श्रीअद्वैताचार्य की सेवा करते थे, इसी सम्बन्ध से श्री अद्वैताचार्य रघुनाथ के प्रति बहुत प्रसन्न थे। श्रीअद्वैताचार्य की कृपा से श्रीरघुनाथ को श्रीमन्महाप्रभु के उच्छिष्ट प्रसाद की प्राप्ति हुयी, श्रीरघुनाथ ने पाँच-सात दिन तक वही रहकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन किया।

प्रभु के बिना प्रभु के विरह में उन्मत्त रघुनाथ—

**प्रभु ताँरे विदाय दिया गेला नीलाचल।**
**तेंहो घरे आसि' हैला प्रेमेते पागल॥२२७॥**

**२२७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु श्रीरघुनाथ को विदायी देकर नीलाचल चले गये। श्रीरघुनाथ भी घर लौटकर प्रेम में पागल हो गये।

पहले बारम्बार भाग जाने की चेष्टा
और पिता द्वारा बाँधना—

**बार-बार पलाय तेंहो नीलाद्रि जाइते।**
**पिता ताँरे बान्धि' राखे, आनि पथ हैते॥२२८॥**

**२२८। प० अनु०—**श्रीरघुनाथ बार-बार जगन्नाथ पुरी जाने के लिये घर से भागने का प्रयास करते, किन्तु उनके पिता उन्हें मार्ग से पकड़कर ले आते तथा घरपर बाँधकर रखते।

ग्यारह प्रहरियों की व्यवस्था, इसलिए
प्रभु के दर्शन के अभाव में दुःख—

**पञ्च पाइक ताँरि राखे रात्रि-दिने।**
**चारि सेवक, दुइ ब्राह्मण रहे ताँर सने॥२२९॥**
**एकादश जन ताँरि राखे निरन्तर।**
**नीलाचल जाइते ना पाय, दुःखित अन्तर॥२३०॥**

**२२९-२३०। प० अनु०—**पाँच पहरेदार दिन-रात श्रीरघुनाथ की रखवाली करते तथा चार सेवक और दो ब्राह्मण रघुनाथ के साथ रहते। कुल मिलाकर ग्यारह लोग श्रीरघुनाथ को निरन्तर वही पर रखते, भागने का कोई अवसर नहीं देते। इसी कारण श्रीरघुनाथ नीलाचल नहीं जा सकते थे तथा उनका हृदय दुःखित रहता था।

अब प्रभु के शान्तिपुर में आते ही पिता से
उनके दर्शन के लिये जाने की याचना—

**एबे यदि महाप्रभु 'शान्तिपुर' आइला।**
**शुनिया पितारे रघुनाथ निवेदिला॥२३१॥**
**''आज्ञा देह', याञा देखि प्रभुर चरण।**
**अन्यथा, ना रहे मोर शरीरे जीवन॥''२३२॥**

**२३१-२३२। प० अनु०—**इस बार श्रीचैतन्य महाप्रभु के शान्तिपुर आने के विषय में सुनकर श्री रघुनाथ ने अपने पिता से निवेदन किया—आप मुझे आज्ञा दीजिए, जिससे मैं जाकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों का दर्शन कर सकुँ। यदि ऐसा नहीं होगा तो मेरे शरीर में जीवन (प्राण) नहीं रहेंगे।

पिता के द्वारा पुत्र को प्रभु के निकट भेजना—

**शुनि' ताँर पिता बहु लोक-द्रव्य दिया।**
**पाठाइल बलि' शीघ्र आसिह फिरिया'॥२३३॥**

**२३३। प० अनु०—**श्रीरघुनाथ की बात सुनकर उनके पिता ने बहुत से लोग तथा द्रव्यों को साथ में देकर उन्हें 'जल्दी लौटकर आ जाना' कहकर भेज दिया।

शान्तिपुर में आकर प्रहरियों के बन्धन
से मुक्त होने के विषय में सोचना—

**सात दिन शान्तिपुरे प्रभु-सङ्गे रहे।**
**रात्रि-दिवसे एइ मनःकथा कहे॥२३४॥**
**'रक्षकेर हाते मुञि केमने छुटिब!**
**केमने प्रभुर सङ्गे नीलाचले जाब??'२३५॥**

**२३४-२३५। प० अनु०—**श्रीरघुनाथ सात दिन तक शान्तिपुर में श्रीमन्महाप्रभु के साथ रहे। दिन-रात वे सब समय जिस किसी से भी मिलते, उसी को अपने मन की इसी बात को बतलाते कि पहरेदारों के हाथों से मैं किस प्रकार छूटूँगा! किस प्रकार मैं श्रीमन्महाप्रभु के साथ नीलाचल जाऊँगा?

प्रभु द्वारा बद्धजीव की लीला का अभिनय
करने वाले रघुनाथ को शिक्षा-प्रदान—

**सर्वज्ञ गौराङ्ग-प्रभु जानि' ताँर मन।**
**शिक्षा-रूपे कहे ताँरै आश्वास-वचन॥२३६॥**

**२३६। प० अनु०—**सर्वज्ञ श्रीगौराङ्ग महाप्रभु ने उनके मन की बात को जानकर शिक्षा के रूप में उन्हें कुछ आश्वासनपूर्ण वचन कहे—।

युक्तवैराग्य ग्रहण और फल्गु-वैराग्य
को त्याग करने का उपदेश—

**''स्थिर हञा घरे जाओ' ना हओ वातुल।**
**क्रमे क्रमे पाय लोक भवसिन्धुकूल॥२३७॥**
**मर्कट-वैराग्य ना कर लोक देखाञा।**
**यथायोग्य विषय भुञ्ज' अनासक्त हञा॥२३८॥**
**अन्तरे निष्ठा कर, बाह्ये लोक-व्यवहार।**
**अचिरात् कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार॥२३९॥**

**२३७-२३९। प० अनु०—**तुम स्थिर होकर अपने घर जाओ, पागल मत बनो। क्रमशः लोग भवसागरके तट को प्राप्त करते हैं। लोगों को मर्कट (बन्दर जैसा) वैराग्य करके मत दिखलाओ। अनासक्त होकर यथायोग्य विषयों का भोग करो।

निष्ठा अपने हृदय में रखो, बाहर में लोक-व्यवहार करो। अति शीघ्र ही कृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे।

### अमृतप्रवाह भाष्य

२३८। **मर्कट वैराग्य,—**हृदय में विषय की चिन्ता एवं गुप्त रूप से स्त्रियों के साथ सहवास, किन्तु बाहर में कौपीन, बहिर्वास इत्यादि वैराग्य के चिह्नों को धारण करना,—यही सब 'मर्कट वैरागी' के लक्षण है।

### अनुभाष्य

२३८। **मर्कट-वैराग्य,—**बाहरी दृष्टिकोण से भोग बुद्धिपरायण बन्दर जिस प्रकार गृह आदि अथवा वस्त्र आदि से रहित होकर, वैराग्य धारण करने वाले पुरुष के साथ 'समान' कहकर ही प्रतिपादित होते हैं, किन्तु इन्द्रिय-तर्पण से निवृत्त नहीं होते, उसी प्रकार 'लोगों को दिखाने के लिये किये गये, वैराग्य को ही 'मर्कट वैराग्य' कहते हैं। जो वैराग्य शुद्धभक्ति से उसके साथ ही उत्पन्न न होकर कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु के प्रति कामना अथवा वासना में बाधा पड़ने से उत्पन्न होता है, जो शुद्धभक्ति के अनुकूल रूप में सम्पूर्ण जीवन स्थायी न रहकर 'क्षणिक' अथवा 'फल्गु' होता है, वही 'श्मशान-वैराग्य' अथवा 'मर्कट-वैराग्य' है। कृष्णसेवा के लिये बिल्कुल ही त्याग न किये जा सकने वाले विषयों के भोग को स्वीकार मात्र करके उन-उन विषयों में अभिनिवेश को परित्याग करके वास करने से मनुष्य कर्म फल के अधीन नहीं होता। भः रः सिः—पूर्व विः द्वितीय लहरी में उद्धृत नारदीय-वचन—''यावता स्यात स्वनिर्वाहः स्वीकुर्यात् ताव-दर्थ वित्। आधिक्ये न्यूनतायाञ्च च्यवते परमार्थतः॥ ''इस श्लोक के ''स्वनिर्वाहः''—शब्द (का अर्थ) श्रीजीव प्रभु ने ''दुर्गम सङ्गमनी''-टीका में ''अपनी-अपनी-भक्ति का निर्वाहः''—इस प्रकार किया है। पुनः (भः रः सिः द्वितीय लहरी पूर्व विः १२५ और १२६ संख्या में 'फल्गुवैराग्य'—'प्रापञ्चिकतया बुद्धया हरि-सम्बन्धि-वस्तुनः। मुमुक्षभिः परित्यागो वैराग्यं 'फल्गु' कथयते॥'' अर्थात् ''श्री हरि-सेवाय जाहा अनुकूल। 'विषय' बलिया त्यागे हय भूल॥'' (श्रीहरि की सेवा में जो अनुकूल है, उसे 'विषय' कहकर त्यागने से भूल होती है।)'' **'युक्तवैराग्य'—** ''अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुप- युञ्जतः। निर्बन्धः कृष्ण सम्बन्धे युक्तं वैराग्य मुच्यते॥'' अर्थात् ''आसक्ति-रहित, सम्बन्ध-सहित, विषय समूह, सकलि माधव।'' (आसक्ति से रहित होकर भगवान् के सम्बन्ध सहित सभी विषय समूह माधव के लिये ही है।

२३९। मनुष्य के विश्वास अनुसार साधारणतः जिस प्रकार का व्यवहार—सुष्ठु होता है, वैसा उस प्रकार के लोक समाज को दिखलाकर हृदय में प्राकृत (जागतिक) वस्तुओं की आविष्टता को परित्याग करके मेरे प्रति एक निष्ठ होकर भगवद्भक्ति करो; इस प्रकार निष्कपट हृदय से कृष्णसेवा होने पर कृष्ण ही तुम्हारा संसार बन्धन से उद्धार करेंगे। ''अन्तरे निष्ठा कर, बाह्ये लोक व्यवहार'' यह बात पूर्वोक्त ''यथायोग्य विषय भुञ्ज'' अनासक्त हञा'' बात की ही व्याख्या मात्र है। निष्ठा—कृष्णनिष्ठा अर्थात् कृष्ण के अतिरिक्त अन्य वस्तु की कामना अथवा तृष्णा का परित्याग करके अहैतुक-कृष्णानुशीलन में निश्चय युक्त होकर अवस्थान। लोक व्यवहार,—भः रः सिः पूर्व विः द्वितीय लहरी में उद्धृत, पञ्चरात्रवचन—''लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने। हरिसेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता॥''

प्रभु के वृन्दावन से आकर नीलाचल में वास के समय साक्षात्कार करने की आज्ञा—

**वृन्दावन देखि' जबे आसिब नीलाचले।**
**तबे तुमि आमा-पाश आसिह कोन छले॥२४०॥**

**२४०। प० अनु०—**मैं जब वृन्दावन के दर्शन

करके नीलाचल लौटूँगा, तब तुम भी मेरे पास किसी छल से आ जाना।

अहैतुकी कृष्णकृपा के प्रभाव से ही
कृष्णप्राप्ति की योग्यता—

**से छल सेकाले कृष्ण स्फुराबे तोमारे।**
**कृष्णकृपा जाँरे, ताँरे के राखिते पारे॥''२४१॥**

**२४१। प० अनु०—**कृष्ण वह छल उस समय तुम्हें स्फुरित करा देंगे। जिस पर कृष्ण की कृपा होती है, उसे कौन रख सकता है।

प्रभु से विदायी लेकर घर में युक्त
वैराग्य का आचरण—

**एत कहि' महाप्रभु ताँरे विदाय दिल।**
**घरे आसि' महाप्रभुर शिक्षा आचरिल॥२४२॥**
**बाह्य वैराग्य, वातुलता सकल छाड़िया।**
**यथायोग्य कार्य करे अनासक्त हञा॥२४३॥**

**२४२-२४३। प० अनु०—**इतना कहकर श्री मन्महाप्रभु ने उन्हें विदायी दी। श्रीरघुनाथ ने घर पर आकर श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रदत्त शिक्षा का आचरण किया। श्रीरघुनाथ ने बाहरी वैराग्य तथा पागलपन इत्यादि सबकुछ छोड़ दिया। वे अनासक्त होकर यथायोग्य कार्य करने लगे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२४२-२४३। रघुनाथदास शान्तिपुर से सप्तग्राम में आकर महाप्रभु द्वारा प्रदान की गयी शिक्षा का आचरण करने लगे। हृदय में ही वैराग्य का अवलम्बन करके उन्होंने बाहर से किसी वैराग्य की चेष्टा अथवा बातुलता (पागलपन) को नहीं रखा, अनासक्त होकर यथायोग्य घर के कार्य करने लगे।

**अनुभाष्य**

२४३। लोगों के बाहरी दृष्टिकोण से विषय ग्रहण राहित्य रूपी उन्मत्तता को परित्याग करके अनासक्त होकर कृष्ण सेवा के अनुकूल भाव से यथा-उपयोगी कार्य आदि सम्पन्न करने लगे।

रघुनाथ के आचरण से पिता-माता
का सुख, प्रहरियों के घेरे में कमी—

**देखि' ताँर पिता-माता बड़ सुख पाइल।**
**ताँहार आवरण किछु शिथिल हइल॥२४४॥**

**२४४। प० अनु०—**श्रीरघुनाथ को ऐसा करते देख उनके माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए, इसके फलस्वरूप श्रीरघुनाथ को घेरे रखने वाले रक्षकों की संख्या में कुछ कमी हुई।

**अनुभाष्य**

२४४। श्रीरघुनाथ के बाहरी वैराग्य के चिह्नों को शिथिल देखकर पिता-माता के संसार-प्रवण (संसार में प्रविष्ट) हृदय में विशेष आनन्द दिखलायी दिया। रघुनाथ के आवरण के रूप में पाँच पहरेदार, चार दास तथा दो ब्राह्मण,—कुल मिलाकर ग्यारह जनों को लगाकर रखने की और आवश्यकता उन्हें प्रतीत नहीं हुई। श्री रघुनाथ को संसार में क्रमशः कार्यभार आदि को ग्रहण करते देख पहरेदारों की संख्या कम कर दी गयी।

**२३६-२४४।** अन्त्य, षष्ठ परिच्छेद १३-१५ संख्या द्रष्टव्य।

निताई-अद्वैत आदि सभी भक्तों के निकट प्रभु द्वारा
पुरी होकर वृन्दावन-जाने के अनुमोदन की याचना—

**इँहा प्रभु एक एक करि' सब भक्तगण।**
**अद्वैत-नित्यानन्दादि जत भक्तजन॥२४५॥**
**सबा आलिङ्गन करि' कहेन गोसाञि।**
**''सबे आज्ञा देह'—आमि नीलाचले जाइ॥२४६॥**

**२४५-२४६। प० अनु०—**दूसरी ओर, शान्तिपुर में श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द आदि अपने सभी भक्तों को एक-एक करके उन सबका आलिङ्गन करने के बाद कहा कि आप सभी मुझे

नीलाचल जाने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

इस वर्ष पुरी में जाने के लिये सभी
को निषेध रूपी आज्ञा प्रदान—

**सबार सहित ईंहा आमार हइल मिलन।**
**ए वर्ष 'नीलाद्रि' केह ना करिह गमन॥२४७॥**
**ताँहा हइते अवश्य आमि 'वृन्दावन' जाब।**
**सबे आज्ञा देह', तबे निर्विघ्ने आसिब॥''२४८॥**

**२४७-२४८। प० अनु०—**सभी के साथ मेरा यहाँ पर मिलन हो गया है, अतएव इस वर्ष किसी को भी जगन्नाथ पुरी में आनेकी आवश्यकता नहीं है। श्रीजगन्नाथपुरी से मैं अवश्य ही वृन्दावन जाऊँगा। सभी मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए, तभी मैं बिना किसी विघ्न-बाधा के वहाँ से लौटकर आऊँगा।

शची माता से दीनतापूर्वक अनुमति ग्रहण—

**मातार चरण धरि' बहु विनय कैल।**
**वृन्दावन जाइते ताँर आज्ञा लइल॥२४९॥**

माता को शान्तिपुर से नवद्वीप भेजना, पुरी-यात्रा—

**तबे नवद्वीपे ताँरे दिल पाठाञा।**
**नीलाद्रि चलिला सङ्गे भक्तगण लञा॥२५०॥**

**२४९-२५०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीशचीमाता के चरणों को पकड़कर उनसे बहुत विनती की तथा वृन्दावन जाने के लिये उनकी आज्ञा प्राप्त की। तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीशचीमाता को नवद्वीप भेज दिया तथा स्वयं अपने भक्तों को साथ लेकर वे जगन्नाथ पुरी की ओर चल दिये।

पुरी में आगमन—

**सेइ सब लोक पथे करेन सेवन।**
**सुखे नीलाचल आइला शचीर नन्दन॥२५१॥**

**२५१। प० अनु०—**उन्हीं सब लोगों ने ही रास्ते में श्रीमन्महाप्रभु की सेवा की। श्रीशचीनन्दन सुखपूर्वक नीलाचल आ पहुँचे।

जगन्नाथ-दर्शन, सर्वत्र आगमन के संवाद का प्रचार—

**प्रभु आसि' जगन्नाथ दरशन कैल।**
**'महाप्रभु आइला'—ग्रामे कोलाहल हैल॥२५२॥**

**२५२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने आकर श्रीजगन्नाथ का दर्शन किया। 'महाप्रभु लौट आये है'—यह बात सम्पूर्ण जगन्नाथपुरी में फैल गयी।

भक्तों के द्वारा प्रभु का साक्षात्कार—

**आनन्दित भक्तगण आसिया मिलिला।**
**प्रेम-आलिङ्गन प्रभु सबारे करिला॥२५३॥**
**काशीमिश्र, रामानन्द, प्रद्युम्न, सार्वभौम।**
**वाणीनाथ, शिखि-आदि जत भक्तगण॥२५४॥**
**गदाधर-पण्डित आसि' प्रभुरे मिलिला।**
**सबार अग्रेते प्रभु कहिते लागिला॥२५५॥**

**२५३-२५५। प० अनु०—**यह बात सुनकर सभी भक्त बहुत आनन्दित हुए तथा वे आकर श्रीमन्महाप्रभु से मिले। श्रीमन्महाप्रभु ने सभी को प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया। श्रीकाशीमिश्र, श्री रामानन्द राय, श्रीप्रद्युम्न, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीवाणीनाथ, श्रीशिखि महाति आदि बहुत से भक्त तथा श्री गदाधर पण्डित आकर श्रीमन्महाप्रभु से मिले। श्रीमन्महाप्रभु सभी के सामने कहने लगे—

सभी के समक्ष पहले वृन्दावन-यात्रा
में उपस्थित हुए विघ्न का वर्णन—

**''वृन्दावन जाब आमि गौड़देश दिया।**
**निज-मातार, गङ्गार चरण देखिया॥२५६॥**
**एत मते करि' कैलुँ गौड़ेरे गमन।**
**सहस्रेक सङ्गे हैल निज-भक्तगण॥२५७॥**
**लक्ष लक्ष लोक आइसे कौतुक देखिते।**
**लोकेर संघट्टे पथ ना पारि चलिते॥२५८॥**
**यथा रहि, तथा घर-प्राचीर हय चूर्ण।**
**यथा नेत्र पड़े तथा लोक देखि पूर्ण॥२५९॥**

**२५६-२५९। प० अनु०—**अपनी माता शची तथा गङ्गा देवी के चरणों के दर्शन करके मैं बङ्गाल से होता हुआ वृन्दावन जाऊँगा। इस प्रकार का विचार करके मैं बङ्गाल गया था। वहाँ पर अपने सैकड़ों भक्त मेरे साथ चल दिये। लाखों-लाखों लोग कौतुहलपूर्वक मुझे देखने के लिये आते। लोगों की भीड़ के कारण मैं रास्ते में चल नहीं पाता था। मैं जहाँ कहीं पर भी रहता, वहाँ पर घर-दीवार आदि टूट जाते, जहाँ तक मैं देख पाता, मुझे लोग-ही-लोग दिखलायी देते।

रामकेलि ग्राम में रूप-सनातन के साथ मिलन और उनके परिचय का वर्णन—

**कष्टे-सृष्ट्ये करि' गेलाङ्ग रामकेलि-ग्राम।**
**आमार ठाञि आइला 'रूप' 'सनातन' नाम॥२६०॥**

**२६०। प० अनु०—**जिस किसी प्रकार कष्ट करके मैं रामकेलि ग्राम में गया। मेरे पास रूप और सनातन नामक दो व्यक्ति आये।

**दुइ भाइ—भक्त राज, कृष्णकृपा-पात्र।**
**व्यवहारे—राजमन्त्री हय राजपात्र॥२६१॥**

**२६१। प० अनु०—**दोनों भाई बहुत श्रेष्ठ भक्त तथा कृष्ण की कृपा के पात्र हैं। व्यवहारिक दृष्टिकोण से दोनों राजमन्त्री होने के कारण राजपात्र हैं।

**विद्या-भक्ति-बुद्धि-बले परम प्रवीण।**
**तबु आपनाके माने तृण हैते हीन॥२६२॥**

**२६२। प० अनु०—**दोनों ही विद्या-भक्ति-बुद्धि तथा बल में बहुत प्रवीण हैं, तब भी वे दोनों स्वयं को तृण से भी अधिक हीन मानते हैं।

**ताँर दैन्य देखि' शुनि' पाषाण विदरे।**
**आमि तुष्ट हञा तबे कहिलुँ दोहारे॥२६३॥**

रूप-सनातन के प्रति प्रभु का उपदेश—

**'उत्तम हञा हीन करि' मानह आपनारे।**
**अचिरे करिबे कृष्ण तोमार उद्धारे॥"२६४॥**

**२६४। प० अनु०—**उन दोनों की दीनता को देखकर, सुनकर पत्थर भी फट जाते हैं। मैंने सन्तुष्ट होकर उन दोनों से कहा—तुम दोनों उत्तम होने पर भी अपने को दीन मानते हो, श्रीकृष्ण अतिशीघ्र ही तुम दोनों का उद्धार करेंगे।

### अनुभाष्य

२६४। तुम लोग जड़ जगत में 'परम उत्तम' होकर भी स्वयं को 'सबसे अधिक अधम' मान रहे हो, इसलिए तुम्हारे साक्षात् नित्यसिद्ध ब्रजपरिकर होने पर भी कृष्ण मुख्य रूप से जागतिक लोगों के बाहरी दृष्टिकोण से अथवा अक्षज-ज्ञान-सुलभ बद्ध जीव की लीला का अभिनय करने वाले तुम्हारे इस 'संसार-बन्धन' (?) का मोचन करके तुम्हें अपने नित्यदास्य में नियुक्त करेंगे।

विदायी के समय सनातन के द्वारा प्रभु को सतर्क करना—

**एत कहि' आमि जबे विदाय ताँरे दिल।**
**गमन काले सनातन 'प्रहेली' कहिल॥२६५॥**

**२६५। प० अनु०—**इतना कहकर मैंने जब उन्हें विदायी दी तब जाते-जाते सनातन ने एक प्रहेली (पहेली) कही—।

### अमृतप्रवाह भाष्य

२६५। प्रहेली,—प्रहेलिका, तर्ज्जा (पहेली)

बहुत से विभिन्न उद्देश्यों से युक्त लोगों के साथ वृन्दावन-दर्शन का अनुपयोगिता—

**"जाँर सङ्गे हय एइ लोक लक्ष, कोटि।**
**वृन्दावन जाइवार एइ नहे परिपाटी॥२६६॥**

**२६६। प० अनु०—**जिनके साथ लाखों-करोड़ों लोग हो, (उन्हें यह समझना चाहिए कि) वृन्दावन

जाने की यह परिपाटी नहीं है।

ऐसा होने पर भी प्रभु की लोगों की भीड़ के साथ यात्रा, बाद में सनातन के वचन पर विचार करके लोगों के सङ्ग का त्याग—

**तबु आमि शुनिलुँ मात्र, ना कैलुँ अवधान।**
**प्राते चलि' आइलाङ्‌ 'कानाइर नाटशाला'-ग्राम॥२६७॥**
**रात्रिकाले मने आमि विचार करिल।**
**सनातन मोरे किबा 'प्रहेली' कहिल॥२६८॥**
**भाल त' कहिल,—मोर एत लोक सङ्गे।**
**लोक देखि' कहिबे मोरे—'एइ एक ढङ्गे॥'२६९॥**

**२६७-२६९। प० अनु०—**उस समय मैंने उसकी उस बात को केवल सुन लिया, उसे धारण नहीं किया अर्थात् उस पर कोई अधिक ध्यान नहीं दिया तथा प्रातःकाल मैं कानाई नाटशाला नामक ग्राम में चला आया। वहीं पर रात के समय मैंने मन में विचार किया कि सनातन ने मुझसे क्या 'पहेली' कही थी। तब मैंने समझा कि सनातन ने ठीक ही तो कहा है। मेरे साथ तो इतने लोग हैं। अन्य लोग मेरे साथ इतने सारे लोगों को देखकर मुझे एक ढ़ोगी कहेंगे।

निगूढ़ भजनस्थल वृन्दावन में अति अन्तरङ्ग मर्मी भक्त के अलावा बहिरङ्ग लोगों का अनधिकार—

**'दुर्लभ' 'दुर्गम' सेइ 'निर्जन' वृन्दावन।**
**एकाकी जाइब, किबा सङ्गे एकजन॥२७०॥**

**२७०। प० अनु०—**'दुर्लभ', 'दुर्गम' उस 'निर्जन' वृन्दावन में मैं अकेला ही जाऊँगा या फिर केवल किसी एक व्यक्ति के साथ।

पूर्व महाजन माधवपुरी का अकेले ही वृन्दावन गमन—

**माधवेन्द्र पुरी तथा गेला 'एकेश्वरे'।**
**दुग्धदान-छले कृष्ण-साक्षात् दिल ताँरे॥२७१॥**

**२७१। प० अनु०—**श्रीमाधवेन्द्रपुरी वहाँ पर अकेले ही गये थे, दूध प्रदान करने के छल से श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने दर्शन दिये थे।

### अनुभाष्य

**२७१।** मध्य चतुर्थ परिच्छेद २०-३३ संख्या एवं १७२ और १७९ संख्या द्रष्टव्य।

प्रभु के द्वारा बहुत से लोगों की भीड़ का अनादर—

**वादियार वाजि पाति' चलिलाङ्‌ तथारे।**
**बहु-सङ्गे वृन्दावन गमन ना करे॥२७२॥**
**एका जाइब, किबा सङ्गे भृत्य एकजन।**
**तबे से शोभय वृन्दावनेर गमन॥२७३॥**
**वृन्दावन जाब काँहा 'एकाकी' हञा!**
**सैन्य सङ्गे चलियाछि ढाक बाजाञा!२७४॥**

**२७२-२७४। प० अनु०—**मैं तो बाजीगर की भाँति ढ़ोल पीटते हुए वृन्दावन के लिये चला हूँ। बहुत से लोगों के साथ वहाँ गमन नहीं करना चाहिए। मैं अकेला जाऊँगा या फिर किसी एक ही सेवक को अपने साथ लूँगा। तभी वृन्दावन जाना उचित होगा। कहाँ तो अकेले ही वृन्दावन जाऊँगा! और कहाँ मैं ढ़ोल बजाते हुए सेना के साथ में चल पड़ा हूँ।

### अमृतप्रवाह भाष्य

२७२। वादिया अर्थात् बाजीगर, खेल दिखाने के लिये जब किसी स्थान पर बैठते हैं, तब जिस प्रकार लोगों की भीड़ होती है, उसी प्रकार लोगों की भीड़ को लेकर मैं वृन्दावन जा रहा हूँ, यह अच्छा नहीं है।

वृन्दावन-गमन का त्याग करके प्रभु का पुनः गङ्गा के तट पर आगमन—

**धिक्, धिक् आपनाके बलि' हइलाङ्‌ अस्थिर।**
**निवृत्त हञा पुनः आइलाङ्‌ गङ्गातीर॥२७५॥**

**२७५। प० अनु०—**मैं स्वयं को धिक्कार देते

हुए अस्थिर हो गया। इस प्रकार वृन्दावन जाने की अभिलाषा को छोड़कर मैं पुनः गङ्गातट पर आ गया।

कम भक्तों के साथ पुरी में आगमन—

**भक्तगणे राखिया आइनु स्थाने-स्थाने।**
**आमा-सङ्गे आइला सबे पाँच-छय जने॥२७६॥**

**२७६। प० अनु०—**मैं स्थान-स्थान पर भक्तों को छोड़कर आया हूँ, मेरे साथ लगभग पाँच-छह भक्त ही आये हैं।

सभी के निकट निर्विघ्न वृन्दावन-जाने के परामर्श की याचना—

**निर्विघ्ने एबे कैछे जाइब वृन्दावने।**
**सबे मेलि' युक्ति देह' हञा परसन्ने॥२७७॥**

**२७७। प० अनु०—**मैं बिना किसी विघ्न के अब कैसे वृन्दावन जाऊँ, आप सभी मिलकर मुझे प्रसन्नतापूर्वक परामर्श प्रदान कीजिए।

छोड़कर जाने से क्षुब्ध दुःखी गदाधर को प्रेम द्वारा सन्तुष्ट करना—

**गदाधरे छाड़ि' गेनु, इँहो दुःख पाइल।**
**सेइ हेतु वृन्दावन जाइते नारिल॥''२७८॥**

**२७८। प० अनु०—**मैं गदाधर पण्डित को छोड़कर गया था, इस कारण इन्हें बहुत दुःख हुआ तथा कदाचित इसी कारण मैं वृन्दावन नहीं जा पाया।

प्रभु के प्रति दक्षिणा-भाव से युक्त पण्डित की सदैन्य-प्रेमोक्ति—

**तबे गदाधर-पण्डित प्रेमाविष्ट हञा।**
**प्रभु-पद धरि' कहे विनय करिया॥२७९॥**

**२७९। प० अनु०—**तब श्रीगदाधर पण्डित ने प्रेम में आविष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़कर नम्रतापूर्वक कहा—।

जिस स्थान पर प्रभु, वही स्थान ही वृन्दावन, वृन्दावन के अलावा कृष्ण की मधुर लीला नहीं—

**''तुमि जाँहा-जाँहा रह, ताँहा 'वृन्दावन'।**
**ताँहा यमुना, गङ्गा, सर्वतीर्थगण॥२८०॥**

**२८०। प० अनु०—**आप जहाँ-जहाँ रहते हैं, वहाँ वृन्दावन है। वहीं पर ही यमुना, गङ्गा तथा सभी तीर्थ रहते हैं।

लोक-शिक्षा हेतु ही प्रभु का वृन्दावन में गमन—

**तबु वृन्दावन जाह' लोक शिखाइते।**
**सेइ त करिबे, तोमार जेइ लय चित्ते॥२८१॥**

वर्षा के चार मास पुरी में रहने का अनुरोध—

**एइ आगे आइला, प्रभु, वर्षार चारि मास।**
**एइ चारि मास कर नीलाचले वास॥२८२॥**

**२८१-२८२। प० अनु०—**तब भी आप लोगों को अपने आचरण के द्वारा शिक्षा प्रदान करने के लिये वृन्दावन जाते हैं। यद्यपि आप तो वही करेंगे, जो आपके चित्त में होगा। तथापि हमारी प्रार्थना है कि अभी वर्षा के चार मास (चातुर्मास्य) आने वाला हैं, आप ये चार मास नीलाचल में ही वास कीजिए।

### अनुभाष्य

२८०-२८१। श्रीमन्महाप्रभु ने इससे पहले ही रथ के आगे नृत्य करते समय अपने भक्तों में अपने भाव को प्रकाशित किया है। श्रीमहाप्रभु का हृदय ही श्रीराधा कान्त की लीला भूमि वृन्दावन है; तथापि लोक-शिक्षा के लिये उन्होंने जगत में उदित भौम्य-वृन्दावन की ओर गमन किया। प्राकृत-दृष्टि से युक्त विषय भोगों में मत्त साधारण लोगों की धारणा यह है कि भौम-वृन्दावन—अप्राकृत नहीं है, यह अन्य जड़ीय स्थानों की भाँति भोगों में रत इन्द्रियों के लिये भोगों के उपकरण की सहायता हेतु जाने योग्य स्थान-विशेष है। जिस प्रकार अन्यान्य वैसी जड़ वस्तुओं के

सङ्ग के प्रभाव से जड़ीय भाव समूह उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार इन्द्रिय-भोग्य मानकर अथवा जड़-बुद्धि से वृन्दावन (?) दर्शन करने जाकर, किसी पारमार्थिक नित्य मङ्गल अर्थात् अद्वयज्ञान-श्रीकृष्ण की सेवा नहीं होती, वह ''मोर मन-वृन्दावन'' यह श्रीमहाप्रभु के वाक्य और ''आहुश्च ते'' इस श्रीभागवत पद्य में प्रमाणित हुआ है। (भा १०/८४/८)—''यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः। यतीर्थबुद्धि सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥'' वास्तव में जड़ीय लोगों को शिक्षा देने के लिये ही महाप्रभु ने भगवान् के अप्राकृत लीलास्थल वृन्दावन-गमन तथा दर्शन आदि की लीला का आचरण किया था; बद्धजीव के द्वारा उसे भूलकर वृन्दावन को प्रपञ्च से अन्यतम एक विषय भोग क्षेत्र' मानने से, उनका महाप्रभु की शिक्षा के साथ विरोध करना होगा। प्राकृत-सहजिया जिस प्रकार श्रीधाम की धारणा करके स्वयं को 'ब्रजवासी' अथवा 'धामवासी' कहकर अभिमान अथवा प्रचार करके भी वास्तव में चिन्मय वृन्दावन वास के स्थान पर अपने इन्द्रियतर्पण क्षेत्र घोर संसार में ही वास करके जञ्जाल की वृद्धि करते हैं, शुद्ध भागवत गणों का वैसा भाव अथवा धारणा नहीं है। श्रीदामोदर स्वरूप नित्य ब्रजवासी होने पर भी उनके चरित्र में भौम-वृन्दावन में जाने का प्रसङ्ग नहीं सुना जाता; श्री पुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीवास पण्डित, श्रीशिवानन्द सेन, श्रीरामानन्द राय, श्रीशिखि माहाति, श्रीमाधवी देवी, श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी आदि की भी वैसी यात्रा किसी ग्रन्थ में लिपिबद्ध नहीं है। परन्तु शुद्ध भक्ति विहीन बहुत से प्राकृत सहजिया, कर्मी, ज्ञानी अथवा अन्याभिलाषी व्यक्तियों के भी भौम वृन्दावन में वास, दर्शन अथवा गमन आदि का प्रसङ्ग साधारण लोगों के मुख से सुना जाता है। श्रीधाम में वास भक्तिहीन के निकट स्वर्ग-अपवर्ग दायक अथवा पाप-पुण्य वैराग्य प्राप्य फलप्रद होने पर भी ''प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्ति विलोचनेन''—श्लोक का अभिप्रेत दिव्य-निर्मल नेत्र-युक्त शुद्धभक्तों का ही अप्राकृत श्रीधाम वृन्दावन में वास—यथार्थ और सत्य है। परवर्तियुग में खेतरि-ग्राम में ठाकुर नरोत्तम याजिग्राम में श्रीनिवासाचार्य और उनके बाद के समय में गौड़देश में श्रीजगन्नाथ-दास बाबा जी महाराज, कालना में श्रीभगवान् दास, नवद्वीप धाम में श्रीमद् गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज, कलिकता में श्रीश्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर प्रभृति श्रीनामैक निष्ठ भक्तों ने अवश्य ही श्रीवृन्दावन के अतिरिक्त अन्य किसी धाम में कभी भी वास नहीं किया।

**सेइ दिन गदाधर कैल निमन्त्रण।**
**ताँहा भिक्षा कैल प्रभु लञा भक्तगण॥२८६॥**

**२८६। प० अनु०—**उस दिन श्रीगदाधर पण्डित ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया। श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्तों को साथ लेकर वहीं पर भिक्षा ग्रहण की।

पण्डित का प्रेम और प्रभु की उनके प्रति वश्यता—मर्त्त्य जीवों के लिये अचिन्त्य—

**भिक्षाते पण्डितेर स्नेह, प्रभुर आस्वादन।**
**मनुष्येर शक्तये दुइ ना जाय वर्णन॥२८७॥**
**एइ मत गौरलीला—अनन्त, अपार।**
**संक्षेपे कहिये, कहा ना जाय विस्तार॥२८८॥**

**२८७-२८८। प० अनु०—**भिक्षा (प्रसाद) में श्रीगदाधर पण्डित का स्नेह तथा श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा उसका आस्वादन—मनुष्य की शक्ति के बल पर उन दोनों का वर्णन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार गौरलीला अनन्त तथा अपार है। मैं उसका संक्षेप से ही वर्णन कर रहा हूँ, उसका

विस्तृत रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२८७। गदाधर पण्डित के निकट प्रभु की भिक्षा के समय पण्डित का जो स्नेह एवं प्रभु जो उस स्नेह युक्त प्रसाद-अन्न का आस्वादन करते हैं,—यह दोनों विषय ही मनुष्य की शक्ति से वर्णन नहीं किये जा सकते।

*षोड़श परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

साक्षात् अनन्त का भी गौरलीला के
अन्त को पाने में असामर्थ्य—

**सहस्र-वदने कहे आपने 'अनन्त'।**
**तबु एक लीलार तेंहो नाहि पाय अन्त॥२८९॥**

**२८९। प॰ अनु॰—**स्वयं अनन्त अपने सहस्त्र मुखों से भगवान की लीला का गान करते हैं, किन्तु तब भी वे एक लीला का भी अन्त नहीं पा पाते।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥२९०॥**

*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्यखण्ड में पुनर्गौड़गमन-विलास नामक षोड़श-परिच्छेद समाप्त।*

**२९०। प॰ अनु॰—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य-चरितामृत का गान कर रहा है।

✵ ✵ ✵

# सप्तदश परिच्छेद

**कथासार—**उस वर्ष श्री जगन्नाथ पुरी में रथयात्रा देखकर महाप्रभु ने वृन्दावन जाने के लिये स्थिर किया। श्रीरामानन्द और श्रीस्वरूप ने बलभद्र भट्टाचार्य और उनके साथी (सेवक) एक ब्राह्मण को साथ में भेजा। श्रीमन्महाप्रभु रात्रि में सवेरा होने से पहले कट्टक में पहुँचकर कट्टक को दक्षिण (दायी) ओर रखकर निर्जनवन के पथ से चल दिये एवं वन के मार्ग में बाघ-हाथी आदि को प्रेम में कृष्णनाम का गान कराया। जहाँ पर भी ग्राम मिलता, वहाँ भिक्षा करके अन्न-व्यञ्जन आदि प्रस्तुत किया जाता। ग्राम शून्य (लोगों से रहित) स्थान पर पहले से ही एकत्रित चावलों को पकाया जाता एवं वनीय साग आदि का संग्रह किया जाता। बलभद्र भट्टाचार्य के बहुत अच्छे व्यवहार से प्रभु अत्यधिक प्रसन्न हुए। इस प्रकार झारिखण्ड के वन के मार्ग पर चलते हुए प्रभु वाराणसी धाम में उपस्थित हुए।

मणिकर्णिका घाट पर स्नान करते समय प्रभु का तपनमिश्र के साथ साक्षात्कार हुआ। प्रभु को उन्होंने अपने घर ले जाकर बहुत यत्न पूर्वक रखा। प्रभु के पूर्व परिचित भक्त वैद्य-चन्द्रशेखर वाराणसी में प्रभु की सेवा करने लगे। एक महाराष्ट्र के ब्राह्मण ने प्रभु के व्यवहार को देखकर जब सन्यासियों में प्रधान प्रकाशानन्द सरस्वती को उनके विषय में बतलाया, तब प्रकाशानन्द सरस्वती ने महाप्रभु की बहुत निन्दा की। वह ब्राह्मण उससे दुःखी होकर प्रभु के पास आया तथा उसने प्रभु को उस बात को बतलाया एवं प्रकाशानन्द आदि सन्यासियों के मुख से 'कृष्णनाम' के नहीं आने के कारण की जिज्ञासा करने पर, प्रभु ने उसके उत्तर में मायावाद को 'अपराध' कहकर निर्णय किया एवं मायावादियों का सङ्ग करने का निषेध करके उस पर कृपा की। (इसके बाद प्रभु) काशी से प्रयाग के रास्ते मथुरा में उपस्थित हुए तथा वहाँ श्रीमाधवेन्द्र पुरी के शिष्य सानोड़िया-ब्राह्मण के घर में, उस पर कृपा करके भिक्षा की। बाद में श्रीवृन्दावन के द्वादश-वनों में महाप्रेमपूर्वक प्रभु शारी और शुक (मैना तथा तोता) की वार्त्ता को श्रवण करते हुए भ्रमण करने लगे।

(अः प्रः भाः)

वृन्दावन के पथ पर जाते समय पशु-पक्षियों को कृष्ण-प्रेम प्रदान करने वाले कृष्णचैतन्य—

**गच्छन् वृन्दावनं गौरो व्याघ्रेभैणखगान् वने।**
**प्रेमोन्मत्तान् सहोन्नृत्यान् विदधे कृष्णजल्पिनः॥१॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१। श्रीगौरचन्द्र ने वृन्दावन जाते-जाते (मार्ग में स्थित) वन में शेर, हाथी, हिरण और पक्षियों को कृष्ण-कृष्ण नाम के उच्चारण से प्रेमोन्मत्त करते हुए नृत्य करवाया था।

### अनुभाष्य

१। गौरः वृन्दावनं गच्छन् (गन्तुं बहिर्गतः सन्) वने (झारिखण्डारण्यपथि) व्याघ्रभैणखगान् (व्याध-गज-मृग-पक्ष्यादीन्) प्रेमोन्मत्तान् (कृष्णप्रेमाविष्ट्ान्) सहोन्नृत्यान् (गौरेण सह उद्‌दण्डनृत्यपरान्) कृष्ण-

जल्पिनः (कृष्णकृष्णेत्युच्चारिणः) विदधे (कारितवान्)।

**जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प॰ अनु॰—**श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्रीगौर भक्तवृन्द की जय हो।

शरत्काल में जाने के इच्छुक प्रभु का
स्वरूप-राय के साथ परामर्श—

**शरत्काल हैल, प्रभुर चलिते हैल मति।**
**रामानन्द-स्वरुप-सङ्गे निभृते युकति॥३॥**

**३। प॰ अनु॰—**शरत् ऋतु के आने पर श्रीमन्महाप्रभु के मन में वृन्दावन जाने की इच्छा हुई, उन्होंने श्री रामानन्द राय तथा श्री स्वरूप दामोदर के साथ एकान्त में बैठकर परामर्श किया।

**"मोर सहाय करि यदि, तुमि-दुइ जन।**
**तबे आमि जाञा देखि श्रीवृन्दावन॥४॥**

**४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीरायरामानन्द से कहा कि तुम दोनों यदि मेरी सहायता करो, तभी मैं जाकर श्रीवृन्दावन का दर्शन कर सकता हूँ।

द्वितीय किसी को नहीं लेकर
ही जाने की इच्छा—

**रात्र्ये उठि' वनपथे पलाञा जाब।**
**एकाकी जाइब, काँहों सङ्गे ना लइब॥५॥**
**केह यदि सङ्ग लइते पाछे उठि' धाय।**
**सबारे राखिबा, जेन केह नाहि जाय॥६॥**

**५-६। प॰ अनु॰—**मैं रात्रि के समय उठकर वन के मार्ग से यहाँ से पलायन कर जाऊँगा। मैं अकेला ही जाऊँगा, किसी को भी अपने साथ नहीं लूँगा। कोई यदि मेरे साथ चलने के लिये मेरे पीछे-पीछे दौड़ने लगें, तब तुम दोनों उन्हें रोकना, जिससे कोई मेरे पीछे नहीं आ पायें।

भक्तों के समक्ष भगवान् के द्वारा
उनकी कृपा की याचना—

**प्रसन्न हञा आज्ञा दिबा, ना मानिबा 'दुःख'।**
**तोमा-सबार 'सुखे', पथे हबे मोर 'सुख'॥''७॥**

**७। प॰ अनु॰—**तुम मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देना, दुःख नहीं मानना। तुम सबके प्रसन्न होने से मुझे मार्ग में प्रसन्नता मिलेगी।

स्वरूप और राय का
प्रभु से निवेदन—

**दुइजन कहे,—''तुमि ईश्वर 'स्वतन्त्र'।**
**जेइ इच्छा, सेइ करिबा, नह 'परतन्त्र॥८॥**

**८। प॰ अनु॰—**श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरायरामानन्द प्रभु ने कहा—आप स्वतन्त्र ईश्वर हैं। आपकी जैसी इच्छा होगी, आप वैसा ही करेंगे, आप परतन्त्र नहीं हैं।

भक्तों के सुख में ही
भगवान् की प्रसन्नता—

**किन्तु आमा-दुँहार शुन एक निवेदने।**
**'तोमार सुखे आमार सुख'—कहिला आपने॥९॥**

**९। प॰ अनु॰—**किन्तु हम दोनों का एक निवेदन सुनिये। आपने अभी-अभी स्वयं ही कहा है कि ''तुम्हारी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता है''।

भगवान् की प्रसन्नता में ही भक्त का सुख—

**आमा-दुँहार मने तबे बड़ 'सुख' हय।**
**एक निवेदन यदि धर, दयामय॥१०॥**

**१०। प॰ अनु॰—**हे दयामय! हम दोनों के मन में तभी बहुत अधिक प्रसन्नता होगी, जब आप हमारे एक निवेदन को मान लेंगे।

एक वैष्णव-ब्राह्मण को साथ में लेने की प्रार्थना—

**'उत्तम ब्राह्मण' एक सङ्गे अवश्य चाहि।**
**भिक्षा करि' भिक्षा दिबे, जाबे पात्र बहि'॥११॥**
**वनपथे जाइते नाहि 'भोज्यान्न'-ब्राह्मण।**
**आज्ञा कर,—सङ्गे चलुक विप्र एकजन॥''१२॥**

**११-१२। प० अनु०—**आपके साथ एक वैष्णव ब्राह्मण के जाने की नितान्त आवश्यकता है जो कि भिक्षा माँगकर आपको भोजन करायेगा तथा प्रयोजनीय वस्तुओं को उठाकर ले जायेगा। वन के मार्ग में जाते समय ऐसा ब्राह्मण नहीं मिलेगा, जिसके अन्न का भोजन करने में दोष नहीं हो। अतएव आप आज्ञा दीजिए कि आपके साथ एक ब्राह्मण भी जाये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२। भोज्यान्न ब्राह्मण, जिसका अन्न भोज्य है अर्थात् जिसके अन्न का भोजन करने में कोई दोष नहीं है, ऐसा ब्राह्मण।

प्रभु की अपने किसी परिकर को साथ में लेने की अनिच्छा, मन की इच्छा के अनुसार साथी के लक्षण-निर्देश—

**प्रभु कहे,—''निज-सङ्गी काँहो ना लइब।**
**एकजने निले, आनेर मने दुःख हइब॥१३॥**
**नूतन सङ्गी हइबेक,—स्निग्ध जाँर मन।**
**ऐछे जबे पाइ, तबे लइ 'एक' जन॥''१४॥**

**१३-१४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—मैं अपने साथी भक्तों में से किसी को भी अपने साथ लेकर नहीं जाऊँगा, क्योकि उनमें से किसी एक को साथ में लेने से दूसरों के मन में दुःख होगा। यदि मुझे कोई नया साथी, जिसका मन प्रीति युक्त हो, मिल जाये, तब मैं एक व्यक्ति को साथ ले जा सकता हूँ।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४। पहले की भाँति मेरे साथ काला-कृष्णदास आदि के जाने की आवश्यकता नहीं है; परन्तु स्निग्ध (प्रेमवान्) हृदय वाले किसी नये साथी को अपने साथ ले जा सकता हूँ।

स्वरूप के द्वारा बलभद्र भट्ट और उसके एक साथी और भृत्य (दास)-ब्राह्मण का निर्वाचन और साथ में लेने की प्रार्थना—

**स्वरूप कहे,—''एइ बलभद्र-भट्टाचार्य।**
**तोमाते सुस्निग्ध बड़, पण्डित, साधु, आर्य॥१५॥**

**१५। प० अनु०—**श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा—बलभद्र भट्टाचार्य आपके प्रति बहुत प्रीति से युक्त हैं। वे आपके प्रति अत्यन्त स्निग्ध पण्डित, साधु तथा सरल हैं।

**अनुभाष्य**

१४-१५। स्निग्ध, (भा.-१/१/८)—'क्रयुः स्निग्ध स्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत'' श्लोक में 'स्निग्धस्य' शब्द की टीका में श्रीधरस्वामिपाद ने 'प्रेमवतः' (प्रेमिक) लिखा है।

प्रभु के साथ में कर्मबुद्धिप्रबल सरल विप्र को आत्मसंशोधन का सुयोग-प्रदान—

**प्रथमेइ तोमा-सङ्गे आइला गौड़ हैते।**
**इँहार इच्छा आछे 'सर्वतीर्थ' करिते॥१६॥**

**१६। प० अनु०—**वे पहली बार ही आपके साथ बंगाल से आया है तथा उसकी सभी तीर्थों में जाने की इच्छा भी है।

बलभद्र और उसके सङ्गी ब्राह्मण के कृत्य का निर्देश—

**इँहार सङ्गे आछे विप्र एक 'भृत्य'।**
**इँहो पथे करिबेन सेवा-भिक्षा-कृत्य॥१७॥**
**इँहारे सङ्गे लह यदि, सबार हय 'सुख'।**
**वन-पथे जाइते तोमार नहिबे कोन 'दुःख'॥१८॥**
**सेइ विप्र बहि' निबे वस्त्राम्बु-भाजन।**
**भट्टाचार्य भिक्षा दिबे करि 'भिक्षाटन'॥१९॥**

**१६-१९। प० अनु०—**उनके साथ उनका एक

ब्राह्मण सेवक भी है, वह भी मार्ग में सेवा तथा भिक्षा आदि कार्य कर सकता है। यदि आप बलभद्र भट्टाचार्य को अपने साथ ले जाएँ, तो सभी को प्रसन्नता होगी तथा आपको भी वन के मार्ग से जाते समय किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होगा। ब्राह्मण सेवक वस्त्र तथा जलपात्र को उठाकर ले जायेगा तथा बलभद्र भट्टाचार्य भिक्षा माँगकर आपको भोजन करायेगा।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९। वस्त्राम्बुजभाजन,—वस्त्र और जलपात्र।

प्रभु की स्वीकृति—

**ताँहार वचन प्रभु अङ्गीकार कैल।**
**बलभद्र-भट्टाचार्य सङ्गे करि' निल॥२०॥**

**२०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर के वचनों को स्वीकार कर लिया तथा बलभद्र भट्टाचार्य को अपने साथ ले लिया।

रात्रि में जगन्नाथ की आज्ञा ग्रहण, रात्रि के अन्त में गुप्त रूप से वृन्दावन-यात्रा—

**पूर्वरात्र्ये जगन्नाथ देखि' 'आज्ञा' लञा।**
**शेष-रात्र्ये उठि' प्रभु चलिला लुकाञा॥२१॥**

**२१। प० अनु०—**एक रात्रि पूर्व श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीजगन्नाथ के दर्शन करने के बाद उनसे वृन्दावन जाने की आज्ञा ले ली तथा रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर श्रीमन्महाप्रभु चुपके से चल दिये।

प्रातः विरह-व्याकुल भक्तों द्वारा प्रभु को ढूँढ़ना—

**प्रातःकाले भक्तगण प्रभु ना देखिया।**
**अन्वेषण करि' फिरे व्याकुल हञा॥२२॥**

**२२। प० अनु०—**प्रातःकाल भक्त श्रीमन्महाप्रभु को कहीं पर भी नहीं देखकर व्याकुल होकर इधर-उधर ढूँढ़ते हुए घूमने लगे।

स्वरूप के द्वारा भक्तों को रोकना और भक्तों का रूकना—

**स्वरूप-गोसाञि सबाय कैल निवारण।**
**निवृत्त हञा रहे सबे, जानि' प्रभुर मन॥२३॥**

**२३। प० अनु०—**श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उन्हें ऐसा करने के लिये मना किया। सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु की इच्छा जानकर शान्त हो गये।

प्रभु के वन के मार्ग से जाने का वर्णन; प्रभु की कृपा से पशु-पक्षी आदि का भी उद्धार और कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

**प्रसिद्ध पथ छाडि' प्रभु उपपथे चलिला।**
**'कटक' डाहिने करि' वने प्रवेशिला॥२४॥**

**२४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु प्रसिद्ध राजमार्ग को छोड़कर उपपथ पर चल पड़े। उन्होंने कट्टक को अपनी दाहिनी ओर रखकर वन में प्रवेश किया।

**निर्जन-वने चले प्रभु कृष्णनाम लञा।**
**हस्ती-व्याघ्र पथ छाड़े प्रभुरे देखिया॥२५॥**

**२५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु निर्जन वन में कृष्णनाम का उच्चारण करते हुए चलते जा रहे थे, हाथी तथा बाघ श्रीमन्महाप्रभु को देखकर उनके जाने के मार्ग को खाली करा रहे थे।

**पाले-पाले व्याघ्र, हस्ती, गण्डार, शूकरगण।**
**तार मध्ये आवेशे प्रभु करिला गमन॥२६॥**

**२६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु आवेश में झुण्ड के झुण्ड बाघ, हाथी, गैंडे तथा जंगली सुअरों के बीच में से होकर चलते जा रहे थे।

**अनुभाष्य**

२६। महाभागवत में अद्वय ज्ञान की उपलब्धि के कारण द्वितीयाभिनिवेश (कृष्ण के अतिरिक्त

अन्य किसी वस्तु में अभिनिवेश) और उससे उत्पन्न भय अथवा हिंसा के अभाव हेतु एवं अपने सेव्य कृष्ण के भजन में उनके नित्य लगे रहने के कारण उन्हें सर्वत्र कृष्ण और कार्ष्ण अर्थात् श्रीकृष्ण के आत्मीय के दर्शन के फल से वे स्वयं के अलावा अन्य कृष्ण सम्बन्धीय वस्तुओं के द्वारा भी प्रीति के पात्र अथवा आत्मीय के रूप में गिने जाते है, अतएव उनमें परस्पर में प्रीति का अभाव अथवा हिंसा का अवकाश (स्थान) नहीं है। झारि- खण्ड के मार्ग में प्रभु का भी सदैव महाभागवतोचित 'ब्रज में कृष्ण को ढूढ़ने की चेष्टा' लक्षित हुई थी।

**देखि' भट्टाचार्येर मने हय महाभय।**
**प्रभुर प्रतापे तारा एक पाश हय॥२७॥**

२७। **प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को ऐसा करते देखकर बलभद्र भट्टाचार्य के मन में बहुत अधिक भय हुआ, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु के प्रताप से वे सब पशु एक ओर हो जाते थे।

**एकदिन पथे व्याघ्र करियाछे शयन।**
**आवेशे तार गाये प्रभुर लागिल चरण॥२८॥**

२८। **प० अनु०—**एकदिन मार्ग में एक बाघ सोया हुआ था, आवेशवशतः उसके शरीर में श्रीमन्महाप्रभु का चरण लग गया।

**प्रभु कहे,—'कह कृष्ण', व्याघ्र उठिल।**
**'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' व्याघ्र नाचिते लागिल॥२९॥**

२९। **प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने बाघ से कहा—कृष्ण बोलो, श्रीमन्महाप्रभु की बात सुनकर बाघ उठा तथा 'कृष्ण', बोलते-बोलते नाचने लगा।

**आर दिने महाप्रभु करे नदी स्नान।**
**मत्त-हस्ती-यूथ आइल करिते जलपान॥३०॥**

३०। **प० अनु०—**अन्य एक दिन श्रीमन्महाप्रभु नदी में स्नान कर रहे थे। वहीं पर मतवाले हाथियों का दल पानी पाने के लिये आया।

**प्रभु जले कृत्य करेन, आगे हस्ती आइला।**
**'कृष्ण कह' बलि' प्रभु जल फेलि' मारिला॥३१॥**

३१। **प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु जल में स्तुति आदि कोई कृत्य कर रहे थे, तभी हाथी उनके आगे आ गये। 'कृष्ण कहो' कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने उन पर पानी का छींटा देकर मारा।

**अनुभाष्य**

**३१**। कृत्य,—स्नान एवं मन्त्रजप-स्मरणदि।

**सेइ-जल-बिन्दु-कणा लागे जाँर गाय।**
**सेइ 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहे, प्रेमे नाचे, गाय॥३२॥**

३२। **प० अनु०—**उस पानी की एक बूँद का कण भी जिसके शरीर से स्पर्श किया वही 'कृष्ण', 'कृष्ण' कहने लगा तथा प्रेम में नाचने तथा गाने लगा।

**केह भूमे पड़े, केह करये चित्कार।**
**देखि' भट्टाचार्येर मने हय चमत्कार॥३३॥**

३३। **प० अनु०—**कोई भूमि पर गिर पड़ा, कोई चीत्कार करने लगा—यह सब देखकर बलभद्र भट्टाचार्य का मन बहुत चमत्कृत हो उठा।

**पथे जाइते करे प्रभु उच्च-सङ्कीर्त्तन।**
**मधुर कण्ठध्वनि शुनि' आइसे मृगीगण॥३४॥**

३४। **प० अनु०—**मार्ग में चलते-चलते श्रीमन्महा प्रभु उच्च-संकीर्तन कर रहे थे, उनके कण्ठ की मधुर ध्वनि को सुनकर हरिणियाँ उनके निकट आने लगी।

**डाहिने-वामे ध्वनि शुनि' जाय प्रभु-सङ्गे।**
**प्रभु तार अङ्ग मुछे, श्लोक पड़े रङ्गे॥३५॥**

३५। **प० अनु०—**हरिणियाँ श्रीमन्महाप्रभु के दाँये तथा बाँये चलते-चलते संकीर्तन की ध्वनि को सुनते-सुनते उनके साथ-साथ चलने लगी। श्रीमन्महाप्रभु उनके अंगों को सहलाते हुए साफ कर रहे थे तथा अत्यधिक आनन्दपूर्वक श्लोक का उच्चारण कर रहे थे—।

श्रीमद्भागवत (१०/२१/११) में—

**धन्यः स्म मूढ़मतयोऽपि हरिणा एता**
**या नन्दनन्दनमूपात-विचित्रवेशम्।**
**आकर्ण्य वेणुरनितं सहकृष्णसाराः**
**पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥३६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३६। ये मूढ़ मति वाली सभी हरिणियाँ ही धन्य हैं, क्योकि इन्होंने विचित्र-वेश वाले नन्दनन्दन को प्राप्त करके एवं उनके वेणु की ध्वनि को सुनकर कृष्ण सार (हिरणों) के साथ प्रणय रूपी अवलोकन के द्वारा उनकी पूजा की थी।

**अनुभाष्य**

३६। शरत्काल के उपस्थित होने पर कृष्ण के द्वारा वन-वन में वेणु को बजाते हुए भ्रमण आरम्भ करने पर, उनकी वेणुध्वनि को श्रवण करके कृष्णसङ्ग रूपी काम से व्याकुल होकर गोपियों (के द्वारा गाया गया) गीत—हे सखि, मूढ़-मतयः (मूढ़ा विवेकहीना मतिः यासां तथाभूताः) अपि (त्रिर्यग्जातयोऽपि) एताः हरिण्यः (मृग्यः) धन्याः (कृतार्थाः सन्ति) स्म,-याः (हरिण्यः) वेणुरणितं (वेणुनादम्) आकर्ण्य (श्रुत्वा) सहकृष्णसाराः (कृष्ण-सारेर्मृगैः स्वपतिभिः सहिताः एव) उपात्तविचित्रवेशम् (उपात्ताः स्वीकृताः विचित्राः वेशाः) वनमाला-बर्हापीड-गुञ्जावतंसादिरूपाः येन् तं) नन्दनन्दनं (प्रति) प्रणयावलोकैः (प्रणयसहितैः अवलोकनैः) विरचितां (भूषितां) पूजां दधुः (कृतवत्यः)।

**हेनकाले व्याघ्र तथा आइल पाँच-सात।**
**व्याघ्र-मृगी मिलि' चले महाप्रभुर साथ॥३७॥**
**देखि' महाप्रभुर 'वृन्दावन'-स्मृति हैल।**
**वृन्दावन-गुण-वर्णन श्लोक पड़िल॥३८॥**

**३७-३८। प० अनु०—**इतने में ही पाँच-सात व्याघ्र भी वहाँ आ गये। व्याघ्र तथा हरिणियाँ एक साथ मिलकर श्रीमन्महाप्रभु के साथ चलने लगे। व्याघ्र तथा हरिणियों को एकसाथ चलते देखकर श्रीमन्महाप्रभु को वृन्दावन की स्मृति हो आयी तथा उन्होंने श्रीवृन्दावन के गुणों का वर्णन करने वाले श्लोक का उच्चारण किया—।

वृन्दावन में अद्वयज्ञान का विरोधी भाव नहीं—
(श्रीमद्भागवत १०/१३/६०) में—

**यत्र नैसर्गदुर्वेराः सहासन् नृ मृगादयः।**
**मित्राणीवाजितावास-द्रुत-रुट् तषणादिकम्॥३९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३९। जिस स्थान पर मनुष्य-बाघ आदि स्वभाव वशतः परस्पर विरुद्ध चेष्टा वाले होने पर भी मित्र भाव से एक स्थान पर वास करते हैं, एवं कृष्ण के आराम (नित्य विहार) स्थान होने के कारण क्रोध-तृष्णा आदि जिस धाम को परित्याग करके पलायन कर गये थे, (ब्रह्मा ने उस अप्राकृत वृन्दावन धाम को देखा)।

**अनुभाष्य**

३९। ब्रज की गैयाओं-बछड़ों और गोप बालकों का हरण करके ब्रह्मा त्रुटीकाल के बाद पुनः ब्रज में ही परम-ऐश्वर्य से युक्त गैयाओं-बछड़ों तथा गोपबालकों को कृष्ण के साथ क्रीड़ा में रत देखकर कृष्ण की माया में अत्यन्त मुग्ध हो गये। बाद में कृष्ण के द्वारा कृपापूर्वक अपने माया रूपी पर्दे को उठा लेने पर ब्रहमा ने सोकर उठे व्यक्ति की भाँति चारों ओर दृष्टिपात करते ही अत्यधिक ऐश्वर्यमय श्री वृन्दावन का दर्शन किया—

यत्र नैसर्गदुर्वैराः (स्वाभाविकाप्रतिकार्य-वैर-वन्तोऽपि) नृ मृगादयः (नराः सिंहादयः) मित्राणि इह सह आसन् (मिथः स्थितवन्तः), (तथाभूतम्) अजितावासद्रुत-रुट्तर्षणादिकम् (अजितस्य श्री कृष्णस्य आवासः सदावस्थानं तेन निज महिम्ना द्रुतं पलायितं रुट्तर्षणादिकं क्रोधलोभतृष्णादयः यस्मात् तथाभूतं—वृन्दावनमपश्यदिति पूर्वेणान्वयः)।

**'कृष्ण' 'कृष्ण' कह करि' प्रभु जबे बलिल।**
**'कृष्ण' कहि' व्याघ्र-मृग नाचिते लागिल॥४०॥**

४०। **प० अनु०—**जब श्रीमन्महाप्रभु ने व्याघ्र और हरिणियों को 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलने के लिये कहा, तब वे 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करके नृत्य करने लगे।

**नाचे, कान्दे व्याघ्रगण मृगीगण-सङ्गे।**
**बलभद्र-भट्टाचार्य देखे अपूर्व-रङ्गे॥४१॥**

४१। **प० अनु०—**व्याघ्र हरिणियों के साथ में ही नृत्य तथा क्रन्दन करने लगे। बलभद्र भट्टाचार्य इस अपूर्व दृश्य को आनन्दपूर्वक देखने लगे।

**व्याघ्र-मृग अन्योन्ये करे आलिङ्गन।**
**मुखे मुख दिया करे अन्योन्ये चुम्बन॥४२॥**

४२। **प० अनु०—व्याघ्र और हिरणिया परस्पर का आलिंगन करने लगे तथा एक-दूसरे के मुख को मिलाकर परस्पर का चुम्बन करने लगे।**

**कौतुक देखिया प्रभु हासिते लागिला।**
**ता-सबाके ताँहा छाड़ि' आगे चलि' गेला॥४३॥**

४३। **प० अनु०—**इस कौतुक को देखकर श्रीमन्महाप्रभु हँसने लगे, उन सबको वहीं पर छोड़कर श्रीमन्महाप्रभु आगे बढ़ गये।

**मयूरादि पक्षिगण प्रभुरे देखिया।**
**सङ्गे चले, 'कृष्ण' बलि' नाचे मत हञा॥४४॥**

४४। **प० अनु०—**मोर आदि पक्षी श्रीमन्महाप्रभु को देखकर 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते-बोलते मदमस्त होकर नृत्य करते हुए उनके साथ चलने लगे।

**'हरिबोल' बलि' प्रभु करे उच्चध्वनि।**
**वृक्षलता—प्रफुल्लित, सेइ ध्वनि शुनि'॥४५॥**

**४५। प० अनु०—**जब श्रीमन्महाप्रभु 'हरिबोल' बोलकर उच्चध्वनि करते, तब उस ध्वनि को सुनकर वृक्ष तथा लताएँ प्रफुल्लित हो उठती।

झारिखण्ड में समस्त स्थावर-जङ्गम
का उद्धार अथवा कृष्णभक्ति-प्रदान—

**'झारिखण्डे' स्थावर-जङ्गम आछे जत।**
**कृष्णनाम दिया कैल प्रेमेते उन्मत्त॥४६॥**

४६। **प० अनु०—**'झारिखण्ड' में जितने भी स्थावर-जंगम थे, श्रीमन्महाप्रभु ने उन सबको कृष्णनाम देकर प्रेम में उन्मत्त बना दिया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४६। **झारिखण्ड**—झारिखण्ड नामक प्रसिद्ध वृन्दावन-जाने के पथ में वन्य-प्रदेश विशेष (वर्त्तमान आटगढ़, टेङ्कानल, आङ्गुल, लाहारा, कियोञ्झर, वामड़ा, बोनाइ, गाङ्गपुर, छोटनागपुर, यशपुर, सरगुजा आदि पर्वत-जङ्गलमय-राज्य)।

**जेइ ग्रामे दिया जान, जाँहा करेने स्थिति।**
**से-सब ग्रामेर लोकेर हय 'प्रेमभक्ति'॥४७॥**

**४७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु जिस भी ग्राम से होकर गुजरते, जिस भी ग्राम में रहते, उन सब ग्रामों के लोगों में 'प्रेमभक्ति' उदित हो जाती।

प्रभु के मुख से कीर्तित श्रीनाम श्रवण करने वाले को कृष्णभक्ति की प्राप्ति, उनके मुख से कीर्तित कृष्णनाम के श्रवण-कीर्त्तन की धारा से लोगों का उद्धार—

**केह यदि ताँर मुखे शुने कृष्णनाम।**
**ताँर मुखे आन शुने, ताँर मुखे आन॥४८॥**

प्रभु के गमन पथ पर श्रवण-कीर्त्तन की धारा से सभी को वैष्णवता की प्राप्ति—

**सबे 'कृष्ण' 'हरि' बलि' नाचे, कान्दे, हासे।**
**परम्पराय 'वैष्णव' हइल सर्व्वदेशे॥४९॥**

**४८-४९। प० अनु०—**कोई यदि श्रीमन्महाप्रभु के मुख से कृष्णनाम श्रवण करता, उस व्यक्ति के मुख से अन्य कोई सुनता तथा उस अन्य व्यक्ति के मुख से अन्य एक व्यक्ति सुनता, सभी 'कृष्ण', 'हरि' बोलते हुए नृत्य करते, क्रन्दन करते तथा हँसते। इस प्रकार एक-एक करके पूरे देश में प्रायः सभी वैष्णव बन गये।

**अनुभाष्य**

४८। आन,—अन्य व्यक्ति।

बहिरङ्ग लोगों के समक्ष प्रेममयी चेष्टाओं को छिपाने पर भी प्रभु के दर्शन और नाम-कीर्त्तन के श्रवण से ही लोगों को भक्ति की प्राप्ति—

**यद्यपि प्रभु लोक-संघटेर त्रासे।**
**प्रेम 'गुप्त' करेन, बाहिरे ना प्रकाशे॥५०॥**
**तथापि ताँर दर्शन-श्रवण-प्रभावे।**
**सकल देशेर लोक हैल 'वैष्णवे'॥५१॥**

**५०-५१। प० अनु०—**यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु लोगों की भीड़ के भय से अपने प्रेम को छिपा लेते, बाहर में प्रकाशित नहीं करते, तब भी उनके दर्शन तथा श्रवण के प्रभाव से सभी स्थानों के लोग वैष्णव बन गये।

भारतवर्ष में सर्वत्र ही लोगों का उद्धार-साधन—

**गौड़, बङ्ग, उत्कल, दक्षिण-देशे गिया।**
**लोकेर निस्तार कैल आपने भ्रमिया॥५२॥**

५२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने गौड़, बङ्गाल, उड़ीसा तथा दक्षिण भारत में स्वयं जाकर भ्रमण करके लोगों का उद्धार किया।

झाड़िखण्ड में अत्यधिक कृष्णबहिर्मुख लोगों का भी उद्धार-करना—

**मथुरा जाइवार छले आसेन झारिखण्ड।**
**भिन्नप्राय लोक ताँहा परम-पाषण्ड॥५३॥**
**नाम-प्रेम दिया कैल सबार निस्तार।**
**चैतन्येर गूढ़-लीला बुझिते शक्ति कार॥५४॥**

**५३-५४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु मथुरा जाने के छल से झारिखण्ड में आये। वहाँ के प्रायः अधिकांश लोग भिन्न प्रवृत्ति के तथा अत्यन्त-पाषण्डी थे। श्रीमन्महाप्रभु ने नाम प्रेम प्रदान करके उन सबका भी उद्धार किया। श्रीचैतन्य महाप्रभु की गूढ़ लीला को समझने की शक्ति किसमें है।

**अनुभाष्य**

५३। भिन्नप्राय,—सुसभ्य समाज से अलग अर्थात् 'प्रायः असभ्य'।

प्रभु में महाभागवत के लिये उचित व्रजलीला का उद्दीपन—

**वन देखि' भ्रम हय—एइ 'वृन्दावन'।**
**शैल देखि' मने हय—एइ 'गोवर्धन'॥५५॥**
**जाँहा नदी देखे, ताँहा मानये—'कालिन्दी'।**
**महाप्रेमावेशे नाचे प्रभु पड़े कान्दि'॥५६॥**

**५५-५६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को वन देखकर भ्रम होता कि यह वृन्दावन है तथा पर्वत देखकर लगता कि यह गोवर्द्धन है। जहाँ भी

किसी नदी को देखते, उसे कालिन्दी मानने लगते। इस प्रकार अत्यन्त प्रेमावेश में नाचते-नाचते श्रीमन्महाप्रभु क्रन्दन करते हुए भूमि पर गिर पड़ते।

**अनुभाष्य**

५५-५६। मध्य, अष्टम परिच्छेद ११, २७३ और २७७ संख्या एवं भा. १०/३०/९ और १०/३५/९ श्लोक आदि विशेष रूप से आलोच्य।

भट्ट के द्वारा प्रभु की सेवा—

**पथे जाइते भट्टाचार्य शाक-मूल-फल।**
**जाँहा जेइ पायेन, ताँहा लयेन सकल॥५७॥**

**५७। प० अनु०—**मार्ग में चलते-चलते बलभद्र भट्टाचार्य को जहाँ पर जो भी शाक-मूल-फल आदि मिलता, वह सब कुछ ले लेते।

पथ में वैष्णव-ब्राह्मणों के द्वारा ही प्रभु-सेवा—

**जे ग्रामे रहेन प्रभु, तथाय ब्राह्मण।**
**पाँच-सात जन आसि' करे निमन्त्रण॥५८॥**

सभी के द्वारा यथा सम्भव प्रभु की सेवा—

**केह अन्न आनि' देय भट्टाचार्य-स्थाने।**
**केह दुग्ध, दधि, केह घृत, खण्ड आने॥५९॥**

**५८-५९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु जिस ग्राम में रहते, वहाँ के पाँच-सात ब्राह्मण आकर उन्हें निमन्त्रण देते। कोई बलभद्र भट्टाचार्य को अन्न लाकर दे देता तथा अन्य कोई उन्हें दूध, दही, घी तथा चीनी आदि ला देता।

दीक्षित-ब्राह्मणों के द्वारा प्रभु की सेवा—

**जाँहा विप्र नाहि, ताँहा 'शूद्र महाजन'।**
**आसि' सबे भट्टाचार्ये करे निमन्त्रण॥६०॥**

**६०। प० अनु०—**जहाँ पर शौक्र ब्राह्मण का अभाव होता वहाँ पर दीक्षित ब्राह्मण आकर बलभद्र भट्टाचार्य को निमन्त्रण देते।

**अनुभाष्य**

६०। जिस स्थान पर शौक्रविप्र (जन्मगत ब्राह्मण) का अभाव, वहाँ 'शूद्रमहाजन' अर्थात् शौक्रशूद्र (जन्मगत शूद्र) होने पर भी जो 'दैक्ष्य (दीक्षित) ब्राह्मन आदि' महाजन थे, उन्हीं के घर पर भट्टाचार्य का निमन्त्रण हुआ था। शाङ्कर-सन्यासियों की विधि के अनुसार शौक्रविप्र के घर के अतिरिक्त अन्यत्र भिक्षा-ग्रहण की विधि नहीं रहने पर भी, जिस स्थान पर वैष्णव-विप्र का अभाव है, वहाँ शौक्र सावित्र्य-जन्म को नहीं मानकर महाप्रभु ने 'वैष्णवत्व' अथवा शुद्धभक्ति को लक्ष्य करके ही दैक्ष्य (दीक्षित)-विप्र आदि के द्रव्यों (वस्तुओं) को ग्रहण किया था।

वन के मार्ग में आहार आदि की व्यवस्था—

**भट्टाचार्य पाक करे वन्य-व्यञ्जन।**
**वन्य-व्यञ्जने प्रभुर आनन्दित मन॥६१॥**

**६१। प० अनु०—**बलभद्र भट्टाचार्य वन के व्यञ्जनों की रसोई बनाते तथा वन के व्यञ्जनों को पाकर श्रीमन्महाप्रभु का मन आनन्दित हो जाता।

**दुई-चारि दिनेर अन्न राखेन संहति।**
**जाँहा शून्य वन, लोकेर नाहिक वसति॥६२॥**
**ताँहा सेइ अन्न भट्टाचार्य करे पाक।**
**फल-मूले व्यञ्जन करे, वन्य नाना शाक॥६३॥**

**६२-६३। प० अनु०—**बलभद्र भट्टाचार्य दो-चार दिन के अन्न को संग्रह करके अपने साथ में रखते, जहाँ पर वन में कोई लोग-जन नहीं होते, जहाँ पर कोई ग्राम नहीं होता, वहाँ पर बलभद्र भट्टाचार्य उस अन्न को पकाते तथा फल-मूल आदि के व्यञ्जन बनाते एवं वन के बहुत से साग बनाते।

**परम-सन्तोष प्रभुर वन्य-भोजने।**
**महासुख पान, जे दिन रहेन निर्जने॥६४॥**

**६४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु वन के भोजन से अत्यन्त सन्तुष्ट होते तथा जिस दिन निर्जन में रहते उस दिन अत्यन्त प्रसन्न होते।

भट्ट के द्वारा प्रभु की सेवा एवं उनका साथी प्रभु का वाहक (सामान उठाने वाला)—

**भट्टाचार्य सेवा करे, स्नेहे जैछे 'दास'।**
**ताँर विप्र बहे जलपात्र-बहिर्वास॥६५॥**

**६५। प॰ अनु॰—**बलभद्र भट्टाचार्य श्रीमन्महाप्रभु से इतना स्नेह करते, कि वे श्रीमन्महाप्रभु के दास की भाँति उनकी सेवा में लगे रहते तथा उनका ब्राह्मण सेवक श्रीमन्महाप्रभु के जल के पात्र तथा बहिर्वास वस्त्र को उठाकर चलता।

झरने के नीचे प्रभु का तीनों सन्ध्याओं में स्नान और लकड़ी जलाकर शीत को दूर करना—

**निर्झरेते उष्णोदके स्नान तिनबार।**
**दुइ सन्ध्या अग्निताप काष्ठेर अपार॥६६॥**

**६६। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु झरने के ताजे पानी में तीन बार स्नान करते तथा सुबह तथा शाम—इन दो सन्ध्याओं में बहुत सी लकड़ी जलाकर अग्नि का ताप लेते।

भट्ट के समक्ष प्रभु के द्वारा पूर्व में की गयी वृन्दावन की यात्रा के विवरण का वर्णन—

**निरन्तर प्रेमावेशे निर्जने गमन।**
**सुख अनुभवि' प्रभु कहेन वचन॥६७॥**
**"शुन, भट्टाचार्य,—आमि गेलाङ्ग बहु-देश।**
**वनपथे दुःखेर काँहा नाहि पाइ लेश॥६८॥**

**६७-६८। प॰ अनु॰—**निरन्तर प्रेम के आवेश में निर्जन में जाते समय बहुत सुख का अनुभव करके श्रीमन्महाप्रभु ने बलभद्र भट्टाचार्य से कहा—हे भट्टाचार्य, सुनो! मैं बहुत से स्थानों पर गया, वन के मार्ग में मैंने कहीं पर दुःख का लेशमात्र भी नहीं पाया।

**कृष्ण—कृपालु, आमाय बहुत कृपा कैला।**
**वनपथे आनि' आमाय बड़ सुख दिला॥६९॥**

**६९। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण बहुत कृपालु है, उन्होंने मुझ पर बहुत कृपा की है, उन्होंने मुझे वन के मार्ग में लाकर मुझे बहुत सुख प्रदान किया है।

**पूर्वे वृन्दावन जाइते करिलाङ्ग विचार।**
**माता, गङ्गा, भक्तगणे देखिब एकबार॥७०॥**

**७०। प॰ अनु॰—**मैंने पहले भी वृन्दावन जाने का विचार किया था, मैंने सोचा था कि माता शची, गङ्गा तथा भक्तों के एकबार दर्शन करूँगा।

**भक्तगण-सङ्गे अवश्य करिब मिलन।**
**भक्तगणे सङ्गे लञा जाब 'वृन्दावन'॥७१॥**

**७१। प॰ अनु॰—**भक्तों के साथ अवश्य ही भेंट करूँगा एवं भक्तों को साथ लेकर वृन्दावन जाऊँगा।

**एत भावि' गौड़देशे करिलुँ गमन।**
**माता, गङ्गा, भक्ते देखि' सुखी हैल मन॥७२॥**

**७२। प॰ अनु॰** ऐसा सोचकर मैं गौड़देश गया था, शची माता, भगवती गङ्गा तथा भक्तों को देखकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ था।

**भक्त गणे लञा तबे चलिलाङ्ग रङ्गे।**
**लक्षकोटि लोक ताँहा हैल आमा-सङ्गे॥७३॥**

**७३। प॰ अनु॰—**मैं अत्यधिक प्रसन्नता पूर्वक अपने भक्तों को साथ लेकर वृन्दावन के लिये चल पड़ा था। लाखों-करोड़ों लोग मेरे साथ चलने लगे।

**सनातन-मुखे कृष्ण आमा शिखाइला।**
**ताहा विघ्न करि' वनपथे लञा आइला॥७४॥**

७४। **प० अनु०—**सनातन के मुख से श्रीकृष्ण ने मुझे शिक्षा प्रदान की तथा इस प्रकार वहाँ पर विघ्न सृष्टि करके अर्थात् मुझे वृन्दावन की ओर नहीं जाने की प्रेरणा देकर अब वन के मार्ग से वृन्दावन की ओर ले जा रहे हैं।

कृष्ण कृपा की महिमा सूचक उक्ति—

**कृपार समुद्र, दीन-हीने दयामय।**
**कृष्णकृपा बिना कोन 'सुख' नाहि हय॥''७५॥**

७५। **प० अनु०—**कृपा के सागर, दीन-हीन के प्रति दयामय श्री कृष्ण की कृपा के बिना किसी प्रकार के सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

भट्ट की सेवा के कारण प्रभु के द्वारा कृतज्ञता-ज्ञापन—

**भट्टाचार्ये आलिङ्गिया ताँहारे कहिल।**
**''तोमार प्रसादे एत सुख पाइल॥''७६॥**

**७६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने बलभद्र भट्टाचार्य का आलिङ्गन करके उनसे कहा—तुम्हारी कृपा से मुझे इतने सुख की प्राप्ति हुई है।

भट्ट की दैन्य-उक्ति और स्तव—

**तेंहो कहेन,—''तुमि 'कृष्ण', तुमि 'दयामय'।**
**अधम जीव मुञि, मोरे हइला सदय॥७७॥**

७७। **प० अनु०—**बलभद्र भट्टाचार्य ने कहा—आप कृष्ण हैं, आप दयामय हैं, मैं अधम जीव हूँ, आपने मेरे प्रति दया की है।

**मुञि छार, मोरे तुमि सङ्गे लञा आइला।**
**कृपा करि' मोर हाते 'प्रभु' भिक्षा कैला॥७८॥**

७८। **प० अनु०—**मैं नीच व्यक्ति हूँ, तब भी आप मुझे अपने साथ ले आये हैं। हे प्रभु! बहुत कृपा करके आपने मेरे हाथ से भिक्षा (भोजन) भी स्वीकार की है।

**अधम-काकेरे कैला गरुड़-समान।**
**'स्वतन्त्र ईश्वर' तुमि—स्वयं भगवान्॥''७९॥**

७९। **प० अनु०—**अधम कौवें को आपने गरुड़ के समान बना दिया है। आप स्वतन्त्र ईश्वर तथा स्वयं भगवान् हैं।

श्रीमद्भागवत (१/१/१) की टीका भावार्थ-दीपिका के अन्तर्गत श्रीधर स्वामि कृत मंगलाचरण का षष्ठ श्लोक—

**मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्।**
**यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द-माधवम्॥८०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८०। जिनकी कृपा गूँगे को भी वाचाल एवं लङ्गड़े को भी पर्वत पार करा सकती है, उन 'परमानन्दस्वरूप' माधव की मैं वन्दना करता हूँ।

**अनुभाष्य**

८०। यत् (यस्य) कृपा (अनुकम्पा) मूकं (वाक् शक्ति हीनमपि) वाचालं (वाक्पटुं कृष्णकीर्त्तनरत) करोति, पंगु (चलच्छक्तिहीनमपि) गिरिं (पर्वत) लङ्घयते (कृष्णभजनाय असाध्यमपि साधयतीर्थः), परमानन्द-माधवं (श्रीविष्णुस्वामिनोऽन्वयं श्रीपरमानन्दस्वामिन स्वेष्टदेवं श्रीभगवन्तम) अहं वन्दे।

सेवा के द्वारा भट्ट का प्रभु को प्रसन्न करना—

**एइमत बलभद्र करेन स्तवन।**
**प्रेमसेवा करि' तुष्ट कैल प्रभुर मन॥८१॥**

**८१। प० अनु०—**श्रीबलभद्र भट्टाचार्य ने इस प्रकार स्तव किया तथा प्रेम सेवा करके उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के मन को सन्तुष्ट कर दिया।

काशी में आकर प्रभु का मणि-कर्णिका में स्नान—

**एइमत नाना-सुखे प्रभु आइला 'काशी'।**
**मध्याह्न-स्नान कैल मणिकर्णिकाय आसि'॥८२॥**

**८२। प० अनु०—**इस प्रकार अत्यन्त सुखपूर्वक

श्रीमन्महाप्रभु काशी आ पहुँचे, उन्होंने गङ्गा के मणिकर्णिका घाट पर आकर दोपहर का स्नान किया।

**अनुभाष्य**

८२। **काशी,—**नामान्तर, 'वाराणसी' अथवा 'अविमुक्त', अतिप्राचीन पुरी—''असिश्च वरुणा यत्र-रक्षाकृतौ कृते। वाराणसीति विख्याता तदारभ्य महामुने। असेश्च वरुणायाश्च सङ्गमं प्राप्य काशिका॥'' [अर्थात् हे महामुने, सत्ययुग में वरुणा और असि नामक दो नदियों ने जिस समय इस क्षेत्र की रक्षा की थी, काशिका उस समय से आरम्भ करके वरुणा और असि के संगम को प्राप्त करके 'वाराणसी' इस नाम से विख्यात हुई थी]

**मणिकर्णिका,**—विष्णुकर्ण से, किसी के मतानुसार, शिवकर्ण से मणि के इस घाट पर गिरने के कारण इसका नाम—'मणिकर्णिका' है; किसी के मतानुसार,—भवरोग के वैद्य विश्वनाथ काशीवासी मुमुर्षु (मरणोन्मुख) लोगों के कान में तारक-ब्रह्म राम-नाम देकर उसका त्राण (उद्धार) करते हैं, इसलिए इस तीर्थ का नाम—'मणिकर्णिका' है। ''नास्ति गङ्गा समं तीर्थं वाराणस्यां विशेषतः। तत्रापि मणिकर्णाख्य तीर्थं विश्वेश्वर प्रियम्॥'' काशीखण्ड में—''संसारिचिन्तामणिरत्र यस्मात् तं तारकं सज्जनकर्णिकायाम्। शिवोऽभिधते सहसान्तः काले तद्‌गीयतेऽसौ मणि-कर्णिकेति॥ मुक्ति लक्ष्मी महापीठ मणिस्तच्चरणाब्जयोः। कर्णिकेयं ततः प्राहुर्या जना मणिकर्णिकाम्॥'' [अर्थात् कारण है कि इस स्थान पर संसारी लोगों के चिन्तामणि-स्वरूप श्रीशिव मृत्यु के समय सहसा सज्जनों की कर्णिकाय (कर्ण में) उस तारक ब्रह्म नाम का कीर्त्तन करते हैं, इसलिए इस स्थान ने 'मणिकर्णिका' यह नाम धारण किया है। पुनः मुक्तिरूपा लक्ष्मी इस महापीठ की मणिस्वरूप हैं, उनके चरणकमल की यह कर्णिका होने के कारण भी मनुष्य इसे मणिकर्णिका कहते हैं]

उस समय तपन मिश्र का भी स्नान और
प्रभु को देखकर पहले विस्मय—

**सेइकाले तपनमिश्र करे गङ्गास्नान।**
**प्रभु देखि' हैल ताँर किछु विस्मय ज्ञान॥८३॥**
**'पूर्वे शुनियाछि प्रभु करयाछेन 'सन्यास'।**
**निश्चय करिया, हैल हृदये उल्लास॥८४॥**

**८३-८४। प० अनु०—**उसी समय श्रीतपन मिश्र गङ्गास्नान कर रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु को देखकर उन्हें कुछ विस्मय हुआ। वे विचार करने लगे कि मैंने पहले सुना था कि श्रीमन्महाप्रभु ने सन्यास ग्रहण किया है। यह बात निश्चय करके कि ये श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ही हैं, उनके हृदय में बहुत उल्लास हुआ।

बाद में प्रसन्नता के आँसु—

**प्रभुर चरण धरि' करेन रोदन।**
**प्रभु ताँरि उठाञा कैल आलिङ्गन॥८५॥**

**८५। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र श्रीमन्महाप्रभु के चरण पकड़कर रोने लगे। श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया।

प्रभु को लेकर मिश्र का विश्वेश्वर
और बिन्दुमाधव का दर्शन—

**प्रभु लञा गेला विश्वेश्वर-दरशने।**
**तबे आसि' देखे बिन्दुमाधव-चरणे॥८६॥**

**८६। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र श्रीमन्महाप्रभु को विश्वेश्वर शिव के दर्शन कराने के लिये ले गये। उसके बाद श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीबिन्दुमाधव के दर्शन किये।

**अनुभाष्य**

८६। **बिन्दु-माधव,—**प्राचीन विष्णुमन्दिर;

आजकल वेणी-माधव के नाम से प्रसिद्ध मन्दिर— 'पञ्चगङ्गा के ऊपर अवस्थित। 'पञ्चनदी' अर्थात् धूत-पापा, किरणा, सरस्वती, गङ्गा और यमुना,— इन पाँच नदियों में से केवलमात्र गङ्गा ही प्रकाश्य रूप से प्रवाहित हैं। प्राचीन बिन्दु- माधव-मन्दिर को,—जिसके श्रीमहाप्रभु ने दर्शन किये, कहा जाता है 'हिन्दु विद्वेषी' मुगल-सम्राट औरङ्गजेब ने विध्वंस करके एक बृहत मस्जिद स्थापित की। वर्त्तमान मन्दिर के पार्श्व में ही बहुत बड़ी प्राचीन मस्जिद है।

श्रीमन्दिर में चतुर्भुज श्रीनारायण और लक्ष्मीदेवी का विग्रह तथा उनके सम्मुख श्रीगरुड़ एवं पार्श्व में श्रीराम-सीता और लक्ष्मणादि तथा श्रीहनुमान का श्रीविग्रह विराजमान है। महाराष्ट्र के अन्तर्गत मुम्बई प्रदेश में सातारा-जिले में देशीय करद राज्य के आउन्धेर वैष्णव-सम्प्रदाय के अनुगत महाराष्ट्रीय विप्र प्रतिनिधि श्रीमन्त बाला साहेब पन्थ महाराज ही श्रीविग्रह सेवा के और मन्दिर के समस्त व्यय को चला रहे हैं। अब तक लगभग दो सौ वर्ष पर्यन्त इस राजवंश के हाथ में श्रीवेणी-माधव की सेवा का भार अर्पित है, ऐसा कहा जाता है ; इस वंश के प्रथम सेवाइत 'प्रतिनिधि' का नाम—महाराज जगत्जीवन राओ साहब है।

प्रभु को अपने घर में लाना और प्रभु
को पाकर मिश्र का आनन्द—

**घरे लञा आइला प्रभुके आनन्दित हञा।**
**सेवा करि' नृत्य करे वस्त्र उड़ाया॥८७॥**

**८७। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र श्री मन्महाप्रभु को आनन्दित होकर अपने घर पर ले आये। श्रीमन्महाप्रभु की सेवा करने के बाद वे वस्त्र को उड़ाकर नृत्य करने लगे।

**अनुभाष्य**

८७। (तपनमिश्र के) घर में,—काशी में अवस्थान करते समय श्रीमन्महाप्रभु अत्यधिक निकटवर्ती 'पञ्चनदी-घाट' पर स्नान आदि करके सबसे पहले श्रीबिन्दुमाधव जी के दर्शन करते, उसके बाद श्रीतपनमिश्र के घर पर भिक्षा ग्रहण करते। इस मन्दिर से कुछ दूरी पर जिस वटवृक्ष के नीचे श्रीमन्महाप्रभु विश्राम करते थे, ऐसा प्रवाद है, उन्हीं के नाम के अनुसार वह बाद में ''चैतन्यवट'' एवं क्रमशः ''यतनवट'' के नाम से आज भी प्रसिद्ध है, वर्त्तमान समय में वहाँ एक गली के अन्दर श्रीवल्लभाचार्य की ही एक समाधि का स्थान देखा जाता है ; किन्तु श्रीगौरसुन्दर का कोई स्मृति चिह्न दिखायी नहीं देता। वल्लभाचार्य भी अपने अनुगत भक्तों के निकट 'महाप्रभु' के नाम से परिचित हैं। सम्भवतः, श्रीमन्महाप्रभु 'यतन-वट' में अवस्थान करते थे, किन्तु श्रीचन्द्रशेखर का भवन, श्रीतपनमिश्र का भवन, मायावादियों की मण्डली के अधिपति प्रकाशानन्द सरस्वती के स्थान इत्यादि चिह्न पर्यन्त भी अब लुप्त (हो गये) हैं; तब भी, कुछ दूरी पर कोलकत्ता-निवासी परलोकगत शशीभूषण नियोगी महाशय के भवन में श्रीगौरनित्यानन्द के श्रीअर्च्चाविग्रह प्रतिष्ठित है। उनकी सास माता और ससुर श्री नारायण चन्द्र घोष महाशय के तत्त्वाधान (देख-भाल) में वर्त्तमान समय में सेवा चल रही है।

सपरिवार प्रभु के चरणामृत
का पान और भट्ट
को सम्मान प्रदान—

**प्रभुर चरणोदक सवंशे कैल पान।**
**भट्टाचार्येर पूजा कैल करिया सम्मान॥८८॥**

**८८। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र ने अपने वंश सहित श्रीमन्महाप्रभु के चरणामृत का पान किया तथा उन्होंने सम्मान पूर्वक बलभद्र भट्टाचार्य की पूजा की।

भट्ट द्वारा प्रभु को भिक्षा-प्रदान—

**प्रभुरे निमन्त्रण करि' घरे भिक्षा दिल।**
**बलभद्र-भट्टाचार्ये पाक कराइल॥८९॥**

**८९। प॰ अनु॰—**श्रीतपन मिश्र ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करके घर के अन्दर उन्हें भोजन कराया। श्रीबलभद्र भट्टाचार्य ने रसोई बनवायी।

आहार के बाद प्रभु का शयन, रघुनाथ के द्वारा प्रभु के चरण का सम्वाहन (दबाना)—

**भिक्षा करि' महाप्रभु करिला शयन।**
**मिश्रपुत्र रघु करे पाद-सम्वाहन॥९०॥**

**९०। प॰ अनु॰—**प्रसाद पाने के बाद श्रीमन्महाप्रभु ने शयन किया। श्रीतपन मिश्र के पुत्र श्री रघुनाथ (भट्ट) ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों का सम्वाहन किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९०। तपन मिश्र के पुत्र रघुनाथ—जो बाद में 'भट्ट गोस्वामी' के नाम से विख्यात हुए थे—वे प्रभु के चरणों का सम्वाहन करने (दबाने) लगे।

परिवार सहित प्रभु के उच्छिष्ट को ग्रहण करना; चन्द्रशेखर का आगमन—

**प्रभुर 'शेषान्न' मिश्र सवंशे खाइल।**
**'प्रभु आइला शुनि' चन्द्रशेखर आइल॥९१॥**

**९१। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के अवशिष्ट प्रसाद को श्रीतपनमिश्र ने अपने वंश सहित खाया। श्रीमन्महाप्रभु के आने के विषय में सुनकर श्रीचन्द्रशेखर भी उनके दर्शन के लिये आये।

चन्द्रशेखर का परिचय—

**मिश्रेर सखा तेंहो प्रभुर पूर्व दास।**
**वैद्यजाति, लिखनवृत्ति, वाराणसी-वास॥९२॥**

**९२। प॰ अनु॰—**श्रीचन्द्रशेखर श्रीतपन मिश्र के सखा तथा श्रीमन्महाप्रभु के पुराने दास हैं। वे जाति से वैद्य थे, उनकी लिखन वृत्ति थी एवं वे वाराणसी में वास करते थे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९२। लिखनवृत्ति (लिखने की वृत्ति)—पुस्तक को नकल करके अर्थात् एक-ग्रन्थ से उतारकर दूसरे ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करके उससे अर्थ का उपार्जन।

चन्द्रशेखर के द्वारा प्रभु का दर्शन और उन्हें प्रणाम, प्रभु के द्वारा उनका आलिङ्गन—

**आसि' प्रभु-पदे पड़ि' करेन रोदन।**
**प्रभु ताँरि कृपाय उठि' कैल आलिङ्गन॥९३॥**

**९३। प॰ अनु॰—**श्रीचन्द्रशेखर आकर श्रीमन्महा प्रभु के चरणों में गिरकर बहुत रोये। श्रीमन्महाप्रभु ने उन पर कृपा करके उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया।

चन्द्रशेखर के द्वारा प्रभु के निकट अपने दुःख का निवेदन—

**चन्द्रशेखर कहे,—''प्रभु, बड़ कृपा कैला।**
**आपने आसिया भृत्ये दरशन दिला॥९४॥**

**९४। प॰ अनु॰—**श्रीचन्द्रशेखर ने कहा—हे प्रभु! आपने बहुत कृपा की है, आपने स्वयं आकर अपने दास को दर्शन प्रदान किया है।

हरिभजन-कथा-विहीन काशी—शुष्क-मायावादियों की आवास-स्थली—

**आपन-'प्रारब्धे' बसि' वाराणसी-स्थाने।**
**'माया', 'ब्रह्म' शब्द बिना नाहि शुनि काणे॥९५॥**

**९५। प॰ अनु॰—**मैं अपने प्रारब्ध के कारण ही वाराणसी स्थान में वास करता हूँ। 'माया' तथा 'ब्रह्म' शब्द के अलावा कोई अन्य शब्द कान में नहीं पड़ता।

### अनुभाष्य

९५। **प्रारब्धे,—**काशी-'शैव' अथवा पञ्चोपासकों का सर्वप्रधान तीर्थ। उस स्थान पर हरिभजन की कोई बात नहीं होने के कारण वह—गौरभक्तों के रहने हेतु अत्यन्त अयोग्य है—(भा. ५/१९/३)—अतएव चन्द्रशेखर अत्यधिक दुःख के साथ अपनी प्राचीन दुष्कृति के फल से ही वहाँ वास कर रहे हैं, ऐसा उन्होंने कहा; यहाँ पर निन्दा के अर्थ में ही 'प्रारब्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है।

(भः रः सिः पूर्व-विभाग प्रथम लहरी)—''दुर्ज्जात्यारम्भकं पापं यत् स्यात प्रारब्धमेव तत''। शुद्धभगवद्भक्त के द्वारा स्वयं को प्रारब्ध अथवा 'प्राचीन कर्मफल का भोग करने वाला' कहकर स्थापित करने पर भी वे स्वयं अन्यान्य यम के दण्ड के भागीदार मर्त्त्य जीवों की भाँति बिल्कुल भी शुभ-अशुभ कर्मों के फल के भोगी नहीं होते। नित्यसिद्ध अथवा साधन सिद्ध की तो बात ही नहीं, साधक अवस्था में भी जीवों की साधन भक्ति—'क्लेशघ्नी' ('पाप', 'पापबीज', और अविद्या—इन तीन प्रकार के क्लेशों का विध्वंस करने वाली होती है); यथा पद्मपुराण में—''अप्रारब्ध फलं पापं कूटं बीजं फलोन्मुखम्। क्रमेणैव प्रलीयेत विष्णु भक्ति रतात्मनाम्॥'' इसके पहले के दो श्लोकों की ''दुर्गम सङ्गमनी'' टीका भी इस प्रसङ्ग में आलोच्य है।

मिश्र को सम्मान प्रदान—

**षडदर्शन-व्याख्या बिना कथा नाहि एथा।**
**मिश्र कृपा करि' मोरे शुनान कृष्णकथा॥९६॥**

**९६। प० अनु०—**षड्दर्शन की व्याख्या के अलावा यहाँ पर अन्य कोई कथा नहीं होती। श्रीतपन मिश्र कृपा करके मुझे कृष्ण-कथा का श्रवण कराते है।

### अनुभाष्य

९६। **षड्दर्शन—**१) कणादऋषि-कृत 'वैशेषिक'-दर्शन, २) गौतमऋषि-कृत 'न्याय'-दर्शन, ३) पतञ्जलि ऋषि कृत 'योग'-दर्शन, ४) कपिल ऋषि-कृत 'सांख्य'-दर्शन, ५) जैमिनीऋषि-कृत 'पूर्व' (कर्म)-मीमांसा, ६) महर्षि वेदव्यास-कृत उत्तर (ब्रह्म)-मीमांसा' अथवा 'वेदान्त'।

प्रभु के प्रति कातर-उक्ति—

**निरन्तर दुँहे चिन्ति तोमार चरण।**
**'सर्वज्ञ ईश्वर' तुमि दिला दरशन॥९७॥**
**शुनि,—'महाप्रभु' जाबेन श्रीवृन्दावने।**
**दिन कत रहि' तार' भृत्य दुइजने॥''९८॥**

**९७-९८। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र और मैं निरन्तर आपके चरणों का चिन्तन करते हैं। आप सर्वज्ञ ईश्वर है, आपने दर्शन प्रदान किया है। हे श्रीमन्महाप्रभु! मैंने सुना है कि आप श्रीवृन्दावन जायेंगे। कुछ दिन यहाँ पर रहकर अपने इन दो दासों का भी उद्धार कीजिए।

### अमृतप्रवाह भाष्य

९८। **तार'—**उद्धार करो। भृत्य दुइजने, (दो सेवकों को),—चन्द्रशेखर और तपनमिश्र, इन दो लोगों को।

### अनुभाष्य

९८। प्रभु के अत्यन्त निकट रहने पर भी प्रभु के प्रति अत्यन्त सम्भ्रम (भय) पूर्वक उक्ति।

मिश्र का प्रभु के प्रति निवेदन—

**मिश्र कहे,—''प्रभु, यावत् काशीते रहिबा।**
**मोर निमन्त्रण बिना अन्य ना मानिबा॥''९९॥**

**९९। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र ने कहा—हे श्रीमन्महाप्रभु! जब तक आप काशी में रहेंगे। तब तक मेरे निमन्त्रण के अलावा आप किसी के निमन्त्रण को स्वीकार मत कीजिऐगा।

भक्तवश्य भगवान्—

**एइमत महाप्रभु दुइ भृत्येर वशे।**
**इच्छा नाहि, तबु तथा रहिला दिन-दशे॥१००॥**

**१००। प॰ अनु॰—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने दोनों दासों के वशीभूत होकर इच्छा नहीं होने पर भी दस दिन तक वहाँ पर वास किया।

**अनुभाष्य**

१००। **दिन दशे,** (दस दिन)—काशी में तपन-मिश्र के घर में प्रभु की इस यात्रा में (मध्य प्रथम परिच्छेद २३९ संख्या में) चार दिनों के अवस्थान की कथा का उल्लेख है।

महाराष्ट्रीय विप्र का आगमन और प्रभु का आनुगत्य—

**महाराष्ट्रीय विप्र आइसे प्रभु देखिबारे।**
**प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हय चमत्कारे॥१०१॥**

**१०१। प॰ अनु॰—**एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये आया। वह श्रीमन्महाप्रभु के रूप तथा उनके प्रेम को देखकर चमत्कृत हो उठा।

प्रभु को भिक्षा देने में मायावादी
अवैष्णव-विप्र की अयोग्यता—

**विप्र सब निमन्त्रय, प्रभु नाहि माने।**
**प्रभु कहे,—"आजि मोर हञाछे निमन्त्रणे॥"१०२॥**

**१०२। प॰ अनु॰—**बहुत से ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण देते, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु किसी के भी निमन्त्रण को स्वीकार नहीं करते। श्रीमन्महाप्रभु कहते—मेरा आज पहले से ही निमन्त्रण हो चुका है।

आचार्य की लीला करने वाले प्रभु द्वारा
मायावादी के सङ्ग का त्याग—

**एइमत प्रतिदिन करेन वञ्चन।**
**सन्यासीर सङ्ग-भये ना मानेन निमन्त्रण॥१०३॥**

**१०३। प॰ अनु॰—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु प्रतिदिन उन ब्राह्मणों की वञ्चना करते तथा मायावादी सन्यासियों के सङ्ग के भय से निमन्त्रण को स्वीकार न करते।

प्रकाशानन्द की बहुत से शिष्यों
के साथ मायावाद की व्याख्या—

**प्रकाशानन्द श्रीपाद सभाते बसिया।**
**'वेदान्त' पड़ान बहु शिष्यगण लञा॥१०४॥**

**१०४। प॰ अनु॰—**श्रीपाद प्रकाशानन्द सरस्वती बहुत से शिष्यों को अपने साथ में लेकर सभा में बैठकर वेदान्त पढ़ाते हैं।

**अनुभाष्य**

१०४। **प्रकाशानन्द,**—श्रीमहाप्रभु के समकालीन काशीवासी एक-दण्डी शाङ्करसम्प्रदाय के संन्यासी विशेष। चैः भाः मध्य तृतीय अः—'हस्त', 'पद', 'मुख' मोर नाहिक 'लोचन'। वेद मोरे एइमत करे विडम्बन॥ काशीते पड़ाय बेटा 'प्रकाशानन्द'। सेइ बेटा करे मोर अङ्ग खण्ड खण्ड॥ बाखानये वेद, मोर विग्रह ना माने। सर्वाङ्गे हइल कुष्ठ, तबु नाहि जाने॥ सर्वयज्ञमय मोर जे-अङ्ग-पवित्र। 'अज', 'भव' आदि गाय जाँहार चरित्र॥ 'पुण्य' पवित्रता पाय, जे-अङ्ग-परशे। ताहा 'मिथ्या' बले बेटा केमन साहसे॥'' उसी के मध्य २० अः—''संन्यासी प्रकाशानन्द' बसये काशीते। मोरे खण्ड-खण्ड बेटा करे भालमते॥ पडाय 'वेदान्त', मोर 'विग्रह' ना माने। कुष्ठ कराइलुँ अङ्गे, तबु नाहिं जाने॥ 'सत्य मोर 'लीला-कर्म', 'सत्य' मोर 'स्थान'। इहा 'मिथ्या' बले मोरे करे खान्-खान्॥'' श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी के गुरुदेव और पूर्वाश्रम के चाचा श्रीरङ्गक्षेत्रवासी त्रिदण्डिपाद श्रीरामानुजीय स्वामी श्रीश्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती एवं ये कभी भी 'एक' व्यक्ति नहीं है।

प्रकाशानन्द के समक्ष एक ब्राह्मण द्वारा प्रभु के चरित्र का वर्णन—

**एक विप्र देखि' आइला प्रभुर व्यवहार।**
**प्रकाशानन्द-आगे कहे चरित्र ताँहार॥१०५॥**
**"एक सन्यासी आइला जगन्नाथ हैते।**
**ताँहार महिमा-प्रताप ना पारि वर्णिते॥१०६॥**

ईश्वर के लक्षण-समूह प्रभु में विराजमान—

**सकल देखिये ताँते अद्भुत-कथन।**
**प्रकाण्ड-शरीर, शुद्ध काञ्चन-वरण॥१०७॥**
**आजानुलम्बित भुज, कमल-नयन।**
**जत किछु ईश्वरेर सर्व सल्लक्षण॥१०८॥**

**१०५-१०८। प० अनु०—**एक ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु के व्यवहार को देखकर आया तथा प्रकाशानन्द के सामने श्रीमन्महाप्रभु के विषय में बोलने लगा—एक संन्यासी जगन्नाथ पुरी से आये हैं, मैं उनकी महिमा तथा उनके प्रताप का वर्णन नहीं कर सकता। उनमें ईश्वर के सभी सुलक्षण विद्यमान हैं, उस पर भी उनका कथन अद्भुत हैं। उनका दिव्य कलेवर प्रकाण्ड हैं, उनका वर्ण शुद्ध स्वर्ण जैसा है, उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी है तथा उनके नयन कमल के समान है।

भागवत में कथित ईश्वर अथवा महाभागवत के समस्त लक्षण प्रभु में विद्यमान—

**ताहा देखि' ज्ञान हय—'एइ नारायण'।**
**जेइ ताँरि देखे, करे कृष्णसङ्कीर्त्तन॥१०९॥**

१०९। **प० अनु०—**उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो वे नारायण हों। जो कोई भी उनके दर्शन करता है, वह कृष्ण-सङ्कीर्त्तन करने लगता है।

**'महाभागवत'-लक्षण शुनि भागवते।**
**से-सब लक्षण प्रकट देखिये ताँहाते॥११०॥**

११०। **प० अनु०—**भागवत में मैंने महाभागवत के जिन लक्षणों के विषय में सुना है, उन सब लक्षणों को मैं उनमें प्रकाशित देखता हूँ।

**'निरन्तर कृष्णनाम' जिह्वा ताँर गाय।**
**दुइ-नेत्रे अश्रु बहे गङ्गाधारा-प्राय॥१११॥**

१११। **प० अनु०—**उन सन्यासी की जिह्वा निरन्तर कृष्णनाम का गान करती है तथा उनके दोनों नेत्रों से गङ्गा की धारा की भाँति अश्रु प्रवाहित होते हैं।

**क्षणे नाचे, हासे, गाय, करये क्रन्दन।**
**क्षणे हुहुङ्कार करे,—सिंहेर गर्जन॥११२॥**

११२। **प० अनु०—**कभी तो वे संन्यासी नृत्य करते हैं, हँसते हैं, गान करते हैं, क्रन्दन करते हैं तथा कभी सिंह की गर्जन की भाँति हुँङ्कार भरते हैं।

अलौकिक-नाम-रूपगुणलीला-युक्त कृष्णचैतन्य-नाम—

**जगत्मङ्गल ताँर 'कृष्णचैतन्य'-नाम।**
**नाम, रूप, गुण ताँर, सब—अनुपम॥११३॥**

**११३। प० अनु०—**उनका जगत का मङ्गल करने वाला 'कृष्णचैतन्य' नाम हैं। उनका नाम, रूप, गुण इत्यादि सबकुछ अनुपम है।

श्रद्धावान् को ईश्वर के दर्शन होने पर उनकी कृपा से ही उनकी चेष्टाओं का अनुभव, केवल तर्क पन्था से श्रवण निष्फलमात्र—

**देखिले से जानि ताँर 'ईश्वरेर रीति'।**
**अलौकिक कथा शुनि' के करे प्रतीति??"११४॥**

**११४। प० अनु०—**उनमें ईश्वर के समस्त लक्षण हैं, वह उन्हें देखने से ही समझ आता है। उनसे सम्बन्धित समस्त बात ही अलौकिक है, इसलिए, उसके विषय में सुनने से किसे उस पर विश्वास होगा? अर्थात् देखने पर ही कोई विश्वास कर सकता है।

प्रभु के चरित्र के श्रवण से तर्कपन्थी प्रकाशानन्द के द्वारा प्रभु के प्रति व्यंग्य-विद्रूप अथवा अवज्ञा—

**शुनिया प्रकाशानन्द बहुत हासिला।**
**विप्रे उपहास करि' कहिते लागिला॥११५॥**

**११५। प० अनु०—**उस ब्राह्मण की बात को सुनकर प्रकाशानन्द बहुत हँसा। वह उस ब्राह्मण का उपहास करते हुए कहने लगा—।

अपने मायावाद रूपी हलाहल (विष) को उगलना—

**''शुनियाछि गौड़देशेर सन्यासी—'भावुक'।**
**केशव-भारती-शिष्य, लोक प्रतारक॥११६॥**

**११६। प० अनु०—**मैंने सुना है कि गौड़देश का सन्यासी भावुक है। वह केशव भारती का शिष्य तथा लोक-प्रतारक अर्थात् लोगों को ठगने वाला है।

**''चैतन्य'-नाम ताँर, भावुकगण लञा।**
**देशे-देशे, ग्रामे-ग्रामे बुले नाचाञा॥११७॥**

**११७। प० अनु०—**उसका नाम चैतन्य है। वह भावुक व्यक्तियों को अपने साथ लेकर देश-देश, गाँव-गाँव में उन सबको नचाते हुआ घूमता रहता है।

**जेइ ताँरे देखे, सेइ ईश्वर करि' कहे।**
**ऐछे मोहन-विद्या—जे देखे, से मोहे॥११८॥**

**११८। प० अनु०—**जो भी उसे देखता है, वही उसे ईश्वर ही कहता है। उसमें ऐसी मोहनविद्या (मोहित करने की विद्या) है कि जो भी उसे देखता है, मोहित हो जाता है।

**सार्वभौम भट्टाचार्य—पण्डित प्रबल।**
**शुनि' चैतन्येर सङ्गे हइल पागल॥११९॥**

**११९। प० अनु०—**मैंने सुना है कि अत्यधिक विद्वान पण्डित सार्वभौम भट्टाचार्य भी चैतन्य के सङ्ग से पागल हो गया है।

**'सन्यासी'—नाम-मात्र, महा-इन्द्रजाली!**
**'काशीपुरे' ना बिकावे ताँर भावकालि॥१२०॥**

**१२०। प० अनु०—**वह नाममात्र का संन्यासी है। वास्तव में तो वह महा-इन्द्रजाली (काला जादू जानने वाला) है। इस काशी नगरी में उसकी भावुकता की कालिमा नहीं बिकेगी।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१२०। **भावकालि,—**भावुक का स्वभाव।

**'वेदान्त' श्रवण कर, ना जाइह ताँर पाश।**
**उच्छृखंल-लोक-सङ्गे दुइलोक-नाश॥''१२१॥**

**१२१। प० अनु०—**तुम वेदान्त का श्रवण करो, उसके पास मत जाना। उच्छृंखल लोगों का संङ्ग करने से इहलोक-परलोक-दोनों नष्ट हो जाते हैं।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१२१। जिन सब व्यक्तियों ने शास्त्रविधि की बेड़ी को तोड़ा है, उनके साथ रहने से यह लोक और परलोक, दोनों लोक ही नाश होते हैं।

### अनुभाष्य

११६-१२१। **भावुक,—**इस स्थान पर श्री मन्महाप्रभु के परम चमत्कारमय अप्राकृत चिन्मय भाव के साथ मनोधर्म के अनुशीलन में रत कृत्रिम (दिखावटी) और थोड़े समय के लिये स्थायी रहने वाले उच्छवास और उच्छृंखलतामय भाव को 'एक' समझकर मायावादी प्रकाशानन्द की यह विशेषण उक्ति है; मायावादी शुद्धभक्तों के अप्राकृत कृष्णोत्कीर्त्तन-नृत्य और गान को भी जागतिक इन्द्रियों की सन्तुष्टि करने वाले तौर्यत्रिक (नाचना-गाना-बजाना) के साथ 'एक' अथवा 'समान' एवं षड् इन्द्रियों की दासता की भाँति इन्द्रिय-प्रचेष्टा-मात्र समझने के कारण 'अपराधी' अथवा 'पाषण्डी'-शब्द-वाच्य हैं, अतएव नित्य स्वधर्म, कृष्णानुशीलन के कृष्ण-सम्बन्धि उपकरण के परित्याग हेतु वे—''फल्गु-वैरागी'' हैं।

प्रभु की निन्दा सुनने पर ब्राह्मण द्वारा 'कृष्ण' स्मरण करते हुए स्थान-परित्याग—

**एत शुनि' सेइ विप्र महादुःख पाइला।**
**'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि' तथा हैते गेला॥१२२॥**

**१२२। प० अनु०—**प्रकाशानन्द के मुख से इतना सुनकर उस ब्राह्मण को बहुत दुःख हुआ। वह 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए वहाँ से उठकर चला गया।

प्रभु के दर्शन के फल से शुद्धचित्त ब्राह्मण का प्रभु के समक्ष समस्त घटना का वर्णन—

**प्रभुर दरशने शुद्ध हञाछे ताँर मन।**
**प्रभु-आगे दुःखी हञा कहे विवरण॥१२३॥**

**१२३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन से उस ब्राह्मण का मन शुद्ध हो गया था। वह ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु के पास आकर दुःखी होकर उनके समक्ष सबकुछ बतलाने लगा।

प्रभु का मन्द-मन्द मुस्कराना—

**शुनि' महाप्रभु तबे ईषत् हासिला।**
**पुनरपि सेइ विप्र प्रभुरे पुछिला॥१२४॥**

**१२४। प० अनु०—**उस ब्राह्मण के मुख से प्रकाशानन्द द्वारा कही गयी बातों को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ईषत मुस्करा पड़े। उस ब्राह्मण ने पुनः श्रीमन्महाप्रभु से पूछा—।

मायावादियों की प्रकृति से सम्बन्धित गौण-नाम को उच्चारण करने की योग्यता, अप्राकृत वैकुण्ठ-नाम-उच्चारण में अयोग्यता—

**''तार आगे जबे आमि तोमार नाम लइल।**
**सेह तोमार नाम जाने,—आपने कहिल॥१२५॥**
**तोमार 'दोष' करिते करे नामेर उच्चार।**
**'चैतन्य' 'चैतन्य' करि' कहे तिनबार॥१२६॥**

**१२५-१२६। प० अनु०—**जब मैंने उसके सामने आपका नाम लिया, उसके स्वयं ही कहा कि वह भी आपका नाम जानता है। आपके दोषों को बतलाने के लिये उसने आपके नाम का तीन बार उच्चारण किया। किन्तु 'कृष्ण चैतन्य' के स्थान पर उसके मुख से केवल 'चैतन्य' 'चैतन्य' का उच्चारण ही तीन बार हुआ।

**अनुभाष्य**

१२५। **तार,** —प्रकाशानन्द का।

चिद्-विलास में अविश्वास के कारण मायावादियों के मुख से अवज्ञा पूर्वक ही श्री नाम के उच्चारित होने से नामापराध के कारण वह श्रवण योग्य नहीं—

**तिनबारे 'कृष्णनाम' ना आइल तार मुखे।**
**'अवज्ञा' ते नाम लय, शुनि' पाइ दुःखे॥१२७॥**

**१२७। प० अनु०—**उसके मुख में तीनों बारी कृष्णनाम नहीं आया। साथ ही उसने आपके उस नाम का भी अवज्ञापूर्वक उच्चारण किया है, जिसे सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ है।

**अनुभाष्य**

१२६-१२७। दोष—निन्दा। 'ब्रह्म', 'चैतन्य', 'आत्मा', 'परमात्मा', 'जगदीश', 'ईश्वर' 'विराट', 'विभु', 'भूमा', 'विश्वरूप', 'व्यापक' आदि नाम, इन सब नामों को ग्रहण करने वाले की प्रतीति में कृष्ण के औदार्य और माधुर्य की सूचना नहीं करके ऐश्वर्य की कुछ सूचना देने से, सब नामों में मुख्य कृष्ण नाम-समूह की प्रतीति की भाँति चैतन्यरसविग्रहत्व की स्फूर्ति नहीं है, अतएव मायावादी अथवा प्रकृति के उपासकगण—चरम अवस्था में तत्त्व-वस्तु के निर्विशेषत्व अथवा चिद्विलास राहित्य की धारणा करते हैं अर्थात् तत्त्व वस्तु के चिन्मय नाम-रूप-गुण-लीला और परिकर वैशिष्ट्य के अद्वयज्ञान परक होने में अविश्वास और संशय का पोषण करने से, एवं भगवान् कृष्ण के मुख्य नाम समूह को ही एकमात्र 'साध्य' और 'साधन' मानकर श्रद्धा नहीं करने

से महाअपराधी हैं; उनके मुख से किसी भी परमार्थ की कथा को श्रवण करना किसी नित्य चरम-कल्याण की कामना करने वाले का कर्त्तव्य नहीं है।

प्रभु से इसके कारण की जिज्ञासा—

**इहार कारण मोरे कह कृपा करि'।**
**तोमा देखि' मुख मोर बले 'कृष्ण' 'हरि'॥''१२८॥**

**१२८। प० अनु०**—आप कृपा करके मुझे इसका कारण बतलाइये। मेरा मुख तो आपको देखकर 'कृष्ण' 'हरि' नाम का उच्चारण करता है।

मायावादी—सेवा-विवादी अथवा अपराधी, अतएव उनके मुख में कृष्णनाम आता नहीं—

**प्रभु कहे,—''मायावादी कृष्णे अपराधी।**
**'ब्रह्म', 'आत्मा', 'चैतन्य' कहे निरवधि॥१२९॥**

**१२९। प० अनु०**—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—मायावादी श्रीकृष्ण के चरणों में अपराधी हैं, वे निरन्तर ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य आदि कहते हैं।

अनुभाष्य

१२९। मायावादी,—आदि, सप्तम परिच्छेद की २९ संख्या एवं ३९ संख्या द्रष्टव्य है।

कृष्णनाम, कृष्णविग्रह और कृष्णस्वरूप का अद्वय-ज्ञान-सम्पन्न होना एवं जीवनाम, जीव की मूर्त्ति और जीव के स्वरूप के अन्तर का वर्णन—

**अतएव तार मुखे ना आइसे कृष्णनाम।**
**'कृष्णनाम', 'कृष्ण स्वरूप'—दुइत 'समान'॥१३०॥**

**१३०। प० अनु०**—अतएव इसी कारण कृष्णनाम उनके मुख में नहीं आता। कृष्णनाम और कृष्ण-स्वरूप—ये दोनों तो एक समान हैं।

**'नाम', 'विग्रह', 'स्वरूप'—तिन एकरूप।**
**तिने 'भेद' नाहि,—तिन 'चिदानन्द-रूप'॥१३१॥**

**देह-देहीर, नाम-नामीर कृष्णे नाहि 'भेद'।**
**जीवेर धर्म,—नाम-देह-स्वरूपे 'विभेद'॥१३२॥**

**१३१-१३२। प० अनु०**—भगवान् का नाम, भगवान् का विग्रह और भगवान् का स्वरूप तीनों एक ही समान हैं। तीनों में कोई भेद नहीं है, तीनों चिदानन्द रूप हैं। श्रीकृष्ण के देह और देही तथा नाम और नामी में कोई भेद नहीं है। नाम, देह और स्वरूप में विभेद तो जीव का धर्म है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२९-१३२। प्रभु ने कहा,—मायावादी जीव-तत्त्व को 'अप्राकृत' न मानकर, माया से आच्छन्न ब्रह्म-खण्ड को 'जीव' कहकर स्थिर करते हैं एवं ब्रह्म को 'निर्विशेष' जानकर (सच्चिदानन्द) भगवद् विग्रह को भी 'मायामय-विग्रह' कहते हैं। इसी से ही मायावादी कृष्ण के नाम-रूप-गुण और लीला को 'अनित्य' जानकर महा-अपराधी बने हैं। कृष्ण के 'मुख्य नाम' का परित्याग करके 'ब्रह्म', 'आत्मा', 'चैतन्य' इत्यादि 'गौण-नाम' उच्चारण करते हैं ; यद्यपि कभी 'गोविन्द', 'माधव', 'कृष्ण' ये सब 'मुख्यनाम' भी उनके मुख से निकलते हैं, तथापि उनके ज्ञानदोष के कारण (कृष्णनाम में अविश्वास होने के कारण अन्यान्य प्राकृत अथवा जागतिक शब्द विशेष मानने के कारण उनके मुख से) चिद्विग्रह कृष्ण का 'नाम' कभी भी बाहर नहीं निकलता। वास्तव में कृष्ण का नाम और कृष्ण का स्वरूप—दोनों ही चिद् वस्तुएँ हैं कृष्ण का नाम अर्थात् नाम, विग्रह और स्वरूप, तीनों ही चिदानन्दमय हैं। बद्धजीवों की देह—जीव रूपी 'देही' से 'पृथक' एवं उनका पितृदत्त (पिता के द्वारा दिया गया) 'नाम' और उनकी 'आत्मा' अथवा 'स्वरूप' से 'पृथक और जड़ाश्रित' है; किन्तु कृष्ण का वैसा नहीं हैं, अर्थात् कृष्ण की जो 'देह' है, वही 'देही' है, जो नाम है, वही नामी है। कृष्ण में माया अथवा माया से उत्पन्न जड़

सम्बन्ध नहीं होने के कारण उनके 'देह-देही' अथवा 'नाम-नामी' के बीच में भेद—असम्भव है। बद्धजीव के पक्ष में ही देह-देही अथवा नाम-नामी (में पार्थक्य वर्त्तमान) है अर्थात् जीव में ही 'नाम', 'देह', और स्वरूप का परस्पर पृथक धर्म विद्यमान है।

श्रीकृष्णनाम का स्वरूप—
पद्म पुराण और विष्णु-धर्मोत्तर का वचन—

**नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।**
**पूर्णः शुद्धो नित्य मुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥१३३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३३। कृष्णनाम—चित्स्वरूप चिन्तामणिविशेष हैं, वह कृष्ण हैं, चैतन्य रस का विग्रह स्वरूप हैं; वह पूर्ण अर्थात् मायिक वस्तु की भाँति आबद्ध और खण्ड नहीं हैं; वह—शुद्ध अर्थात् माया से मिश्रित नहीं हैं; वह—नित्यमुक्त अर्थात् सर्वदा चिन्मय हैं, कभी भी जड़सम्बन्ध में आबद्ध नहीं है; क्योंकि नाम और नामी के स्वरूप में कोई भेद नहीं है।

**अनुभाष्य**

१३३। नाम नामिनोः (नाम च नामी कृष्णः च तयोः, नाम्ना सह नामिनः कृष्णस्य) अभिन्नत्वात् (भेदाभावात्) (कृष्ण) नाम-चिन्तामणिः (सकल-सेवा-भीष्टप्रदाता), कृष्णः (साक्षात् स्वयंरूपः कृष्ण एव), चैतन्यरसविग्रहः (चिन्मयरसमूर्त्तिः न तु अचिज्जड़वैरस्याश्रयः तस्य मायातीतत्वात् (माया-मिश्रण-योग्यता भावात्), पूर्णः (मायया खण्डना-नर्हतनुः), शुद्धः (माययाविमिश्रः, व्युदस्तमायः), नित्यमुक्तः (सदा जड़ातीतः)।

कृष्णनाम, कृष्णदेह और कृष्णविलास—अप्राकृत, चिन्मय और स्वतः प्रकाश—

**अतएव कृष्णेर 'नाम', 'देह', 'विलास'।**
**प्राकृतेन्द्रिय-ग्राह्य नहे, हय स्वप्रकाश॥१३४॥**

**१३४। प० अनु०—**अतएव कृष्ण के नाम, उनकी देह और उनके विलास प्राकृत (जड़ीय) इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं, बल्कि स्वयं प्रकाशित होने वाले हैं।

अनुभाष्य

१३४। कृष्ण की देह, कृष्ण का नाम, कृष्ण का रूप, कृष्ण के गुण, कृष्ण का विलास अथवा परिकर-वैशिष्ट्यादि सच्चिदानन्दमय होने के कारण सत्त्वादि तीन गुणों के अभिमानी जीव के जड़ीय रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शादि के ग्राह्य नहीं हैं, अर्थात् जीव की फलभोगप्रवण इन्द्रियों की भोग्य वस्तु नहीं हैं; यह समस्त ही स्वप्रकाशवस्तु, नित्य, चिन्मय और आनन्दमय हैं। गुणों के अन्तगर्त जड़ वस्तु का नाम, रूप, गुण और क्रिया के बीच परस्पर जड़ीय पार्थक्य होता है, एकत्व नहीं होता; किन्तु अधोक्षज कृष्ण में ऐसा 'भेद' नहीं है।

कृष्ण का नाम, रूप, गुण, लीला—एक ही वस्तु—

**'कृष्णनाम', 'कृष्णगुण', 'कृष्णलीला' वृन्द।**
**कृष्णेर स्वरूप-सम—सब चिदानन्द॥१३५॥**

**१३५। प० अनु०—**कृष्ण का नाम, कृष्ण के गुण तथा कृष्ण की लीलाएँ—कृष्ण के स्वरूप के समान सभी चिदानन्दमय हैं।

अप्राकृत कृष्ण-नाम-रूप-गुण-लीला—शुद्धभक्ति के द्वारा ही प्राप्य, तर्कपन्था से अक्षजज्ञान के द्वारा अगम्य (अगोचर)—(पद्मपुराण-वचन)

**अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः।**
**सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥१३६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३६। अतएव श्रीकृष्ण के नाम-रूप-गुण-लीला कभी भी प्राकृत-चक्षु-कर्ण आदि के द्वारा

ग्राह्य नहीं हो सकते। जब जीव सेवोन्मुख होता है, अर्थात् चित् स्वरूप से कृष्णोन्मुख होता है, तभी अप्राकृत जिह्वा आदि इन्द्रिय पर कृष्णनाम आदि स्वयं ही स्फूर्त्ति को प्राप्त होते हैं।

**अनुभाष्य**

१३६। अतः (कृष्ण-नामादिना सह कृष्णस्य प्राकृत-भेदाभावात्) श्रीकृष्णनामादि (श्रीकृष्ण-नामरूपगुणलीलापरिकर वैशिष्ट्यम्) इन्द्रियैः (प्राकृत भोगपरैर्नेत्रकर्णनासाजिह्वात्वगादिभिः) ग्राह्यं (रूप-शब्दगन्धरसस्पर्शादिविषयीकृत) न भवेत् (कर्हिचित् न स्यात्); (ननु अस्यैबाधोऽक्षजत्वात् सर्वथेदं जड़-भोगपरेन्द्रियाणामलभ्यञ्च, तर्हि कथमेतत् कीदृशानां जीवानामाश्रयितत्यमिति चेत् तत्राह—) सेवोन्मुखे (अप्राकृतबुद्धया शुद्धकृष्णभजनप्रवृत्ते जिह्वादौ (शुद्धसत्वमये इन्द्रिये) हि (खलु) अदः (कृष्णनामादि) स्वयंमेव स्फुरति (प्रकटयति)।

परम-चमत्कार कृष्ण-माधुर्य—ब्रह्मज्ञ को भी आकर्षित करने वाला—

**ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द लीलारस।**
**ब्रह्मज्ञानी आकर्षिया करे आत्मवश॥१३७॥**

**१३७। प॰ अनु॰—**पूर्णानन्दमय लीलारस ब्रह्मानन्द से ब्रह्मज्ञानी को आकर्षित करके अपने वश में करता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३७। मैं ही ब्रह्म हूँ'—जिनकी ऐसी बुद्धि उदित होती है, यद्यपि उनकी माया चिन्ता दूर होकर चित्स्वरूप ब्रह्म में अवस्थिति रूप थोड़ा सा सुख का उदय होता है ; किन्तु जो कृष्णनाम, कृष्णरूप, कृष्णगुण और कृष्णलीला-रूपी चिन्मय रस विलास हृदय में उदित करा पाते हैं, वे 'ब्रह्मानन्द' से अनन्त गुणा श्रेष्ठ पूर्णानन्द लीला रस भोग करते हैं। अतएव पूर्णानन्द लीला रस स्वरूप कृष्णलीला सहसा ब्रह्मज्ञानी को भी आकर्षित करके अपने वश में कर लेती है।

कृष्णलीला के माधुर्य से आकर्षित ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मरात—
श्रीमद्भागवत में (१२/१२/६९)—

**स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-**
**ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्ट सारस्तदीयम्।**
**व्यतनुत कृपया यस्तत्वदीपं पुराणं**
**तमखिलवृजिनघ्नं व्यास सूनं नतोऽस्मि॥१३८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१३८।** जो पहले ब्रह्मसुख में एकान्तचित्त थे एवं बाद में, जिन्होंने उस सुख को परित्याग करके कृष्ण की माधुर्यमयी लीला से आकृष्ट होकर कृष्ण-सम्बन्धी तत्व दीपक स्वरूप श्रीभागवत पुराण का विस्तार किया था; उन समस्त प्रकार के पापों का नाश करने वाले गुरुदेव व्यासपुत्र श्रीशुक को मैं नमस्कार करता हूँ।

**अनुभाष्य**

१३८। शुश्रुषु (वास्तविक रूप में सुनने के अभिलाषी) शौनक आदि ऋषियों के समक्ष श्रीभागवत के वर्णन को समाप्त करके महाभागवत श्रीसूत गोस्वामी अपने गुरुदेव ब्रह्मरात श्रील शुक गोस्वामी को प्रणाम कर रहे हैं—

स्वसुखनिभृतचेताः (स्वस्य आत्मनः सुखेन निभृतं पूर्णं चेतो यस्य सः, आत्माराम इत्यर्थः) तदव्युदस्ता-न्यभावः (तत् तेनैव आत्मारामत्वेन व्युदस्तः सम्यग्-दूरीकृतः अन्यभावो ब्रह्मेतरे अन्यास्मिन् वस्तुनि भावः रतिः यस्य तथाभूतः) अपि अजित-रुचिर-लीला कृष्टसारः (अजितस्य कृष्णस्य रुचिराभिः मनोज्ञाभिः लीलाभिः आकृष्टः सारः स्वसुखगतं स्थैर्यं यस्य सः) यः तत्त्वदीपं (परमार्थभूत-वस्तु-प्रकाश) तदीयं (भगवल्लीलामय) पुराणं (दशविध-लक्षणमय-सन्दर्भात्मकं श्रीमद्भागवत) कृपया (लोक-स्याजानतः हिताय: सुकृतिवतां मङ्गलाकाङ्क्षाया वा)

व्यतनुत (प्रकटितवान्), तम् अखिलवृजिनघ्नं (सर्व-पापनुद) व्याससूनं (द्वैपायनात्मज) वैयासकिं (शुकदेव) नतः अस्मि (प्रणमामि)।

परम चमत्कारपूर्ण कृष्णगुण—आत्माराम गणों के भी आकर्षक—

**ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द कृष्णगुण।**
**अतएव आकर्षये आत्मारामेर मन॥१३९॥**

**१३९। प० अनु०—**कृष्णगुण ब्रह्मानन्द से पूर्णानन्दमय है, इसलिए वे आत्मरामों के भी मन को आकर्षित करते हैं।

मुक्तपुरुषगण भी कृष्ण के चरणों के प्रति आकृष्ट—
श्रीमद्भागवत (१/७/१०) में—

**आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।**
**कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमिथ्यम्भूतगुणोः हरिः॥१४०॥**

**१४०। प० अनु०—**आत्मा में ही जिनकी रति हैं, ऐसे वासना रूपी ग्रन्थियों से शून्य मुनिगण भी बृहद्कर्मा श्रीकृष्ण के प्रति अहैतुकी भक्ति करते हैं; क्योंकि, जगत् के चित का हरण करनेवाले हरि का एक ऐसा ही (अद्भुत) गुण है।

**अनुभाष्य**

१४०। मध्य षष्ठ परिच्छेद १८६ संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण के चरण की तुलसी ब्रह्मज्ञों के भी मन को हरण करने वाली—

**एइ सब रहु—कृष्णचरण-सम्बन्धे।**
**आत्मारामेर मन हरे तुलसीर गन्धे॥१४१॥**

**१४१। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के गुणों की बात तो छोड़ो, केवल श्रीकृष्ण के चरण से सम्बन्धित होने के कारण केवल तुलसी की गन्ध ही आत्मारामों के मन का हरण कर लेती हैं।

नारायण के चरण की तुलसी ब्रह्मज्ञ चतुःसन के भी देह और मन की शुद्ध-सात्विक-विकार-कारिणी—
श्रीमद्भागवत (३/१५/४३) में—

**तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द**
**किञ्जल्कमिश्र-तुलसीमकरन्दवायुः।**
**अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां**
**संक्षोभमक्षरजुषामपि चिततन्वोः॥१४२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४२। उन कमल-नेत्र-भगवान् के पदकमल के किञ्जल्क (केसर, चन्दन, अगरु आदिसे) मिश्रित तुलसी की मधुर गन्ध से युक्त वायु ने निर्विशेष-ब्रह्मपरायण चतुःसन की नासिका के छिद्र के माध्यम से अन्दर जाकर उनके चित्त में हर्ष और देह में रोमाञ्च उत्पन्न कर दिया था।

**अनुभाष्य**

१४२। मैत्रेय-विदुर के संवाद में दिति के गर्भ के प्रभाव से भयभीत देवताओं के निकट ब्रह्मा दिति के गर्भ में स्थित दो असुरों के आदि वृतान्त का वर्णन कर रहे हैं,—पहले एकबार ब्रह्मर्षि चतुःसन अथवा कुमारगण श्रीनारायण के दर्शन की अभिलाषा से वैकुण्ठ में प्रवेश करके सप्तम कक्षा (साँतवे कक्ष) में 'जय' और 'विजय' नामक दो द्वारपालों के द्वारा रोके जाने पर, भेद-बुद्धि से उत्पन्न हिंसा प्रवृत्ति वशतः उन्होंने क्रोध में भरकर उन्हें असुर योनि में जन्म परिग्रहण करने का शाप प्रदान किया। सर्वज्ञ भगवान् पद्मनाभ यह जानकर तत्क्षणात् स्वयं ही लक्ष्मी सहित वहाँ आ गये, ऋषियों ने अपनी समाधि के फल आराध्यदेव साक्षात् भगवान् नारायण को अपने समक्ष देखकर प्रणाम किया, उनके समान आत्माराम ब्रह्मज्ञानी के भाव-विकार का वर्णन—

अरविन्दनयनस्य (पदमलोचनस्य) तस्य (भग-वतः) पदारविन्दकिञ्जल्क-मिश्रतुलसीमकरन्द-वायुः (पदारविन्दयोः चरणकमलयोः किञ्जल्कैः

केशरे: मिश्रा या तुलसी, तस्या: मकरन्देन संयुक्त: समीरण:) स्वविवरेण (निजनासारन्ध्रेन) अन्तर्गत: (अन्त:प्रविष्ट:सन्) अक्षरजुषां (निर्विशेषब्रह्मपराणाम् अपि) तेषां (सनकादीनां कुमाराणा) चिततन्वो: (मन:शरीरयो:) संक्षोभं (चित्ते हर्ष देहे रोमाञ्चादिक) चकार (अजाजनत्)।

मायावादी नित्य कृष्णसेवा के विरोधी होने के कारण शुद्ध-नाम कीर्त्तन में अनधिकारी—

**अतएव 'कृष्णनाम' ना आइसे तार मुखे।**
**मायावादि-गण जाते महा बहिर्मुखे॥१४३॥**

**१४३। प० अनु०—**अतएव श्रीकृष्ण-अपराधी होने के कारण 'कृष्णनाम' प्रकाशानन्द के मुख में प्रकटित नहीं हुआ। उस पर भी, प्रकाशानन्द जैसे मायावादी तो श्रीकृष्ण से अत्यन्त बहिर्मुख होते हैं।

प्रेम की बाढ़ में काशी को डुबाने के लिये ही प्रभु का आगमन—

**भावकालि बेचिते आमि आइलाङ्ग काशीपुरे।**
**ग्राहक नाहि, ना बिकाय, लञा जाब घरे॥१४४॥**

**१४४। प० अनु०—**प्रकाशानन्द का परिहास करते हुए श्रीमन्महाप्रभु ने कहा मैं अपने भावों की कालिमा को बेचने के लिये ही काशी नगरी में आया था, किन्तु यहाँ पर उसका कोई ग्राहक नहीं है, इसलिए उसकी यहाँ पर बिक्री नहीं होगी, मैं उसे फिर से अपने घर ले जाऊँगा।

लोभ रूपी मूल्य में ही प्रभु के द्वारा प्रेम-वितरण की प्रतिज्ञा—

**भारी बोझा लञा आइलाङ्ग, केमने लञा जाब?**
**अल्प-स्वल्प-मूल्य पाइले, एथाइ बेचिब॥"१४५॥**

**१४५। प० अनु०—**मैं इतने भारी बोझे को उठाकर लाया हूँ, फिर से कैसे उसे ढ़ोकर ले जाऊँगा? जिस किसी मूल्य के मिलने पर मैं उसे यही पर ही बेच दूँगा।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४५। चिन्मय नामरस रूपी पात्र—अत्यधिक भारी बोझा; यद्यपि मैं पूर्ण-श्रद्धा-मूल्य में उसे जीवों के निकट बिक्री करता हूँ। किन्तु व्यापारी के लिये इतना भारी बोझा लौटाकरके ले जाना भी बहुत कठिन है, अतएव अल्प-स्वल्प मूल्य अर्थात् श्रद्धा आभास रूपी मूल्य मिलने पर भी इसी स्थान पर ही बेचकर जाऊँगा।

### अनुभाष्य

१४५। अल्प-स्वल्प-मूल्य—कृष्ण सेवा में लौल्य, लोभ अथवा रुचि; वह आत्म समर्पण के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती। मध्य अष्टम परिच्छेद ७० संख्या में उद्धत पद्यावली का श्लोक इस स्थान पर आलोच्य है।

ब्राह्मण पर कृपा करने के बाद प्रभु द्वारा मथुरा की यात्रा—

**एत बलि' सेइ विप्रे आत्मसात करि'।**
**प्राते उठि' मथुरा चलिला गौरहरि॥१४६॥**

**१४६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने इतना कहकर उस विप्र को आत्मसात कर लिया अर्थात् उसे अपना लिया तथा प्रात:काल उठकर श्रीगौरहरि मथुरा की ओर चल दिये।

तीन लोगों द्वारा प्रभु का अनुगमन और प्रभु के आग्रह से लौटकर जाना—

**सेइ तिन सङ्गे चले, प्रभु निषेधिल।**
**दूर हैते तिनजने घरे पाठाइल॥१४७॥**

**१४७। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र, श्रीचन्द्रशेखर तथा महाराष्ट्रीय ब्राह्मण—ये तीनों श्रीमन्महाप्रभु के साथ चलने लगे, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। बहुत दूर से श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें उनके घर भेजा।

तीनों का एक साथ मिलकर प्रभु
के गुणों का गान—

**प्रभुर विरहे तिने एकत्र मिलिया।**
**प्रभुगुण गान करे प्रेमे मत्त हञा॥१४८॥**

**१४८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के विरह में तीनों एकसाथ मिलकर श्रीमन्महाप्रभु के गुणों का प्रेम में मत्त होकर गान करने लगे।

प्रयाग में आकर स्नान के बाद बिन्दुमाधव
के दर्शन से प्रभु का नृत्य-कीर्त्तन—

**'प्रयाग' आसिया प्रभु कैल नदी-स्नान।**
**'माधव' देखिया प्रेमे कैल नृत्यगान॥१४९॥**

**१४९। प० अनु०—**प्रयाग में आकर श्रीमन्महाप्रभु ने नदी में स्नान किया तथा 'माधव' विग्रह के दर्शन करके प्रेम में नृत्य और गान किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४९। माधव—वेणीमाधव।

**अनुभाष्य**

१४९। प्रयाग,—''प्रकृष्टः यागः यागफलं यस्मात्''; तीर्थराज, गङ्गा और यमुना का सङ्गम अथवा 'त्रिवेणी'—वर्त्तमान इलाहाबाद दुर्ग से कुछ दूरी पर प्राचीन 'प्रतिष्ठानपुर' अथवा वर्तमान 'झुँसी'।

यमुना के दर्शन से व्रजलीला के
उद्दीपन के कारण उसमें कूदना,
भट्ट के द्वारा उन्हें उठाना—

**यमुना देखिया प्रेमे पड़े झाँप दिया।**
**आस्ते-व्यस्ते भट्टाचार्य उठाय धरिया॥१५०॥**

**१५०। प० अनु०—**यमुना को देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने प्रेमावेश में उसमें छलांग लगा दी तथा जिस किसी प्रकार से बलभद्र भट्टाचार्य ने उन्हें पकड़कर बाहर निकाला।

प्रयाग में तीन दिन लोगों का उद्धार—

**एइमत तिनदिन प्रयागे रहिला।**
**कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोक निस्तारिला॥१५१॥**

**१५१। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु तीन दिन तक प्रयाग में रहे तथा उन्होंने कृष्ण-नाम-प्रेम देकर लोगों का उद्धार किया।

मथुरा के मार्ग में जाते समय लोगों का उद्धार—

**'मथुरा' चलिते पथे यथा रहि' जाय।**
**कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोकेरे नाचाय॥१५२॥**

**१५२। प० अनु०—**मथुरा जाने के मार्ग में श्रीमन्महाप्रभु जहाँ भी रह जाते, वे वहीं पर ही कृष्ण-नाम-प्रेम देकर लोगों को नचाते थे।

दक्षिण देश की भाँति युक्त प्रदेश का भी उद्धार—

**पूर्वे जेन 'दक्षिण' जाइते लोक निस्तारिला।**
**'पश्चिम-देशे तैछे सब 'वैष्णव' करिला॥१५३॥**

**१५३। प० अनु०—**दक्षिण भारत की ओर जाते समय श्रीमन्महाप्रभु ने जिस प्रकार लोगों का उद्धार किया था, उसी प्रकार उन्होंने पश्चिम भारत में भी सभी को वैष्णव बना दिया।

यमुना के दर्शन मात्र से ही उसमें कूद जाना—

**पथे जाँहा जाँहा हय यमुना-दर्शन।**
**ताँहा झाँप दिया पड़े प्रेमे अचेतन॥१५४॥**

**१५४। प० अनु०—**मार्ग में जहाँ-जहाँ भी श्रीमन्महाप्रभु को यमुना का दर्शन होता, वे वही छलाँग लगाकर कूद पड़ते तथा प्रेम में अचेतन हो जाते।

मथुरा के दर्शन से प्रेमावेश—

**मथुरा-निकटे आइला—मथुरा देखिया।**
**दण्डवत हञा पड़े प्रेमाविष्ट हञा॥१५५॥**

**१५५। प० अनु०—**मथुरा के निकट आने पर मथुरा को देखकर श्रीमन्महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर दण्ड्वत प्रणाम करने के उद्देश्य से भूमि पर पड़ गये।

विश्राम घाट में स्नान और योगपीठ
में केशव-दर्शन—

**मथुरा आसिया कैला, 'विश्राम-तीर्थे' स्नान।**
**'जन्म स्थान' 'केशव' देखि' करिला प्रणाम॥१५६॥**

**१५६। प० अनु०—**मथुरा में आकर श्रीमन्महाप्रभु ने विश्राम-तीर्थ में स्नान किया तथा श्रीकृष्णजन्मभूमि पर भगवान् श्रीकेशव को देखकर उन्हें प्रणाम किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५६। विश्रामतीर्थ,—प्रसिद्ध विश्रामघाट, जन्म-स्थाने केशव,—श्रीकृष्ण के जन्म स्थान पर श्रीकेशवजी की मूर्त्ति।

प्रभु के प्रेमावेश को
देखकर लोगों में विस्मय—

**प्रेमावेशे नाचे, गाय, सघने हुङ्कार।**
**प्रभुर प्रेमावेश देखि' लोके चमत्कार॥१५७॥**

**१५७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु प्रेम में आविष्ट होकर नृत्य कर रहे थे, गा रहे थे तथा अति उच्च घनघोर हुङ्कार भर रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु के प्रेमावेश को देखकर लोग चमत्कृत हो रहे थे।

एक ब्राह्मण का प्रभु के आनुगत्य में प्रेमावेश में
नृत्य और गान—

**एकविप्र पड़े प्रभुर चरण धरिया।**
**प्रभु-सङ्गे नृत्य करे प्रेमाविष्ट हञा॥१५८॥**

**१५८। प० अनु०—**एक ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण करने के बाद प्रेम में आविष्ट होकर उनके साथ नृत्य करने लगा।

दोनों का नृत्य-कीर्त्तन—

**दुँहे प्रेमे नृत्य करि' करे कोलाकुलि।**
**'हरि' 'कृष्ण' कहे दुँहे बलि' बाहु तुलि'॥१५९॥**

**१५९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु एवं वह ब्राह्मण—दोनों प्रेमावेश में नृत्य करके एक-दूसरे को गले लगा रहे थे तथा दोनों अपनी भुजाओं को उठाकर 'हरि' 'कृष्ण' आदि नामों का उच्चारण कर रहे थे।

लोगों का कोलाहल, पुजारी के द्वारा
प्रभु के गले में माला-प्रदान—

**लोक 'हरि' 'हरि' बले, कोलाहल हैल।**
**'केशव'-सेवक प्रभुके माला पराइल॥१६०॥**

**१६०। प० अनु०—**लोग 'हरि' 'हरि' बोलने लगे, कोलाहल मच गया। भगवान् श्रीकेशव के सेवक ने श्रीमन्महाप्रभु को माला पहनायी।

प्रभु के प्रेम की 'अलौकिक' के रूप
में लोगों को प्रतीति—

**लोके कहे, प्रभु देखि' हञा विस्मय।**
**ऐछे हेन प्रेम 'लौकिक' कभु नय॥१६१॥**

**१६१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को देखकर लोगों ने विस्मित होकर कहा कि ऐसा प्रेम कभी भी लौकिक नहीं हो सकता।

अलौकिक होने के कारण का निर्देश—

**जाँहार दर्शने लोके प्रेमे मत्त हञा।**
**हासे, कान्दे, नाचे, गाय, कृष्णनाम लञा॥१६२॥**

निश्चय सिद्धान्त—

**सर्वथा निश्चित, इँहो—कृष्ण-अवतार।**
**मथुरा आइला लोकेर करिते निस्तार॥१६३॥**

**१६२-१६३। प० अनु०—**जिनके दर्शन से ही लोग प्रेम में मत्त होकर कृष्णनाम उच्चारण करते समय हँसते हैं, रोते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, यह

निश्चित है कि ये कृष्ण के अवतार है तथा लोगों का उद्धार करने के लिये ही मथुरा आये हैं।

उस ब्राह्मण के प्रेम के दर्शन करके उसके परिचय की जिज्ञासा—

**तबे महाप्रभु सेइ ब्राह्मणे लञा।**
**ताँहारे पूछिला किछु निभृते बसिया॥१६४॥**
**"आर्य, सरल तुमि—वृद्ध ब्राह्मण।**
**काँहा हैते पाइले तुमि एइ प्रेमधन??"१६५॥**

**१६४-१६५। प० अनु०—**तब श्रीमन्महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को अपने साथ ले जाकर एकान्त में बैठकर उससे पूछा—हे आर्य! आप सरल तथा वृद्ध ब्राह्मण हैं, आपको यह प्रेमधन कहाँ से प्राप्त हुआ?

अपने गुरुदेव श्रीमाधवेन्द्र का परिचय-प्रदान—

**विप्र कहे,—"श्रीपाद माधवेन्द्र-पुरी।**
**भ्रमिते भ्रमिते आइला मथुरा-नगरी॥१६६॥**
**कृपा करि' तेंहो मोर निलये आइला।**
**मोरे शिष्य करि' मोर हाते 'भिक्षा' कैला॥१६७॥**
**गोपाल प्रकट करि' सेवा कैल 'महाशय'।**
**अद्यापिह ताँहार सेवा 'गोवर्द्धने' हय॥"१६८॥**

**१६६-१६८। प० अनु०—**ब्राह्मण ने कहा—श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी भ्रमण करते-करते मथुरा नगरी में आये थे। कृपा करके श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी मेरे घर पर आये थे तथा उन्होंने मुझे अपना शिष्य बनाकर मेरे हाथ से भिक्षा (भोजन) ग्रहण की थी। श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी महाशय ने गोपाल को प्रकटित कराके उनकी सेवा की। आजतक भी गोवर्द्धन में उन गोपाल की सेवा होती है।

गुरुबुद्धि से प्रभु के द्वारा ब्राह्मण की वन्दना, विप्र का भय और सम्भ्रमपूर्वक प्रभु को प्रणाम—

**शुनि' प्रभु कैल ताँर चरण-वन्दन।**
**भय पाञा प्रभु-पाय पड़िला ब्राह्मण॥१६९॥**

**१६९। प० अनु०—**उन ब्राह्मण की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने उनके चरणों की वन्दना की। भयभीत होकर वह ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में पड़ गया।

मर्यादा-रक्षक प्रभु के द्वारा गुरु के निकट दीनता प्रदर्शन—

**प्रभु कहे,—"तुमि 'गुरु', आमि 'शिष्य'-प्राय।**
**'गुरु' हञा, 'शिष्ये' नमस्कार ना जुयाय॥"१७०॥**

**१७०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—आप गुरुतुल्य तथा मैं शिष्य जैसा हूँ। गुरु होकर शिष्य को प्रणाम करना शोभा नहीं देता।

ब्राह्मण का भय और दैन्य-ज्ञापन—

**शुनिया विस्मित विप्र कहे भय पाञा।**
**"ऐछे बात कह केन सन्यासी हञा॥१७१॥**

**१७१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर आश्चर्यचकित ब्राह्मण ने भयभीत होकर कहा कि आप संन्यासी होकर ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?

प्रभु को माधवेन्द्र के साथ सम्बन्ध युक्त समझने में विप्र का अनुमान—

**किन्तु तोमार प्रेम देखि' मने अनुमानि।**
**माधवेन्द्र-पुरीर 'सम्बन्ध' धर-जानि॥१७२॥**

**१७२। प० अनु०—**किन्तु आपके प्रेम को देखकर मैंने अपने मन-ही-मन अनुमान लगाया है कि आप अवश्य ही श्रीमाधवेन्द्र पुरी के साथ सम्बन्ध रखते हैं।

माधवेन्द्र के सम्बन्ध के बिना अन्यत्र कृष्णप्रेमा—अलभ्य (अप्राप्य)—

**कृष्णप्रेमा ताँहा, जाँहा ताँहार 'सम्बन्ध'।**
**ताँहा बिना एइ प्रेमार काँहा नाहि गन्ध॥"१७३॥**

**१७३। प० अनु०—**कृष्णप्रेम वहीं है, जहाँ

श्रीमाधवेन्द्र पुरी से किसी-न-किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध है। उनके अलावा अर्थात् उनके सम्बन्ध के बिना इस प्रेम की कहीं पर गन्ध भी नहीं है।

भट्ट के द्वारा प्रभु के गुरु का परिचय प्रदान—

**तबे भट्टाचार्य तारे 'सम्बन्ध' कहिल।**
**शुनि' आनन्दित विप्र नाचिते लागिल॥१७४॥**

**१७४। प॰ अनु॰—**तब श्रीबलभद्र भट्टाचार्य ने उस ब्राह्मण को श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी के साथ श्रीमन्महाप्रभु के सम्बन्ध के विषय में बतलाया। बलभद्र भट्टाचार्य के मुख से वार्त्ता सुनकर आनन्दित ब्राह्मण नृत्य करने लगा।

**अनुभाष्य**

१६५-१७४। पहले प्रभु के प्रति पाण्ठरपुर में श्रीरङ्गपुरी की इस प्रकार की उक्ति—मध्य नवम परिच्छेद २८९ और २९१ संख्या द्रष्टव्य।

प्रभु को अपने घर में लाना और सेवा करना—

**तबे विप्र प्रभुरे लञा आइला निज-घरे।**
**आपन-इच्छाय प्रभुर नाना सेवा करे॥१७५॥**

**१७५। प॰ अनु॰—**तब वह ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु को अपने घर पर ले आये तथा वह अपनी इच्छा के अनुसार श्रीमन्महाप्रभु की अनेक प्रकार की सेवा करने लगे।

विप्र द्वारा दीनतापूर्वक भट्ट के द्वारा अन्न का पाक कराना, शुद्ध भक्ति के अनुकूल दैव-वर्णाश्रम-धर्म-पालक प्रभु के वास्तविक शास्त्र-तात्पर्य के कीर्त्तन के द्वारा लोक शिक्षा-प्रदान—

**भिक्षा लागि' भट्टाचार्ये कराइला रन्धन।**
**तबे महाप्रभु हासि' बलिला वचन॥१७६॥**

**१७६। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु को भोजन कराने के लिये उस ब्राह्मण ने बलभद्र भट्टाचार्य से रन्धन करवाया। तब श्रीमन्महाप्रभु ने हँसते हुए उस ब्राह्मण से कहा—।

पुरी की कृपा प्राप्त करने वाले ब्राह्मण के घर में प्रभु की भिक्षा की अभिलाषा—

**''पुरी-गोसाञि तोमार घरे करयाछेन भिक्षा।**
**मोरे तुमि भिक्षा देह,—एइ मोर 'शिक्षा'॥''१७७॥**

**१७७। प॰ अनु॰—**श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी ने आपके घर में भोजन ग्रहण किया है, इसीलिए मुझे भी आप अपने हाथ से बना भोजन प्रदान करो—श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी के आचरण से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है।

आचार्य का आचरण ही लोगों का आदर्श—श्रीमद्भगवद् गीता (३/२१) में—

**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्ततदेवेतरो जनः।**
**स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥१७८॥**

१७८। श्रेष्ठव्यक्ति जैसा आचरण करते हैं, अन्य व्यक्ति भी उसी का अनुकरण करते हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति जिसको 'प्रमाण' कहते हैं, सभी उसी में अनुवर्त्तमान अर्थात् अनुरक्त होते हैं।

**अनुभाष्य**

१७८। आदि तृतीय परिच्छेद २५ संख्या द्रष्टव्य।

शौक्रकुल के सम्बन्ध से वह विप्र—अभोज्यान्न (ऐसा ब्राह्मण, जिसका भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए)—

**यद्यपि 'सनोड़िया' हय सेइत ब्राह्मण।**
**सनोड़िया-घरे सन्यासी ना करे भोजन॥१७९॥**

**१७९। प॰ अनु॰—**यद्यपि वह ब्राह्मण 'सनोड़िया' ब्राह्मण था तथा सनोड़िया के घर में सन्यासी भोजन नहीं करते।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७९। पश्चिमदेश (पश्चिम भारत) में वैश्य

कुछेक भागों में विभक्त हैं,—'अग्रवाल', 'कालोयाड़', 'सानोयाड़' (सुनार) इत्यादि। उनमें से अग्रवाल ही अतिशुद्ध हैं; कालोयाड़, सानोयाड़ आदि श्रेणी—अपने-अपने कार्यों के दोष के कारण पतित हैं। इन कालोयाड़ और सोनायाड़ों (सुनारों) का जो याजन करते है अर्थात् जिनके यजमान सोनायाड़ हैं। उन्हें 'सानोडिया ब्राह्मण' इत्यादि कहते हैं। 'सानोयाड़'-शब्द का अर्थ 'सुवर्ण (सोने) का व्यापारी है, उनके याजक-ब्राह्मण ही 'सानोड़िया (वर्ण) ब्राह्मण हैं। याजन के दोष से पतित होने के कारण उन ब्राह्मणों के घर में संन्यासी भोजन नहीं करते।

वैष्णव अथवा शुद्ध ब्राह्मण जानकर उन्हें पुरी के द्वारा शिष्य के रूप में स्वीकार करना—

**तथापि पुरी देखि' ताँर 'वैष्णव'—आचार।**
**'शिष्य' करि' ताँर भिक्षा कैल अङ्गीकार॥१८०॥**

**१८०। प० अनु०—**तथापि श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी ने उस ब्राह्मण के वैष्णव जैसे आचरण को देखकर उसे अपना शिष्य बनाकर उसके द्वारा दी गयी भिक्षा को स्वीकार किया था।

प्रभु की उनके घर में भिक्षा की अभिलाषा को सुनकर ब्राह्मण की दैन्यपूर्ण उक्ति—

**महाप्रभु ताँरे यदि 'भिक्षा' मागिल।**
**दैन्य करि' सेइ विप्र कहिते लागिल॥१८१॥**

**१८१। प० अनु०—**यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं उन ब्राह्मण से भिक्षा माँगी, तथापि वह ब्राह्मण दैन्यपूर्वक कहने लगा—।

**"तोमारे 'भिक्षा' दिब—बड़ भाग्य से आमार।**
**तुमि—ईश्वर, नाहि तोमार विधि-व्यवहार॥१८२॥**

**१८२। प० अनु०—**यद्यपि इसमें तो मेरा बहुत सौभाग्य है कि मैं आपको भिक्षा प्रदान करूँगा, तथा आप ईश्वर हैं, इसलिए आपके लिये भी विधि-व्यवहार की कोई चिन्ता नहीं है।

**अनुभाष्य**

१८२। इस प्रसङ्ग में मध्य दशम परिच्छेद १३६-१४० संख्या द्रष्टव्य।

विप्र का गौरप्रेम एवं अदैव-वर्णाश्रमी व्यक्तियों का तिरस्कार—

**'मूर्ख'-लोक करिबेक तोमार निन्दन।**
**सहिते ना पारिमु सेइ 'दुष्टे'र वचन॥"१८३॥**

**१८३। प० अनु०—**किन्तु मूर्ख व्यक्ति आपकी निन्दा करेंगे तथा मैं उन दुष्टों के वचन सहन नहीं कर पाऊँगा।

**अनुभाष्य**

१८३। वह शुद्धभक्त विप्र शौक्र-सम्बन्ध से जलाचरणीय (उसका जल भी स्पर्श योग्य) नहीं होने पर भी भक्ति के अनुकूल दैव-वर्णाश्रम में और सत्य की प्रतिष्ठा-हेतु उसने बिना किसी भय के, महाप्रभु और शुद्ध भक्ति के प्रतिकूल, वैष्णवों में जाति-बुद्धि करने वाले अदैव वर्णाश्रमी एवं महाप्रसाद में कुतर्क करने वालों को 'मूर्ख' और 'दुष्ट' प्रभृति संज्ञा में अभिहित करने में द्विधा नहीं की, इस स्थान पर उनकी दैन्यपूर्वक प्रचलित विष्णु-विरोधी स्मार्त्त समाज की पैर चाटने की चेष्टा नहीं है।

मनोधर्मी व्यक्तियों के विभिन्न पथों का वर्णन—

**प्रभु कहे,—"श्रुति, स्मृति, जत ऋषिगण।**
**सबे 'एक'-मत नहें, भिन्न भिन्न धर्म॥१८४॥**

**१८४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—श्रुति, स्मृति तथा जितने भी ऋषिगण हैं, कोई भी एक मत वाले नहीं है, वे भिन्न-भिन्न धर्म से युक्त हैं।

**अनुभाष्य**

**१८४। एकमत,—**अद्वय-ज्ञान की भूमिका में प्रतिष्ठित सत्य (वास्तविक)-धर्म ही 'नित्य',

'सनातन' और 'एक' है; वहाँ 'उपेय' अथवा 'साध्य' जिस प्रकार एक होता है, 'उपाय' अथवा 'साधन' अथवा 'मार्ग' भी उसी प्रकार 'एक' अथवा उससे अभिन्न होता है। भिन्न-भिन्न धर्म,— आत्मदर्शन को छोड़कर बाहरी दर्शन के आधार पर प्रत्येक जीव के परस्पर देह और मन का विशेष-विशेष धर्म है।

लोगों के हित के उद्देश्य से ही सज्जन का आचरण, अतएव माधवेन्द्र के द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही एकमात्र निश्चयार्थक अथवा वास्तविक-सत्यप्रद—

**धर्म-स्थापन-हेतु साधुर व्यवहार।**
**पुरी-गोसाञिर जे आचरण, सेइ धर्म सार॥"१८५॥**

**१८५। प० अनु०—**धर्म की स्थापना के लिये ही साधु का व्यवहार होता है। श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी का जो आचरण है, वही धर्म का सार है।

### अनुभाष्य

१८५। **साधु अथवा महाजन,—**महद् व्यक्ति को 'महाजन' कहते हैं। पारमार्थिक और जागतिक विचार में 'महत्' के सम्बन्ध में विभिन्न धारणाएँ विद्यमान हैं। बद्धजीव के मनोधर्म अथवा इन्द्रियों से संगृहीत ज्ञान की धारणा में जो उनके इन्द्रिय भोग्य एवं इन्द्रिय-तर्पण को इन्धन-प्रदान करने वाले हैं, वही 'महाजन' के रूप में उनके निकट विवेचित हैं। व्यवसायी के निकट 'उत्तमण' (ऋण देने वाले) महाजन हो सकते हैं, भोग-परायण कर्मी के निकट 'जैमिनी ऋषि' अथवा विभिन्न मतों के पोषक धर्म शास्त्रकार; चित्त का निरोध करने के अभिलाषी व्यक्तियों के निकट 'पातञ्जलादि ऋषि'; शुष्क ज्ञान पन्थी के निकट निरीश्वर कपिल, वशिष्ठ, दुर्वासा, दत्तात्रेय आदि केवलाद्वैत-वादिगण; रजस्तमो गुणाश्रित व्यक्तियों के निकट पशु जैसे बल से बली विष्णु-विरोधी-कार्यों में अतुलनीय अध्यवसायी हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण और उसके पुत्र मेघनाद, जरासन्ध आदि राजा, एकलव्य और कर्ण आदि गुरुभक्त; स्त्री-सङ्ग प्रिय पुरुषाभिमानी व्यक्तियों के निकट दक्षादि स्त्री पूजक प्रजापतिगण; जागतिक लोगों के निकट देहिक और मानसिक रोग, दुःख, भय अथवा फल्गु अभाव को दूर करने के अभिलाषी अथवा अनुरागी व्यक्ति महाजन के रूप में कथित हो सकते हैं; प्रकृति-विमोहित जीवों के निकट विष्णु सम्बन्ध विहीन 'दार्शनिक', 'वैज्ञानिक', 'ऐति-हासिक', 'साहित्यिक' 'कवि', 'वाग्मी', 'समाजपति' अथवा 'देशनेता' महाजन कहकर निर्णीत हो सकते हैं, आत्मवञ्चित व्यक्तियों के निकट परमार्थभूत आत्मवृत्ति भगवद्भक्ति को शुक्र-शोणित में आबद्ध मानने वाले अर्थात् केवल शौक्र-वंश की दोहाई देकर आत्मज्ञान-जननी भगवद् भक्ति अथवा गुरुत्व के दावेदार-वञ्चक और भाड़े वाले धन के लोभी गिद्ध; 'ढ़ोगी विप्र' की भाँति श्री हरिदास जैसे वास्तविक साधु के विरोधी और उनके अप्राकृत हरिभजन की चेष्टा का कृत्रिम बाहरी रूप से अनुकरण करने वाले, डींग हाँकने वाले और कुहक विद्याभिज्ञगण, पूतना, तृणावर्त, वत्स, बक, अध, धेनुकासुर, कालिय, प्रलम्ब आदि असुरगण; अथवा विष्णु विरोधी पौण्ड्रक, श्रृङ्गाल-वासुदेव, दैत्यगुरु शुक्र, नास्तिक चार्वाक, वेण, सुगत, अर्हत आदि एवं गौरकृष्ण के वास्तविक सत्य होने अथवा उनके परमेश्वर होने में अविश्वासी वञ्चक उनका अनुकरण करके स्वयं ही अथवा वञ्चकों के विष्णुविरोधी मनोधर्म के अनुकूल मनोहर वचन प्रयोग करके उनके द्वारा—अपने अवतार होने का प्रतिपादन अथवा घोषणा कराने की इच्छा करके मूर्ख वञ्चित दुर्भागे व्यक्तियों के निकट महाजन के रूप में कल्पित हो सकते हैं। फलस्वरूप भगवद्भक्ति हीन व्यक्ति के निकट

इस प्रकार 'अन्याभिलाषी', 'कर्मी', 'शुष्कज्ञानी', 'अभक्त योगी' अथवा कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा लोभी व्यक्तिगण 'महाजन' के रूप में निर्दिष्ट हो सकते है, सच हैं; किन्तु निरस्त कुहक परम-सत्य अथवा वास्तव वस्तु को प्रतिपादन करने वाली निर्मत्सर श्रीमद्भागवत कहती है,—(६/३/२५)— ''प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहित-मतिर्वत माययालम्। त्रय्यां जड़ीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैतानिके महति कर्माणि युज्यमानः॥'' अर्थात् जगत् में जो सब कर्मी 'महाजन' के नाम से प्रख्यात हैं, वे सभी धर्म के विषय में बतलाने वाले लोग भगवद्भक्ति के माहात्म्य को नहीं जानते हैं। उनकी बुद्धि—त्रिगुणमयी वैष्णवी-माया के द्वारा विमोहित है; इसलिए वे वैकुण्ठीय भगवद्-भक्ति का अनादर करके प्रकृति के उपासना-मूलक विस्तारशील कर्मकाण्ड में नियुक्त तथा माया के जाल में आबद्ध (फसे हुए) हैं। इन सभी महाजनों की मति—ऋक-साम-यजुर्वेद के आपात-रमणीय मधुर अर्थवाद-वाक्यों में जड़ीकृत है; वे सब व्यक्ति प्राकृत लोगों की धारणा में 'महाजन' के रूप में कल्पित होने पर भी वे पुरुषोत्तम श्रीभगवान् की नित्यसेवा की बुद्धि से युक्त नहीं हैं।

जगत् के लोग 'कर्मवीर' के रूप में परिचित हो सकते हैं, 'धर्मवीर' कहलाकर सम्मान प्राप्त कर सकते हैं, 'ज्ञानवीर' कहलाकर प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं, 'वैराग्य और त्याग के आदर्श' कहलाकर पूजित हो सकते हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत कहती हैं,—(३/२३/५६) ''नेह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते। न तीर्थ पाद सेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥'' अर्थात् इस जगत् में जो कर्मवीर 'धर्म' के लिये कर्म न करें, जो त्यागवीर 'श्रीविष्णु की प्रीति के लिये भोग त्याग' न करें, वे व्यक्ति—'जीवन्मृत' अर्थात् जीवित होते हुए भी मृत हैं। वास्तव में हरितोषण अर्थात् हरि की सन्तुष्टि का नाम ही 'सेवा' है; और जिस कर्म में, जिस धर्म में, जिस त्याग में श्रीकृष्ण की कोई प्रीति अथवा सम्बन्ध नहीं है, वह देश की सेवा, देशवासियों की सेवा, समाज की सेवा, शौक्रवंश अथवा जातिगत अ-दैव-वर्णाश्रम की सेवा, रोगी की सेवा, दरिद्र की सेवा, निर्धन की सेवा, धनवान की सेवा, स्त्री-जाति की सेवा, अनेक देवताओं की सेवा आदि ''श्रेष्ठ-गुण-सम्पत्'' अथवा ''प्रातः स्मरणीय कार्य''—के नाम से जगत् में प्रचारित होने पर भी, वह वास्तव में 'इन्द्रियतोषण अथवा 'भोग' है। जगत् के दुर्भाग्य के कारण जीवों के निकट इस प्रकार के इन्द्रिय तोषण के इन्धन को प्रदान करने वाले ही, इस प्रकार इन्द्रिय-तर्पण का पोषण करने वाले वक्ता, प्रचारक अथवा शास्त्रकार ही 'महाजन' के रूप में विख्यात हैं।

प्रकृति-आश्रित बुद्धि से युक्त, बाह्य जगत-दर्शनकारी, इन्द्रियदास भवरोगग्रस्त जीव अपनी विकृत बुद्धि द्वारा वास्तविक महाजन को समझ अथवा पहचान नहीं पाते ; क्योंकि उनकी बुद्धि सदैव भ्रम आदि चार प्रकार के दोषों से दुष्ट है।

अनादि काल से रक्त-माँस अथवा शुक्र आदि सात धातुओं से युक्त कुणपे (शरीर मे) 'आत्म'-बुद्धि और रुचिविशिष्ट व्यक्ति भेड़चाल की भाँति अक्षज ज्ञान के स्त्रोत में बह रहे हैं। इस प्रकार प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदाय के कोई-कोई श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद जैसे महाजनों के वचनों का भी अनादर करके, महाजनों के चरणों में अपराध सञ्चय करके, महाजन को 'अनुदार' (सङ्कीर्ण) आदि नामों से अभिहित (चिह्नित) करके अपनी असुविधा स्वयं ही वरण कर रहे हैं; अन्य कोई अपनी इन्द्रियतर्पण पर आधारित धारणा के अनुसार कल्पित महाजनों की सृष्टि करके व्यभिचार, लाम्पट्य, लाभ, पूजा, प्रतिष्ठाशा, कुटीनाटी, जीव-हिंसा आदि असंख्य अपराधजनक कार्यों में लिप्त हो रहे हैं।

वास्तव में, प्रकृत 'महाजन' के निर्णीत नहीं होने पर जीव की कोई भी चेष्टा सुफल उत्पन्न करने वाली नहीं हो सकती। महाजनों के स्वरूप के निर्णय में—मध्य पञ्चविंश परिच्छेद ५४-५७ संख्या में—'परम-कारण' 'ईश्वरे' केह नाहि माने। स्व-स्व मत स्थापे पर मतेर खण्डने॥ ता' ते छयदर्शन हैते 'तत्त्व नाहि जानि। 'महाजन', जेइ कहे, सेइ 'सत्य' मानि। श्रीकृष्ण चैतन्य वाणी अमृतेर धार। तेंहो जे कहये 'वस्तु', सेइ तत्त्वसार॥'' अर्थात् सांख्य-पातञ्जल आदि दर्शनकार कोई भी वास्तव में विष्णु को 'ईश्वर' के रूप में नहीं मानते; एक बात में, वे सभी 'प्रच्छन्न' अथवा 'अप्रच्छन्न' नास्तिक, अर्थात् कोई भी 'आस्तिक नही है; १) उन्होंने केवल अपने-अपने-मतवाद की बाहादुरी प्रदर्शित करने के लिये तर्क द्वारा दूसरों के मत का खण्डन और अपने-अपने मतवाद को स्थापित करने की चेष्टा मात्र की है; अतएव इन सभी शास्त्रों का उपदेश प्रदान करने वाले जगत में 'महाजन' कहकर परिचित होने पर भी वास्तव में वे 'महाजन' नहीं है—वे ही अत्यन्त 'सङ्कीर्ण' और 'अनुदार' हैं।

यह बात सुनकर इन सभी तथाकथित महाजनों के भक्तगण अपने प्राकृत अक्षजज्ञान के अनुसार श्रीमन्महाप्रभु और शुद्ध भक्तों के चरणों में अपराध करके कहेंगे,—''यह 'जिद्द' मात्र है। उनकी धारणा है—श्रीकृष्ण चैतन्यप्रभु अथवा श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद पूर्वोक्त व्यक्तियों में से ही अन्यतम एक महाजन मात्र हैं। अतएव वे प्राकृत-सहजधर्म की चिन्ता के स्त्रोत में निमग्न होकर चिद्-जड़-समन्वयवादी होकर इस प्रकार का सिद्धान्त ही करेंगे, उस विषय में सन्देह और आश्चर्य कैसा? किन्तु जिनका अप्राकृत स्वरूप धर्म जागरित हुआ है, वे उस स्वरूपधर्म के आलोक में उज्ज्वल होकर प्रत्येक जीव के ही स्वरूप का दर्शन करने में समर्थ हैं। महाभागवत अथवा परमहंस का ही अधोक्षज-दर्शन अथवा सुदर्शन (होता है), अतएव वे निष्किञ्चन ही एकमात्र वास्तविक 'महाजन' हैं। श्रील माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी भी निष्किञ्चन महाजन हैं; उनके आचरण में किसी भी प्रकार की मत्सरता अथवा लोकवञ्चना नहीं है ; उन्होंने आचरण करके जो प्रचार किया है, उनके द्वारा प्रदर्शित उसी दैव-वर्णाश्रम-धर्म को आदर्श मानकर अनुगमन करने से ही निःश्रेय सार्थी जीव को निश्चय ही मङ्गल प्राप्त होगा, महाप्रभु ने उसी दैव-वर्णाश्रम धर्म के आदर्श का प्रदर्शन करके शिक्षा दी है।

श्रीमद्भागवत में (६/३/१९-२१)—'द्वादशजन' महाजनों के नाम उल्लिखित हैं। कलियुग में भगवद्भक्ति प्रचारक शुद्ध-वैष्णव-सम्प्रदाय के चार आचार्य ही 'महाजन' हैं। हमारे सम्प्रदाय में गौड़ीये-श्वर श्रीदामोदर स्वरूप ही मूल 'महाजन' हैं। उनके अभिन्न कलेवर परमतत्त्व श्री गौरसुन्दर के प्रियतम श्रीरूप-सनातन अथवा श्रीरूपानुग साधु-जन-सभी 'महाजन' हैं। श्रीविष्णु स्वामि के अनुगत शुद्धाद्वैतवादी श्रीधर स्वामी भी 'महाजन' हैं। चण्डी-दास, विद्यापति, जयदेव,—ये सभी महाजन हैं। किन्तु जो इन सभी महाजनों में भोगबुद्धिविशिष्ट होकर अर्थात् इनकी सेवा करने के स्थान पर इन्हें अपने-अपने तुच्छ स्वार्थ सिद्धि के यन्त्र के रूप में माप लेने अथवा 'गुरु के ऊपर गुरुगिरि' करने के लिये दौड़ते हैं, वे सभी दुर्भागे व्यक्ति इन सभी महाजनों से बहुत दूर में अवस्थित हैं। इन्द्रियतर्पण माया-दास्य ही उनके निकट 'कल्पित महाजन' की मूर्त्ति लेकर उपस्थित होता है तथा उन्हें छलकर उनकी इन्द्रियों को वास्तविक सत्य के पथ से आवृत्त करके विक्षिप्त कर देता है। अतएव शुद्ध भगवद्भक्त की चेष्टा कभी भी उनकी प्राकृत बुद्धि की धारणा का विषय नहीं होती।

शुद्धभक्तों का पथ ही अनुसरणीय—
महाभारत के वनपर्व (३१३/११७) में—

**तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना**
**नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।**
**धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां**
**महाजनो येन गतः स पन्थाः॥१८६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८६। तर्क सहज रूप में ही प्रतिष्ठा शून्य होता है, सभी श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं, जिसका मत भिन्न न हो, वह 'ऋषि' ही नहीं हो सकता; इतने पर भी धर्मतत्त्व गूढ़ रूप से ढ़का हुआ है अर्थात् शास्त्र आदि पढ़कर धर्मतत्त्व को जानना कठिन है। अतएव जिन्हें 'महाजन' कहकर साधुओं ने स्थिर किया है, उन महाजनों ने जिस मार्ग को 'शास्त्र-पन्था' कहा है, उसी मार्ग पर ही अन्य सभी व्यक्तियों का चलना उचित है।

**अनुभाष्य**

१८६। ('वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः' इति पाठान्तरञ्च दृश्यते)। तर्कः अप्रतिष्ठः (अस्थिरः नाचलः), श्रुतयः अपि (विभिन्नाः, अधिकार भेदेन विरोधप्रदर्शनपराः), असौ ऋषिः न (वाच्यः), यस्य मतं (सिद्धान्त) भिन्नं न (आसीत्); (एवम्बिधे तर्कप्रधान-युगे) धर्मस्य (सनातन-जैव-धर्मस्य) तत्वं गुहायां (साधारण लोकलोचनागोचर-शुद्ध-सज्जन सम्प्रदायैक-हृदगहवरे) निहितं (पिहितं लुक्कायितम्; अतः) येन (सत्पथेन) महाजनः (पूर्वतमः अधोक्षजा-च्युत सेवकः सज्जनः) गतः (प्राप्तः), सः (एव) पन्थाः (शुद्धमार्गः)।

ब्राह्मण के घर में प्रभु की भिक्षा—

**तबे सेइ विप्र प्रभुके भिक्षा कराइल।**
**मधुपुरीर लोक-सब प्रभुके देखिते आइल॥१८७॥**

**१८७। प॰ अनु॰—**तब उस ब्राह्मण ने श्रीमन्महाप्रभु को भिक्षा प्रदान की। मथुरा पुरी के सब लोग श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये आये।

असंख्य लोगों द्वारा प्रभु का दर्शन—

**लक्ष-संख्या लोक आइसे, नाहिक गणन।**
**बाहिर हञा प्रभु दिल दरशन॥१८८॥**

**१८८। प॰ अनु॰—**लाखों की संख्या में लोग आते, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं बाहर आकर उन सबको दर्शन दिया।

प्रभु के कीर्त्तन से सभी का नृत्य—

**बाहु तुलि' बले प्रभु 'हरिबोल'-ध्वनि।**
**प्रेमे मत्त नाचे लोक करि' हरिध्वनि॥१८९॥**

**१८९। प॰ अनु॰—**अपनी भुजाएँ उठाकर श्रीमन्महाप्रभु ने 'हरिबोल' की ध्वनि की। प्रेम में मत्त लोग भी हरिध्वनि करते हुए नृत्य करने लगे।

यमुना के चौबीस घाटों पर स्नान करने के बाद प्रभु के द्वारा ब्राह्मण द्वारा प्रदर्शित देखने योग्य स्थानों का दर्शन—

**यमुनार 'चब्बिश घाटे' प्रभु कैल स्नान।**
**सेइ विप्र प्रभुके देखाय तीर्थस्थान॥१९०॥**
**स्वयंभू, विश्राम, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर।**
**महाविद्या, गोकर्णादि देखिला, विस्तर॥१९१॥**

**१९०-१९१। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने यमुना के चौबीस घाटों पर स्नान किया। उस ब्राह्मण ने श्रीमन्महाप्रभु को स्वयम्भु, विश्राम, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या तथा गोकर्ण आदि सभी तीर्थस्थानों का दर्शन कराया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९०। यमुना के चौबीस घाट—(१) अविमुक्त, (२) अधिरुढ़, (३) गुह्यतीर्थ, (४) प्रयागतीर्थ, (५) कनखलतीर्थ, (६) तिन्दुक, (७) सूर्यतीर्थ, (८)

वटस्वामी, (९) ध्रुवघाट, (१०) ऋषितीर्थ, (११) मोक्षतीर्थ, (१२) बोधतीर्थ, (१३) गोकर्ण, (१४) कृष्णगङ्गा, (१५) वैकुण्ठ, (१६) असिकुण्ड, (१७) चतुः सामुद्रिक कूप, (१८) अक्रूरतीर्थ, (१९) याज्ञिक विप्र स्थान, (२०) कुब्जाकूप, (२१) रङ्गस्थल, (२२) मञ्चस्थल, (२३) मल्लयुद्धस्थान और (२४) दशाश्वमेघ।

उस ब्राह्मण के साथ द्वादश वनों का दर्शन—

**'वन' देखिबारे यदि प्रभुर मन हैल।**
**सेइत ब्राह्मणे प्रभु सङ्गेते लइल॥१९२॥**
**मधुवन, ताल, कुमुद, बहुला-वन गेला।**
**ताँहा ताँहा स्नान करि' प्रेमाविष्ट हैला॥१९३॥**

**१९२-१९३। प० अनु०—**जब श्रीमन्महाप्रभु को वन देखने की इच्छा हुई तब उन्होंने उस ब्राह्मण को अपने साथ ले लिया। श्रीमन्महाप्रभु मधुवन, तालवन, कुमुद वन तथा बहुला वन गये तथा वहाँ-वहाँ पर स्नान करके प्रेम में आविष्ट हो गये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९२। **वन—**द्वादश वन; श्रीयमुना के पूर्वभाग में—भद्रवन, बिल्ववन, लौहवन, भाण्डीर-वन और महावन—यह पाँच। यमुना के पश्चिमभाग में—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, काम्यवन, खदीरवन और वृन्दावन—ये सात।

गो-पाल का दर्शन और व्रजलीला
की स्मृति से प्रेमावेश—

**पथे गाभीघटा चरे प्रभुरे देखिया।**
**प्रभुके बेड़य आसि' हुङ्कार करिया॥१९४॥**

१९४। **प० अनु०—**मार्ग में गैयाओं का झुण्ड चर रहा था, जैसे ही उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को देखा, उसी समय हुङ्कार करते हुए आकर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को चारों ओर से घेर लिया।

**गाभी देखि' स्तब्ध प्रभु प्रेमेर तरङ्गे।**
**वात्सल्ये गाभी प्रभुर चाटे सब-अङ्गे॥१९५॥**

१९५। **प० अनु०—**गैयाओं को देखकर श्री मन्महाप्रभु प्रेम की तरङ्ग के कारण स्तब्ध हो गये तथा वात्सल्य पूर्वक गैयाएँ श्रीमन्महाप्रभु के सभी अङ्गों को चाटने लगी।

**सुस्थ हञा प्रभु करे अङ्ग-कण्डुयन।**
**प्रभु-सङ्गे चले, नाहि छाड़े धेनुगण॥१९६॥**

१९६। **प० अनु०—**स्वस्थ होकर श्रीमन्महाप्रभु ने अगड़ाई ली। गैयाएँ श्रीमन्महाप्रभु के साथ चलने लगीं, उन्हें छोड़कर नहीं गयीं।

**कष्टे-सृष्ट्ये धेनु सब राखिल गोयाल।**
**प्रभुकण्ठध्वनि शुनि' आइसे मृगीपाल॥१९७॥**

१९७। **प० अनु०—**ग्वाले ने जैसे-कैसे करके बहुत कठिनायी से अपनी गैयाओं को रोका। श्रीमन्महाप्रभु के कण्ठ की ध्वनि को सुनकर हिरणों का झुण्ड उनके निकट आ गया।

प्रभु के दर्शन से मृग-दम्पति का सुख—

**मृग-मृगी मुख देखि' प्रभु-अङ्ग चाटे।**
**भय नाहि करे, सङ्गे जाय बाटे-बाटे॥१९८॥**

**१९८। प० अनु०—**हिरण और हिरणियाँ श्रीमन्महाप्रभु के मुख को देखकर उनके अङ्गों को चाटने लगी। उन्हें किसी प्रकार का कोई भय नहीं था, वे दौड़-दौड़कर श्रीमन्महाप्रभु के साथ-साथ जा रहे थे।

प्रभु के दर्शन से पक्षियों का कलरव
करना और हर्ष—

**शुक, पिक, भृङ्ग प्रभुरे देखि 'पञ्चम' गाय।**
**शिखिगण नृत्य करि' प्रभु-आगे जाय॥१९९॥**

**१९९। प० अनु०—**तोते, कोयल तथा भँवरे

श्रीमन्महाप्रभु को देखकर पञ्चम स्वर में गाने लगे तथा मयूर नृत्य करते हुए श्रीमन्महाप्रभु के आगे चलने लगे।

वृक्ष और लताओं द्वारा पुलकाश्रु-वर्षण—

**प्रभु देखि' वृन्दावनेर वृक्ष-लतागणे।**
**अंकुर-पुलक, मधु-अश्रु वरिषणे॥२००॥**
**फूल-फल भरि' डाल पड़े प्रभु-पाय।**
**बन्धु देखि' बन्धु जेन 'भेट' लञा जाय॥२०१॥**

**२००-२०१। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु को देखकर वृन्दावन के वृक्ष तथा लताएँ अंकुरित तथा पुलकित हो उठें, उनमें मकरन्द ऐसे प्रवाहित होने लगा, मानो वे प्रेम में अश्रु प्रवाहित कर रहे हों। फूल तथा फलों से भरकर उनकी डाल ऐसे श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में आकर गिर पड़ी जैसे अपने बन्धु को देखकर कोई बन्धु उपहार लेकर जाता है।

प्रभु के दर्शन से स्थावर, जङ्गम, सभी में ही हर्ष और प्रभु के साथ क्रीड़ा—

**प्रभु देखि' वृन्दावनेर स्थावर-जङ्गम।**
**आनन्दित—बन्धु जेन देखे बन्धुगण॥२०२॥**

२०२। **प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु को देखकर वृन्दावन के स्थावर तथा जङ्गम ऐसे आनन्दित हो रहे थे जैसे बन्धु को देखकर बन्धु प्रसन्न होते हैं।

**ता-सबार प्रीति देखि' प्रभु भावावेशे।**
**सबा-सने क्रीड़ा करे, हञा तार वशे॥२०३॥**

२०३। **प॰ अनु॰—**वृन्दावन के स्थावर तथा जंगम की प्रीति को देखकर श्रीमन्महाप्रभु भाव के आवेश में उन सबके साथ उनके वशीभूत होकर क्रीड़ा कर रहे थे।

**प्रति वृक्ष-लता प्रभु करेन आलिङ्गन।**
**पुष्पादि ध्याने करेन कृष्णे समर्पण॥२०४॥**

२०४। **प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु प्रत्येक वृक्ष तथा लता को आलिङ्गन कर रहे थे एवं पुष्प आदि को ध्यान के माध्यम से श्रीकृष्ण को समर्पित कर रहे थे।

कृष्णप्रेम में प्रमत्त प्रभु—

**अश्रु-कम्प-पुलक-प्रेमे शरीर अस्थिरे।**
**'कृष्ण' बल, 'कृष्ण' बल, बले उच्चैःस्वरे॥२०५॥**

**२०५। प॰ अनु॰—**अश्रु-कम्पन-पुलक तथा प्रेम में श्रीमन्महाप्रभु का शरीर अस्थिर हो रहा था तथा वे बहुत उच्चस्वर से कृष्ण बोलो, कृष्ण बोलो, कह रहे थे।

प्रभु के द्वारा कृष्ण कीर्त्तन करने पर सभी के द्वारा कृष्ण-ध्वनि—

**स्थावर-जङ्गम मिलि' करे कृष्णध्वनि।**
**प्रभुर गम्भीर-स्वरे जेन प्रतिध्वनि॥२०६॥**

**२०६। प॰ अनु॰—**स्थावर तथा जङ्गम—सभी मिलकर कृष्ण ध्वनि कर रहे थे, मानो श्रीमन्महाप्रभु के गम्भीर स्वर में जैसे प्रतिध्वनि हो रही हो।

हिरण के साथ प्रभु का प्रेम-क्रन्दन—

**मृगेर गला धरि' प्रभु करेन रोदने।**
**मृगेर पुलक अङ्गे, अश्रु नयने॥२०७॥**

**२०७। प॰ अनु॰—**हिरण के गले को पकड़कर श्रीमन्महाप्रभु क्रन्दन कर रहे थे, हिरण के अङ्ग पुलकित हो रहे थे तथा उसके नेत्रों में अश्रु थे।

कृष्ण और राधा का स्वपक्षीय शुक-शारी (तोता-मैना) का गान-श्रवण—

**वृक्षडाले शुक-शारी दिल दरशन।**
**ताहा देखि' प्रभुर किछु शुनिते हैल मन॥२०८॥**

२०८। **प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु को वृक्ष की डाल के ऊपर बैठे शुक और शारी (तोता और

मैना) दिखलायी दिये, उन्हें देखकर श्रीमन्महाप्रभु की उनसे कुछ सुनने की इच्छा हुयी।

**शुक-शरिका प्रभुर हाते उड़ि' पड़े।**
**प्रभुके शुनाञा कृष्णेर गुण-श्लोक पड़े॥२०९॥**

२०९। **प० अनु०—**शुक और शारी उड़कर श्रीमन्महाप्रभु के हाथ पर आकर बैठ गये। शुक श्रीमन्महाप्रभु को कृष्ण के गुणों से सम्बन्धित श्लोक सुनाने लगा—।

शुक के द्वारा कृष्ण के गुण का गान—
गोविन्दलीलामृत (१३/२९) में शारिका
के प्रति शुक के वचन—

**सौन्दर्यं ललनालिधैर्यदलनं लीला रमास्तम्भिनी**
**वीर्यं कन्दुकिताद्रिवर्यममलाः पारे परार्द्धं गुणाः।**
**शीलं सर्वजनानुरञ्जनमहो यस्यायमस्मत्प्रभुर्विश्वं**
**विश्वजनीनकीर्तिरवतात् कृष्णो जगन्मोहनः॥२१०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१०। श्रीशुक ने कहा,—जिनका सौन्दर्य रमणियों के धैर्य का हरण करता है, जिनकी लीला लक्ष्मीदेवी को स्तम्भित (आश्चर्यचकित) करती है, जिनका बल गोवर्धन पर्वत को गेंद की भाँति खेलने की साम्रगी बना देता है, जिनके अमल गुण परार्द्धातीत (अनन्त) हैं, जिनकी सुशीलता सभी का अनुरञ्जन (मनोरञ्जन) करती है, वे मेरे प्रभु जगतवासियों के कीर्ति स्वरूप जगत् को मोहित करने वाले कृष्ण विश्व का पालन करें।

**अनुभाष्य**

२१०। यस्य (कृष्णस्य) सौन्दर्य (मनोहररूप) ललनालि धैर्य-दलनं (ललनालीनां ब्रजाङ्गनासमूहानां धैर्य दलयितुं शीलं यस्य तत्), यस्य लीला (चिद्विलासमयी क्रीड़ा) रमा-स्तम्भिनी (रमां स्तम्भयितुं क्षोभयितुं शीलं यस्याः सा), यस्य वीर्यं (पराक्रमः), कन्दुकिताद्रिवर्यं (कन्दुकितः कन्दुकीकृतः अद्रिवर्यः गिरिराजः गोवर्धनः येन तत्), यस्य पारे-परार्द्धं (परार्द्धस्य पारं गताः अपरिमेयाः इत्यर्थः) अमलाः (दोषरहिताः) गुणाः, अहो यस्य शीलं (चरित) सर्व-जनानुरञ्जनम् (सर्वेषां जनानां भक्तानाम् अनुरञ्जनम् आनन्द विधायकम्) सः अयम् अस्मत्प्रभुः (मादृश-दासानाम् एकगतिः) विश्वजनीनकीर्त्तिः (सर्वजनानां हिताय कीर्तिः यशः यस्य सः) जगन्मोहनः (भुवन-सुन्दरः) कृष्णः विश्वम् अवतात् (रक्षतु)।

**शुक-मुखे शुनि' तबे कृष्णेर वर्णन।**
**शरिका पड़ये तबे राधिका-वर्णन॥२११॥**

**२११। प० अनु०—**शुक के मुख से श्रीकृष्ण का वर्णन सुनकर शारी श्रीमती राधिका के गुणों का वर्णन करने लगी—।

शरिका के द्वारा राधिका का गुण-गान—
गोविन्दलीलामृत (१३/३०) में शुक
के प्रति शरिका के वचन—

**श्रीराधिकायाः प्रियता स्वरूपता**
**सुशीलता नर्त्तनगानचातुरी।**
**गुणालिसम्पत् कविता चराजते**
**जगन्मनोमोहन-चित्तमोहिनी॥२१२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१२। शारी ने कहा,—श्रीमती राधिका की प्रियता, स्वरूपता, सुशीलता, नृत्य और गान की चतुरता, कवित्व आदि गुण समूह जगत् के मन को मोह लेने वाले कृष्ण के चित को विमोहित कर देने वाले बनकर शोभा पा रहे हैं।

**अनुभाष्य**

२१२। श्रीराधिकायाः प्रियता (प्रेम), स्वरूपता (असाधारण सौन्दर्यम्, स्वम् आत्मानं रूप्यते निरूप्यते येन तत् महाभावस्वरूपम् वा), सुशीलता (शोभनं शीलं सुचरित) नर्त्तन-गानचातुरी (नर्त्तनं गानञ्च तयोः चातुरी नैपुण्यं वैदग्ध्यं वा) गुणालि-सम्पत्

(गुणानां आली श्रेणी, सैव सम्पत्तिः), कविता (कवित्व),—सर्वा च जगन्मनोमोहन-चितमोहिनी (जगन्मनोमोहनस्य भुवनमोहनस्य कृष्णस्य मनोमोहिनी आनन्दिनी एव) राजते (विराजते)।

**पुनः शुक कहे,—कृष्ण 'मदन मोहन'।**
**तबे आर श्लोक शुक करिल पठन॥२१३॥**

**२१३। प० अनु०—**पुनः शुक ने कहा—कृष्ण तो मदनमोहन हैं, तब शुक ने अन्य एक श्लोक पढ़कर सुनाया—।

शुक का गान,—कृष्ण ही 'मदनमोहन'—
गोविन्दलीलामृत (१३/३१) में शारिका
के प्रति शुक के वचन—

**वंशीधारी जगन्नारी-चितहारी स शारिके।**
**विहारी गोपनारीभिर्जीयान्मदनमोहनः॥२१४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१४। शुक (तोते) ने कहा,—हे शरिके, वे वंशीधारी जगत् की नारियों के चित का हरण करने वाले, गोप नारियों के साथ विहार करने वाले मदन मोहन जययुक्त हो।

**अनुभाष्य**

२१४। हे शरिके, वंशीधारी (मुरलीधरः) जगन्नारीचितहारी (जगतां चतुर्दशभुवनानां नारीणां चितचौरः) गोपनारीभिः (ब्रजाङ्गनाभिः सार्द्धं) विहारी (केलिरतः) सः (प्रसिद्धः) मदनमोहनः जीयात् (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम्)।

**पुनः शारी कहे शुके करि' परिहास।**
**ताहा शुनि' प्रभुर हैल विस्मय-प्रेमोल्लास॥२१५॥**

**२१५। प० अनु०—**पुनः शारी शुक का मजाक उड़ाते हुए कुछ कहने लगी, जिसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु आश्चर्यचकित रह गये तथा उन्हें प्रेमोल्लास हुआ।

शारी का गान,—कृष्ण के मदन मोहन होने का
मुख्य कारण श्रीराधा—
गोविन्दलीलामृत (१३/३२) में शुक
के प्रति शरिका के वचन—

**राधा-सङ्गे यदा भाति, तदा 'मदनमोहनः'।**
**अन्यथा विश्वमोहोऽपि स्वयं 'मदनमोहितः'॥२१६॥**

अमृतप्रवाह भाष्य

२१६। शारी ने परिहास करते हुए उत्तर दिया,—कृष्ण जब राधा के साथ शोभा पाते हैं, तभी वे 'मदनमोहन' हैं, श्रीराधा के साथ में नही रहने पर विश्व को मोहित करने वाले होने पर भी वे स्वयं ही मदन के द्वारा मोहित होते हैं।

**अनुभाष्य**

२१६। हे शुक, यदा कृष्णः राधासङ्गे भाति (विराजते), तदा (एव) स कृष्णः—'मदनमोहनः', अन्यथा (राधा-सङ्ग-रहितः सन् स कृष्णः) स्वयम् (एव) विश्वमोहः (विश्वमोहनः) अपि स्वयं मदन मोहितः (मदनेन कन्दर्पेण मोहितः—''इतस्ततः-स्तामनुसृत्य राधिकामनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः इति न्यायात्)।

मयूर के दर्शन से प्रभु को कृष्ण के
रूप की स्मृति और मूर्च्छा—

**शुक-शारी उड़ि' पुनः गेल वृक्षडाले।**
**मयूरेर नृत्य प्रभु देखे कुतूहले॥२१७॥**

२१७। प० अनु०—**शुक और शारी उड़कर पुनः वृक्ष की डाल पर जाकर बैठ गये। श्रीमन्महाप्रभु कौतुहलपूर्वक मयूर के नृत्य को देखने लगे।**

**मयूरेर कण्ठ देखि' प्रभुर कृष्णकान्ति-स्मृति हैल।**
**प्रेमावेशे महाप्रभु भूमिते पड़िल॥२१८॥**

२१८। प० अनु०—मयूर के कण्ठ को देखकर श्रीमन्महाप्रभु को कृष्ण की अंगकान्ति की स्मृति हो आयी। प्रेम के आवेश में श्रीमन्महाप्रभु भूमि पर गिर पड़े।

भट्टाचार्य के साथ ब्राह्मण के द्वारा प्रभु की मूर्च्छा को भंग करने की चेष्टा—

**प्रभुरे मूर्च्छित देखि' सेइ त' ब्राह्मण।**
**भट्टाचार्य-सङ्गे करे प्रभुर सन्तर्पण॥२१९॥**

**२१९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को मूर्च्छित देखकर वह ब्राह्मण बलभद्र भट्टाचार्य के साथ प्रभु को स्वस्थ करने में लग गये।

**अनुभाष्य**

**२१९।** सन्तर्पण,—अति यत्न पूर्वक सेवा।

*सप्तदश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

**आस्ते-व्यस्ते महाप्रभुर लञा बहिर्वास।**
**जलसेक करे अङ्गे, वस्त्रेर वातास॥२२०॥**

**२२०। प० अनु०—**अतिशीघ्र श्रीमन्महाप्रभु के बहिर्वास वस्त्र को लेकर उसे भिगोकर वे श्रीमन्महाप्रभु के अङ्गों पर जल छिड़कने लगे तथा वस्त्र से हवा करने लगे।

प्रभु के कान में कृष्णनाम का उच्चारण, प्रभु में चेतनता और लोट-पोट खाना—

**प्रभुर-कर्णे कृष्णनाम कहे उच्च करि'।**
**चेतन पाञा प्रभु जा' न गड़ागड़ि॥२२१॥**

**२२१। प० अनु०—**वे श्रीमन्महाप्रभु के कान में उच्च स्वर से कृष्णनाम करने लगे। चेतनता प्राप्त करने पर श्रीमन्महाप्रभु भूमि पर लोट-पोट खाने लगे।

भट्ट के प्रयत्न से प्रभु का स्वस्थ होना—

**कण्टक-दुर्गम वने अङ्ग क्षत हैल।**
**भट्टाचार्य कोले करि' प्रभुरे सुस्थ कैल॥२२२॥**

**२२२। प० अनु०—**काँटो से भरे दुर्गम वन में श्रीमन्महाप्रभु के अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। बलभद्र भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु को गोद में लेकर उन्हें स्वस्थ किया।

प्रेमावेश में प्रभु द्वारा हरिध्वनि—

**कृष्णावेशे प्रभुर प्रेमे गरगर मन।**
**'बोल, 'बोल' करि' 'उठि' करेन नर्त्तन॥२२३॥**

**२२३। प० अनु०—**कृष्ण के आवेश में श्रीमन्महाप्रभु का मन प्रेम में उत्कण्ठित हो रहा था, वह बोलो, बोलो कहते हुए उठकर नृत्य करने लगे।

कृष्णनामकीर्त्तन, प्रभु की यात्रा—

**भट्टाचार्य, सेइ विप्र 'कृष्णनाम' गाय।**
**नाचिते नाचिते पथे प्रभु चलि' जाय॥२२४॥**

**२२४। प० अनु०—**बलभद्र भट्टाचार्य तथा वह ब्राह्मण—दोनों कृष्णनाम गाने लगे तथा श्रीमन्महाप्रभु नाचते-नाचते मार्ग में चलते जा रहे थे।

ब्राह्मण में विस्मय और प्रभु के लिये चिन्ता—

**प्रभुर प्रेमावेश देखि' ब्राह्मण—विस्मित।**
**प्रभुर रक्षा लागि' विप्र हइला चिन्तित॥२२५॥**

**२२५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के प्रेमावेश को देखकर ब्राह्मण विस्मित हो गया। श्रीमन्महाप्रभु की रक्षा के लिये ब्राह्मण चिन्तित हो गया।

पुरी से वृन्दावन की यात्रा के पथ में अत्यधिक प्रेमावेश—

**नीलाचले छिला जैछे प्रेमावेश मन।**
**वृन्दावन जाइते पथे हैल शत-गुण॥२२६॥**

**२२६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु का मन नीलाचल में जैसे प्रेम के आवेश में रहता था, वृन्दावन जाने के पथ में वह सौ-गुणा अधिक प्रेम के आवेश में डूब गया।

उसकी अपेक्षा मथुरा के दर्शन से, उसकी अपेक्षा वृन्दावन के भ्रमण में अधिकतर प्रेम—

**सहस्रगुण प्रेम बाड़े मथुरा-दरशने।**
**लक्षगुण प्रेम बाड़े, भ्रमेण जबे वने॥२२७॥**

**२२७। प॰अनु॰—**मथुरा के दर्शन से उनका प्रेम हजार गुणा बढ़ गया तथा जब श्रीमन्महाप्रभु वन में भ्रमण कर रहे थे तब वह प्रेम लाख गुणा बढ़ गया।

साक्षात वृन्दावन में आकर अनुक्षण
गाढ़-कृष्णप्रेम में निमग्न—

**अन्य-देशे प्रेम उछले 'वृन्दावन'-नामे।**
**साक्षात् भ्रमये एबे सेइ वृन्दावने॥२२८॥**

**२२८। प॰ अनु॰—**अन्य स्थान पर जिस वृन्दावन के नाम से प्रेम उमड़ पड़ता था, श्रीमन्महाप्रभु अब साक्षात् उस वृन्दावन में भ्रमण कर रहे हैं।

अभ्यासवशतः दैनिक कृत्य आदि समापन—

**प्रेमे गरगर मन रात्रि-दिवसे।**
**स्नान-भिक्षादि-निर्वाह करेन अभ्यासे॥२२९॥**

**२२९। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु का मन रात-दिन प्रेम में निमग्न था। स्नान-भिक्षा आदि का निर्वाह तो वे अभ्यासवशतः कर रहे थे।

प्रभु का यह प्रेम अवर्णनीय—

**एइमत प्रेम, यावत् भ्रमिल 'बार' वन।**
**एकत्र लिखिलुँ, सर्वत्र ना जाय वर्णन॥२३०॥**

**२३०। प॰ अनु॰—**जब तक श्रीमन्महाप्रभु बारह वनों का भ्रमण कर रहे थे, उनमें ऐसा ही प्रेम प्रकाशित हो रहा था। मैंने एक साथ ही उस सबको लिख दिया है, पृथक-पृथक करके उसका सम्पूर्ण विवरण प्रदान करना असम्भव है।

भगवान् शेष के लिये भी प्रभु के वृन्दावन में
भ्रमण करते समय प्रेम के वर्णन में असमर्थता—

**वृन्दावने हैल प्रभुर जतेक प्रेमेर विकार।**
**कोटि-ग्रन्थे 'अनन्त' लिखेन ताहार विस्तार॥२३१॥**

इस परिच्छेद में उसका
दिग्दर्शन मात्र ही वर्णित—

**तबु लिखिबारे नारे तार एक कण।**
**उद्देश करिते करि दिग् दरशन॥२३२॥**

**२३१-२३२। प॰ अनु॰—**वृन्दावन में श्रीमन्महाप्रभु में जितना प्रेम का विकार हुआ, करोड़ो-करोड़ो ग्रन्थों में अनन्तदेव उसका विस्तारपूर्वक लिखकर वर्णन करते है, किन्तु तब भी वे उसके एक कण को भी नहीं लिख पाते। इसलिए मैं केवल उसका इङ्गित प्रदान करने के लिये दिगदर्शन ही कर रहा हूँ।

कृष्णप्रीति की गाढ़ता के परिमाण के
अनुसार ही कृष्णचैतन्य की लीला
की बाढ़ का स्पर्श—

**जगत् भासिल चैतन्यलीलार पाथारे।**
**जाँर जत शक्ति, तत पाथारे साँतारे॥२३३॥**

**२३३। प॰ अनु॰—**जगत् श्री चैतन्यलीला की बाढ़ में डूब गया। जिनमें जितनी शक्ति है, वे उस बाढ़ के जल में उतना ही तैरते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२३३। पाथार,—जल की वृद्धि करने वाली बाढ़।

*सप्तदश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥२३४॥**

*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्यखण्ड में श्रीवृन्दावनगमन नामक सप्तदश-परिच्छेद समाप्त।*

**२३४। प॰ अनु॰—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य-चरितामृत का गान कर रहा है।

❋ ❋ ❋

# अष्टादश परिच्छेद

**कथासार—**आरिट-ग्राम में राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड का आविष्कार करके महाप्रभु ने गोवर्द्धन में 'हरिदेव' के दर्शन किये। गोवर्द्धन के ऊपर चढ़कर गोपाल का दर्शन नहीं करेंगे, इसलिए अन्नकूटग्राम (अन्यौर) से म्लेच्छों के भय के 'छल' से बाहर निकलकर गोपाल गाठोली ग्राम में आ गये। वहाँ जाकर महाप्रभु ने उनके दर्शन किए। भक्त वर श्रीरूप गोस्वामी को कृपापूर्वक दर्शन देने के लिये गोपाल उसके बहुत दिनों के बाद मथुरा में विट्ठलेश्वर के मन्दिर में आकर 'एक मास' तक थे—इस प्रसङ्ग को कविराज गोस्वामी ने इसी स्थान पर लिखा है। महाप्रभु ने नन्दीश्वर, पावन-सरोवर, शेषशायी, खेलातीर्थ, भाण्डीर-वन, भद्रवन, लौहवन, महावन इत्यादि का दर्शन किया एवं गोकुल का दर्शन करके मथुरा लौट आये। अक्रूर घाट में रहकर प्रतिदिन वृन्दावन में जाकर कालीय-ह्रद, द्वादशदित्य-घाट, केशीघाट, रासस्थली, चीरघाट, इमलीतला इत्यादि दर्शन करने लगे। कालीय ह्रद में रात्रि में मछली को पकड़ने वाले मछुवारे को 'कृष्ण' समझकर बहुत से लोग आकर कृष्ण को ढूँढ़ने लगे, किन्तु महाप्रभु के दर्शन करके विवर्त्तबुद्धि (भ्रमपूर्ण अवस्था) के दूर होने पर सभी को कृष्ण की स्फूर्ति होने पर प्रभु ने सन्यासी अर्थात् जीव के चित् कण होने को स्थापित किया। अक्रूर घाट में बहुत समय तक डूबे रहने के कारण बलभद्र भट्टाचार्य ने महाप्रभु को व्रजमण्डल से प्रयाग ले जाने का निश्चय किया। 'सोरोक्षेत्र' में गङ्गास्नान करके प्रयाग जायेंगे' उन्होंने ऐसा सोचकर यात्रा की। मार्ग में किसी ग्राम में पाठान घुड़-सवारों को साथ लेकर आते-आते बिजली खाँ ने प्रभु को प्रेमावेश में मूर्च्छित देखा। 'उनके साथी उन्हें धतूरा खिलाकर मारकर उनका धन ले रहे हैं, ऐसा कहकर उसने प्रभु के साथियों को बाँध दिया। प्रभु के प्रेमावेश के भङ्ग होने पर बिजली खाँ के दल के एक म्लेच्छ आचार्य के साथ कथोपकथन और शास्त्र विचार होने पर प्रभु ने 'कुराण-शास्त्र' में से ही 'कृष्णभक्ति को स्थापित किया। बिजली खाँ और उसके अनुगत घुड़ सवार महाप्रभु के चरणों का आश्रय करके 'कृष्ण-भक्त' बन गये। वहाँ पर आज भी 'पाठान-वैष्णवों का ग्राम' नामक एक ग्राम देदीप्यमान है। सोरो में गङ्गा स्नान करके प्रभु त्रिवेणी में पहुँच गये।

(अ. प्रः भाः)

वृन्दावन में भ्रमण करने वाले गौरसुन्दर—

**वृन्दावने स्थिरचरान्नन्दयन् स्वावलोकनैः।**
**आत्मानञ्च तदालोकाद्गौराङ्गः परितोऽभ्रमत॥१॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१। वृन्दावन में अपने दर्शन देकर स्थावर-जङ्गम को आनन्द प्रदान करके एवं उनके दर्शन करके, स्वयं आनन्दित होकर गौराङ्ग चन्द्र चारों ओर भ्रमण करने लगे।

### अनुभाष्य

१। गौराङ्गः वृन्दावने स्वावलोकनैः (स्वस्य अवलोकनैः चक्षुर्भिः) स्थिरचरान् (स्थावरान् जङ्गमांश्च) तदालोकात् (स्थावरादीनाम् अवलोकं

प्राप्य) आत्मानञ्च नन्दयन् परितः (इतस्ततः) अभ्रमत्।

**जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प० अनु०—**श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो। श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

आरिट्-ग्राम में आकर बाह्यदशा की प्राप्ति—
**एइमत महाप्रभु नाचिते नाचिते।**
**'आरिट'-ग्रामे आसि' 'बाह्य' हैल आचम्बिते॥३॥**

**३। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर नाचते-नाचते आरिट ग्राम में पहुँचे। वहाँ पर आकर उन्हें अचानक बाह्यज्ञान हो उठा।

### अनुभाष्य

३। आरिट—'अरिष्ट'-ग्राम, वर्त्तमान समय में 'अरिङ्ग' के नाम से जाना जाता है।

वहाँ राधाकुण्ड के विषय में जिज्ञासा, सभी उस विषय में अनजान—
**अरिष्टे राधाकुण्ड-वार्त्ता पुछे लोक-स्थाने।**
**केह नाहि कहे, सङ्गेर ब्राह्मण ना जाने॥४॥**

**४। प० अनु०—**आरिट ग्राम में श्रीमन्महाप्रभु ने लोगों से राधाकुण्ड के विषय में पूछा। लोग राधाकुण्ड के विषय में कुछ भी नहीं बता पाये, श्रीमन्महाप्रभु के साथ में चलने वाला ब्राह्मण भी राधाकुण्ड के विषय में कुछ भी नहीं जानता था।

राधा भाव और कान्ति से युक्त गौर द्वारा अन्तर्हित (लुप्त) श्रीराधाकुण्ड का आविष्कार—
**तीर्थ 'लुप्त' जानि', प्रभु सर्वज्ञ भगवान्।**
दुइ धान्यक्षेत्रे अल्पजले कैला स्नान॥५॥

**५। प० अनु०—**यह जानकर कि राधाकुण्ड लुप्त हो गया है, श्रीमन्महाप्रभु जो कि सर्वज्ञ भगवान् हैं, उन्होंने धान के दो खेतों में जहाँ पर अल्प जल था, उनमें स्नान किया।

### अमृतप्रवाह भाष्य

३-५। आरिटग्राम,—जहाँ अरिष्टासुर का वध हुआ था, वहाँ आकर श्रीमन्महाप्रभु ने 'राधाकुण्ड' कहाँ है'?—यह बात पूछी ; किन्तु कोई भी नहीं बता पाया एवं साथ में रहने वाला ब्राह्मण भी, इस विषय में नहीं जानता था। उससे वह तीर्थ 'लुप्त' हो गया है, यह जानकर निकट में स्थित दो धान के खेतों में जो थोड़ा-थोड़ा जल था, उनमें सर्वज्ञ भगवान् ने स्नान किया। अतएव यह धान के खेत ही राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड हैं, यह सूचित हुआ।

ग्रामवासियों का विस्मय—
**देखि' सब ग्राम्य-लोकेर विस्मय हैल मन।**
**प्रेमे प्रभु करे राधा-कुण्डेर स्तवन॥६॥**

**६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को उन दो धान के खेतों में स्नान करते देखकर सभी ग्रामवासियों का मन आश्चर्यचकित रह गया। श्रीमन्महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर राधाकुण्ड का स्तव करने लगे।

प्रभु द्वारा श्रीराधा से अभिन्न श्रीराधाकुण्ड की महिमा का स्तव—
**''सब गोपी हैते राधा कृष्णेर प्रेयसी।**
**तैछे राधाकुण्ड—प्रिय, 'प्रियार सरसी'॥७॥**

**७। प० अनु०—**सब गोपियों में से श्रीमती राधारानी जिस प्रकार श्रीकृष्ण की प्रेयसी हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण को अपनी प्रिया श्रीमती राधारानी का कुण्ड राधाकुण्ड प्रिय हैं।

पद्म पुराण-वाक्य—
**यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।**
**सर्वगोपीषु सेवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥८॥**

८। श्रीराधा जिस प्रकार श्रीकृष्ण की प्रिया हैं, राधाकुण्ड भी उसी प्रकार उनका प्रिय स्थान है; सभी गोपियों में श्रीराधा ही श्रीकृष्ण की अत्यन्त वल्लभा हैं।

**अनुभाष्य**

८। आदि चतुर्थ परिच्छेद २१५ संख्या द्रष्टव्य।

**जेइ कुण्डे नित्य कृष्ण राधिकार सङ्गे।**
**जले जलकेलि करे, तीरे रास-रङ्गे॥९॥**
**सेइ कुण्डे जेइ एकबार करे स्नान।**
**ताँरे राधा-सम 'प्रेम' कृष्ण करे दान॥१०॥**
**कुण्डेर 'माधुरी'—जेन राधार 'मधुरिमा'।**
**कुण्डेर 'महिमा'—जेन राधार 'महिमा'॥११॥**

**९-११। प॰ अनु॰—**जिस कुण्ड में नित्य श्रीकृष्ण श्रीमती राधा रानी के साथ जल में जलकेलि करते हैं तथा जिस कुण्ड के तट पर आनन्दपूर्वक रास लीला करते हैं, उसी कुण्ड में जो एकबार स्नान करता है, श्रीकृष्ण उन्हें श्री राधा जी के समान प्रेम प्रदान करते हैं। राधाकुण्ड की माधुरी ऐसी है, जैसी राधा रानी की मधुरिमा है तथा राधाकुण्ड की महिमा भी वैसी है, जैसी श्रीमती राधारानी की महिमा है।

श्रीराधाकुण्ड की महिमा और माधुर्य अवर्णनीय—श्रीगोविन्दलीलामृत (७/१०२) में ग्रन्थकार के वचन—

**श्रीराधेव हरेस्तदीय-सरसी प्रेष्ठाद्भुतैः स्वैर्गुणै-**
**र्यस्यां श्रीयुत्-माधवेन्दुरनिशं प्रीत्या तया क्रीड़ति।**
**प्रेमास्मिन् वत राधिकेव लभते यस्यां सकृत् स्नानकृत्**
**तस्या वै महिमा तथा मधुरिमा केनास्तु वर्ण्यः क्षितौ॥१२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२। वह राधाकुण्ड-सरोवर श्रीराधा की भाँति अपने गुणों के कारण कृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। उस कुण्ड में श्रीकृष्णचन्द्र सदैव श्रीराधा के साथ अत्यधिक प्रीति पूर्वक क्रीड़ा (लीला) करते हैं। उस कुण्ड में एकबार स्नान करने वाला कृष्ण के प्रति श्रीराधिका जैसा प्रेम प्राप्त करता है ; अतएव इस जगत् में श्रीराधाकुण्ड की महिमा और मधुरिमा का कौन वर्णन कर सकता है?

**अनुभाष्य**

१२। श्रीराधा इव तदीय-सरसी (राधाकुण्ड) स्वैः अद्भुतैः (अपूर्वैः) गुणैः हरेः (कृष्णस्य) प्रेष्ठा (परमप्रीतिप्रदा)—यस्यां (सरसि) श्रीयुतमाधवेन्दुः (श्रीकृष्णचन्द्रः) तथा (राधया सह) प्रीत्या अनिशम् (अविरत) क्रीड़ति, वत (अहो इति विस्मयार्थे) यस्यां (सरस्या) सकृत (वारमेक) स्नानकृत (अवगाहनकारी) अस्मिन् (कृष्णे) राधिका इव प्रेमा लभते, तस्याः (राधा-सरस्याः) महिमा तथा मधुरिमा च क्षितौ (धरायां) केन (जनेन) वर्ण्यः (वर्णनीयः—न कोऽपि निर्णेतुः समर्थः)।

प्रेमावेश में प्रभु द्वारा स्तुति—

**एइमत स्तुति करे प्रेमाविष्ट हञा।**
**तीरे नृत्य करे कुण्डलीला स्मरिया॥१३॥**

**१३। प॰ अनु॰—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर राधा कुण्ड की स्तुति कर रहे थे तथा कुण्ड की लीला का स्मरण करके उसके तट पर नृत्य कर रहे थे।

कुण्ड की मिट्टी से प्रभु द्वारा तिलक लगाना, कुछ साथ में लेना—

**कुण्डेर मृतिका लञा तिलक करिल।**
**भट्टाचार्य-द्वारा मृतिका सङ्गे करि' लैल॥१४॥**

**१४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कुण्ड की मिट्टी को लेकर तिलक लगाया तथा बलभद्र भट्टाचार्य के द्वारा उन्होंने कुण्ड की मिट्टी को साथ में भी ले लिया।

कुसुम-सरोवर में कृष्ण से अभिन्न
गोवर्द्धन के दर्शन से प्रेम—

**तबे चलि' आइला प्रभु 'सुमनः-सरोवर'।**
**ताँहा 'गोवर्धन देखि' प्रभु हइला विह्वल॥१५॥**
**गोवर्धन देखि' प्रभु हइला दण्डवत्।**
**'एक शिला' आलिङ्गिया हइला उन्मत्त॥१६॥**

**१५-१६। प० अनु०—**तब चलते-चलते श्री मन्महाप्रभु सुमन (कुसुम) सरोवर पर आ गये तथा वहाँ पर गोवर्द्धन को देखकर विह्वल हो गये। गोवर्द्धन को देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने दण्डवत किया। गिरिराज की एक शिला को आलिङ्गन करके श्रीमन्महाप्रभु उन्मत्त हो गये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१५।** सुमनः-सरोवर,—कुसुम सरोवर।

गोवर्धन-ग्राम में हरिदेव-दर्शन—

**प्रेमे मत्त चलि' आइला गोवर्द्धन-ग्राम।**
**'हरिदेव' देखि' ताँहा हइला प्रणाम॥१७॥**
**'मथुरा'-पद्मेर पश्चिमदले जाँर वास।**
**'हरिदेव' नारायण—आदि-परकाश॥१८॥**
**हरिदेव-आगे नाचे प्रेमे मत्त हञा।**
**सब लोक देखिते आइल आश्चर्य शुनिया॥१९॥**

**१७-१९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु प्रेम में मत्त होकर चलते-चलते गोवर्धन ग्राम में आ गये तथा वहाँ पर श्रीहरिदेव को देखकर उन्होंने प्रणाम किया। वे श्रीहरिदेव मथुरा रूपी कमल के पश्चिम दल पर वास करते है तथा वे नारायण के भी आदि अर्थात् उनके भी प्रकाश के मूल कारण है। श्रीमन्महाप्रभु प्रेम में मत्त होकर श्री हरिदेव के आगे नृत्य करने लगे, सभी लोग श्रीमन्महाप्रभु के आश्चर्यपूर्ण रूप-नृत्य आदि के विषय में सुनकर उन्हें देखने के लिये आये।

प्रभु के दर्शन से सभी में विस्मय; हरिदेव के
सेवकों द्वारा प्रभु की पूजा—

**प्रभु-प्रेम-सौन्दर्य देखि' लोके चमत्कार।**
**हरिदेवेर भृत्य प्रभुर करिल सत्कार॥२०॥**

**२०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के प्रेम तथा सौन्दर्य को देखकर लोग चमत्कृत हो उठे। श्री हरिदेव के सेवकों ने श्रीमन्महाप्रभु का आदर-सत्कार किया।

ब्रह्मकुण्ड में बलभद्र के द्वारा रन्धन,
प्रभु का स्नान और आहार—

**भट्टाचार्य 'ब्रह्मकुण्डे' पाकयात्रा कैल।**
**ब्रह्मकुण्डे स्नान करि' प्रभु भिक्षा कैल॥२१॥**

**२१। प० अनु०—**श्रीबलभद्र भट्टाचार्य ने ब्रह्म-कुण्ड में आनन्दपूर्वक रन्धन कार्य किया तथा श्रीमन्महाप्रभु ने ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके भोजन किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**२१।** पाक,—अन्नपाक (चावल, सब्जी इत्यादि बनाना)।

हरिदेव मन्दिर में रात्रि व्यतीत करना और
गोवर्द्धन-स्थित गोपाल के दर्शन की चिन्ता—

**से-रात्रि रहिला हरिदेवेर मन्दिरे।**
**रात्र्ये महाप्रभु करे मनेते विचारे॥२२॥**
**'गोवर्धन-उपरे आमि कभु ना चड़िब।**
**गोपाल-रायेर दरशन केमने पाइब?'२३॥**

**२२-२३। प० अनु०—**उस रात श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदेव के मन्दिर में ही रहे। रात्रि के समय श्रीमन्महाप्रभु ने मन में विचार किया कि मैं गोवर्द्धन के ऊपर तो कभी भी नहीं चढ़ूँगा, तब फिर मुझे गोपाल-राय के दर्शन किस प्रकार प्राप्त होंगे!!

म्लेच्छ के भय के छल से गोपाल-ठाकुर द्वारा प्रभु को दर्शन-प्रदान—

**एत मने करि' प्रभु मौन करि' रहिला।**
**जानिया गोपाल म्लेच्छभय-भङ्गी उठाइला॥२४॥**

**२४। प० अनु०—**मन-मन में ऐसा विचार करके श्रीमन्महाप्रभु मौन धारण करके लेटे रहे। श्रीमन्महाप्रभु के मन की बात को जानकर गोपाल ने सेवकों के समक्ष अन्य लोगों के द्वारा म्लेच्छों के भय की भङ्गिमा दिखलायी।

ग्रन्थकार-कृत श्लोक—

**अनारुरुक्षवे शैलं स्वस्मै भक्ताभिमानिने।**
**अवरुह्य गिरेः कृष्णो गौराय स्वमदर्शयत्॥२५॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

२५। 'गोवर्द्धन पर्वत पर चढ़ूँगा नहीं'—ऐसी प्रतिज्ञा से युक्त, एवं 'मैं कृष्णभक्त हूँ'—इस अभिमान से युक्त गौरचन्द्र को गोपाल ने स्वयं गोवर्धन से उतरकर दर्शन दिये।

### अनुभाष्य

२५। गिरेः (गोवर्धन शैलस्य उच्चप्रदेशात्) अवरुह्य (अवतीर्य) शैलं (गोवर्द्धन गिरिम्) अनारुरुक्षवे (आरोढुमनिच्छवे) भक्ताभिमानिने (भजनीय वस्तुभेदेऽपि आत्मानं सेवकतया मन्यमानाय) स्वस्मै (आत्मने) गौराय (स्वरूपविग्रहाय कृष्णस्वरूपाय) स्वम् (आत्मानम्) अदर्शयत् (प्रदर्शयामास)।

म्लेच्छों के दुराचार की बात को लोगों में फैलाकर गोपाल के द्वारा नीचे गाँठोलि-ग्राम में अवतरण—

**'अन्नकूट'-नामे ग्रामे गोपालेर स्थिति।**
**राजपूत-लोकेर सेइ ग्रामे वसति॥२६॥**

२६। **प० अनु०—**गोपालराय 'अन्नकूट' नामक ग्राम में विराजमान थे तथा उस ग्राम में राजपूत लोगों का वास था।

### अनुभाष्य

२६। भक्तिरत्नाकर की पञ्चम तरङ्ग में,—"गोपगोपी भुञ्जायेण कौतुक अपार। एइ हेतु 'आनियोर' नाम से इहार॥ अन्नकूट-स्थान एइ देख, श्रीनिवास। ए स्थान दर्शने हय पूर्ण अभिलाष॥" स्तवावली के व्रजविलास स्तव में—"व्रजेन्द्रवर्यार्पितभोगमुच्चैर्धृत्वा बृहत् कायमघारिरुर्तकः। वरेण्यां राधां हलयन् विभुङ्क्ते यत्रान्नकूटं तदहं प्रपद्ये॥" "कुण्डेर निकट देख निविड़-कानन। एथाई 'गोपाल' छिला हञा सङ्गोपन॥"

**एकजन आसि' रात्र्ये ग्रामीके बलिल।**
**"तोमार ग्राम मारिते तुरुक-धारी साजिल॥२७॥**

२७ **प० अनु०—**एक व्यक्ति ने रात्रि के समय वहाँ पर आकर ग्रामवासियों को कहा कि तुम्हारे ग्राम के लोगों को मारने के लिये पाठान लोग तैयारी कर रहे हैं।

### अमृतप्रवाह भाष्य

२७। **तुरुक,—**मुसलमान गुरालगाण, (तुर्की अथवा पाठान) सेना।

### अनुभाष्य

२७। **ग्रामीके—**ग्राम वासियों को; तुरुक-धारी,—तुर्की-वेश धारण करने वाली घोड़े पर सवार सेना।

**आजि रात्र्ये पलाह, ना रहिह एकजन।**
**ठाकुर लञा भाग', आसिबे कालि यवन॥२८॥**

२८। **प० अनु०—**इसलिए आज रात को ही तुम सभी यहाँ से भाग जाओ, एक भी व्यक्ति यहाँ पर मत रहना, तुम लोग गोपाल ठाकुर को लेकर भाग जाओ, कल यवन लोग यहाँ पर आयेगें।

**शुनिया ग्रामेर लोक चिन्तित हइल।**
**प्रथमे गोपाल लञा गाँठोलि-ग्रामे थुइल॥२९॥**

**२९। प० अनु०—**उस व्यक्ति की बात सुनकर ग्राम के लोग चिन्तित हो गये। उन्होंने सबसे पहले गोपाल राय को ले जाकर गाँठोलि ग्राम में छिपा दिया।

**विप्रगृहे गोपालेर निभृते सेवन।**
**ग्राम उजाड़ हैल, पलाइल सर्वजन॥३०॥**

३०। **प० अनु०—**एक ब्राह्मण के घर पर एकान्त में गोपाल राय की सेवा होने लगी। ग्रामवासी सभी भाग गये तथा ग्राम उजड़ गया।

**ऐछे म्लेच्छभये गोपाल भागे बारे-बारे।**
**मन्दिर छाड़ि' कुञ्जे रहे, किबा ग्रामान्तरे॥३१॥**

३१। **प० अनु०—**गोपालदेव ऐसे ही म्लेच्छों के भय से बार-बार एक स्थान से दूसरे स्थान पर भाग रहे थे। मन्दिर को छोड़कर कभी कुञ्ज में रहते थे तो कभी किसी अन्य ग्राम में।

मानस-गङ्गा में स्नान करने के बाद गोवर्द्धन की परिक्रमा—

**प्रातःकाले प्रभु 'मानसगङ्गा'य करि' स्नान।**
**गोवर्द्धन-परिक्रमाय करिला प्रयाण॥३२॥**

३२। **प० अनु०—**प्रातःकाल श्रीमन्महाप्रभु मानस गङ्गा में स्नान करके गोवर्द्धन की परिक्रमा करने के लिये चल पड़े।

गोवर्द्धन के दर्शन से प्रेमावेश—

**गोवर्द्धन देखि' प्रभु प्रेमाविष्ट हञा।**
**नाचिते नाचिते चलिला श्लोक पड़िया॥३३॥**

३३। **प० अनु०—**गोवर्द्धन को देखकर श्रीमन्महाप्रभु प्रेम में आविष्ट हो गये तथा वे नाचते-नाचते श्लोक का उच्चारण करते हुए चलने लगे—।

श्रीगोवर्धन-स्तुति—
श्रीमद्भागवत (१०/२१/१८) में—

**हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो**
**यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।**
**मानं तनोति सह-गोगणयोस्तयोर्यत्**
**पानीय-सुयवस-कन्दर-कन्दमूलैः॥३४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३४। यह गोवर्धन पर्वत—वैष्णवप्रधान हैं, क्योंकि ये बलराम-कृष्ण के चरणों के स्पर्श के आनन्द से प्रफुल्लित होकर गैयाओं एवं गोपों के साथ राधाकृष्ण और गोप-गणों को पीने का जल और खाद्यवस्तुएँ—घास-कन्द-मूल आदि प्रदान करके उनका तर्पण कर रहे हैं।

**अनुभाष्य**

३४। व्रज में शरद्ऋतु के उपस्थित होने पर श्रीकृष्ण के द्वारा वन-वन में गैयाओं को चराते समय वंशी बजाने पर गोपियाँ कृष्ण-सङ्ग रूपी कामना से आतुर होकर कृष्ण के मन का हरण कर लेने वाली उनकी गुणावली का गान करके इधर-उधर भ्रमण करते-करते सामने अभिन्न व्रजेन्द्रनन्दन गिरिराज गोवर्धन को देखकर गा रही हैं—

हे अबलाः (सख्य), हन्त (इति हर्षे) अयम् अद्रिः (गोवर्धनः ध्रुव) हरिदासवर्यः (हरिदासानां श्रेष्ठः), यत् (यस्मात्) रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः (रामकृष्णयोः चरणस्पर्शेन प्रमोदः, तृण्याद्युद्गमनिभेन रोमहर्षदर्शनात्, यस्य तादृशः सन्) यत् (यस्मात् च) पानीय-सुयवसकन्दरकन्दमूलैः (पानीयैः सुयवसैः सुकोमलैः शोभनतृणैः कन्दरैः कन्दमूलैश्च (यथोचितम् अयम्) सहगोगणयो (गाभिः गणेन सखि समूहेन च सह वर्त्तमानयोः) तयोः (राम-कृष्णयोः) मानं (समादर) तनोति (विदधातिअतोऽयमति धन्यः इत्यर्थः)।

गोविन्द कुण्ड में स्नान और गोपाल के
वास स्थान के संवाद की प्राप्ति—

**'गोविन्दकुण्डादि'-तीर्थे प्रभु कैला स्नाने।**
**ताँहा शुनिला, गोपाल—गाँठोलि-ग्रामे॥३५॥**

**३५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने गोविन्दकुण्ड आदि तीर्थ में स्नान किया तथा उन्होंने वहीं पर सुना कि गोपाल राय गाँठोलि-ग्राम में हैं।

**अनुभाष्य**

**३५। गोविन्दकुण्ड,—**पैठा ग्राम से श्रीगोवर्धन पर्वत के ऊपर 'आनियोर'-ग्राम है। यहाँ गोविन्द और बलदेव के दो मन्दिर एवं 'गोविन्द कुण्ड' नाम का सरोवर है; किसी के मतानुसार रानी पद्मावती ने इस सरोवर की प्रतिष्ठा (स्थापना) की थी।

भक्ति रत्नाकर की पञ्चम-तरङ्ग में—''एइ श्रीगोविन्दकुण्ड महिमा अनेक। एथा इन्द्र कैल गोविन्देर अभिषेक॥'' स्तवावली के व्रजविलास स्तव में—''नीचैः प्रौढ़िभयात् स्वयं सुरपतिः पादौ विधृत्येह यैः स्वर्गङ्गासलिलैश्चकार सुरभि द्वारभिषेकोत्सवम्। गोविन्दस्य नवं गवामधिगता राज्ये स्फुटं कौतुकात् तैर्यत् प्रादूरभूत सदा स्फुरत तद्गोविन्दकुण्डं दृशोः॥'' मथुराखण्ड में—''यत्राभिषिक्तो भगवान् मघोना यदुवैरिणा। गोविन्दकुण्डं तज्जात स्नानमात्रेण मोक्षदम्॥''

**गाठोली ग्राम**—गोपालपुर अथवा बिलछुर के निकटवर्ती ग्राम। जनश्रुति यह है कि यहाँ पर व्रज-नवयुवद्वन्द्व (राधा-कृष्ण) का प्रणय ग्रन्थि रूपी बन्धन हुआ था। भक्तिरत्नाकर की (पञ्चम तरङ्ग में)—''सखी दुँहे वस्त्रे गँठि दिल सङ्गोपने। फागुया लैया केह गाँठि खुलि दिला।'' इसी कारण इस ग्राम का नाम—गाँठोली है।

गाँठोलि-ग्राम में गोपाल का दर्शन और स्तुति-नृत्य—

**सेइ ग्रामे गिया कैल गोपाल-दरशन।**
**प्रेमावेशे प्रभु करे कीर्तन-नर्त्तन॥३६॥**

३६। **प० अनु०—**उस गाँठोली ग्राम में जाकर श्रीमन्महाप्रभु ने गोपाल राय का दर्शन किया तथा उन्होंने प्रेम के आवेश में कीर्त्तन तथा नृत्य किया।

**गोपालेर सौन्दर्य देखि' प्रभुर आवेश।**
**एइ श्लोक पड़ि' नाचे, हैल दिन-शेष॥३७॥**

३७। **प० अनु०—**गोपाल राय के सौन्दर्य को देखकर श्रीमन्महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये। वे एक श्लोक का उच्चारण करते-करते नृत्य करने लगे, इसी में ही दिन समाप्त हो गया।

भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/६२)—

**वामस्तामरसाक्षस्य भुजदण्डः स पातु वः।**
**क्रीड़ाकन्दुकतां येन नीतो गोवर्द्धनो गिरिः॥३८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३८। पुण्डरीक (कमल)-नयन श्रीकृष्ण ने जिस वाम (दांई) भुज दण्ड के द्वारा गिरिराज गोवर्धन को उठाकर क्रीड़ा कन्दुक (खेलने वाली गेंद) की भाँति उसका व्यवहार किया था, वही वामभुजदण्ड ही तुम्हारा पालन करे।

**अनुभाष्य**

३८। येन (वामबाहुना) गोवर्धनः गिरिः क्रीड़ा-कन्दुकतां (क्रीड़ा-सामग्रीत्वं) नीतः (प्रातः) ताम-रसाक्षस्य (पदमलोचनस्य कृष्णस्य) स (प्रसिद्धः वाम भुजदण्डः) वः (युष्माकं) पातु (रक्षतु)।

तीन दिन
गोपाल दर्शन—

**एइमत तिनदिन गोपाले देखिला।**
**चतुर्थ-दिवसे गोपाल स्वमन्दिरे गेला॥३९॥**

**३९। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने तीन दिन तक गोपाल राय के दर्शन किये। चौथे दिन गोपाल राय अपने मन्दिर में चले गये।

चौथे दिन गिरिराज के ऊपर स्थित मन्दिर
में गोपाल का नृत्य-गीत के माध्यम से जाना—

**गोपाल-सङ्गे चलि' आइला नृत्य-गीत करि'।**
**आनन्द-कोलाहले लोक बले 'हरि' 'हरि'॥४०॥**

**४०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु गोपाल राय के साथ नृत्य तथा गान करते हुए चलने लगे। आनन्दमय कोलाहल में लोग 'हरि' 'हरि' बोल रहे थे।

प्रभु की गोपाल के दर्शन
की अभिलाषा पूर्ण—

**गोपाल मन्दिरे गेला, प्रभु रहिला तले।**
**प्रभुर वाञ्छा पूर्ण सब करिल गोपाले॥४१॥**

**४१। प० अनु०—**श्रीगोपाल राय अपने मन्दिर में चले गये तथा श्रीमन्महाप्रभु गोवर्द्धन की तलहटी में ही रह गये। गोपाल राय ने श्रीमन्महाप्रभु की समस्त वाञ्छाओं को पूर्ण कर दिया।

महाकृपालु गोपाल के दर्शन
में भक्त का भाव—

**एइमत गोपालेर करुण स्वभाव।**
**सेइ भक्त-जनेर देखिते हय 'भाव'॥४२॥**

**४२। प० अनु०—**गोपाल राय का ऐसा ही करुण स्वभाव हैं कि जिसे देखकर भक्तों के हृदय में गोपाल राय के प्रति भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं।

दयामय गोपाल का किसी छल से भक्त
को दर्शन-प्रदान—

**देखिते उत्कण्ठा हय, ना चड़े गोवर्द्धने।**
**कोन छले गोपाल आसि' उतरे आपने॥४३॥**

**४३। प० अनु०—**किसी भक्त के हृदय में गोपाल राय को देखने की उत्कण्ठा होने पर भी यदि वह गोवर्द्धन पर नहीं चढ़ता तो गोपाल राय स्वयं किसी छल से गोवर्द्धन से उतरकर नीचे आ जाते।

जब जिस स्थान पर रहते हैं, वहीं आकर
भक्तों के द्वारा उनका दर्शन करना—

**कभु कुञ्जे रहे, कभु रहे ग्रामान्तरे।**
**जेइ भक्त, ताँहा आसि' देखये ताँहारे॥४४॥**

**४४। प० अनु०—**कभी तो गोपालदेव कुञ्ज में रहते तथा कभी किसी अन्य ग्राम में। जो भी भक्त होता, वह वहाँ पर आकर उनके दर्शन करता।

श्रीरूप-सनातन को इसी प्रकार किसी
छल से दर्शन देना—

**पर्वते ना चड़े दुइ—रूप-सनातन।**
**एइरूपे ताँ-सबारे दियाछेन दरशन॥४५॥**

**४५। प० अनु०—**श्रीरूप और सनातन भी गोवर्द्धन पर्वत पर नहीं चढ़ते थे। गोपाल राय ने उन सभी को भी इसी प्रकार से दर्शन दिये।

गोपाल के दर्शन की अभिलाषा के कारण श्रीरूप
के गोपाल-दर्शन के वृतान्त का वर्णन—

**वृद्धकाले रूप-गोसाञि ना पारे जाइते।**
**वाञ्छा हैल गोपालेर सौन्दर्य देखिते॥४६॥**

**४६। प० अनु०—**वृद्धावस्था में श्रील रूप गोस्वामी की गोपाल-राय के सौन्दर्य के दर्शन करने की अभिलाषा तो हुयी, किन्तु वे उनके दर्शन के लिये जा नहीं पा रहे थे।

मथुरा में वल्लभपुत्र विठ्ठलेश्वर के घर
पर एक मास तक वास—

**म्लेच्छभये आइला गोपाल मथुरा-नगरे।**
**एकमास रहिल विठ्ठलेश्वर-घरे॥४७॥**

**४७। प० अनु०—**म्लेच्छों के भय से गोपालराय मथुरानगरी में आकर एकमास तक विठ्ठलेश्वर के घर पर रहे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४५-४७। [श्रीमन्महाप्रभु के वृन्दावन भ्रमण के कुछ समय पश्चात्] बाद में श्रीरूप-सनातन

ने आकर जब व्रजवास किया, तब वे भी श्रीगोवर्धन पर्वत को साक्षात् भगवान् की मूर्त्ति जानकर उस पर नही चढ़ते थे। गोपाल ने जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु को दर्शन दिया, उन्हें भी उसी प्रकार से दर्शन दिया था। वृद्ध अवस्था में श्रीरूपगोस्वामी गोवर्धन जाने में असमर्थ थे तथा साथ ही गोपाल का सौन्दर्य देखने की उनकी इच्छा हुई थी, तब गोपाल ने श्रीरूप गोस्वामी पर कृपा करने के उद्देश्य से इस प्रकार म्लेच्छों से भय रूपी 'छल' करके मथुरानगरी में विठ्ठलेश्वर के घर में एक मास तक वास किया था।

**अनुभाष्य**

४७। विठ्ठलेश्वर,—भक्तिरत्नाकर की पञ्चम तरङ्ग में—'विठ्ठलेर सेवा कृष्णचैतन्यविग्रह। ताहार दर्शने हैल परम आग्रह॥ श्रीविठ्ठलनाथ—भट्टवल्लभ तनय। करिला जतेक प्रीति कहिले ना हय॥ 'गाठोलि'-ग्रामे गोपाल आइला 'छल' करि'। ताँरे देखि' नृत्यगीते मग्न गौरहरि॥ श्रीदास गोस्वामी आदि परामर्श करि'। श्रीविठ्ठलेश्वरे कैला सेवा-अधिकारी॥ पिता श्रीवल्लभभट्ट ताँर अद्दर्शने। कतदिन मथुराय छिलेन निर्जने॥"

श्रीवल्लभभट्ट के दो पुत्र—ज्येष्ठ 'गोपीनाथ' ने १४३२ शकाब्द में जन्म ग्रहण किया एवं कनिष्ठ 'विठ्ठलनाथ' ने १४३७ शकाब्द में जन्म-ग्रहण करके १५०७ शकाब्द में परलोक गमन किया। विठ्ठल के सात पुत्र—गिरिधर, गोविन्द, बालकृष्ण, गोकुलेश, रघुनाथ, यदुनाथ और घनश्याम। विठ्ठल ने पिता के असम्पूर्ण अवशिष्ट ब्रह्मसूत्र-भाष्य, 'सुबोधिनी'-टिप्पणी, 'विद्वन्मण्डन', 'शृङ्गार रसमण्डन', 'न्यासादेश-विवरण' इत्यादि ग्रन्थों की रचना की। ''पूर्ण-सप्तति-वर्षाणि दिनान्यष्टौ च विंशातिः। वसुधायां व्यराजन्तु श्रीमद्विठ्ठल दीक्षिताः॥''

श्रीमहाप्रभु ने वल्लभपुत्र विठ्ठल के जन्म से एक वर्ष पूर्व अथवा उससे भी एक वर्ष पूर्व श्रीवृन्दावन में गमन किया। श्रीरूप गोस्वामी अपनी वृद्ध अवस्था में श्रीगोपाल के दर्शन हेतु, वल्लभ के पुत्र विठ्ठलनाथ के मथुरा स्थित घर पर एकमास तक थे।

मथुरा में विठ्ठलेश्वर के घर में एकमास
सपरिकर श्रीरूप द्वारा गोपाल-दर्शन—

**तबे रूप-गोसाञि सब निजगण लञा।**
**एकमास दरशन कैला मथुराय रहिया॥४८॥**

४८। **प० अनु०—**तब श्रीरूप गोस्वामी ने अपने निजजनों को साथ लेकर एकमास तक मथुरा में रहकर गोपालराय के दर्शन किये।

**सङ्गे गोपाल-भट्ट, दास रघुनाथ।**
**रघुनाथ-भट्ट गोसाञि, आर लोकनाथ॥४९॥**
**भूगर्भ-गोसाञि, आर श्री जीव-गोसाञि।**
**श्रीयादव-आचार्य, आर गोविन्द-गोसाञि॥५०॥**
**श्रीउद्धव दास, आर माधव, दुइजन।**
**श्रीगोपाल-दास, आर दास-नारायण॥५१॥**
**'गोविन्द' भक्त, आर वाणी-कृष्णदास।**
**पुण्डरीकाक्ष, ईशान, आर लघु-हरिदास॥५२॥**
**एइ सब मुख्य भक्त लञा निज-सङ्गे।**
**श्रीगोपाल दरशन कैला बहु-रङ्गे॥५३॥**

४९-५३। **प० अनु०—**श्रीरूप गोस्वामी के साथ श्रीगोपाल भट्ट, श्री रघुनाथ दास, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्री लोकनाथ, श्री भूगर्भ गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्री यादव आचार्य, श्री गोविन्द गोस्वामी, श्री उद्धवदास, माधव नाम के दो भक्त, श्री गोपाल दास, श्री दास-नारायण, गोविन्द भक्त, वाणी कृष्णदास, पुण्डरीकाक्ष, ईशान, छोटा हरिदास इत्यादि भक्त थे—इन सब मुख्य भक्तों को अपने साथ लेकर श्रीरूप गोस्वामी ने बहुत अधिक आनन्द पूर्वक श्रीगोपाल राय के दर्शन किये।

### अमृतप्रवाह भाष्य

**५२।** लघु-हरिदास,—अनेक वैष्णवों का नाम 'हरिदास' होता था। इसलिए 'लघु', 'मध्यम' इत्यादि 'विशेषण' हरिदास नामक वैष्णवों के नाम के साथ अन्यान्य वैष्णव प्रयोग करते थे। महाप्रभु के समय जो लघु (छोटा) हरिदास थे, उन्होंने प्रयाग में देहत्याग किया था; ये 'लघु हरिदास'—अन्य एक व्यक्ति हैं।

### अनुभाष्य

**४९।** लोकनाथ,—श्रीमहाप्रभु के अत्यन्त विरक्त (वैरागी) महाभागवत पार्षद-गोस्वामी। यशोहर के अन्तर्गत 'तालखड़ि-ग्राम में इनका पहले निवास था; उससे पहले काचनापाड़ा में निवास था। इनके पिता का नाम—पद्‌भनाभ था; इनके एकमात्र अनुज (छोटे भाई थे)—'प्रगल्भ'। प्रभु की आज्ञा से इन्होंने व्रजवास करके भजन किया एवं एकमात्र श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय को दीक्षा प्रदान की। लगता है, अत्यधिक दीनता वशतः, इन्होंने अपने चरित्र का वर्णन करने के लिये निषेध किया होगा, इसलिए इनका चरित्र चैतन्य चरितामृत में विशेष रूप से उल्लिखित नही है। इ, वि, आर लाइन में 'यशोहर' स्टेशन है, वहाँ से मोटर गाड़ी द्वारा सोनाथालि, वहाँ से खेजूरा, वहाँ से पैदल तथा वर्षा के समय में नाव के द्वारा 'तालखड़ि' जाना पड़ता है। इनके सहोदर भाई के वंशज ''तालखड़ि के भट्टाचार्य'' नाम से सामाजिक पद-मर्यादा में विशेष सम्मानित हैं। भ्रातृवंश का विवरण—वैष्णव मञ्जुषा-समाहृति चतुर्थ अध्याय में द्रष्टव्य है।

४९-५२। भक्तिरत्नाकर की षष्ठ-तरङ्ग में—''गोस्वामी गोपालभट्ट अति दयामय। भूगर्भ श्रीलोकनाथ—गुणेर आलय॥ श्रीमाधव, श्रीपरमा-नन्द-भट्टाचार्य। श्रीमधु-पण्डित,—जाँर चरित्र आश्चर्य॥ प्रेमी कृष्णदास, कृष्णदास ब्रह्मचारी। यादव आचार्य, नारायण कृपावान। श्रीपुण्डरी-काक्ष-गोसाञि, गोविन्द, ईशान॥ श्रीगोविन्द, वाणीकृष्णदास अत्युदार। श्रीउद्धव—मध्ये-मध्ये गौड़े गति जाँर॥ द्विज-हरिदास, कृष्णदास-कविराज। श्रीगोपालदास जाँर अलौकिक काज। श्रीगोपाल, माधवादि जतेक वैष्णव।''

एक मास के बाद गोपाल के साथ-साथ श्रीरूपादि का अपने-अपने स्थान पर लौटना—

**एकमास रहि' गोपाल गेला निज-स्थाने।**
**श्रीरूप-गोसाञि आइला श्रीवृन्दावने॥५४॥**

**५४। प० अनु०—**एक मास तक मथुरा में रहकर गोपाल राय अपने स्थान पर लौट गये तथा श्रीरूप गोस्वामी श्रीवृन्दावन धाम में आ गये।

महाप्रभु का काम्यवन में आगमन—

**प्रस्तावे कहिलुँ गोपाल-कृपार आख्यान।**
**तबे महाप्रभु गेला 'श्री काम्यवन'॥५५॥**

**५५। प० अनु०—**प्रसङ्गवशतः मैंने श्रीगोपाल राय की कृपा के उपाख्यान का वर्णन किया है। [ अब पुनः श्रीमन्महाप्रभु के व्रज-भ्रमण का वर्णन करता हूँ। गोवर्द्धन से ] श्रीमन्महाप्रभु श्रीकाम्यवन चले गये।

### अनुभाष्य

५५। काम्यवन,—आदि वाराह में—''चतुर्थं काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम्। तत्र गत्वा नरो देवि मम लोक महीयते॥'' भक्तिरत्नाकर की पञ्चम तरङ्ग में—''एइ काम्यवने कृष्णलीला मनोहर। करिबे दर्शन स्थान कुण्ड बहुतर॥ काम्यवने जत तीर्थ लेखा नाहि तार॥''

वृन्दावन में सभी लीला-स्थलियों का दर्शन—

**प्रभुर गमन-रीति पूर्वे जे लिखिल।**
**सेइमत वृन्दावने तावत् देखिल॥५६॥**

**५६। प० अनु०—**मैंने श्रीमन्महाप्रभु की एक वन से दूसरे वन में जाने की जिस रीति का पहले वर्णन किया है, उसी रीति से श्रीमन्महाप्रभु ने सम्पूर्ण वृन्दावन का दर्शन किया।

वृन्दावन से नन्दीश्वर में नन्द के घर
का दर्शन और प्रेम-विह्वलता—

**ताँहा लीलास्थली देखि' गेला 'नन्दीश्वर'।**
**'नन्दीश्वर' देखि' प्रेमे हइला विह्वल॥५७॥**

**५७। प० अनु०—**वहाँ पर लीलास्थलियों के दर्शन करके श्रीमन्महाप्रभु नन्दीश्वर (नन्द ग्राम) चले गये। नन्दीश्वर को देखकर श्रीमन्महाप्रभु प्रेम में विह्वल हो गये।

**अनुभाष्य**

५७। नन्दीश्वर—नन्दालय; भक्तिरत्नाकर की पञ्चम तरङ्ग में—''देख नन्दीश्वर चतुर्द्दिके कुण्ड-वन। कृष्ण विलासेर स्थान भुवनपावन॥''

पावन-सरोवर में स्नान, विग्रह के सम्बन्ध में जिज्ञासा—

**'पावनादि' सब कुण्डे स्नान करिया।**
**लोकेरे पुछिल, पर्वत-उपरे याञा॥५८॥**

**५८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने पावन सरोवर आदि सभी कुण्डों में स्नान करके पर्वत के ऊपर जाकर लोगों से पूछा—।

लोगों के मुख से गुफा के अन्दर विराजमान नन्द,
यशोदा और कृष्ण की मूर्ति के अवस्थान
के विषय में श्रवण करना—

**''किछु देवमूर्त्ति हय पर्वत-उपरे?''**
**लोक कहे,—''मूर्त्ति हय गोफार भितरे॥५९॥**
**दुइदिके माता-पिता पुष्ट-कलेवर।**
**मध्ये एक 'शिशु' हय त्रिभङ्ग-सुन्दर॥''६०॥**
**शुनि' महाप्रभु मने आनन्द पाञा।**
**'तिन' मूर्ति देखिला सेइ गोफा उघारिया॥६१॥**

**५९-६१। प० अनु०—**क्या पर्वत के ऊपर भगवान् का कोई श्रीविग्रह है? लोगों ने कहा कि विग्रह गुफा के अन्दर हैं। दो तरफ पुष्ट कलेवर वाले माता तथा पिता है तथा बीच में त्रिभङ्गसुन्दर एक बालक है। लोगों के मुख से इस बात को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु का मन बहुत आनन्दित हुआ, उन्होंने गुफा में प्रवेश करके तीन मूर्त्तियों के दर्शन किये।

प्रभु के द्वारा नन्द-यशोदा की वन्दना
और कृष्ण-स्पर्शन—

**व्रजेन्द्र-व्रजेश्वरीर कैल चरण वन्दन।**
**प्रेमावेशे कृष्णेर कैल सर्वाङ्ग-स्पर्शन॥६२॥**

६२। **प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने व्रजेन्द्र श्रीनन्द तथा व्रजेश्वरी श्रीयशोदा जी के चरणों की वन्दना की, उन्होंने प्रेमावेश में श्रीकृष्ण के सभी अङ्गों का स्पर्श किया।

सारा दिन नृत्य-गीत करने के
बाद खदिरवन में आगमन—

**सबदिन प्रेमावेशे नृत्य-गीत कैला।**
**ताँहा हैते महाप्रभु 'खदिर-वन' आइला॥६३॥**

६३। **प० अनु०—**पूरा दिन श्रीमन्महाप्रभु ने प्रेमावेश में नृत्य तथा गान किया। नन्दग्राम से श्रीमन्महाप्रभु खदीर वन आ गये।

**अनुभाष्य**

६३। **खदिरवन,—**'सप्तमन्त वनं भूमौ खदिरं लोकविश्रुतम्।' भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग में—''देखह खदिरवन विदित जगते। विष्णु लोक प्राप्ति एथा गमन मात्रेते॥''

शेषशायी कृष्ण और लक्ष्मी-दर्शन—

**लीलास्थल देखि' ताँहा, गेला 'शेषशायी'।**
**'लक्ष्मी' देखि' एइ श्लोक पड़ेन गोसाञि॥६४॥**

६४। **प० अनु०—**खदीरवन की लीलास्थलियों को देखकर श्रीमन्महाप्रभु वहाँ से शेषशायी गये

तथा वहाँ पर लक्ष्मी को देखकर श्रीचैतन्य गोसाञि ने निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया—।

### अनुभाष्य

६४। शेषशायी,—भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग—''ऐई 'शेषशायी' क्षीरसमुद्र ऐथाते। कौतुके शुइला कृष्ण अनन्तशय्याते॥ ऐइ शेष-शयि-मूर्त्ति दर्शन करिते। श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र आइला एथाते॥ करिया दर्शन महा-कौतुक बाड़िल। से प्रेमावेशे प्रभु अधैर्य हइल॥''

श्रीमद्भागवत में (१०/३१/१९)—

**यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु**
**भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।**
**तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्**
**कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥६५॥**

६५। गोपियों कहती हैं—हे प्रिय, हम तुम्हारे जिन सुकोमल चरणकमलों को अपने कठोर स्तनों पर धीरे-धीरे धारण करती हैं, अपने उन्हीं चरणों के द्वारा तुम अब वन में भ्रमण कर रहे हो, वे तो छोटे-छोटे नुकीले कंकड़ आदि के चुभने से अवश्य ही व्यथित हो रहे होंगे। अतः हमारे जीवन-स्वरूप! तुम्हारे लिये हमारा चित्त अस्थिर हो रहा है।

### अनुभाष्य

६५। आदि चतुर्थ परिच्छेद १७३ संख्या द्रष्टव्य।

खेलातीर्थ, भाण्डीरवन और
भद्रवन में आगमन—

**तबे 'खेला-तीर्थ' देखि' 'भाण्डीरवन' आइला।**
**यमुना पार हञा 'भद्रवन' गेला॥६६॥**

**६६। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु खेला तीर्थ (खेलनवन) के दर्शन करके भाण्डीरवन आ गये तथा यमुना पार होकर वे भद्रवन में गये।

### अनुभाष्य

६६। **खेलातीर्थ,—**भक्ति रत्नाकर पञ्चम तरङ्ग में—''देखह खेलनवन, एथा दुइ भाई। सखासह खेले भक्षणेर चेष्टा नाइ॥ मायेर यत्नेते भुञ्जे कृष्ण-बलराम। ए खेलनवटेर श्रीखेलातीर्थ नाम॥''

**भाण्डीर-वन,—**भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग में—'चलये भाण्डीर-पथे उल्लास अन्तरे। एबे लोक कहय 'अक्षयवट' तारे॥ बलराम कौतुके प्रलम्बवध कैला। सखासह भाण्डीरे कृष्णेर नाना लीला॥'' स्तवावली के व्रजविलास स्तव में—''मल्लीकृत्य निजाः सखीः प्रियतमा गर्वेण सम्भाविता मल्लीभूय मदीश्वरी रसमयी मल्लत्व-मुत्कण्ठया। यस्मिन सम्यगुपेयुषा वकभिदा राधा नियोद्धुं मुदा कुर्वाणा मदनस्य तोष-मतनोद्भाण्डीरकं तं भजे॥''

**भद्रवन,—**''अस्ति भद्रवनं नाम षष्ठञ्च वन-मुत्तमम्''। (भक्ति रत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)— 'कृष्ण-प्रिय हय भद्रवन गमनेते''।

श्रीवन, लोहवन और कृष्णजन्मभूमि गोकुल दर्शन—

**'श्रीवन देखि' पुनः गेला 'लोह-वन'।**
**'महावन' गिया कैला जन्मस्थान-दरशन॥६७॥**

**६७। प॰ अनु॰—**श्रीवन (बेलवन) के दर्शन करके श्रीमन्महाप्रभु पुनः लोह-वन में गये तथा महावन में जाकर उन्होंने श्रीकृष्ण के जन्मस्थान का दर्शन किया।

### अनुभाष्य

६७। **श्रीवन,—**''वनं बिल्ववनं नाम दशमं देवपूजितम्''। (भक्ति रत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)—'देवता-पूजित बिल्ववन शोभामय''। लोहवन,—''लौहजङ्घ-वनं नाम लोहजङ्घेन रक्षितम्। नवमन्तु वनं देवि सर्वपात कनाशनम्॥'' (भक्ति रत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)—''लौहवने कृष्णेर अद्‌भुत गो-चारण। एथा लोहजङ्घासुरे वधे भगवान्॥''

**महावन,—**''महावनं चाष्टमन्तु सदैव तु मम्

प्रियम्''। (भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)—''देख नन्द-यशोदा आलय महावने। '' एइ देख-श्रीकृष्ण-चन्द्रेर जन्म स्थल। ''श्रीगोकुल, महावन—दुइ 'एक' हय॥''

५८-६७। **पावन-सरोवर—**मथुरा-माहात्म्य में—''पावने सरसि स्नात्वा कृष्णो नन्दीश्वरे गिरौ। दृष्ट्वा नन्दं यशोदाञ्च सर्वाभीष्टमवाप्नुयात्॥'' (भक्ति रत्नाकर पञ्चम तरङ्ग) ''ए पावन सरोवर कृष्णप्रिय अति॥

भक्तिरत्नाकर की पञ्चम तरङ्ग में— ''पर्वत-उपरे देख पुत्रेर सहिते। श्री नन्द यशोदा शोभे अपूर्व गोफाते॥ ओहे श्रीनिवास एथा श्रीचैतन्य राय। करिते दर्शन गिया प्रवेश गोफाय॥ श्रीनन्द यशोदा—दुइदिके दुइजन। मध्ये कृष्णचन्द्रे देखि' प्रफुल्ल नयन॥ श्रीनन्द-यशोदार चरण वन्दिया। कृष्णेर सर्वाङ्ग स्पर्शे उल्लसित हञा॥ प्रेमेर आवेशे नृत्य-गीत आरम्भिल॥''

यमलार्जुन-भञ्जनस्थल के दर्शन से प्रेमावेश—

**यमलार्जुनभङ्गादि देखिल सेइ 'स्थल'।**
**प्रेमावेशे प्रभुर मन हैल टलमल॥६८॥**

**६८। प० अनु०—**यमलार्ज्जुन भञ्जन आदि लीलास्थली को देखकर उस स्थान पर प्रेमावेश में श्रीमन्महाप्रभु का मन चञ्चल हो गया।

**अनुभाष्य**

६८। **यमलार्जुन,—**'यमुलार्ज्जुनतीर्थञ्च कुण्डं तत्र च वर्त्तते''। (भक्ति रत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)-''एइ यमलार्ज्जुन-भञ्जन तीर्थस्थल। एथा उदूखले कृष्णे यशोदा बाँधिला। बन्धन स्वीकार कृष्ण कौतुके करिला॥''

उसके बाद मथुरा में योगपीठ का दर्शन और माधवपुरी के शिष्य के घर में अवस्थान—

**'गोकुल' देखिया आइला 'मथुरा'-नगरे।**
**'जन्मस्थान देखि' रहे सेइ विप्र-घरे॥६९॥**

**६९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु गोकुल का दर्शन करके मथुरा नगरी में आ गये तथा वहाँ पर भी श्रीकृष्ण जन्म स्थान का दर्शन करने के बाद उस सनोड़िया ब्राह्मण के घर में रह गये।

लोगों की भीड़ के कारण वहाँ से जाकर अक्रूरतीर्थ में रहना—

**लोकेर संघट्ट देखि' मथुरा छाड़िया।**
**एकान्ते 'अक्रूर-तीर्थे' रहिला आसिया॥७०॥**

**७०। प० अनु०—**लोगों की भीड़ को देखकर श्रीमन्महाप्रभु मथुरा को छोड़कर एकान्त में अक्रूर तीर्थ में आकर रहने लगे।

**अनुभाष्य**

७०। **अक्रूरतीर्थ,—**''अक्रूरतीर्थमत्यर्थमस्ति प्रियवरं हरेः। तीर्थराजं हि चाक्रूर गुह्यानां गुह्य मुत्तमम्॥'' (भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)—''देख, श्रीनिवास एइ अक्रूर-ग्रामेते। श्रीकृष्ण चैतन्य-प्रभु छिलेन निभृते॥''

वृन्दावन के दर्शन के लिये आगमन एवं कालीय-ह्रद और प्रस्कन्दन-क्षेत्र में स्नान—

**आर दिन आइला प्रभु देखिते 'वृन्दावने'।**
**'कालीय-ह्रदे' स्नान कैला आर 'प्रस्कन्दने'॥७१॥**

**७१। प० अनु०—**अन्य दिन श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन के दर्शन के लिये आये। उन्होंने कालीयह्रद तथा प्रस्कन्दन तीर्थ में स्नान किया।

**अनुभाष्य**

७१। **वृन्दावन,—**'अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनो गिरिः।'' ''वृन्दावनं द्वादशमं वृन्दया परि-रक्षितम्॥'' (भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)—''कृष्णेर परमप्रिय धाम-वृन्दावन। कृष्ण-देह रूप 'पञ्चयोजन' एइ वन। ''वृन्दावन-सोलह कोस का है, लोगों में यही प्रचलित है।''

**कालीयह्रद,—**कालीयह्रद पूर्वेण कदम्बो महितो

द्रुमः। ततः कालीय तीर्थाख्यं तीर्थमघो-विनाशनम्॥ अनृत्यत् यत्र भगवान् बालः कालीय-मस्तके॥'' (भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)—''ए कालीय-तीर्थ पाप विनाशय। कालीय तीर्थ स्थाने बहुकार्य सिद्धि हय॥''

**प्रस्कन्दन—''**क्षेत्रं प्रस्कन्दनं नाम सर्वपापहरं शुभम्। तस्मिन् स्नातस्तु मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥'' (भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)—''देख-प्रस्कन्दन'-क्षेत्र-स्नाने पाप जाय। प्राणत्याग हइलेइ विष्णुलोक पाय॥ ओहे श्रीनिवास, सूर्य-गणेर तापेते। दूरे गेल शीत, घर्म्म हइल देहेते॥ सेइ घर्म्मजल सूर्य कन्याय मिलिल। एइ हेतु 'प्रस्कन्दन'-नाम तीर्थ हैल॥ श्रीकृष्णचैतन्याभिन्न श्रीअद्वैत ईश्वरः कतदिन छिला एई वनेर भितर॥''

द्वादश-आदित्य से केशीतीर्थ में
रासस्थली के दर्शन से मूर्च्छा—

**'द्वादश-आदित्य' हैते 'केशीतीर्थे' आइला।**
**'रासस्थली' देखि' प्रेमे मूर्च्छित हइला॥७२॥**

**७२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु द्वादश आदित्य टीले से केशीतीर्थ पर आये। वहाँ पर रासस्थली को देखकर प्रेम में मूर्च्छित हो गये।

**अनुभाष्य**

७२। **द्वादश-आदित्य,—**द्वादशादित्य-तीर्थाख्यं तीर्थं तदनुपावनम्। तस्य दर्शन मात्रेण नृणामघो विनश्यति॥'' (भक्तिरत्नाकर पञ्चम तरङ्ग)—''देखह द्वादशादित्य तीर्थ एइखाने॥''

**केशीतीर्थ,—**आदि वाराहे—''गङ्गा शतगुणं पुण्यं यत्र केशी निपातितः।'' (भक्ति रत्नाकर पञ्चम तरङ्गः)—''केशी वध कैल कृष्ण परम कौतुके॥''

सारा दिन प्रेम में आविष्ट प्रभु की पागलों जैसी चेष्टा—

**चेतना पाञा पुनः गड़ागड़ि जाय।**
**हासे, कान्दे, नाचे, पड़े, उच्चैःस्वरे गाय॥७३॥**

**७३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु चेतनता प्राप्त करके भूमि पर लोट-पोट खाने लगे। श्रीमन्महाप्रभु कभी तो हँस रहे थे, कभी रो रहे थे, कभी नृत्य कर रहे थे तो कभी भूमि पर गिर पड़ रहे थे तथा कभी उच्चस्वर में गा रहे थे।

वहाँ से सन्ध्या के समय अक्रूर-तीर्थ में आकर भोजन—

**एइरङ्गे सेइदिन तथा गोआइला।**
**सन्ध्याकाले 'अक्रूरे आसि' भिक्षा निर्वाहिला॥७४॥**

**७४। प० अनु०—**इस प्रकार वह दिन श्रीमन्महाप्रभु ने आनन्दपूर्वक वहीं व्यतीत किया तथा सन्ध्या के समय अक्रूर तीर्थ में आकर भिक्षा ग्रहण की।

प्रातः चीरघाट में स्नान, इमलीतला में विश्राम—

**प्राते वृन्दावने कैला 'चीरघाटे' स्नान।**
**तेंतुल-तला'ते आसि' करिला विश्राम॥७५॥**

**७५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने अगले दिन प्रातःकाल वृन्दावन में चीरघाट पर स्नान किया तथा तेतुँल-तला (इमलीतला) में आकर विश्राम किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

७५। तेंतुल-तलाते,—इस स्थानको वर्त्तमान में 'आमलितला' कहते हैं।

द्वापुर युग का इमली का वृक्ष—

**कृष्णलीला-कालेर सेइ वृक्ष पुरातन।**
**तार तले पिंड़ि-बान्धा परम-चिक्कण॥७६॥**

**७६। प० अनु०—**बहुत प्राचीन वह इमली का वृक्ष कृष्ण लीला के समय का है। उस वृक्ष के नीचे बहुत ही चिकना चबूतरा बना हुआ था।

उसके निकट ही यमुना का प्रवाह—

**निकटे यमुना बहे शीतल समीर।**
**वृन्दावन-शोभा देखि' यमुनार नीर॥७७॥**

**७७। प० अनु०—**उसके निकट ही यमुना बह

रही थी तथा शीतल वायु प्रवाहित हो रही थी। श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन की शोभा तथा यमुना जी के जल के दर्शन कर रहे थे।

इमली के वृक्ष के नीचे बैठकर प्रभु का नाम-सङ्कीर्त्तन, मध्याह्न (दोपहर) में अक्रूरतीर्थ में आकर भोजन—

**तेंतुल-तले बसि' करेन नाम-संङ्कीर्तन।**
**मध्याह्न करि' आसि' करे 'अक्रूरे' भोजन॥७८॥**

**७८। प० अनु०—**इमलीतला पर बैठकर श्रीमन्महाप्रभु नाम-सङ्कीर्त्तन कर रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु ने दोपहर के समय स्नान करने के बाद अक्रूरतीर्थ में आकर भोजन किया।

अक्रूरतीर्थवासियों का प्रभु के दर्शन के लिये आगमन और प्रभु के निर्जन भजन में संख्या-नाम-कीर्तन में बाधा—

**'अक्रूरे'र लोक आइसे प्रभुरे देखिते।**
**लोक-भिड़े स्वच्छन्दे नारे 'कीर्तन' करिते॥७९॥**

**७९। प० अनु०—**अक्रूर तीर्थ में रहने वाले लोग श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने के लिये आते, श्रीमन्महाप्रभु लोगों की भीड़ के कारण स्वच्छन्दता पूर्वक कीर्त्तन न कर पाते।

प्रभु के द्वारा मध्याह्न तक निर्जन में संख्या-नामकीर्त्तन—

**वृन्दावने आसि' प्रभु बसिया एकान्त।**
**नामसङ्कीर्त्तन करे मध्याह्न-पर्यन्त॥८०॥**

**८०। प० अनु०—**इसी कारण श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन में आकर एकान्त में बैठकर दोपहर तक नामसङ्कीर्त्तन करते।

दोपहर के बाद लोगों को प्रभु के दर्शन का सुयोग और प्रभु द्वारा सभी को नाम-कीर्त्तन का उपदेश—

**तृतीय-प्रहरे लोक पाय दरशन।**
**सबारे उपदेश करे 'नामसङ्कीर्त्तन'॥८१॥**

**८१। प० अनु०—**दोपहर के बाद तीसरे पहर में लोगों को श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन होते। श्रीमन्महाप्रभु सभी को नामसङ्कीर्त्तन का उपदेश प्रदान करते।

वहाँ प्रभु को देखकर राजपूत-कृष्णदास का आगमन—

**हेनकाले आइल वैष्णव 'कृष्णदास' नाम।**
**राजपूत-जाति, गृहस्थ, यमुना-पारे ग्राम॥८२॥**
**'केशी' स्नान करि' सेह 'कालीयदह' जाइते।**
**आमलि-तलाय गोसाञिरे देखे आचम्बिते॥८३॥**

**८२-८३। प० अनु०—**उसी समय कृष्णदास नामक एक वैष्णव आये, जो जाति से राजपूत तथा आश्रम से गृहस्थ थे तथा यमुना की दूसरी ओर के किसी ग्राम में रहते थे। केशीघाट पर स्नान करने के बाद कालीयदह की ओर जाते समय उन्होंने अचानक इमलीतला में श्रीचैतन्य गोसाञि को देखा।

प्रभु के दर्शन से कृष्णदास का चमत्कृत होना—

**प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हइल चमत्कार।**
**प्रेमावेशे प्रभुरे करेन नमस्कार॥८४॥**

**८४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के रूप तथा प्रेम को देखकर कृष्णदास चमत्कृत हो उठे तथा उन्होंने प्रेमावेश में श्रीमन्महाप्रभु को नमस्कार किया।

प्रभु के द्वारा उनके परिचय की जिज्ञासा और कृष्णदास द्वारा सदैन्य अपना परिचय प्रदान—

**प्रभु कहे,—"के तुमि, काँहा तोमार घर?"**
**कृष्णदास कहे,—"मुञि गृहस्थ पामर॥८५॥**
**राजपूत-जाति मुञि, ओ-पारे मोर घर।**
**मोर इच्छा हय,—हउ वैष्णव-किङ्कर॥८६॥**

**८५-८६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे पूछा—आप कौन हैं, आपका घर कहाँ है? कृष्णदास ने कहा—मैं एक अधम गृहस्थ हूँ। मैं जाति से राजपूत हूँ तथा यमुना के उस पार मेरा

घर है। मेरी इच्छा होती है कि मैं वैष्णवों का दास बनुँ।

प्रभु के दर्शन से अपने स्वप्न के
दर्शन की सफलता का वर्णन—

**किन्तु आजि एक मुञि 'स्वप्न' देखिनु।**
**सेइ स्वप्न परतेक तोमा आसि' पाइनु॥''८७॥**

**८७। प० अनु॰—**किन्तु आज मैंने एक स्वप्न देखा था। उस स्वप्न के फलस्वरूप मुझे आप साक्षात् प्राप्त हुए है।

**अनुभाष्य**

८७। परतेक,—'प्रत्यक्ष', 'साक्षात्'।

प्रभु द्वारा उस पर कृपा, कृष्णदास का प्रेम—

**प्रभु ताँरे कृपा कैला आलिङ्गन करि'।**
**प्रेमे मत हैल, सेइ नाचे, बले 'हरि'॥८८॥**

**८८। प० अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें आलिङ्गन करके उन पर कृपा की। कृष्णदास प्रेम में मत्त होकर हरि बोलते हुए नृत्य करने लगे।

प्रभु के साथ आकर प्रभु के उच्छिष्ट की प्राप्ति—

**प्रभु-सङ्गे मध्याह्ने अक्रूर-तीर्थे आइला।**
**प्रभुर अवशिष्ट-पात्र-प्रसाद पाइला॥८९॥**

**८९। प० अनु॰—**कृष्णदास दोपहर के समय श्रीमन्महाप्रभु के साथ अक्रूरतीर्थ में आ गये तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के अवशिष्ट प्रसाद के पात्र को ग्रहण किया।

तब से कृष्णदास—प्रभु के कमण्डल
को वहन करने वाला और नित्यसङ्गी—

**प्राते प्रभु-सङ्गे आइला जलपात्र लञा।**
**प्रभु-सङ्गे रहे गृह-स्त्री-पुत्र छाड़िया॥९०॥**

**९०। प० अनु॰—**अगले दिन प्रातःकाल कृष्णदास जल के पात्र को उठाकर श्रीमन्महाप्रभु के साथ आ गये तथा वे अपने घर-पत्नी एवं पुत्र को छोड़कर श्रीमन्महाप्रभु के साथ रहने लगे।

लोगों द्वारा वृन्दावन में कृष्ण
के प्रकट होने का शोर—

**वृन्दावने पुनः 'कृष्ण' प्रकट हइल।**
**जाँहा ताँहा लोक सब कहिते लागिल॥९१॥**

**९१। प० अनु॰—**श्रीकृष्ण वृन्दावन में पुनः प्रकट हुए हैं, समस्त लोग जहाँ-तहाँ यही बात कहने लगे।

एकदिन वृन्दावन से बहुत से लोगों
का प्रभु के निकट आगमन—

**एकदिन अक्रूरेते लोक प्रातःकाले।**
**वृन्दावन हैते आइसे करि कोलाहले॥९२॥**

**९२। प० अनु॰—**बहुत से लोग एकदिन प्रातःकाल वृन्दावन से अक्रूरतीर्थ पर आकर बहुत अधिक कोलाहल करने लगे।

प्रभु के द्वारा उनके आगमन के कारण की जिज्ञासा—

**प्रभु देखि' करिल लोक चरण वन्दन।**
**प्रभु कहे,—''काँहा हैते करिला आगमन??''९३॥**

**९३। प० अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु को देखकर लोगों ने उनके चरणों की वन्दना की। श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे पूछा—आप लोग कहाँ से आये हैं?

कृष्ण के प्रकट होने का शोर; मूर्ख लोगों का
विवर्तभ्रम (एक वस्तु में अन्य वस्तु की प्रतीति)—

**लोके कहे,—''कृष्ण प्रकट कालीयदहेर जले!**
**कालीय-शिरे नृत्य करे, फणि-रत्न ज्वले॥''९४॥**

**९४। प० अनु॰—**लोगों ने कहा—कालीयदह के जल में कृष्ण प्रकट हुए है! श्रीकृष्ण कालीय के सिर पर नृत्य करते है तथा कालीय के फणों में स्थित मणि चमकती है।

प्रभु के दर्शन से ही कृष्णदर्शन; तथापि प्रभु का कौतुक-हास्य—

**साक्षात् देखिल लोक—नाहिक संशय।**
**शुनि' हासि' कहे प्रभु,—सब 'सत्य' हय॥९५॥**

**९५। प० अनु०—**लोगों ने अपनी आँखों से इस दृश्य को देखा है—इसमें किसी संशय की कोई बात नहीं है। उनकी बात सुनकर मुस्कराते हुए श्रीमन्महाप्रभु ने कहा कि सब कुछ सत्य ही होता है।

तीन दिन तक सभी के द्वारा कृष्ण के दर्शन की प्राप्ति का वर्णन—

**एइमत तिन-रात्रि लोकेर गमन।**
**सबे आसि' कहे,—'कृष्ण पाइलुँ दरशन॥''९६॥**

**९६। प० अनु०—**लोग इस प्रकार तीन रात तक कृष्ण को देखने के लिये जाते तथा सभी आकर कहते कि हमें कृष्ण के दर्शन प्राप्त हुए हैं।

सरस्वती के द्वारा इन वचनों की सत्यता का स्थापन—

**प्रभु-आगे कहे लोक,—'श्रीकृष्ण देखिल।'**
**'सरस्वती' एइ वाक्ये 'सत्य' कहाइल॥९७॥**

**९७। प० अनु०—**लोग श्रीमन्महाप्रभु के आगे आकर कहते कि हमने श्रीकृष्ण को देखा है। सरस्वती देवी ने उनके मुख से इन सत्य वचनों को ही कहलवाया।

प्रभु के दर्शन से ही लोगों के कृष्णदर्शन 'सत्य' होने पर भी वास्तव में उनका वर्णन और उद्देश्य—विवर्त के आश्रित—

**महाप्रभु देखि' 'सत्य' कृष्ण-दरशन।**
**निज-ज्ञाने सत्य छाड़ि' 'असत्ये सत्य-भ्रम'॥९८॥**

**९८। प० अनु०—**यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु का दर्शन करके सत्य ही उन्होंने श्रीकृष्ण का दर्शन किया। किन्तु उनके अपने ज्ञान के अनुसार उन्हें सत्य को छोड़कर असत्य में ही सत्य का भ्रम हो रहा था।

सरलबुद्धि वाले भट्ट का विवर्त्त-भ्रम—

**भट्टाचार्य तबे कहे प्रभुर चरणे।**
**'आज्ञा देह', जाई' करि कृष्ण-दरशने!!''९९॥**

**९९। प० अनु०—**बलभद्र भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में निवेदन करते हुए कहा कि हे प्रभु! आप मुझे भी आज्ञा दीजिए, जिससे मैं भी जाकर श्रीकृष्ण का दर्शन करूँ।

प्रभु के द्वारा उसके भ्रम का खण्डन—

**तबे ताँरे कहे प्रभु चापड़ मारिया।**
**''मूर्खेर वाक्ये 'मूर्ख' हैला पण्डित हञा॥१००॥**

**१००। प० अनु०—**उसे थप्पड़ लगाकर श्रीमन्महाप्रभु ने कहा कि मूर्खों की बातें सुनकर तुम भी पण्डित होने पर मूर्ख बन गये।

स्वयं कृष्ण होने पर भी भट्ट के समक्ष आत्म-गोपन, फिर भी सरल बुद्धि वाले भट्ट का विवर्त के मुख से उद्धार—

**कृष्ण केने दरशन दिबेन कलिकाले?**
**निज-भ्रमे मूर्ख-लोक करे कोलाहले॥१०१॥**

**१०१। प० अनु०—**श्रीकृष्ण कलिकाल में दर्शन क्यों देंगे? अपने भ्रम के कारण ही मूर्ख लोग कोलाहल मचाते हैं।

माया-मुग्ध अचिद् वस्तु में चिद् बुद्धि अथवा चिद् का आरोप करने वाले मूर्ख विवर्तवादी ही 'बाउल'—

**'वातुल' ना हइओ, घरे रहु'त बसिया।**
**'कृष्ण' दरशन करिह कालि रात्र्ये जाञा॥''१०२॥**

**१०२। प० अनु०—**पागल मत बनो, घर पर ही बैठे रहो। कल रात को जाकर कृष्ण के दर्शन करना।

प्रातःकाल में समागत शिष्ट लोगों से
कृष्ण के दर्शन के विषय में पूछना—

**प्रातः काले भव्य-लोक प्रभु-स्थाने आइला।**
**"कृष्ण देखि' आइला?"—प्रभु ताँहारे पुछिला॥१०३॥**

**१०३। प० अनु०—**अगले दिन प्रातःकाल कुछ सभ्य लोग श्रीमन्महाप्रभु के पास अक्रूरतीर्थ में आये। श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे पूछा—आप लोग कृष्ण के दर्शन करके आये हैं?

उन लोगों के द्वारा वास्तविक बात बतलाना—

**लोक कहे,—"रात्र्ये कैवर्त्त नौकाते चड़िया।**
**कालीयदहे मत्स्य मारे, देउटी ज्वालिया॥१०४॥**
**दूर हैते ताहा देखि' लोकेर हय 'भ्रम'।**
**'कालीयेर शरीरे कृष्ण करिछे नर्तन॥'१०५॥**

**१०४-१०५। प० अनु०—**लोगों ने कहा—रात के समय मछुवारा नौका में बैठकर लालटेन जलाकर कालीयदह पर मछलियों को पकड़ता है। दूर से उसी को देखकर लोगों को भ्रम होता है कि कालीय के सिर के ऊपर कृष्ण नृत्य कर रहे हैं।

मूढ़ लोगों की विवर्त बुद्धि—

**नौकाते कालीय-ज्ञान, दीपे रत्न-ज्ञाने!**
**जालियारे मूढ़-लोक, 'कृष्ण' करि' माने!!"१०६॥**

**१०६। प० अनु०—**नौका को कालीय, लालटेन को मणि तथा मछुवारे को मूर्ख लोग कृष्ण मानते है!!

पक्षान्तर में लोगों के शोर और लोगों के
कृष्ण-दर्शन की क्रिया की भी सत्यता—

**वृन्दावने 'कृष्ण' आइला,—सेह 'सत्य' हय।**
**कृष्णेरे देखिल लोक,—इहा 'मिथ्या' नय॥१०७॥**

**१०७। प० अनु०—**[ श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कह रहे हैं कि ] वृन्दावन में कृष्ण आये हैं—यह सच ही है तथा लोगों ने कृष्ण को देखा है—यह बात भी झूठ नहीं है।

किन्तु वास्तव में प्रतीति की विषमता में
ही विवर्त्त रूपी भ्रम का उदय—

**किन्तु काँहो 'कृष्ण' देखे, काँहो 'भ्रम' माने।**
**स्थाणु-पुरुषे जैछे विपरीत-ज्ञाने॥१०८॥**

**१०८। प० अनु०—**किन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण के दर्शन किये तो अन्य किसी स्थान पर हैं और मान रहे हैं किसी ओर स्थान पर। वृक्ष के ठोंट को देखकर जैसे भ्रमवश उसे मनुष्य समझ लिया जाता है उसी प्रकार लोगों को भी विपरीत ज्ञान हो गया है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१०६-१०८। स्थाणु,—पल्लव रहित वृक्ष; कुछ दूरी पर ही पत्तों से रहित वृक्ष को देखकर 'एक पुरुष आ रहा है' ऐसा विपरीत ज्ञान होता है। व्रजवासियों का भी उसी प्रकार मछुवारे की नौका में कालीय-ज्ञान, उसके ऊपर लगे हुए दीपक में रत्न का ज्ञान तथा मछली पकड़ने वाले मछुवारे में कृष्ण का ज्ञान रूपी 'भ्रम' उदित हुआ था।

प्रभु द्वारा कृष्ण के दर्शन की प्राप्ति के संवाद की
जिज्ञासा; प्रभु के दर्शन से सुकृतिवान् लोगों की
उनके प्रति नारायण बुद्धि—

**प्रभु कहे,—"काँहा पाइला 'कृष्ण-दरशन?"**
**लोक कहे,—"सन्यासी तुमि जङ्गम-नारायण॥१०९॥**
**वृन्दावने हइला तुमि कृष्ण-अवतार।**
**तोमा देखि' सर्वलोक हइल निस्तार॥"११०॥**

**१०९-११०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा—उन्हें श्रीकृष्ण के दर्शन कहाँ पर हुए? लोगों ने कहा—सन्यासी होने के कारण आप ही चलते-फिरते नारायण हैं। आप ही वृन्दावन में श्रीकृष्ण के अवतार हैं। आपको देखकर सभी लोगों का उद्धार हो गया है।

प्रभु द्वारा लोकशिक्षा,—जीव 'कृष्ण' नहीं है, अतएव जीव को कृष्ण समझना मना—

**प्रभु कहे,—''विष्णु', 'विष्णु', इहा ना कहिबा!**
**जीवधमे 'कृष्ण'-ज्ञान कभु ना करिबा!!१११॥**

**१११। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—विष्णु! विष्णु! ऐसा मत कहिए! अधम जीव को कभी भी कृष्ण मत समझना!!

जीव और कृष्ण में भेद-वर्णन—

**सन्यासी—चित्कण जीव, किरण-कण-सम।**
**षड़ेश्वर्यपूर्ण कृष्ण हय सूर्योपम॥११२॥**
**जीव, ईश्वर-तत्व—कभु नहे 'सम'।**
**ज्वलदग्निराशि जैछे स्फुलिङ्गेर 'कण'॥११३॥**

**११२-११३। प० अनु०—**सन्यासी रूपी जीव भी सूर्य की किरण के कण के समान चित् कण स्वरूप है, किन्तु षड् ऐश्वर्य पूर्ण श्रीकृष्ण सूर्य के समान हैं। जीव और ईश्वर का तत्त्व वैसे ही कभी भी एक नहीं हो सकता जैसे जलती हुयी अग्नि तथा उसकी चिङ्गारी एक नहीं हो सकती।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११२-११३। मायावादी संन्यासी स्वयं को 'ब्रह्म' समझकर, मुख से 'नारायण' 'नारायण' कहते हैं। स्मार्त्तमत में, गृहस्थ-ब्राह्मण आदि सभी उस संन्यासी को देखने पर 'नारायण' मानकर प्रणाम करते हैं। इस भ्रम-प्रथा को रोकने के लिये महाप्रभु ने कहा,—संन्यासी, जीव के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ; वह कभी भी षड्ेश्वर्यपूर्ण कृष्ण रूपी सूर्य के समान नहीं हो सकता। वह—चित्कण-मात्र है, अतएव, जीव—कृष्ण रूपी सूर्य की किरण-कण के समान है; उसे कभी भी 'नारायण' मानकर प्रणाम करना उचित नहीं है।

**अनुभाष्य**

१११-११३। जङ्गम-नारायण—चलने की शक्ति से युक्त नारायण; ''दण्डग्रहण-मात्रेण नरो नारायणो भवेत्''—दण्डिगणों को केवलाद्वैत-मायावादिगण ''ॐ नमो नारायणाय'' कहकर पुकारते हैं। किन्तु जीव,—मुक्त और बद्ध, सभी अवस्थाओं में ही मायाधीश परमेश्वर नारायण के नित्यवश्य होने के कारण कभी भी नारायण-शब्द-वाच्य नहीं हो सकता; जो जीव को विष्णु के साथ 'समान' अथवा 'एक' कहता अथवा समझता है, वह मायावादी अपराधी है। आदि द्वितीय परिच्छेद ९६ संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण—'ईश्वर', जीव-उनके 'वशीभूत'—भगवद् सन्दर्भ में उद्धृत सर्वज्ञसूक्त-वाक्य अथवा भाः १/७/६ श्लोक की टीका में श्रीधर स्वामी द्वारा उद्धृत श्रीविष्णु-स्वामि-वाक्य—

**ह्लादिन्या संविदाश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः।**
**स्वाविद्या-संवृत्तो जीवः संक्लेशनिक राकरः॥११४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११४। ईश्वर—सदैव सच्चिदानन्द एवं 'ह्लादिनी' और 'सम्वित्'-शक्ति द्वारा आश्लिष्ट (संलग्न) है; किन्तु जीव सर्वदा ही अपनी (आरोपित) अविद्या द्वारा संवृत (सम्पूर्ण रूप से घिरा हुआ) है, अतएव सब प्रकार के क्लेशों का उद्‌गम स्थल है।

**अनुभाष्य**

११४। ईश्वरः-(श्री कृष्णः) सच्चिदानन्दः (सन्धिनी-सम्वित् ह्लादिनी-शक्तिमान्) ह्लादिन्या (यया खलु भगवान् स्वरूपानन्दविशेषी भवति, तयैव तं तमानन्द-मन्यानपानुभावयति, सा ह्लादिनी शक्तिः तया) संविदा (अद्वयज्ञानस्वरूप-भूतया चिच्छक्तया) आशिलष्टः (आलिङ्गितः); जीवः तु स्वाविद्यासंवृतः (स्वस्य आत्मनः भगवतः बद्धजीवमोहिन्या अविद्यया मायया शक्तया सम्यक् आवृतः सन्) संक्लेशनि-कराकरः (संक्लेशाः तु त्रिविधाः—''क्लेशास्तु पापं तद्बीजम्-विद्या चेति ते त्रिधा'' इति न्यायात्, तेषां निकरस्य पुञ्जस्य आकरः खनिः)।

जीव और नारायण को समान समझना ही पाषण्डता—

**जेइ मूढ़ कहे,—जीव ईश्वर हय 'सम'।**
**सेइ त' 'पाषण्डी' हय, दण्डे तारे यम॥''११५॥**

**११५। प० अनु०—**जो मूर्ख कहता है कि जीव और ईश्वर एक समान होते हैं, वह तो पाषण्डी है तथा यम उसे दण्ड प्रदान करते हैं।

**अनुभाष्य**

११५। 'पाषण्डी'—आदि तृतीय परिच्छेद ७८ संख्या द्रष्टव्य। मायावश जीव अथवा मायिक जड़वस्तु के साथ मायाधीश शुद्धसत्त्व चेतन-विग्रह श्रीविष्णु को 'एक' अथवा समान मानने वाला 'पाषण्डी' है। श्रीभक्तिसन्दर्भ के (२५५ संख्या)—'नामापराध-वर्णन-प्रसङ्ग' में एक अपराध 'श्रुति-शास्त्रनिन्दन' के वर्णन में—''यथा पाषण्डमार्गेण दत्तात्रेयऋर्षभदेवोपासकानां पाषाण्डिणाम्''; पुनः अन्य एक अपराध 'अहं-मम-बुद्धि' अथवा 'देहात्मबुद्धि' के वर्णन में—'देह-द्रविणादिनिमित्तक-'पाषण्ड'-शब्देन च दशापराधा एव लक्ष्यन्ते, पाषण्डमयत्वात् तेषाम्'', पुनः (२२३ संख्या में)—'उद्दिश्य देवता एवं जुहोति च ददाति च। स पाषण्डीति विज्ञेयः स्वतन्त्रो वापि कर्मसु॥' इति पाषण्डीति-त्वञ्च वैष्णव-मार्गद् भ्रष्टामत्यर्थः''; पुनः (१७९ संख्या) में 'विष्णुधर्म से विष्णुभक्त उपरिचर-वसु द्वारा पाषण्डि असुरों के उद्धार करने के वृत्तान्त का उल्लेख करके दैत्यगुरु शुक्राचार्य के आदेश से पाषण्डियों के द्वारा उपरिचरवसु को पाषण्ड मार्ग का उपदेश एवं ऐसा होने पर भी उनके अच्युत गोत्र के होने का वर्णन, पुनः (१५३ संख्या में) हरिनाम में अर्थवाद तथा वैष्णव-अपराध के वर्णन में—''तादृशापराधे भक्तिस्तम्भश्च श्रुयते। ''देहादिलोभार्थं ये पाषण्डा गुर्ववज्ञादिदशापराध-युक्ताः'' इत्यादि बहुत से स्थानों पर 'पाषण्ड' शब्द का उपयोग हुआ है। भाः ४/२/२८, ३०, ३२, ५/६/९ एवं १२/२/१३, ४३ इत्यादि बहुत से श्लोकों में पाषण्डियों की पाषण्डता का वर्णन है।

शास्त्र-प्रमाण—वैष्णव-तन्त्र वाक्य, पाद्मोत्तर-खण्ड (२३/१२) में और हरिभक्तिविलास (१/७३) में—

**यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदेवतैः।**
**समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्॥११६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११६। जो ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओं के साथ श्रीनारायण को 'एक समान' मानते हैं, वे निश्चित रूप से 'पाषण्डी' हैं।

**अनुभाष्य**

११६। यः (भाग्यहीनो जनः) तु (गर्हणार्थे) देवं नारायणं (ब्रह्मरुद्रोपास्यं तयोरधीश्वरं भगवन्तं विष्णुं) ब्रह्मरुद्रादिदेवतैः (चतुर्मुख-पञ्चमुखादि-नारायण दासभूतैः देवैः जीवरूपैः सह) समत्वेन (नित्यप्रभुणा सह देवाख्यनित्यदासैः समानतया) वीक्षते (पश्येत्), सः ध्रुवं (निश्चितम् एव) 'पाषण्डी' भवेत्—''अर्च्ये विष्णो शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे-जाति-बुद्धिर्विष्णोर्वा वैष्णवाणां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बु बुद्धिः। श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकल-कलुषहे शब्द सामान्यबुद्धिर्विष्णो सर्वेश्वरेशे तदितर समधीर्यस्य वा नारकी सः।'' इति पद्मपुराण वचनात्।

लोगों में प्रभु के 'कृष्ण' होने का दृढ़ विश्वास और स्तुति—

**लोक कहे,—''तोमाते कभु नहे 'जीव'-मति।**
**कृष्णेर सदृश तोमार आकृति-प्रकृति॥११७॥**
**'आकृत्ये' तोमारे देखि' 'व्रजेन्द्र-नन्दन'।**
**देहकान्ति पीताम्बर कैल आच्छादन॥११८॥**

**११७-११८। प० अनु०—**लोगों ने कहा—आप बिल्कुल भी जीव नहीं हो सकते, आपकी आकृति तथा प्रकृति श्रीकृष्ण के समान ही है। आकृति में

हम आपको व्रजेन्द्रनन्दन ही देख रहे है, किन्तु आपने अपनी देह की कान्ति तथा पीताम्बर को छिपा रखा है।

प्रिय भक्तों के निकट भगवान् के स्वरूप का स्वतः प्रकाशित होना—

**मृगमद वस्त्रे बान्धे, तबु ना लुकाय।**
**'ईश्वर-स्वभाव' तोमार ढाका नाहि जाय॥११९॥**

**११९। प॰ अनु॰—**मृगमद (कस्तूरी) को वस्त्र में बाँधने पर भी जैसे उसे छिपाया नहीं जा सकता, उसी प्रकार आपका ईश्वर स्वभाव छिपाने पर भी छिपाया नहीं जा सकता।

**अनुभाष्य**

११९। आदि तृतीय परिच्छेद ८५-८९ संख्या द्रष्टव्य है। जिस प्रकार मृगनाभि (कस्तूरी) के आँचल में बंधे होने पर भी कस्तूरी वस्त्र को भेद करके बाहर आ जाती है, तथा उसकी सुगन्ध सभी दिशाओं में फैल जाती है, उसी प्रकार आप भक्त जीव रूपी आवरण के द्वारा आत्मगोपन (स्वयं को छिपाने का प्रयास) करने पर भी आपका भगवत् स्वभाव छिपता नहीं है।

अधोक्ष्ज होने पर भी जगत् के आकर्षक—

**अलौकिक 'प्रकृति' तोमार—बुद्धि-अगोचर।**
**तोमा देखि' कृष्णप्रेमे जगत् पागल॥१२०॥**

**१२०। प॰ अनु॰—**आपकी अलौकिक प्रकृति हमारी बुद्धि के अगोचर है। आपका दर्शन करके जगत्वासी कृष्णप्रेम में पागल हो रहे हैं।

भगवान के दर्शन अथवा शुद्ध नाम के श्रवण-मात्र से बालक-वृद्ध-स्त्री, यहाँ तक कि अन्त्यज्य भी 'आचार्य' बनकर जगत् का उद्धार करने में समर्थ—

**स्त्री-बाल-वृद्ध, आर 'चण्डाल', 'यवन'।**
**जेइ तोमार एकबार पाय दरशन॥१२१॥**
**कृष्णनाम लय, नाचे, हञा उन्मत्त।**
**'आचार्य' हइल सेइ, तारिल जगत॥१२२॥**

**१२१-१२२। प॰ अनु॰—**स्त्री-बालक-वृद्ध तथा चण्डाल और यवन—जो कोई एकबार भी आपका दर्शन करता है, वह कृष्ण नाम का उच्चारण करता है, उन्मत्त होकर नृत्य करता है तथा आचार्य बनकर जगत का उद्धार करता है।

**दर्शनेर कार्य आछुक, जे तोमार 'नाम' शुने।**
**सेइ कृष्णप्रेमे मत्त, तारे त्रिभुवने॥१२३॥**
**तोमार नाम शुनि' हय श्वपच 'पावन'।**
**अलौकिक शक्ति तोमार ना जाय कथन॥१२४॥**

**१२३-१२४। प॰ अनु॰—**दर्शन का यह फल तो है ही है, जो कोई आपका नाम सुनता है, वही कृष्णप्रेम में मत्त होकर त्रिभुवन को तार देता है। आपके नाम को सुनकर कुकुर के माँस को खाने वाला श्वपच भी पवित्र हो जाता है। आपकी अलौकिक शक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीमद्भागवत (३/३३/६) में—

**यन्नामधेय-श्रवणानुकीर्त्तनाद्-**
**यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।**
**श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते**
**कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥१२५॥**

१२५। हे भगवन्, जिनके नाम श्रवण, अनुकीर्त्तन, प्रणाम और स्मरण करने मात्र से चण्डाल और यवन कुल में जन्मा व्यक्ति भी तत्क्षणात् सवन-यज्ञ के योग्य हो जाता है, ऐसे जो प्रभु आप हैं, आपके दर्शन से क्या नहीं हो सकता?

**अनुभाष्य**

१२५। मध्य षोडश परिच्छेद १८६ संख्या द्रष्टव्य।

उक्त समस्त ही प्रभु के 'तटस्थ' लक्षण, स्वरूपतः प्रभु—साक्षात् स्वयंरूप कृष्ण—

**एइमत' महिमा—तोमार 'तटस्थ'-लक्षण।**
**'स्वरूप'-लक्षणे तुमि—व्रजेन्द्रनन्दन॥''१२६॥**

**१२६। प० अनु०—**यह महिमा तो आपका तटस्थ-लक्षण है, स्वरूप-लक्षण तो आपका व्रजेन्द्रनन्दन होना है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२६। अन्य वस्तु के साथ तुलना नहीं करके जिस 'स्वतः सिद्ध लक्षण के द्वारा' वस्तु परिचित होती है, वही उसका 'स्वरूप'-लक्षण है। अन्य वस्तु के साथ तुलना करके जिन लक्षणों के द्वारा वस्तु का अपना परिचय साधित होता है, उस लक्षण को 'तटस्थ' कहते हैं। पूर्वोक्त महिमासमूह ने तटस्थ लक्षण के रूप में ही आपको 'व्रजेन्द्रनन्दन' कहकर स्थिर किया है। पुनः आपको देखने मात्र से ही 'व्रजेन्द्रनन्दन' के रूप में जो बोध उदित होता है, यही आपका 'स्वरूप' लक्षण है; स्वरूप लक्षण के द्वारा ही आपको 'कृष्ण' कहकर स्थिर किया जाता है।

सभी पर ही प्रभु की कृपा; उनका अपने घर जाना—

**सेइ सब लोके प्रभु प्रसाद करिल।**
**कृष्णप्रेमे मत्त लोक निज-घरे गेल॥१२७॥**

**१२७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने उन सब लोगों पर कृपा की तथा कृष्णप्रेम में मत्त लोग अपने घर लौट गये।

अक्रूर तीर्थ में रहकर लोगों का उद्धार—

**एइमत कतदिन 'अक्रूरे' रहिला।**
**कृष्ण-नाम-प्रेम दिया लोक निस्तारिला॥१२८॥**

**१२८। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु कुछ दिन तक अक्रूरतीर्थ रहे। वहाँ उन्होंने कृष्ण-नामप्रेम प्रदान करके लोगों का उद्धार किया।

सानोड़िया-विप्र के द्वारा मथुरा में सभी सज्जनों को ही प्रभु की सेवा का सुयोग प्रदान करके उद्धार करना—

**माधवपुरीर शिष्य सेइ त' ब्राह्मण।**
**मथुरार घरे-घरे करा' न निमन्त्रण॥१२९॥**

**१२९। प० अनु०—**श्रीमाधवेन्द्रपुरी के शिष्य वे ब्राह्मण मथुरा के घर-घर में श्रीमन्महाप्रभु का निमन्त्रण करा रहे थे।

**अनुभाष्य**

१२९। सेइ त' ब्राह्मण (वही ब्राह्मण),—सानोड़िया (मध्य सप्तदश परिच्छेद १७९ संख्या द्रष्टव्य)।

**मथुरार जत लोक ब्राह्मण-सज्जन।**
**भट्टाचार्य-स्थाने आसि' करे निमन्त्रण॥१३०॥**

**१३०। प० अनु०—**मथुरा के जितने भी सज्जन ब्राह्मण थे, वे सभी बलभद्र भट्टाचार्य के पास आकर श्रीमन्महाप्रभु के उद्देश्य से निमन्त्रण देते थे।

एकसाथ बहुत से व्यक्तियों के द्वारा निमन्त्रण करने पर भी, भट्ट के द्वारा एक-एक व्यक्ति का ही निमन्त्रण-स्वीकार—

**एकदिन 'दश', 'बिश' आइसे निमन्त्रण।**
**भट्टाचार्य एकेर मात्र करेन ग्रहण॥१३१॥**

**१३१। प० अनु०—**एक ही दिन में दस-बीस निमन्त्रण आ जाते, बलभद्र भट्टाचार्य केवल किसी एक ही निमन्त्रण को स्वीकार करते।

सभी के द्वारा एक ही साथ प्रभु को भिक्षा देने की इच्छा करने के कारण लोगों के लिये प्रभु की सेवा के अवसर का अभाव—

**अवसर ना पाय लोक निमन्त्रण दिते।**
**सेइ विप्र साधे लोक निमन्त्रण निते॥१३२॥**

**१३२। प० अनु०—**इसलिए सभी लोगों को

श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता था, इसलिए लोग सनोड़िया ब्राह्मण से ही कहते कि वे जिस किसी प्रकार से श्रीमन्महाप्रभु से निमन्त्रण स्वीकार करने के लिये कहें।

वैदिक सद् ब्राह्मणों का दीनतापूर्वक प्रभु को निमन्त्रण—

**कान्यकुब्ज-दाक्षिणात्येर वैदिक ब्राह्मण।**
**दैन्य करि', करे, महाप्रभुर निमन्त्रण॥१३३॥**

**१३३। प० अनु०—**कान्यकुब्ज-दक्षिण भारत के एक वैदिक ब्राह्मण ने अत्यधिक दीनतापूर्वक श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया।

**अनुभाष्य**

१३३। 'कान्यकुब्ज', 'सारस्वत', 'गौड़', 'मैथिल' और 'उत्कल'—पञ्चगौड़ ब्राह्मण एवं 'आन्ध्र', 'कर्णाट', 'गुर्जर', 'द्राविड़' और 'महा-राष्ट्र'—पञ्चदाक्षिणात्य ब्राह्मण,—ये दस प्रकार के वैदिक शुद्ध ब्राह्मण—जो वैदिक आचार का पालन करते थे अर्थात् तान्त्रिक कदाचार के द्वारा जिन्होंने अपने वैदिक अनुष्ठान का त्याग नहीं किया, उन सभी ने दैन्य पूर्वक महाप्रभु को निमन्त्रण किया था।

अक्रूर तीर्थ में आकर स्वयं ही रसोई बनाकर प्रभु को भिक्षा-दान—

**प्रातःकाले अक्रूरे आसि' रन्धन करिया।**
**प्रभुरे भिक्षा देन शालग्रामे समर्पिया॥१३४॥**

**१३४। प० अनु०—**उस कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने प्रातःकाल अक्रूरतीर्थ आकर रन्धन किया तथा शालग्राम को भोग समर्पित करके उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को भोजन दिया।

प्रभु के द्वारा अक्रूर घाट पर बैठकर ऐश्वर्य-पूजक अक्रूर के और माधुर्य-सेवक व्रजवासियों के अपने-अपने अधिकार अनुसार धाम दर्शन का विचार—

**एकदिन सेइ अक्रूर-घाटेर उपरे।**
**बसि' महाप्रभु किछु करेन विचारे॥१३५॥**
**'एइ घाटे अक्रूर वैकुण्ठ देखिल।**
**व्रजवासी लोक 'गोलोक' दर्शन कैल॥''१३६॥**

**१३५-१३६। प० अनु०—**एकदिन उसी अक्रूर घाट पर बैठकर श्रीमन्महाप्रभु कुछ विचार कर रहे थे। इसी घाट पर अक्रूर ने वैकुण्ठ का दर्शन किया था तथा यहीं पर व्रजवासी लोगों ने गोलोक का दर्शन किया था।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३५। अक्रूर घाट,—वृन्दावन और मथुरा के बीच में आधे रास्ते पर यह घाट है,—यहाँ रथ को खड़ा करके अक्रूर ने राम-कृष्ण को साथ लेकर यमुना-स्नान किया था। स्नान के समय अक्रूर ने जल में 'वैकुण्ठ का दर्शन किया था एवं व्रजवासी लोगों ने उस घाट के जल में गोलोक का दर्शन किया था।

प्रभु द्वारा जल में कूदना और डूबना—

**एत बलि' झाँप दिला जलेर उपरे।**
**डुबिया रहिला प्रभु जलेर भितरे॥१३७॥**

**१३७। प० अनु०—**इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने जल में छलाँग लगा दी तथा वे जल के अन्दर डूब गये।

कृष्णदास के रोने-चिल्लाने को सुनकर भट्ट द्वारा तत्क्षणात् आकर प्रभु को निकालना—

**देखि' कृष्णदास कान्दि' फुकार करिल।**
**भट्टाचार्य शीघ्र आसि' प्रभुरे उठाइल॥१३८॥**

**१३८। प० अनु०—**ऐसा देखकर कृष्णदास रोते-रोते बहुत जोर से सहायता हेतु पुकारने लगे। बलभद्र भट्टाचार्य ने जल्दी से आकर श्रीमन्महाप्रभु को बाहर निकाला।

भट्ट और ब्राह्मण का परामर्श—

**तबे भट्टाचार्य सेइ ब्राह्मणे लञा।**
**युक्ति करिला किछु निभृते बसिया॥१३९॥**
**''आजि आमि आछिलाङ्, उठाइलुँ प्रभुरे।**
**वृन्दावने डुबेन यदि, के उठाबे ताँरे??१४०॥**

**१३९-१४०। प० अनु०—**तब बलभद्र भट्टाचार्य ने सनोड़िया ब्राह्मण को अपने साथ लेकर एकान्त में बैठकर कुछ परामर्श किया। आज तो मैं साथ में था, मैंने श्रीमन्महाप्रभु को जल से बाहर निकाल लिया। यदि वे वृन्दावन में, जब मैं उनके साथ नहीं होता, डूब जाये, तब फिर उन्हें कौन निकालेगा?

लोगों की भीड़, भिक्षा की परेशानी और प्रभु के सदैव प्रेमावेश से भयभीत भट्ट की वृन्दावन से प्रभु को अन्य स्थान पर ले जाने की इच्छा—

**लोकेर संघट्ट, आर निमन्त्रणेर जञ्जाल।**
**निरन्तर आवेश प्रभुर,—ना देखिये भाल॥१४१॥**
**वृन्दावन हैते यदि प्रभुरे काड़िये।**
**तबे मङ्गल हय,—एइ भाल युक्ति हय॥''१४२॥**

**१४१-१४२। प० अनु०—**लोगों की भीड़, उस पर भी निमन्त्रण का जञ्जाल, साथ में निरन्तर श्रीमन्महाप्रभु का आवेश—यह सब देखकर मुझे लक्षण अच्छे नहीं लग रहे। यदि श्रीमन्महाप्रभु को वृन्दावन से ले जाकर अन्य किसी स्थान पर ले जा सकुँ, तभी मङ्गल होगा एवं मुझे यही उचित लग रहा है।

**अनुभाष्य**

१४२। काड़िये—ले जाऊँ।

ब्राह्मण द्वारा माघ स्नान के उपलक्ष्य में गङ्गा तट के पथ से प्रयाग में ले जाने का परामर्श—

**विप्र कहे,—''प्रयागे प्रभु लञा जाइ।**
**गङ्गातीर-पथे जाइ, तबे सुख पाइ॥१४३॥**
**'सोरोक्षेत्रे' आगे जाञा करि' गङ्गास्नान।**
**सेइ पथे प्रभु लञा करिये पयान॥१४४॥**
**माघ-मास लागिल, एबे यदि जाइये।**
**मकरे प्रयाग-स्नान कत दिन पाइये॥१४५॥**

**१४३-१४५। प० अनु०—**सनोड़िया ब्राह्मण ने कहा—श्रीमन्महाप्रभु को प्रयाग में ले जाओ। गङ्गा के तट वाले मार्ग पर जाना तभी मुझे प्रसन्नता होगी। पहले सोरो क्षेत्र में जाकर गङ्गास्नान करके उसी मार्ग से श्रीमन्महाप्रभु को लेकर आगे बढ़ जाना। माघ मास लग गया है, अभी यदि जायेंगे, तब फिर कुछ दिन के लिये मकर मास में प्रयाग-स्नान कर पायेंगे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४४। सोरोक्षेत्रे—मथुरा के सबसे निकटवर्ती गङ्गा तट पर ही सोरोक्षेत्र है।

**अनुभाष्य**

१४५। कर्मनिष्ठ व्यक्तियों के लिये माघमास में प्रयाग स्नान-विशेष फलप्रद है; ''माघे मासि गमिष्यन्ति गङ्गायामुनसङ्गमम्। गवां शतसहस्रस्य सम्यक् दतञ्च यत्फलम्। प्रयागे माघमासे वै—त्र्यहं स्नातस्य तत्फलम्॥' एवं ''सर्वाधिकारितां माघ-स्नातस्य ब्रुवता यतः'' इत्यादि व्यवस्था देखी जाती है।

अपने दुःख का निवेदन और सामयिक परामर्श-प्रदान—

**आपनार दुःख किछु करि' निवेदन।**
**'मकर-पँचसि' प्रयागे, करिह सूचन॥१४६॥**

**१४६। प० अनु०—**अपने दुःख का निवेदन करने के बाद सनोड़िया ब्राह्मण ने कहा कि

आप श्रीमन्महाप्रभु से कहना कि मकर मास में प्रयाग पहुँच जायेंगे।

**अनुभाष्य**

**१४६।** पँचसि,—पञ्चदशी-पूर्णिमा शब्द का अपभ्रंश।

प्रभु के निकट भट्ट के द्वारा भिक्षा के लिये
अनुरोध करने वालों की असुविधा का
वर्णन करने के बाद माघ के स्नान
के लिये प्रयाग में जाने का अनुरोध—

**गङ्गातीर-पथे सुख जानाइह ताँरे।''**
**भट्टाचार्य आसि' तबे कहिल प्रभुरे॥१४७॥**
**''सहिते ना पारि आमि लोकेर गड़बड़ि।**
**निमन्त्रण लागि' लोक करे हुड़ाहुड़ि॥१४८॥**
**प्रातःकाले आइसे लोक, तोमारे ना पाय।**
**तोमारे ना पाञा लोक मोर माथा खाय॥१४९॥**
**तबे सुख हय, जबे गङ्गापथे जाइये।**
**एबे यदि जाइ, 'मकरे' गङ्गास्नान पाइये॥१५०॥**

भट्ट की अधीरता—

**उद्विग्न हइल प्राण, सहिते ना पारि।**
**प्रभुर जे आज्ञा हय, सेइ शिरे धरि॥''१५१॥**

**१४७-१५१। प० अनु०—**आप श्रीमन्महाप्रभु को गङ्गा तट वाले पथ के सुख के विषय में भी बताना। तब बलभद्र भट्टाचार्य ने आकर श्रीमन्महाप्रभु से कहा—मैं लोगों की गड़बड़ी अर्थात् उनका इतना अधिक आना-जाना तथा निमन्त्रण के लिये परेशान करना मैं और अधिक सहन नहीं कर पा रहा हूँ। निमन्त्रण के लिये तो लोगों में होड़ लगी हुयी है। लोग प्रातःकाल ही आ जाते हैं, किन्तु आप यहाँ पर होते नहीं है। आपके नहीं मिलने पर लोग मेरा दिमाग खाते हैं। अब तो तभी सुख मिलेगा, जब हम गङ्गा के मार्ग पर जायेंगे। यदि हम अभी जायेंगे, तभी हम मकर में गङ्गास्नान कर पायेंगे। यद्यपि अब मेरे प्राण उद्विग्न हो गये हैं तथा मैं और सहन नहीं कर पा रहा हूँ तथापि आपकी जो आज्ञा होगी, मैं उसी को शिरोधार्य करूँगा।

**अनुभाष्य**

**१४८।** गड़बड़ि,—लोगों के आने-जाने से होने वाली गड़बड़ी।

वृन्दावन को छोड़ने की इच्छा नहीं होने
पर भी भट्ट की इच्छा की पूर्त्ति और
भट्ट की स्तुति—

**यद्यपि वृन्दावन-त्यागे नाहि प्रभुर मन।**
**भक्त-इच्छा पूरिते कहे मधुर वचन॥१५२॥**
**''तुमि आमाय आनि' देखाइला वृन्दावन।**
**एइ 'ऋण' आमि नारिब करिते शोधन॥१५३॥**
**जे तोमार इच्छा, आमि सेइ त' करिब।**
**जाँहा लञा जाह तुमि, ताँहाई जाइब॥''१५४॥**

**१५२-१५४। प० अनु०—**यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु की वृन्दावन को छोड़कर जाने की बिलकुल भी इच्छा नहीं थी, तब भी भक्त की इच्छा को पूर्ण करने के लिये उन्होंने मधुर वचन कहें—तुमने मुझे अपने साथ लाकर मुझे वृन्दावन के दर्शन कराये हैं, मैं तुम्हारे इस ऋण को कभी भी नहीं चुका पाऊँगा। तुम्हारी जैसी इच्छा है, मैं वैसा ही करूँगा। तुम मुझे जहाँ ले जाओगे, मैं वहीं जाऊँगा।

प्रातः स्नान के बाद भावि-विच्छेद
के स्मरण से प्रेमावेश—

**प्रातःकाले महाप्रभु प्रातःस्नान कैल।**
**'वृन्दावन छाड़िब' जानि' प्रेमावेश हैल॥१५५॥**

**१५५। प० अनु०—**प्रातःकाल श्रीमन्महाप्रभु ने प्रातः स्नान किया। वृन्दावन को छोड़कर जाऊँगा—यह सोचकर प्रेमाविष्ट हो गये।

भट्ट के द्वारा प्रभु को गोकुल जाने के लिये अनुरोध और नौका में बैठाकर दूसरी पार गमन—

**बाह्य विकार नाहि, प्रेमाविष्ट मन।**
**भट्टाचार्य कहे,—चल, जाइ महावन॥१५६॥**
**एत बलि' महाप्रभुरे नौकाय बसाञा।**
**पार करि' भट्टाचार्य चलिला लञा॥१५७॥**

**१५६-१५७। प० अनु०—**यद्यपि बाहरी रूप में श्रीमन्महाप्रभु में कोई विकार नहीं था तथापि उनका मन प्रेम में आविष्ट था। बलभद्र भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा—चलिए, हम लोग महावन चलें। इतना कहकर बलभद्र भट्टाचार्य श्रीमन्महाप्रभु को नौका में बैठाकर नदी पार कराके चल पड़े।

**अनुभाष्य**

१५६। महावन,—गोकुल।

राजपूत कृष्णदास और मथुरा के सनोड़िया ब्राह्मण—दोनों ही मार्ग को जानने वाले—

**प्रेमी कृष्णदास, आर सेइ त' ब्राह्मण।**
**गङ्गातीरे-पथे जाइवार विज्ञ दुइजन॥१५८॥**

**१५८। प० अनु०—**प्रेमी कृष्णदास तथा सनोड़िया ब्राह्मण—दोनों ही गङ्गातट वाले मार्ग को भली-भाँति जानते थे।

मार्ग में एक वृक्ष के नीचे सभी का विश्राम के उद्देश्य से बैठना—

**जाइते एक वृक्षतले प्रभु सबा लञा।**
**बसिला, सबार पथ-श्रान्ति देखिया॥१५९॥**

**१५९। प० अनु०—**जाते समय श्रीमन्महाप्रभु सभी की थकावट को देखकर सभी भक्तों के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

गैयाओं को घूमते देखकर व्रजलीला का स्मरण—

**सेइ वृक्ष-निकटे चरे बहु गाभीगण।**
**ताहा देखि' महाप्रभुर उल्लसित मन॥१६०॥**

**१६०। प० अनु०—**उस वृक्ष के निकट ही बहुत सी गैयाएँ चर रही थी। उन्हें घास चरते देखकर श्रीमन्महाप्रभु का मन बहुत उल्लसित हुआ।

हठात् वंशीध्वनि के श्रवण से प्रभु की प्रेम-मूर्च्छा—

**आचम्बिते एक गोप वंशी बाजाइल।**
**शुनि' महाप्रभुर महा-प्रेमावेश हैल॥१६१॥**
**अचेतन हञा प्रभु भूमिते पड़िला।**
**मुखे फेना पड़े, नासाय श्वास रुद्ध हैला॥१६२॥**

**१६१-१६२। प० अनु०—**अचानक एक गोप ने वंशी बजायी, उसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु में अत्यधिक प्रेमावेश हो गया। श्रीमन्महाप्रभु मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उनके मुख से झाग निकलने लगी तथा उनकी नाक में श्वास बन्द हो गया।

ऐसे समय वहाँ घोड़ों पर सवार दस पठानों का आगमन—

**हेनकाले ताँहा आशोयार दश आइला।**
**म्लेच्छ-पाठान घोड़ा हैते उतरिला॥१६३॥**

**१६३। प० अनु०—**उसी समय वहाँ पर घोड़ों पर सवार दस सैनिक आये। उनमें से म्लेच्छ-पाठान घोड़े से उतरा।

**अनुभाष्य**

१६३। आशोयार—घोड़े पर सवार सेना।

प्रभु के साथी चारों लोगों को ही 'प्रभु की हत्या करने वाले डाकु' समझकर सरदार द्वारा उनको मारने का प्रयास—

**प्रभुरे देखिया म्लेच्छ करये विचार।**
**'एइ यति-पाश छिल सुवर्ण अपार॥१६४॥**

१६४। **प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु की अवस्था देखकर म्लेच्छ विचार करने लगा कि लगता है इस सन्यासी के पास बहुत अधिक सोना था।

**एइ चारि बाटोयार धुतुरा खाओयाञा।**
**मारि' डारियाछे, यतिर सब धन लञा॥१६५॥**

१६५। **प० अनु०—**इन चारों डकैतों ने सन्यासी को धतूरा खिलाकर उसका सबकुछ लूट लिया है तथा उसे मार डाला है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६५। बाटोयार,—मार्ग में जो डकैती कर लेते हैं; मारि' डारि याछे,—मार डाला है।

**अनुभाष्य**

१६५। बाटोयार—असहाय पथिकों को लूटने वाले डाकु।

**तबे सेइ पाठान चारि-जनेरे बाँधिल।**
**काटिते चाहे, गौड़िया सब काँपिते लागिल॥१६६॥**

१६६। **प० अनु०—**ऐसा विचार करके उस पाठान ने उन चारों लोगों को बाँध दिया तथा अब वह उन्हें मारना चाहता था। बलभद्र भट्टाचार्य तथा उनके साथ आया उनका ब्राह्मण सेवक काँपने लगे।

अनुभाष्य

१६६। चारिजनेरे (चार लोगों को),—१) कृष्ण-दास राजपूत, २) माधवेन्द्र पुरी के शिष्य 'सानो-ड़िया ब्राह्मण' ३) बलभद्र भट्टाचार्य, ४) बलभद्र के साथी ब्राह्मण।

कृष्णदास और मथुरा के ब्राह्मण द्वारा
निर्भय होकर पाठान को अपना
परिचयादि प्रदान—

**कृष्णदास—राजपूत, निर्भय से बड़।**
**सेइ विप्र—निर्भय, से—मुखे बड़ दड़॥१६७॥**

१६७। **प० अनु०—**कृष्णदास तो राजपूत होने के कारण बिलकुल निडर थे। सनोड़िया ब्राह्मण भी निडर थे तथा बातचीत करने में बहुत निपुण थे।

**अनुभाष्य**

१६७। मुखे बड़ दड़,—अत्यधिक निपुण वक्ता, बातचीत-परिचय अथवा कथावार्त्ता में पटु।

**विप्र कहे,—"पाठान, तोमार पात्सार दोहाई।**
**चल तुमि, आमि सिक्‌दार-पाश जाई॥१६८॥**

१६८। **प० अनु०—**सनोड़िया ब्राह्मण ने कहा—पाठान, तुम्हें बादशाह की दुहायी (शपथ) है। तुम हमें अपने सरदार के पास लेकर चलो।

अनुभाष्य

१६८। सिक्‌दार,—शान्तिरक्षक कर्मचारी, अथवा पद पर विराजमान सेना का अध्यक्ष, अथवा सिक्का (बाद्‌शाही मुद्रा) दार (भारप्राप्त कर्मचारी)।

**एइ यति—आमार गुरु, आमि—माथुर-ब्राह्मण।**
**पात्सार आगे आमार आछे 'शत जन'॥१६९॥**

१६९। **प० अनु०—**ये संन्यासी हमारे गुरु हैं और मैं मथुरा का ब्राह्मण हूँ। मैं ऐसे सैकड़ो लोगों को जानता हूँ, जो बादशाह की नौकरी करते हैं।

**एइ यति व्याधिते कभु हयेन मूर्च्छित।**
**अबँहि चेतन पाइबे, हइबे सम्वित॥१७०॥**

१७०। **प० अनु०—**ये सन्यासी व्याधि के कारण कभी-कभी मूर्च्छित हो जाते हैं। देखना, थोड़ी ही देर में इनमें चेतनता आ जायेगी, तथा इन्हें सब ज्ञान हो जायेगा।

अमृतप्रवाह भाष्य

१७०। अबँहि,—अभी।

अनुभाष्य

१७०। सम्वित्,—ज्ञान।

**क्षणेक इँहा बैस, बान्धि' राखह सबारे।**
**इँहाके पुछिया, तबे मारिह आमारे॥"१७१॥**

१७१। **प० अनु०—**थोड़ी देर तक यहीं बैठो। हम सबको भले ही बाँधकर रखो। इससे पूछने के बाद ही हमें मारना।

पाठान के द्वारा क्रोधपूर्वक सभी को 'डाकू' कहना—

**पाठान कहे,—"तुमि पश्चिमा माथुर दुइजन।**
**'गौड़िया' ठक्, एइ काँपे दुइजन॥"१७२॥**

१७२। **प० अनु०—**पाठान ने कहा—तुम दोनों पश्चिम भारत के मथुरा के रहने वाले तथा काँपने वाले ये दोनों गौड़ीय (बङ्गाल के रहने वाले) ठग हो।

**कृष्णदास कहे,—"आमार घर एइ ग्रामे।**
**दुइशत तुर्की आछे, शतेक कामाने॥१७३॥**

१७३। **प० अनु०—**कृष्णदास ने कहा—मेरा घर इसी ग्राम में है। वहाँ दो सौ तुर्की रहते हैं, तथा उनके पास एक सौ तोपें हैं।

उसके उत्तर में कृष्णदास द्वारा पाठान को भय दिखाना और कड़वे वचन कहना—

**एखनि आसिबे सब, आमि यदि फुकारि।**
**घोड़ा-पिड़ा लुटि' लबे तोमा-सबा-मारि'॥१७४॥**
**गौड़िया-'बाटपाड़' नहे, तुमि-'बाटपाड़'।**
**तीर्थवासी लुठ', आर चाह' मारिवार॥"१७५॥**

**१७४-१७५।** यदि मैं उन्हें पुकारूँगा, तो वे सभी अभी आ जायेंगे। वे तुम सबको मार करके तुम्हारे घोड़े तथा उन पर रखे सारे समान को ले लेंगे। गौड़ीय—ठग नहीं, बल्कि तुम ही ठग हो। तुम लोग तीर्थयात्रियों को लूटते हो तथा उन्हें मारना चाहते हो।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१७४। **घोड़ा-पिड़ा,—**घोड़ा तथा उसकी पीठ पर स्थित आसन आदि द्रव्य।

### अनुभाष्य

१७४। **फुकारि,—**वंशीध्वनि करके।

पाठान का भय—

**शुनिया पाठान मने सङ्कोच हइल।**
**हेनकाले महाप्रभु 'चैतन्य' पाइल॥१७६॥**

**१७६। प० अनु०—**कृष्णदास की बात सुनकर पाठान के मन में कुछ सङ्कोच हुआ। उसी समय श्रीमन्महाप्रभु में चेतनता आ गयी।

प्रभु की बाह्यदशा और नृत्य-कीर्त्तन—

**हुङ्कार करिया उठे, बले 'हरि' 'हरि'।**
**प्रेमावेशे नृत्य करे उर्द्धबाहु करि'॥१७७॥**

**१७७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु 'हरि' 'हरि' बोलते हुए हुङ्कार करके उठ खड़े हुए तथा हाथ उठाकर प्रेमावेश में नृत्य करने लगे।

पापी म्लेच्छों को हरिनाम-श्रवण करने में कष्ट—

**प्रेमावेशे प्रभु जबे करेन चित्कार।**
**म्लेच्छेर हृदये जेन लागे शैलधार॥१७८॥**

**१७८। प० अनु०—**प्रेमावेश में जब श्रीमन्महाप्रभु चीत्कार कर रहे थे तब म्लेच्छों को ऐसा लग रहा था मानो कोई उनके हृदय में तेज धार वाला अस्त्र लग रहा हो।

### अनुभाष्य

१७८। लागे शैलधार,—शल्य की धार की भाँति चोट लगी।

म्लेच्छों के द्वारा तत्क्षणात् चारों लोगों को खोल देना; प्रभु के लिये भक्त द्रोह के दर्शन के अवकाश का अभाव—

**भय पाञा म्लेच्छ छाड़ि' दिल चारिजन।**
**प्रभु ना देखिल निज-गणेर बन्धन॥१७९॥**

**१७९। प० अनु०—**भयभीत होकर म्लेच्छ ने

चारों लोगों को छोड़ दिया। श्रीमन्महाप्रभु ने अपने साथियों को बँधे हुए नहीं देखा।

म्लेच्छ को देखकर प्रभु द्वारा भाव
का सम्वरण (छिपाना)—

**भट्टाचार्य आसि' प्रभुरे धरि' बसाइल।**
**म्लेच्छगण देखि' महाप्रभुर 'बाह्य' हैल॥१८०॥**

**१८०। प० अनु०—**बलभद्र भट्टाचार्य ने आकर श्रीमन्महाप्रभु को पकड़कर बैठाया। म्लेच्छों को देखकर श्रीमन्महाप्रभु को बाह्यज्ञान हो आया।

म्लेच्छों के द्वारा प्रभु की वन्दना और
चारों के विरुद्ध शिकायत—

**म्लेच्छगण आसि' प्रभुर वन्दिल चरण।**
**प्रभु-आगे कहे,—"एइ ठक् चारिजन॥१८१॥**
**एइ चारि मिलि' तोमाय धुतुरा खाओयाञा।**
**तोमार धन लैल, तोमाय पागल करिया॥"१८२॥**

**१८१-१८२। प० अनु०—**म्लेच्छों ने आकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना की। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष कहा—ये चारों लोग ठग हैं। इन चारों ने मिलकर तुम्हें धतूरा खिलाकर पागल करके तुम्हारा सारा धन ले लिया है।

चारों लोगों को ही 'अपने लोग' कहकर
प्रभु द्वारा उनका परिचय प्रदान—

**प्रभु कहेन,—"ठक् नहे, मोर 'सङ्गी' जन।**
**भिक्षुक सन्यासी, मोर नाहि किछु धन॥१८३॥**
**मृगी-व्याधिते आमि कभु हइ अचेतन।**
**एइ चारि दया करि' करेन पालन॥"१८४॥**

**१८३-१८४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—ये लोग ठग नहीं, बल्कि मेरे साथी हैं और मैं भिक्षुक संन्यासी हूँ, मेरे पास कोई धन नहीं है। मैं मिरगी की बीमारी के कारण कभी-कभी मूर्च्छित हो जाता हूँ। ये चारों लोग दया करके मेरा पालन करते हैं।

पाठानों में से एक 'मौलाना'—

**सेइ म्लेच्छ-मध्ये एक परम-गम्भीर।**
**कालवस्त्र परे सेइ,—लोके कहे 'पीर'॥१८५॥**

**१८५। प० अनु०—**उन म्लेच्छों में से एक व्यक्ति बहुत गम्भीर था। वह काले रङ्ग के वस्त्र पहनता था तथा लोग उसे पीर कहते थे।

प्रभु के दर्शन से उसमें नम्रभाव
और निर्विशेष-ब्रह्म को
स्थापित करने की चेष्टा—

**चित आर्द्र हैल ताँर प्रभुरे देखिया।**
**'निर्विशेष-ब्रह्म' स्थापे स्वशास्त्र उठाञा॥१८६॥**

**१८६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को देखकर उस पीर का चित्त द्रवीभूत हो गया। वह अपने शास्त्र की बात उठाकर निर्विशेष-ब्रह्म की स्थापना करने लगा।

### अनुभाष्य

**१८६।** निर्विशेष-ब्रह्म,—अज्ञेय, परिचय-रहित 'ईश्वर'। 'खुदा' (ईश्वर) और 'बन्दा' (जीव)—इन दो नित्य भावों से रहित चिद् विलास हीन पारलौकिक अवस्थान।

मुस्लिम-शास्त्र की युक्ति के द्वारा ही प्रभु द्वारा
उसके मत का खण्डन—

**'अद्वैत-ब्रह्मवाद' सेइ करिल स्थापन।**
**ताँर शास्त्रयुक्तये ताँरे प्रभु कैला खण्डन॥१८७॥**
**जेइ जेइ कहिल, प्रभु सकलि खण्डिल।**
**उत्तर ना आइसे मुखे, महास्तब्ध हैल॥१८८॥**

**१८७-१८८। प० अनु०—**उस पीर ने अद्वैत ब्रह्मवाद की स्थापना की, श्रीमन्महाप्रभु ने उसी की शास्त्रीय युक्तियों के द्वारा उसका खण्डन किया। उसने जो-जो कहा, श्री मन्महाप्रभु ने उस सबका खण्डन कर दिया। उस पीर के मुख से कुछ भी नहीं निकला, वह बिलकुल स्तब्ध हो गया।

मुस्लिम-शास्त्रों में सर्वप्रथम निर्विशेष-तत्त्व को स्थापित करने के बाद अन्त में सविशेष-ब्रह्म का ही स्थापन—

**प्रभु कहे,—''तोमार शास्त्र स्थापे 'निर्विशेषे'।**
**ताहा खण्डि' 'सविशेष' स्थापियाछे शेषे॥१८९॥**

**१८९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—पहले तो तुम्हारे शास्त्र निर्विशेष का स्थापन करते हैं, किन्तु अन्त में उसी का खण्डन करके सविशेष की स्थापना करते हैं।

कुरान में सबसे अन्त में सविशेष-ब्रह्म कृष्ण का परिचय—

**तोमार शास्त्रे कहे शेषे 'एकइ ईश्वर'।**
**'सर्वैश्वर्यपूर्ण' तेंहो—श्याम-कलेवर॥१९०॥**
**सच्चिदानन्द-देह, पूर्णब्रह्म-स्वरुप।**
**'सर्वात्मा', 'सर्वज्ञ', नित्य सर्वादि-स्वरूप॥१९१॥**
**सृष्टि, स्थिति, प्रलय ताँहा हैते हय।**
**स्थूल-सूक्ष्म-जगतेर तिंहो समाश्रय॥१९२॥**

**१९०-१९२। प० अनु०—**तुम्हारे शास्त्र में अन्त में एक ही ईश्वर की बात कही गयी है। वे ईश्वर सब प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं तथा उनका कलेवर श्याम वर्ण का है। उनकी देह सच्चिदानन्द है, वे पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं, वे सर्वात्मा, सर्वज्ञ तथा नित्य और सबसे आदि स्वरूप हैं। सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय उन्हीं के द्वारा ही होता है। स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् के वहीं वास्तविक आश्रय हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८२-१९०। स्वशास्त्र,—कुराण; मुसलमानों में 'सूफि' नामक एक सम्प्रदाय है, इनका मत ही 'निर्विशेष ब्रह्म' अथवा 'अद्वैत ब्रह्मवाद है, इनका महावाक्य—''अनलहक्'' है। यह सूफि मत शाङ्कर मत से उत्पन्न हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

तुम्हारे मोहम्मद के शास्त्र में मोहम्मद के सप्तम स्वर्ग में ईश्वर के दर्शन के वर्णन में ईश्वर का पूर्ण विग्रह स्वीकार किया गया है।

उन भगवान की प्रीति अथवा भक्ति ही संसार-बन्धन से मुक्त करने वाली और परम-पुरुषार्थ—

**'सर्वश्रेष्ठ, सर्वाराध्य, कारणेर कारण।**
**ताँर भक्त्ये हय जीवेर संसार-तारण॥१९३॥**
**ताँर सेवा बिना जीवेर ना जाय 'संसार'।**
**ताँहार चरणे प्रीति—'पुरुषार्थ-सार'॥१९४॥**

**१९३-१९४। प० अनु०—**वे ईश्वर सर्वश्रेष्ठ, सभी के आराध्य तथा कारणों के भी कारण हैं। उनकी भक्ति से जीव संसार से तर जाता है। उनकी सेवा के बिना जीवों का संसार क्षय नहीं होता। उन्हीं ईश्वर के चरणों में प्रीति का होना ही सभी पुरुषार्थों का सार है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९४। उन ईश्वर की ''एबादत'' अर्थात् पाँच समय नमाज आदि सेवा नहीं करने से जीव को पुरुषार्थ की प्राप्ति नहीं होती। तुम्हारे शास्त्र में प्रीति को ही पुरुषार्थ कहा गया है; उसमें कर्म-योग-ज्ञान आदि को स्थापित करके अन्त में उसका खण्डन करके ईश्वर की 'एबादत' अर्थात् सेवा की श्रेष्ठता ही स्थापित हुई है।

भगवद्-प्रेम की महिमा—

**मोक्षादि आनन्द जार नहे एक 'कण'।**
**पूर्णानन्द-प्राप्ति ताँर चरण-सेवन॥१९५॥**

**१९५। प० अनु०—**मोक्ष आदि आनन्द उसके एक कण के समान भी नहीं है। पूर्णानन्द की प्राप्ति तो उनके चरणों की सेवा में है।

कुराण में पहले 'कर्म', 'ज्ञान', 'योग' के विषय में बतलाकर अन्त में भगवान् की भक्ति ही संस्थापित—

**'कर्म', 'ज्ञान', 'योग' आगे करिया स्थापन।**
**सब खण्डि' स्थापे 'ईश्वर', ताँहार सेवन'॥१९६॥**

**१९६। प० अनु०—**तुम्हारे शास्त्र पहले कर्म,

ज्ञान, योग की स्थापना करके बाद में सबका खण्डन करके ईश्वर तथा उनकी सेवा की ही स्थापना करते हैं।

साधारणतः मुस्लिम-पण्डितों में कुराण के वास्तविक तात्पर्य के ज्ञान का अभाव; पूर्व में वर्णित कर्म और ज्ञान की विधि की अपेक्षा बाद में वर्णित भक्ति की विधि ही बलवान—

**तोमार पण्डित-सबार नाहि शास्त्र-ज्ञान।**
**पूर्वापर-विधि-मध्ये 'पर'—बलवान्॥१९७॥**

**१९७। प० अनु०—**तुम्हारे पण्डितों को शास्त्र-ज्ञान नहीं है। वास्तव में पूर्व और पर विधि में से पर विधि ही बलवान् होती है अर्थात् पूर्व (पहले) कही गयी बात से अधिक बलवान पर (बाद) में कही गयी बात ही होती है।

मौलाना को कुराण के वास्तविक-निर्णय करने का अनुरोध—

**निज-शास्त्र देखि' तुमि विचार करिया।**
**कि लिखियाछे शेषे कह निर्णय करिया॥"१९८॥**

**१९८। प० अनु०—**अपने शास्त्र को देखकर तुम विचार करके तुम मुझे निर्णय करके बतलाओ कि उसमें अन्त में क्या लिखा है।

मौलाना के द्वारा प्रभु के वचनों की 'सत्यता' का अनुमोदन; मुस्लिम पण्डितों के हृद्-दौर्बल्य को स्वीकार करना—

**म्लेच्छ कहे,—"जेइ कह, सेइ 'सत्य' हय।**
**शास्त्रे लिखियाछे, केह लइते ना पारय॥१९९॥**

**१९९। प० अनु०—**म्लेच्छ ने कहा—आप जो कह रहे हैं, वह सच है। शास्त्रों में तो ऐसा ही लिखा है, किन्तु उसे कोई समझ नहीं पाता।

उनकी निर्विशेष तत्व में ही दृढ़ आस्था, चिन्मय सविशेष-तत्व की सेवा में आस्था नहीं—

**'निर्विशेष-गोसाञि' लञा करेन व्याख्यान।**
**'साकार-गोसाञि'—सेव्य, कारो नाहि ज्ञान॥२००॥**

**२००। प० अनु०—**निर्विशेष ईश्वर को लेकर ही सभी व्याख्या करते हैं, किन्तु ईश्वर साकार तथा सेव्य हैं, इसका किसी को कोई ज्ञान नहीं है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१९९-२००। पीर की भाँति काले वस्त्र को धारण करने वाले म्लेच्छ आचार्य ने कहा,—हमारे शास्त्र की गूढ़ बात साधारण पण्डित नहीं समझ सकते; इसलिए लोग हमारे अल्ला के 'निराकार भाव' को लेकर ही व्याख्या करते है। इसे अधिकांश लोग नहीं जानते कि चरम अवस्था में उनका सच्चिदानन्द आकार ही सेव्य है।

*अष्टादश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

### अनुभाष्य

२००। **गोसाञि,—**आराध्य वस्तु भगवान्; **साकार,—**मनुष्य के भोग्य जड़ीय ज्ञान को लाँघकर त्रिगुणातीत अप्राकृत सविशेष विग्रह अथवा चिन्मय आकार से युक्त।

प्रभु को 'परमेश्वर' मानना और कृपा की याचना—

**सेइ त' 'गोसाञि' तुमि—साक्षात् 'ईश्वर'।**
**मोरे कृपा कर, मुञि—अयोग्य पामर॥२०१॥**

**२०१। प० अनु०—**आप साक्षात् वही ईश्वर हैं। मुझ पर कृपा कीजिए, मैं अयोग्य तथा पतित हूँ।

मौलाना के द्वारा स्वयं साधन और साध्य वस्तु की मीमांसा की चेष्टा में असमर्थता का ज्ञापन—

**अनेक देखिनु मुञि म्लेच्छ-शास्त्र हैते।**
**'साध्य-साधन-वस्तु' नारि निर्द्धारिते॥२०२॥**

**२०२। प० अनु०—**मैंने म्लेच्छ-शास्त्रों में बहुत ढूँढ़ कर देखा है, किन्तु मैं साध्य तथा साधन को निर्द्धारित नहीं कर पाया।

प्रभु के दर्शन से मौलाना की जिह्वा पर स्वतः ही कृष्णनाम की स्फूर्त्ति और जड़ीय अभिमान का दूर होना—

**तोमा देखि' जिह्वा मोर बले 'कृष्णनाम'।**
**'आमि—बड़ ज्ञानी', एइ गेल अभिमान॥२०३॥**

**२०३। प॰ अनु॰—**आपको देखकर मेरी जिह्वा कृष्णनाम बोल रही हैं। 'मैं बहुत बड़ा ज्ञानी हूँ'— मेरा यह अभिमान भी दूर हो गया है।

प्रभु को प्रणाम करके साध्य-साधन की जिज्ञासा—

**कृपा करि' बल मोरे 'साध्य-साधने'।''**
**एत बलि' पड़े महाप्रभुर चरणे॥२०४॥**

**२०४। प॰ अनु॰—**आप कृपा करके मुझे साध्य तथा साधन के विषय में बतलाइये। इतना कहकर वे श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में पड़ गये।

प्रभु के द्वारा उसे आश्वासन, कृष्णनाम के आभास से ही उसके पापपुञ्ज-विनाश—

**प्रभु कहे,—''उठ, कृष्णनाम तुमि लइला।**
**कोटि-जन्मेर पाप गेल, 'पवित्र' हइला॥२०५॥**

**२०५। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—उठो, तुमने कृष्णनाम का उच्चारण किया है, उससे तुम्हारे करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो गये है तथा तुम पवित्र हो गये हो।

प्रभु के आदेश से सभी के द्वारा कृष्णनाम-ग्रहण—

**'कृष्ण' कह 'कृष्ण' कह,—कैला उपदेश।**
**सबे 'कृष्ण' कहे, सबार हैल प्रेमावेश॥२०६॥**

**२०६। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने वहाँ पर उपस्थित सभी मलेच्छों को उपदेश दिया कि 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करो, कृष्ण नाम का उच्चारण करो। सभी कृष्ण नाम का उच्चारण करने लगे, सभी में प्रेमावेश हो गया।

प्रभु के द्वारा उसका 'रामदास'-नाम-संस्कार प्रदान—

**'रामदास' बलि' प्रभु ताँर कैल नाम।**
**आर एक पाठान, ताँर नाम—'बिजली-खाँन'॥२०७॥**

पाठानों के सरदार बिजली खाँ का परिचय—

**अल्प वयस ताँर, राजार कुमार।**
**'रामदास' आदि पाठान—चाकर ताँहार॥२०८॥**

**२०७-२०८। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने उस पीर को रामदास कहकर उसका नामकरण किया। उन लोगों में से अन्य एक पठान जिसका नाम बिजली खाँन था, उसकी आयु बहुत कम थी तथा वह राजा का पुत्र था। रामदास आदि पाठान उसके नौकर थे।

उसके द्वारा भी प्रभु के श्रीचरणों में शरण-ग्रहण, प्रभु के द्वारा उसके मस्तक पर अपने चरण अर्पित करना—

**'कृष्ण' बलि' पड़े सेइ महाप्रभुर पाय।**
**प्रभु श्रीचरण दिल ताँहार माथाय॥२०९॥**

**२०९। प॰ अनु॰—**वह बिजली खाँन भी कृष्ण नाम का उच्चारण करके श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में पड़ गया। श्रीमन्महाप्रभु ने अपने चरण उसके मस्तक पर रख दिये।

प्रभु की यात्रा, उन सब पाठानों के द्वारा वैराग्यधर्म को स्वीकार करना—

**ताँ-सबारे कृपा करि' प्रभु त' चलिला।**
**सेइ त' पाठान सब 'वैरागी' हइला॥२१०॥**

**२१०। प॰ अनु॰—**उन सब पर कृपा करके श्रीमन्महाप्रभु तो चल दिये, किन्तु वे सब पाठान वैरागी बन गये।

उनकी 'पाठान-वैष्णव' के रूप में ख्याति और उनके द्वारा सर्वत्र प्रभु के गुणों का गान—

**'पाठान-वैष्णव' बलि' हैल ताँर ख्याति।**
**सर्वत्र गाहिया बुले महाप्रभुर कीर्ति॥२११॥**

**२११। प० अनु०—**उन सबकी 'पाठान-वैष्णव' के नाम से प्रसिद्धि हो गयी, वे सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभु के गुणों का गान गाते हुए घूमने लगे।

सर्वत्र महाभागवत बिजली खाँ
की महिमा का विस्तार—

**सेइ बिजली-खाँन हैल 'महा-भागवत'।**
**सर्वतीर्थे हैल ताँर परम-महत्व॥२१२॥**

**२१२। प० अनु०—**वह बिजली-खाँन महाभागवत बन गया तथा सभी तीर्थों में उनकी अत्यधिक महिमा हो गयी।

युक्तप्रदेश में आकर प्रभु द्वारा म्लेच्छ का उद्धार—

**ऐछे लीला करे प्रभु श्रीकृष्णचैतन्य।**
**'पश्चिमे' आसिया कैल यवनादि धन्य॥२१३॥**

**२१३। प० अनु०—**श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ऐसी लीला करते हैं। पश्चिम भारत में आकर उन्होंने यवनों को भी धन्य कर दिया।

सोरोक्षेत्र में गङ्गास्नान और गङ्गातट
के पथ से प्रयाग में गमन—

**सोरोक्षेत्रे आसि' प्रभु कैला गङ्गास्नान।**
**गङ्गातीर-पथे कैला प्रयागे पयाण॥२१४॥**

**२१४। प० अनु०—**सोरो क्षेत्र में आकर श्रीमन्महाप्रभु ने गङ्गास्नान किया तथा गङ्गातट के मार्ग से उन्होंने प्रयाग की ओर यात्रा की।

सानोड़िया-ब्राह्मण और कृष्णदास को
विदायी देने की इच्छा—

**सेइ विप्रे, कृष्णदासे, प्रभु विदाय दिला।**
**जोड़-हाते दुइजन कहिते लागिला॥२१५॥**

**२१५। प० अनु०—**जब श्रीमन्महाप्रभु ने सनोड़िया ब्राह्मण तथा कृष्णदास को विदायी दी। तब वे दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे—।

**अनुभाष्य**

२१५। उस विप्र, कृष्णदास को,—माधवेन्द्र पुरी के शिष्य सानोड़िया ब्राह्मण को तथा कृष्णदास राजपूत को सोरो से विदायी दी।

उनकी प्रयाग तक पीछे-पीछे
जाने की प्रार्थना—

**''प्रयाग-पर्यन्त दुँहे तोमा-सङ्गे जाब।**
**तोमार चरण-सङ्ग पुनः काँहा पाब?२१६॥**
**म्लेच्छदेश, केह काँहा करये उत्पात।**
**भट्टाचार्य पण्डित, कहिते ना जानेन बात्॥''२१७॥**

**२१६-२१७। प० अनु०—**हम दोनों प्रयाग तक आपके साथ जायेंगे, आपके चरणों का सङ्ग पुनः हमें कहाँ प्राप्त होगा? म्लेच्छ देश हैं, कौन कहाँ क्या उत्पात खड़ा कर दे। बलभद्र भट्टाचार्य यद्यपि पण्डित हैं, किन्तु बात करना नहीं जानते।

प्रभु के द्वारा मन्द-मुस्काना और
उनका प्रभु के पीछे-पीछे चलना—

**शुनि' महाप्रभु ईषत् हासिते लागिला।**
**सेइ दुइजन प्रभुर सङ्गे चलि' आइला॥२१८॥**

**२१८। प० अनु०—**उन दोनों की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु मन्द-मन्द मुस्करा दिये। वे दोनों श्रीमन्महाप्रभु के साथ चले आये।

मार्ग में प्रभु का दर्शन करने वाले प्रत्येक
व्यक्ति के द्वारा ही कृष्णनाम-ग्रहण—

**जेइ जेइ जन प्रभुर पाइल दरशन।**
**सेइ प्रेमे मत्त हय, करे कृष्ण-सङ्कीर्त्तन॥२१९॥**

**२१९। प० अनु०—**जिस-जिस व्यक्ति को श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन प्राप्त हुए, वही प्रेम में मत्त हो गये तथा कृष्ण-सङ्कीर्त्तन करने लगे।

उससे किसी दूसरे व्यक्ति को श्रवण करने का सुयोग, इस प्रकार श्रवण-कीर्त्तन की धारा के परम्परा में चलने से सभी देशों का उद्धार—

**ताँर सङ्गे अन्योन्ये, ताँर सङ्गे आन।**
**एइमत 'वैष्णव'-कैला सब देश-ग्राम॥२२०॥**

**२२०। प० अनु०—**उन-उन व्यक्तियों के सङ्ग से अन्य-अन्य, तथा उनके सङ्ग से और, इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने सभी शहर तथा गाँव के लोगों को वैष्णव बना दिया।

दक्षिण की भाँति पश्चिम का भी उद्धार करना—

**'दक्षिण' जाइते जैछे शक्ति प्रकाशिला।**
**सेइमत 'पश्चिमदेश', प्रेमे भासाइला॥२२१॥**

**२२१। प० अनु०—**दक्षिण भारत में जाते समय श्रीमन्महाप्रभु ने जैसे अपनी शक्ति को प्रकाशित किया था, उसी प्रकार उन्होंने पश्चिम भारत को भी प्रेम में डुबो दिया।

**अनुभाष्य**

२२१। 'पश्चिमदेश'—कोई-कोई कहते हैं कि उस समय श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन से कुरुक्षेत्र जाकर प्रयाग गये थे। कुरुक्षेत्र में भद्रकाली मन्दिर के निकट श्रीगौरविग्रह आज भी विराजमान है।

*अष्टादश अध्याय का अनुभाष्य समाप्त।*

सर्वप्रथम प्रयाग में आगमन; दस दिन त्रिवेणी-दर्शन और स्नान—

**एइमत चलि' प्रभु 'प्रयाग' आइला।**
**दश-दिन त्रिवेणीते मकर-स्नान कैला॥२२२॥**

**२२२। प० अनु०—**इस प्रकार चलते-चलते श्रीमन्महाप्रभु प्रयाग में आ गये। दस दिन तक उन्होंने त्रिवेणी में मकर-स्नान किया।

प्रभु का चरित्र अगाध; वृन्दावन के प्रेम-वर्णन में साक्षात् शेष की भी असमर्थता—

**वृन्दावन-गमन, प्रभु-चरित्र अनन्त।**
**'सहस्त्र-वदन' जाँर नाहि पा'न अन्त॥२२३॥**

**२२३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु का वृन्दावन में गमन तथा वहाँ पर उनकी लीलाएँ अनन्त हैं, सहस्त्र वदन वाले शेष भी उनका अन्त नहीं पाते।

ग्रन्थकार का दैन्य और दिग्दर्शन मात्र वर्णन—

**ताहा के कहिते पारे क्षुद्र जीव हञा।**
**'दिग्-दरशन' कैलुँ मुञि सूत्र करिया॥२२४॥**

**२२४। प० अनु०—**तब क्षुद्र जीव होकर कौन उसका वर्णन कर सकता है? मैंने तो सूत्र के रूप में उसका दिगदर्शन ही किया है।

दुर्भागे व्यक्तियों का ही चैतन्यलीला में अविश्वास—

**अलौकिक-लीला प्रभुर अलौकिक-रीति।**
**शुनिलेओ भाग्यहीनेर ना हय प्रतीति॥२२५॥**

**२२५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु की लीलाएँ अलौकिक है तथा उनकी रीति भी अलौकिक हैं, किन्तु भाग्यहीन व्यक्तियों को उन लीलाओं को सुनकर भी उनके प्रति विश्वास नहीं होता।

सभी श्रोताओं को ही चैतन्य लीला में दृढ़-श्रद्धा और वास्तविक सत्यवस्तु के ज्ञान में विश्वास करने का अनुरोध—

**आद्योपान्त चैतन्यलीला—'अलौकिक' जान।**
**श्रद्धा करि' शुन इहा, 'सत्य' करि' मान'॥२२६॥**

**२२६। प० अनु०—**आदि और अन्त से रहित चैतन्यलीला को अलौकिक समझकर श्रद्धापूर्वक उसका श्रवण करो तथा उसे सत्य मानो।

अविश्वासी और तार्किक के द्वारा अपने ही अमङ्गल को बुलाना—

**जेइ तर्क करे इँहा, सेइ—'मूर्खराज'।**
**आपनार मुण्डे से आपनि पाड़े बाज॥२२७॥**

**२२७। प० अनु०—**जो इसमें तर्क करता है—वह

महामूर्ख है। वह अपने ही सिर पर जान-बूझकर व्रजपात करता है।

चैतन्य चरितामृत-रसामृत सिन्धु के जल में जगत्-प्लावित—

**चैतन्य-चरित्र एइ—'अमृतेर सिन्धु'।**
**जगत् आनन्दे भासाय जार एकबिन्दु॥२२८॥**

**२२८। प॰ अनु॰—**यह श्रीचैतन्य चरित अमृत के सिन्धु के समान है, जिसकी एक बूँद जगत् को आनन्द में डुबा देती हैं।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥२२९॥**

*श्रीचैतन्य चरितामृत के मध्यखण्ड में श्रीवृन्दावन दर्शन विलास नामक अष्टादश-परिच्छेद समाप्त।*

**२२९। प॰ अनु॰—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य-चरितामृत का गान कर रहा है।

✵✵✵

# उनविंश परिच्छेद

**कथासार**—रूप-सनातन रामकेलिग्राम में महाप्रभु के दर्शन करने के उपरान्त विषयों के त्याग के उपाय का चिन्तन करने लगे। उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के चरणों का आश्रय प्राप्त करने के लिये 'कृष्णमन्त्र' के दो पुरश्चरण करवाये। रूप गोस्वामी ने गौड़ में दस हजार मुद्राएँ रखकर अपने द्वारा सञ्चित समस्त धन को नौका में चढ़ाकर बाकला चन्द्रद्वीप की ओर गमन किया। ब्राह्मण, वैष्णव तथा कुटुम्बियों में एवं दण्ड बन्ध (विपत्ति, राजदण्ड अथवा बन्धन आदि) से बचने के लिये धन का विभाग कर दिया। महाप्रभु वन के पथ से किस दिन वृन्दावन-यात्रा करेंगे, इसे जानने के लिये उन्होंने अपने दो लोगों को पुरुषोत्तम-क्षेत्र में भेजा। दूसरी ओर श्रीसनातन गोस्वामी व्याधि के छल से पण्डितों को लेकर भागवत आदि की चर्चा करने लगे। गौड़ेश्वर बादशाह हुसैनशाह ने पहले वैध के द्वारा, बाद में स्वयं अपने नेत्रों से देखकर सनातन के राजकार्य के परित्याग के छल को जानकर उन्हें जेल खाने में आबद्ध कर उड़ीसा देश पर आक्रमण करने के लिये यात्रा की।

महाप्रभु ने वन के पथ पर यात्रा की, तब श्री रूप गोस्वामी ने गृहत्याग के समय सनातन गोस्वामी के निकट संवाद भेजकर अपने भाई अनुपम मल्लिक के साथ महाप्रभु से मिलन के उद्देश्य से यात्रा की। श्रीरूप प्रयाग में पहुँचकर महाप्रभु के निकट दस दिन रहे। इसी बीच वल्लभभट्ट ने महाप्रभु को निमन्त्रण करके महाप्रभु का विशेष सम्मान किया। महाप्रभु ने श्रीरूप का वल्लभभट्ट के साथ परिचय करा दिया। उसके बाद रघुपति उपाध्याय के वहाँ पहुँचने पर उनका महाप्रभु के साथ बहुत रसालाप हुआ। इस स्थान पर कविराज गोस्वामी ने श्रीरूप और श्रीसनातन के व्रज में जीवन के विषय में कुछ वर्णन किया है। प्रयाग में दस दिन रहकर महाप्रभु ने श्रीरूप को भक्ति रस तत्व की सूत्र रूप में शिक्षा देकर रसामृत-सिन्धु की रचना की आज्ञा दी। श्रीरूप को वहाँ से वृन्दावन भेजकर महाप्रभु ने काशी जाकर चन्द्रशेखर के घर पर रहना स्वीकार किया।

(अ: प्र: भा:)

श्रीरूप के द्वारा व्रज-रस केलि के तत्त्व को प्रकटित करने वाले गौरसुन्दर—

**वृन्दावनीयां रसकेलिवार्त्तां**
**कालेन लुप्तां निजशक्तिमुत्कः।**
**सञ्चार्य रूपे व्यतनोत् पुनः स**
**प्रभुर्विधौ प्रागिव लोकसृष्टिम्॥१॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१। भगवान ने सृष्टि से पहले ब्रह्मा के हृदय में जिस प्रकार (सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक भगवतत्व) की प्रेरणा की थी, उसी प्रकार रूप गोस्वामी में अत्यधिक उत्सुक होकर अपनी शक्ति का संचार करके कालधर्म में लुप्त (हो गयी है, जो) वृन्दावन की रसकेलि वार्त्ता (उसका) विस्तार किया था।

### अनुभाष्य

१। सः प्रभुः (श्रीगौरः) उत्कः (उत्कण्ठितः

सन्) लोक-सृष्टिं प्राक् (विश्व-सृष्ट्यादेः पूर्वं) विधौ (विधातरि ब्रह्मणि) इव रूपे (श्रीरूप गोस्वामिनि) निजशक्तिं सञ्चार्य (निधाय) कालेन (कालधर्मेण) लुप्ताम् (अन्तर्हितामिति) वृन्दावनीयां रसकेलिवार्त्ता (वृन्दावनसम्बन्धिनीं श्रीव्रजेन्द्रनन्दन-विलास-कथा) पुनः व्यतनोत् (प्रकाशितवान्)।

**जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प० अनु०—**श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो तथा गौरभक्तवृन्द की जय हो।

प्रभु के दर्शन के उपरान्त रूप-सनातन का अपने घर गमन—

**श्रीरूप-सनातन रहे रामकेलि-ग्रामे।**
**प्रभुरे मिलिया, गेला आपन-भवने॥३॥**

**३। प० अनु०—**श्रीरूप और सनातन रामकेलि ग्राम में रहते थे। जब श्री मन्महाप्रभु रामकेलि ग्राम में गये थे, तब उन से मिलने के बाद वे अपने घर लौट गये थे।

विषय-त्याग और प्रभु की प्राप्ति के लिये दोनों का पुरश्चरण—

**दुइभाइ विषय-त्यागेर उपाय सृजिल।**
**बहुधन दिया दुइ ब्राह्मणे वरिल॥४॥**
**कृष्णमन्त्रे कराइल दुइ पुरश्चरण।**
**अचिरात् पाइबारे चैतन्य-चरण॥५॥**

**४-५। प० अनु०—**दोनों भाइयों ने विषयों को त्यागने के उपाय की सृष्टि की। उन्होंने बहुत सा धन देकर दो ब्राह्मणों को वरण किया। श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों को अतिशीघ्र प्राप्त करने के उद्देश्य से उन्होंने कृष्णमन्त्र के दो पुरश्चरण करवाये।

**अनुभाष्य**

५। पुरश्चरण,—मध्य, पञ्चदश परिच्छेद १०८ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीरूप का फतेयाबाद में अपने घर पर आगमन—

**श्रीरूप-गोसाञि तबे नौकाते भरिया।**
**आपनार घरे आइला बहुधन लञा॥६॥**

**६। प० अनु०—**उसके बाद श्रीरूप गोस्वामी बहुत से धन को नौका में भरकर अपने घर में आये।

ब्राह्मण-वैष्णवों को अर्द्ध, स्वजनों को एक-चौथाई धन का वितरण—

**ब्राह्मण-वैष्णवे दिला ताँर अर्द्ध-धने।**
**एक चौठि धन दिला कुटुम्ब-भरणे॥७॥**

**७। प० अनु०—**उन्होंने उस धन का आधा भाग ब्राह्मण-वैष्णवों को दे दिया तथा उन्होंने एक चौथाई अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिये दे दिया।

भावी विपत्ति से उद्धार के लिये एक-चौथाई धन का रक्षण—

**दण्डबन्ध लागि' चौठि सञ्चय करिला।**
**भाल-भाल विप्र-स्थाने स्थाप्य राखिला॥८॥**

**८। प० अनु०—**भविष्य में आने वाली किसी विपत्ति के विषय में सोचकर उन्होंने बचा हुआ एक चौथाई धन सञ्चय करके अच्छे-अच्छे ब्राह्मणों के पास रखवा दिया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८। दण्डबन्ध,—उपस्थित विपत्ति, राजदण्ड और बन्धन आदि से बचने के लिये।

गौड़ में सनातन के लिये दस हजार मुद्रा का रक्षण—

**गौड़े राखिल मुद्रा दश-हाजारे।**
**सनातन व्यय करे, राखे मुदि-घरे॥९॥**

**९। प० अनु०—**श्रीरूप ने गौड़ (रामकेलि) में भी श्रीसनातन के खर्च करने के उद्देश्य से दस हजार मुद्राएँ एक व्यापारी के घर पर रखी।

प्रभु के पुरी-गमन और वृन्दावन में जाने के लिये तैयार होने की वार्त्ता का श्रवण—

**श्रीरूप शुनिल प्रभुर नीलाद्रि-गमन।**
**वनपथे जाबेन प्रभु श्रीवृन्दावन॥१०॥**

**१०। प० अनु०—**श्रीरूप ने श्रीमन्महाप्रभु के जगन्नाथ पुरी लौट जाने के विषय में सुना तथा साथ ही यह भी सुना कि श्रीमन्महाप्रभु वन के मार्ग से श्री वृन्दावन जायेंगे।

उसके लिये दो दूतों को भेजना—

**रूप-गोसाञि नीलाचले पाठाइल दुइजन।**
**प्रभु जबे वृन्दावन करेन गमन॥११॥**
**"शीघ्र आसि' मोरे ताँर दिबा समाचार।**
**शुनिया तदनुरूप करिब व्यवहार॥"१२॥**

**११-१२। प० अनु०—**श्रीरूप गोस्वामी ने नीलाचल में दो लोगों को भेजा। उन्होंने उनसे कहा कि जब श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन जायें, तब तुम लोग शीघ्र आकर मुझे उनका संवाद देना, उसे सुनकर ही मैं उसके अनुरूप अपना कार्यक्रम बनाऊँगा।

श्रीसनातन का राजकार्य से छुट्टी लेने के सुयोग को खोजना—

**एथा सनातन-गोसाञि भावे मने मन।**
**"राजा मोरे प्रीति करे,—से मोर बन्धन॥१३॥**

**१३। प० अनु०—**इधर रामकेलि ग्राम में श्रीसनातन अपने मन-ही-मन सोचते हैं कि राजा मुझसे प्रीति करता है, यह मेरे लिये बन्धन है।

राजा की अप्रीति के पात्र बनने का प्रयत्न—

**कोन मते राजा यदि मोरे क्रुद्ध हय।**
**तबे अव्याहति हय, करिलुँ निश्चय॥"१४॥**

**१४। प० अनु०—**यदि किसी प्रकार राजा मेरे प्रति क्रोधित हो जाये, तभी मेरा छुटकारा होगा, यह निश्चित है।

रोग का छल—

**अस्वास्थ्येर छद्म करि' रहे निज-घरे।**
**राजकार्य छाड़िला, ना जाय राजद्वारे॥१५॥**

**१५। प० अनु०—**श्रीसनातन अस्वस्थ होने का छल करके अपने घर पर ही रहने लगे। उन्होंने राजकार्य करना छोड़ दिया तथा अब वे राजद्वार पर भी नहीं जाते।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५। छद्म,—छल।

अपने घर पर भागवत का विचार—

**लोभी कायस्थगण राजकार्य करे।**
**आपने स्वगृहे करे शास्त्रेर विचारे॥१६॥**
**भट्टाचार्य पण्डित बिश त्रिश लञा।**
**भागवत-विचार करेन सभाते बसिया॥१७॥**

**१६-१७। प० अनु०—**लोभी कायस्थ जाति के लोग राजकार्य करने लगे तथा श्रीसनातन अपने घर पर शास्त्रों का विचार करने लगे। श्रीसनातन बीस-तीस भट्टाचार्य पण्डितों को अपने घर पर ही बुलाकर सभा करके भागवत पर विचार करते थे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६। जिस समय सनातन गोस्वामी राजमन्त्री थे, उस समय उनके अधीन कुछेक 'कायस्थ' कर्मचारी थे। सनातन के वैराग्य भाव को देखकर उनमें से कोई-कोई व्यक्ति सनातन के पद को प्राप्त करने के लोभ से राजकार्य में विशेष निपुणता दिखलाने लगे। किम्वदन्ती (कहावत) यह है कि सनातन गोस्वामी के पद त्याग करने पर उनके अधीन में कार्य करने वाले कर्मचारी

प्रसिद्ध पुरन्दर खाँन को यह पद प्राप्त हुआ था।

### अनुभाष्य

१७। भागवत-विचार,—विद्या ''दो प्रकार की है; (मु: उ: १/१/४-५)—''द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति—परा चैरापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः साम-वेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।'' [अर्थात् ब्रह्म-विद कहते हैं,—विद्या परा और अपरा के भेद से दो प्रकार की होती है। उनमें से ऋक्, यजुः, साम, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—ये अपरा विद्या हैं तथा जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म को जाना जाता है, वह परा विद्या है।] पराविद्या की बात ब्रह्मसूत्र अथवा वेदान्त में ही कही गयी है। मुक्ति कामी वेदान्तिक—धर्म-अर्थ कामी की भाँति कैतव से युक्त होते हैं। इसलिए अपरा-विद्या-परक और परा-विद्या-परक शास्त्र समूह में शुद्ध भक्ति विरोधी मोक्षाभिसन्धियुक्त जो सब बातें हैं, वह सभी छलपूर्ण हैं; किन्तु श्रीमद्भागवत शास्त्र में ऐसा नहीं है। यम के द्वारा दण्डनीय कर्मीगण अथवा अहंग्रहोपासकगण—श्रीमद्भागवत के विचार से सम्पूर्ण अयोग्य हैं; वैष्णवगण ही एकमात्र भागवत का विचार करके भक्ति के बल से संसार से विमुक्त होते है; (भा: १२/१३/१८)—''श्रीमद्भाग-वतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन् पारहंस्यमेकममलं ज्ञानं पर गीयते। यत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्मयमाविष्कृतं तच्छ्रृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः।'' [अर्थात् श्रीमद्भागवत निर्मल पुराण है—**यह वैष्णवों को प्रिय ग्रन्थ है। इसमें एक अमल पारमहंस्य ज्ञान वर्णित है—इसमें ज्ञान-विराग-भक्ति से सम्बन्धित नैष्कर्म्य-ज्ञान आविष्कृत हुआ है। मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण, पाठ और विचार करके विमुक्ति प्राप्त करता है**]

एकदिन अचानक बादशाह का आगमन—

**आर दिन गौड़ेश्वर, सङ्गे एकजन।**
**आचम्बिते गोसाञि-सभाते कैल आगमन॥१८॥**

**१८। प० अनु०—**एकदिन अचानक बादशाह अपने साथ एक व्यक्ति को लेकर श्री सनातन गोस्वामी की सभा में आ पहुँचा।

### अनुभाष्य

१८। गौड़ेश्वर,—आलाऊदीन सैयद हुसैन शाह सेरिफ मक्का १४२० शकाब्द से १४४३ शकाब्द तक गौड़ के सिंहासन पर अधिष्ठित थे। अतएव १४२४ शकाब्द में यही हुसैन शाह ही श्रीसनातन की सभा में उपस्थित हुए।

सभी के द्वारा सम्भ्रमपूर्वक बादशाह की अगवानी—

**पात्साह देखिया सबे सम्भ्रमे उठिला।**
**सम्भ्रमे आसन दिया राजारे बसाइला॥१९॥**

**१९। प० अनु०—**सभी बादशाह को देखकर सम्भ्रमपूर्वक उठे तथा उन्होंने सम्भ्रमपूर्वक आसन देकर राजा को बैठाया।

बादशाह की उक्ति, सनातन के अभिप्राय के विषय में पूछना—

**राजा कहे,—''तोमार स्थाने वैद्य पाठाइलुँ।**
**वैद्य कहे,—व्याधि नाहि, सुस्थ जे देखिलुँ॥२०॥**
**आमार जे किछु कार्य, सब तोमा लञा।**
**कार्य छाड़ि' रहिला तुमि घरेते बसिया॥२१॥**
**मोर जत कार्य-काम, सब कैला नाश।**
**कि तोमार हृदये आछे, कह मोर पाश॥''२२॥**

**२०-२२। प० अनु०—**राजा ने कहा—मैंने तुम्हारे घर पर वैद्य को भेजा था। वैद्य कहता है कि 'कोई भी बीमारी नहीं है, स्वस्थ ही देखकर आया

हूँ'। मेरा समस्त कार्य तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है और तुम कार्य को छोड़कर घर पर बैठे हुए हो। मेरे जितने भी कार्य हैं, तुमने उन सबका नाश कर दिया है। तुम्हारे हृदय में क्या है, उसे मुझे बताओ।

सनातन के द्वारा राजकार्य को करने
की अनिच्छा का ज्ञापन—

**सनातन कहे,—''नहे आमा हैते काम।**
**आर एकजन दिया कर समाधान॥''२३॥**

**२३। प० अनु०—**सनातन ने कहा—अब मुझसे कोई काम नहीं होगा। अन्य एक व्यक्ति को लगाकर आप अपने कार्य का समाधान कर लीजिए।

बादशाह की क्रोधपूर्ण उक्ति—

**तबे क्रुद्ध हञा राजा कहे आरबार।**
**''तोमार 'बड़ भाइ' करे दस्यु व्यवहार॥२४॥**
**जीव-पशु मारि' कैल चाकला सब नाश।**
**एथा तुमि कैला मोर सर्व कार्य नाश॥''२५॥**

**२४-२५। प० अनु०—**तब क्रोधित होकर राजा ने पुनः स्वयं की ओर इङ्गित करके कहा—तुम्हारा बड़ा भाई अर्थात् मैं डाकुओं वाला कार्य करता हूँ। जीव-पशु को मारकर मैंने चाकला नामक स्थान को प्रायः नष्ट कर दिया है तथा इधर तुमने मेरे समस्त कार्यों को नष्ट कर दिया है।

सनातन के द्वारा कार्य से छुट्टी लेने
की सजा की प्रार्थना—

**सनातन कहे,—''तुमि स्वतन्त्र गौड़ेश्वर।**
**जे जेइ दोष करे, देह' तार फल॥''२६॥**

**२६। प० अनु०—**सनातन ने कहा—आप स्वतन्त्र गौड़ेश्वर हैं। आपके राज्य में जो व्यक्ति जो दोष करता है, आप उसे उसका फल देते हैं।

बादशाह की आज्ञा से सनातन को बाँधना—

**एत शुनि' गौड़ेश्वर उठि' घरे गेला।**
**पलाइब बलि' सनातनेरे बान्धिला॥२७॥**

**२७। प० अनु०—**इतना सुनकर बादशाह उठकर अपने घर चला गया। बादशाह ने सोचा कहीं सनातन यहाँ से भाग न जाये, इसलिए उसने सनातन को बाँधकर रखवा लिया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२४-२७। सुना जाता है कि सनातन गोस्वामी को बादशाह हुसैनशाह 'छोटा भाई' मानता था। जब सनातन ने कर्मत्याग की अत्यन्त दृढ़ता दिखलायी, तब हुसैनशाह ने प्रणय-रोष पूर्वक कहा कि,—'मैं तुम्हारा 'बड़ा भाई' हूँ, मैं बिल्कुल भी राज्यपालन नहीं करता, मैं सेना को लेकर युद्ध के द्वारा केवल देश-विदेश को लूटते हुए घूमता हूँ एवं जाति से यवन होने के कारण गौड़-चाकला में शिकार करके बहुत से पशुओं का नाश ही करता हूँ। मेरा विश्वास तुम पर ही है; तुम्हारा बड़ा भाई मैं जब केवल डाकुओं के जैसे कार्य तथा जीवों के नाश के कार्य में ही व्यस्त हूँ और छोटे भाई तुमने भी जब कार्य परित्याग करके सब कार्यों का नाश कर दिया, तब राज्य किस प्रकार चलेगा?'' सनातन ने रहस्य (मजा) करते हुए कहा,—आप—गौड़ेश्वर हैं, स्वतन्त्र राजा हैं, दण्ड मुण्ड प्रदान करने वाले हैं; जो, जैसा भी दोष करता है, उसे उसका फल प्रदान करते हैं।' इस वचन में गूढ़ रहस्य हैं,—राजा स्वयं डाकुओं जैसा व्यवहार (आचरण) करते हैं, अतएव वे उसका फल ग्रहण करें एवं मन्त्री (मेरी) जब कार्य में आलसता दिखलायी देती है, तब उसका (मेरा) कार्य से छुट्टी रूपी फल हो। इससे सनातन के अभिलषित विषय को जानकर गौड़ेश्वर उठ गये।

बादशाह का उड़ीसा जाने का अभियान; सनातन को साथ में चलने के लिये आह्वान—

**हेनकाले गेल राजा उड़िया मारिते।**
**सनातने कहे,—''तुमि चल मोर साथे॥''२८॥**

**२८। प० अनु०—**इसी समय राजा उड़ीसा पर आक्रमण करने के लिये गया। राजा ने सनातन से कहा कि तुम भी मेरे साथ चलो।

**अनुभाष्य**

२८। १४२४ शकाब्द में हुसैनशाह ने उत्कल (उड़ीसा) के सामन्त राज गण को [ उनके साथ युद्ध करने के लिये ] बाध्य किया।

विष्णु-विरोधी कार्य में सनातन का असहयोग—

**तेंहो कहे,—''जाबे तुमि देवताय दुःख दिते।**
**मोर शक्ति नाहि, तोमार सङ्गे जाइते॥२९॥**

**२९। प० अनु०—**सनातन ने कहा—आप श्री जगन्नाथदेव को दुःख देने जा रहे हैं। मुझमें आपके साथ जाने की शक्ति नहीं है।

बादशाह की यात्रा, प्रभु की भी पुरी से वृन्दावन की ओर यात्रा—

**तबे ताँरे बान्धि' राखि' करिला गमन।**
**एथा नीलाचल हैते प्रभु चलिला वृन्दावन॥३०॥**

**३०। प० अनु०—**राजा सनातन को बँधी हुयी अवस्था में ही छोड़कर चला गया तथा दूसरी ओर, श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल से वृन्दावन की ओर चल दिये।

श्रीरूप के निकट आकर उन दो दूतों के द्वारा प्रभु की वृन्दावन-यात्रा की वार्त्ता को प्रदान-करना—

**तबे सेइ दुइ चर रूप-ठाञि आइल।**
**'वृन्दावन चलिला प्रभु'-आसिया कहिल॥३१॥**

**३१। प० अनु०—**तब श्रीरूप गोस्वामी द्वारा नीलाचल भेजे गये दो व्यक्ति श्रीरूप गोस्वामी के पास लौटकर आये तथा उन्होंने आकर बतलाया कि श्रीमन्महाप्रभु जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन के लिये चल पड़े हैं।

रूप के द्वारा सनातन को पत्र के माध्यम से छोटे भाई के साथ प्रभु के दर्शन के लिये यात्रा के संवाद का ज्ञापन; और उन्हें जिस-किसी उपाय से चले आने का आह्वान—

**शुनिया श्रीरूप लिखिल सनातन-ठाञि।**
**'वृन्दावन चलिला श्रीचैतन्य-गोसाञि॥३२॥**
**आमि-दुइभाइ चलिलाङ्ग ताँहारे मिलिते।**
**तुमि जैछे तैछे छुटि' आइस ताँहा हैते॥३३॥**

**३२-३३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के नीलाचल से वृन्दावन जाने की बात सुनकर श्रीरूप ने श्रीसनातन के पास लिखकर भेजा कि श्रीचैतन्य गोसाञि वृन्दावन के लिये चल पड़े हैं। मैं और अनुपम—दोनों भाई श्रीमन्महाप्रभु से मिलने के लिये जा रहे हैं, आप भी जिस किसी प्रकार से छूटकर वहाँ से आ जाइये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३३। आमि दुइ भाइ (हम दो भाई),—मैं रूप और मेरे भाई (अनुज) अनुपम अथवा वल्लभ।

गौड़ में रखी हुई १०,००० मुद्राओं की सहायता से बन्धन से मुक्त होने का परामर्श प्रदान—

**दशसहस्र मुद्रा तथा आछे मुदि-स्थाने।**
**ताहा दिया कर शीघ्र आत्म-विमोचने॥३४॥**
**जैछे-तैछे छुटि' तुमि आइस वृन्दावन।'**
**एत लिखि' दुइ भाइ करिला गमन॥३५॥**

**३४-३५। प० अनु०—**रामकेलि में व्यवसायी के पास दस हजार मुद्राएँ रखी है, उन्हें देकर शीघ्र ही अपने आपको छुड़ा लीजिये। जिस किसी प्रकार से छूटकर आप वृन्दावन आ जाइये। इतना लिखकर श्रीरूप और अनुपम श्रीमन्महाप्रभु से मिलने के लिये चल पड़े।

अनुपम का परिचय—

**अनुपम मल्लिक, ताँर नाम—'श्रीवल्लभ'।**
**रूप-गोसाञिर छोट भाइ—परम-वैष्णव॥३६॥**

**३६। प० अनु०—**अनुपम मल्लिक, जिनका नाम 'श्रीवल्लभ' था, वे श्रीरूप गोस्वामी के छोटे भाई तथा परम वैष्णव थे।

**अनुभाष्य**

**३६।** आदि दशम परिच्छेद ८४ संख्या द्रष्टव्य।

दोनों भाइयों का प्रयाग में आगमन और वहाँ प्रभु के अवस्थान (रहने) के विषय में श्रवण से आनन्द—

**ताँहारे लञा रूप-गोसाञि प्रयागे आइला।**
**महाप्रभु ताँहा, शुनि' आनन्दित हैला॥३७॥**

३७। **प० अनु०—**श्रीरूप गोस्वामी श्री वल्लभ को अपने साथ लेकर प्रयाग में आ पहुँचे। श्रीरूप श्रीमन्महाप्रभु के भी वहीं होने के विषय में सुनकर बहुत आनन्दित हुए।

प्रयाग में प्रभु का बिन्दुमाधव दर्शन और लोगों की भीड़—

**प्रभु चलियाछेन बिन्दुमाधव-दरशने।**
**लक्ष लक्ष लोक आइसे प्रभुर मिलने॥३८॥**
**केह कान्दे, केह हासे, केह नाचे, गाय।**
**'कृष्ण' 'कृष्ण' बलि' केह गड़ागड़ि जाय॥३९॥**

**३८-३९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु बिन्दुमाधव का दर्शन करने के लिये चल रहे थे, लाखों-लाखों लोग श्रीमन्महाप्रभु से मिलने के लिये आ रहे थे। कोई रो रहा था, कोई हँस रहा था, कोई नाच रहा था, कोई गा रहा था, 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते हुए कोई भूमि पर लोटपोट खा रहा था।

प्रेम की बाढ़ में प्रयाग निमग्न—

**गङ्गा-यमुना प्रयाग नारिल डुबाइते।**
**प्रभु डुबाइल कृष्णप्रेमेर वन्याते॥४०॥**

**४०। प० अनु०—**गङ्गा तथा यमुना प्रयाग को डुबो नहीं पायी, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने प्रयाग को कृष्णप्रेम की बाढ़ में डुबो दिया।

दोनों भाइयों का थोड़े एकान्त स्थान में अवस्थान—

**भिड़ देखि' दुइ भाइ रहिला निर्जने।**
**प्रभुर आवेश हैल माधव-दरशने॥४१॥**

**४१। प० अनु०—**भीड़ को देखकर दोनों भाई एकान्त में खड़े रहे। श्रीमन्महाप्रभु बिन्दुमाधव के दर्शन से प्रेमाविष्ट हो गये।

प्रभु की तात्कालिक अवस्था—

**प्रेमावेशे नाचे प्रभु हरिध्वनि करि'।**
**उर्द्ध्वबाहु करि' बले—बल 'हरि' 'हरि'॥४२॥**
**प्रभुर महिमा देखि' लोके चमत्कार।**
**प्रयागे प्रभुर लीला नारि वर्णिवार॥४३॥**

**४२-४३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु प्रेमावेश में हरिध्वनि करते हुए नृत्य कर रहे थे तथा अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर लोगों से 'हरि' 'हरि' बोलने के लिए कह रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु की महिमा देखकर लोग चमत्कृत हो रहे थे। प्रयाग में श्रीमन्महाप्रभु ने जो लीलाएँ की, मैं उनका वर्णन नहीं कर सकता।

दक्षिण-भारत के ब्राह्मण के घर पर भिक्षा—

**दाक्षिणात्य-विप्र-सने आछे परिचय।**
**सेइ विप्र निमन्त्रिया निल निजालय॥४४॥**

**४४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु का दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण के साथ परिचय था। वही विप्र श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रित करके अपने घर पर ले गया।

निर्जन में प्रभु के साथ दोनों भाइयों का मिलन—

**विप्र-गृहे आसि' प्रभु निभृते बसिला।**
**श्रीरूप-वल्लभ दुँहे आसिया मिलिला॥४५॥**

**४५। प० अनु०—**ब्राह्मण के घर पर आकर श्रीमन्महाप्रभु एकान्त में बैठ गये। श्री रूप और श्री वल्लभ—दोनों वहीं पर आकर श्रीमन्महाप्रभु से मिले।

दोनों की दैन्यपूर्ण उक्ति—

**दुइगुच्छ तृण दुँहे दशने धरिया।**
**प्रभु देखि' दूरे पड़े दण्डवत् हञा॥४६॥**
**नाना श्लोक पड़ि' उठे, पड़े बार-बार।**
**प्रभु देखि' प्रेमावेश हइल दुँहार॥४७॥**

४६-४७। **प० अनु०—**श्रीरूप और श्रीवल्लभ ने दो तृण के गुच्छोंको अपने दाँतों में दबाकर दूर से श्रीमन्महाप्रभु को देखकर दण्ड्वत किया। अनेक श्लोक उच्चारण करके वे बार-बार उठ रहे थे तथा पुनः भूमि पर गिरकर प्रणाम कर रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु को देखकर दोनों में प्रेमावेश उदित हुआ।

उन्हें देखकर प्रभु का प्रसन्न होना—

**श्रीरूपे देखिया प्रभुर प्रसन्न हैल मन।**
**"उठ, उठ, रूप, आइस", बलिला वचन॥४८॥**

४८। **प० अनु—**श्रीरूप को देखकर श्रीमन्महाप्रभु का मन प्रसन्न हो गया। श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'उठो, उठो, रूप, यहाँ पर आओ।'

कृष्ण की कृपा से जीव के संसार से उद्धार का वर्णन—

**"कृष्णेर करुणा किछु ना जाय वर्णने।**
**विषयकूप हैते तोमा काड़िल दुइजने॥४९॥**

**४९। प० अनु—**श्रीकृष्ण की करुणा का बिलकुल भी वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने तुम दोनों को विषय रूपी कुएँ से निकाल लिया है।

जिस किसी भी कुल में उत्पन्न वैष्णव ही भगवान् की भाँति सभी के द्वारा सर्वथा पूज्य—
श्रीहरिभक्तिविलास (१०/९९) में—
इतिहाससमुच्चय में भगवद्वाक्य—

**न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।**
**तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यम॥" ५०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५०। चतुर्वेदपाठी अर्थात् चौबे ब्राह्मण होने पर ही 'भक्त' होता है, ऐसा नहीं है। मेरा भक्त चण्डाल होने पर भी मुझे प्रिय है, भक्त ही वास्तव में दान पात्र एवं ग्रहण पात्र है; भक्त मात्र ही मेरे समान पूज्य है।

**अनुभाष्य**

५०। अभक्तः (शुद्धभक्तिविहीनः) चतुर्वेदी (चतुर्वेद निपुणः ब्राह्मणः) मे (मम) प्रियः न (भवति); मद्भक्तः श्वपचः (सुनीच-कुलोद्भवोऽपि) मे प्रियः (भवति); तस्मै (शुद्ध भक्ताय नीचकुलोद्भवाय श्वपचाय अपि चतुर्वेदकुशलैर्ब्राह्मणदिभिः एव सम्मानादिक) देयम्; ततः नीचकुलोद्भूतात् श्वपचात् अपि शुद्धभक्तात्) ग्राह्यं (तद्-उचिष्टादिकं प्रतिगृह्णीयात्); यथा अहं (सर्वेश्वरेश्वरः श्रीभगवान् विष्णुः) पूज्यः, (तथा) सः (श्वपचकुलजातोऽपि भक्तः तच्छिष्यस्थानीय-ब्राह्मणदिभिः सर्वैः एव) पूज्यः च।

प्रभु द्वारा आलिङ्गन और दोनों के मस्तक पर अपने चरणों का अर्पण—

**एइ श्लोक पड़ि' दुँहारे कैला आलिङ्गन।**
**कृपाते दुँहार माथाय धरिला चरण॥५१॥**

**५१। प० अनु—**श्रीमन्महाप्रभु ने उपरोक्त श्लोक का उच्चारण करके उन दोनों का आलिङ्गन किया तथा कृपा करके उन दोनों के सिर पर अपने चरण रख दिये।

दोनों भाइयों के द्वारा प्रभु का स्तव—

**प्रभु-कृपा पाञा दुँहे दुइ हात जुड़ि'।**
**दीन हञा स्तुति करे विनय आचरि'॥५२॥**

**५२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु की कृपा को प्राप्त करके दोनों दो हाथ जोड़कर दीनतापूर्वक विनय का आचरण करते हुए स्तुति करने लगे—।

स्वरूप-नाम-रूप-गुण-लीलामय एवं सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनाधिदेवता श्रीगौर को प्रणाम—
श्रीरूप-वचन—

**नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।**
**कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥५३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५३। महावदान्य कृष्णप्रेमदाता, कृष्णस्वरूप, कृष्णचैतन्य नामक गौराङ्ग रूप धारी प्रभु आपको नमस्कार।

**अनुभाष्य**

५३। महावदान्याय (अतुल परमकरुणामयाय) कृष्णप्रेमप्रदाय (शिवविरिञ्चिदुर्लभ कृष्णप्रेमदातृ प्रवराय) कृष्णचैतन्यनाम्ने (कृष्णचैतन्याख्याय) गौरत्विषे (श्रीराधाद्युति-सुवलित-गौरकान्तिमयाय) कृष्णाय (गोपीजनवल्लभाय गोविन्दाय) ते (तुभ्यं) नमः।

ग्रन्थकार के द्वारा गौर-प्रणाम—
श्रीगोविन्दलीलामृत (१/२) में ग्रन्थकार के वचन—

**योऽज्ञानमत्तं भुवनं दयालुरु-**
**ल्लाघयन्नप्यकरोत्-प्रेमतम।**
**स्वप्रेमसम्पत्सुधयाद्भुतेहं**
**श्रीकृष्णचैतन्यममुं प्रपद्ये॥५४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५४। जिन दयालु पुरुष ने अज्ञान में मत्त जगत् को अज्ञान रूपी व्याधि से मुक्त करके अपनी प्रेम-सम्पत्ति रूपी सुधा में प्रमत्त किया था, मैं उन अद्भुत चेष्टा वाले श्रीकृष्णचैतन्य के शरणागत होता हूँ।

**अनुभाष्य**

५४। यः दयालुः (करुणामयविग्रहः) अज्ञान-मत्तं (मायावाद कर्मफलभोगादि-मार्गकारणे अज्ञाने मत्तं विह्वल) भुवनं (लोकम्) स्वप्रेमसम्पदसुधया (निजकृष्ण प्रीतिरूपा सम्पत् श्रीः सा एव सुधा अमृतं तया) उल्लाघयन् (तत्ज्ज्ञानादिकं प्रशमयन्) प्रमत्तं (भोग मोक्षादि प्राकृतविषयाद्यनुसन्धान-रहितं निरन्तर कृष्णानुशीलनासक्तम्) अकरोत्, अमुं (त) अद्भुतेऽम् (अश्रुतपूर्वचेष्टायुक्त) श्रीकृष्णचैतन्यम् (अहं) प्रपद्ये (प्रपन्नोऽस्मि)।

श्रीरूप से सनातन के विषय में जिज्ञासा—

**तबे महाप्रभु ताँरि निकटे बसाइला।**
**'सनातनेर वार्त्ता कह'—ताँहारे पुछिला॥५५॥**

**५५। प० अनु०—**तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरूप को अपने निकट बैठाया तथा उन्होंने श्रीरूप से कहा कि सनातन के विषय में बतलाओ।

रूप के द्वारा सनातन के जेल में बन्द होने का संवाद प्रदान—

**रूप कहेन,—"तेंहो बन्दी हय राज-घरे।**
**तुमि यदि उद्धार', तबे हइबे उद्धारे॥"५६॥**

**५६। प० अनु०—**श्रीरूप ने कहा—श्रीसनातन, राजघर (कारागार) में बन्दी हैं। यदि आप उनका उद्धार करें, तभी उनका उद्धार होगा।

प्रभु के द्वारा सनातन के बन्धन से मुक्त होने का संवाद प्रदान—

**प्रभु कहे,—"सनातनेर हञाछे मोचन।**
**अचिरात आमा-सह हइबे मिलन॥"५७॥**

**५७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—सनातन का बन्धन खुल गया है। थोड़े दिनों में सनातन की मुझसे भेंट होगी।

उस दिन दोनों का वहीं रहना—

**मध्याह्न करिते विप्र प्रभुरे कहिला।**
**रूप-गोसाञि से-दिवस तथाञि रहिला॥५८॥**

**५८। प० अनु०—**उस ब्राह्मण ने श्रीमन्महा प्रभु को प्रसाद ग्रहण करने के लिये कहा। श्रीरूप गोस्वामी अपने भाई श्रीवल्लभ के साथ उस दिन वहीं पर रहे।

दोनों को प्रभु के उच्छिष्ट की प्राप्ति—

**भट्टाचार्य दुइ भाइये निमन्त्रण कैल।**
**प्रभुर शेषप्रसाद-पात्र दुइभाइ पाइल॥५९॥**

**५९। प० अनु०—**बलभद्र भट्टाचार्य ने उन दोनों भाइयों को निमन्त्रण दिया तथा दोनों भाइयों ने श्रीमन्महाप्रभु के उच्छिष्ट प्रसाद के पात्र को प्राप्त किया।

प्रभु के वासस्थान के निकट ही दोनों का रहना—

**त्रिवेणी-उपर प्रभुर वासा-घर स्थान।**
**दुइभाइ वासा कैल प्रभु-सन्निधान॥६०॥**

**६०। प० अनु०—**त्रिवेणी पर ही श्रीमन्महाप्रभु के वास का स्थान था। श्रीरूप और श्रीवल्लभ ने भी श्रीमन्महाप्रभु के वास स्थान के निकट ही अपना वासस्थान बनाया।

प्रभु के साथ वल्लभभट्ट का मिलन—

**से-काले वल्लभ-भट्ट रहे आड़ाइल-ग्रामे।**
**'महाप्रभु आइला' शुनि' आइल ताँर स्थाने॥६१॥**

**६१। प० अनु०—**उस समय श्रीवल्लभ भट्ट आड़ाइल ग्राम में रहते थे। जब उन्होंने सुना कि श्रीमन्महाप्रभु प्रयाग में आये हैं, तब वे उनके वास स्थान पर आये।

### अमृतप्रवाह भाष्य

६१। **वल्लभ भट्ट,—**ये वैष्णव पण्डित थे। इन्होंने पहले श्रीमहाप्रभु के सम्प्रदाय में प्रविष्ट होकर भी अधिक सम्मान नहीं पाने के कारण विष्णुस्वामि-सम्प्रदाय में आचार्यत्व प्राप्त किया था। इन्हें ही लोग 'वल्लभाचार्य' कहते हैं। गोकुल एवं मुम्बई प्रदेश में इनका बहुत आधिपत्य (प्रभाव) है। इनके द्वारा रचित 'अनुभाष्य', 'षोडश-ग्रन्थ' इत्यादि अनेक ग्रन्थ हैं।

**आड़ाइल ग्राम,—**सङ्गम के निकट यमुना की दूसरी ओर (प्रायः एक मील की दूरी पर) अड़ैली ग्राम अथवा आड़ाइल ग्राम है; (यहाँ पर 'वल्लभी' सम्प्रदाय का एक प्राचीन विष्णुमन्दिर वर्त्तमान है)।

### अनुभाष्य

६१। **वल्लभभट्ट—**ये त्रैलङ्गदेश में 'निडाडा-भलु'—रेलस्टेशन से सोलह मील की दूरी पर 'कांकड़वाड़' अथवा 'काकुँरपाटु' नामक गांव के निवासी 'लक्ष्मण दीक्षित' के पुत्र हैं। आन्ध्र के ब्राह्मणों में पाँच विभाग हैं,—वेल्लनाटी, वेगी-नाटी, मुनाटी, तेलगुनाटी और कोशननाटी; उनमें से वेल्लनाटी आन्ध्र ब्राह्मणकुल में १४०० शकाब्द में श्रीवल्लभाचार्य ने जन्म ग्रहण किया। कोई-कोई कहते हैं,—वल्लभ के जन्म होने से पहले ही उनके पिता ने संन्यास ग्रहणकर घर का त्याग कर दिया था; बाद में फिर से घर लौटने के उपरान्त वल्लभाचार्य को पुत्र के रूप में प्राप्त किया।

अन्य मत के अनुसार,—विक्रम सम्वत् १५३५ अर्थात् १४०० शकाब्द की चैत्री कृष्णा-एकादशी तिथि में त्रैलङ्ग देशीय वेल्लनाटी-ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न 'खम्भंपाटीवारु' उपाधि धारी लक्ष्मण भट्ट दीक्षित के पुत्र के रूप में वल्लभाचार्य 'चम्पका-रण्ये', मतान्तर में,—मध्यप्रदेश के अन्तर्गत वि. एन. आर. लाईन में राजिम स्टेशन के निकट चाँपाझार-ग्राम में आविर्भूत हुए। एकादश वर्ष तक काशी में वास करके विद्या अध्ययन के बाद अपने देश में लौटते समय मार्ग में शेषाद्रि में उन्होंने अपने पिता के परलोक गमन के विषय में

सुना। भाई और माता को घर पर छोड़कर तुङ्गभद्रा के तट पर विद्यानगर में जाकर बुक्कराज के पौत्र कृष्णदेव का उल्लास विधान किया। उसके बाद तीन बार छः वर्ष तक दिग्विजय में अठारह वर्ष व्यतीत किये। तीस वर्ष की आयु में काशी में 'महालक्ष्मी' नामक अपनी जाति के ब्राह्मण की कन्या का पाणिग्रहण किया। गोवर्द्धन पर्वत के नीचे श्रीमूर्त्ति स्थापित करके प्रयाग के निकट आड़ाइल ग्राम में वास किया। इनके दो पुत्र—गोपीनाथ और विठ्ठलेश्वर थे। अन्तिम अवस्था में त्रिदण्ड-संन्यास ग्रहण करके १४५२ शकाब्द में वाराणसी में परलोक गमन किया। वल्लभ के 'षोडशग्रन्थ', ब्रह्मसूत्र का 'अनुभाष्य', श्रीमद्भागवत की 'सुबोधिनी' टीका इत्यादि कुछेक ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ हैं।

वल्लभभट्ट के द्वारा प्रभु को प्रणाम, दोनों में परस्पर कृष्ण-कथा का आलाप—

**तेंहो दण्डवत् कैल, प्रभु कैला आलिङ्गन।**
**दुइजने कृष्णकथा हैल कतक्षण॥६२॥**

६२। **प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को देखकर श्रीवल्लभभट्ट ने उन्हें दण्ड्वत प्रणाम किया तथा श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें आलिङ्गन किया। दोनों में उस समय कृष्णकथा की आलोचना होने लगी।

प्रभु में प्रेमावेश और वल्लभ को बहिरङ्ग-देखकर उसका संगोपन—

**कृष्णकथाय प्रभुर महाप्रेम उथलिल।**
**भट्टेर संङ्कोचे प्रभु सम्वरण कैल॥६३॥**

६३। **प० अनु०—**कृष्णकथा के आलाप में श्रीमन्महाप्रभु में अत्यधिक प्रेमावेश उदित हो आया, किन्तु उन्होंने वल्लभभट्ट के सङ्कोच से उसे सम्वरण कर लिया।

प्रभु के प्रेमावेश को देखकर वल्लभ का विस्मय—

**अन्तरे गर-गर प्रेम, नहे सम्वरण।**
**देखि' चमत्कार हैल वल्लभ-भट्टेर मन॥६४॥**

**६४। प० अनु०—**श्री मन्महाप्रभु के हृदय में अथाह प्रेम था, जिसका सम्वरण नहीं हो पा रहा था। श्रीमन्महाप्रभु की ऐसी अवस्था देखकर वल्लभ भट्ट का मन चमत्कृत हो उठा।

प्रभु को भट्ट का निमन्त्रण, भट्ट के निकट दोनों भाइयों का परिचय-प्रदान—

**तबे भट्ट महाप्रभुरे निमन्त्रण कैला।**
**महाप्रभु दुइभाइ ताँहारे मिलाइला॥६५॥**

**६५। प० अनु०—**तब श्रीवल्लभभट्ट ने श्री मन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरूप तथा श्री वल्लभ को श्रीवल्लभभट्ट से मिलाया।

अमानी (मान रहित) होकर दोनों के द्वारा वल्लभ को सम्मान-प्रदान—

**दुइभाइ दूर हैते भूमिते पड़िया।**
**भट्टे दण्डवत् कैला अति दीन हञा॥६६॥**

**६६। प० अनु०—**श्रीरूप और श्रीवल्लभ ने अत्यन्त दीनतापूर्वक दूर से ही भूमि पर गिरकर श्रीवल्लभभट्ट को दण्ड्वत किया।

भट्ट के द्वारा आलिंङ्गन करने की चेष्टा करने पर दोनों का पीछे हटना—

**भट्ट मिलिबारे जाय, दुँहे पलाय दूरे।**
**''अस्पृश्य पामर मुञि, ना छुँइह मोरे॥''६७॥**

**६७। प० अनु०—**श्रीवल्लभभट्ट श्रीरूप और श्रीवल्लभ से मिलने के लिये ज्योंहि आगे जाते, वे दोनों दूर भाग जाते, तथा कहते कि हम अस्पृश्य तथा अपवित्र है, इसलिए आप हमें स्पर्श मत कीजिए।

कुलीन पण्डिताभिमानी वल्लभ को बहिरङ्ग-मानकरप्रभु के द्वारा उन्हें जड़ीय-प्रतिष्ठा प्रदान अथवा छलना—

**भट्टेर विस्मय हैल, प्रभुर हर्ष मन।**
**भट्टेरे कहिला प्रभु ताँर विवरण॥६८॥**
**"इँहो ना स्पर्शिह, इँहो जाति अति-हीन!**
**वैदिक, याज्ञिक तुमि कुलीन प्रवीण!"६९॥**

**६८-६९। प॰ अनु॰**—श्रीवल्लभ भट्ट विस्मित हो गये, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु का मन बहुत प्रसन्न हुआ। श्री मन्महाप्रभु ने श्रीवल्लभभट्ट को दोनों भाइयों का विवरण प्रदान किया। आप इन्हें स्पर्श मत कीजिए, इन दोनों की जाति बहुत निम्न है! और आप वैदिक, याज्ञिक कुलीन प्रवीण व्यक्ति हैं!!

दोनों के मुख से निरन्तर कृष्णनाम-सुनकर भट्ट का विस्मय और दोनों को सर्वोत्तम-मानना—

**इँहार मुखे निरन्तर कृष्णनाम शुनि'।**
**भट्ट कहे, प्रभुर किछु इङ्गित-भङ्गी जानि'॥७०॥**
**"दुँहार मुखे कृष्णनाम करिछे नर्तन।**
**एइ दुइ 'अधम' नहे, हय 'सर्वोत्तम'॥७१॥**

**७०-७१। प॰ अनु॰**—श्रीवल्लभभट्ट श्रीमन्महाप्रभु के वचनों की कुछ भङ्गिमा को समझ गये तथा उन्होंने कहा कि किन्तु इन दोनों के मुख से निरन्तर कृष्णनाम सुन रहा हूँ। दोनों के मुख में कृष्णनाम नृत्य कर रहा है। ये दोनों अधम नहीं, बल्कि सर्वोत्तम हैं।

श्रीमद्भागवत (३/३३/७) में—

**अहो वत श्वपचोऽतो गरीयान्**
**यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम।**
**तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या**
**ब्रह्मानुचूर्नाम् गृणन्ति ये ते॥"७२॥**

७२। हे भगवन्, जिनके मुख में आपका नाम वर्त्तमान है, वे श्वपच (कुकुर का मांस खाने वाले) होने पर भी श्रेष्ठ है। जो आपका नाम कीर्त्तन करते हैं, उन्होंने सब प्रकार की तपस्या कर ली है, समस्त यज्ञ कर लिये हैं, सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है एवं अङ्ग सहित समस्त वेदों का पाठ कर लिया है अतएव आर्यों में परिगणित है।

### अनुभाष्य

७२। मध्य एकादश परिच्छेद १९२ संख्या द्रष्टव्य।

भट्ट की सुबुद्धि को देखकर और सुसिद्धान्त को सुनकर प्रभु द्वारा प्रशंसा—

**शुनि' महाप्रभु ताँरे बहु प्रशंसिला।**
**प्रेमाविष्ट हञा श्लोक पड़िते लागिला॥७३॥**

**७३। प॰ अनु॰**—श्रीवल्लभभट्ट के द्वारा उच्चारित श्लोक को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने उनकी बहुत प्रशंसा की तथा प्रेमाविष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु श्लोक उच्चारण करने लगे—।

नीच वंश में उत्पन्न होने पर भी हरिभक्त ही पूज्य, अभक्त ब्राह्मणब्रुव (नामधारी ब्राह्मण) वेदज्ञ होने पर भी घृणा के पात्र—

हरिभक्तिसुधोदय (३/११-१२) में—

**शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्नि-**
**दग्धदुर्जाति कल्मषः।**
**श्वपाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो**
**न वेदज्ञोऽपि नास्तिकः॥७४॥**

**भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः।**
**अप्राणस्येव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥७५॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

७४-७५। सत्चरित्र, सद्भक्तिरूप दीप्ताग्नि द्वारा जिसका दुर्जाति में उत्पन्न होने का कल्मष दग्ध हो गया है ऐसा चण्डाल भी पण्डितों के

द्वारा सम्मानित है; किन्तु नास्तिक व्यक्ति वेदज्ञ होने भी सम्मान के योग्य नहीं है। भगवद्भक्तिहीन व्यक्ति की सद्जाति, शास्त्र-ज्ञान, जप और तप मृतदेह के अलङ्कारों की भाँति किसी काम के नहीं, केवल लोकरञ्जन मात्र ही हैं।

**अनुभाष्य**

७४। सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः (सती एकान्तिकी कृष्णभक्तिः एवं दीप्ताग्निः तेन दग्धं निशेषितं दुर्जात्यादिकम् एव कल्मषं प्रारब्धं पापं यस्य सः अतः कृष्णभजनादेव) शुचिः (सदाचारः) श्वपाकः (अति-नीच-कुलोद्भवः) अपि बुधैः (विद्वद्भिः) श्लाघ्यः (वरणीयः), (परन्तु) नास्तिकः (भगवद् कृष्ण-सेवा-विमुखः) वेदज्ञः (वेदशास्त्र-पारङ्गतः ब्राह्मणः अपिः) न पूज्यः दुसङ्गत्वात् परमार्थपथिकेन सर्वथा परित्याज्य एवेत्यर्थः)

७५। भगवद्भक्तिहीनस्य (कृष्णसेवा-विमुखस्य) जातिः (प्राक्तन सुकृति वशात् उत्तमकुले जन्मादिकं) शास्त्रं (स्वाध्यायादिकं) जपः (मन्त्रोच्चारणादिकं), तपः (साधनाद्यनुशीलनम्)—(एतत् सर्वमेव) अप्राणस्य (मृतस्य) देहस्य मण्डनम् (अलङ्करणम् इव व्यर्थम-किञ्चित्कर) लोकरञ्जनं (व्यवहारिकं जड़लोकानां बहिर्दर्शन-सुखकरमिव निष्फलमित्यर्थः)।

प्रभु के प्रेम, प्रभाव-सौन्दर्य आदि के
दर्शन से भट्ट का विस्मय—

**प्रभुर प्रेमावेश, आर प्रभाव भक्तिसार।**
**सौन्दर्यादि देखि' भट्टेर हैल चमत्कार॥७६॥**

**७६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के प्रेमावेश तथा भक्ति के सार को जानने वाले प्रभाव तथा उनके सौन्दर्य आदि को देखकर श्रीवल्लभभट्ट चमत्कृत हो उठे।

सगण प्रभु के साथ नौका में बैठना—

**सगणे प्रभुरे भट्ट नौकाते चड़ाञा।**
**भिक्षा दिते निज-घरे चलिला लञा॥७७॥**

**७७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को उनके परिकरों सहित नौका में चढ़ाकर वल्लभ भट्ट उन्हें भिक्षा देने के लिये अपने घर ले गये।

यमुना के नीले जल को देखकर कृष्ण के उद्दीपन
के कारण प्रभु का प्रेमावेश—

**यमुनार जल देखि' चिक्कण श्यामल।**
**प्रेमावेशे महाप्रभु हइला विह्वल॥७८॥**

**७८। प० अनु०—**श्रीयमुना जी के स्वच्छ श्याम वर्ण के जल को देखकर श्रीमन्महाप्रभु प्रेमावेश में विह्वल हो गये।

प्रभु का यमुना में कूदना, सभी
का हा-हुताश करना—

**हुङ्कार करि' यमुनार जले दिला झाँप।**
**प्रभु देखि' सबार मने हैल भय-काँप॥७९॥**

**७९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने हुङ्कार भरके यमुना के जल में छलांग लगा दी। श्री मन्महाप्रभु को ऐसा करते देखकर सभी का मन भय से काँपने लगा।

प्रभु को नौका में उठाकर बैठाना, प्रभु का नृत्य—

**आस्ते-व्यस्ते सबे धरि' प्रभुरे उठाइल।**
**नौकार उपरे प्रभु नाचिते लागिल॥८०॥**

**८०। प० अनु०—**जैसे-तैसे जल्दी से सभी ने पकड़कर श्रीमन्महाप्रभु को जल में से निकाला। श्रीमन्महाप्रभु नौका के ऊपर ही नृत्य करने लगे।

नृत्य के कारण नौका का हिलना, डुलना—

**महाप्रभुर भरे नौका करे-टलमल।**
**डुबिते लागिल नौका, झलके भरे जल॥८१॥**

**८१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के भार से नौका टलमल करने (डगमगाने) लगी। इधर-उधर होने से नौका में जल भरने लगा तथा वह डूबने लगी।

बहिरङ्ग-भट्ट के समक्ष भाव को छुपाने की चेष्टा करने पर भी प्रभु की प्रेम-मत्तता—

**यद्यपि भट्टेर आगे प्रभुर धैर्य हैल मन।**
**दुर्वार उद्भट प्रेम, नहे सम्वरण॥८२॥**

**८२। प० अनु०—**यद्यपि वल्लभ भट्ट के आगे श्रीमन्महाप्रभु के मन ने धैर्य धारण किया, तथापि दुर्दमनीय प्रबल प्रेम होने के कारण श्रीमन्महाप्रभु उसका सम्वरण नहीं कर पाये।

**अनुभाष्य**

**८२। दुर्वार,—**जिसका प्रकाश रोका अर्थात् बन्द नहीं किया जा सके; **उद्भट—**उदार, श्रेष्ठ, अभिनव, विचित्र, प्रसिद्ध, असाधारण, प्रबल।

प्रभु का धैर्य-धारण, दूसरी ओर उतरना—

**देश-पात्र देखि' महाप्रभु धैर्य हइल।**
**आड़ाइलेर घाटे नौका आसि' उत्तरिल॥८३॥**

**८३। प० अनु०—**स्थान तथा पात्र को देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने धैर्य धारण किया। नौका आड़ाइल ग्राम के घाट पर आ पहुँची।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**८३।** वह देश प्रायः प्रेमशून्य तथा सामने उपस्थित वल्लभ भट्ट भी बहुत ही तर्कप्रिय व्यक्ति हैं; ऐसा देखकर महाप्रभु ने धैर्य धारण किया।

**अनुभाष्य**

**८३।** देश-पात्र,—(जल में) निमग्न प्रायः नौका के ऊपर नृत्य आदि सुविधाजनक नहीं है; और फिर, वल्लभदीक्षित की भाँति प्रेम रहित पण्डित के समक्ष सात्त्विकभाव का उल्लास भी नहीं होता।

वल्लभ के द्वारा प्रभु के स्नान करने के बाद उन्हें अपने घर पर लाना—

**भये भट्ट सङ्गे रहे, मध्याह्न कराञा।**
**निज-गृहे आनिला प्रभुरे सङ्गेते लञा॥८४॥**

**८४। प० अनु०—**भय के कारण श्रीवल्लभ भट्ट सब समय श्रीमन्महाप्रभु के साथ में रहे। उन्होंने श्री मन्महाप्रभु को वहीं पर स्नान कराया तथा अपने साथ ही श्रीमन्महाप्रभु को अपने घर पर ले आये।

वल्लभ के द्वारा अपने हाथों से प्रभु के श्रीचरणों को धोना और सपरिवार चरणामृत का सम्मान—

**आनन्दित हञा भट्ट दिल दिव्यासन।**
**आपने करिल प्रभुर पाद प्रक्षालन॥८५॥**

**८५। प० अनु०—**श्रीवल्लभ भट्ट ने आनन्दित होकर श्रीमन्महाप्रभु को बैठने के लिए दिव्य-आसन प्रदान किया तथा उन्होंने स्वयं श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धोया।

प्रभु को नये वस्त्र प्रदान—

**सवंशे सेइ जल मस्तके धरिल।**
**नूतन कौपीन-बहिर्वास पराइल॥८६॥**

**८६। प० अनु०—**श्रीवल्लभ भट्ट ने वंश सहित उस जल को मस्तक पर धारण किया तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को नया बहिर्वास तथा कौपीन प्रदान किया।

प्रभु की पूजा और बलभद्र-द्वारा रसोई बनाना—

**गन्ध-पुष्प-धूप-दीपे महापूजा कैल।**
**भट्टाचार्य मान्य करि' पाक कराइल॥८७॥**

**८७। प० अनु०—**गन्ध-पुष्प-धूप तथा दीप से श्रीवल्लभभट्ट ने श्रीमन्महाप्रभु की महापूजा की तथा उन्होंने बलभद्र भट्टाचार्य का अत्यधिक सम्मान करके उनसे रन्धन कराया।

प्रभु और दोनों भ्राताओं का वल्लभ के घर में भोजन करना—

**भिक्षा कराइल प्रभुरे सस्नेह यतने।**
**रूप गोसाञि-दुइभाइये कराइल भोजने॥८८॥**

**८८। प० अनु०—**श्रीवल्लभभट्ट ने अत्यधिक स्नेह तथा प्रयत्न पूर्वक श्रीमन्महाप्रभु को भोजन कराया, बाद में श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीरूप गोस्वामी और उनके भाई श्रीवल्लभ को भी भोजन कराया।

श्रीरूप और कृष्णदास को प्रभु के
अवशेष की प्राप्ति—

**भट्टाचार्य श्रीरूपे देउयाइल 'अवशेष'।**
**तबे सेइ प्रसाद कृष्णदास पाइल शेष॥८९॥**

**८९। प० अनु०—**बलभद्र भट्टाचार्य ने श्रीरूप को श्रीमन्महाप्रभु का अवशेष प्रदान कराया। अन्त में श्रीमन्महाप्रभु का अन्य जो अवशेष प्रसाद बचा, उसे कृष्णदास ने ग्रहण किया।

वल्लभ के द्वारा प्रभु का पाद-सम्वाहन—

**मुखवास दिया प्रभुरे कराइल शयन।**
**आपन भट्ट करेन प्रभुर पाद-सम्वाहन॥९०॥**

**९०। प० अनु०—**श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीमन्महाप्रभु को मुखवास देने के बाद उन्हें शयन कराया तथा स्वयं श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीमन्महाप्रभु का पाद-सम्वाहन करना प्रारम्भ किया।

भोजन समाप्त करके वल्लभ का पुनः आगमन—

**प्रभु पाठाइल ताँरे करिते भोजने।**
**भोजन करि' आइला तेंहो प्रभुर चरणे॥९१॥**

**९१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवल्लभ भट्ट को भोजन करने के लिये भेजा। भोजन करने के बाद श्रीवल्लभभट्ट पुनः श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में लौट आये।

त्रिहुत नामक स्थान के, पण्डित रघुपति उपाध्याय
का आगमन—

**हेनकाले आइला रघुपति उपाध्याय।**
**तिरुहिता पण्डित, बड़ वैष्णव, महाशय॥९२॥**

**९२। प० अनु०—**उसी समय त्रिहुत नामक स्थान के पण्डित, बहुत बड़े वैष्णव तथा महान् आशय वाले श्री रघुपति उपाध्याय वहाँ पर आये।

### अमृतप्रवाह भाष्य

९२। रघुपति उपाध्याय के द्वारा रचित कुछेक श्लोक पद्यावली में पाये जाते हैं। उनका निवास—तिरहुत अथवा मिथिला देश में था।

### अनुभाष्य

९२। 'तिरुटिया' अथवा 'तिरहुटिया'—वर्त्तमान समय में सारण, चम्पारण, मजःफरपुर और द्वारभाङ्गा—ये चार जिले तिरहुट विभाग के अन्तर्गत हैं; इस प्रदेश के अधिवासियों को 'तिरुटिया' कहते हैं।

प्रभु की वन्दना, प्रभु द्वारा आशीर्वाद—

**आसि' तेंहो कैल प्रभुर चरण वन्दन।**
**'कृष्णे मति रहु' बलि' प्रभुर वचन॥९३॥**

**९३। प० अनु०—**वहाँ आकर श्रीरघुपति उपाध्याय ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना की तथा श्रीमन्महाप्रभु ने कहा-'श्रीकृष्ण में तुम्हारी मति रहे।

उपाध्याय को कृष्ण के विषय में
वर्णन करने के लिये आदेश—

**शुनि' आनन्दित हैल उपाध्यायेर मन।**
**प्रभु ताँरे कहिल,—"कह कृष्णेर वर्णन॥"९४॥**

**९४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर श्रीरघुपति उपाध्याय का मन बहुत आनन्दित हुआ। श्री मन्महाप्रभु ने उनसे कहा—कृष्ण के विषय में कुछ वर्णन करो।

उपाध्याय के द्वारा स्वरचित श्लोक
का पढ़ना, प्रभु में प्रेमावेश—

**निज-कृत कृष्णलीला-श्लोक पड़िल।**
**शुनि' महाप्रभुर-महा-प्रेमावेश हैल॥९५॥**

**९५। प० अनु०—**श्रीरघुपति उपाध्याय ने स्वरचित कृष्णलीला के एक श्लोक का उच्चारण किया। जिसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु में अत्यधिक प्रेमावेश उदित हो गया।

श्रीनन्द-प्रणाम—
पद्यावली के प्रथम अंक के (१२६)
में उद्धृत श्लोक—

**श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये भजन्तु भव-भीताः।**
**अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥९६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९६। भवसागर से भयभीत कोई श्रुति का, कोई स्मृति का तथा कोई महाभारत का भजन करें; (किन्तु) मैं श्रीनन्द की ही वन्दना करता हूँ,—जिनके बरामदे में परमब्रह्म कृष्ण लीला करते हैं।

**अनुभाष्य**

९६। भव-भीताः (संसार-भयातुराः) अपरे (हरिजनेतराः मोक्षाभिलाषिणः) श्रुतिं (वेद शास्त्रम्), इतरे (हरिजनेतराः केचन फलकामि-कर्मिणः) स्मृतिं (लौकिकप्रयोजनानुष्ठानपर-शास्त्रम्) अन्ये (संसारि-णा) भारतं (महाभारतादि-सकलजन-सुखपाठ्य-ग्रन्थादिक) भजन्तु; अहं तु इह (जगति त) नन्दं (व्रजेन्द्र) वन्दे,—यस्य (नन्दस्य) अलिन्दे (बहिर्द्वार-प्राङ्गणे) परं ब्रह्म (श्रीकृष्णः विराजते)।

**'आगे कह',—प्रभु-वाक्ये उपाध्याय कहिल।**
**रघुपति उपाध्याय नमस्कार कैल॥९७॥**

**९७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—आगे कहो! श्रीरघुपति उपाध्याय ने नमस्कार किया तथा श्री मन्महाप्रभु के वचन सुनकर उन्होंने कहा—

यमुना के तट पर स्थित कुञ्ज में
विहार करने वाले कृष्ण—
पद्यावली (९८) में उद्धृत श्लोक—

**कम्प्रति कथयितुमीशे सम्प्रति को वा प्रतीतिमायातु।**
**गोपति-तनयाकुञ्जे गोपवधूटी-विटं ब्रह्म॥९८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९८। किसे बतला सकता हूँ, अब कौन उस पर विश्वास करेगा कि,—सूर्यतनया (कालिन्दी) के कुञ्ज में गोपवधुओं के लम्पट परमब्रह्म लीला करते हैं?

**अनुभाष्य**

९८। गोपति-तनयाकुञ्जे (गोपतिः सूर्यः तस्य तनया कालिन्दी तस्याः तटस्थकुञ्जे) लीलापरायणं गोपवधुटीविटं (गोपवधूट्यः तरुण्यः स्वल्पवयस्काः गोपरामाः,—क्षुद्रार्थेटीप, तासां विटं लम्पटम्) (पर) ब्रह्म (श्रीकृष्णः विराजते इति) सम्प्रति कं (जन) प्रति कथयितुम् ईशे (समर्थो भवामि), कः वा प्रतीतिं (विश्वासम्) आयातु (स्थापयेत्)।

रघुपति के द्वारा श्लोक सुनाने
पर प्रभु में प्रेमावेश—

**प्रभु कहेन,—कह, तेंहो पड़े कृष्णलीला।**
**प्रेमावेशे प्रभुर देह-मन आलुयाइला॥९९॥**

**९९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—कुछ और कहो! श्री रघुपति उपाध्याय ने कृष्णलीला का उच्चारण किया। प्रेमावेश में श्रीमन्महाप्रभु की देह तथा मन निष्क्रिय हो गये।

**अनुभाष्य**

९९। आलुयाइला,—असंलग्न होने; प्राकृत विचारशून्य होकर मन उदासीन होने से देहिक क्रिया भी श्लथ (शान्त) हो गयी।

उपाध्याय में विस्मय और प्रभु को 'कृष्ण' मानना—

**प्रेम देखि' उपाध्यायेर हैल चमत्कार।**
**'मनुष्य नहे, इँहो—कृष्ण' करिल निर्द्धार॥१००॥**

**१००। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के प्रेमावेश को देखकर श्रीरघुपति उपाध्याय चमत्कृत हो उठे। उन्होंने निर्द्धारित किया कि श्रीमन्महाप्रभु कोई मनुष्य नहीं, बल्कि कृष्ण हैं।

प्रभु और रघुपति का संलाप; प्रभु का प्रश्न और उपाध्याय का उत्तर-प्रदान—

(१) कृष्ण का 'श्याम' रूप ही श्रेष्ठ—

**प्रभु कहे,—''उपाध्याय, श्रेष्ठ मान' काय?''**
**'श्याममेव परं रूपं'—कहे उपाध्याय॥१०१॥**

**१०१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—उपाध्याय, भगवान् के किस रूप को श्रेष्ठ रूप मानते हो? श्रीरघुपति उपाध्याय ने कहा—श्रीश्याम सुन्दर ही परम रूप हैं।

**अनुभाष्य**

१०१। प्रभु ने रघुपति से जिज्ञासा की—कृष्ण, नारायण, राम और नृसिंह आदि भगवान् के असंख्य आकार (रूप) हैं; उनमें से आपने किस आकार को सर्वश्रेष्ठ रूप जाना है?

(२) मथुरा ही श्रेष्ठ धाम—

**'श्याम'-रूपेर वासस्थान श्रेष्ठ मान' काय?''**
**'पुरी मधुपुरी वरा'—कहे उपाध्याय॥१०२॥**

**१०२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा—श्याम सुन्दर रूप के किस वास स्थान को श्रेष्ठ मानते हो? श्रीरघुपति उपाध्याय ने कहा—श्रीमथुरा पुरी को ही श्रेष्ठ मानता हूँ।

**अनुभाष्य**

१०२। कृष्ण कभी मथुरामण्डल में, कभी द्वारकापुरी परव्योम में अवस्थान करते हैं; इन दोनों में से मथुरापुरी का ही श्रेष्ठ होना कहा गया है। श्रीरूप पाद ने भी 'उपदेशामृत' में—''वैकुण्ठ-जनितो वरा मधुपुरी'' इत्यादि कहा है।

(३) किशोर-वयस ही आराध्य—

**''बाल्य, पौगण्ड, कैशोरे, श्रेष्ठ मान' काय?''**
**'वयं कैशोरकं ध्येयं'—कहे उपाध्याय॥१०३॥**

**१०३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा—श्याम सुन्दर के बाल्य, पौगण्ड तथा कैशोर वयस (आयु) में से किसे श्रेष्ठ मानते हो? श्रीरघुपति उपाध्याय ने कहा—कैशोर वयस ही ध्यान करने योग्य है।

**अनुभाष्य**

१०३। कृष्ण की तीन प्रकार की वयस (आयु) में से आपको कौन सी श्रेष्ठ प्रतीत होती है?

(४) अप्राकृत श्रृङ्गार-रस ही सर्वोत्तम और श्रेष्ठ-आराध्य—

**''रसगण-मध्ये तुमि श्रेष्ठ मान' काय?''**
**'आद्य एव परो रसः'—कहे उपाध्याय॥१०४॥**

**१०४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा—रसों में से तुम किस रस को श्रेष्ठ मानते हो? श्री रघुपति उपाध्याय ने कहा—आदि रस (श्रृङ्गाररस) ही परम श्रेष्ठ है।

प्रभु में आनन्द—

**प्रभु कहे,—''भाल तत्व शिखाइला मोरे।''**
**एत बलि' श्लोक पड़े गदगद-स्वरे॥१०५॥**

**१०५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—तुमने मुझे बहुत सुन्दर तत्व की शिक्षा प्रदान की है। इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने गद्गद् स्वर में निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया—।

पद्यावली (८२) में उद्धृत माधवेन्द्रपुरी द्वारा रचित श्लोक—

**श्याममेव परं रूपं पुरी मधुपुरी वरा।**
**वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः॥१०६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०६। श्याम रूप ही सर्वश्रेष्ठ रूप, मधुपुरी ही श्रेष्ठ पुरी, कैशोर-वयस (आयु) ही ध्येय (ध्यान योग्य) और आद्य अर्थात् शृङ्गाररस ही श्रेष्ठ रस है।

**अनुभाष्य**

१०६। (भगवद्रूपाणां वर्णाकाराणां भगवन्मूर्ति-भेदानां मध्ये) श्यामं (नन्दनन्दन-श्यामसुन्दरस्य अभ्रवपुः) रूपम् एव परं (श्रेष्ठम्); (पुरीणां वैकुण्ठ-मथुरादीनां मध्ये) मधुपुरी पुरी (मथुरा एव) वरा (श्रेष्ठा); बाल्य-पौगण्ड-कैशोर-वयसां मध्ये यौवन-पूर्वं धीरललित नायकोचित) कैशोरकं वयः (एव) ध्येयं (निरन्तरमाराध्यम्), (चिन्मयरस भेदानां मध्ये) आद्यः (मधुरः शृङ्गार) रसः एव परः (श्रेष्ठः)।

प्रभु के द्वारा आलिङ्गन, उपाध्याय के द्वारा नृत्य—

**प्रेमावेशे प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन।**
**प्रेमे मत्त हञा तेंहो करेन नर्त्तन॥१०७॥**

**१०७। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने प्रेमावेश में श्री रघुपति उपाध्याय को आलिङ्गन किया। श्री रघुपति उपाध्याय भी प्रेम में मत्त होकर नृत्य करने लगे।

वल्लभ का विस्मय, पुत्र का प्रभु के चरणों में समर्पण—

**देखि' वल्लभ-भट्ट मने चमत्कार हैल।**
**दुइ (?) पुत्र आनि' प्रभुर चरणे पाड़िल॥१०८॥**

**१०८। प॰ अनु॰—**यह सब देखकर श्रीवल्लभ भट्ट का मन चमत्कृत हो उठा; उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को लाकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया।

**अनुभाष्य**

१०८। दुईपुत्र (दो पुत्र)—गोपीनाथ और विठ्ठलेश्वर। श्रीमन्महाप्रभु १४३४ अथवा १४३५ शकाब्द में प्रयाग में उपस्थित हुए; उस समय विठ्ठल का जन्म हुआ नहीं, मध्य अष्टम परिच्छेद ४७ संख्या द्रष्टव्य।

आड़ाइल-ग्रामवासियों द्वारा प्रभु का दर्शन और वैष्णवता की प्राप्ति—

**प्रभु देखिबारे ग्रामेर सब-लोक आइल।**
**प्रभु-दरशने सब-लोक 'कृष्णभक्त' हइल॥१०९॥**

**१०९। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये ग्राम के सभी लोग आये। श्री मन्महाप्रभु के दर्शन से सभी लोग कृष्णभक्त बन गये।

ब्राह्मणों का निमन्त्रण, वल्लभ के द्वारा मना करना—

**ब्राह्मणसकल करेन प्रभुर 'निमन्त्रण'।**
**वल्लभभट्ट ताँ सबारे करेन निवारण॥११०॥**
**''प्रेमान्मादे पड़े गोसाञि मध्य-यमुनाते।**
**प्रयागे चालाइब, इँहा ना दिब रहिते॥१११॥**
**जाँर इच्छा, प्रयागे याञा करिबे निमन्त्रण।''**
**एत बलि' प्रभु लञा करिल गमन॥११२॥**

**११०-११२। प॰ अनु॰—**सभी ब्राह्मण श्री मन्महाप्रभु को निमन्त्रण देने लगे। श्रीवल्लभ भट्ट ने उन सबको ऐसे करने से मना किया। श्रीवल्लभ भट्ट ने उन ब्राह्मणों से कहा—प्रेमोन्माद के कारण श्रीचैतन्य गोसाञि बीच यमुना में जा पड़े थे, मैं इन्हें प्रयाग ले जाऊँगा, यहाँ पर नहीं रहने दूँगा। जिसकी इच्छा हो, वह प्रयाग जाकर इन्हें निमन्त्रण देना। इतना कहकर श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमन्महाप्रभु को लेकर चल दिये।

प्रभु को लेकर नौका के माध्यम से दूसरी ओर प्रयाग में वल्लभ का आगमन—

**गङ्गा-पथे महाप्रभुरे नौकाते बसाञा।**
**प्रयागे आइला भट्ट गोसाञिरे लञा॥११३॥**

**११३। प० अनु०—**गङ्गा के मार्ग में श्रीमन्महाप्रभु को नौका में बैठाकर श्रीवल्लभ भट्ट उन्हें प्रयाग में ले आये।

प्रभु के द्वारा दशाश्वमेघ घाट पर एकान्त में श्रीरूप में शक्ति का सञ्चार और शिक्षा-प्रदान—

**लोक-भिड़-भये प्रभु 'दशाश्वमेधे' याञा।**
**रूप-गोसाञिरे शिक्षा करा' न शक्ति सञ्चारिया॥११४॥**

**११४। प० अनु०—**लोगों की भीड़ के भय से श्रीमन्महाप्रभु ने दशाश्वमेघ घाट पर जाकर श्रीरूप गोस्वामी में शक्ति का सञ्चार करके उन्हें शिक्षा प्रदान की।

**अनुभाष्य**

११४। भगवान्—अनन्तशक्तिसम्पन्न। शक्तिमान भगवान से सुकृतिमान् जीव कृपा-शक्ति प्राप्त करता है। माया के चङ्गुल में पड़कर कृष्ण विमुखता रूपी अज्ञान के कारण जीव सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन तत्त्व में प्रवेश नहीं कर पाता। भगवान् गौरहरि ने कृपा करके श्रीरूप गोस्वामी को तत्त्व को समझने की शक्ति पहले अर्पण करके बाद में उन्हें तत्त्व शिक्षा प्रदान की।

कृष्णतत्त्व, भक्तितत्व और रसतत्त्व की सीमा की शिक्षा—

**कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व, रसतत्त्व-प्रान्त।**
**सब शिखाइल प्रभु भागवत-सिद्धान्त॥११५॥**

**११५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरूप गोस्वामी को कृष्णतत्व, भक्तितत्व तथा रसतत्व की सीमा आदि श्रीभागवत के सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान दी।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११५। प्रान्त,—सीमा।

रामानन्द के द्वारा कीर्तित भक्तिसिद्धान्तों का श्रीरूप को उपदेश—

**रामानन्द-पाशे जत सिद्धान्त शुनिला।**
**रूपे कृपा करि' ताहा सब सञ्चारिला॥११६॥**

**११६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरामानन्द राय से जितने सिद्धान्त सुने थे। उन्होंने श्रीरूप गोस्वामी पर कृपा करके उन सब सिद्धान्तों का उनमें सञ्चार किया।

श्रीरूप के हृदय में सभी तत्त्वों की स्फूर्ति—

**श्रीरूप-हृदये प्रभु शक्ति सञ्चारिला।**
**सर्वतत्त्व-निरुपिया 'प्रवीण' करिला॥११७॥**

**११७। प० अनु०—**श्रीरूप गोस्वामी के हृदय में श्रीमन्महाप्रभु ने शक्ति सञ्चारित की तथा सब तत्वों का निरूपण करके उन्हें उनमें प्रवीण बना दिया।

कविकर्णपुर के द्वारा स्वरचित-ग्रन्थ में श्रीरूप-शिक्षा का उल्लेख—

**शिवानन्द-सेनेर पुत्र 'कविकर्णपूर'।**
**'रूपेर-मिलन' स्व-ग्रन्थे लिखियाछेन प्रचुर॥११८॥**

**११८। प० अनु०—**श्रीशिवानन्द सेन के पुत्र श्रीकविकर्णपूर ने स्वरचित ग्रन्थ (श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक) में श्रीरूप के मिलन का प्रचुर वर्णन किया है।

श्रीरूप-सनातन के माध्यम से प्रभु द्वारा व्रजलीला की कथा का प्रकाश—

**कालेन वृन्दावनकेलिवार्त्ता**
**लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य।**
**कृपामृतेनाभिषिषेच देव-**
**स्तत्रैव रूपञ्च सनातनञ्च॥११९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११९। समय के प्रभाव से वृन्दावन लीला की वार्त्ता लुप्त हो गयी थी, उसी लीला को विशेष रूप से विस्तार करने के लिये श्री गौराङ्ग देव ने कृपा रूपी अमृत के द्वारा श्रीरूप एवं श्रीसनातन को अभिषिक्त किया था।

**अनुभाष्य**

११९। कालेन (भगवदिच्छारूप-कालवशेन) वृन्दावनकेलिवार्त्ता (वृन्दावन-सम्बन्धिनी रस-क्रीड़ा-कथा) लुप्ता (आच्छन्ना आसीत्); इति (अतः) तां (कथा) विशिष्य (विशिष्टां कृत्वा) ख्यापयितुं (प्रकाशयितु) देवः (श्रीगौरहरिः) तत्रैव (वृन्दावने) रूपं च सनातनं च कृपामृतेन (करुणा-सुधा-वारिणा) अभिषिषेच (अभिषिक्तवान्)।

श्रीरूप पर कृपा करने वाले प्रभु—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (९/२९) में—

**यः प्रागेव प्रियगुणगणैर्गाढ़बद्धोऽपि मुक्तो**
**गेहाध्यासाद्रस इव परो मूर्त्त एवाप्यमूर्त्तः।**
**प्रेमालापैर्दृढ़तरपरिष्वङ्गरङ्गैः प्रयागे तं श्रीरूपं**
**सममनुपमेनानुजग्राह देवः॥१२०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२०। जो पहले प्रिय गुण समूह के द्वारा गाढ़ बद्ध होने पर भी गृह के कार्यों से मुक्त हो गये थे, उन श्रीरूप के ऊपर, उनके छोटे भाई श्री अनुपम के साथ, स्वयं रस के समान अमूर्त्ति होने पर भी श्रेष्ठ मूर्त्तिमान् गौराङ्गदेव ने प्रयाग में प्रेमालाप और दृढ़तर (गाढ़) आलिङ्गन द्वारा अनुग्रह किया था।

**अनुभाष्य**

१२०। यः (श्री रूपः) प्रागेव प्रियगणगणैः (प्रियस्य गौरस्य गुणगणैः गुणसमूहैः) गाढ़बद्धः (गाढ़म् अतिशयं बद्धः आसक्तः) अपि गेहाध्यासात् (लीलाभि-नीत-गृहा-सक्तेः) मुक्तः (त्यक्तस्पृहः) आसीत्, तं (श्रीरूपम्) अनुपमेन (अनुजेन) समं (सार्द्धम्) अमूर्त्तः अपि परः रसः इव (स्वरुपं प्रकटीकृत्य) देवः (गौरः) प्रयागे (गङ्गायामुन सङ्गमे) प्रेमालापैः दृढ़तरपरिष्वङ्गरङ्गैः (गाढ़ालिङ्गनविलासैः) अनुजग्राह (अनुकम्पां कृतवान्)।

प्रभु के द्वितीय स्वरूप, प्रभु के सर्वस्व श्रीरूप में भक्तिरसतत्त्व-शास्त्र का विस्तार—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (९/३०) में
सार्वभौम-वचन—

**प्रियस्वरूपे दयितस्वरूपे**
**प्रेमस्वरूपे सहजाभि रूपे।**
**निजानुरूपे प्रभुरेकरूपे**
**ततान रूपे स्वविलास रूपे॥१२१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२१। अपने प्रियस्वरूप, दयितस्वरूप, प्रेमस्वरूप, स्वाभाविक मनोज्ञरूप से युक्त, मुख्य रूप एवं अपने अनुरूप,—ऐसे अपने विलासरूप श्रीरूप गोस्वामी में प्रभु ने (भक्तिरस शास्त्र का) विस्तार किया था।

**अनुभाष्य**

१२१। प्रियस्वरूपे (प्रियः भक्तः तत्स्वरूप यः तस्मिन् भक्तरूपे) दयित स्वरूपे (दत्तम आत्मस्वरूपं यस्मै तस्मिन्) प्रेमस्वरूपे (प्रेममये निजाभिन्नरूपे) सहजाभिरूपे (सहजं स्वाभाविकम् अभिरूपं मनोज्ञं रूपं यस्य तस्मिन्) निजानुरुपे (प्रेम प्रकाशतया सदृशं रूपं यस्य तस्मिन्) एकरूपे (एकं मुख्यं रूपं यस्य तस्मिन्) स्वविलासरूपे (स्वस्य स्व-स्वरूपस्य विलासः लीलार्थं रूपं यस्य तस्मिन्) रूपे (श्रीरूप गोस्वामिने) प्रभुः (श्रीमन्महाप्रभुः) ततान (श्रीरूप द्वारैव भक्तिरसशास्त्र प्रकाशितवान्)।

**एइमत कर्णपूर लिखे स्थाने-स्थाने।**
**प्रभु कृपा कैला जैछे रूप-सनातने॥१२२॥**

**१२२। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीकविकर्णपूर ने स्वरचित ग्रन्थ के स्थान-स्थान पर, श्रीमन्महाप्रभु ने जिस प्रकार श्री रूप-सनातन पर कृपा की थी, उसका वर्णन किया है।

**अनुभाष्य**

१२२। स्थाने स्थाने (स्थान-स्थान पर)—श्रीचैतन्य चन्द्रोदय ग्रन्थ के भिन्न-भिन्न स्थानों पर।

श्रीरूप-सनातन—सभी गौरभक्तों के अत्यधिक प्रिय—

**महाप्रभुर जत बड़-बड़ भक्त मात्र।**
**रूप-सनातन—सबार कृपा-गौरव-पात्र॥१२३॥**

**१२३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के जितने भी बड़े-बड़े भक्त थे, श्रीरूप-सनातन उन सभी के कृपा तथा गौरव के पात्र थे।

सभी के आदर का दृष्टान्त; वृन्दावन दर्शन करने वालों से रूप-सनातन के सम्बन्ध में अत्यधिक आग्रह-पूर्वक जिज्ञासा—

**केह यदि देशे जाय देखि' वृन्दावन।**
**ताँरि प्रश्न करेन प्रभुर पारिषदगण॥१२४॥**
**''कह,—ताँहा कैछे रहे रुप-सनातन?**
**कैछे रहे, कैछे वैराग्य, कैछे भोजन??१२५॥**
**कैछे अष्टप्रहर करेन श्रीकृष्ण-भजन?''**
**तबे प्रशंसिया कहे सेइ भक्तगण॥१२६॥**

**१२४-१२६। प० अनु०—**कोई यदि श्रीवृन्दावन के दर्शन करके अपने गाँव में पहुँचता, उनसे श्रीमन्महाप्रभु के परिकर प्रश्न करते थे—बतलाओ तो, वहाँ रूप और सनातन कैसे रहते हैं? क्या करते हैं? उनका कैसा वैराग्य हैं? वे क्या भोजन करते हैं? रूप और सनातन कैसे अष्ट प्रहर श्रीकृष्ण का भजन करते हैं? तब श्रीरूप-सनातन की प्रशंसा करते हुए वह वृन्दावन से लौटा भक्त कहता—।

श्रीरूप-सनातन के वैराग्ययुग्-भक्तिरस के पान की मत्तता का वर्णन—

**''अनिकेत दुँहे, वने जत वृक्षगण।**
**एक एक वृक्षेर तले एक एक रात्रि शयन॥१२७॥**

१२७। **प० अनु०—**दोनों की ही रहने की कोई निर्दिष्ट कुटिया नहीं हैं। वन में जितने भी वृक्ष हैं, वे दोनों एक-एक वृक्ष के नीचे एक-एक रात्रि शयन करते हैं।

**'विप्रगृहे' स्थूलभिक्षा, काँहा माधुकरी।**
**शुष्क रुटी-चाना चिबाय, भोग परिहरि'॥१२८॥**

१२८। **प० अनु०—**कभी तो ब्राह्मण के घर में स्थूल भिक्षा ग्रहण करते हैं, कभी कहीं पर माधुकरी माँगकर खा लेते हैं। भोग का सम्पूर्ण रूप से त्याग कर कभी सूखी रोटी तथा चना चबाते है।

**अनुभाष्य**

१२८। **स्थूलभिक्षा,—**जिस भिक्षा को ग्रहण करने पर उदर पूर्त्ति के लिये अन्य किसी व्यक्ति से और किसी खाद्य पदार्थ की भिक्षा नहीं करनी पड़ती।

**माधुकरी,—**मधुमक्खी जिस प्रकार बहुत प्रकार के पुष्पों से मधु का संग्रह करके अपने छत्ते में ले जाती है, उसी प्रकार बहुत से स्थानों से थोड़ा-थोड़ा खाद्य पदार्थ संग्रह करके जो उदर भरते है, उन्हीं की वृत्ति ही माधुकरी के नाम से जानी जाती है।

**'भोग परिहरि'** (भोग को त्यागकर)—सुख प्राप्ति की आशा से इन्द्रियवृत्ति को वर्द्धित करने के लिये जो सब उत्तेजक पदार्थ उपयोग किये जाते हैं, उन्हें त्याग करके भजन के उपयोगी जीवन की रक्षा करने के लिये सूखी रोटी और भुने हुए चने के द्वारा जीवन का निर्वाह करते थे।

**करोंया-मात्र हाते, काँथा, छिंडा-बहिर्वास।**
**कृष्णकथा, कृष्णनाम, नर्तन-उल्लास॥१२९॥**

१२९। **प॰ अनु॰—**हाथ में केवल करोंया (जल का पात्र) ही रखते है, कन्धे पर पुराने वस्त्रों का बना कम्बल (काँथा) तथा शरीर पर फटा हुआ बहिर्वास धारण करते हैं। कृष्णकथा, कृष्णनाम तथा नृत्य में उल्लास प्राप्त करते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२९। **कँरोया—**सन्यासियों के हाथ में रहने वाला जल का पात्र।

**अष्टप्रहर कृष्णभजन, चारिदण्ड शयने।**
**नाम-सङ्कीर्तन-प्रेमे, सेह नहे कोन दिने॥१३०॥**

१३०। **प॰ अनु॰—**आठों प्रहर कृष्ण का भजन करते हैं, शयन केवल चार दण्ड करते हैं। कभी-कभी तो नाम-सङ्कीर्त्तन तथा कृष्ण प्रेम में आविष्ट होने के कारण वह भी नहीं होता।

**कभु भक्तिरसशास्त्र करये लिखन।**
**चैतन्यकथा शुने, करे चैतन्य-चिन्तन॥१३१॥**

१३१। **प॰ अनु॰—**कभी भक्तिरस से सम्बन्धित शास्त्र का लेखन कार्य करत हैं तो कभी श्री चैतन्य महाप्रभु की कथा का श्रवण करते हैं और श्रीचैतन्य महाप्रभु का चिन्तन करते हैं।

**अनुभाष्य**

१३१। ऐसे वैराग्य युक्त जीवन में वे कभी तो भक्तिरस शास्त्र लिखकर कृष्ण भजन करते थे, किसी समय नाम-सङ्कीर्त्तन एवं किसी समय गौर-लीला-स्मरण मनन आदि द्वारा कृष्णभजन करते थे। प्राकृत सहजियाओं में यह विश्वास प्रबल है कि भक्तिशास्त्र को लिखने तथा पढ़ने आदि का परित्याग करके अपनी मूर्खता के साधन के उद्देश्य से शास्त्र आदि की चर्चा से छुट्टी प्राप्त करना ही भक्ति का 'साधन' है। श्रीरूपानुग भक्तों की ऐसी बातों में आस्था नहीं है; किन्तु साधक की शास्त्रों को लिखने-पढ़ने आदि के द्वारा यदि अर्थ उपार्जन की अभिलाषा के मूल में जड़ इन्द्रियों का तर्पण, जड़ीय प्रतिष्ठा अथवा पूजा, लाभ अथवा अन्य कोई क्षुद्र तुच्छ उद्देश्य रहे—जिसे 'उपशाखा' कहा जाता है,—तब उस प्रकार के भ्रष्टाचार परायण व्यक्ति का कभी भी मङ्गल नहीं होता। वास्तविक श्रीमद्रूपानुगों की ऐसी क्षुद्र (तुच्छ) फलभोग मूलक कर्मवासना नहीं है।

रूप-सनातन के भजन के आचरण के विषय में सुनकर भक्तों का आनन्द—

**एइकथा शुनि' महान्तेर महासुख हय।**
**चैतन्येर कृपा जाँहे, ताँहे कि विस्मय??१३२॥**

**१३२। प॰ अनु॰—**श्रीरूप-सनातन से सम्बन्धित इन बातों को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के परिकरों को अत्यधिक प्रसन्नता की प्राप्ति होती। जिन पर श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा हो, उनके विषय में यह सब सुनकर कैसा विस्मय?

स्व-रचित भक्ति रसामृतसिन्धु में प्रभु की कृपा का वर्णन—

**चैतन्येर कृपा रूप लिखियाछेन आपने।**
**रसामृतसिन्धु-ग्रन्थेर मङ्गलाचरणे॥१३३॥**

**१३३। प॰ अनु॰—**श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा के विषय में श्रीरूप गोस्वामी ने स्वरचित भक्तिरसामृत सिन्धु ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में स्वयं लिखा है—

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/१/२)—

**हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्तितोऽहं वराकरुपोऽपि।**
**तस्य हरेः पदकमलं वन्दे चैतन्यदेवस्य॥१३४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३४। हृदय में जिनकी प्रेरणा से सामान्य काङ्गालरूपी मैं भक्तिग्रन्थ की रचना में प्रवृत्त

हुआ हूँ, उन श्रीचैतन्यदेव हरि के पदकमल की मैं वन्दना करता हूँ।

### अनुभाष्य

१३४। (निज-भगवत्सेवा प्रवर्त्तकं स्वाश्रय चरणकमलं भगवन्तं गौरहरिं नमस्करोति-) अहं वराकरूपः (क्षुद्र-दीन-रूपः स्वयं गोस्वामिकुल-चूड़ामणेरपि अतिदैन्यवशादेवेयमुक्तिः) अपि यस्य (कर्त्तृभूतस्य गौरस्य) हृदि (मनसि) प्रेरणया (हृदिष-यानुज्ञया) प्रवर्त्तितः (प्रेरितः), तस्य चैतन्य देवस्य हरेः (गौरहरेः कृष्णचैतन्यस्य) पदकमलं (चरणार-विन्दम्) अहं वन्दे।

प्रयाग में दस दिन तक प्रभु के द्वारा
श्रीरूप को शिक्षा-प्रदान—

**एइमत दशदिन प्रयागे रहिला।**
**श्रीरूपे शिक्षा दिल शक्ति सञ्चारिया॥१३५॥**

**१३५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने इस प्रकार दस दिन तक प्रयाग में रहकर श्री रूप में शक्ति सञ्चार करके उन्हें शिक्षा प्रदान की।

श्रीरूप-शिक्षा; सूत्राकार में भक्तिरस
के लक्षण का वर्णन—

**प्रभु कहे,—''शुन, रूप, 'भक्तिरसेर लक्षण'।**
**सूत्ररूपे कहि, विस्तार ना जाय वर्णन॥१३६॥**

**१३६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—रूप, भक्ति रस के लक्षण के विषय में सुनो। मैं इसका सूत्र रूप में ही वर्णन करूँगा, क्योंकि इसका विस्तृत रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्रभु की कृपा से रूप के द्वारा भक्तिरसामृतसिन्धु
की एक बूँद का पान—

**पारापार-शून्य गभीर भक्तिरस-सिन्धु।**
**तोमाय चाखाइते तार कहि एक 'बिन्दु'॥१३७॥**

**१३७। प० अनु०—**भक्तिरस रूपी सिन्धु आर-पार रहित तथा बहुत गहरा है। तुम्हें चखाने के लिये मैं भक्तिरस रूपी सिन्धु के एक बिन्दु की व्याख्या करता हूँ।

### अनुभाष्य

१३७। पारापार-शून्य,—पार,—एक पार, अपार,—दूसरी ओर; अतएव जिसके दोनों पार के बीच किसी भी पार की कोई सीमा नहीं है।

सर्वप्रथम ब्रह्माण्ड के बद्धजीवों का वर्णन;
संख्या में बहुत अधिक—

**एइमत ब्रह्माण्ड भरि' अनन्त जीवगण।**
**चौरासी-लक्ष योनिते करये भ्रमण॥१३८॥**

**१३८। प० अनु०—**जिस प्रकार इस ब्रह्माण्ड को जीवों से भरा हुआ देख रहे हो, उसी प्रकार अनन्त जीव ऐसे अनेकानेक ब्रह्माण्डों को भरकर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हैं।

### अनुभाष्य

१३८। चौरासी लाख योनि,—(विष्णु पुराण में)—'जलजानवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः। कृमयो रुद्रसंख्यकाः पक्षिणां दशलक्षकम्। त्रिंशल्लक्षाणि पशवः चतुर्लक्षाणि मानुषाः॥''

जीवात्मा और जीव के स्वरूप का परिमाण—

**केशाग्र-शतेक-भाग पुनः शतांश करि।**
**तार सम सूक्ष्म जीवेर 'स्वरूप' विचारि॥१३९॥**

**१३९। प० अनु०—**केश के अग्रभाग को सौ भागों में बाँटने के बाद, उसके एक भाग को पुनः सौ भागो में बाँटने पर, उसके एक भाग के समान सूक्ष्म जीव का स्वरूप है।

### अनुभाष्य

१३९। मुण्डक में ३/१/९—''एषोऽणुरात्मा''।

शास्त्र-प्रमाण—
श्रीमद्भागवत (१०/८७/३०) में श्रुति-स्तव-व्याख्या में उद्धृत-श्लोक—

**केशाग्रशतभागस्य शतांशसदृशात्मकः।**
**जीवः सूक्ष्म स्वरूपोऽयं संख्यातीतो हि चित्कणः॥१४०॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४०। केश के अग्रभाग के सौ भाग करने पर उसके एक भाग के पुनः सौवे अंश के सदृश स्वरूप ही जीव का सूक्ष्म स्वरूप है; जीव—चित्कण और संख्यातीत है।

### अनुभाष्य

१४०। अयं जीवः हि केशाग्रशतभागस्य (अति सूक्ष्म-केशाग्रयामस्य शतधा विभक्तस्य, पुनः तादृश परम सूक्ष्मांशस्य) शतांशसदृशात्मकः (पुनः शत-खंण्डाशतुल्यः) सूक्ष्मस्वरूपः (परमाणु-चेतनः) चित्कणः (सूक्ष्मचिदणुखण्डः) संख्यातीतः (अनन्त-संख्यक)।

श्वेताश्वतर उपनिषद के मन्त्रानुसार पञ्चदशी चित्रदीप (८१) में—

**बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।**
**भागो जीवः स विज्ञेय इति चाह परा श्रुतिः॥१४१॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४१। केश के अग्रभाग के सौंवे भाग को बहुत से सौ भागों में विभाग करने से जो सूक्ष्म भाग होता है, जीव—वैसा सूक्ष्म है, प्रधान श्रुति ने ऐसा बोला है।

### अनुभाष्य

१४१। (यः) बालाग्रशतभागस्य (केशाग्रस्य शतधा खण्डितस्य, तस्य पुनः) शतधा कल्पितस्य (विभक्तस्य) च भागः (खण्डः), सः (एव) जीवः (जीवस्वरूपाकारः) विज्ञेयः (ज्ञातव्यः) इति च परा (श्रेष्ठा) श्रुतिः (श्वेताश्वतर-प्रमुखा) आह।

श्रीमद्भागवत (११/१६/११) में—

**सूक्ष्माणामप्यहं जीवः॥१४२॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४२। किसी-किसी पाठ में लिखा हुआ है,—श्रीमद्भागवत में उद्धव के प्रति श्रीभगवद् वाक्य—

''गुणिनामप्यहं सूत्रं महताञ्च महानहम्।
सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः॥''

सूक्ष्मगणों में मैं (भगवान्) 'जीव' (भेदाभेद-प्रकाश) हूँ।

### अनुभाष्य

१४२। भगवान् की विभूतियों का श्रवण करने की इच्छा करने पर श्रीउद्धव के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति—

अहं (चिदचिदीश्वरः अद्वयज्ञानात्मकः श्री भगवान्) सूक्ष्माणाम् (अणुणाम् अपि मध्ये) जीवः (जीवात्मा)।

श्रीमद्भागवत (१०/८७/३०) में—

**अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-**
**स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा।**
**अजनि च यन्मयं तद्विमुच्य नियन्तृ भवेत्**
**सममनुजानतां यदमतं मतदृष्टतया॥१४३॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४३। हे सभी के आश्रय, यदि सभी शरीरधारी जीव परम नित्य और सर्वगत होते, तो फिर आपके शासन के अधीन रहने का नियम न होता। यदि जीव को 'अणु' सामान्यतः 'नित्य' कहकर स्वीकार किया जाये, तभी वे आपके अधीन होते हैं। जीवाख्य होकर जिन्होंने जन्मग्रहण किया है, उन्हें बिना त्यागे ही उनपर नियन्तृत्व हो सकता है। अतएव जो जीव तथा आपको 'एक' मानता है उनका मत—'मतवाद' से दूषित है।

### अनुभाष्य

१४३। जनलोक में ब्रह्मसत्र यज्ञ में श्रवण करने के इच्छुक मुनियों के निकट कुमारों में अन्यतम ब्रह्मर्षि सनन्दन श्रुतिगण कर्त्तृक भगवत्स्तव का वर्णन कर रहे हैं—

हे ध्रुव, (सर्वाश्रय, नित्य) अपरिमिताः (वस्तुतः एव अनन्ताः) ध्रुवाः (नित्याः) तनुभृतः (शरीरधारिणः जीवाः) यदि सर्वगताः (विभवः व्यापकाः स्यूः) तर्हि शास्यता (तत्शास्यता) इति यः त्वया नियमः (नियमन) सः न स्यात्, इतरथा च (घटेत् निषम्य-नियन्तृभावावस्थित्वात्;) यन्मयं (यत् अग्न्यादिमयं स्फुलिङ्गादिकं कार्यं जीवाख्यं वस्तु) अजनि (जातं, तेषां जीवाना) नियन्तृ (शास्तृ) भवेत्, तत् अविमुच्य (तान् जीवान् अपरित्यज्य यत् उपादानरूपं परमात्मानं जीवतत्त्वेन) समम् अनुजानतां (केवलाद्वैतवादिना) मतदुष्टतया (मतस्य दुष्टतया अशुद्धत्वेन) अमतम् एव (अज्ञातप्रयाम अविषयत्वात्)।

विरूप के भेद से जीव दो प्रकार के—१) स्थावर, २) जङ्गम; जङ्गम तीन प्रकार के—जल, स्थल, खेचर—

**तार मध्ये 'स्थावर', 'जङ्गम'—दुइ भेद।**
**जङ्गमे तिर्यक-जल-स्थलचर-विभेद॥१४४॥**

**१४४। प० अनु०—**ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत बद्ध-जीवोंमें स्थावर तथा जङ्गम—दो प्रकार के भेद हैं। जङ्गम में त्रिर्यक (वायु में रहने वाले), जलचर तथा स्थलचर—ये तीन विभेद हैं।

### अनुभाष्य

१४४। तार मध्ये,—ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत बद्धजीवों में।

स्थलचर का श्रेष्ठत्व; उनमें से मनुष्य जाति की सर्वश्रेष्ठता; उनमें से कर्मी, ज्ञानी और भक्तों में तारतम्य (श्रेष्ठ और निम्न के आधार पर)-तुलना—

**तार मध्ये मनुष्य-जाति अति अल्पतर।**
**तार मध्ये म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध, शबर॥१४५॥**

**१४५। प० अनु०—**उन जीवों में से मनुष्य जाति अत्यधिक अल्पतर हैं। उनमें भी म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध तथा शबर लोग हैं।

### अनुभाष्य

१४५। **तार मध्ये,—**वेदों में निष्ठा रखने वाली विपरीत मनुष्य जाति में।

**वेदनिष्ठ-मध्ये अर्द्धेक वेद 'मुखे' माने।**
**वेदनिषिध पाप करे, धर्म नाहि गणे॥१४६॥**

**१४६। प० अनु०—**वेदनिष्ठ मनुष्यों में से आधे तो वेद को केवल मुख से मानते हैं, किन्तु करते वेद-निषिद्ध पाप है तथा धर्म को नहीं मानते हैं।

### अनुभाष्य

१४६। मुख से स्वयं को 'वेदनिष्ठ' के रूप में स्वीकार करके वेदों के विरुद्ध आचरण करने वाले—यथेच्छाचारी 'कुकर्मी' अथवा 'अन्याभिलाषी'।

**धर्माचारी-मध्ये बहुत 'कर्मनिष्ठ'।**
**कोटि-कर्मनिष्ठ-मध्ये एक 'ज्ञानी' श्रेष्ठ॥१४७॥**

**१४७। प० अनु०—**धर्म का आचरण करने वालों में से भी बहुत कर्मनिष्ठ हैं। करोड़ो कर्मनिष्ठ व्यक्तियों में से एक ज्ञानी श्रेष्ठ है।

मुक्तगणों में भी कृष्णभक्त का सुदुर्लभ होना—

**कोटिज्ञानी-मध्ये हय एकजन 'मुक्त'।**
**कोटिमुक्त-मध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्णभक्त॥१४८॥**

**१४८। प० अनु०—**करोड़ो ज्ञानियों में से एक व्यक्ति ही मुक्त होता है। करोड़ो मुक्तों में भी एक कृष्णभक्त 'दुर्लभ' ही होता है।

### अनुभाष्य

१४८। कर्मनिष्ठ,—अपनी भोग कामनाओं से जो पुण्य आदि सत्कर्म करते है; पुनः निष्काम की कल्पना करके जो कर्मसमूह अर्पण करते हैं,

ऐसे करोड़ों कर्मनिष्ठों में से जो सत्त्व में अधिष्ठित होने पर भी रजोगुण और तमोगुण को दूर करने के लिये, प्राकृत पुण्य और पाप, दोनों प्रकार की अवस्थाओं से हटकर आत्मा की निर्मलता का अनुसरण करने हेतु प्रकृति से अतीत निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धान में रत होता है, वही ज्ञानी है। करोड़ो ज्ञानियों में से जो ज्ञानमार्ग में सत्त्व गुण के आश्रित होकर शम-दम आदि छह प्रकार के साधन आदि मिश्रा और विद्ध-भक्तिमूलक सत् कर्म अनुष्ठान करते-करते द्वैतबुद्धि से अपने आश्रयीभूत उपाय समूह को असम्पूर्ण मानकर परित्यागपूर्वक अनित्य और असत्य साधन को ही नित्यसिद्धि के कारण रूप में जानकर इस प्रकार के साधन के फल से अन्त में अपनी बद्धानुभूति से मुक्ति अर्थात् ब्रह्मभूत स्वरूप प्राप्त किया है, ऐसा कहकर अभिमान करते हैं एवं उसी के उद्देश्य से 'दृष्टा', 'दर्शन' और 'दृश्य' अथवा 'ज्ञाता', 'ज्ञान' और ज्ञेय' के वैशिष्ट्य का लोप करते हैं, वैसे अचित्-मिश्रातीत केवलचिन्मयवादी ज्ञानी ही 'मुक्त' कहे जाते हैं। ऐसे करोड़ों मुक्तों में भी कृष्णभक्त विरले हैं।

कृष्ण भक्त के सुदुर्लभ
होने और सर्वश्रेष्ठ
होने का कारण—

**कृष्णभक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त'।**
**भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी—सकलि 'अशान्त'॥१४९॥**

**१४९। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण का भक्त निष्काम होने के कारण शान्त होता है। भोग-मोक्ष तथा सिद्धि की कामना रखने वाले सभी अशान्त रहते हैं।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४४-१४९। जीव दो प्रकार के हैं,—नित्यमुक्त और नित्यबद्ध। नित्यबद्ध स्थावर और जङ्गम के भेद से दो प्रकार के हैं; जो—अचल (जैसे, वृक्षादि) हैं, वही 'स्थावर' जीव हैं; जो—सचल, वही 'जङ्गम' हैं। जङ्गम तीन प्रकार के हैं,—तिर्यक-पक्षीगण, जलचर और स्थलचर। स्थलचरों में मानवजाति अत्यन्त अल्प संख्यक है। उन अल्पसंख्यक मनुष्यों में म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध और शबर को छोड़ देने पर वेदनिष्ठ मनुष्य ही बचते हैं। वेदनिष्ठ भी दो प्रकार के हैं,—धर्माचारी और अधर्माचारी; धर्माचारियों में अधिकांश कर्मनिष्ठ हैं; कोई-कोई ज्ञाननिष्ठ हैं। करोड़ों ज्ञान निष्ठों में वास्तव में कोई एक व्यक्ति ही 'मुक्त' है; यहाँ, जो जड़ीयबुद्धि से मुक्त हैं, उन्हें ही 'मुक्त' कहा गया है। उन सब मुक्त व्यक्तियों में, जो श्रद्धालु होकर कृष्णभजन में प्रवृत्त हैं, वही 'कृष्णभक्त' हैं। कृष्णभक्त में कोई कामना नहीं होती। पहले कहे गये 'मुक्त' व्यक्ति तक सभी कामना युक्त हैं; धर्माचारी और कर्मनिष्ठ—'भुक्तिकामी' और मुक्त पर्यन्त ज्ञानी-'मुक्तिकामी हैं, उनमें से पुनः कोई-कोई योग फल के सिद्धिकामी हैं। जब तक उनके हृदय में उपरोक्त तीन प्रकार की कामना रहती है, तब तक उन्हें यह सब कामनाएँ शान्ति प्रदान नहीं करती; इस कारणवश वे सभी 'अशान्त' हैं। अतएव एकमात्र निष्काम कृष्णभक्त ही शान्त अर्थात् शान्ति प्राप्त करने वाला है।

### अनुभाष्य

१४९। कृष्ण भक्त ही एकमात्र कामनाशून्य एवं एकमात्र कृष्णनिष्ठ होने के कारण शान्त होता है। स्वर्ग आदि भुक्ति-मुक्तिकामी कर्मी, निर्वाण (मुक्ति) आदि मुक्तिकामी ज्ञानी एवं अणिमा आदि अठारह प्रकार के सिद्धि कामी योगी अपनी-अपनी कामनाओं के वशवर्ती होकर उन्हीं की प्राप्ति के लिये अशान्त रहते हैं; पुनः, कामना की तृप्ति होने पर भी असत् की प्राप्ति वशतः कृष्णनिष्ठ नहीं होने के कारण अशान्त रहते हैं।

शास्त्रप्रमाण—
श्रीमद्भागवत (६/१४/५) में—

**मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।**
**सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुनेः॥१५०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५०। हे महामुने, करोड़ो-करोड़ो मुक्तों और सिद्धों में से नारायण परायण प्रशान्त आत्मा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है।

**अनुभाष्य**

१५०। मुक्तानां (अज्ञानबन्ध-रहिताना) सिद्धानां (योग-सिद्धाना) कोटिषु अपि मध्ये प्रशान्तात्मा (निष्काम मनाः) नारायणपरायणः सुदुर्लभः। तन्त्र-वाक्य—"ज्ञानतः सुलभा मुक्तिभुक्तिर्यज्ञादि पुण्यतः। सेयं साधन-साहस्त्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा॥"

लता के साथ भक्ति की उपमा; भक्ति का दूसरा नाम 'कृष्ण के प्रति अनुराग'; बद्धजीव के लिये उस कृष्ण की प्रीति पूर्वक की जाने वाली सेवा की प्राप्ति के क्रम के वर्णन के मूल (जड़) में भक्तिप्रदान करने वाली कृष्णकृपामयी सुकृति हैं, उसके फल-स्वरूप सद्‌गुरु की प्राप्ति, उनकी कृपा से श्रवण के फल से सम्बन्ध की उपलब्धि और श्रद्धा का उदय—

**ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।**
**गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज॥१५१॥**

**१५१। प॰ अनु॰—**ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते-करते कोई भाग्यवान् जीव ही गुरु तथा कृष्ण की कृपा से भक्तिलता के बीज को प्राप्त करता है।

**अनुभाष्य**

१५१। 'ब्रह्माण्ड' का अर्थ चतुदर्श भुवन (आदि, पञ्चम परिच्छेद ९८ संख्या)।

**भाग्यवान्**—सुकृति सम्पन्न जीव; अनजाने में विष्णु-वैष्णव की सेवा होने से जीव की 'सुकृति' उदित होती है,—(नारद के जन्म का उपाख्यान-भागवत १/५/२३-३० द्रष्टव्य)। यह भक्ति उन्मुखी सुकृति—जीवात्मा की चितवृत्ति का ही अस्फुट विकास है, यह जड़ीय कर्म नहीं है; सुकृति के फलस्वरूप श्रद्धा और श्रवण से उत्पन्न सम्बन्ध ज्ञान की प्राप्ति होने से ही वास्तविक शुद्धभक्ति आरम्भ होती है।

**गुरुप्रसाद** (गुरु कृपा)—गुरु कृपा करके शिष्य को कृष्णभक्ति रूपी सर्वोत्तम अनुग्रह (कृपा) दान करते हैं। सुकृतिवान् कृपा प्राप्त करने योग्य व्यक्ति के परम मङ्गल प्राप्ति के उद्‌देश्य से श्रीभगवान् अपने प्रियतम व्यक्ति को शक्ति अर्पित करके जगत् में अपनी कृपाशक्ति के वितरण के लिये महान्त गुरु के रूप में भेजते हैं, श्रीगुरुदेव शिष्य को कृष्ण सेवा रूपी अपनी कृपा प्रदान करते हैं।

**कृष्ण प्रसाद—**भक्तिलता के बीज को प्रदान करने वाले आश्रयजातीय भगवद्‌स्वरूप गुरुदेव को शिष्य के निकट भेजना ही कृष्ण की कृपा है। गुरु की कृपा से कृष्ण की कृपा प्राप्त होती है एवं कृष्ण की कृपा से गुरु कृपा की प्राप्ति होती है।

**भक्तिलता-बीज—**जिस बीज से भगवान् की सेवा-रूपी लता उत्पन्न होती है। भक्तिलता का कारण—गुरु की कृपा और कृष्ण की कृपा। अन्याभिलाष रूपी बीज, कर्म रूपी बीज और ज्ञान रूपी बीज से वैसे-वैसे वृक्ष आदि उत्पन्न होते हैं। इन सब प्रकार के बीजों से भक्तिलता का बीज अलग है। गुरु-कृष्ण की प्रसन्नता से ही भक्तिलता का बीज प्राप्त होता है। उनके अप्रसन्न होने से अन्याभिलाष, कर्म अथवा ज्ञान बीज की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु शुद्धभक्ति का बीज लुप्त (छिप) हो जाता है। जिनका वास्तव में सौभाग्य नहीं है, उनके भाग्य में भक्तिलता के बीज की प्राप्ति होती नहीं। श्रद्धावान् जीव ही

गुरुपादपद्म का आश्रय करता है। सद्गुरु के द्वारा प्रदान किया गया कृपा रूपी मन्त्र और प्रदर्शित पथ ही 'भक्तिमार्ग' है।

युगपत् (साथ ही) अभिधेय आरम्भ; अनर्थयुक्त अवस्था में भी भजन—

**माली हञा करे सेइ बीज आरोपण।**
**श्रवण-कीर्त्तन-जले करये सेचन॥१५२॥**

**१५२। प॰ अनु॰—**वह भाग्यवान् जीव माली बनकर उस बीज को रोपता है तथा उसे श्रवण और कीर्त्तन के जल से सींचता है।

**अनुभाष्य**

१५२। गुरुपादपदम से श्रवण-करके उसका कीर्त्तन ही जल की सिंचाई है; उसके द्वारा बीज क्रमशः लता में परिणत होता है।

अनर्थमुक्त अवस्था में भी भजन;
रागमयी भक्ति का आश्रय—
कृष्णमाधुर्य, ब्रह्मा और नारायण का ऐश्वर्य नहीं—

**उपजिया बाड़े लता 'ब्रह्माण्ड' भेदि' जाय।**
**'विरजा', 'ब्रह्मलोक' भेदि' 'परव्योम' पाय॥१५३॥**

१५३। **प॰ अनु॰—**उगने के पश्चात् वह लता बढ़कर ब्रह्माण्ड को भेद करके विरजा, फिर ब्रह्मलोक को भी भेद करके परव्योम में पहुँच जाती है।

अनुभाष्य

१५३। 'ब्रह्माण्ड' अर्थात् चौदह भुवन के भीतर भक्तिलता का आश्रयस्वरूप कोई भी वृक्ष नहीं है। ब्रह्माण्ड की किसी भी वस्तु के प्रति ही भक्ति प्रयुक्त नहीं हो सकती। ब्रह्माण्ड को पार करके 'विरजा नदी' है; वहाँ तीन गुणों की साम्यावस्था लक्षित होती है,—वह जागतिक मल को धो देने वाली नदी हैं। उसे पार करके ही ज्ञानियों का आदर्श 'ब्रह्मलोक' है। विरजा में जैसे भक्तिलता के आश्रय करने योग्य कोई वृक्ष नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मलोक में भक्तिलता के सेव्य वृक्ष का अभाव है। आश्रय रूपी वृक्ष को प्राप्त नहीं कर श्रवण-कीर्त्तन रूपी जल से सींची जाने वाली बढ़ती हुई लता ब्रह्मलोक को पार करके 'परव्योम' धाम को प्राप्त करती है (अर्थात् वहाँ पहुँच जाती है)।

**तबे जाय तदुपरि 'गोलोक-वृन्दावन'।**
**'कृष्णचरण'-कल्पवृक्षे करे आरोहण॥१५४॥**

१५४। **प॰ अनु॰—**तब उस परव्योम से भी ऊपर गोलोक वृन्दावन में पहुँच जाती है तथा वहाँ पर श्री कृष्ण के चरण रूपी कल्पवृक्ष पर आरोहण करती है।

अनुभाष्य

१५४। ब्रह्म-लोक और विरजा के एक ओर मायिक ब्रह्माण्ड अवस्थित है, वही 'देवीधाम' है; देवीधाम अथवा इतर-व्योम—प्रकृति के अधीन अवस्थित है। प्रकृति के दूसरी ओर 'वैकुण्ठ' अथवा 'परव्योम' अवस्थित है। वहाँ पर माया कुछ भी परिमाण करने में समर्थ नहीं होती। ब्रह्ममय वैकुण्ठ के ऊपर वाले भाग में गोलोक-वृन्दावन अवस्थित है। वहाँ भक्तिलता कृष्ण-चरणरूपी कल्पवृक्ष का आश्रय करती है। परव्योम में परव्योमनाथ श्रीनारायण की जो पूजा विहित होती है, उसमें 'शान्त', 'दास्य' और आधा सख्य रस लक्षित होता है; परन्तु गोलोक-वृन्दावन में श्रीकृष्ण की सेवा में 'शान्त', 'दास्य' और आधे गौरव सख्य के साथ 'आधा विश्रम्भ सख्य', 'वात्सल्य' और 'मधुर',—ये पाँच भाव पूर्ण मात्रा में विकसित है; यहीं भक्तिलता सम्पूर्ण रूप में आश्रय प्राप्त करती है।

कृष्णप्रेम रूपी प्रयोजन की प्राप्ति; साधन-अवस्था में सदैव श्रवण-कीर्तन—

**ताँहा विस्तारित हञा फले प्रेम-फल।**

**ईंह्रा माली सेचे नित्य श्रवण-कीर्त्तनादि-जल॥१५५॥**

**१५५। प० अनु०—**लता वहाँ विस्तारित होकर प्रेम-फल रूपी फल प्रसव करती है। इधर साधक इस जगत् में माली होकर उसे नित्य श्रवण-कीर्त्तन आदि जल से सींचता है।

**अनुभाष्य**

१५५। **ताँहा (वहाँ)—**गोलोक-वृन्दावन में; **प्रेमफल—**अप्राकृत परम-लोभनीय कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छा-मूलक अद्‌भुत वस्तु है, वह सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्णचन्द्र की अपनी वस्तु है, वह बद्धजीव की भोगमय प्राकृत जड़बुद्धि के गोचर नहीं होती।

**ईंहा** (यहाँ पर)—प्रपञ्च में; यहाँ रहकर उस भक्तिलता के बोये गये बीज को नित्य अप्राकृत कृष्णनाम, रूप, गुण, लीला के श्रवण-कीर्त्तन आदि रूपी जल से सींचना होता है।

अपक्व (कच्ची) अवस्था में वैष्णव-अपराध ही साधनपथ का सबसे प्रधान 'विघ्न'—

**यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता।**
**उपाड़े वा छिण्डे, तार शुखि जाय पाता॥१५६॥**

**१५६। प० अनु०—**किन्तु इसी बीच यदि वैष्णव-अपराध रूपी मत्त हाथी प्रवेश करें, तो वह उस लता को या तो जड़ से उखाड़ देता है अन्यथा उसे ऊपर से तहस-नहस कर देता है, जिससे लता के पत्ते सूख जाते हैं।

**अनुभाष्य**

१५६। **वैष्णव-अपराध—**मतवाले हाथी के समान है। **अपराध—**दस प्रकार के नामापराध (आदि अष्टम परिच्छेद २४ संख्या द्रष्टव्य)। **हाती माता—**प्रबल भक्तिविरोधी भाव अथवा गुरु की अवज्ञा रूपी वैष्णव-अपराध, वही भक्तिलता का विनाश करने वाला है।

नामापराध से सावधान रहना ही श्रेयः (मङ्गल) का कारण—

**ताते माली यत्न करि' करे आवरण।**
**अपराध-हस्तीर जैछे ना हय उद्‌गम॥१५७॥**

**१५७। प० अनु०—**इसलिए माली प्रयत्नपूर्वक उस लता का आवरण करता है, जिससे अपराध रूपी हाथी का प्रवेश ही न हो सके।

**अनुभाष्य**

१५७। भक्तिलता के चारों ओर घेरा (बाढ़) लगाना आवश्यक है। कृष्ण-अभक्त के सङ्ग त्याग चेष्टा रूपी आवरण और घेरे के नहीं रहने से अभक्त के सङ्ग के फलस्वरूप उत्पन्न अपराध रूपी मतवाले हाथी के द्वारा भक्तिलता के उखड़ और नष्ट होने अथवा रौंदे जाने की सम्भावना है; जिससे ऐसा न हो, उस विषय में सावधान रहना साधक के लिये अत्यधिक आवश्यक है। श्रीरूप प्रभु 'उपदेशामृत में'—''अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः। जनसङ्गश्च लौल्यञ्च षड्‌भिर्भक्तिर्विन-श्यति॥'' (ऐसा कह रहे है)।

भक्ति की भाँति आकृति अथवा देखने में समानता होने पर भी जो भक्ति नहीं, ऐसी अभक्ति का समूह—

**किन्तु यदि लतार सङ्गे उठे 'उपशाखा'।**
**भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा, जत असंख्य तार लेखा॥१५८॥**
**'निषिधाचार', 'कुटीनाटी', 'जीवहिंसन'।**
**'लाभ', 'पूजा', 'प्रतिष्ठादि' जत उपशाखा गण॥१५९॥**

**१५८-१५९। प० अनु०—**किन्तु यदि लता के साथ भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा, निषिद्धाचार, कुटीनाटी, जीव हिंसा, लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा आदि उपशाखाएँ उग जाती है।

**अनुभाष्य**

१५८। **उपशाखा—**वास्तविक लता की अपनी शाखा के अलावा उसके जैसी एक ही आकृति

वाली अन्य लता की शाखा इस वास्तविक लता से लिपटकर उसी के ही 'अङ्ग' जैसी प्रतीत होती है, वास्तव में वह मुख्य लता नहीं होती। भुक्ति—कर्मफल भोगवादी की प्राप्य वस्तु; मुक्ति—ज्ञानवादी की प्राप्य वस्तु; वाञ्छा—सिद्धिवादी को प्राप्त होने वाले योगफल की विभूतियाँ आदि।

१५९। **निषिद्धाचार**—जो सिद्ध पुरुषों का आचरण नहीं है अथवा सिद्धि प्राप्ति का अन्तराय अर्थात् जिस आचरण के द्वारा भक्ति लुप्त हो जाती है,—जैसे भोक्ता का अभिमान करके भोगमयी बुद्धि से जीव का योषित-सङ्ग (भोग की वस्तुओं का सङ्ग) अथवा कृष्ण-अभक्त का सङ्ग अथवा विषयी दर्शन और स्त्रीदर्शन।

**कुटीनाटी**—कुटिलतापूर्ण नाटक, कपटता; कु-टी एवं ना-टी—आत्म-प्रसाद का विरोध अथवा असन्तोष।

**जीवहिंसा**—कृष्णभक्ति मूलक नित्य कल्याण-वाणी के कीर्तन में अथवा प्रचार में कुण्ठा अथवा कृपणता (कंजूसी) अर्थात् मायावादी, कर्मी और अन्याभिलाषी को प्रश्रय (आश्रय) प्रदान ; प्राणियों को मारना अथवा प्राणीमात्र को ही उद्वेग अथवा क्लेश-प्रदान।

**लाभ**—जड़-इन्द्रियों की तृप्ति के उद्‌देश्य से जगत में धन आदि की प्राप्ति अथवा उसे संग्रह करने की अभिलाषा।

**पूजा**—जागतिक लोगों के मनोधर्म में ईन्धन प्रदान करके सम्मान प्राप्त।

**प्रतिष्ठा**—जागतिक महत्व अथवा लोगों में अपनी नश्वर यश:प्रियता।

प्रश्रय (आश्रय) देने पर अभक्ति की वृद्धि
के कारण भक्ति की शिथिलता के
आवरण की सम्भावना—

**सेकजल पाञा उपशाखा बाड़ि' जाय।**
**स्तब्ध हञा मूलशाखा बाड़िते ना पाय॥१६०॥**

**१६०। प० अनु०**—तो फिर सतर्क नहीं होने पर श्रवण-कीर्त्तन रूपी जल को पाकर उपशाखाएँ बढ़ जाती है तथा मूलशाखा अर्थात् भक्तिलता स्तब्ध होकर बढ़ नहीं पाती।

**अनुभाष्य**

१६०। श्रवण-कीर्तन आदि जल की सिंचाई के प्रभाव से उपशाखा पुष्ट होकर वर्धित होती है, उससे मुख्य भक्तिलता बढ़ नहीं पाने के कारण रूक जाती है। श्रवण और कीर्तन निरपराध पूर्वक अर्थात् दु:सङ्ग परित्याग नहीं करके अपराध के साथ अनुष्ठान करते-करते जीवगण भोग परायण, बन्धनों को खोलने के अङ्काक्षी, सिद्धि-लोभी, कपटताश्रित, अवैध-स्त्रीलम्पट, छल-भक्ति अथवा प्राकृत-सहजियावाद का भलीभाँति पोषण करने वाले, शौक्र-वंश मर्यादा के छल के द्वारा ही पारमार्थिक मर्यादा में आग्रह रखने वाले, परीक्षित के द्वारा प्रदान किये गये कलि के पाँच स्थानों के अधिवासी, वैष्णवों में जातिबुद्धि रखने वाले, नाम-मन्त्र-विग्रह-भागवत जीवी, अशुक्ल (अवैध)-वृत्तिद्वारा धन आदि को संग्रह करने में तत्पर, 'निर्जन-भजनानन्दी' कहलाकर प्रतिष्ठा की अङ्काक्षा रखने वाले, चिद् और जड़ के समन्वयवाद के पोषण के द्वारा यश को प्राप्त करने के इच्छुक अथवा नामधारी गुरु के दास्य में विष्णु-वैष्णव-विरोधी अदैव-वर्णाश्रम के अधीन और उसके पोषक आदि बहुत प्रकार के नामों से परिचित होकर,—अर्थात् अपनी इन्द्रियों के तर्पण में प्रमत्त होकर शुद्धभक्ति के अलावा नश्वर अवान्तर वस्तु को प्राप्त करने के उद्‌देश्य से निर्बोध (अबोध) लोगों की वञ्चना करके जगत् में 'धार्मिक' अथवा 'साधु' अथवा 'श्रेष्ठ' के रूप में परिचय प्राप्त करने के आङ्काक्षी हो जाते हैं, वास्तविक शुद्ध हरिसेवक नहीं बन पाते।

प्रथमावस्था में ही साधक के लिये दु:सङ्ग को जड़ से उखाड़ फैंकने की व्यवस्था करना आवश्यक—

**प्रथमेइ उपशाखार करये छेदन।**
**तबे मूलशाखा बाड़ि' जाय वृन्दावन॥१६१॥**

**१६१। प० अनु०—**इसलिए प्रथम अवस्था में ही उपशाखाओं का छेदन करना चाहिए, तभी मुख्य शाखा अर्थात् भक्तिलता बढ़कर वृन्दावन जाती है।

**अनुभाष्य**

**१६१।** यदि पहले बतायी गयी 'उपशाखाओं' के अंकुरित होने को देखकर उन्हें उसी समय जड़सहित उखाड़ फैंकते हैं, तभी मुख्य भक्तिलता की शाखा वृन्दावन में अप्राकृत प्रेमफल को जन्म देती है; नहीं तो उपशाखा की प्रबलता के कारण हरिभजन से सब समय के लिये छुट्टी अर्थात् ब्रह्माण्ड में (स्वर्ग आदि उच्च लोक में, मर्त्यलोक में अथवा नरक में) क्लेश की प्राप्ति से छुटकारा मिलना असम्भव होता है।

तभी प्रयोजनसिद्धि अथवा कृष्णप्रेम को प्राप्त करने की सम्भावना—

**'प्रेमफल' पाकि' पड़े, माली आस्वादय।**
**लता अवलम्बि' माली 'कल्पवृक्ष' पाय॥१६२॥**

१६२। **प० अनु०—**तभी प्रेमफल पक जाता है तथा माली उसका आस्वादन करता है, लता का अवलम्बन करके माली कल्पवृक्ष को प्राप्त करता है।

**अनुभाष्य**

१६२। लता को आधार बनाकर भक्त रूपी माली कृष्णचरणकमल रूपी वृक्ष को प्राप्त करता है। गोलोक-वृन्दावन में प्रेमफल के पककर गिरने पर, प्रपञ्च में अवस्थित भक्त उसका आस्वादन कर सकता है।

**ताँहा सेइ कल्पवृक्षेर करये सेवन।**
**सुखे प्रेमफल-रस करे आस्वादन॥१६३॥**

१६३। **प० अनु०—**वहाँ वह उस कल्पवृक्ष की सेवा करता है तथा प्रसन्नतापूर्वक प्रेमफल के रस का आस्वादन करता है।

अनुभाष्य

१६३। ताँहा (वहाँ)—अप्राकृत गोलोक-वृन्दावन में; उस कल्प वृक्ष के—कृष्णचरण रूपी कल्प वृक्ष के; आस्वादन में—भक्त अप्राकृत रूप से सेवा करके अप्राकृत सेवा-सुख प्राप्त करता है।

कृष्णप्रेम ही चतुर्वर्ग (चार प्रकार की मुक्ति) को धिक्कार प्रदान करने वाला परमार्थ—

**एइत परम-फल 'परम-पुरुषार्थ'।**
**जाँर आगे तृण-तुल्य चारि पुरुषार्थ॥१६४॥**

**१६४। प० अनु०—**यह परम फल परम-पुरुषार्थ है, जिसके समक्ष अन्य चार पुरुषार्थ तिनके के समान हैं।

**अनुभाष्य**

१६४। तृणतुल्य (तिनके के समान)—अकिञ्चितकर, तुलना में मूल्य हीन; प्रेम के समक्ष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इत्यादि कर्मी, ज्ञानी, योगी इत्यादि के द्वारा आङ्काक्षित चार प्रकार के पुरुषार्थ—अत्यन्त अग्राह्य (ग्रहण करने के अयोग्य) हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५१-१६४। समस्त जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार, अनेक योनियों में भ्रमण कर रहे हैं। उनमें से जिनका भक्ति उत्पन्न होने के उपयोगी सुकृति रूपी भाग्य उदय होता है, वह गुरु-कृष्ण की कृपा से भक्तिलता के बीज 'श्रद्धा' को प्राप्त करते हैं। उस बीज को प्राप्त करने के साथ-ही-साथ वह माली बनकर अपने हृदय रूपी क्षेत्र में उसे

बोता है। बीज रोपित होकर अंकुरित होने लगता है, तथा माली भगवद्-कथा और भक्तकथा के श्रवण-कीर्त्तन रूपी जल से उस क्षेत्र को सींचता है। भक्तिलता उत्पन्न होकर बढ़ते-बढ़ते इस मायिक ब्रह्माण्ड को पार करके विरजा और ज्यातिर्मय ब्रह्मलोक को पार करके परव्योम में स्थान प्राप्त करती हैं। उस परव्योम में लता वृद्धि को प्राप्त करके उससे ऊपर गोलोक वृन्दावन तक जाकर कृष्ण चरण रूपी कल्पवृक्ष पर आरोहण करती है। कृष्ण के चरण पर आरुढ़ भक्ति-लता पर ही 'प्रेमफल' फलता है। यहाँ तक माली श्रवण-कीर्त्तन जल सींचता रहता है। इस प्रक्रिया के समय जल सींचने के अलावा अन्य एक प्रक्रिया है,—कुछ दिन जल सींचते-सींचते लता जब वर्धित होती रहती है, तब अन्यान्य दुष्ट जन्तु आकर उस लता को या तो जड़ से या फिर ऊपर से तहस-नहस कर डालते हैं, जिससे यह लता सूख जाती है। इस प्रक्रिया में वैष्णव-अपराध ही दुष्ट जन्तु स्थानीय है। वही वैष्णव-अपराध ही मत हाथी के समान यह सब नुकसान पहुँचाता है। उस समय माली बेड़ा बनाकर अथवा आवरण प्रस्तुत करके विशेष प्रयत्न करता है, जिससे अपराध रूपी हाथी का उद्गम (आगमन) ही नहीं हो। वैष्णव-अपराध अथवा नाम-अपराध—दस प्रकार के हैं (आदि अष्टम परिच्छेद २४ संख्या द्रष्टव्य)। इस समय और एक उत्पात है,—जिस समय भक्तिलता बढ़ती है, उस समय यदि उपशाखाएँ अधिक वर्धित होती हैं तो उससे दोष उत्पन्न होता है। उपशाखा—यथा, भोग की वाञ्छा, मोक्ष की वाञ्छा, निषिद्धाचार, कुटीनाटी, जीव हिंसा की प्रवृत्ति, लाभ की इच्छा, अपने जड़ीय सम्मान अथवा प्रतिष्ठा की आशा। विशेष सतर्कता का अवलम्बन नहीं करने से श्रवण-कीर्त्तन आदि सिंचाई के जल को प्राप्त करके मुख्य लता के स्थान पर उपशाखाएँ ही अत्यन्त वर्धित होने लगती हैं, जिससे मुख्य शाखा स्तब्ध (रूककर) होकर बढ़ नहीं पाती। अतएव माली इन उपशाखा रूपी अनर्थों को श्रवण-कीर्त्तन रूपी जल की सिंचाई के समय पहले से ही उखाड़ देंगे; तभी, मुख्य शाखा वर्द्धित होकर वृन्दावन जाती है। यही प्रेम ही जीव का परम-पुरुषार्थ है; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ इसके सामने तिनके के समान हैं।

ब्रह्मानन्द का धिक्कार करने वाला
कृष्णप्रेम-सेवानन्द—
ललित माधव (५/२) में—

**ऋद्धा सिद्धिव्रज-विजयिता सत्यधर्मा-समाधि-**
**र्ब्रह्मानन्दो गुरुरपि चमत्कारयत्येव तावत्।**
**यावत् प्रेम्णां मधुरिपु-वशीकार-सिद्धौषधीनां**
**गन्धोऽप्यन्तःकरण सरणी-पान्थतां न प्रयाति॥१६५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६५। जब तक कृष्ण को वशीभूत करने वाले सिद्ध औषधि रूपी दास्य आदि प्रेम का लेशमात्र अन्तःकरण पथ का पथिक नहीं बनता तब तक ही समृद्धिशालिनी सिद्धिसमूह के विजेता, सत्य आदि धर्म समूह, समाधि और उत्कृष्ट ब्रह्मानन्द अपने-अपने प्रभाव से जीव को चमत्कृत करते हैं।

**अनुभाष्य**

१६५। यावत् मधुरिपुवशीकारसिद्धोषधीनां (मधुरिपोः कृष्णस्य वशीकारे बाध्यकरणविषये सिद्धौषधिरुपाणा) प्रेम्नां (शान्तादीना) गन्धलेशोऽपि (लवमात्रमपि) अन्तःकरण सरणी पान्हताम् (अन्तः करण-मार्गपथिकता) न प्रयाति (गच्छति), ऋद्धा (सम्पन्ना) सिद्धिव्रज विजयिता (सिद्धीनां विभूतिनां व्रजः समूहः तस्य विजयित्वं, विजेतृभावः इत्यर्थः), सत्यधर्मा (सत्यशौचदान-तपोधर्मा), समाधिः (चित्ते-

काग्रय), ब्रह्मानन्दः (सर्वोत्कृष्टं ब्रह्मसुख) च गुरुः (श्लाघ्यः महान्) अपि तावत् (तत्कालपर्यन्तम्) एवं चमत्कारयति (चमत्कारं विदधाति—कृष्णसेवा-सुखे प्राप्ते सति विषयसुखं कैवल्यं ब्रह्मसुखञ्च तुच्छी भवतीत्यर्थः)।

शुद्धभक्ति के लक्षणः—(१) साधन भक्ति—

**'शुद्धभक्ति' हैते हय 'प्रेमा' उत्पन्न।**
**अतएव शुद्धभक्तिर कहिये 'लक्षण'॥१६६॥**

**१६६। प॰ अनु॰—**शुद्धभक्ति के याजन से प्रेम उत्पन्न होता है, अतएव मैं शुद्धभक्ति के लक्षण को बतलाता हूँ।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६६। भक्त्याभास से प्रेम की उत्पत्ति नहीं होती; शुद्धभक्ति से ही प्रेम की उत्पत्ति होती है।

**अनुभाष्य**

१६६। शुद्धभक्ति—त्रिगुणातीत कर्मज्ञान के मिश्रण के अलावा अहैतुकी निर्गुणा उत्तमा भक्ति।

सम्पूर्ण भागवत् की सार बात—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/१/११)—

**अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।**
**आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥१६७॥**

**अनुभाष्य**

१६७। अमृतप्रवाह भाष्य में यह श्लोक उद्धृत नहीं हुआ। इसका अनुवाद—कृष्णसेवा के विरोधी अवैध योषित् सङ्ग आदि दुर्नीतिमूलक समस्त अभिलाषाओं से रहित एवं मुमुक्षा एवं बुभुक्षा द्वारा अव्यवहित (व्यवधान रहित), कृष्ण की इन्द्रियों की प्रीति के अनुकूल-चेष्टामय जो कृष्ण के लिये अर्थात् कृष्णसम्बन्धि अथवा कृष्ण-विषयक अनुक्षण भजन है, वही 'उत्तमा भक्ति' है।

(प्रागस्य तटस्थ-लक्षणमाह—) अन्याभिलाषिता-शून्यं (अन्याभिलाषिता कृष्णभजन-सम्पादन-विरोधि-योषित्सङ्गादिरूपा दुर्नीतिमूला वाञ्छा, तया शून्यं विहीन), ज्ञानकर्माद्यानावृत्तं (ज्ञानमत्र-निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धानं, न तु भजनीयत्वानुसन्धानमपि, तस्या-वश्यापेक्षणीयत्वात्, कर्म च स्मृत्याद्युक्तं नित्य-नैमित्तिकादि, न तु भजनीय-परिचर्यादि, तस्य-तदनुशीलनरूपत्वात्; आदि शब्देन वैराग्य-योग-सांख्याभ्यासादयः, तैः अनावृत्तं अव्यवहितम् अप्रति-हतम्); आनुकूल्येन (आनुकूल्यमत्र भजनोद्देशाय श्रीकृष्णाय रोचमाना प्रवृत्तिः, प्रातिकूल्यं तु तद्विपरीतं ज्ञेयं तस्य भजनविरोधात्, तेनेति—विशेषणे तृतीया, न तु उपलक्षणेहतः आनुकूल्यस्यापि भक्तितत्त्वविधानं ज्ञेय) कृष्णानुशीलनं (कृष्णशब्दश्चात्र स्वयं भगवतः श्रीकृष्णस्य, तद्रूपाणां चान्येषामपि श्रीविष्णुतत्त्वानां ग्राहकश्चेति बोध्यं, तस्य कृष्णस्य सम्बन्धि, कृष्णार्थं वा अनुशीलनं कायवाङ्मानसीयतच्चेःष्टारूपं प्रीति विषयात्मकं शैथिल्य परित्याग पूर्वकं मुहुरेव तत्तत्कर्म प्रवर्त्तनम्) एव उत्तमा भक्तिः (अनेन वैध रागानुग मार्गयोः साधक सिद्धदर्शयोरूभयत्राप्यस्याः सुष्ठु वैशिष्ट्यं स्फुटं कथितम्)।

पहले दो पद—'तटस्थ' और बाद के दो
पद—शुद्धभक्ति के 'स्वरूप' लक्षण—

**अन्य-वाञ्छा, अन्य-पूजा छाड़ि' 'ज्ञान', 'कर्म'।**
**आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिय कृष्णानुशीलन॥१६८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६८। शुद्धभक्ति का लक्षण यह है कि,—शुद्धभक्ति में कृष्ण की सेवा के लिये अपनी (पारमार्थिक सिद्धि के पथ की) उन्नति वाञ्छा के अलावा अन्य कोई वाञ्छा नहीं रह सकती। कृष्ण के बिना अन्य किसी सेव्य ब्रह्म-परमात्मादि स्वरूप की पूजा रह ही नहीं सकती एवं ज्ञान और कर्म अपने-अपने स्वरूपों में नहीं रह सकते। इन सबसे विमुक्त होकर जीवन-यात्रा में जो भक्ति के अनुकूल हैं, केवलमात्र वही ग्रहण करते

हुए समस्त इन्द्रियों के द्वारा कृष्णानुशीलन करने का नाम ही 'शुद्धभक्ति' है।

**अनुभाष्य**

१६८। **अन्य वाञ्छा,—**कृष्ण की सेवा के अलावा अन्य वासना; अन्यपूजा,—कृष्ण के अलावा अन्य किसी की पूजा; कर्म,—स्वरूप से विस्मृत होकर फल-भोग की प्यास के उद्देश्य से जिस सद् अनुष्ठान की व्यवस्था है; ज्ञान,—स्वरूप से विस्मृत होकर भोग से रहित होने (मुक्ति) के उद्देश्य से आत्मोत्कर्ष के लिये नित्य अभेधा सन्धिनी और ह्लादिनी नामक दोनों शक्तियों से रहित केवल सम्वित् की चेष्टा; आनुकूल्ये कृष्णानुशीलन,—कृष्ण की प्रीति के उद्देश्य से कृष्ण-सेवा, कृष्ण के अलावा माया के अनुशीलन का त्याग करके अनुकूल भाव से कृष्ण की सेवा; **सर्वेन्द्रिये,—**सभी इन्द्रियों के द्वारा। जड़ इन्द्रियों के द्वारा माया का ही अनुशीलन होता है; 'जड़ेन्द्रिय' अर्थात् वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ एवं चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वचा तथा मन। जड़-इन्द्रियों के द्वारा कृष्ण के अलावा माया की सेवा करने जाकर वह अपने भोग-तात्पर्य में ही पर्यवसित हो जाती है; उसके लिये साधन-भक्ति के अन्तर्गत चौंसठ प्रकार के भक्ति के अङ्गों की व्यवस्था की गयी है। इसी साधन भक्ति के बल से बद्धजीव जड़ीय भोगों के हाथ से बचकर तथा अनर्थों से निवृत्त होकर अप्राकृत सेवा का अधिकारी बनता है।

शुद्धभक्तिरूपी 'अभिधेय' से ही कृष्णप्रेमरूपी 'प्रयोजन',—यही सात्वत पञ्चरात्र और भागवत का मत—

**एइ 'शुद्धभक्ति'—इहा हैते 'प्रेमा' हय।**
**पञ्चरात्रे, भागवते एइ लक्षण कय॥१६९॥**

**१६८-१६९। प॰ अनु॰—**अन्य समस्त प्रकार की वाञ्छाओं, अन्य समस्त प्रकार की पूजाओं तथा ज्ञान और कर्म को छोड़कर समस्त इन्द्रियों के द्वारा अनुकूल कृष्णानुशीलन करना ही शुद्धभक्ति है। इसी से ही प्रेम उत्पन्न होता है। पञ्चरात्र तथा भागवत शुद्धभक्ति का यही लक्षण बतलाते हैं।

अनुभाष्य

१६९। शुद्धभक्ति का लक्षण,—पाञ्चरात्रिक एवं भागवत सम्प्रदाय, दोनों का मत एक ही अर्थ का प्रतिपादक है।

समग्र पञ्चरात्र का मत—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/१/१२)-उद्धृत
श्रीनारदपञ्चरात्र वाक्य—

**सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।**
**हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते॥१७०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७०। समस्त इन्द्रियों के द्वारा हृषीकेश के सेवन का नाम 'भक्ति' है। इस (स्वरूप-लक्षणमयी) सेवा के दो 'तटस्थ' लक्षण हैं—यथा, यह शुद्धभक्ति समस्त उपाधियों से मुक्त होगी एवं केवल कृष्णपरायण होकर स्वयं निर्मल होगी।

**अनुभाष्य**

१७०। सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं (सकलभेदावरण-परिशून्यं कृष्णेतरान्याभिलाषितावर्जित) तत्परत्वेन (कृष्णसेवैक-तात्पर्येण आनुकूल्येन) निर्मलं (कर्मावरण-ज्ञान-विमोहनादि-उपाधिरूप-मल-निर्मुक्त) हृषीकेण (सेवोन्मुखेन्द्रियद्वारा) हृषीकेशसेवनं (सर्वेन्द्रियाधिपस्य विष्णोरनुशीलनम् एव) भक्तिः उच्यते (कथ्यते)।

अहैतुकी अथवा एकान्तिकी शुद्धभक्ति से ही कृष्ण की प्राप्ति—
श्रीमद्भागवत (३/२९/११-१४) में—

**मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।**
**मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥१७१॥**
**लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।**

**अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥१७२॥**
**सालोक्यसार्ष्टिसारुप्य-सामीप्यैकत्वमप्युत।**
**दीयमानं न गृहणन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥१७३॥**

१७१-१७३। मेरे गुणश्रवणमात्र से सभी के हृदयों में स्थित जो मैं हूँ, उस मुझमें जो समुद्र में प्रविष्ट होने वाले गङ्गाजल की भाँति मन की अविच्छिन्न अवस्था उदय होती है, वही निर्गुण भक्तियोग का लक्षण है। पुरुषोत्तमस्वरूप मुझमें वह भक्ति अहैतुकी एवं अव्यवहिता होती है। अहैतुकी—हेतुरहित, स्वतःसिद्ध; अव्यवहिता—व्यवधान अथवा अवाञ्छित—फलानुसन्धान-रहित।

**अनुभाष्य**

१७१-१७३। आदि चतुर्थ परिच्छेद २०५-२०७ संख्या द्रष्टव्य।

**स एव भक्तियोगाख्य आत्यान्तिक उदाहृतः।**
**येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते॥१७४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७४। ऐसी भक्ति को ही 'आत्यन्तिक-भक्ति-योग' कहा जाता है। उस भक्तियोग के द्वारा जीव गुणमयी माया को पारकरके मेरा विमल प्रेम प्राप्त कर सकता है।

अनुभाष्य

१७४। शुद्धभक्तियोग पथ की कथा श्रवण करने की इच्छुक माता देवहूति के प्रति भगवान् श्रीकपिलदेव की उक्ति,—

स (उक्त लक्षणः) भक्तियोगाख्यः एव आत्यान्तिकः (अत्यन्ते सर्वान्ते भवः चरमकाष्ठम् आपन्नः) उदाहृतः (कथितः) येन (आत्यान्तिक-भक्तियोगेन) पुरुषः, त्रिगुणं (मायामयं संसारम्) अतिव्रज्य (अतिक्रम्य) मद्भावाय (मम साक्षात्काराय ब्रह्मभूतत्वाय) उपपद्यते (समर्थो भवति)।

कैतव अथवा अपराध रहने पर करोड़ो जन्मों का साधन भी सम्पूर्ण रूप से विफल—

**भुक्ति-मुक्ति आदि-वाञ्छा यदि मने हय।**
**साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय॥१७५॥**

**१७५। प० अनु०—**भोग-मोक्ष आदि की वाञ्छा के मन में रहने पर साधन करने पर भी प्रेम उत्पन्न नहीं होता।

**अनुभाष्य**

१७५। हृदय में कर्मफल भोग की वासना अथवा संसार बन्धन से मुक्ति की वासना रहने पर ऐसे फल की आकाङ्क्षा से युक्त व्यक्ति जितना ही चौंसठ प्रकार की साधन-भक्ति का अनुष्ठान क्यों न करे, ऐसा नाममात्र का विद्ध-भजन—कर्ममात्र में अथवा निष्फल-ज्ञान चेष्टा में ही परिणत होगा, अतएव उसके भाग्य में साधन-भक्ति का फल कृष्णप्रेम प्राप्त करना होगा नहीं।

बुभुक्षा और मुमुक्षा-पिशाची—भक्ति का लोप (लुप्त) करने वाली—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२२)—

**भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते।**
**तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥१७६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७६। भुक्ति की स्पृहा और मुक्ति की स्पृहा,—ये दो पिशाची (राक्षसी) हैं; जब तक ये किसी व्यक्ति के हृदय में विद्यमान रहती हैं, तब तक उसके हृदय में भक्तिसुख भली प्रकार से उदित नहीं हो पाता।

**अनुभाष्य**

१७६। यावत् हृदि (अन्तर्मनसि) भुक्ति मुक्ति स्पृहा (भोग-मोक्षवासनारूपा) पिशाची (ग्रासकारिणी राक्षसी) वर्त्तते, तावत् अत्र (अन्तः करणे) भक्ति-सुखस्य (कृष्णप्रीतिविधायक-सेवानन्दस्य) कथं (केन

प्रकारेण) अभ्युदयः (प्राकट्य) भवेत्?
साधन भक्ति से ही (२) भावभक्ति अथवा रति,
रति से ही (३) प्रेमभक्ति—

**साधनभक्ति हैते हय रति' र उदय।**
**रति गाढ़ हैले तार 'प्रेम' नाम कय॥१७७॥**

**१७७। प॰ अनु॰—**साधनभक्ति से रति उदित होती है। रति के गाढ़ होने पर उसी को प्रेम कहते हैं।

### अनुभाष्य

१७७। साधन भक्ति—(भः रः सिः पूर्व-विः द्वितीय लहरी)—''कृतिसाध्या भवेत् साध्य भावा सा साधनाभिधा। नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥'' श्रवण-कीर्त्तन आदि में सहायक इन्द्रियों के द्वारा साधनीय भक्ति को ही 'साधन-भक्ति' कहते है; नित्यसिद्ध भाव का हृदय में प्रकटित होना ही 'साधन' है—वह श्रद्धा, साधुसङ्ग (दीक्षा और श्रवण), भजन (बिना किसी अपराध के विष्णु-वैष्णव सेवा), निष्ठा, रुचि और आसक्ति तक है। मध्य, तेइस परिच्छेद ११-१५ संख्या द्रष्टव्य।

रति—(भः रः सिः पूर्व-विः तृतीय लहरी)—''व्यक्तं मसृणते वान्तर्लक्ष्यते रति लक्षणम्। मुमुक्षुप्रभृतीनाञ्चेद्भवेदेषा रतिर्न हि॥'' हृदय में स्थित मसृणता (कोमलता) के प्रकाशित होने पर उसी को ही 'रति का लक्षण' कहते हैं। मुमुक्षु (मुक्तिकामी) अथवा बुभुक्षु (भोगकामी) लोगों में ऐसी मसृणता के प्रकाशित होने पर उसे 'रति' नहीं कहा जाता।

प्रेम—(भः रः सिः पूर्व-विः चतुर्थ लहरी प्रथम संख्या)—''सम्यङ्गमसृणित-स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः। भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥'' अन्तःकरण के सम्पूर्ण रूप से मसृण (द्रवित) होने पर अत्यधिक ममता से युक्त भाव के गाढ़ होने पर पण्डितगण उसे 'प्रेम' कहते हैं।

प्रेमभक्ति के गाढ़ होने के तारतम्य का वैचित्र्य;
चरम अवस्था में 'महाभाव'—

**प्रेम वृद्धिक्रमे नाम—स्नेह, मान, प्रणय।**
**राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय॥१७८॥**

उपमा—

**जैछे बीज, इक्षु, रस, गुड़, खण्ड, सार।**
**शर्करा, सिता, मिछरि, उत्तम-मिछरी आर॥१७९॥**

सभी में ही रति अनुस्यूत—

**एइसब कृष्णभक्ति-रसेर स्थायिभाव।**
**स्थायिभावे मिले यदि विभाव, अनुभाव॥१८०॥**

रति के साथ विभाव आदि चार प्रकार के
भावों के मिलन से रस का उदित होना—

**सात्विक, व्यभिचारि-भावेर मिलने।**
**कृष्णभक्ति-रस हय अमृत आस्वादने॥१८१॥**

**१७८-१८१—प॰ अनु॰—**प्रेम वर्द्धित होने पर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव नाम धारण करता है। जैसे गन्ने का बीज अंकुरित होकर गन्ना बनता है फिर वह गन्ने का रस, गुड़, खण्ड-सार, शर्करा, सिता मिश्री, उत्तम मिश्री की अवस्था को प्राप्त करता है। इसी प्रकार रति से महाभाव तक सभी कृष्णभक्ति रस में स्थायिभाव कहलाते हैं। स्थायिभाव में विभाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा व्यभिचारी भाव के मिलन से कृष्णभक्ति रस अमृत के समान आस्वादनीय हो जाता है।

### अनुभाष्य

१७८। स्नेह—(भः रः सिः पः विः तृतीय लहरी)—''सान्द्रश्चित-द्रवं कुर्वन् प्रेमा 'स्नेह' इतीर्यते। क्षणिकस्यापि नेह स्याद्विश्लेषस्य सहिष्णुता॥'' चित्त के द्रवीभूत होने वाले भाव के धनीभूत (अत्यधिक गाढ़) होने पर प्रेम 'स्नेह' की संज्ञा प्राप्त करता है। उसमें एक क्षण का वियोग भी सहन नहीं होता।

मान—मध्य द्वितीय परिच्छेद ६६ संख्या द्रष्टव्य।

प्रणय—मध्य द्वितीय परिच्छेद ६६ संख्या द्रष्टव्य।

राग—(भः रः सिः पः विः द्वितीय लहरी)—
''स्नेहः स रागो येन स्यात् सुखं दुःख मपि स्फुटम्।
तत्सम्बन्ध-लवेऽप्यत्र प्रीतिः प्राणव्येरपि॥''
जिस स्नेह में स्पष्टरूप से दुःख ही 'सुख' के रूप में प्रतीत होता है, वही 'राग' है ; इस सम्बन्धमात्र में अपने प्राणों को नष्ट करके भी श्रीकृष्ण की प्रीति को उदित कराने की प्रवृति होती है।

अनुराग, भाव और महाभाव—मध्य, षष्ठ परिच्छेद १३ संख्या के अनुभाष्य में 'अधिरुढ़-महाभाव' का प्रसङ्ग द्रष्टव्य है।

### अनुभाष्य

१८०। स्थायिभाव—(भः रः सिः दः विः प्रथम लहरी)—''विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभि-चारिभिः। स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणा-दिभिः। एषा कृष्णरतिः स्थायिभावो भक्तिरसो भवेत्॥'' कृष्णरति—स्थायिभाव-स्वरूप, श्रवण आदि द्वारा विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावों के सम्मिलन में, भक्तों के हृदय में आस्वादनीय भाव से लाये जाने पर वही 'भक्तिरस' होता है।

विभाव—(भः रः सिः दः विः प्रथम लहरी)—''तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादनहेतवः। ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्दीपना परे॥'' रति के आस्वादन के हेतु समूह को 'विभाव' कहते हैं। विभाव—आलम्बन और उद्दीपन के भेद से दो प्रकार का होता है।

**अनुभाव—(**भः रः सिः दः विः द्वितीय लहरी)—''अनुभावास्तु चितस्था भावानामवबोधकाः। ते बहिर्विक्रिया-प्रायाः प्रोक्ता उदभास्वराख्यया॥'' जो उद्भास्वरयुक्त चित्रस्थ भावसमूह के प्रकाशक बाहर में विकार-जैसी चेष्टा प्रदर्शित करते हैं, वही 'अनुभाव' है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१७७-१८१। भक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं—साधनावस्था, भावावस्था और प्रेमावस्था। श्रवण-कीर्तन आदि नौ प्रकार के अङ्ग पहले साधन भक्ति में ही क्रियमाण (क्रियान्वित प्रारम्भ) होते हैं। श्रद्धापूर्वक श्रवण-कीर्त्तनादि करते-करते पूर्वोक्त सभी अनर्थ जितनी मात्रा में कम होते है, उतना ही श्रद्धावृत्ति क्रमशः उच्चभाव धारण करते हुए निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव एवं रति,—इन सब नामों से परिचित होती है। साधन भक्ति से ही रति का उदय होता है; श्रवण कीर्त्तन आदि की आलोचना (अनुशीलन) से ही वह रति जितनी गाढ़ होती जाती है, उतना ही 'प्रेमादि' नाम धारण करती है। (क्रमशः) प्रेम वर्धित होते-होते स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव तक उन्नत होता है। उदाहरण स्थल यह है, गन्ने का रस—मानो रति स्थानीय बीज स्वरूप है, वह जितना गाढ़ होता है, उतना ही पहले गुड़ बाद में खण्डसार, शर्करा, मिश्री और उत्तम मिश्री—इन सब अवस्थाओं को प्राप्त करता है। रति से महाभाव तक, सब कुछ ही कृष्णभक्तिरस में स्थायिभाव कहकर परिचित हैं; रति को ही सर्वत्र 'स्थायिभाव' कहा जाता है।

उसी स्थायिभाव में विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्याभिचारी,—इन चारों भावों के मिलने पर ही रस उदित होता है। कृष्णभक्ति के सम्बन्ध में स्थायिभाव में इन समस्त साम्रागियों के सयुंक्त होने से 'कृष्णभक्तिरस' होता है। स्थायिभाव ही रसोद्दीपन कार्य का मुख्य आधार है। उसके साथ विभाव आदि चार साम्रागियाँ संयुक्त होती है। अतएव स्थायिभाव ही रस का 'मूल', विभाव ही

रस का 'हेतु', अनुभाव ही रस का 'कार्य', सात्त्विकभाव ही रस का 'कार्यविशेष' एवं सञ्चारी अथवा व्यभिचारी भाव समूह ही रस के 'सहाय' (सहायक) हैं। विभाव दो प्रकार से विभक्त है— 'आलम्बन' और उद्दीपन'। आलम्बन पुनः दो प्रकार से विभक्त है,—'विषय और 'आश्रय'। कृष्णभक्तिरस में भक्त ही 'आश्रय', कृष्ण ही 'विषय' एवं कृष्ण के गुण ही 'उद्दीपन' हैं।

अनुभाव १३ प्रकार,—१) नृत्य, २) विलुठित, ३) गीत ४) क्रोशन, ५) तनुमोटन, ६) हुङ्कार, ७) जृम्भन, ८) श्वासवृद्धि, ९) लोकपेक्षा-त्याग, १०) लालास्राव, ११) अट्टहास, १२) उद्धूर्णा, १३) हिक्का; एक ही समय में समस्त अनुभाव लक्षण उदित नहीं होते। रस का कार्य जिस प्रकार होता रहता है, उसी प्रकार कोई-कोई लक्षण समय-समय पर उदित होता है। सात्विकभाव,—८ प्रकार के एवं सञ्चारी अथवा व्यभिचारी भाव—३३ प्रकार के होते हैं। (मध्य, चतुर्दश परिच्छेद १६७ संख्या का अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य)।

**अनुभाष्य**

१८१। सात्त्विक और व्यभिचारी—मध्य तृतीय परिच्छेद १६२ संख्या एवं मध्य चतुर्दश परिच्छेद १६७ संख्या द्रष्टव्य।

उपमा—

**जैछे दधि, सिता, धृत, मरीच, कर्पूर।**
**मिलने 'रसाला' हय अमृत मधुर॥१८२॥**

भक्त के भेद से पाँच प्रकार की रति—

**भक्तभेदे रति-भेद पञ्च परकार।**
**शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति आर॥१८३॥**

रति के भेद से पाँच प्रकार का भक्तिरस—

**वात्सल्यरति, मधुररति,—ए पञ्च विभेद।**
**रतिभेदे कृष्णभक्ति-रसे पञ्च भेद॥१८४॥**

**१८२-१८४। प॰ अनु॰—**जैसे दही, मिश्री, घी, काली मिर्च तथा कर्पूर को मिलाने से रसाला (शिकंजी) अमृत की भाँति मधुर होता है। उसी प्रकार भक्त के भेद से रति-भेद भी पाँच प्रकार का होता है। शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति, वात्सल्यरति और मधुररति—रति के ये पाँच प्रकार हैं। रति भेद के कारण कृष्णभक्तिरस में भी पाँच भेद है।

**अनुभाष्य**

१८२। **सिता—**मिश्री।

१८३। **शान्तरति—**(भः रः सिः दः विः पञ्चम लहरी)—''मानसे निर्विकल्पत्वं शम इत्यभिधीयते'' अर्थात् मानस में संशयादि रहित भाव को 'शम' कहते है। (दः विः पञ्चम लहरी में)—''विहाय विषयोन्मुख्यं निजानन्द-स्थितिर्यतः। आत्मनः कथ्यते सोऽत्र स्वभावः शम इत्यसौ॥ प्रायः शमप्रधानानां ममतागन्धवर्जिता। परमात्मतया कृष्णे जाता शान्तरतिर्मता॥'' विषय वासना को छोड़कर अपने आनन्द में अवस्थित होने को 'शम'-स्वभाव कहते हैं। शम-प्रधान व्यक्तियों की परमात्म-ज्ञान से कृष्ण के प्रति ममता-गन्धहीन शान्तरति उत्पन्न होती है।

**दास्यरति—**(भः रः सिः दः विः पञ्चम लहरी) ''स्वस्माद्भवन्ति ये न्यूनास्तेऽनुग्राह्या हरेर्मताः। आराध्यत्वात्मिका तेशां रतिः प्रीतिरितीरिता। तत्रासक्तिकृदन्यत्र प्रीतिसंहारिणी ह्यसौ॥'' श्री भगवान् से स्वयं को छोटा मानने का अभिमान रखने वाली रति से युक्त होने पर जीव हरि के अनुग्रह का पात्र बन जाता है। 'भगवान् ही आराध्य हैं'—ऐसी प्रीति-नामक रति ही आराध्य भगवान् कृष्णचन्द्र में 'आसक्ति' विधान करती है

एवं भगवान् के अलावा अन्य वस्तुओं के प्रति प्रीति का विनाश करती है।

**सख्यरति—**(भः रः सिः दः विः पञ्चम लहरी)—"ये सुस्तल्या मुकुन्दस्य ते सखायः सतां मताः। साम्याद्विश्रम्भरुपैषां रतिः सख्यमिहोच्यते। परिहास-प्रहासादिकारिणीयमयन्त्रणा।" विबुध और सज्जनों के मत से जो मुकुन्द के समान होने के अभिमान से युक्त रति वाले हैं, वे ही 'सखा' हैं; श्रीकृष्ण के साथ परस्पर समान भाव होने के कारण बन्धन-राहित्य-प्रकाशिनी विश्वासमयी रति को 'सख्यरति' कहते हैं। यह सख्यरति—परिहास और प्रहास आदि कराने वाली होती है, इसे अयन्त्रणा अर्थात् बन्धनहीन रति कहते हैं।

१८४। **वात्सल्य-रति—**(भः रः सिः दः विः पञ्चम लहरी)—"गुरुवो ये हरेरस्य ते पूज्या इति विश्रुताः। अनुग्रहमयी तेषां रतिर्वात्सल्यमुच्यते॥ इदं लालनभव्याशीश्चिबुक स्पर्शनादिकृत॥" गुरु होने के अभिमान से युक्त रति वाले जीव गण ही भगवान के 'पूज्य' हैं; उनकी अनुग्रहमयी रति को 'वात्सल्य रति' कहते हैं। इस वात्सल्य रति में लालन, कल्याण साधन, आशीर्वाद और ठोड़ी को स्पर्श करने आदि जैसे अनुष्ठान हैं।

**मधुर-रति—**(भः रः सिः दः विः पञ्चम लहरी)—"मिथो हरेर्मृगाक्ष्याश्च सम्भोगस्यादि-कारणम्। मधुरापरपर्यायो प्रियताख्योदिता रतिः। अस्यां कटाक्षभ्रूक्षेपप्रियवाणीस्मितादयः॥" श्री भगवान् के एवं मृगनयनों वालियों के परस्पर स्मरणदर्शन आदि आठ प्रकार के सम्भोग का मुख्य कारण—प्रियता अथवा मधुरा-रति है। मधुरा रति में कटाक्ष, भ्रूक्षेप, प्रियवाक्य एवं मधुर हास्य आदि अनुष्ठान विद्यमान हैं।

पाँच मुख्य भक्तिरस और सात गौण रस—

**शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर-रस नाम।**
**कृष्णभक्ति-रस-मध्ये ए पञ्च प्रधान॥१८५॥**

**१८५। प० अनु०—**शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर रस कृष्णभक्ति रस में ये पाँच प्रकार के रस प्रधान हैं।

**अनुभाष्य**

१८५। **शान्तभक्तिरस—**(भः रः सिः पः विः प्रथम लहरी)—"वक्ष्यमाणैर्विभावादैः शमिनां श्वाद्यतां गतः। स्थायी शान्ति रति-र्धीरैः शान्त-भक्तिरसः स्मृतः। प्रायः स्वसुखजातीयं सुखं स्यादत्र योगिनाम्। किन्त्वात्मसौख्यमघन घनन्त्वीशमयं सुखम्॥ तत्रापीशस्वरूपानुभवस्यैवोरूहेतुता। दासादि-वन्मनोज्ञत्वलीलादेर्न तथा मता॥" शान्तरति रूपी स्थायिभाव कहे गये विभाव आदि के साथ मिलकर जब शान्तभक्त के द्वारा आस्वादनीय होते हैं अर्थात् उनके जैसे रूप को प्राप्त करते हैं, तब 'शान्तभक्तिरस' होता है। शान्तरस में योगियों के सर्वमूलस्वरूप निर्विशेष-ब्रह्मानन्द जातीय सुख की प्राप्ति होती है, किन्तु यह आत्मानन्द-'अघन' अर्थात् बहुत कम होता है; और सच्चिदानन्द भगवद्विग्रह-स्फूर्ति में प्रचुर सेवा सुख ही 'गाढ़' होता है। शान्त भक्तों के साक्षात्कार के लिये यद्यपि अत्यधिक सुख तो होता है, किन्तु दास्य आदि की भाँति भगवान की मनोहर लीलाओं में उनकी वैसी रुचि नहीं होती।

**दास्य-भक्तिरस—**(भः रः सिः पः विः द्वितीय लहरी)—"आत्मोचितैर्विभावद्यैः प्रीतिरास्वादनीय-ताम्। नीता चेतसि भक्तानां प्रीति भक्ति रसो मतः॥ अनुग्राह्यस्य दासत्वाल्लाल्यत्वादप्ययं द्विधा। भिद्यते सम्भ्रमप्रीतो गौरवप्रीत इत्यपि॥" आत्मोचित विभाव आदि के द्वारा भक्तों के चित्त में प्रीति रति आकर आस्वादनीयता को प्राप्त करने पर वही 'प्रीति' अथवा 'दास्य-भक्ति-रस' होता है। अनुग्रह योग्य दासों के दासत्व और लाल्यत्व के भेद से दास्य रस में सम्भ्रम दास्य और गौरव

दास्य,—दो प्रकार की प्रीति लक्षित होती है।

**सख्य भक्तिरस—**(भः रः सिः पः विः चतुर्थ लहरी)—''स्थायिभावो विभावाद्यैः सख्यमात्गोचितैरिह। नीताश्चित्ते सतां पुष्टिं रसप्रेयानुदीर्यते॥'' ''आत्मोचित विभावादि द्वारा स्थायिभाव में भक्तों के चित्त में सख्यरति के पुष्ट होने पर 'प्रेयरस' अथवा 'सख्यभक्तिरस' होता है।

**वात्सल्य भक्तिरस**—(भः रः सिः पः विः चतुर्थ लहरी)—''विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः। एष वत्सल-नामात्र प्रोक्तो भक्ति रसो बुधैः॥'' स्थायिभाव भक्त के चित्त में विभाव आदि द्वारा वात्सल्य रति के पुष्ट होने पर भक्त-पण्डितगण उसे 'वात्सल्य-भक्तिरस' कहते हैं।

**मधुर भक्तिरस—**(भः रः सिः पः विः पञ्चम लहरी)—''आत्मोचितैर्विभा-वाद्यैः पुष्टि नीता सतां हृदि। मधुराख्यो भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुरा रतिः॥'' मधुर-रति आत्मोचित विभाव आदि के द्वारा सद्भक्तों के हृदय में पुष्ट होने पर 'मधुराख्य भक्ति रस' कहकर कीर्तित होती है।

भक्तिरसामृतसिन्धु (२/५/११६)—

**हास्योद्भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि।**
**भयानकः स वीभत्स इति गौणश्च सप्तधा॥१८६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८६। पाँच प्रकार के 'मुख्य रस'—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर तथा सात प्रकार के गौण रस—हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और वीभत्स हैं।

**अनुभाष्य**

१८६। तथा हास्यः, अद्भुतः, वीरः, करुणः, रौद्रः, भयानकः, वीभत्सः—इति सप्तधा गौणरसश्च अपि।

**हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स, भय।**
**पञ्चविध-भक्ते गौण सप्तरस हय॥१८७॥**

१८७। **प० अनु०—हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स तथा भय**—ये सातों गौण रस पाँचों प्रकार के भक्तों में ही रहते हैं।

पाँच मुख्यरस—स्थायी; साँत गौण रस-आगन्तुक—

**पञ्चरस 'स्थायी', व्यापी' रहे भक्त-मने।**
**सप्त गौण 'आगन्तुक' पाइये कारणे॥१८८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१८८।** पहले कहे गये पाँच मुख्य रस स्थायिभाव से ही भक्त के हृदय में वर्त्तमान रहते हैं, हास्य-अद्भुत आदि सात गौण रस भक्त के हृदय में आगन्तुक भाव से उदित होकर मुख्य रस को पुष्ट करके निवृत्त होते हैं।

**अनुभाष्य**

१८७-१८८। **हास्य-भक्तिरस,—**(भः रः सिः उः विः प्रथम लहरी)-''वक्ष्य-माणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं हासरतिर्गता। हासभक्तिरसो नाम बुधैरेष निगद्यते॥'' कहे गये विभाव आदि द्वारा हास्य रति के पुष्ट होने पर ही पण्डितगण उसे 'हास्य-भक्तिरस' कहते है।

**अद्भुत-भक्तिरस,—**(भः रः सिः पः विः द्वितीय लहरी)—''आत्मोचितैर्विभावद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तचेतासि। सा विस्मयरतिर्नीताद्भुतभक्तिरसा भवेत्॥'' आत्मोचित विभावादि द्वारा भक्त के चित्त में विस्मय रति आस्वादनीय रूप में आने पर 'अद्भुत भक्तिरस' होता है।

**वीर-भक्तिरस,—**(भः रः सिः पः विः तृतीय लहरी)—''सैवोत् साहरतिः स्थायी विभावाद्यैर्निजोचितैः। आनीयमाना स्वाद्यत्वं वीरभक्तिरसो भवेत्। युद्धदान-दयाधर्मैश्चतुर्द्धा वीर उच्यते॥'' आत्मोचित विभाव आदि के द्वारा भक्त के चित्त में 'उत्साह-रति' के आस्वादनीय रूप में आने पर 'वीरभक्तिरस' होता है। 'युद्ध', 'दान', 'दया',

और 'धर्म',—इन चार प्रकार के कार्यों में चार प्रकार के 'वीर' कहे जाते हैं।

**करुण-भक्तिरस,—**(भः रः सिः पः विः चतुर्थ लहरी)—''आत्मोचित्तैर्विभावद्यैर्नीता पुष्टिं सतां हृदि। भवेच्छाकरतिर्भक्ति-रसो हि करुणाभिधः॥'' अपने लिये उचित विभाव-आदि द्वारा भक्त के चित्त में 'शोक-रति' के पुष्ट होने पर उसे 'करुणभक्तिरस' कहते हैं।

**रौद्र-भक्तिरस,—**(भः रः सिः पः विः पञ्चम लहरी)—''नीता क्रोधरतिः पुष्टिं विभावाद्यै-र्निजोचितैः। हृदि भक्तजनस्यासौ रौद्र भक्तिरसो भवेत्॥'' आत्मोचित विभाव आदि द्वारा भक्त के हृदय में 'क्रोधरति' के पुष्ट होने पर 'रौद्र-भक्तिरस' होता है।

**भयानक-भक्तिरस,—**(भः रः सिः पः विः षष्ठ लहरी)—''वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यै पुष्टिं भयरति-र्गता। भयानकाभिधो भक्तिरसों धीरैरुदीय्ते॥'' कहे गये विभाव आदि द्वारा भयरति के पुष्ट होने पर पण्डितगण उसे 'भयानक-भक्तिरस' कहते हैं।

**वीभत्स-भक्तिरस,—**(भः रः सिः पः विः सप्तम लहरी)—''पुष्टि'' निजविभावाद्यैर्जुगुप्सरतिरागता। असौ भक्तिरसो धीरैर्वीभत्साख्य इतीर्यते॥'' आत्मोचित विभाव आदि के द्वारा भक्त के चित्त में जुगुप्सा अथवा 'घृणा-रति' के पुष्ट होने पर पण्डितगण उसे 'वीभत्स-भक्तिरस' कहते हैं।

**पञ्चविध भक्ते** (पाँच प्रकार के भक्तों में)—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन स्थायी पाँच प्रकार के रसों के हास्य आदि सात गौणरस 'कारण' को देखकर प्रकाशित होते हैं।

शान्त और दास्य-रस के भक्तों के नाम—

**शान्तभक्त—नव-योगेन्द्र, सनकादि आर।**
**दास्यभाव-भक्त—सर्वत्र सेवक अपार॥१८९॥**

**१८९। प॰ अनु॰—नवयोगेन्द्र तथा सनक आदि शान्त भक्त एवं दास्य भाव के भक्त तो भगवान् के अनेकानेक सेवक सर्वत्र विद्यमान हैं।**

**अनुभाष्य**

१८९। **नवयोगेन्द्र,—**(भाः ५/४/११ और ११/२/२१)—१) कवि, २) हवि, ३) अन्तरीक्ष, ४) प्रबुद्ध, ५) पिप्पलायन, ६) आविर्होत्र, ७) द्रविड़ (द्रुमिल), ८) चमस और ९) करभाजन।

**सनकादि—**१) सनक, २) सनन्दन, ३) सनत्कुमार, ४) सनातन।

**दास्यभाव-भक्त,—१)** गोकुल में रहने वाले रक्तक-चित्रक-पत्रक आदि दासगण, **२)** द्वारका पुरी में स्थित दारुकादि दासगण, ३) वैकुण्ठ के दासगण, ४) हनुमान आदि लीला-दासगण।

सख्य और वात्सल्य-रस के भक्तों के नाम—

**सख्य-भक्त—श्रीदामादि, पुरे भीमार्जुन।**
**वात्सल्य-भक्त—माता-पिता, जत गुरुजन॥१९०॥**

**१९०। प॰ अनु॰—**ब्रज में श्रीदामादि तथा द्वारका लीला में भीम तथा अर्जुन आदि सख्य भक्त हैं। वात्सल्य-भक्त माता-पिता तथा समस्त गुरुजन हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९०। व्रजे (व्रज में)—श्रीदाम आदि, पुरे (पुर में)—द्वारका लीला में भीम-अर्जुन।

मधुर-रस के भक्तगण—पुर की कान्ताएँ
और व्रज की कान्ताएँ—

**मधुर-रसे भक्तमुख्य—व्रजे गोपीगण।**
**महिषीगण, लक्ष्मीगण, असंख्य गणन॥१९१॥**

१९१। प॰ अनु॰—मधुर रस के भक्तों में मुख्य व्रज में गोपियाँ हैं। मधुर रसके भक्तों में महिषियाँ, लक्ष्मियाँ तथा अन्य भी असख्य भक्त हैं।

दो प्रकार की मधुर रति—१) ऐश्वर्यमिश्रा और २) केवला—

**पुनः कृष्णरति हय दुइत प्रकार।**
**ऐश्वर्यज्ञानमिश्रा, केवला-भेद आर॥१९२॥**

**१९२। प॰ अनु॰—**ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा तथा केवला के भेद से पुनः कृष्णरति भी दो प्रकार की होती है।

गोकुल में 'केवला' रति एवं वैकुण्ठ, मथुरा और द्वारका में 'ऐश्वर्यप्रधान' रति—

**गोकुले 'केवला' रति—ऐश्वर्यज्ञानहीन।**
**पुरीद्वये, वैकुण्ठाद्ये—'ऐश्वर्य' प्रवीण॥१९३॥**

**१९३। प॰ अनु॰—**गोकुल में केवला रति ऐश्वर्यज्ञान से रहित होती है और मथुरा पुरी एवं द्वारकापुरी तथा वैकुण्ठ आदि में ऐश्वर्य प्रधान रति होती है।

ऐश्वर्यप्रधान रति में राग-संकुचित, केवला में ऐश्वर्य-ज्ञान का अभाव—

**ऐश्वर्यज्ञान-प्राधान्ये संकुचित प्रीति।**
**देखिले ना माने ऐश्वर्य,—केवलार रीति॥१९४॥**

**१९४। प॰ अनु॰—**ऐश्वर्य ज्ञान की प्रधानता होने पर प्रीति संकुचित हो जाती है किन्तु केवला रति की रीति ही है कि वह ऐश्वर्य को देखने पर भी उसे मानती नहीं है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९२-१९४। कृष्णरति दो प्रकार की है—ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा एवं केवल अथवा ऐश्वर्यज्ञान हीना। दोनों पुरियों अर्थात् द्वारका और मथुरा में एवं वैकुण्ठ आदि में ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा भक्ति है। इसलिए वहाँ प्रेम-संकुचित है। किन्तु गोकुल में केवला-रति में गोप-गोपियाँ कृष्ण के ऐश्वर्य को देखने पर भी उसे मानना नहीं चाहती।

व्रज में शान्त और दास्य में कहीं पर थोड़ा ऐश्वर्यज्ञान रहने पर भी सख्य, वात्सल्य और मधुर रस में ऐश्वर्यज्ञान की स्फूर्त्ति का अभाव—

**शान्त-दास्य-रसे ऐश्वर्य काँहा उद्दीपन।**
**सख्ये, वात्सल्ये, मधुर-रसे सङ्कोचन॥१९५॥**

**१९५। प॰ अनु॰—**व्रज में शान्त-दास्य रस में कहीं-कहीं पर ऐश्वर्य का उद्दीपन होता है किन्तु सख्य, वात्सल्य तथा मधुर रस में वह सम्पूर्ण रूप में संकुचित है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९५। काँहा—किसी स्थान पर।

**अनुभाष्य**

१९५। शान्त, दास्य और गौरव सख्य में स्थान-स्थान पर ऐश्वर्य की प्रधानता लक्षित होती है; विश्रम्भ-सख्य में, वात्सल्य में और मधुर रस में ऐश्वर्य की प्रधानता का भाव संकुचित होता है।

ऐश्वर्य मिश्रित रति में स्वयं को 'दीन' और कृष्ण के प्रति 'प्रभु का ज्ञान—१) वात्सल्य-रति में वसुदेव और देवकी—

**वसुदेव-देवकीर कृष्ण चरण वन्दिल।**
**ऐश्वर्यज्ञाने दुँहार मने भय हैल॥१९६॥**

**१९६। प॰ अनु॰—**जब श्रीकृष्ण ने वसुदेव और देवकी के चरणों की वन्दना की, तब ऐश्वर्यज्ञान के कारण दोनों के मन में भय उत्पन्न हो गया।

श्रीमद्भागवत (१०/४४/५१) में—

**देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ।**
**कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ॥१९७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९७। देवकी और वसुदेव, बलदेव और श्रीकृष्ण को 'जगदीश्वर' जानकर शंका से युक्त होकर उन्हें आलिङ्गन नहीं कर पाये।

**अनुभाष्य**

१९७। कंस और उसके द्वारा नियुक्त मल्लों का वध करके श्रीकृष्ण ने माता देवकी और पिता वसुदेव के बन्धन को खोलकर उन्हें प्रणाम किया, देवकी और वसुदेव में यशोदा और नन्द की भाँति भाव नहीं होने के कारण ऐश्वर्यभाव की प्रबलता लक्षित—

देवकी वसुदेवश्च (मातापितरौ) पुत्रौ (रामकृष्णौ) जगदीश्वरौ इति विज्ञाय (ज्ञात्वा) शङ्कितौ (भीतौ सन्तौ) कृतसंवन्दनो (कृतप्रणामो) अपि तौ न सम्वजाते (आलिङ्गितवन्तौ किन्तु प्रणतौ बद्धाञ्जली स्तुवन्तौ स्थितौ)।

२) सख्य-रति में अर्जुन—

**कृष्णेर विश्वरूप देखि' अर्जुनेर हैल भय।**
**सख्यभावे धार्ष्ट्य क्षमापय करिया विनय॥१९८॥**

**१९८। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण के विश्वरूप को देखकर अर्जुन को भय हुआ। अर्जुन ने सख्यभाव में की गयी अपनी धृष्टता की श्रीकृष्ण से दीनतापूर्वक क्षमा-याचना माँगी।

श्रीमद्भगवद्गीता (११/४१ (त्रिपाद)-४२ (शेषपाद)—

**सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं**
**हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।**
**अजानता महिमानं तवेदं मया**
**प्रमादात् प्रणयेन वापि॥१९९॥**

**यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि**
**विहार-शय्यासन-भोजनेषु।**
**एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं**
**तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥२००॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९९-२००। सखा समझकर तुम्हारी महिमा को नहीं जानने के कारण प्रमाद (भ्रम) अथवा प्रीतिवशतः हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे,—इस प्रकार के शब्दों के उपयोग के द्वारा बलपूर्वक जो-जो आपको कहा है, आहार में, विहार में, शयन में और उपवेशन में अकेले अथवा सबके समक्ष परिहास के छल से जो मैंने आपका अनादर किया है। उस सबके लिये हे अप्रमेय-स्वरूप आपसे उसे क्षमा करने की प्रार्थना करता हूँ।

**अनुभाष्य**

१९९-२००। तव महिमानं (महत्तम्) अजानता (अननुभवता) मया प्रमादात् (अनवधानात्) प्रणयेन् (सौहार्द्देन) वा अपि, सखा इति मत्वा (त्वां प्रति) प्रसभं (हठात्) हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इति यत् उक्तं (कथितं) तदितं; हे अच्युत! विहार-शयासनभोजनेषु (क्रीड़ाशयनोपवेशनाहारादिषु) एकः (एकाकी) वा (अथवा) तत्समक्षं (बन्धुनां पुरतः) अवहासार्थं (परिहासवशात्) असत्कृतः (अनादृतः) असि इति यत् तच्च अहं अप्रमेयम् (अचिन्त्य प्रभाव) त्वां क्षमये (क्षमां कारयामि, सर्ववचन रूपमसत्कार-रूपं अपराधजों वा त्वं क्षमस्व इत्यर्थः)।

(३) मधुर रति में रुक्मिणी—

**कृष्ण यदि रुक्मिणीरे कैला परिहास।**
**'कृष्ण छाड़िबेन'—जानि' रुक्मिणीर हैल त्रास॥२०१॥**

**२०१। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण ने यदि कभी रुक्मिणी के साथ परिहास भी किया, तब भी 'कृष्ण मुझे छोड़ देंगे—ऐसा सोचकर रुक्मिणी के मन में भय हो गया।

प्रमाण वचन—

श्रीमद्भागवत (१०/६०/२४) में—

**तस्याः सुदुःखभय-शोक-विनष्ट बुद्धे—**
**र्हस्तात्श्लथद्वलयतो व्यजनं पपात।**
**देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्**
**रम्भेव वातविहता प्रविकीर्य केशान्॥२०२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०२। द्वारका में रुक्मिणी के साथ कृष्ण के परिहास करने पर दुःख, भय और शोक से विनष्ट बुद्धि रुक्मिणी के श्लथ वलय अर्थात् ऐसा हाथ जिससे कड़ा गिर गया हो, उस हाथ से पंखा गिर पड़ा, केश इधर-उधर बिखर गये; एवं आँधी से गिरे केले के वृक्ष की भाँति उनकी देह सहसा विक्लव (बेचैन) होकर मोहप्राप्त (मूर्च्छित) हो गयी।

**अनुभाष्य**

२०२। एक बार अपने घर में रुक्मिणी के द्वारा अपने हाथों से श्रीकृष्ण की सेवा आरम्भ करने पर श्रीकृष्ण के द्वारा उनके अनुराग की परीक्षा करने की इच्छा करके परिहास पूर्वक स्वयं को दीन, निष्किञ्चन और उदासीन कहकर रुक्मिणी के प्रणय के सम्पूर्ण अयोग्य-पात्र के रूप में वर्णन करने पर एवं उन्हें श्रीकृष्ण सङ्ग को छोड़कर अन्यत्र प्रणय स्थापित करने के लिये कहने पर, उसे सुनकर कृष्णैकप्राणा रुक्मिणी की तात्कालिक अवस्था का वर्णन,—

सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेः (सुदुःखम् अत्यन्त-दुःखम् अप्रिय श्रवणात् भयं त्यागशङ्कया, शोकः अनुतापः तैः विनष्टा बुद्धिः यस्याः रुक्मिण्या तस्याः) श्लथद्वलयतः (श्लथन्ति पतन्ति वलयानि यस्मात् तस्मात्) हस्तात व्यञ्जन (वीजनयन्त्रं) पपात; विक्लवधियः (विक्ल्वा अवशा धीः यस्याः तस्याः) देहः च सहसा एव मुह्यन् केशान् प्रविकीर्य (इतस्ततः विक्षिप्य) वातविहता (वायुताड़िता) रम्भा (कदली-वृक्षः) इव पपात।

व्रज में ऐश्वर्यहीन केवला-रति से कृष्ण को अपने वश योग्य समझना—

**'केवला'र शुद्ध प्रेम 'ऐश्वर्य' ना जाने।**
**ऐश्वर्य देखिलेओ निज-सम्बन्ध से माने॥२०३॥**

**२०३। प० अनु०—**किन्तु केवला रति वालों का शुद्धप्रेम ऐश्वर्य को नहीं जानता। वे ऐश्वर्य को देखने पर भी केवल अपने सम्बन्ध को ही मानते हैं।

अनुभाष्य

२०३। ऐश्वर्य प्रधान भक्त केवला रति के शुद्ध प्रेम का माहात्मय नहीं समझ सकते। भगवान के ऐश्वर्य को देखने पर भी केवला रति-परायण भक्त अपने सम्बन्ध को ही स्वीकार करते हैं।

१) स्वयं भगवान् कृष्ण को यशोदा द्वारा अपना पुत्र समझना—
श्रीमद्भागवत (१०/८/४५) में—

**त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः।**
**उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम्॥२०४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०४। तीनों वेदों, उपनिषद् सांख्य योग और भक्तिशास्त्रों के द्वारा जिनके माहात्म्य का गान किया जाता है, उन कृष्ण को यशोदा अपना 'पुत्र' समझती थी।

**अनुभाष्य**

२०४। श्रीकृष्ण के मुख में ऐश्वर्यमय विश्वरूप को देखकर यशोदा में तत्त्वज्ञान के कारण सम्भ्रम बुद्धि आते ही पुनः कृष्ण की इच्छा से उनके सहज-ममता रूपी प्रबल हृदय में कृष्ण स्नेह गाढ़ होकर वर्धित हो गया—त्रया (कर्मोपासनामयैः ऋगयजुःसाम-वेदैः इन्द्रादिरूपेण), उपनिषद्भिः (वेदोत्तर-ज्ञानकाण्डात्मकश्रुतिभिः 'ब्रह्म' इति), साख्यैः (पुरुषः इति), योगैः ('परमात्मा' इति), सात्वतैः (पञ्चरात्रागमैः 'भगवान्' इति) उपगीयमान-माहात्म्यम् (उपगीयमानम् ईड्यमानं माहात्म्यम् यस्य त) हरिं सा (केवलरति विशिष्टा यशोदा) आत्मजं (तनयम्) अमन्यत्।

श्रीमद्भागवत (१०/९/१४) में—

**तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्त्यलिङ्गमधोक्षजम्।**
**गोपीकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥२०५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०५। मर्त्त्य शरीर की भाँति व्यक्त, उस अव्यक्त और इन्द्रियातीत अधोक्षज वस्तु को अपने पुत्र के रूप में यशोदा ने प्राकृत बालक की भाँति रस्सी के द्वारा ओखली से बाँध दिया।

**अनुभाष्य**

२०५। माता के स्नेह का दर्शन करने के लिये लीलामय कृष्ण ने यशोदा के भवन में ही दही के पात्र को तोड़कर चोरी करके माखन भक्षण करना आरम्भ किया, जिसे देखकर क्रोधित यशोदा के व्यवहार का वर्णन—

अव्यक्तं (जड़ेन्द्रियाधविषयम्) अधोक्षजम् (अधःकृतम् अक्षजम् इन्द्रियजज्ञानं येन तं स्वयं भगवन्त) मर्त्त्यालिङ्ग (जीवनुकम्पया स्वीकृत-नरतनुम्) आत्मजं (पुत्र) मत्वा गोपिका (यशोदा) प्राकृतं बालकं माता, यथा, (तथा) दाम्ना (रज्जुना) उलुखले (उदूखले) बबन्ध (बन्धनार्थं यत्नवती आसीत्)।

**(२) स्वयं भगवान् कृष्ण को श्रीदाम आदि के द्वारा सखा-मानना—**

श्रीमद्भागवत (१०/१८/२४) में—

**उवाह भगवान् कृष्णः श्रीदामानं पराजितः।**
**वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम्॥२०६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०६। भगवान् कृष्ण ने पराजित होकर श्रीदाम को कन्धे पर चढ़ाया; भद्रसेन ने वृषभ को उठाया तथा प्रलम्ब ने रोहिणीपुत्र बलदेव को उठाया।

**अनुभाष्य**

२०६। व्रजवन में गोचारण के समय राम कृष्ण को चुराने के लिये छलवेशी गोपरूपी प्रलम्बासुर के आने को देखभर भी कृष्ण उसे मोहित करके गोचारण करते-करते श्रीकृष्णपक्षीय और श्रीरामपक्षीय सखाओं को परस्पर स्पर्द्धा पूर्वक क्रीड़ा में मदमस्त कराके भाण्डीरवन में उपस्थित हुए एवं श्रीकृष्णपक्षीय सखाओं की हार के कारण अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उनकी श्रीराम पक्षीय सखाओं को उठाने की चेष्टा का वर्णन,—

भगवान् कृष्णः पराजितः (सन्) श्रीदामानं, भद्रसेनः वृषभः, प्रलम्बः (गोपबालकवेषी कपटी असुरः) रोहिणीसुतं (भावि-तन्मृत्युरुपं बलदेवम्) उवाह।

(३) स्वयं भगवान् कृष्ण को श्रीराधा द्वारा अपने वशीभूत कान्त समझना—

श्रीमद्भागवत (१०/३०/३७-३९) में—

**सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठां सर्वयोषिताम्।**
**हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजतेः प्रियः॥२०७॥**
**ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत्।**
**न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः॥२०८॥**
**एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति।**
**ततोश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधुरन्वतप्यत॥२०९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०७-२०९। ''कामयान गोपियों का परित्याग करके यह प्रिय कृष्ण मेरा भजन कर रहे हैं—ऐसे अहङ्कार के कारण (स्वयं को सभी गोपियों से श्रेष्ठा जानकर एवं अन्त में) वन में जाकर राधिका ने श्रीकृष्ण से कहा,—''हे कृष्ण, मैं और चल नहीं पा रही, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, मुझे वहाँ ले चलो।'' राधिका के ऐसे कहने पर, कृष्ण ने कहा,—''मेरे कंधे पर चढ़ो।'' इतना कहकर कृष्ण के अन्तर्ध्यान होने से वह कृष्णवधु राधिका अनुताप करने लगी।

**अनुभाष्य**

२०७-२०९। रासलीला से केवलमात्र श्रीमती

राधिका को लेकर श्रीकृष्ण के अन्तर्ध्यान होने पर श्रीमती की अहङ्कार होने पर गर्वोक्ति,—(असौ प्रियः कृष्णः) कामयाना (कामो यानम् आगमन साधनं यासां ताः) गोपी (सर्वाः) हित्वा (परित्यज्य) मां (राधिका) भजते (इति हेतोः गर्विता सती) सा (राधिका) आत्मानं (स्वा) सर्वयोषितां (सकलगोपीनां मध्ये) वरिष्ठां (श्रेष्ठा) मेने; ततः (एवमभिमानानन्तर) वनोद्देशं (कानन-प्रदेशविशेष) गत्वा "अहं चलितुं न पारये (शक्नोमि) अतः यत्र (स्थाने) ते (तव) गन्तुं मनः (अभिलाषः) (तत्र हे केशव) मां नय (वह)", इति सा केशवम् अब्रवीत्। एवम् उक्तः (सन् सः श्रीकृष्णः ता) प्रियां (राधिकां मम्) स्कन्धम् आरुह्यताम् इति आह; ततः (लीला विलासी), कृष्णः च अन्तर्दर्धे (अन्तर्हितः आसीत्); तद्दृष्ट्वा सा वधू (राधिका) च अन्वतप्यत (अनुतापवती)।

श्रीमद्भागवत (१०/३१/१६) में—

**पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान**
**अतिविलङ्घय तेऽन्त्यच्युतागताः।**
**गतिविदस्तवोदगीतमोहिताः कितव**
**योषितः कस्त्यजेन्निशि॥२१०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१०। हे कृष्ण, हमने अपने पति, पुत्र, अन्वय (अन्यान्य सभी सम्बन्धियों), भाई और बन्धुओं, सभी का अतिक्रम करके तुम्हारे निकट आगमन किया है; हमारे आने का कारण तुम जानते हो,—तुम्हारे गीत से मोहित होकर हम आयी हैं। हे धूर्त्त, रात्रि के समय स्त्रियों को कौन इस प्रकार परित्याग करता है?

**अनुभाष्य**

२१०। गोपियों के साथ रासलीला करते-करते श्रीकृष्ण के अचानक अन्तर्ध्यान होने पर, कृष्ण के उद्देश्य से विरह में कातर गोपियों की विलाप-गीति,—हे अच्युत, गतिविदः (अस्मदागमनं जानतः, गीत गतीर्वा जानतः, यद्वा गतिविदः वय) तव उद्गीतमोहिताः (उद्गीतेन् उच्चैगीतेन् मोहिताः वयं गोप्यः) पतिसुतान्वयभ्रातृ बान्धवान् (पतीन् सुतान् अन्वयान् तत्सम्बन्धिनः पुत्रान् भ्रातृन् बान्धवांश्च सर्वान्) अतिविलङ्घय (अनादृत्य) ते (तव) अन्ति (समीपम्) आगताः; हे कितव, (वञ्चनशील शठ,) निशि एवम्भूताः योषितः (स्वयमागतास्त्वाम् ऋृते) कः त्यजेत न कोऽपीत्यर्थः,।

शान्त रस के गुण और स्वरूप—

**शान्तरसे—'स्वरूपबुद्धये कृष्णैकनिष्ठता'।**
**"शमो मन्निष्ठता बुद्धेः" इति श्री मुख-गाथा॥२११॥**

**२११। प० अनु०—**श्रीकृष्ण परमब्रह्म हैं—इस बुद्धि से श्रीकृष्ण में जो निष्ठा है—वही शान्तरस का स्वरूप है। श्रीकृष्ण में बुद्धि की ऐकान्तिकी निष्ठा का नाम 'शम' अथवा 'शान्ति' है—यह श्री भगवान् के मुख से निःसृत वाणी हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२११। मन्निष्ठता-बुद्धि से 'शम'-धर्म उदित होता है; शम-धर्म से 'शान्त'-रस, अतएव शान्त रस में—कृष्ण ही एकमात्र परमार्थ स्वरुप समस्त विश्व ही (कृष्ण में आश्रित होने पर भी कृष्ण-स्वरूप से पृथक् अन्य) 'इतर' वस्तु—यही निष्ठा लक्षित होती है।

**अनुभाष्य**

२११। शान्तरस में जड़ीय भोग बुद्धि के विनष्ट होने पर जीव में स्वरुप बुद्धि का उदय होता है। उनका नित्य स्वरुप ही कृष्ण में नित्य-एक-निष्ठताधर्म से युक्त है। श्रीभगवान् ने उद्धव को अपने मुख से कहा है कि 'शम' शब्द का अर्थ 'कृष्णैकनिष्ठता' होता है।

भक्तिरसामृत सिन्धु (३/१/४७) में—

**शमो मन्निष्ठता बुद्धेरिति श्रीभगवद्वचः।**

**तनिष्ठ दुर्घटा बुद्धेरेतां शान्तरतिं बिना॥२१२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१२। मन्निष्ठता-बुद्धि से 'शमगुण'—इसी भगवद् वाक्य से समझना होगा कि, शान्तरति के बिना तन्निष्ठा-अत्यन्त दुर्लभ है।

**अनुभाष्य**

२१२। बुद्धेः मन्निष्ठता (कृष्णैकनिष्ठता) 'शमः' इति श्रीभगवदवचः (उद्धवं प्रति श्रीकृष्णवाक्यम्) ; एतां शान्तरति बिना बुद्धेः तन्निष्ठा (भगवन्निष्ठा) दुर्घटा (दुर्घटनीया)।

श्रीमद्भागवत (११/१९/३६) में—

**शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः।**
**तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः॥२१३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१३। मन्निष्ठता-बुद्धि से 'शम' गुण, इन्द्रिय संयम को 'दम', दुःख-सहन करने का नाम 'तितिक्षा', जिह्वा और उपस्थ को जीतने का नाम 'धृति' है।

**अनुभाष्य**

२१३। उद्धव के प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण की उक्ति,—बुद्धेः मन्निष्ठता (न तु शान्तिमात्र) 'शमः'; इन्द्रियसंयमः (न-चौरादि-दमन), 'दमः; दुःख संमर्षः (आत्मकृतविपाकस्य, विहित-दुःखस्य वा, सन्मर्षः सहनं, न तु भारादेः) 'तितिक्षा' ; जिह्वोपस्थ जयः (जिह्वोपस्थयोः जयः वेगधारणं, न तु अनुद्वेगमात्र) 'धृतिः'।

**कृष्ण बिना तृष्णा-त्याग—तार कार्य मानि।**
**अतएव 'शान्त' कृष्णभक्त एक जानि॥२१४॥**
**स्वर्ग, मोक्ष कृष्णभक्त 'नरक' करि' माने।**
**कृष्णनिष्ठा, तृष्णा-त्याग—शान्तेर 'दुइ' गुणे॥२१५॥**

**२१४-२१५। प० अनु०—**मैं श्रीकृष्ण की कामना को छोड़कर अन्यान्य समस्त प्रकार की कामनाओं के त्याग को ही शान्त रस के भक्त का कार्य मानता हूँ। इसलिए शान्तरस के आश्रित को भी एक प्रकार का कृष्णभक्त माना जाता है। स्वर्ग तथा मोक्ष को भी कृष्णभक्त नरक के समान ही मानता है। कृष्ण के प्रति निष्ठा तथा कृष्ण के अलावा अन्यान्य तृष्णाओं का त्याग—ये शान्त रस के भक्त के दो गुण हैं।

**अनुभाष्य**

२१४। कृष्ण के अलावा अन्य वस्तुओं में तृष्णा-राहित्य ही शान्त रस का कार्य कहकर स्वीकृत है; अतएव एकमात्र कृष्णभक्त ही शान्त हैं।

२१५। दुई गुणे (दो गुणों से)—अर्थात् कृष्ण-निष्ठा और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं अथवा द्रव्यों में लोभ का त्याग।

श्रीमद्भागवत (६/१७/२८) में—

**नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति।**
**स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः॥२१६॥**

२१६। स्वर्ग, अपवर्ग और नरक को एक समान देखने वाले नारायण के भक्त किसी से भी भयभीत नहीं होते।

**अनुभाष्य**

२१६। मध्य नवम परिच्छेद २७० संख्या द्रष्टव्य।

सभी भगवद्-भक्तों में ही शान्त-रस अनुस्यूत (विद्यमान)—

**एइ दुइ गुण व्यापे सब भक्तजने।**
**आकाशेर 'शब्द'-गुण जेन भूतगणे॥२१७॥**

**२१७। प० अनु०—**कृष्ण-निष्ठा तथा तृष्णा-त्याग—यह दो गुण पाँचों भावों के सभी भक्तों में विद्यमान रहते हैं। जैसे आकाश का शब्द गुण

सभी भूतों अर्थात् वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी में रहता है।

**अनुभाष्य**

२१७। सब भक्तजने (सभी भक्तों में)—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच प्रकार के भक्तों में ही अवस्थित है।

'आकाश का शब्दगुण'—मध्य अष्टम परिच्छेद ८५-८७ संख्या द्रष्टव्य।

शान्त रस में—कृष्ण के प्रति निरपेक्ष-भाव—

**शान्तेर स्वभाव—कृष्णे ममता-गन्धहीन।**
**'परं ब्रह्म'-'परमात्मा'-ज्ञान-प्रवीण॥२१८॥**

**२१८। प० अनु०—**शान्तरस के भक्त का स्वभाव कृष्ण के प्रति ममता की गन्ध से भी रहित होता है। उनमें केवल कृष्ण के प्रति परमब्रह्म, परमात्मा रूपी ज्ञान ही प्रवीण (प्रबल) होता है।

दास्यरस में—शान्तरस और सेवा—

**केवल 'स्वरूप-ज्ञान' हय शान्त-रसे।**
**'पूर्णेश्वर्यप्रभु-ज्ञान' अधिक हय दास्ये॥२१९॥**
**ईश्वरज्ञान, सम्भ्रम-गौरव प्रचुर।**
**'सेवा' करि' कृष्णे सुख देन निरन्तर॥२२०॥**
**शान्तेर गुण दास्ये आछे, अधिक—'सेवन'।**
**अतएव दास्यरसेर एइ 'दुइ' गुण॥२२१॥**

**२१९-२२१। प० अनु०—**शान्तरस में केवल श्रीकृष्ण का स्वरूप ज्ञान होता है, किन्तु दास्यरस के भक्तों में श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभु के रूप में ज्ञान शान्तरस के भक्तों से अधिक रहता है। दास्यरस के भक्तों में श्रीकृष्ण के प्रति ईश्वर ज्ञान तथा सम्भ्रम और गौरव प्रचुर मात्रा में होता है। वे श्रीकृष्ण की सेवा करके उन्हें निरन्तर सुख प्रदान करते हैं। शान्तरस के भक्तों के गुण तो दास्यरस के भक्तों में हैं ही, किन्तु उनमें सेवा की भावना एक अधिक गुण है। अतएव दास्यरस के भक्तों में शान्तरस के भक्तों का गुण तथा सेवा—यह दो गुण होते हैं।

सख्य रस में—शान्त को अपने में समाया
दास्यरस+विश्रम्भ-ममता—

**शान्तेर गुण, दास्येर**
**सेवन—सख्ये दुइ हय।**
**दास्येर 'सम्भ्रम-गौरवं-सेवा,**
**सख्ये 'विश्वास'-मय॥२२२॥**
**कान्धे चड़े, कान्धे चड़ाय, करे क्रीड़ा-रण।**
**कृष्णे सेवे, कृष्णे कराय आपन-सेवन!!२२३॥**
**विश्रम्भ-प्रधान सख्य—गौरव-सम्भ्रम-हीन!**
**अतएव सख्य-रसेर 'तिन' गुण—चिह्न॥२२४॥**
**'ममता' अधिक, कृष्णे आत्मसम ज्ञान।**
**अतएव सख्यरसेर वश भगवान्॥२२५॥**

**२२२-२२५। प० अनु०—**सख्यरस के भक्तों में शान्तरस के भक्त के गुण तथा दास्यरस के भक्त का सेवन गुण तो होता ही है, किन्तु दास्य-रस के भक्तों द्वारा की गयी सम्भ्रम गौरवमयी सेवा सख्यरस के भक्तों में विश्वासमय हो जाती है। सखा कृष्ण के कन्धे पर चढ़ जाते हैं, कृष्ण को अपने कन्धे पर चढ़ा देते हैं, तथा खेल में युद्ध करते हैं, कृष्ण की सेवा करते हैं तथा कृष्ण से अपनी सेवा कराते हैं!! विश्रम्भ-प्रधान सख्य—गौरव-सम्भ्रम से रहित होता है। अतएव सख्य रस के भक्तों में तीन गुण—कृष्णा-निष्ठा, सेवा तथा गौरव-सम्भ्रम हीनता होती है। सख्य रस के भक्तों में श्रीकृष्ण के प्रति दास्य रस के भक्तों से अधिक ममता होती है तथा वे कृष्ण को अपने समान ही मानते हैं, इसी कारण भगवान् सख्यरस के भक्तों के वशीभूत रहते हैं।

वात्सल्य-रस में—दास्य को अपने में समाया
सख्यरस + कृष्ण को अपना पाल्य समझना—

**वात्सल्ये शान्तेर गुण, दास्येर सेवन।**

**सेइ सेइ सेवनेर इँहा नाम—'पालन'॥२२६॥**
**सख्येर गुण—'असङ्कोच', 'अगौरव'-सार।**
**ममताधिक्ये ताड़न-भर्त्सन-व्यवहार॥२२७॥**
**आपनारे 'पालक' ज्ञान, कृष्णे 'पाल्य'-ज्ञान।**
**'चारि' गुणे वात्सल्य रस—अमृत-समान॥२२८॥**
**से अमृतानन्दे भक्त सह डुबेन आपने।**
**'कृष्ण—भक्तवश' गुण कहे ऐश्वर्य-ज्ञानिगणे॥२२९॥**

**२२६-२२९। प॰ अनु॰**—वात्सल्य रस के भक्तों में शान्तरस के भक्तों का गुण कृष्ण-निष्ठा, दास्य रस के भक्तों का गुण सेवन विद्यमान रहता है। किन्तु दास्य रस के भक्तों द्वारा की गयी सेवाओं का नाम वात्सल्य-रस में 'पालन' हो जाता है। सख्य रस के भक्तों का मुख्य गुण 'असंकोच तथा अगौरव वात्सल्य रस के भक्तों में भी रहता है, किन्तु वात्सल्य रस के भक्तों में श्रीकृष्ण के प्रति ममता के अधिक होने के कारण उनमें श्रीकृष्ण का ताड़न (डाँट-डपट) तथा उनकी भर्त्सना करना आदि भी देखा जाता है। वात्सल्य रस के भक्तों में स्वयं में तो कृष्ण के पालक का ज्ञान तथा कृष्ण के प्रति पाल्य (पालनीय) का ज्ञान रहता है। इस प्रकार शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य—इन चारों रसों के गुणों से युक्त वात्सल्य रस अमृत के समान है। उस अमृत रूपी आनन्द में श्रीकृष्ण भक्तों के साथ स्वयं भी डूब जाते हैं, इसी कारण ऐश्वर्य ज्ञान से युक्त ज्ञानी कहते हैं कि कृष्ण का गुण है कि वे भक्तों के वशीभूत रहते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१९-२२८। कृष्ण में एकनिष्ठा, और (उसके कारण) अन्य वस्तुओं में तृष्णा त्याग—यह दो शान्त रस के गुण हैं। जैसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सभी भूतों में आकाश का 'शब्द मात्र' गुण व्याप्त है, उसी प्रकार शान्तरस के गुण दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रस में है। शान्तरस में इन दो गुणों के रहने पर भी ममता ('मेरे ही हैं वे' ऐसा धर्म) नहीं है, अतएव उस रस की उपास्य वस्तु—'परब्रह्म', 'परमात्मा' इत्यादि हैं; यह उपासना-क्रिया—ज्ञान-प्रधान है। 'वे परमात्मा ही मेरे प्रभु एवं मैं ही उनका नित्यदास हूँ'—ऐसा ममता-ज्ञान जब उसमें संयुक्त होता है, तब शान्तरस विकसित होकर दास्यरस में परिणत होता है; तथापि उनमें 'ईश्वरज्ञान' और सम्भ्रमरूप 'गौरव' प्रचुर मात्रा में होता है। शान्तरस में—'सेवा' नही होती, दास्य रस में ही सेवा आरम्भ होती है। दास्य रस में—शान्त का गुण और 'ममता'-यह दो गुण देखे जाते हैं। पुनः, सख्यरस में—शान्त के गुण और दास्य के गुण तो होते ही हैं, उनमें विश्वासमय प्रेम भी थोड़ा संयुक्त होता है। विश्वास का नाम ही 'विश्रम्भ' है, उस विश्रम्भ-प्रधान सख्यरस में गौरव-सम्भ्रम नहीं होता, अतएव सख्यरस में 'तीन' गुण होते हैं। दास्य में जो 'ममता' थी, सख्य में 'आत्मसम' होकर वही वर्द्धित हुई। वात्सल्य में शान्त का गुण, दास्य का सेवन 'पालन' रूप में परिणत; विशेषतः सख्य का असङ्कोच और अगौरव गुण भी ममता की अधिकता के कारण ताड़न-भर्त्सन (डाँट-डपट) व्यवहार एवं स्वयं को 'पालक'-समझना और कृष्ण को 'पाल्य' मानना—ऐसे चारों रसों के गुणों से 'वात्सल्य' अमृत के समान बन गया है।

**अनुभाष्य**

२२८। ऐश्वर्यप्रधान ज्ञानीगण निजभक्त वश्यता को कृष्ण का गुण कहा करते हैं।

पद्मपुराण के 'दामोदराष्टक' में—
**इतीदृकस्वलीलाभिरानन्दकुण्डे**
**स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम्।**
**तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं**
**पुनः प्रेमतस्तं शतावृति वन्दे॥२३०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२३०। हे भगवान्, मैं आपकी सैकड़ों-सैकड़ों बार प्रेमपूर्वक वन्दना करता हूँ ; क्योंकि, इस प्रकार अपनी लीला के द्वारा आप गोपियों को आनन्दकुण्ड में निमज्जित कराते हैं एवं ऐश्वर्य-ज्ञान सम्पन्न भक्तों के निकट आप जो भक्त-पराजित हैं, उसे बतलाते हैं।

**अनुभाष्य**

२३०। इति (अनया दामोदरलीलया) ईदृकृस्व-लीलाभिः (ईदृशीभिः दामोदरलीलासदृशीभिः स्वाभिः लीलाभिः क्रीडाभिः) स्वघोषं (स्वस्य प्रेमवतः गोपादीन् सर्वमेव) आनन्दकुण्डे निमज्जन्तं (परम सुख विशेष मनु भवन्त) तदीयेशितज्ञेषु (भगवदेश्वर्य-परेषु भक्तेषु) भक्तैर्जितत्वम् (आत्मनो भक्तवश्य-ताम्) आख्यापयन्तं (प्रथयन्तम्) त्वाम् (ईश्वर) प्रेमत्तः (भक्ति विशेषेण) शतावृत्ति (यथा स्यात् तथा शतबारान्) अहं वन्दे।

मधुर रस में—दास्य और संख्य को अपने में समाया वात्सल्य +अपने अङ्गों द्वारा सेवा—

**मधुर-रसे—कृष्णनिष्ठा, सेवा अतिशय।**
**सख्येर असङ्कोच, लालन-ममताधिक्य हय॥२३१॥**
**कान्तभावे निजाङ्ग दिया करेन सेवन।**
**अतएव मधुर-रसेर हय 'पञ्च' गुण॥२३२॥**

**२३१-२३२। प० अनु०—**मधुर रस के भक्तों में शान्तरस के भक्तों का गुण कृष्ण निष्ठा, दास्य रस के भक्तों का गुण सेवा की प्रधानता, सख्य रस के भक्तों का गुण असंकोच तथा वात्सल्य रस के भक्तों का गुण ममता की अधिकता के कारण लालन—ये सब गुण तो होते ही हैं इसके आलावा कान्त भाव में भक्त अपने अङ्गों के द्वारा भी श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं, अतएव मधुरस के भक्तों में पाँच गुण होते हैं।

आकाश आदि के शब्द आदि जैसे पृथ्वी के गन्ध के गुण में पर्यवसित हो जाता है, उसी प्रकार मधुर रस में अन्य चार रस अनुस्यूत (मिश्रित)—

**आकाशादि गुण जेन पर पर भूते।**
**एक-दुइ-तिन-चारि-क्रमे पञ्च पृथिवीते॥२३३॥**
**एइमत मधुरे सब भाव-समाहार।**
**अतएव आस्वादाधिक्ये करे चमत्कार॥२३४॥**

**२३३-२३४। प० अनु०—**आकाश आदि पञ्च-भूतों के गुण जिस प्रकार एक के बाद एक वाले भूत में एक-दो-तीन-चार के क्रम से बढ़ते हुए पृथ्वी में समस्त भूतों के पाँचों गुण विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार मधुर रस के भक्तों में समस्त प्रकार के रसों के भक्तों के भाव (गुण) विद्यमान रहते हैं। इसी कारण मधुर रस अपने आस्वादन की अधिकता से भक्तों को चमत्कृत कर देता है।

**अनुभाष्य**

**२३३।** मध्य अष्टम परिच्छेद ८७ संख्या द्रष्टव्य।

*उनविंश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

प्रभु का यह दिगदर्शन (संक्षेप में वर्णन) भक्तिरसामृतसिन्धु में विस्तृत रूप से वर्णित—

**एइ भक्तिरसेर करिलाङ्, दिग्‌दरशन।**
**इहार विस्तार मने करिह भावन॥२३५॥**
**भाविते भाविते कृष्ण स्फुरये अन्तरे।**
**कृष्ण कृपाय अज्ञ पाय रससिन्धु-पारे॥''२३६॥**

**२३५-२३६। प० अनु०—**हे रूप! इस प्रकार मैंने तुम्हें भक्ति रस का दिग्दर्शन कराया है। इसे विस्मृत रूप से जानने हेतु तुम अपने मन-ही-मन इसकी भावना करना अर्थात् इस पर मनन करना। मनन करते-करते कृष्ण इसे तुम्हारे हृदय में स्फुरित करा देंगे। कृष्ण की कृपा से अज्ञ व्यक्ति भी रस सिन्धु के आर-पार को जान लेता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२३५-२३६। शान्त की 'कृष्णानिष्ठा', दास्य की 'अतिशय 'सेवा', सख्य की 'असङ्कोच सेवा' और वात्सल्य की 'ममताधिक्य लालन'-इन सब भावों में पुनः कान्ता-भाव-गत 'निजाङ्ग-दानरूप-सेवा' दृढ़रूप से संयुक्त होने पर पाँच गुणों से युक्त 'मधुर-रस' होता है। उसमें सभी भावों का ही समाहार (मिलन) है। अतएव आस्वादधिक्य के कारण अत्यन्त चमत्कारिता लक्षित होती है। संक्षेप में कहे गये इस भक्तिरस का सूत्र ही विचारपूर्वक भक्ति रसामृत सिन्धु के रूप में शास्त्र को उदित करायेगा।

*उनविंश अध्याय का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

प्रयाग से प्रभु की काशी यात्रा—

**एत बलि' प्रभु ताँरै कैला आलिङ्गन।**
**वाराणसी चलिबारे प्रभुर हैल मन॥२३७॥**
**प्रभाते उठिया जबे करिला गमन।**
**तबे ताँर पदे रूप करे निवेदन॥२३८॥**

**२३७-२३८। प० अनु०—**इतना कहकर श्री मन्महाप्रभु ने श्रीरूप का आलिङ्गन किया। श्री मन्महाप्रभु का मन अब वाराणसी जाने के लिये प्रस्तुत हो गया। अगले दिन प्रातःकाल उठकर जब श्रीमन्महाप्रभु जाने लगे, तब श्रीरूप गोस्वामी ने उनके चरणों में निवेदन किया—।

प्रभु का अनुगमन करने हेतु श्रीरूप
द्वारा आज्ञा की याचना—

**''आज्ञा-हय, आसि मुञि श्रीचरण-सङ्गे।**
**सहिते ना पारि मुञि विरह-तरङ्गे॥२३९॥**

**२३९। प० अनु०—**यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं भी आपके श्रीचरणों का अनुगमन करूँ, मैं आपसे होने वाले विरह की तरङ्ग को सहन नहीं कर पाता हूँ।

श्रीरूप को वृन्दावन जाने एवं बाद में वहाँ से पुरी में आकर मिलने की आज्ञा-प्रदान—

**प्रभु कहे,—''तोमार कर्त्तव्य, आमार वचन।**
**निकटे आसियाछ तुमि, जाह वृन्दावन॥२४०॥**
**वृन्दावन हैते तुमि गौड़देश दिया।**
**आमारे मिलिबा नीलाचलेते आसिया॥''२४१॥**

**२४०-२४१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—तुम्हारा कर्त्तव्य मेरे वचन का पालन करना है। तुम वृन्दावन के निकट आ पहुँचे हो, इसलिए वृन्दावन जाओ। वृन्दावन से तुम बङ्गाल होते हुए मुझसे नीलाचल में आकर मिलना।

प्रभु का नौका पर चढ़ना, श्रीरूप की मूर्च्छा—

**ताँरै आलिङ्गिया प्रभु नौकाते चड़िला।**
**मूर्च्छित हञा तिंहो ताहाञि पड़िला॥२४२॥**

**२४२। प० अनु०—**श्रीरूप को आलिङ्गन दान करके श्रीमन्महाप्रभु नौका पर चढ़ गये। श्रीरूप मूर्च्छित होकर वहीं पर गिर पड़े।

श्रीरूप और अनुपम की
वृन्दावन-यात्रा—

**दाक्षिणात्य-विप्र ताँरै घरे लञा गेला।**
**तबे दुइ भाइ वृन्दावनेरे चलिला॥२४३॥**

**२४३। प० अनु०—**दक्षिण भारतीय ब्राह्मण श्रीरूप को अपने घर पर ले गये। बाद में वहाँ से श्रीरूप और श्रीवल्लभ—दोनों भाई वृन्दावन की ओर चल दिये।

प्रभु का काशी में आगमन—

**महाप्रभु चलि' चलि' आइला वाराणसी।**
**चन्द्रशेखर मिलिला ग्रामेर बाहिरे आसि'॥२४४॥**

**२४४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु चलते-चलते वाराणसी आ पहुँचे। श्रीचन्द्रशेखर ग्राम से बाहर आकर उनसे मिले।

वैद्य शेखर के स्वप्न के अनुसार
प्रभु का दर्शन और अपने घर
पर लाना—

**रात्र्ये तिंहो स्वप्न देखे,—प्रभु आइला घरे।**
**प्रातःकाले आसि' रहे ग्रामेर बाहिरे॥२४५॥**
**आचम्बिते प्रभु देखि' चरणे पड़िला।**
**आनन्दित हञा निज-गृहे लञा गेला॥२४६॥**

**२४५-२४६। प० अनु०—**रात्रि के समय श्री चन्द्रशेखर ने स्वप्न देखा कि श्रीमन्महाप्रभु उनके घर पर आये हैं। इसलिए वे प्रातःकाल से ही आकर ग्राम के बाहर बैठ गये। अचानक श्रीमन्महाप्रभु को देखकर श्रीचन्द्रशेखर उनके चरणकमलों में पड़ गये तथा आनन्दित होकर उन्हें अपने घर पर ले गये।

प्रभु को तपन मिश्र और बलभद्र को
चन्द्रशेखर का निमन्त्रण—

**तपनमिश्र शुनि' आसि' प्रभुरे मिलिला।**
**इष्टगोष्ठी करि' प्रभुर निमन्त्रण कैला॥२४७॥**
**निज घरे लञा प्रभुरे भिक्षा कराइला।**
**भट्टाचार्ये चन्द्रशेखर निमन्त्रण कैल॥२४८॥**

**२४७-२४८। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र भी श्री मन्महाप्रभु के आगमन के विषय में सुनकर चन्द्रशेखर के घर पर आकर श्रीमन्महाप्रभु से मिले तथा वहाँ पर इष्टगोष्ठी करने के बाद उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया। श्रीतपन मिश्र श्रीमन्महाप्रभु को अपने घर पर ले गये तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को भोजन कराया। श्रीबलभद्र भट्टाचार्य को श्रीचन्द्रशेखर ने निमन्त्रण दिया।

काशी में रहने तक प्रभु को
भिक्षा देने हेतु मिश्र द्वारा
आज्ञा की याचना—

**भिक्षा-कराञा मिश्र कहे प्रभु-पाय धरि'।**
**''एक भिक्षा मागि, मोरे देह कृपा करि'॥२४९॥**
**यावत् तोमार हय काशीपुरे स्थिति।**
**मोर घर बिना भिक्षा ना करिबा कति॥''२५०॥**

**२४९-२५०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु को भोजन कराने के बाद श्रीतपन मिश्र ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण करके कहा—हे प्रभु! मैं आपसे एक भिक्षा माँगता हूँ, कृपा करके आप मुझे वह भिक्षा प्रदान कीजिए। जब तक आप काशी में रहेंगे, मेरे घर के अलावा अन्य कहीं भी भोजन ग्रहण मत कीजियेगा।

मायावादी सन्यासियों के सङ्ग के दुःसङ्ग
होने को समझकर प्रभु के द्वारा भक्त
की प्रार्थना की सम्मति—

**प्रभु जानेन—'दिन पाँच-सात से रहिब।**
**सन्यासीर सङ्गे भिक्षा काँहा ना करिब॥'२५१॥**

**२५१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु जानते थे-'मैं काशी में पाँच-सात दिन रहूँगा तथा मायावादी सन्यासियों के साथ कहीं पर भी भिक्षा ग्रहण नहीं करूँगा।

प्रभु के द्वारा तपनमिश्र के घर
पर भिक्षा तथा चन्द्रशेखर
के घर पर रहना—

**एत जानि' ताँर भिक्षा कैला अङ्गीकार।**
**वासा-निष्ठा कैला चन्द्रशेखरेर घर॥२५२॥**

**२५२। प० अनु०—**ऐसा जानने के कारण श्रीमन्महाप्रभु ने तपन मिश्र की भिक्षा के निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया, किन्तु रहने के लिये उन्होंने चन्द्रशेखर के घर के प्रति ही अपनी निष्ठा प्रदर्शित की।

महाराष्ट्रीय ब्राह्मण को प्रभु की कृपा की प्राप्ति—

**महाराष्ट्रीय विप्र आसि' ताँहारे मिलिला।**
**प्रभु ताँरे स्नेह करि' कृपा प्रकाशिला॥२५३॥**

**महाप्रभु आइला शुनि' शिष्ट शिष्ट जन।**
**ब्राह्मण, क्षत्रिय आसि' करेन दरशन॥२५४॥**

**२५३-२५४। प॰ अनु॰—**महाराष्ट्रीय ब्राह्मण भी आकर श्रीमन्महाप्रभु से मिले। श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें बहुत स्नेह करके कृपा प्रकाशित की। श्रीमन्महाप्रभु आये हैं, ऐसा सुनकर सज्जन व्यक्ति, ब्राह्मण तथा क्षत्रियों ने आकर उनका दर्शन किया।

श्रीरूप-शिक्षा का
संक्षेप में वर्णन—

**श्रीरूप-उपरे प्रभुर जत कृपा हैल।**
**अत्यन्त विस्तार-कथा संक्षेपे कहिल॥२५५॥**

**२५५। प॰ अनु॰—**श्रीरूप गोस्वामी पर श्रीमन्महाप्रभु ने जितनी कृपा की, अत्यन्त विस्तृत कथा को मैंने संक्षेप में वर्णन किया है।

श्रीरूप-शिक्षा के श्रवण से चैतन्य चरणों में
प्रेमभक्ति की प्राप्ति—

**श्रद्धा करि' एइ कथा शुने जेइ जने।**
**प्रेमभक्ति पाय सेइ चैतन्य-चरणे॥२५६॥**

**२५६। प॰ अनु॰—**श्रद्धापूर्वक जो व्यक्ति इस कथा का श्रवण करता है, उसे श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों में प्रेमभक्ति की प्राप्ति होती है।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥२५७॥**

*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्यखण्ड में श्रीरूपानुग्रह नामक उनविंश-परिच्छेद समाप्त।*

२५७। **प॰ अनु॰—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य-चरितामृत का गान कर रहा है।

✵✵✵

# विंश परिच्छेद

**कथासार**—सनातन गोस्वामी गौड राजा के कारागार में है, ऐसे समय रूपगोस्वामी ने लिखा,—'महाप्रभु मथुरा गये है।' कारागार के रक्षक को मीठे वचन एवं सात हजार मुद्रा देकर सनातन ने गङ्गा पार करके पलायन किया। साथी ईशान के पास आठ स्वर्णमुद्राएँ होने के कारण पातड़ा-पर्वत के भौमिक (छोटा जमींदार) ने उस मुद्रा को मारकर लेने की आशा से सनातन का आतिथ्य-विधान किया। सनातन ईशान से जिज्ञासा करके जान गये कि उनके पास स्वर्णमुद्राएँ हैं। उन मुद्राओं को अनर्थरूप जानकर छोटे जमीनदार को प्रदान करके उन्होंने पर्वतमय देश को पार किया। पर्वत पार करके ईशान को देश जाने के लिये विदायी दी। हॉजिपुर पहुँचने पर उनके भग्नीपति (बहनोई) राजकर्मचारी श्रीकान्त ने उन्हें देखकर एवं उनसे समस्त वृतान्त सुनकर उन्हें गङ्गा पार करा दी। वे चलते-चलते काशीधाम में आकर चन्द्रशेखर के द्वार पर पहुँचे ; महाप्रभु ने उन्हें बुलवाया तथा उन्हें कृपापूर्वक वेश परिवर्तन और भद्र करने की आज्ञा दी। सनातन जब भद्र होकर आये, तब तपनमिश्र के द्वारा दिये गये पुराने वस्त्र को कौपीन और बहिर्वास बनाकर पहन लिया। साथ लाये मूल्यवान कम्बल को बदलकर गङ्गातट से एक फटा-पुराना काँथा धारण करके प्रभु को आनन्दित किया। सनातन ने वहाँ रहकर जब महाप्रभु से तत्त्व की जिज्ञासा की, तब महाप्रभु ने पहले 'जीव के स्वरूप' और 'कृष्णशक्ति' के विषय में समझाया, बाद में सम्बन्ध ज्ञान सिखलाकर अभिधेय-रूपा भक्ति की व्याख्या की। कृष्ण के स्वरूप-विचार में ब्रह्म, परमात्मा और भगवान का विचार, स्वयंरूप और तदेकात्म और आवेश, उनमें 'वैभव' और 'प्राभव'-विलास आदि के क्रम से भगवान् की सभी मूर्तियों के भेद का विचार कर बतलाया; उसके बाद पुरुषावतार के माया-वैभव, मन्वन्तरा-वतार, गुणावतार, शक्त्यावेशावतार और बाल्य-पौगण्ड-वयस के भेद से सभी लीलाओं एवं किशोर लीला की नित्यता की व्याख्या की।

(अः प्रः भाः)

**वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं श्री चैतन्यमहाप्रभुम्।**
**नीचोऽपि यत्प्रसादात् स्याद्भक्तिशास्त्रप्रवर्त्तकः॥१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१। जिनकी कृपा से नीच व्यक्ति भी भक्तिशास्त्र का प्रवर्त्तक हो सकता है, उन अनन्त-अद्भुत-ऐश्वर्य से युक्त श्रीचैतन्यमहाप्रभु की मैं वन्दना करता हूँ।

**अनुभाष्य**

१। यत्प्रसादात् (यस्य कृपया) नीचः (विषयी) अपि भक्ति-शास्त्र प्रवर्त्तकः (भक्ति शास्त्र लेखकः) स्यात्, तम् अनन्ताद्भुतैश्वर्यम् (अशेषापूर्वैश्वर्यपूर्ण) श्रीचैतन्यमहाप्रभुम् अहं वन्दे।

**जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्तवृन्द॥२॥**

**२। प० अनु०**—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो, श्री गौरभक्तवृन्द की जय हो।

कारागार में बन्द सनातन को श्रीरूप के द्वारा लिखित पत्र की प्राप्ति—

**एथा गौड़े सनातन आछे बन्दिशाले।**
**श्रीरूप-गोसाञिर पत्री आइल हेनकाले॥३॥**

**३। प॰ अनु॰—**दूसरी ओर, श्री सनातन गौड़देश में कारागार में बन्द हैं। उसी अवस्था में उनके पास श्रीरूप गोस्वामी द्वारा लिखा हुआ एक पत्र आया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३। पत्री—उद्‌भटचन्द्रिका ग्रन्थ के टीकाकार ने लिखा है कि निम्नलिखित श्लोक श्रीरूप ने बाक्‌ला से लिखकर गौड़ के कारागार में श्रीसनातन के पास भेजा था। इस श्लोक में महाप्रभु के मथुरा जाने का सङ्केत होने के कारण इसे रूप गोस्वामी की पत्री कहकर विश्वास किया जा सकता है;—''यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी, रघुपतेः क्व गतोत्तरकोशला। इति विचिन्त्य कुरुस्व मनः स्थिरं, न सदिदं जगदित्यवधावय॥'' यदुपति मथुरापुरी में कहाँ गये हैं, रघुपति की ही उत्तरकोशला (अयोध्या) कहाँ गयी है—इसकी विशेषरूप से चिन्ता करके मन स्थिर कीजिए एवं यह दृश्यमान् जगत् नित्य नहीं है,—इससे अवगत होईये।

सनातन का आनन्द और कारागार के रक्षक की चापलूसी—

**पत्री पाञा सनातन आनन्दित हैला।**
**यवन-रक्षक-पाश कहिते लागिला॥४॥**

**४। प॰ अनु॰—**पत्र को प्राप्त करके श्री सनातन बहुत आनन्दित हुए तथा वे यवनरक्षक (कारागार में प्रहरी का कार्य करने वाले व्यक्ति) से कहने लगे—।

**''तुमि एक जिन्दापीर महाभाग्यवान्।**
**केताब-कोराण-शास्त्रे आछे तोमार ज्ञान॥५॥**

**५। प॰ अनु॰—**आप एक अत्यधिक सौभाग्यशाली जिन्दापीर हैं। आपको कुराण तथा अन्यान्य शास्त्रों का ज्ञान है।

**अनुभाष्य**

५। जिन्दापीर—जीवित पीर।

**एक बन्दी छाड़े यदि निज-धर्म देखिया।**
**संसार हइते तारे मुक्त करेन गोसाञा॥६॥**

**६। प॰ अनु॰—**यदि कोई अपने धर्म के कारण किसी एक बन्दी को छोड़ देता है तब फिर गोसाई उसे संसार से मुक्त कर देते हैं।

**अनुभाष्य**

६। 'गोसाञा'—खुदा, भगवान्।

प्रत्युपकार (किये गये उपकार के बदले में उपकार) की प्रार्थना—

**पूर्वे आमि तोमार कैराछि उपकार।**
**तुमि आमा छाड़ि' कर प्रत्युपकार॥७॥**

**७। प॰ अनु॰—**मैंने पूर्वकाल में तुम्हारा उपकार किया है, तुम मुझे कारागार से छोड़कर उसका प्रत्युपकार करो।

शुद्ध हरिभजन के उद्देश्य से लौकिक सुनीति के द्वारा घृणित माने जाने वाली चेष्टा को भी सनातन के द्वारा अनुकूल रूप में नियुक्त करना,—यही सत्य-धर्म—

**पाँच सहस्र मुद्रा, तुमि कर अङ्गीकार।**
**पुण्य, अर्थ,—दुइ लाभ हइबे तोमार॥८॥**

**८। प॰ अनु॰—**मैं आपको पाँच हजार स्वर्ण मुद्राएँ दूँगा, आप उसे स्वीकार करो। मुझे छोड़ने से आपको पुण्य तथा अर्थ—इन दोनों की प्राप्ति होगी।

कारागार के रक्षक को राजा का भय—

**तबे सेइ यवन कहे,—''शुन, महाशय।**
**तोमारे छाड़िब, किन्तु करि राजभय॥''९॥**

**९। प॰ अनु॰—**तब उस यवन ने कहा—'सुनो, महाशय! मैं आपको छोड़ना तो चाहता हूँ, किन्तु मुझे राजा का भय है।

सनातन के द्वारा परामर्श प्रदान—

**सनातन कहे,—"तुमि ना कर राज-भय।**
**दक्षिण गियाछे, यदि लेउटि' आओयय॥१०॥**
**ताँहारे कहिओ—सेइ बाह्यकृत्ये गेल।**
**गङ्गार निकट गङ्गा देखि झाँप दिल॥११॥**

**१०-११। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन ने कहा—आप राजा का भय मत कीजिए। पहली बात तो वे दक्षिण में युद्ध करने के लिये गये है, दूसरा यदि लौट भी आते है तो उनसे कहना—'सनातन गङ्गा के निकट बाह्यकृत्य (मलत्याग) करने के लिये गये थे, गङ्गा को देखकर उन्होंने उसी में छलांग लगा दी।

**अनुभाष्य**

१०। **लेउटि' आउयय—**लौट आये पर। 'लौट आये'—पश्चिम भारत की हिन्दी भाषा।

**अनेक देखिल, तार लाग ना पाइल।**
**दाडुका-सहित डुबि काँहा बहि' गेल॥१२॥**

**१२। प॰ अनु॰—**'हमने उन्हें बहुत देखा, किन्तु उनका कहीं पर भी पता न चला। वे हथकड़ी के साथ ही डूबकर न जाने कहाँ बह गये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२। **दाडुका—**बेड़ी।

**किछु भय नाहि, आमि ए-देशे ना रब।**
**दरवेश हञा आमि मक्काके जाइब॥"१३॥**

**१३। प॰ अनु॰—**आपको भय करने की कोई आवश्यकता नहीं है, मैं इस गौड़ देश में नहीं रहूँगा, मैं दरवेश (फकीर) बनकर मक्का चला जाऊँगा।'

कारागार के रक्षक का असन्तुष्ट रहना; उसे अधिक रिश्वत-देने की चेष्टा—

**तथापि यवन-मन प्रसन्न ना देखिला।**
**सात-हाजार मुद्रा तार आगे राशि कैला॥१४॥**

**१४। प॰ अनु॰—**तब भी उस यवन रक्षक के मन को प्रसन्न नहीं देखकर श्री सनातन ने सात हजार मुद्राएँ उसके आगे रख दी।

सनातन की कारागार से मुक्ति—

**लोभ हइल यवनेर मुद्रा देखिया।**
**रात्र्ये गङ्गापार कैल दाडुका काटिया॥१५॥**

**१५। प॰ अनु॰—**मुद्राओं को देखकर उस यवन रक्षक में लोभ जाग उठा। उन्होंने रात्रि के समय श्रीसनातन गोस्वामी की बेड़ी को काटकर उन्हें गङ्गा पार करा दी।

ईशान के साथ सनातन का पातड़ा-पर्वत पर आगमन—

**गड़द्वार-पथ छाड़िला, नारे ताँहा जाइते।**
**रात्रि-दिन चलि' आइला पातड़ा-पर्वते॥१६॥**

**१६। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी ने राजपथ को छोड़ दिया, वहाँ से नहीं जा सकते थे। वे रात-दिन चलते-चलते पातड़ा-पर्वत पर आ पहुँचे।

डकैतों के सरदार के साथ भेट—

**तथा एक भौमिक हय, तार ठाञि गेला।**
**'पर्वत पार कर आमाय'—विनति करिला॥१७॥**

**१७। प॰ अनु॰—**वहाँ पर एक भौम्य-अधिकारी रहता था, श्रीसनातन गोस्वामी उसके पास गये। श्रीसनातन गोस्वामी ने उन्हें विनती करते हुए कहा—'आप हमें पर्वत पार करा दीजिए'।

ज्योतिषी के मुख से भौम्य-अधिकारी द्वारा सनातन के पास धन होने के संवाद की प्राप्ति और सनातन की हत्या का सङ्कल्प—

**सेइ भूञार सङ्गे हय हातगणिता।**

**भूञार काणे कहे सेइ जानि' एइ कथा॥१८॥**
**"इँहार ठाञि सुवर्णेर अष्ट मोहर हय।"**
**शुनि' आनन्दित भूञा सनातने कय॥१९॥**

**१८-१९। प० अनु०—**भौम्य-अधिकारी के साथ में एक ज्योतिषी था। श्रीसनातन गोस्वामी के साथी ईशान के पास आठ स्वर्ण मोहरों की बात को जानकर, उस ज्योतिषी ने भौम्य-अधिकारी के कान में यह बात कहीं। इनके पास सोने की आठ मोहरें हैं। ज्योतिषी की बात सुनकर भौम्य-अधिकारी ने आनन्दित होकर श्रीसनातन गोस्वामी से कहा—।

सनातन का डाकु द्वारा आदर-सम्मान;
सनातन का स्नान और भोजन—

**"रात्र्ये पर्वत पार करिब निज-लोक दिया।**
**भोजन करह तुमि रन्धन करिया॥"२०॥**
**एत बलि' अन्न दिल करिया सम्मान।**
**सनातन आसि' तबे कैल नदी स्नान॥२१॥**
**दुइ उपवासे कैला रन्धन-भोजने।**
**राजमन्त्री सनातन विचारिला मने॥२२॥**

**२०-२२। प० अनु०—**मैं रात्रि के समय अपने लोगों को आपके साथ भेजकर आपको पर्वत पार करा दूँगा। अभी आप रन्धन करके भोजन ग्रहण कीजिए। इतना कहकर भौम्य-अधिकारी ने उन्हें अत्यधिक सम्मान पूर्वक चावल, दाल आदि रन्धन करने के लिये दिया। तब श्रीसनातन गोस्वामी ने आकर पहले नदी में स्नान किया। बाद में दो दिन के उपवास के बाद उन्होंने रन्धन करके भोजन ग्रहण किया। राजमन्त्री के पद पर नियुक्त रहने वाले श्री सनातन ने अपने मन में विचार किया—।

**अनुभाष्य**

२२। दुइ उपवासे (दो उपवास)—दो दिन उपवास करके।

सनातन को सन्देह और आशङ्का, ईशान से धन के विषय में जानना—

**'ऐइ भूञा केने मोरे सम्मान करिल?'**
**एत चिन्ति' सनातन ईशाने पुछिल॥२३॥**
**"तोमार ठाञि जानि किछु द्रव्य आछय।"**
**ईशान कहे,—"मोर ठाञि सात मोहर हय॥"२४॥**

**२३-२४। प० अनु०—**इस भौम्य-अधिकारी ने मेरा सम्मान क्यों किया? इतना सोचकर श्रीसनातन गोस्वामी ने ईशान से पूछा—'मुझे लगता है कि तुम्हारे पास कुछ द्रव्य है।' ईशान ने कहा—'मेरे पास स्वर्ण की सात मोहरें हैं।'

**अनुभाष्य**

२४। हय—हैं; पश्चिम भारत की हिन्दी-भाषा में 'हैं' कहते है।

ईशान की भर्त्सना (निन्दा)—

**शुनि' सनातन तारे करिल भर्त्सन।**
**'सङ्गे केने आनियाछ एइ काल-यम??"२५॥**

**२५। प० अनु०—**ईशान की बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी ने उसे डाँट लगायी। उन्होंने ईशान से कहा—'साथ में इस काल-यम को क्यों लाये हो?'

लुटेरे को धन-प्रदान और सहायता की प्रार्थना—

**तबे सेइ सात मोहर हस्तेते करिया।**
**भूञार काछे याञा कहे मोहर धरिया॥२६॥**
**"एइ सात सुवर्ण मोहर आछिल आमार।**
**इहा लञा धर्म देखि' पर्वत कर पार॥२७॥**
**राजबन्दी आमि, गड़द्वार जाइते ना पारि।**
**पुण्य हबे, पर्वत आमा देह' पार करि॥"२८॥**

**२६-२८। प० अनु०—**तब उन सात मोहरों को अपने हाथ में लेकर श्रीसनातन गोस्वामी ने भौम्य-अधिकारी के पास जाकर उसे मोहरें दिखाकर कहा—मेरे पास ये सात स्वर्ण की मोहरें है, इसे

लेकर तथा धर्म समझकर आप हमें पर्वत पार करा दीजिए। मैं राजबन्दी हूँ। राजमार्ग से नहीं जा सकता। आप हमें पर्वत पार करा दीजिए, आपको बहुत पुण्य मिलेगा।

लुटेरे के द्वारा हत्या के सङ्कल्प से छुटकारा; धन लेने से मना करना और सहायता करना स्वीकार—

**भूञा हासि' कहे,-"आमि जानियाछि पहिले।**
**अष्ट-मोहर हय तोमार सेवक-आँचले॥२९॥**

**२९। प० अनु०—**भौम्य-अधिकारी ने हँसते हुए कहा—'मुझे पहले से ही पता चल गया था कि आपके सेवक के आँचल में आठ स्वर्ण मोहरें हैं।

**तोमा मारि' मोहर लइताम आजिकार रात्र्ये।**
**भाल हैल, कहिला तुमि, छुटिलाम पाप हैते॥३०॥**

**३०। प० अनु०—**'आप लोगों को मारकर आज रात्रि में मैं मोहरें ले लेता, अच्छा हुआ आपने स्वयं आकर ही बतला दिया, मैं पाप करने से बच गया।

**सन्तुष्ट हइलाम आमि, मोहर ना लइब।**
**पुण्य लागि' पर्वत तोमा' पार करि' दिब॥"३१॥**

**३१। प० अनु०—**'मैं आपके व्यवहार से बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ, इसलिए मैं मोहरें नहीं लूँगा तथा पुण्य हेतु आप लोगों को पर्वत पार करा दूँगा।'

**गोसाञि कहे,—"केह द्रव्य लइबे आमा मारि'।**
**आमार प्राण रक्षा कर द्रव्य अङ्गीकरि'॥"३२॥**

**३२। प० अनु०—**श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा—'अन्य कोई हमें मारकर इन मोहरों को लेगा, इसलिए आप ही इन मोहरों को स्वीकार करके हमारे प्राणों की रक्षा करो'।

लुटेरे के द्वारा सनातन को पर्वत को पार करने में सहायता—

**तबे भूञा गोसाञिर सङ्गे चारि पाइक दिल।**
**रात्र्ये रात्र्ये वनपथे पर्वत पार कैल॥३३॥**

**३३। प० अनु०—**तब उस भौम्य-अधिकारी ने श्रीसनातन गोस्वामी के साथ चार सेवक भेजे। रात-रात में वन के मार्ग से उन्होंने पर्वत पार किया।

सनातन के द्वारा ईशान से बचे हुए धन का पूछना और देश-में भेजना—

**पार हञा गोसाञि तबे पुछिला ईशाने।**
**"जानि,—शेष द्रव्य किछु आछे तोमा-स्थाने॥"३४॥**
**ईशान कहे,—"एक मोहर आछे अवशेष।"**
**गोसाञि कहे,—"मोहर लञा जाह' तुमि देश॥"३५॥**

**३४-३५। प० अनु०—**पर्वत को पार करके श्रीसनातन गोस्वामी ने ईशान से पूछा। मैं जानता हूँ अभी और भी कुछ द्रव्य तुम्हारे पास बचा हुआ है। ईशान ने कहा—'मेरे पास अब केवल एक मोहर है।' श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा—'तुम मोहर को लेकर अपने स्थान लौट जाओ।'

अकिञ्चन, बिना किसी सहारे के सनातन का अकेले ही जाना—

**तारे विदाय दिया गोसाञि चलिला एकला।**
**हाते करोंया, छिंड़ा कान्था, निर्भय हइला॥३६॥**

**३६। प० अनु०—**ईशान को विदायी देकर श्रीसनातन गोस्वामी अकेले चल दिये। अब उनके हाथ में जल का पात्र करोंया तथा कन्धे पर पुराने वस्त्रों का बना कान्था (कम्बल) था। श्री सनातन गोस्वामी अब निर्भय हो गये।

हाजिपुर में आगमन—

**चलि' चलि' गोसाञि तबे आइला हाजिपुरे।**
**सन्ध्याकाले बसिला एक उद्यान-भितरे॥३७॥**

**३७। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी चलते-चलते हाजिपुर आ पहुँचे। वे सन्ध्या के समय वे एक उद्यान के अन्दर जाकर बैंठे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३७। हाजिपुर—गङ्गा नदी और गण्डक-नद के सङ्गम स्थल पर पटना के दूसरी ओर हाजिपुर है।

वहाँ बहनोई राजसेवक श्रीकान्त के साथ भेंट—

**सेइ हाजिपुरे रहे,—श्री कान्त तार नाम।**
**गोसाञिर भगिनीपति, करे राजकाम॥३८॥**
**तिन लक्ष मुद्रा राजा दियाछे तार स्थाने।**
**घोड़ा मूल्य लञा पाठाय पात्सार स्थाने॥३९॥**

**३८-३९। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी के बहनोई जिनका नाम श्रीकान्त था। वे हाजिपुर में रहते थे तथा राजकार्य करते थे। राजा ने उनके पास तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ भेजी थी। वे घोड़ो को खरीदकर बादशाह के पास भेजते थे।

सनातन के साथ वार्त्तालाप—

**टुङ्गिर उपर बसि' सेइ गोसाञिरे देखिल।**
**रात्रे एकजन-सङ्गे गोसाञि-पाश आइल॥४०॥**
**दुइजन मिलि' तथा इष्टगोष्ठी कैल।**
**बन्धन-मोक्षण-कथा गोसाञि सकलि कहिल॥४१॥**

**४०-४१। प॰ अनु॰—**श्रीकान्त ने श्रीसनातन गोस्वामी को एक चबूतरे पर बैठे देखा। वे रात्रि के समय एक व्यक्ति को अपने साथ लाकर श्रीसनातन गोस्वामी के पास आये। श्रीकान्त तथा श्रीसनातन गोस्वामी ने मिलकर वहीं पर ही इष्टगोष्ठी की। श्री सनातन गोस्वामी ने अपने कारागार से छूटने की सारी बात उन्हें बतायी।

सनातन को रहने के लिये श्रीकान्त का अनुरोध—

**तिंहो कहे,—''दिन-दुइ रह एइस्थाने।**
**भद्र हओ, 'छाड़' एइ मलिन वसने॥''४२॥**

**४२। प॰ अनु॰—**श्रीकान्त ने कहा—'आप दो दिन यहाँ पर रहिये। इन मैले वस्त्रों को त्यागकर भद्र बनो।'

सनातन की असम्मति और गङ्गा पार कराने का अनुरोध—

**गोसाञि कहे,—''एकक्षण इहा ना रहिब।**
**गङ्गा पार करि' देह', एक्षणे चलिब॥''४३॥**

**४३। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा—'मैं एक क्षण भी यहाँ पर नहीं रहूँगा। आप मुझे गङ्गा पार करा दीजिए, मैं अभी चला जाऊँगा।'

सनातन को महंगा कम्बल-प्रदान और गङ्गा पार करवाना—

**यत्न करि' तिंहो एक भोटकम्बल दिल।**
**गङ्गा पार करि' दिल—गोसाञि चलिल॥४४॥**

**४४। प॰ अनु॰—**बहुत जोर करके श्रीकान्त ने श्रीसनातन गोस्वामी को एक बहुत महँगा कम्बल दिया। उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामी को गङ्गा पार करा दी। श्रीसनातन गोस्वामी आगे बढ़ चले।

सनातन का काशी में आगमन—

**तबे वाराणसी गोसाञि आइला कतदिने।**
**शुनि' आनन्दित हइला प्रभुर आगमने॥४५॥**

**४५। प॰ अनु॰—**कुछ दिन चलते-चलते श्रीसनातन गोस्वामी वाराणसी आ पहुँचे। जब उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के वाराणसी में आने के विषय में सुना, तब उन्हें बहुत आनन्द हुआ।

चन्द्रशेखर के घर पर उपस्थित—

**चन्द्रशेखर घरे आसि' द्वारेते बसिला।**
**महाप्रभु जानि' चन्द्रशेखरे कहिला॥४६॥**

**४६। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी श्री चन्द्रशेखर के द्वार पर आकर बैठ गये। श्रीसनातन

गोस्वामी के आगमन को जानकर श्रीमन्महाप्रभु ने चन्द्रशेखर से कहा—।

बाहरी वेष के प्रति निरपेक्ष वास्तविक वैष्णव सनातन को लाने के लिए शेखर को आदेश—

**''द्वारे एक 'वैष्णव' हय, बोलाह ताँहारे।''**
**चन्द्रशेखर देखे,—'वैष्णव' नाहिक द्वारे॥४७॥**

**४७। प॰ अनु॰—**'द्वार पर एक वैष्णव हैं, उन्हें बुलाकर ले आओ।' चन्द्रशेखर ने जाकर देखा कि द्वार पर तो कोई वैष्णव नहीं है।

सनातन के बाहरी वैष्णव-वेष को नहीं देखने पर लौट कर आना—

**''द्वारेते वैष्णव नाहि''—प्रभुरे कहिल।**
**'केह हय?' करि' प्रभु ताहारे पुछिल॥४८॥**

**४८। प॰ अनु॰—**श्रीचन्द्रशेखर ने आकर श्री मन्महाप्रभु से कहा—'द्वार पर कोई वैष्णव नहीं है'। श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे पूछा—'क्या कोई द्वार पर है?'

दरवेश (फकीर) का वेष धारण करने वाले सनातन को लाने के लिये प्रभु का आदेश—

**तिंहो कहे,—''एक 'दरवेश' आछे द्वारे।''**
**'ताँरे आन' प्रभुर वाक्ये कहिल आसि' ताँरे॥४९॥**

**४९। प॰ अनु॰—**श्रीचन्द्रशेखर ने कहा—'द्वार पर एक फकीर है।' श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'उन्हीं को ले आओ'। श्रीचन्द्रशेखर ने द्वार पर आकर श्रीसनातन गोस्वामी को श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कहे वचन कहे।

सनातन को चन्द्रशेखर द्वारा 'दरवेश' कहकर सम्बोधन—

**''प्रभु तोमाय बोलाय, आइस, दरवेश!''**
**शुनि' आनन्दे सनातन करिला प्रवेश॥५०॥**

**५०। प॰ अनु॰—**'हे फकीर, आओ, श्रीमन्महाप्रभु तुम्हें बुला रहे हैं!' श्रीचन्द्रशेखर की बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी ने आनन्दपूर्वक घर के अन्दर प्रवेश किया।

सनातन को देखकर द्रुतवेग से प्रभु का आगमन और आलिङ्गन—

**ताँहारे अङ्गने देखि' प्रभु धाञा आइला।**
**ताँरे आलिङ्गन करि' प्रेमाविष्ट हैला॥५१॥**

**५१। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी को आँगन में आये देखकर श्रीमन्महाप्रभु दौड़े हुए चले आये। श्रीसनातन गोस्वामी को आलिङ्गन करके श्रीमन्महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये।

आलिङ्गन के फलस्वरूप सनातन में प्रेम और उनकी दैन्य-उक्ति—

**प्रभुस्पर्शे प्रेमाविष्ट हइला सनातन।**
**'मोरे ना छुँइह'—कहे गदगद-वचन॥५२॥**

**५२। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के स्पर्श से श्रीसनातन गोस्वामी प्रेमाविष्ट हो गये। श्रीसनातन गोस्वामी ने गद्गद् होते हुए कहा—'आप मुझे मत छुइएँ।

प्रभु और सनातन, दोनों का ही प्रेम-क्रन्दन, चन्द्रशेखर का विस्मय—

**दुइजने गलागलि रोदन अपार।**
**देखि' चन्द्रशेखरेर हइल चमत्कार॥५३॥**

**५३। प॰ अनु॰—**दोनों परस्पर को गले लगाने लगे तथा बहुत अधिक रोने लगे। उन दोनों की ऐसी अवस्था को देखकर श्रीचन्द्रशेखर बहुत विस्मित हुए।

अत्यधिक स्नेहपूर्वक सनातन को अपने निकट आसन प्रदान—

**तबे प्रभु ताँर हात धरि' लञा गेला।**
**पिण्डार उपरे ताँरे आपन-पाश बसाइला॥५४॥**

**५४। प० अनु०—**तब श्रीमन्महाप्रभु श्रीसनातन का हाथ पकड़कर उन्हें अपने साथ ले गये तथा उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामी को अपने निकट चबूतरे पर बैठाया।

अपने हाथों से सनातन के अङ्गों का मार्जन,
सनातन की दैन्यपूर्ण उक्ति—

**श्रीहस्ते करेन ताँर अङ्ग सम्मार्जन।**
**तिंहो कहे,—"मोरे, प्रभु, ना कर स्पर्शन॥"५५॥**

**५५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु स्वयं अपने हाथों से श्रीसनातन गोस्वामी के अङ्गों का भलीभाँति मार्जन करने लगे। श्रीसनातन गोस्वामी कहने लगे—'हे प्रभु, आप मुझे स्पर्श मत कीजिए।'

प्रभु के द्वारा उन्हें महाभागवत के लिये
उचित गौरव प्रदान—

**प्रभु कहे,—"तोमा स्पर्शि आत्म पवित्रिते।**
**भक्ति-बले पार तुमि ब्रह्माण्ड शोधिते॥५६॥**

**५६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'मैं स्वयं को पवित्र करने के उद्‌देश्य से आपको स्पर्श कर रहा हूँ। आप अपनी भक्ति के बल से ब्रह्माण्ड को पवित्र कर सकते हैं।

श्रीमद्भागवत (१/१३/१०) में—

**भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं प्रभो।**
**तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता॥५७॥**

५७। आपके जैसे भगवत-भक्त स्वयं तीर्थ-स्वरूप हैं तथा वे अपने अन्तःकरण में स्थित भगवान् की पवित्रता के प्रभाव से पापियों के पाप द्वारा मलिन होने वाले तीर्थों को पवित्र कर देते हैं।

**अनुभाष्य**

५७। आदि प्रथम परिच्छेद ६३ संख्या द्रष्टव्य।

हरिभक्तिविलास (१०/९१) में—

**न मेऽभक्तचतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।**
**तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥५८॥**

५८। चतुर्वेदपाठी अर्थात् चौबे ब्राह्मण होने पर ही 'भक्त' होता है, ऐसा नहीं। मेरा भक्त चण्डाल होने पर भी मुझे प्रिय है, भक्त ही वास्तव में दान पात्र एवं ग्रहण पात्र है; भक्त मात्र ही मेरे समान पूज्य है।

**अनुभाष्य**

५८। मध्य उनविंश परिच्छेद ५० संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (७/९/१०) में—

**विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-**
**पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।**
**मन्ये तदर्पित-मनोवचनेहितार्थ-**
**प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥५९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५९। कृष्ण के चरण कमलों से विमुख द्वाद्वश गुणों से युक्त ब्राह्मण की अपेक्षा भी जिसका कृष्ण में मन, वचन, चेष्टा, अर्थ और प्राण समर्पित हैं, ऐसे चण्डाल को भी मैं श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि वह (चण्डाल कुल में उत्पन्न भक्त) अपने कुल को पवित्र करता है, और अत्यधिक सम्मान से युक्त ब्राह्मण वैसा नहीं कर सकता।

**अनुभाष्य**

५९। धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष देवर्षि नारद भगवान् श्रीनृसिंह द्वारा किये गये हिरण्यकशिपु के वध के वृत्तान्त का वर्णन करते हुये प्रसङ्ग वशतः हिरण्यकशिपु के वध के उपरान्त भक्त प्रहलाद के द्वारा किये गये भगवान् नृसिंह के स्तव का कीर्त्तन कर रहे हैं,—

अरविन्दनाभपादारविन्दविमुखात् (पद्मनाभ-

कृष्णस्य पादपद्मात् विमुखात्) द्विषड्गुणयुतात् (पूर्वश्लोकोक्ताः धनाभिजन-रूप-तपः-श्रुतोजस्तेजः-प्रभाव बल-पौरुष-बुद्धियोगाः इत्यादयः ये द्विषट् द्वादशगुणाः, यद्वा, ''धर्मश्च सत्यञ्च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया। यज्ञश्च दानञ्च धृतिः श्रुतञ्च वृतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य॥'' इति महा-भारतीय—सनत्-सुजातोक्ता द्वादश-गुणाः,यद्वा,''शमो दमस्तपः शौचं क्षान्त्यार्जव-विरक्तयः। ज्ञान-विज्ञान-सन्तोषाः सत्यास्तिक्ये द्विषड् गुणाः॥'' इति मुक्ता-फल-टीकोक्ता द्वादशगुणाः, तैः युक्तात्) विप्रात् अपि तदर्पितमनो-वचनेहितार्थप्राणं (तत् तस्मिन् अरविन्दनाभे कृष्णे अर्पिताः मनः वचनं ईहितं कर्म अर्थः प्राणश्च एते येन, त) श्वपचं वरिष्ठं (श्रेष्ठम्) अहं मन्ये; यतः, स (एवन्भूतः श्वपचः सर्व) कुलं पुनाति, भूरिमानः (भूरिः मानः गर्वः यस्य स) विप्रः तु (आत्मानमपि) न (पुनाति, कुतः कुलम्? यतो भक्तिहीनस्य एते गुणाः गर्वायैव भवन्ति, न तु शुद्धये; अतो हीन इति भावः,।

भक्त की सेवा में लग जाने में ही
सभी इन्द्रियों की सार्थकता—

**तोमा देखि, तोमा स्पर्शि, गाइ तोमार गुण।**
**सर्वेन्द्रिय-फल,—एइ शास्त्रेर-निरुपण॥६०॥**

**६०। प॰ अनु॰—**आपको देखना, आपको स्पर्श करना, आपके गुणों का गान करना ही सभी इन्द्रियों का फल है—शास्त्र यही निरूपण करते हैं।

जगत में शुद्ध-भगवद्-भक्त—सुदुर्लभ—
हरिभक्तिसुधोदय (१३/२) में—

**अक्ष्णोः फलं त्वादृश-दर्शनं हि**
**तनोः फलं त्वादृश-गात्रसङ्गः।**
**जिह्वाफलं त्वादृश-कीर्त्तनं हि**
**सुदुर्लभा भागवता हि लोके॥६१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६१। हे वैष्णव, तुम्हारे जैसे व्यक्ति का दर्शन करना ही नेत्रों का फल है; तुम्हारे जैसे व्यक्ति की देह को स्पर्श करना ही शरीर का फल है; तुम्हारे जैसे व्यक्ति के गुणों का कीर्त्तन करना ही जिह्वा का फल है; क्योंकि, जगत् में भागवतजन ही सुदुर्लभ हैं।

**अनुभाष्य**

६१। त्वादृशदर्शनं (त्वादृशानां भवत्तुल्यानां भागवतानां श्रद्धापूर्वक-दर्शन) अक्ष्णोः (चक्षुर्भ्यां वीक्षणकार्यस्य) फलं (तात्पर्यम्); त्वादृशगात्रसङ्ग (त्वादृशानां भक्तानां गात्रसङ्गः अङ्गस्पर्शः) तनोः (शरीरस्य धारण कार्यस्य) फलम्; त्वादृश कीर्त्तनं (त्वादृशानां भक्तानां गुणकीर्त्तन) हि (एव) जिह्वा फलं (वाक्योच्चारणस्य प्रयोजनम्); (अतः) लोके (जगति) भागवताः (शुद्धभक्ताः) सुदुर्लभाः (सुदुरापाः) हि (एव)।

कृष्ण की अहैतुकी कृपा के माहात्म्य का वर्णन;
प्रभु स्वयं ही सनातन के कारागार में बन्द होने
तथा वहाँ से छूटने की लीला के अभिनय के
मूल-सूत्रधार—

**एत कहि' कहे प्रभु,—''शुन, सनातन।**
**कृष्ण—बड़ दयामय, पतित-पावन॥६२॥**
**महा-रौरव हैते तोमा करिला उद्धार।**
**कृपार समुद्र कृष्ण गम्भीर अपार॥''६३॥**

**६२-६३। प॰ अनु॰—**इतना कहकर श्रीमन्महा-प्रभु ने कहा—'हे सनातन! सुनो, भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही दयामय तथा पतित-पावन हैं। 'उन्होंने महा-रौरव नामक नरक से तुम्हारा उद्धार किया है। कृपा के सागर श्रीकृष्ण अपार तथा गम्भीर हैं।'

### अनुभाष्य

६३। महा-रौरव—जीविका (कमाई) के उद्देश्य से जन्तुओं का वध करने वाले 'महारौरव' नामक नरक को प्राप्त करते हैं (भाः ५/२६/१०-१२ श्लोक द्रष्टव्य)।

सनातन के द्वारा प्रभु को अभिन्न कृष्ण मानना—

**सनातन कहे,—''कृष्ण आमि नाहि जानि।**
**आमार उद्धार-हेतु तोमार कृपा मानि॥''६४॥**

**६४। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा—'मैं कृष्ण को नहीं जानता हूँ। अपने उद्धार का कारण मैं आपकी कृपा को मानता हूँ।'

प्रभु के प्रश्न के उत्तर में स्वयं के वृतान्त का वर्णन—

**'केमने छुटिला' बलि प्रभु प्रश्न कैला।**
**आद्योपान्त सब कथा तिंहो शुनाइला॥६५॥**

**६५। प॰ अनु॰—**'आप कैसे छूँटे'—यह कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने प्रश्न किया तथा श्रीसनातन गोस्वामी ने आरम्भ से अन्त तक का सब वृत्तान्त कह सुनाया।

प्रभु के द्वारा रूप और अनुपम का संवाद-प्रदान—

**प्रभु कहे,—''तोमार दुइ भाइ प्रयागे मिलिला।**
**रूप, अनुपम,—दुँहे वृन्दावन गेला॥''६६॥**

**६६। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'तुम्हारे दो भाई रूप और अनुपम मुझसे प्रयाग में आकर मिले थे। वहाँ से वे दोनों वृन्दावन गये हैं।

तपनमिश्र और चन्द्रशेखर के साथ सनातन का मिलन—

**तपनमिश्रेरे आर चन्द्रशेखरेरे।**
**प्रभु-आज्ञाय सनातन मिलिला दोंहारे॥६७॥**

**६७। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा से श्रीसनातन गोस्वामी श्रीतपन मिश्र और श्रीचन्द्रशेखर से मिले।

सनातन को तपन मिश्र का निमन्त्रण, सनातन को क्षौर (मुण्डन) करने के लिये प्रभु की आज्ञा—

**तपनमिश्र तबे ताँरे कैला निमन्त्रण।**
**प्रभु कहे,—''क्षौर कराह, जाह, सनातन॥''६८॥**

**६८। प॰ अनु॰—**श्रीतपन मिश्र ने श्री सनातन गोस्वामी को निमन्त्रण दिया। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसनातन गोस्वामी से कहा—'हे सनातन, जाओ, क्षौर (मुण्डन) कराके आओ।'

चन्द्रशेखर को सनातन के अवैष्णव-वेष को त्याग कराके वैष्णवोचित-वेष धारण कराने की आज्ञा—

**चन्द्रशेखरेरे प्रभु कहे बोलाञा।**
**''एइ वेश दूर कर, जाह इँहारे लञा॥''६९॥**
**भद्र कराञा ताँरे गङ्गास्नान कराइल।**
**शेखर आनिया ताँरे नूतन वस्त्र दिल॥७०॥**

**६९-७०। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीचन्द्र-शेखर को बुलाकर कहा—'आप सनातन को अपने साथ ले जाकर इनके इस वेश को दूर करो।' श्रीचन्द्रशेखर ने श्रील सनातन गोस्वामी को भद्र कराके अर्थात् उनका मुण्डन कराके उन्हें गङ्गास्नान कराया तथा श्रीचन्द्रशेखर ने उन्हें एक नया वस्त्र लाकर दिया।

### अमृतप्रवाह भाष्य

७०। भद्र कराञा (भद्र कराके)—मुण्डन कराके अर्थात् दरवेश जैसी दाड़ी और बालों को काटकर सुवैष्णव जैसा वेष धारण कराके।

चन्द्रशेखर द्वारा प्रदत्त नये वस्त्रों को पहनने में सनातन की असम्मति—

**सेइ वस्त्र सनातन ना कैला अङ्गीकार।**
**शुनिया प्रभुर मने आनन्द अपार॥७१॥**

**७१। प॰ अनु॰—**श्रीचन्द्रशेखर द्वारा दिये गये उस वस्त्र को श्रीसनातन ने स्वीकार नहीं किया। श्रीचन्द्रशेखर के मुख से इस बात को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के मन में अनन्त आनन्द हुआ।

दोपहर में तपनमिश्र के घर पर प्रभु का भोजन, सनातन को प्रभु के अवशेष की प्राप्ति—

**मध्याह्न करिया प्रभु गेला भिक्षा करिवारे।**
**सनातने लञा गेला तपनमिश्रेर घरे॥७२॥**

**७२। प० अनु०—**दोपहर का स्नान करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु श्रीसनातन गोस्वामी को अपने साथ लेकर भोजन के लिये श्रीतपन मिश्र के घर पर गये।

**पादप्रक्षालन करि' भिक्षाते बसिला।**
**"सनातने भिक्षा देह"—मिश्रेरे कहिला॥७३॥**

**७३। प० अनु०—**चरणों को धोने के बाद श्रीमन्महाप्रभु भोजन के लिये बैठे। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीतपनमिश्र से कहा—'सनातन को भिक्षा प्रदान करो।'

**मिश्र कहे,—"सनातनेर किछु कृत्य आछे।**
**तुमि भिक्षा कर, प्रसाद ताँरे दिब पाछे॥"७४॥**

**७४। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र ने कहा—'सनातन का अभी कुछ करना बाकी रह गया है। आप भोजन ग्रहण कीजिए, मैं उन्हें बाद में प्रसाद दूँगा।'

**भिक्षा करि' महाप्रभु विश्राम करिला।**
**मिश्र प्रभुर शेषपात्र सनातने दिला॥७५॥**

**७५। प० अनु०—**भोजन करने के बाद श्री मन्महाप्रभु ने थोड़ा विश्राम किया। श्रीतपन मिश्र ने श्रीमन्महाप्रभु का उच्छिष्ट प्रसाद श्रीसनातन गोस्वामी को दिया।

मिश्र के द्वारा प्रदत्त नये वस्त्रों को पहनने में सनातन की आपत्ति—

**मिश्र सनातने दिला नूतन वसन।**
**वस्त्र नाहि निला, तिंहो करे निवेदन॥७६॥**

वैष्णव-उच्छिष्ट पुराने वस्त्र-ग्रहण करने की सनातन की इच्छा—

**"मोरे वस्त्र दिते यदि तोमार हय मन।**
**निज-परिधान एक देह पुरातन॥"७७॥**

**७६-७७। प० अनु०—**श्रीतपन मिश्र ने श्री सनातन गोस्वामी को एक नया वस्त्र दिया। श्रीसनातन गोस्वामी ने वह वस्त्र नहीं लिया तथा उन्होंने श्रीतपन मिश्र से निवेदन किया—'यदि आपकी मुझे वस्त्र देने की इच्छा ही है तो फिर मुझे अपना पहना हुआ एक पुराना वस्त्र दीजिए।

एक वस्त्र को दो टुकड़ों में बाँटकर बहिर्वास और उसके उपयोगी डोर-कौपीन बनाना—

**तबे मिश्र पुरातन एक धुति दिला।**
**तिंहो दुइ बहिर्वास-कौपीन करिला॥७८॥**

**७८। प० अनु०—**तब श्रीतपन मिश्र ने श्री सनातन गोस्वामी को एक पुरानी धोती दी। श्री सनातन गोस्वामी ने उसी धोती में से ही दो बहिर्वास तथा दो डोर-कौपीन बनाएँ।

महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के साथ सनातन का मिलन—

**महाराष्ट्रीय द्विजे प्रभु मिलाइला सनातने।**
**सेइ विप्र ताँरे कैल महा-निमन्त्रणे॥७९॥**

**७९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने महाराष्ट्रीय ब्राह्मण को श्रीसनातन गोस्वामी से मिलाया। उस ब्राह्मण ने श्रील सनातन गोस्वामी को बहुत लम्बे काल के लिये निमन्त्रण दिया।

काशी में रहते समय सनातन को ब्राह्मण द्वारा प्रतिदिन अपने घर में निमन्त्रण—

**"सनातन, तुमि यावत काशीते रहिबा।**
**तावत् आमार घरे भिक्षा जे करिबा॥"८०॥**

**८०। प० अनु०—**महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने कहा—हे सनातन! तुम जब तक काशी में रहोगे, तब तक मेरे घर पर ही भिक्षा (भोजन) ग्रहण करना।

सनातन द्वारा स्थूल भिक्षा में असम्मति, माधुकरी-भिक्षा की इच्छा—

**सनातन कहे,—''आमि माधुकरी करिब।**
**ब्राह्मणेर घरे केने एकत्र भिक्षा लब??''८१॥**

**८१। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा—'मैं माधुकरी करूँगा। ब्राह्मण के घर में किसलिए इतने दिनों तक भिक्षा ग्रहण करूँगा?

सनातन के युक्त वैराग्य से प्रभु का आनन्द—

**सनातनेर वैराग्ये प्रभुर आनन्द अपार।**
**भोटकम्बल-पाने प्रभु चाहे बारे-बार॥८२॥**

**८२। प॰ अनु॰—**यद्यपि श्रीसनातन गोस्वामी के वैराग्य को देखकर श्रीमन्महाप्रभु बहुत अधिक आनन्दित थे। तथापि वे बारम्बार श्री सनातन गोस्वामी के बहुमूल्य कम्बल की ओर देखते थे।

बहुमूल्य कम्बल प्रभु को पसन्द नहीं, ऐसा समझकर पुराने कपड़ों से बना फटा हुआ काँथा (गुदड़ी) ग्रहण—

**सनातन जानिल एइ प्रभुरे ना भाय।**
**भोट त्याग करिबारे चिन्तिला उपाय॥८३॥**

**८३। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के बारम्बार कम्बल को देखने से श्रीसनातन गोस्वामी समझ गये कि यह कम्बल उन्हें पसन्द नहीं है। श्रीसनातन गोस्वामी ने उस कम्बल को त्याग करने के उपाय की चिन्ता की।

**एत चिन्ति' गेला गङ्गाय मध्याह्न करिते।**
**एक गौड़ीय कान्था धुञा दियाछे शुकाइते॥८४॥**

**८४। प॰ अनु॰—**उपाय की चिन्ता करके श्रीसनातन गोस्वामी गङ्गा में दोपहर का स्नान करने के लिये गये, वहाँ उन्होंने देखा कि एक गौड़ीय ने अपने पुराने वस्त्रों से बना कान्था (गुदड़ी) धोकर धूप में सुखाने के लिये डाल रखा था।

**तारे कहे,—''ओरे भाइ, कर उपकारे।**
**एइ भोट लञा एइ काँथा देह' मोरे॥''८५॥**

**८५। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी ने उस गौड़ीय से कहा—'हे भाई, मुझ पर उपकार करो। तुम मुझसे इस बहुमूल्य कम्बल को लेकर मुझे अपना यह कान्था दे दो'।

**सेइ कहे,—''रहस्य कर प्रामाणिक हञा?**
**बहुमूल्य भोट दिबा केने काँथा लञा??"८६॥**

**८६। प॰ अनु॰—**उस गौड़ीय ने कहा—'आप प्रामाणिक अर्थात् सज्जन व्यक्ति होकर भी मुझसे मजा कर रहे हैं? आप कान्था लेकर किसलिए बहुमूल्य कम्बल देंगे?

**अनुभाष्य**

८६। प्रामाणिक—विचारादर्श (आदर्श विचार वाला) चरित्र, पण्डित।

**तेंहो कहे,—''रहस्य नहे, कहि सत्यवाणी।**
**भोट लह, तुमि देह' मोरे काँथाखानि॥''८७॥**

**८७। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा—'मैं मजा नहीं कर रहा, मैं सच कह रहा हूँ। इस कम्बल को लेकर तुम मुझे कान्था दे दो।'

**एत बलि' काँथा लइल, भोट ताँरे दिया।**
**गोसाञिर ठाँइ आइला काँथा गलाय दिया॥८८॥**

**८८। प॰ अनु॰—**इतना कहकर श्रीसनातन गोस्वामी ने उसे बहुमूल्य कम्बल देकर कान्था ले लिया तथा अपने गले में कान्थे को लेकर वे श्रीचैतन्य गोसाञि के पास आये।

प्रभु के द्वारा बहुमूल्य कम्बल के विषय में पूछना, सनातन द्वारा पूरी घटना का वर्णन—

**प्रभु कहे,—''तोमार भोटकम्बल कोथा गेल?''**
**प्रभुपदे सब कथा गोसाञि कहिल॥८९॥**

**८९। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा—'तुम्हारा बहुमूल्य कम्बल कहाँ गया?' श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु को सब बात बतायी।

प्रभु के द्वारा कृष्ण की कृपा के माहात्म्य का वर्णन—

**प्रभु कहे,—"इहा आमि करियाछि विचार।**
**विषय-रोग खण्डाइल कृष्ण जे तोमार॥९०॥**
**से केने राखिबे तोमार शेष विषय-भोग?**
**रोग खण्डि' सद्वैद्य ना राखे शेष रोग॥९१॥**

**९०-९१। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'मैंने विचार किया है कि श्रीकृष्ण ने तुम्हारे विषयरोग को दूर कर दिया है। श्रीकृष्ण तुम्हारे अन्तिम विषय-भोग को क्यों छोड़ देंगे? सद् वैद्य रोग को लगभग दूर करके थोड़ा सा छोड़ नहीं देते।

आचार और प्रचार में परस्पर सामञ्जस्य रखने का उपदेश—

**तिन मुद्रार भोट गाय, माधुकरी ग्रास।**
**धर्महानि हय, लोके करे उपहास॥"९२॥**

**९२। प॰ अनु॰—**'तीन मुद्रा का महँगा कम्बल शरीर पर तथा भोजन माधुकरी माँगकर खाना। इससे धर्म की हानि होती है तथा लोग उपहास करते हैं।'

सनातन के द्वारा प्रभु की कृपा के माहात्म्य की प्रशंसा—

**गोसाञि कहे,—"जे खण्डिल कुविषय-भोग।**
**ताँर इच्छाय गेल मोर शेष विषय-रोग॥"९३॥**

**९३। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा—'जिन्होंने मेरा कुविषय रूपी भोग दूर किया है, उन्हीं की इच्छा से मेरा अन्तिम विषय-रोग भी दूर हो गया है।'

### अनुभाष्य

९३। कुविषय-भोग—पाप-विषय-सेवा।

सनातन में प्रभु द्वारा शक्ति सञ्चार—

**प्रसन्न हञा प्रभु ताँरे कृपा कैल।**
**ताँर कृपाय प्रश्न करिते ताँर शक्ति हैल॥९४॥**

**९४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने प्रसन्न होकर श्रीसनातन गोस्वामी पर कृपा की, श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से उनमें प्रश्न करने की शक्ति आयी।

पहले प्रभु की शक्ति के बल से राय द्वारा प्रभु के प्रश्नों के उत्तर प्रदान करने का सामर्थ्य—

**पूर्वे जैछे राय-पाशे प्रभु प्रश्न कैला।**
**ताँर शक्तये रामानन्द ताँर उत्तर दिला॥९५॥**

**९५। प॰ अनु॰—**पूर्व में जैसे श्रीरामानन्द राय से श्रीमन्महाप्रभु ने प्रश्न पूछे थे तथा श्रीमन्महाप्रभु की शक्ति से श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिये थे।

उसी प्रकार प्रभु की शक्ति के सञ्चार के बल से सनातन के द्वारा प्रश्न, और स्वयं प्रभु के द्वारा उत्तर प्रदान—

**इँहा प्रभुर शक्तये प्रश्न करे सनातन।**
**आपने महाप्रभु करे 'तत्व'-निरुपण॥९६॥**

**९६। प॰ अनु॰—**यहाँ पर श्रीमन्महाप्रभु की शक्ति से श्रीसनातन गोस्वामी प्रश्न कर रहे थे तथा स्वयं श्रीमन्महाप्रभु तत्त्व का निरुपण कर रहे थे।

सनातन के लिये स्वयं प्रभु द्वारा सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन तत्व का कीर्त्तन—
(ग्रन्थकार-वाक्य—)

**कृष्णस्वरूपमाधुर्यैश्वर्यभक्तिरसाश्रयम्।**
**तत्वं सनातनायेशः कृपयोपदिदेश सः॥९७॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

९७। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कृपापूर्वक सनातन को श्रीकृष्ण के स्वरूप का माधुर्य, उनके स्वरूप का ऐश्वर्य और भक्तिरस आश्रय रूप तत्त्व का उपदेश दिया।

**अनुभाष्य**

९७। स ईशः (महाप्रभुः) कृपया (अतुल-करुणया) सनातनाय (सनातन-गोस्वामिने) कृष्ण-स्वरूपमाधुर्येश्वर्यभक्तिरसाश्रयं (कृष्णस्य स्वरूपं सर्वेश्वरेश्वर-सच्चिदानन्दघनात्मक-किशोर-शेखर-यशोदानन्दनत्वं, माधुर्यम् असमोर्द्धतया सर्वमनोहरं स्वाभाविक-रूपगुणलीलादि सौष्ठवं, ऐश्वर्यम् असमोद्धानन्त स्वाभाविकप्रभुत्वं, भक्तिरसश्च, तेषाम् आश्रयं—''दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय-विग्रहम'' इति वचनोद्दिष्टं वस्तु तत् एव) तत्वम् (अद्वय-ज्ञानम्) उपदिदेश (उपदिष्टवान्)।

'सनातन शिक्षा' का वर्णन आरम्भ; दीनतापूर्वक प्रणिपात-परिप्रश्न और सेवापूर्वक लोक-शिक्षा के लिये नित्यसिद्ध सनातन द्वारा बद्धजीव का अभिनय करते हुए शिष्य की भाँति कीर्तन विग्रह जगद् गुरु प्रभु के निकट तत्व-जिज्ञासा—

**तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया।**
**दैन्य विनति करे दन्ते तृण लञा॥९८॥**

**९८। प॰ अनु॰—**तब श्रीसनातन गोस्वामी ने दाँतो में तिनका लेकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण करके दीनतापूर्वक विनती करते हुए कहा—।

**''नीच-जाति, नीच-सङ्गी, पतित अधम।**
**कुविषय-कूपे पड़ि' गोङाइनु जनम!!९९॥**

**९९। प॰ अनु॰—**मैं नीच जाति का, नीच लोगों का सङ्ग करने वाला, अधम-पतित हूँ। कुविषय रूपी कुएँ में पड़े-पड़े ही मैंने अपना जन्म गँवा दिया है।

**आपनार हिताहित किछुइ ना जानि!**
**ग्राम्य-व्यवहारे पण्डित, ताइ सत्य मानि॥१००॥**

**१००। प॰ अनु॰—**मैं अपने हित तथा अहित के विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ! मैं ग्राम्य-व्यवहार में पण्डित हूँ, इसे ही मैं सत्य मानता हूँ।

**अनुभाष्य**

१००। ग्राम्य-व्यवहार—स्त्री-पुरुषगत लौकिक-व्यवहार।

**कृपा करि' यदि मोरे करियाछ उद्धार।**
**आपन-कृपाते कह 'कर्त्तव्य' आमार॥१०१॥**

**१०१। प॰ अनु॰—**कृपा करके जब आपने मेरा उद्धार किया ही है, तब फिर स्वयं ही कृपा करके मुझे मेरे कर्त्तव्य से भी अवगत कराइये।

जीव के स्वरूप और बन्धन से उत्पन्न दुःख के कारण की जिज्ञासा—

**'के आमि,' 'केने आमाय जारे तापत्रय।'**
**इहा नाहि जानि—'केमने हित हय'॥१०२॥**
**'साध्य'-'साधन'-तत्व पुछिते ना जानि।**
**कृपा करि' सब तत्व कह त' आपनि॥''१०३॥**

**१०२-१०३। प॰ अनु॰—**श्रीसनातन गोस्वामी ने पूछा—मैं कौन हूँ, मुझे तीन ताप क्यों जर्जरित करते हैं? मैं नहीं जानता हूँ कि मेरा कैसे हित होगा? मैं साध्य और साधन तत्त्व के विषय में पूछना भी नहीं जानता हूँ। इसलिए कृपा करके आप स्वयं ही मुझे सभी तत्त्वों के विषय में बतलाइये।''

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०२-१०३। सनातन ने जिज्ञासा की,—''मैं कौन हूँ? आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक—यह तीन ताप मुझे क्यों जर्जरित कर रहे हैं एवं मेरा किस प्रकार हित होगा? साध्य-साधन तत्त्व की जिज्ञासा करने में मैं असमर्थ हूँ, आप कृपा करके मुझे मेरे जानने योग्य विषय बतलाइये।

**अनुभाष्य**

१०२। तापत्रय (तीन प्रकार के ताप)—(१) आध्यात्मिक, २) आधिभौतिक और ३) आधि-

दैविक—यह तीन प्रकार के दु:ख हैं। (१) आध्यात्मिक ताप दो प्रकार के है—(क) शारीरिक, यथा—ज्वर आदि रोग; (ख) मानसिक, यथा—प्रिया आदि का वियोग। (२) आधिभौतिक ताप चार प्रकार के हैं—(क) जरायुज-प्राणी से ताप (ख) अण्डज प्राणियों से ताप; (ग) स्वेदज प्राणी से ताप; (घ) उद्भिज्ज प्राणी से ताप; (३) आधिदैविक ताप अर्थात् वरदेवता जैसे इन्द्र आदि से उत्पन्न ताप—शीत, व्रजपात इत्यादि, एवं अपदेवता जैसे हिंसक स्वभाव वाले यक्ष-पिशाच आदि से अशुभजनक आपद्-विपत्-ताप आदि (कष्ट)।

सनातन को नित्य सिद्ध समझकर केवल
मात्र बद्धजीवों के मङ्गल के उद्देश्य से
प्रभु द्वारा उत्तर प्रदान—

**प्रभु कहे,—''कृष्ण-कृपा तोमाते पूर्ण हय।**
**सब तत्व जान, तोमार नाहि तापत्रय॥१०४॥**
**कृष्ण भक्ति धर तुमि, जान तत्वभाव।**
**जानि' दाढ्य लागि' पुछे,—साधुर स्वभाव॥१०५॥**

**१०४-१०५। प० अनु०**—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—''भगवान् श्री कृष्ण की तुम पर पूर्ण कृपा है। तुम सभी तत्वों को जानते हो, तुम्हें तीन ताप नहीं सताते हैं। तुम कृष्णभक्ति को धारण करते हो तथा तत्व के भाव को जानते हो। किन्तु जानने पर भी दृढ़ता हेतु पूछना साधु का स्वभाव होता है।

तत्व-जिज्ञासा की एकान्तिक आवश्यकता,
उसी से ही अभीष्ट सिद्धि—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/४७) में उद्धृत
नारदजी के वचन—

**अचिरादेव सर्वार्थः सिध्यत्येषामभीप्सितः।**
**सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः॥१०६॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१०६। सद्धर्म को उदित कराने के लिए जिनकी दृढ़ा मति है, उनकी शीघ्र ही अभिलषित सर्वार्थ अर्थात् सब प्रकार की सिद्धि होती है।

### अनुभाष्य

१०६। सद्धर्मस्य (नित्योपादेय-भागवतधर्म्मस्य) अवबोधाय (तत्त्वज्ञानाय, तत्त्वं जिज्ञासितुमित्यर्थः) येषां भक्त्युन्मुखी-सुकृति-वतां पुंसा) निर्बन्धिनी (अचञ्चला) मतिः (रुचिः बुद्धिर्वा) (वर्त्तते), एषां (शुद्धचित्तानां निर्मलचेतसाम्) अभीप्सितः (प्रार्थितः) सर्वार्थः (साध्यः) अचिरात् (शीघ्रम) एव सिद्धयति (सफलो भवति)।

सनातन को आचार्य के रूप
में प्रभु द्वारा अङ्गीकार करना—

**योग्यपात्र हओ तुमि भक्ति प्रवर्त्ताइते।**
**क्रमे सब तत्व शुन, कहिये तोमाते॥१०७॥**

**१०७। प० अनु०**—तुम भक्ति का प्रवर्त्तन करने के लिये योग्यपात्र हो। क्रमशः तुम सब तत्त्वों को सुनो, मैं तुम्हें सब बतला रहा हूँ।

**श्रीश्रीसनातन-शिक्षारम्भ; (क-१)**

सर्वप्रथम जीव के स्वरूप का विचार—

**जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्यदास'।**
**कृष्णेर 'तटस्था-शक्ति', 'भेदाभेद-प्रकाश'॥१०८॥**
**सूर्यांश-किरण, जैछे अग्निज्वालाचय।**
**स्वाभाविक कृष्णेर तिन प्रकार 'शक्ति' हय॥१०९॥**

**१०८-१०९। प० अनु०**—जीव का स्वरूप कृष्ण का 'नित्यदास' है। वह कृष्ण की तटस्था-शक्ति तथा उनका भेदाभेद-प्रकाश है। जीव सूर्य स्वरूप कृष्ण का अंश—उनकी किरण हैं अथवा वह प्रज्ज्वलित अग्नि रूपी कृष्ण की चिङ्गारी जैसा है। श्रीकृष्ण की स्वाभाविक तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१०८-१०९। "मैं कौन हूँ?" इन प्रश्न के

उत्तर में महाप्रभु आज्ञा दे रहे हैं कि, 'तुम—जीव हो। क्या तुम जड़ से उत्पन्न यह शरीर हो? ऐसा नहीं, अथवा तुम मन-बुद्धि अहंकार स्वरूप लिङ्ग-शरीर हो? वह भी नहीं। तुम स्वरूपतः कृष्ण के नित्य दास हो। तुम कृष्ण की तटस्था-शक्ति हो अर्थात् कृष्ण के चिद्-जगत और मायिक जगत,—इन दोनों के बीच की सीमा में स्थित होने के कारण दोनों जगतों का सम्बन्ध होने के कारण, तुम—तटस्था-शक्ति हो। कृष्ण के साथ तुम्हारा भेदाभेद-प्रकाश रूप दोनों प्रकार का 'सम्बन्ध' है। चिन्मय धर्म के सम्बन्ध में तुम—कृष्ण के अभेद-प्रकाश एवं अणुचैतन्य धर्मवशतः बृहद्-चैतन्य कृष्ण के भेद-प्रकाश हो। कृष्ण के साथ तुम्हारा भेद और अभेद—युगपत् सिद्ध है। जीव के तटस्थ-स्वभाव से ही यह युगपत् भेदाभेद प्रकाश सिद्ध हुआ है। जीव सूर्य स्वरूप कृष्ण का अंश किरण है; अथवा उद्दीप्त अग्नि का विस्फुलिङ्ग रूप ज्वाला जीव समूह का उदाहरण स्थल है।

### अनुभाष्य

१०८-१०९। आदि द्वितीय परिच्छेद ९६ संख्या द्रष्टव्य।

विष्णु की सर्वव्यापिनी शक्ति के द्वारा लीला-विलास—
विष्णु पुराण (१/२२/५३) में—

**एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।**
**परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्॥११०॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

११०। एक स्थान पर स्थित अग्नि का प्रकाश अथवा आलोक जिस प्रकार विस्तृत होता है, परब्रह्म की शक्ति भी अखिल जगत् में उसी प्रकार व्याप्त है।

### अनुभाष्य

११०। यथा एकदेशस्थितस्य (निर्दिष्टस्थानाधिष्ठितस्य) अग्नेः ज्योत्सना (प्रभा) विस्तारिणी (व्यापिनी), तथा इदम् अखिलं (सर्वं चिदचिन्मय) जगत् परस्य ब्रह्मणः (कृष्णस्य) शक्तिः।

(क-२) कृष्ण की शक्ति का विचार—

**कृष्णेर स्वाभाविक तिन शक्ति-परिणति।**
**चिच्छक्ति, जीवशक्ति, आर मायाशक्ति॥१११॥**

**१११। प॰ अनु॰—**प्राकृत और अप्राकृत जगत् में श्रीकृष्ण की स्वरूपतः तीन शक्तियों की परिणति—तीन शक्ति के कार्य—देखे जाते हैं; वह तीन शक्तियाँ हैं—चित्-शक्ति, जीव-शक्ति और माया शक्ति। मायिक ब्रह्माण्ड श्रीकृष्ण की मायाशक्ति की परिणति, जीव उनकी जीवशक्ति (तटस्थाशक्ति) की परिणति तथा चिन्मय भगवद्-धामादि उनकी चिद्-शक्ति की परिणति है।

तीन प्रकार की शक्ति—
विष्णुपुराण (६/७/६१) में—

**विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।**
**अविद्या-कर्म संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥११२॥**

११२। विष्णुशक्ति तीन प्रकार की है,—परा, क्षेत्रज्ञा एवं अविद्या-संज्ञाविशिष्टा। विष्णु की पराशक्ति ही 'चिच्छक्ति' है; क्षेत्रज्ञाशक्ति ही जीवशक्ति है; (जिसे माया-रूपी 'अविद्या' से 'अपरा' (भिन्ना) के रूप में उक्त किया गया है); कर्मसंज्ञारूपी अविद्या-शक्ति का नाम 'माया' है।

### अनुभाष्य

११२। आदि सप्तम परिच्छेद ११९ संख्या द्रष्टव्य।

(१) अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति अच्छेद्य भाव से शक्तिमान की आश्रित—
विष्णुपुराण (१/३/२) में—

**शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।**
**यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः।**
**भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता॥११३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११३। सभी भावों की अचिन्त्यज्ञान गोचर समस्त शक्तियाँ ब्रह्म में विद्यमान हैं; इस कारण से ब्रह्म की वे समस्त शक्तियाँ सृष्टि आदि भाव शक्ति के रूप में क्रिया करती हैं। हे तापस-श्रेष्ठ, अग्नि का जिस प्रकार गर्मी प्रदान करने वाला धर्म स्वतःसिद्ध है, वह शक्तियाँ भी ब्रह्म का उसी प्रकार स्वतः सिद्ध धर्म हैं।

**अनुभाष्य**

११३। तपतां (तापसानां) श्रेष्ठ, यथा पावकस्य (अग्नेः) उष्णता (दाहकत्वादिशक्तिः) अस्ति, तथा, यतः (ब्रह्मणः) एव सर्वभावानाम् अचिन्त्यज्ञानगोचराः (मानवबुद्धेः अगोचराः) अतः तु (एव) ताः (तथाविधाः) सर्गाद्याः (चित्सर्गाद्याः अविच्छेद्यरूपेण) ब्रह्मणः शक्तयः (नित्य-प्रकटिताः) भवन्ति।

(२) तटस्था जीवशक्ति—
विष्णु पुराण (६/७/६२-६३) में—

**यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा।**
**संसारतापानखिलानवाप्नोत्यत्र सन्ततान्॥११४॥**

**तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्रज्ञ-संज्ञिता।**
**सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन वर्त्तते॥११५॥**

११४-११५। क्षेत्रज्ञ शक्ति ही जीव शक्ति है; वह जीवशक्ति सर्वज्ञ होने पर भी माया वृत्तिरूप अविद्या द्वारा आवृत्त होकर संसारगत समस्त तापों को नित्य भोग करती है। और, वही 'क्षेत्रज्ञ'-नाम्नी शक्ति अविद्या कुण्ठा से आवृत्त होकर, हे भूपाल, सभी जीवों में तारतम्य सहित वर्त्तमान रहती है। तात्पर्य यह है कि भगवान् की चिच्छक्ति—सर्वश्रेष्ठ, जीवशक्ति-मध्यम और अविद्या कर्म संज्ञिता माया शक्ति—अधम है। जीवशक्ति माया द्वारा आवृत्त होकर अर्थात् चित् शक्ति की वृत्ति से दूर होकर संसार ताप प्राप्त करती है। उस प्रकार (चिच्छक्ति से) दूर रहते समय (अपने द्वारा) आविष्कृत कर्म के चक्र में प्रवेश करके ऊँची-नीची अवस्था प्राप्त करती है।

**अनुभाष्य**

११४-११५। मध्य, षष्ठ परिच्छेद १५५-१५६ संख्या द्रष्टव्य।

(३) बहिरङ्गा मायाशक्ति—
श्रीमद्भगवद्गीता (७/५) में—

**अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि में पराम्।**
**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥११६॥**

११६। भूमि, जल, तेज, वायु एवं आकाश, ये पंच-भूतरूप स्थूल जगत्; मन, बुद्धि एवं अहंकार-रूप लिंग-जगत्। इन आठ प्रकारों से विभक्त प्रकृति—'अपरा' अथवा 'जड़ा' है; इसका नाम 'माया प्रकृति' है। इससे अलग मेरी और एक 'परा-प्रकृति' है। वही प्रकृति ही जीवस्वरूप होकर इस जगत् में परिपूर्णरूप से विराजमान है। तात्पर्य यही है कि, भगवान् ही एकमात्र वस्तु हैं; उनकी एक 'स्वरूप' अथवा 'आत्म'-शक्ति है। उस स्वरूपशक्ति से लगभग पृथक्, फिर भी उनकी छाया की भाँति जो शक्ति प्रतीयमान होती है, उसका नाम 'मायाशक्ति' है। स्थूल एवं लिंगमय जड़ब्रह्माण्ड—उस माया से प्रसूत हैं। इस माया प्रकृति के अतीत है—जीवतत्त्व। जीवों की शुद्धसत्त्वा, शुद्ध अहंकार और मनोवृत्ति,—सबकुछ ही माया के अतीत किसी एक पराशक्ति के द्वारा निर्मित है; इसलिये 'जीव'-निर्माण-कार्य में माया का कोई अधिकार नहीं था। माया-प्रविष्ट होकर जीवों में जो जड़-भावान्वित अणुबुद्धि एवं अहंकार प्रतीत हो रहा है, केवल वही माया का कार्य है। इस माया-सम्बन्ध से छुटकारा पाकर स्व-स्वरूप में जीवों के अवस्थान को 'मुक्ति' (मोक्ष) कहते हैं। मुक्ति मिलने से माया-निर्मित अहंकार तक

भी नहीं रहता है। किन्तु जीवों में स्वतःसिद्ध जो सब चिन्मयी वृत्तिसमूह है, वे सब शुद्धरूप में कार्य कर सकती हैं। अतएव जीव—भगवान् की एक शक्तिविशेष है।

**अनुभाष्य**

११६। आदि सप्तम परिच्छेद ११८ संख्या द्रष्टव्य।

(ख) विरूप-विचार; बद्धजीव का भवरोग और उसके फलस्वरूप दुर्दशा और सजा—

**कृष्ण भुलि' सेई जीव अनादि-बहिर्मुख।**
**अतएव माया तारे देय संसार-दुःख॥११७॥**

**११७। प॰ अनु॰—**कृष्ण को भूलने से ही जीव अनादि काल से बहिर्मुख हुआ है, इसलिए माया उसे संसार रूपी दुःख प्रदान करती है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११७। 'मैं कृष्ण का नित्यदास हूँ',—इस बात को भूल जाना ही जीव का मायाबन्धन है। तटस्थशक्तिरूप जीव की चित् जगत और मायिक जगत के सन्धि स्थल (सीमा) पर अवस्थिति के समय मायाभोग की वासना करने के कारण उसका माया में प्रवेश होता है। माया में प्रवेश से ही मायिक-काल की गणना है। उस काल गणना से पहले ही बहिर्मुखता होने के कारण उसे 'अनादि' कहा जाता है; क्योंकि वह मायिक-काल से पहले हुआ है।

**कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुबाय।**
**दण्ड्यजने राजा जेन नदीते चुबाय॥११८॥**

**११८। प॰ अनु॰—**जैसे राजा अपराधी व्यक्ति को नदी में कभी तो डुबाकर रखता है और पुनः कभी उसे थोड़ी देर के लिये बाहर करता है, उसी प्रकार माया जीव को कभी तो स्वर्ग में उठाती है और कभी उसे नरक में डुबाती है।

**अनुभाष्य**

११८। नित्यमुक्त जीव कभी भी कृष्ण को नहीं भूलता, अनादि काल से कृष्णोन्मुख रहकर हरि सेवा रूपी नित्यवृत्ति में अधिष्ठित है। किन्तु जो सब जीव कृष्ण-सेवाधिकार विस्मृत होकर अनादि-कर्मफल-भोग वासना के कारण माया का अनुशीलन करके स्वयं को कर्मफल का भोक्ता मानते हैं, उनका माया द्वारा कर्मफल भोग निर्दिष्ट होता है। राजा के पुरस्कार और दण्ड की भाँति बद्धजीव पुण्यकर्म के प्रभाव से स्वर्ग में देवता के पद पर आरुढ़ होकर सुख भोग करता है, पुनः पाप के फल से नरक आदि में क्लेश प्राप्त करता है।

(ग) बद्धजीव का रोग; उसका उपाय और चिकित्सा अर्थात् पथ्य और औषधि के सेवन की विधि—श्रीमद्भागवत (११/२/३७) में—

**भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-**
**दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।**
**तन्माययातो बुध आभजेत्तं**
**भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥११९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११९। कृष्ण से हटकर जो माया है, उसमें अभिनिविष्ट जीव में 'भय' उपस्थित होता है एवं उन ईश्वर से बहिर्मुख होने के कारण माया से उत्पन्न विपरीत स्मृति होती है; इसी कारण पण्डित व्यक्ति गुरु को 'देवता' और 'आत्म' स्वरूप मानकर अनन्य भक्ति के साथ उन परमेश्वर का भजन करते हैं।

**अनुभाष्य**

११९। द्वारकापुरी में वसुदेव की जिज्ञासा के फल से देवर्षि नारद ने भागवत-धर्म कीर्त्तन के प्रसङ्ग में विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्र के संवाद का वर्णन किया; निमि के यज्ञ में नवयोगेन्द्र

के जाने पर निमि ने उनसे भागवत-धर्म का कीर्त्तन करने की प्रार्थना की, नवयोगेन्द्रों में एक 'कवि' ऋषि सर्वप्रथम भागवत धर्म के लक्षण बतलाकर बद्धजीव की दुरावस्था और भगवद्भजन की कर्त्तव्यता का उपदेश कर रहे है,—

यतः, ईशात् (भगवतः कृष्णात्) अपेतस्य (विमुखस्य बद्धजीवस्य) तन्मायया (तस्य भगवतः कृष्णस्य मायया बहिरङ्ग शक्तया) अस्मृतिः (भगवतः स्वरुपस्य अस्फूर्त्तिः धारणाभावः इत्यर्थः ततः), विपर्ययः (मायाकृत-कर्मफल-भोगपराभिमानः—स्वरूपा-स्मरणात् देहोऽस्मीति विवर्त्तमूल-बुद्धि-वैपरीत्य मित्यर्थः ततः), द्वितीयाभिनिवेशतः (निज-भोगज-कल्पनात्—स्वरूपात् अन्यस्मिन् वस्तुनि देहादौ आवेशतः, स च देहाहङ्कारतः, स च स्परूपास्मरणात्) भयं (देहद्रविण-सुहृन्निमित्तं संसृतिः आशङ्काः वा) स्यात् (भवति)। अतः बुध (कृष्णोन्मुखो बुद्धिमान् जीवः) तम् (ईशम् अधोक्षजम् एव) गुरूदेवतात्मा (गुरुः एव देवता ईश्वरः, आत्मा प्रेष्ठश्च यस्य तथादृष्टिः सन्) एकया (केवलया अव्यभिचारिण्या एकान्तिक्या) भक्त्या (इतरज्ञान-कर्ममार्गानुसरणत्यागेन) आभजेत् (सम्यक् सेवेत)।

(घ) चिद्शक्तिमान् परमेश्वर के अवरोह
अथवा अवतार का वर्णन; माया को
जीतने का एकमात्र उपाय—

**साधु-शास्त्र-कृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय।**
**सेइ जीव निस्तरे, माया ताहारे छाड़य॥१२०॥**

**१२०। प॰ अनु॰—**यदि जीव साधु और शास्त्र की कृपा से कृष्णोन्मुख होता है, तब उस जीव का उद्धार होता है तथा माया उसे छोड़ देती है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२०। कृष्णबहिर्मुखता से ही जीव का पतन होता है—यह साधु और शास्त्र की कृपा से ही जाना जाता है एवं उसे जानकर जो जीव पुनः कृष्णोन्मुख होता है, वह निस्तार (उद्धार) प्राप्त करता है एवं माया उसे परित्याग कर (छोड़) देती है।

**अनुभाष्य**

१२०। जीव कृष्ण-विमुख रहकर संसार में सुखभोग में व्यस्त हो जाता है। वैष्णव की कृपा और शास्त्र के अनुग्रह से कर्मफल भोग की वासना से निर्मुक्त होकर उसके कृष्ण की सेवा में उन्मुख होने पर वह भोग करने अथवा मुक्त होने की पिपासा से उद्धार प्राप्त करता है। कृष्णसेवा परायण बुद्धि होने से विषयभोग वासना रूपी माया उसे छोड़ देती है। कृष्ण-सेवोन्मुख होने से तब जीव और अहंग्रहोपासना में मत्त होकर मुक्ति-कामी ज्ञानी अथवा विषय-भोगवासना वशतः फलभोगकामी होकर कृष्ण से भिन्न वस्तुओं में आबद्ध नहीं होता, बल्कि माया के चंगुल से उद्धार प्राप्त करता है।

एकमात्र कृष्ण के शरणागत भक्त ही माया को
जीतने वाले—
श्रीमद्भगवद् गीता (७/१४) में—

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥१२१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२१। इस त्रिगुणमयी मेरी माया से अत्यन्त कष्टपूर्वक पार हुआ जाता है; मुझमें जो शरणागत होता है, वही केवल इस माया से पार हो सकता है।

**अनुभाष्य**

१२१। एषा मम (परमेश्वरस्य) दैवी (अलौकिकी वैष्णवी) गुणमयी (सत्वरजस्तमोमयी) माया (बहिरङ्गा शक्तिः) दुरत्यया (भुक्ति मुक्ति वासना बद्धजीवानां दुरतिक्रमा) हि (एव); मां (स्वरूपशक्तियुक्तं स्वयं भगवन्तं कृष्ण) ये (जनाः) प्रपद्यन्ते (सर्वात्मना

आश्रयं कुर्वन्ति), ते (एव) एतां मायां (जीवविमोहिनीं प्रकृतिं) तरन्ति (अतिक्रामन्ति पराजयन्ते)।

जीव के प्रति अहैतुकी कृपामय अधोक्षज विष्णु के द्वारा अपने अवतार का प्राकट्य—

**मायामुग्ध जीवेर नाहि कृष्णस्मृति-ज्ञान।**
**जीवेरे कृपाय कैला कृष्ण वेद-पुराण॥१२२॥**

**१२२। प० अनु०—**माया से मुग्ध जीव को कृष्ण का स्मृति रूपी ज्ञान नहीं रहता, जीव पर कृपा करके ही कृष्ण ने वेद और पुराणों को प्रकाशित किया है।

**अनुभाष्य**

१२२। मायामुग्ध जीव प्रतिक्षण में प्रत्येक विषय में स्वरूपविभ्रम के कारण अपने भोगफल को प्राप्त करने में लगा रहता है। कभी तो वह बद्ध बुद्धि से फलभोग की कामना से छुटकारे की आकाङ्क्षा करता है, कभी वह फलकामी बनकर अनित्य भोगों को बहुमानन (मान्यता प्रदान) करता है; दोनों अवस्थाओं में ही, उसके माया से ढके होने के कारण उसका कृष्ण स्मरण का अभाव लक्षित होता है। इसलिए परमकरुणामय कृष्ण ने ऐसे भ्रान्तबुद्धि कुविचारपरायण और भोगपरायण व्यक्तियों के अमङ्गल से उद्धार करने के लिये वेद-पुराण आदि प्रकाशित किये हैं।

कृष्ण ही तीन प्रकाश से कृष्णज्ञान देने वाले के रूप में अवतीर्ण—(१) वेद अथवा वेदान्त-भाष्य श्रीमद्भागवत, (२) भागवत-श्रेष्ठ गुरु, (३) अन्तर्यामी—

**'शास्त्र'-'गुरु'-'आत्म'-रूपे आपनारे जानान।**
**'कृष्ण मोर प्रभु, त्राता'—जीवेर हय ज्ञान॥१२३॥**

**१२३। प० अनु०—**श्रीकृष्ण 'शास्त्र', 'गुरु' तथा 'अन्तर्यामी' के रूप में जीव को निज तत्त्व से अवगत कराते हैं, तभी जीव को ज्ञान होता है कि श्रीकृष्ण ही मेरे प्रभु तथा मेरे त्राण करने वाले हैं।

**अनुभाष्य**

१२३। शास्त्र, गुरु और चैत्यगुरु—इन तीन रूपों में भगवान् उदित होकर बद्धजीव के हृदय में 'जीव के प्रभु' अथवा 'जीवों के उद्धार कर्त्ता' इत्यादि भावसमूह को प्रकाशित करा देते हैं।

(ङ) वेद के अपौरुषेय ज्ञान के कारण ग्रन्थकार द्वारा ईश्वर-विश्वासी मात्र को ही प्राग-उक्त तीन प्रकार के प्रमाणों में से सर्व-प्रत्यक्षीभूत वेद अथवा श्रुति की सहायता से अपने वक्तव्य एकमात्र शुद्धभक्ति के श्रेष्ठ-अभिधेय होने का संस्थापन; शास्त्रों में प्रतिपादित तीन प्रकार के अन्वेषणीय तत्व अथवा ब्रह्मवस्तु—

**वेदशास्त्र कहे—'सम्बन्ध',**
**'अभिधेय', 'प्रयोजन'।**
**'कृष्ण'—प्राप्य-सम्बन्ध,**
**'भक्ति'—प्राप्येर साधन॥१२४॥**

कृष्ण ही सम्बन्ध, शुद्धभक्ति ही अभिधेय, प्रेम ही प्रयोजन—

**अभिधेय-नाम—'भक्ति', 'प्रेम'—प्रयोजन।**
**पुरुषार्थ-शिरोमणि प्रेम—महाधन॥१२५॥**

**१२४-१२५। प० अनु०—**वेदशास्त्र सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन के विषय में बतलाते हैं। जीव के प्राप्य कृष्ण ही 'सम्बन्ध', प्राप्य कृष्ण सेवा का साधन ही भक्ति अथवा 'अभिधेय', तथा पुरुषार्थ-शिरोमणि महाधन स्वरूप प्रेम ही 'प्रयोजन' है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२३-१२५। जीव मायामुग्ध होकर कृष्ण स्मृति ज्ञान से वञ्चित हो गया हैं, ऐसा देखकर अपार-करुणामय कृष्ण वेद-पुराण-शास्त्र को प्रकाशित करके उस शास्त्र के रूप में एवं शास्त्रों

के अर्थ के प्रदर्शक गुरु एवं अन्तर्यामी आत्मा के रूप में जीव को अपने तत्व से अवगत कराते है। सभी वेद शास्त्रों में सम्बन्ध-ज्ञान, अभिधेय-ज्ञान और प्रयोजन-ज्ञान की शिक्षा है। जीव के प्राप्य कृष्ण जो तत्व है, वह सम्बन्धज्ञान से प्राप्त होता है। उन कृष्ण को प्राप्त करने के साधन का नाम—'भक्ति' है; उसे 'अभिधेय' कहते हैं। कृष्ण प्राप्ति होने पर 'प्रेम' नामक एक विचित्र व्यापार है, उसका नाम 'प्रयोजन' है।

**अनुभाष्य**

१२५। वेदशास्त्र में 'सम्बन्ध', 'अभिधेय' और 'प्रयोजन'—ये तीन विषय कहे गये हैं। शुद्धजीव के प्राप्य कृष्ण ही 'सम्बन्ध' ; प्राप्य कृष्ण सेवा का साधन ही 'अभिधेय; एवं धर्म-अर्थ-काम-भोग और भोग रहित 'मोक्ष'—इन चारों पुरूषार्थों की अपेक्षा श्रेष्ठ महानधनरूप प्राप्य कृष्णप्रेम ही 'प्रयोजन' है।

साधन भक्ति से साध्य प्रेम को प्राप्त करने की चेष्टा—

**कृष्ण माधुर्य-सेवानन्द-प्राप्तिर कारण।**
**कृष्णे सेवा करे, कृष्णरस-आस्वादन॥१२६॥**

**१२६। प० अनु०—**जीव श्रीकृष्ण के माधुर्य रूपी सेवानन्द को प्राप्ति के लिये कृष्ण की सेवा करता है तथा उसके फलस्वरूप कृष्ण रस (आनन्द) का आस्वादन करता है।

चार प्रकार के अभिधेयों में से सभी शास्त्रों में एकमात्र शुद्ध भक्ति के ही निरापद (भय-रहित) होने तथा अनायास प्राप्त होने का वर्णन; उपमा—सर्वज्ञ अथवा सिद्ध महाजनों का उपदेश—

**इहाते दृष्टान्त—जैछे दरिद्रेर घरे।**
**'सर्वज्ञ' आसि' दुःख देखि' पुछये ताहारे॥१२७॥**

जीव का नित्यसिद्धभाव कृष्णप्रेम—

**'तुमि केने एत दुःखी, तोमार आछे पितृधन।**
**तोमारे ना कहिल, अन्यत्र छाड़िल जीवन॥"१२८॥**

**१२७-१२८। प० अनु०—**इसमें दृष्टान्त है—जैसे किसी दरिद्र व्यक्ति के घर में सर्वज्ञ (भूत, भविष्य और वर्तमान को जानने वाले) ने आकर उसके दुःख को देखकर उससे पूछा—'तुम इतने दुःखी क्यों हो? तुम्हारा तो पिता के द्वारा छोड़ा गया बहुत धन है, क्योकि तुम्हारे पिता ने अन्य किसी स्थान पर शरीर छोड़ा था, इसलिए वे तुम्हें धन के विषय में बतला नहीं पाये'।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२७। जीव की कृष्ण बहिर्मुखता के कारण स्वयं की स्वरूप स्मृति के लुप्त होने पर कृष्ण ने वेद-पुराण आदि का प्रवर्त्तन करके स्वयं को प्रकाशित किया है। दरिद्र और सर्वज्ञ की कथा—उसी की उपमा है।

**अनुभाष्य**

१२७। 'सर्वज्ञ'—भा: ५/५/१०-१३ माधव-भाष्य द्रष्टव्य।

साध्य-प्रेम के साधनभूत भक्ति की अवश्य-कर्त्तव्यता; शास्त्र में इसी का ही विधान—

**सर्वज्ञेर वाक्ये करे धनेर उद्देशे।**
**ऐछे वेद-पुराण जीवे 'कृष्णे' उपदेशे॥१२९॥**

**१२९। प० अनु०—**सर्वज्ञ के वचन जैसे धन के विषय में निर्देश करते हैं, उसी प्रकार वेद-पुराण जीव को 'कृष्ण' के विषय में बतलाते हैं।

जीवों के नित्य सम्बन्धी कृष्ण ही सभी शास्त्रों में उद्दिष्ट—

**सर्वज्ञेर वाक्ये मूलधन अनुबन्ध।**
**सर्वशास्त्रे उपदेशे, 'श्रीकृष्ण'—सम्बन्ध॥१३०॥**

**१३०। प० अनु०—**सर्वज्ञ व्यक्ति के वचनों से जिस प्रकार दरिद्र को मूल धन के विषय में पता चल जाता है, उसी प्रकार सभी शास्त्रों के उपदेश

से जीव को कृष्ण से अपने सम्बन्ध के विषय में पता चल जाता है।

नित्यसिद्ध भाव का प्राकट्य ही बद्धजीव का साधन—

**'बापेर धन आछे'—ज्ञाने, धन नाहि पाय।**
**तबे सर्वज्ञ कहे तारे प्राप्तिर उपाय॥१३१॥**

**१३१। प० अनु०—**'पिता के द्वारा छोड़ा गया धन है'—सर्वज्ञ के वचनानुसार दरिद्र व्यक्ति इसे जानता है, तथापि इतना जानने मात्र से ही उसे धन की प्राप्ति नहीं होती। सर्वज्ञ ही उसे प्राप्ति का उपाय भी बताता है।

अभक्ति मार्ग—(१) भुक्ति (भोग) की प्राप्ति के लिये कर्ममार्ग में विपत्ति की आशङ्का—

**'एइ स्थाने आछे धन'—यदि' दक्षिणे खुदिबे।**
**'भीमरुल-वरुली' उठिबे, धन ना पाइबे॥१३२॥**

**१३२। प० अनु०—**'इस स्थान पर धन है'—इतना बताकर सर्वज्ञ उस दरिद्र से कहता है, किन्तु यदि तुम दक्षिण दिशा की ओर खोदोगे तो भीमरुल-वरुली (क्रमशः लाल तथा पीले रङ्ग के मधुमक्खी के आकार से दोगुने आकार की मक्खियाँ) निकलेंगे और तुम्हें धन की प्राप्ति नहीं होगी।

(२) विभूति-सिद्धि की प्राप्ति हेतु योगमार्ग में विपत्ति की आशङ्का—

**'पश्चिमे' खुदिबे, ताहा 'यक्ष' एक हय।**
**से विघ्न करिबे,—धने हात ना पड़य॥१३३॥**

**१३३। प० अनु०—**यदि तुम पश्चिम दिशा की ओर खोदोगे तो देखोगे कि वहाँ एक यक्ष है, वह विघ्न-बाधा उत्पन्न करेगा, जिससे धन तुम्हारे हाथ नहीं लगेगा।

(३) सायुज्य प्राप्ति के लिये ज्ञान-मार्ग में विपत्ति की आशङ्का—

**'उत्तरे' खुदिले आछे कृष्ण-'अजगरे'।**
**धन नाहि पाबे, खुदिते गिलिबे सबारे॥१३४॥**

**१३४। प० अनु०—**उत्तर दिशा की ओर से खोदने पर देखोगे कि वहाँ काले रङ्ग का अजगर है। तुम्हें धन तो मिलेगा नहीं, बल्कि वही अजगर ही खोदने वालों को निगल जायेगा।

पूर्व अथवा पुराण अथवा नित्य शाश्वत धन कृष्णभक्ति ही एकमात्र विपत्ति-रहित—

**पूर्वदिके ताते माटी अल्प खुदिते।**
**धनेर झारि पड़िबेक तोमार हातेते॥१३५॥**

**१३५। प० अनु०—**पूर्व दिशा की ओर थोड़ी सी मिट्टी खोदने पर ही धन की मटकी तुम्हारे हाथ लगेगी।

### अनुभाष्य

**१३२-१३५। उपमेय** यथा,—पूर्वदिशा की ओर—कृष्णभक्ति, दक्षिण दिशा की ओर—कर्मकाण्ड, पश्चिम दिशा की ओर—सिद्धिकाण्ड (मतान्तर में ज्ञानकाण्ड), उत्तर दिशा की ओर—ज्ञानकाण्ड (मतान्तर में योगकाण्ड)।

इसका उपमान,—यथा, पूर्व दिशा में—पितृधन, दक्षिण दिशा में—भीमरुल-वरुली, पश्चिम दिशा में—यक्ष, उत्तर दिशा में—काला सर्प। दक्षिणा मार्ग का साधन ही फलभोगपरक कर्मकाण्ड; यम के द्वारा दण्डनीय 'दक्षिणा' ग्रहण करके फल का आरोप करते हैं। इस कर्ममार्ग में जीव भोगवासना रूपी भीमरुल-वरुली आदि के द्वारा डंक मारे जाने पर कष्ट प्राप्त करते हैं, इससे उसके भोग की आशा पूर्ण नहीं होती, केवल उत्तरोत्तर वर्धित ही होती है।

उत्तरा-मार्गीय साधन ही सिद्धिवाञ्छा-परायण योगमार्ग है; उसमें कैवल्यरूपी काले रङ्ग का अजगर साँप शुद्धजीव की सत्ता को ग्रास कर लेता है। किसी के मतानुसार, उत्तरमार्गीय साधन ही निष्काम-ज्ञानमार्ग है, वहाँ शुद्धजीव की सत्ता-

ब्रह्मसायुज्य रूपी काले साँप के चंगुल में फंसी हुई है।

यक्ष धन का रक्षाकर्त्ता है, धन को प्रदान करने वाला नहीं। यक्ष के समक्ष प्रार्थना करने वालों का विनाश के अलावा-धन लाभ-दुराशा मात्र है, अर्थात् धन के लोभ से प्रलोभित करके यक्ष अन्त में धन को ग्रहण करने के अभिलाषी व्यक्ति का विनाश करने वाला है; वास्तव में ज्ञान मार्ग में अथवा योगमार्ग में सायुज्य अथवा कैवल्य, दोनों ही जीव की सत्ता के संहारकर्त्ता हैं।

कृष्ण भक्ति ही बद्धजीव का पूर्व अर्थात् सिद्धधन है। उसे प्राप्त करके शुद्धजीव-नित्यकाल के लिये धनी हो जाता है। भक्तिधन-हीन व्यक्ति जड़ीय नश्वर अभावों से ग्रस्त होकर कभी तो कर्म रूपी भीमरुल के डंक से छटपट करता है, धन प्राप्त नहीं करता; पुनः कभी कृष्ण की तरफ पीठ करके अहंग्रोपासना में अथवा कैवल्य के साधन में व्यस्त होकर योग रूपी यक्ष के द्वारा प्रेमधन से वञ्चित होता है; पुनः उत्तर में अर्थात् शुद्धजीव सत्ता से रहित सायुज्य अथवा कैवल्य रूपी साँप के मुख में गिरकर भी धन प्राप्त नहीं करता।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३५। वेद और पुराण शास्त्र में अनेक प्रकार के उपायों की बात स्थान-स्थान पर लिखी है; उसमें किसी ओर भीमरूल-वरूली अर्थात् बोलतारूप (ततैया) कर्मकाण्ड, किसी ओर ज्ञान-काण्ड रूपी यक्ष, किसी ओर काले रङ्ग का अजगर-रूपी योगगत कैवल्य, पुनः, किसी ओर रक्षित धन का पात्र बहुत कम परिश्रम से ही हाथ में आ जाता है। अतएव वेदशास्त्र ने कर्म, ज्ञान और योग को परित्यागकर भक्तिपथ से कृष्ण की प्राप्ति होती है, यह कहा है।

शुद्धभक्ति के बल से कृष्णप्रेम की प्राप्ति
ही सभी शास्त्रों का तात्पर्य—

**ऐछे शास्त्र कहे,—कर्म, ज्ञान, योग त्यजि'।**
**'भक्तये' कृष्ण वश हय, भक्त्ये ताँरे भजि'॥१३६॥**

**१३६। प॰ अनु॰—**इसी प्रकार शास्त्र कहते हैं कि कर्म, ज्ञान तथा योग को त्यागकर भक्ति के द्वारा कृष्ण का भजन करने से वे वश में आ जाते हैं।

भगवान् भक्त के लिये ही प्राप्य; भक्ति के
बल से ही अशुद्ध भी पवित्र—
श्रीमद्भागवत (११/१४/२०-२१) में—

**न साध्यति मां योगो न साख्यं धर्म उद्धव।**
**न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥१३७॥**

१३७। हे उद्धव, मेरी प्रति की गई प्रबला भक्ति जिस प्रकार मुझे वशीभूत कर सकती है, अष्टांग-योग, अभेद- ब्रह्मवाद रूपी सांख्य-ज्ञान, ब्राह्मणों द्वारा स्वशाखा-अध्ययन रूपी स्वाध्याय, सर्वविध तपस्या और त्याग रूपी संन्यास आदि द्वारा मैं उस प्रकार वशीभूत नहीं होता।

**अनुभाष्य**

१३७। आदि सप्तदश परिच्छेद ७६ संख्या द्रष्टव्य।

**भक्त्याहमेकया ग्राह्यः**
**श्रद्धायात्मा प्रियः सताम्।**
**भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा**
**श्वपाकानपि सम्भवात्॥१३८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३८। साधुओं का प्रिय मैं, अनन्य श्रद्धा से उत्पन्न भक्ति द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। भक्ति ही मुझमें निष्ठा रखने वाले चण्डाल का भी जन्मदोष से उद्धार करती है।

### अनुभाष्य

१३८। उद्धव के प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण की उक्ति,—सतां (नित्यसेवकानां सज्जनाना) प्रियः (सेव्यः) आत्मा (प्रेष्ठः) अहम् (स्वयं भगवान् कृष्णः) एकया (अव्यभिचारिण्या, अहैतुक्या) श्रद्धया (श्रद्धापूर्विकया) भक्त्या ग्राह्यः (साध्यः, प्राप्यः, लभ्यः इत्यर्थः); मन्निष्ठा (कृष्णैकसेवनधर्मतत्परा) भक्तिः श्वपाकान् (नीचकुलोद्भवान् जनान्) अपि सम्भवात् (प्राक्तन-दुष्कृति-जनित-शौक्र-जाति-दोषात्) पुनाति।

सभी शास्त्रों में कृष्ण प्राप्ति के साधन-'भक्ति' के ही अभिधेय होने का गीत—

**अतएव 'भक्ति'—कृष्णप्राप्त्येर उपाय।**
**'अभिधेय' बलि' तारे सर्वशास्त्रे गाय॥१३९॥**

**१३९। प० अनु०—**अतएव भक्ति ही कृष्ण-प्राप्ति का उपाय है। सभी शास्त्र इसी 'भक्ति' को ही 'अभिधेय' कहकर गान करते हैं।

दृष्टान्त—

**धन पाइले जैछे सुखभोग-फल पाय।**
**सुखभोग हैते दुःख आपनि पलाय॥१४०॥**

सम्बन्धयुक्त सेवा के फल से कृष्णप्रीति की वृद्धि; उसके साथ-ही-साथ मुक्ति अथवा अनर्थ-निवृत्ति—

**तैछे भक्ति-फले कृष्णे प्रेम उपजय।**
**प्रेमे कृष्णास्वाद हैले भव नाश पाय॥१४१॥**

**१४०-१४१। प० अनु०—**धन प्राप्त होने से जैसे सुखभोग रूपी फल की प्राप्ति होती है तथा सुख-भोग से दुःख अपनी आप भाग जाते है, वैसे ही भक्ति के फल से कृष्ण के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है तथा प्रेम में कृष्णास्वादन होने पर भव नाश हो जाता है।

कृष्णप्रीतिमूलक सेवा का मुख्य फल—कृष्णप्रेमानन्द की प्राप्ति, गौणफल—विमुखता का दूर होना और मुक्ति—

**दारिद्रय-नाश, भव क्षय,—प्रेमेर 'फल' नय।**
**प्रेमसुख-भोग—मुख्य प्रयोजन हय॥१४२॥**

**१४२। प० अनु०—**दरिद्रता का नाश तथा भव नाश—ये दोनों प्रेम के फल नहीं है। प्रेम सुख का भोग ही मुख्य प्रयोजन है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४२। कृष्ण सेवा आस्वादन का मुख्य फल ही प्रेम-सुख है, कृष्ण-बहिर्मुखता ही जीव की दरिद्रता है। इस दरिद्रता का नाश एवं संसार क्षय कृष्ण सेवा आस्वादन के साथ-साथ अवान्तर (गौण) फल के रूप में उदित होता है, वास्तव में वह मुख्य फल नहीं है।

वेद में कृष्ण—सम्बन्ध, भक्ति—अभिधेय, प्रेम-प्रयोजन—

**वेदशास्त्रे कहे सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन।**
**कृष्ण, कृष्णभक्ति, प्रेम,—तिन महाधन॥१४३॥**

**१४३। प० अनु०—**वेदशास्त्र में सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन को क्रमशः कृष्ण, कृष्णभक्ति तथा कृष्ण प्रेम कहा गया है। ये तीनों महाधन हैं।

सम्बन्ध ज्ञान के साथ-ही-साथ भवबन्धन का खुलना—

**वेदादि सकल शास्त्रे कृष्ण—मुख्य सम्बन्ध।**
**ताँर ज्ञाने आनुषङ्गे जाय मायाबन्ध॥१४४॥**

**१४४। प० अनु०—**वेद आदि समस्त शास्त्रों में कृष्ण को मुख्य सम्बन्ध कहा गया है, इसका ज्ञान होने पर माया का बन्धन तो आनुषङ्गिक रूप में अपने आप ही दूर हो जाता है।

समस्त पुराणों और आगमों में विष्णु के ही परमेश्वर होने का वर्णन—
भक्तिरसामृतसिन्धु (२/४/१४२)—में उद्धृत पद्मपुराण के वैशाख-माहात्म्य में यमब्राह्मण-संवाद में—

**व्यामोहाय चराचरस्य जगतस्ते ते पुराणागमा-**
**स्तां तामेव हि देवतां परमिकां जल्पन्तु कल्पावधि।**
**सिद्धान्ते पुनरेक एव भगवान् विष्णुःसमस्तागम-**
**व्यापारेषु विवेचनव्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते॥१४५॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४५। वह-वह पुराण और आगम ग्रन्थसमूह अपने-अपने उद्दिष्ट देवताओं को चराचर के मोह उत्पन्न करने के लिये 'प्रधान' कहकर कल्प काल तक जल्पना करते रहें। उन सभी आगम आदि का भली-भाँति विचार करके देखने पर प्रतीत होता है कि सिद्धान्त के अनुसार विष्णु को ही एकमात्र भगवान् कहकर निश्चित किया गया है।

### अनुभाष्य

१४५। चराचरस्य (स्थिरजङ्गमस्य) जगतः व्यामोहाय (अज्ञानतमोवर्द्धनाय) ते ते पुराणागमः (स्मृहितन्त्रादयः) कल्पावधि (कल्पकालपर्यन्त) तां तां देवताम् एव परमिकां (श्रेष्ठा) जल्पन्तु (कथ्यन्तु इत्युपहासे); पुनः (किन्तु) समस्तागमव्यापारेषु (समस्तानां सकलानाम् आगमानां शास्त्राणां व्यापारेषु प्रयोजनेषु) विवेचनव्यतिकरं (विवेचनस्य व्यापारस्य दूषणत्वेन तदेव स्कन्दपुराणदि-विचारस्य व्यतिकरः आसङ्गः त) नीतेषु (प्रापितेषु सत्सु) सिद्धान्ते (विषये) विष्णुः एव एकः भगवान् (सर्वेश्वरः इति) निश्चीयते (निर्द्धायते, संस्थापयते इत्यर्थः)।

अन्वय और व्यतिरेक (मुख्य और गौण) रूप से समग्र-वेद में कृष्ण ही जानने योग्य और प्रतिपाद्य—

**मुख्य-गौण-वृत्ति, किंवा अन्वय-व्यतिरेके।**
**वेदेर प्रतिज्ञा केवल कहये कृष्णके॥१४६॥**

**१४६। प० अनु०**—मुख्य तथा गौण वृत्ति अथवा अन्वय और व्यतिरेक भाव से वेद केवल कृष्ण के विषय में ही कहते हैं, यही उनकी प्रतिज्ञा है।

### अनुभाष्य

१४६। रुढ़ि और लक्षणा-वृत्ति अथवा अन्वय और व्यतिरेक दर्शन में भी कृष्ण ही वेद के प्रतिपाद्य-विषय के रूप में निर्दिष्ट हैं।

शास्त्र प्रमाण; श्रीमुख की वाणी—
श्रीमद्भागवत (११/२१/४२-४३) में—

**किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत्।**
**इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन॥१४७॥**
**मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते ह्यहम्।**
**एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्।**
**मायामात्रमनुद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति॥१४८॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४७-१४८। वेदवचन समूह किसका विधान करते हैं एवं किसे ही प्रतिपन्न करते हैं, किसे उद्‌देश्य करके विकल्पना करते हैं—वेदों के ऐसे तात्पर्य को मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। मैं कह रहा हूँ कि—मुझे ही वेदवचन समूह साक्षात् विधान और अभिधान करते हैं एवं मुझे ही विकल्पना के द्वारा उक्ति करते हैं। मैं ही सभी वेदार्थों का एकमात्र तात्पर्य हूँ। वेद मायामात्र को विचार करके उसे अन्त में सम्पूर्णरूप से निषेध करके प्रसन्न (विचार आदि करने में शान्त) होते हैं।

### अनुभाष्य

१४७-१४८। वेदों की विधि और निषेध के विषय में उद्धव की जिज्ञासा के फलस्वरूप श्रीकृष्ण ने पहले वैदिक कर्मकाण्ड की फल-श्रुति और बाद में विविध वैदिक छन्द का वर्णन करके बाद में वे स्वयं ही जो गूढ़ रहस्यमय दुर्विज्ञेय समग्र त्रिकाण्डात्मक वेदों के एकमात्र

प्रतिपाद्य विषय और जानने योग्य वस्तु हैं, उस विषय में बतला रहे हैं,—

वृहत्याः वैखर्य्याः श्रुतेः साकल्येन स्वरूपतो दुर्ज्ञेयत्वमुक्त्वा अर्थतोऽपि दुर्ज्ञेयत्वमाह—, किं विधत्ते (कर्म-देव-ज्ञान-त्रिकाण्डात्मक-वेदशास्त्र मध्ये कर्म-काण्डे विधिवाक्यैः किं विदधाति), किम आचष्टे (देवताकाण्डे मन्त्रवाक्येः किं प्रकाशयति कथयतीत्यर्थः), किम् अनूद्य (ज्ञानकाण्डे किम् आश्रित्य) विकल्पयेत् इति (एवम्) अस्याः (श्रुतेः) हृदयं (तात्पर्य) लोके (इह जगति) मत् (मत्तः) अन्य कश्चन् न वेद (जानाति)। (ननु तर्हि त्वं मत्कृपया कथयेति—,) मां (यज्ञरूपं विधिना), विधत्ते, अभिधा-वृत्त्या, मामेव (तत्तेवदेवतारूपं अभिधते, अहम् (एव) विकल्प्य (सन्देहं कृत्वा) अपोह्यते निराक्रियते, तदप्यहमेव, न मत्तः पृथगस्ति)। सर्व-वेदार्थं संक्षेपतः कथयति-, एतावान् एव सर्व-वेदार्थः (सर्वेषां वेदानां तात्पर्यम्)—शब्दः (वेदः) भिदाम् (अवतारादिरुपम्) अनूद्य (उक्त्वा) मायामात्रं (जगत्) प्रतिषिध्य (निषिध्य) तदन्ते (शेषे) मां (परमार्थरूपम्) आस्थाय (आश्रित्य) प्रसीदति (निवृत व्यापारः भवतिः; मां (श्रीकृष्णरूपमेवावलम्बन कृतकृत्यो भवत इत्यर्थः)।

अनन्त स्वरूप कृष्ण की अनन्त-शक्ति का वैभव—

**कृष्णेर स्वरूप—अनन्त, वैभव—अपार।**
**चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीवशक्ति आर॥१४९॥**

**१४९। प० अनु०—**कृष्ण के स्वरूप अनन्त हैं, उनका चित् शक्ति, माया शक्ति तथा जीव शक्ति रूपी वैभव अपार है।

चित् और अचित् जगत—उनकी शक्ति का परिणाम एवं कृष्णश्रित—

**वैकुण्ठ, ब्रह्माण्डगण—शक्ति-कार्य हय।**
**स्वरूपशक्ति शक्ति-कार्येर—कृष्ण समाश्रय॥१५०॥**

**१५०। प० अनु०—**वैकुण्ठ तथा ब्रह्माण्ड आदि कृष्ण की शक्ति का कार्य है। कृष्ण ही स्वरूप शक्ति एवं समस्त शक्तियों के कार्यरूप जगत् के एकमात्र समाश्रय हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५०। स्वरूपशक्ति एवं समस्त शक्तियों का कार्यरूप जगत्,—कृष्ण ही इनके एकमात्र समाश्रय (सम्यक् आश्रय) हैं।

भावार्थदीपिका (श्रीमद्भागवत १०/१/१) में श्रीधर स्वामि-वाक्य—

**दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय-विग्रहम्।**
**श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत्॥१५१॥**

१५१। दशम स्कन्ध में आश्रितों के आश्रय विग्रह स्वरूप श्रीकृष्ण लक्षित हुए हैं। मैं उन श्रीकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध परमधाम और जगद्-धाम को नमस्कार करता हूँ। तात्पर्य यह है कि जगत में दो तत्त्व हैं अर्थात् आश्रय और आश्रित। जिन्हें आश्रय करके समस्त आश्रित तत्त्व वर्त्तमान हैं, वही मूलतत्त्व ही आश्रय है। उस तत्त्व को आश्रय करके जो समस्त तत्त्व हैं, वे सभी आश्रित तत्त्व हैं। सर्ग से मुक्ति तक समस्त आश्रित तत्त्व हैं, अतएव पुरुषावतार और उनके अनुगत समस्त अवतार, समस्त शक्ति, उनके अनुगत जीव और जड़ जगत सभी उन्हीं कृष्ण रूप आश्रय के आश्रित हैं। भागवत में स्तव और आख्यानों के छल से कुछ गौण रूप में एवं साक्षात् उपदेश के स्थान पर साक्षात् आश्रय तत्त्व का ही विचार किया है। अतएव कृष्ण के स्वरूप और उनकी तीन शक्तियों के ज्ञान की आवश्यकता है।

**अनुभाष्य**

१५१। आदि द्वितीय परिच्छेद ९५ संख्या द्रष्टव्य। कृष्ण के स्वरूप का विचार; वे—अद्वयज्ञान,

विभु-सच्चिदानन्द, सर्वावतारी, किशोर और व्रजेन्द्रनन्दन—

**कृष्णेर स्वरूप-विचार शुन, सनातन।**
**अद्वयज्ञान-तत्त्व, व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥१५२॥**
**सर्व-आदि, सर्व-अंशी, किशोर-शेखर।**
**चिदानन्द-देह, सर्वाश्रय, सर्वेश्वर॥१५३॥**

**१५२-१५३। प॰ अनु॰—**हे सनातन, श्री कृष्ण के स्वरूप के विचार को सुनो। कृष्ण अद्वयज्ञानतत्व व्रज में व्रजेन्द्रनन्दन है। वे सबके आदि, सबके अंशी, किशोर-शेखर, चिदानन्द-देह से युक्त, सबके आश्रय तथा सर्वेश्वर हैं।

**अनुभाष्य**

१५२। हे सनातन, कृष्ण के स्वरूप का विचार यह है कि कृष्ण-व्रज धाम में—व्रजपति नन्द के कुमार (पुत्र) हैं। वे अद्वयज्ञानतत्त्व हैं, उनके नाम, रूप, गुण और लीला,—इन चार प्रकार के तत्त्वों में मायाजनित परस्पर भेद अथवा विरोध नहीं देखा जाता अर्थात् कृष्ण के नाम, रूप, गुण और लीला में मायिक भेद-विधि की कोई क्रिया नहीं है।

१५३। **कृष्ण—**समस्त विष्णु तत्त्वों एवं वैष्णव-तत्त्वों के आदि तत्त्व; उन्हीं से ही सभी अंश प्रकटित हुए हैं; वे—पूर्ण किशोर वयस वाले हैं; सच्चिदानन्द विग्रह हैं, सभी के प्रभु हैं एवं समस्त वस्तुओं के आश्रय हैं।

ब्रह्मसंहिता (५/१) में—

**ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।**
**अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥१५४॥**

१५४। सच्चिदानन्दविग्रह श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं; वे स्वयं अनादि एवं सभी के आदि और सर्वकारणों के कारण हैं।

**अनुभाष्य**

१५४। आदि द्वितीय परिच्छेद १०७ संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण ही गोविन्द एवं गोलोकधाम में विराजमान—

**स्वयं भगवान् कृष्ण, 'गोविन्द'—पर-नाम।**
**सर्वैश्वर्यपूर्ण जाँर गोलोक—नित्यधाम॥१५५॥**

**१५५। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। गोविन्द उनका मुख्य नाम है। समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण गोलोक उनका नित्यधाम है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५५। 'पर' नाम,—श्रेष्ठ अर्थात् मुख्य नाम; 'कृष्ण' 'गोविन्द' इत्यादि—भगवान् के मुख्य नाम।

**अनुभाष्य**

१५५। कृष्ण का आवास स्थल—समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण, अविनाशी और नित्यकाल स्थित गोलोक-धाम है।

श्रीमद्भागवत (१/३/२८) में—

**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**
**इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे॥१५६॥**

१५६। राम-नृसिंहादि, पुरुषावतार के अंश अथवा कला हैं। किन्तु कृष्ण स्वयं भगवान् हैं; दैत्यों से पीड़ित लोगों की वे युग-युग में रक्षा करते हैं।

**अनुभाष्य**

१५६। आदि द्वितीय परिच्छेद ६७ संख्या द्रष्टव्य।

तीन प्रकार के अभिधेयों में सम्बन्ध-तत्त्व अद्वयज्ञान कृष्ण की तीन प्रकार की प्रतीति—

**ज्ञान, योग, भक्ति,—तिन साधनेर वशे।**
**ब्रह्म, आत्मा, भगवान्—त्रिविध प्रकाशे॥१५७॥**

**१५७। प॰ अनु॰—**ज्ञान, योग तथा भक्ति—इन तीन प्रकार के साधनों के द्वारा क्रमशः ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्—श्रीकृष्ण इन तीन प्रकार के रूपों में प्रकाशित होते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५७। जो निर्विशेष ज्ञान के द्वारा उस अद्वयतत्त्व का अनुसन्धान करते हैं, उनके निकट निर्विशेष ब्रह्म ही प्रतीत होते हैं। जो अष्टाङ्ग-योग मार्ग से उस परम वस्तु का अनुसन्धान करते हैं, उनके निकट हृददेश में स्थित होकर जगद्गत परमात्मा उदित होते हैं। जो शुद्धभक्ति के द्वारा परम-तत्त्व का साधन करते हैं, वे भगवान् का दर्शन करते हैं।

शास्त्र-प्रमाण—
श्रीमद्भागवत (१/२/११) में

**वदन्ति ततत्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।**
**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते॥१५८॥**

१५८। तत्त्वविदगण अद्वयज्ञान को तत्त्व कहते हैं। उसी अद्वयज्ञान की प्रथम प्रतीति—ब्रह्म, द्वितीय प्रतीति—परमात्मा और तृतीय प्रतीति—भगवान् हैं।

**अनुभाष्य**

१५८। आदि द्वितीय परिच्छेद ११ संख्या द्रष्टव्य।

(१) निर्विशेष ब्रह्म—कृष्ण के अङ्ग की प्रभा—

**ब्रह्म—अङ्गकान्ति ताँर, निर्विशेष-प्रकाशे।**
**सूर्य जेन चर्मचक्षे ज्योतिर्मय भासे॥१५९॥**

**१५९। प॰ अनु॰—**ब्रह्म—उन कृष्ण की अङ्ग-कान्ति है एवं उनका निर्विशेष प्रकाश है। जिस प्रकार सूर्य चर्मचक्षुओं के द्वारा ज्योतिर्मय ही दिखलायी देता है, उसी प्रकार कृष्ण भी निर्विशेष ज्ञानियों के समक्ष निर्विशेष ब्रह्म के रूप में प्रतीत होते हैं।

शास्त्र-प्रमाण—
ब्रह्मसंहिता (५/४०) में—

**यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-**
**कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्।**
**तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं**
**गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥१६०॥**

१६०। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में अशेष वसुधादि ऐश्वर्य द्वारा जो भेद को प्राप्त हो रहे हैं वे निष्कल, अनन्त, अशेषभूत ब्रह्म जिनकी प्रभा से उत्पन्न हुये हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ।

**अनुभाष्य**

१६०। आदि, द्वितीय परिच्छेद १४ संख्या द्रष्टव्य।

(२) परमात्मा—कृष्णांश-वैभव—

**परमात्मा जिंहो, तिंहो कृष्णेर एक अंश।**
**आत्मार 'आत्मा' हन कृष्ण—सर्व-अवतंस॥१६१॥**

**१६१। प॰ अनु॰—**जो परमात्मा हैं, वे भी कृष्ण का ही एक अंश हैं। किन्तु श्रीकृष्ण समस्त आत्माओं के भी आत्मा होने के कारण सर्वश्रेष्ठ हैं।

**अनुभाष्य**

१६१। मायिक अनुभूति के क्रम से सर्वव्यापी परमात्मा को मायिक जगत् के अंश समूह का अंशी कहकर सर्वव्यापक 'परमात्मा' की संज्ञा दी जाती है। किन्तु कृष्ण-समस्त चिद्-अचिद् प्रकाश के और समस्त परमात्माओं के भी 'परमात्मा' होने के कारण सर्वश्रेष्ठ हैं।

कृष्ण ही परमात्मा—
श्रीमद्भागवत (१०/१४/५५) में—

**कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।**
**जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥१६२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६२। अखिल आत्माओं के आत्मस्वरूप के रूप में इन श्रीकृष्ण को जानो; जगत् के हित की कामना से वे यहाँ स्वरूपशक्ति के आश्रय में मनुष्य की भाँति प्रकटित हुए हैं।

**अनुभाष्य**

१६२। परीक्षित के द्वारा कृष्ण को व्रजवासियों के पुत्र और प्राणादि सभी वस्तुओं की अपेक्षा प्रियतम समझने के कारण की जिज्ञासा करने पर श्रीशुकदेव—आत्मा ही सभी प्राणियों को सबसे अधिक प्रियतम और आदरणीय है एवं श्रीकृष्ण ही सभी आत्माओं की आत्मा हैं, अतएव स्वाभाविक रूप से ही वे सभी के आकर्षक और नित्यानन्द प्रदान करने वाले हैं, इसी को कह रहे है,—

त्वम् एनं अखिलात्मनां (सकलदेहिनाम्) आत्मनं (प्राणस्वरूप) कृष्ण अवेहि (जानीहि); यः (कृष्णः) अपि अत्र (जगति) जगद्धिताय (पृथिव्याः मङ्गलाय) मायया (स्वरूपशक्त्या) देही (नरः जीवः) इव आभाति (प्रकाशयति)।

श्रीमद्भगवदगीता (१०/४२) में—

**अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।**
**विष्टभ्याऽमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥१६३॥**

१६३। हे अर्जुन! अधिक क्या कहूँ, मैं ही एक अंश के द्वारा परमात्मा रूप में अखिल जगत् में प्रविष्ट होकर विराजमान हूँ।

**अनुभाष्य**

१६३। आदि द्वितीय परिच्छेद २० संख्या द्रष्टव्य।

(३) भक्तियोग में ही कृष्ण की पूर्ण भगवत्-प्रतीति—

**'भक्त्ये' भगवानेर अनुभव—पूर्णरूप।**
**एकइ विग्रहे ताँर अनन्त स्वरूप॥१६४॥**

**१६४। प॰ अनु॰**—भक्ति के द्वारा भगवान् का पूर्ण रूप अनुभव होता है। एक ही विग्रह में उनके अनन्त स्वरूप प्रतिभात होते हैं।

एक ही कृष्ण के तीन रूप—(क) स्वयं रूप, (ख) तदेकात्मरूप और (ग) आवेशरूप—

**स्वयंरूप, तदेकात्मरूप, आवेश—नाम।**
**प्रथमेइ तिनरूपे रहेन भगवान्॥१६५॥**

**१६५। प॰ अनु॰**—भगवान् श्री कृष्ण सर्वप्रथम स्वयं रूप, तदेकात्मरूप तथा आवेश रूप—इन तीन रूपों में परिदृष्ट होते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६४-१६५। भक्ति पूर्वक भगवान् की उपासना करने से उनका पूर्ण रूप अनुभूत होता है, उन एक नित्यविग्रह में अनन्तस्वरूप प्रकाशित हैं। भगवान् पहले 'स्वयंरूप' 'तदेकात्मरूप' और 'आवेशरूप'—इन तीन रूपों में परिदृष्ट होते हैं। स्वयंरूप में 'स्वयं और प्रकाश'—इन दो रूपों में उनकी स्फूर्त्ति होती है। उनमें से स्वयंरूप व्रज में गोपमूर्त्ति के रूप में श्रीकृष्ण उदित हुए। भागवतामृत के मतानुसार,—कृष्ण की गोपमूर्त्ति ही स्वयंरूप है; क्योकि, वह उनके और किसी भी रूप की अपेक्षा नहीं करती। उनका जो रूप स्वयंरूप से अभेद है, किन्तु आकृति और वैभव आदि में भिन्न है, उसे ही 'तदेकात्मरूप' कहते हैं। जिन सब जीवों में भगवान् की शक्ति प्रवेश करके उनके माध्यम से महद् (श्रेष्ठ) कार्य करती है, वे ही भगवान् के 'आवेश' रूप हैं।

**अनुभाष्य**

१६५। **स्वयंरूप—**(श्रीरूपप्रभु-कृत लघुभागवतामृत के पूर्व खण्ड का १२वा श्लोक)—''अनन्यापेक्षि यद्रूपं स्वयंरूपः स उच्यते'' कृष्ण का जो रूप अन्य रूपों की अपेक्षा नही करता अर्थात् स्वतः सिद्ध कृष्णरूप को ही 'स्वयंरूप' कहा जाता है।

**तदेकात्मरूप—**(लघुभागवतामृत के पूर्वखण्ड में १४ श्लोक)—''यद्रूपं तदभेदेन स्वरुपेण विराजते। आकृत्याभिरन्यादृक स तदेकात्मरूपकः॥'' जो रूप स्वयं रूप के साथ एक रूप में ही प्रकाशित होता है, किन्तु आकृति और वैभव आदि में (अङ्ग-सन्निवेश और चरित्रादि में) भिन्न रूप में प्रकाशित होता है उसे 'तदेकात्मरूप कहते हैं; वह—स्वांश और विलास के भेद से दो प्रकार का है।

**आवेशरूप—**(लघुभागवतामृत के पूर्वखण्ड का १८वा श्लोक)—''ज्ञानशक्तयादिकलया यत्राविष्टो-जनादर्दनः। त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः॥'' जिन सब जीवों में जनार्द्दन-ज्ञान-शक्ति आदि कला द्वारा आविष्ट होते हैं, उन सब महत्तम जीवों को 'आवेश' कहा जाता है।

(क) 'स्वयंरूप—दो प्रकार के; (१) 'स्वयं रूप' व्रजेन्द्रनन्दन और (२) 'स्वयं प्रकाश'—

**'स्वयं रूप', 'स्वयं प्रकाश',—दुइरूपे स्फूर्ति।**
**स्वयं रूपे—एक 'कृष्ण' व्रजे गोपमूर्त्ति॥१६६॥**

**१६६। प॰ अनु॰—**स्वयं रूप में स्वयं और प्रकाश—इन दो रूपों में कृष्ण की स्फूर्ति होती है। उनमें से श्रीकृष्ण स्वयं रूप में व्रज में गोपमूर्ति के रूप में भी उदित हैं।

कृष्ण स्वरूप के छह प्रकार के विलास में से (२) स्वयं प्रकाश दो प्रकार के—(क) प्राभव, और (ख) वैभव; रास में—प्राभव प्रकाश, महिषी-विवाह में—वैभव प्रकाश—

**'प्राभव'-'वैभव'-रूपे द्विविध प्रकाशे।**
**एक-वपु बहु रूप जैछे हैल रासे॥१६७॥**
**महिषी-विवाहे हैल बहुविध मूर्त्ति।**
**'प्राभव-प्रकाश'—एइ शास्त्र-परसिद्धि॥१६८॥**

**१६७-१६८। प॰ अनु॰—**भगवान् का स्वयं प्रकाश दो प्रकार का होता है—प्राभव-प्रकाश तथा वैभव-प्रकाश। एक ही विग्रह जैसे रास में बहुत से रूपों में प्रकाशित हुआ एवं महिषियों के साथ विवाह के समय जैसे अनेक मूर्त्ति प्रकाशित हुई, वे स्वरूप शास्त्रों में प्राभव-प्रकाश के नाम से प्रसिद्ध हैं।

वे आत्माराम गणों के भी मन का हरण करने वाले, कभी भी प्राकृत नहीं—

**सौभर्य्यादि-प्राय सेइ कायव्यूह नय।**
**कायव्यूह हैले नारदेर विस्मय ना हय॥१६९॥**

**१६९। प॰ अनु॰—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१६९। सौभरि आदि ऋषियों ने योगबल से कायव्यूह होकर अपना-अपना कार्य सम्पन्न किया था। किन्तु कृष्ण के द्वारा बहुत सी मूर्त्तियों को प्रकाशित करना वैसा नहीं है; क्योंकि, योगमार्ग के कायव्यूह को देखकर नारद में विस्मय उत्पन्न नहीं होता।

श्रीमद्भागवत (१०/६९/२)—

**चित्रं वतेतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक।**
**गृहेषु द्वयष्ट साहस्त्रं स्त्रिय एक उद्वावरत्॥१७०॥**

१७०। यह बहुत आश्चर्य का विषय है कि एक ही श्रीकृष्ण ने एक-एक स्वरूप से पृथक-पृथक महलों में एक ही साथ सोलह हजार स्त्रियों के साथ विवाह किया।

### अनुभाष्य

१७०। आदि प्रथम परिच्छेद ७४ संख्या द्रष्टव्य।

(ख) वैभव-प्रकाश की संज्ञा—

**सेइ वपु, सेइ आकृति पृथक यदि भासे।**
**भावावेश-भेदे नाम 'वैभव प्रकाशे'॥१७१॥**

**१७१। प॰ अनु॰—**स्वयं रूप की देह से जहाँ

आकृति पृथक प्रतीत होती है एवं जहाँ भाव तथा आवेश का भेद है—उसे वैभव-प्रकाश कहते हैं।

एक ही अंशी कृष्ण के असख्य प्राभव और वैभव-प्रकाश में अचिन्त्य शक्ति हेतु परस्पर में नाम-रूपादि की विचित्रता—

**अनन्त-प्रकाशे कृष्णेर नाहि मूर्त्तिभेद।**
**आकार-वर्ण-अस्त्र-भेदे नाम-विभेद॥१७२॥**

**१७२। प० अनु०—**'प्राभव' एवं 'वैभव' प्रकाशों में अनन्त रूपों में श्री कृष्ण-स्वरूप के प्रकाशित होने पर भी-उन अनन्त रूपों के मूल-तत्त्व मूर्त्तिमान् श्रीकृष्ण में कोई भी भेद एवं पार्थक्य नहीं है। अनन्त मूर्त्ति होने पर भी वे एक मूर्त्ति हैं। आकार-वर्ण तथा अस्त्र के भेद से उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं।

श्रीमद्भागवत (१०/४०/७) में—

**अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते।**
**यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्त्येकमूर्तिकम्॥१७३॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१७३। (सात्वत और शैव तन्त्र आदि में) अभिहित (उल्लिखित) विधि के द्वारा जो संस्कृतात्मा हैं, वे बहुत-सी मूर्त्तियों में एकमूर्त्तिस्वरूप आपका ही भजन करते हैं।

### अनुभाष्य

१७३। भगवान् राम और कृष्ण को रथ में चढ़ाकर गोकुल से मथुरा लेकर जाने के मार्ग में महात्मा अक्रूर यमुना के जल में प्रवेश करके वहाँ विष्णुलोक में शेष, नारद और चतुःसन आदि के साथ परम ऐश्वर्यमय भगवान् को देखकर स्तव करते-करते सांख्य-योग त्रयी मार्ग का विषय बतलाकर वैष्णव और शैव-पाशुपतादि दीक्षा में दीक्षित व्यक्तियों के उपासना-मार्ग के सम्बन्ध में वर्णन कर रहे हैं,—

अन्ये च (जनाः) ते (त्वया) अभिहितेन (कथितेन) विधिना (पाञ्चरात्रिक-विधानादिना) संस्कृतात्मनः (वैष्णव-शैव-दीक्षया-दीक्षिताः संस्कृताः आत्मानः येषां ते) त्वन्मयाः (त्वन्मयतेन आत्मानम् अप्राकृतसेवन धर्मपरं भावयन्तः त्वदेक-प्रधाना इति वा) बहुमूर्त्त्यै-यैकमूर्त्तिकं (वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्ध- भेदेन तथा युग-मन्वन्तर-लीलावतारभेदेन च बहुमूर्त्ति महानारायणरूपेण मूर्त्तिकं च त्वा) वै (एव) यजन्ति (अर्चयन्ति)।

(ख) वैभव प्रकाश—(१) श्रीबलराम—

**वैभव प्रकाश कृष्णेर—श्री बलराम।**
**वर्णमात्र-भेद, सब—कृष्णेर समान॥१७४॥**

**१७४। प० अनु०—**श्रीबलराम कृष्ण के वैभव-प्रकाश हैं। कृष्ण से इनके केवल वर्ण का भेद है और सब कृष्ण के समान ही है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१७४। स्वयंरूप, तदेकात्मरूप, आवेश, वैभव, प्राभव इत्यादि समझने के लिये परस्पर का सम्बन्ध संक्षेप में नीचे प्रदर्शित हुआ। श्रीकृष्ण के आदि तीन रूप—

१) **स्वयंरूप,**—व्रज में गोपमूर्त्ति श्रीकृष्ण, २) तदेकात्मरूप,—क) स्वांशक,—१) कारणब्धि-शायी, गर्भोदशायी, क्षीरोदशायी, २) मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि। (ख) विलास—१) प्राभव,—वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध; (२) वैभव,—चौबीस मूर्त्ति; (क) आवरण-चतुर्व्यूहगत वासुदेव आदि चार मूर्त्ति; (ख) प्रत्येक की तीन-तीन मूर्त्ति करके बारह मूर्त्ति—बारह महीनों और तिलक के आदर्श देवता ; (ग) इन चारों की पुरुषोत्तम और अच्युत आदि आठ विलासमूर्त्ति, इन चौबीस मूर्त्तियों का ही अस्त्रधारण के भेद से भिन्न-भिन्न नाम है।

(२) कृष्णरूपी द्विभुज वासुदेव अथवा देवकीनन्दन, (३) कृष्णरूपी चतुर्भुज वासुदेव अथवा देवकीनन्दन—

**वैभवप्रकाश जैछे देवकी-तनुज।**
**द्विभुज-स्वरूप कभु, कभु हन चतुर्भुज॥१७५॥**

**१७५। प० अनु०—**श्रीदेवकी नन्दन भी श्रीयशोदा नन्दन-कृष्ण का 'वैभव-प्रकाश' है। वे कभी तो द्विभुज स्वरूप प्रकाशित करते हैं तथा कभी चतुर्भुज स्वरूप से प्रकाशित होते हैं।

उक्त चतुर्भुज—उक्त द्विभुज का ही प्रकाश-विग्रह—

**जे काले द्विभुज, नाम—वैभवप्रकाश।**
**चतुर्भुज हैले, नाम—प्राभव विलास॥१७६॥**

**१७६। प० अनु०—**जिस समय वे द्विभुज होते हैं, तब उनका नाम वैभव-प्रकाश होता है। जब वे चतुर्भुज होते हैं, तब उनका नाम प्रभाव विलास होता है।

व्रजेन्द्रनन्दन में गोप-अभिमान और वासुदेव में क्षत्रिय-अभिमान—

**स्वयं रूपेर गोपवेश, गोप-अभिमान।**
**वासुदेवेर क्षत्रिय-वेश, 'आमि—क्षत्रिय'-ज्ञान॥१७७॥**

**१७७। प० अनु०—**स्वयं रूप में गोपवेश तथा गोप-अभिमान होता है। वासुदेव में क्षत्रिय वेश तथा मैं क्षत्रिय हूँ—ऐसा ज्ञान रहता है।

वासुदेव की अपेक्षा नन्दनन्दन में चार अधिक चमत्कारिताएँ—

**सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य, वैदग्ध्य-विलास।**
**व्रजेन्द्रनन्दने इँहा अधिक उल्लास॥१७८॥**

**१७८। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

### अनुभाष्य

१७८। वसुदेव नन्दन के सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य और वैदग्ध्य विलास की अपेक्षा नन्दनन्दन के यह चार विलास अधिक उल्लास से युक्त हैं।

नन्दनन्दन के माधुर्य से वासुदेव भी मुग्ध और आकृष्ट—

**गोविन्देर माधुरी देखि' वासुदेवेर क्षोभ।**
**से माधुरी आस्वादिते उपजय लोभ॥१७९॥**

दृष्टान्तस्थल—मथुरा और द्वारका में उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण के वचन—

**मथुराय जैछे गन्धर्वनृत्य-दरशने।**
**पुनः द्वारकाते जैछे चित्र-विलोकने॥१८०॥**

**१७९-१८०। प० अनु०—**गोविन्द के माधुर्य को देखकर वासुदेव भी क्षुब्ध हो जाते हैं। मथुरा में गन्धर्व नृत्य को देखकर तथा पुनः द्वारका में कृष्ण के अङ्कित चित्र को देखकर वासुदेव में गोंविन्द की माधुरी का आस्वादन करने का लोभ उत्पन्न हो जाता है।

### अनुभाष्य

१७९। नन्दनन्दन के लोभनीय माधुर्य को देखकर वासुदेव क्षुब्ध (चञ्चल) हो जाते हैं ; उस माधुरी के आस्वादन में लुब्ध होने का प्रसङ्ग मथुरा में गन्धर्व नृत्य दर्शन में और द्वारका में कृष्ण के चित्र के अवलोकन में परिव्यक्त हुआ है।

ललितमाधव (४/१९) में उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण के वचन—

**उद्गीर्णाद्भुत-माधुरी-परिमलस्याभीरलीलस्य मे**
**द्वैतं हन्त समीक्षयन् मुहुरसौ चित्रीयते चारणः।**
**चेतः केलि-कुतूहलोतरलितं सत्यं सखे मामेकं**
**यस्य प्रेक्ष्य स्वरूपतां व्रजवधूसारुप्यमन्विच्छति॥१८१॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१८१। हे सखे, यह चारण (बाजीगर) मेरे द्वितीय स्वरूप की भाँति अद्भुत-माधुरी की सुगन्ध से युक्त गोपलीलात्मिका मेरी लीला को चित्रित कर रहा है। मेरा चित्त लीला के कोतुहल के द्वारा द्रवीभूत होकर मेरे अपने चरित्र का दर्शन

करते हुए व्रजवधुओं के सारूप्य अर्थात् उनके जैसे स्वरूप की इच्छा कर रहा है।

**अनुभाष्य**

१८१। हे सखे, असौ चारणः (नटः) उद्‌गीर्णा-द्भुतमाधुरी परिमलस्य (उद्‌गीर्णः उत्थितः निर्गतः अद्‌भुतायाः अपूर्वायाः माधुर्याः परिमलः सुगन्धः यस्य तस्य) आभीरलीलस्य (गोपनन्दनन्दनलीला-मयस्य) मे (मम) द्वैतं (द्वितीयमूर्त्ति) समीक्षयन् (दर्शयन्) मुहुः (पुनः पुनः) चित्रीयते ; यस्य स्वरूपतां (सादृश्यं) प्रेक्ष्य (दृष्ट्वा) हन्त (अहो) मामकं (मदीयं) चेतः (मनः) सत्यं केलिकुतुहलो-त्तरलितं (केलिषु व्रजजनोचितक्रीड़ासु कुतुहलाय उत्सुक्याय उतरलितम् अतिशयेन द्रवीभूतं सत्) व्रजवधूसारूप्यं (श्रीवार्षभानव्याः सदृशरूपता) अन्विच्छति (वाञ्छति)।

ललितमाधव (८/३४) में—

**अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी**
**स्फुरतु मम गरीयानेष माधुर्यपूरः।**
**अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः**
**सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव॥१८२॥**

१८२। श्रीकृष्ण कहते हैं,—आहा! यह प्रगाढ़-माधुर्य-चमत्कारकारी अविचारित-पूर्व चित्रित श्रेष्ठ पुरुष कौन है? जिसे श्रीराधिका की भाँति लुब्ध चित्त होकर मैं इनका बलपूर्वक आलिङ्गन करने का इच्छुक हो रहा हूँ।

**अनुभाष्य**

१८२। आदि चतुर्थ परिच्छेद १४६ संख्या द्रष्टव्य।

(ख) तदेकात्मरूप की संज्ञा—

**सेइ वपु भिन्नाभासे किछु भिन्नाकार।**
**भावावेशाकृति-भेदे 'तदेकात्म'-नाम ताँर॥१८३॥**

**१८३। प० अनु०—**जब कृष्ण का वह शरीर किञ्चित भिन्न रूप में तथा कुछ भिन्न आकार में प्रकट होता है, भाव, आवेश और आकृति के भेद के कारण वह तदेकात्म कहलाता है।

वह दो प्रकार का—(१) विलास
और (२) स्वांश—

**तदेकात्मरूपे 'विलास', 'स्वांश',—दुइ भेद।**
**विलास, स्वांशेर भेदे विविध विभेद॥१८४॥**

**१८४। प० अनु०—**तदेकात्मरूप के अन्तर्गत विलास तथा स्वांश—यह दो भेद होते हैं। विलास तथा स्वांश के भेद से विविध विभेद होते हैं।

**अनुभाष्य**

१८४। **विलास,—**आदि प्रथम परिच्छेद ७७ संख्या द्रष्टव्य।

**स्वांश—**लघुभागवतामृत में पूर्वखण्ड में १७ श्लोक—"तादृशो न्यूनशक्तिं यो व्यनक्ति स्वांश ईरितः। सङ्कर्षणादि र्मत्स्यादिर्यथा तत्त्वत्स्वधामसु॥" स्वयंरूप के साथ अभिन्न होकर भी जो विलास की अपेक्षा न्यून (बहुत कम) शक्ति प्रकाश करते हैं, उन्हें 'स्वांश' कहते हैं। जैसे अपने-अपने धाम में विराजमान सङ्कर्षण आदि पुरुषावतार और मत्स्य आदि लीलावतार, मन्वन्तरावतार और युगावतारगण।

दो प्रकार के विलास—(क) प्राभव और
(ख) वैभव—

**प्राभव-वैभव-भेदे विलास—द्विधाकार।**
**विलासेर विलास-भेद—अनन्त प्रकार॥१८५॥**

**१८५। प० अनु०—**पुनः विलास प्राभव तथा वैभव के भेद से दो प्रकार का होता है। विलास के विलास भेद भी असंख्य प्रकार के हैं।

(क) प्राभवविलास—मथुरा और द्वारका-पुरी में
आदि चतुर्व्यूह की चार मूर्त्तियाँ—

**प्राभव विलास—वासुदेव, सङ्कर्षण।**
**प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,—मुख्य चारिजन॥१८६॥**

**१८६। प० अनु०—**वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—ये मुख्य चारजन प्राभव-विलास कहलाते हैं।

उनमें से एक मूर्त्ति ही बलराम—व्रज में गोपाभिमानी और पुर में क्षत्रियाभिमानी; विलास-संज्ञा का कारण—

**व्रजे गोपभाव रामेर, पुरे क्षत्रिय-भावन।**
**वर्ण-वेश-भेद, ताते 'विलास' ताँर नाम॥१८७॥**

**१८७। प० अनु०—**व्रज में बलराम का गोपभाव है तथा मथुरा और द्वारका में क्षत्रिय होने का अभिमान है। कृष्ण से वर्ण तथा वेश का भेद होने के कारण उसका नाम विलास है।

वैभव-प्रकाश के रूप में और प्राभव विलास (आदि चतुर्व्यूह) के रूप में गोप और क्षत्रिय भाव के भेद से एक ही बलराम—

**वैभवप्रकाशे आर प्राभवविलासे।**
**एकइ मूर्त्त्ये बलदेव भाव-भेदे भासे॥१८८॥**

**१८८। प० अनु०—**वैभव प्रकाश के रूप में और प्राभव विलास के रूप में भाव के भेद से एक ही बलदेव प्रकाशित होते है।

**अनुभाष्य**

१८८। श्रीबलदेव—कृष्ण के वैभव प्रकाश; वही आदि-चतुर्व्यूह वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध,—इन चार प्राभव विलासों में भावभेद से प्रकाशित हैं।

प्राभव-विलास आदि-चतुर्व्यूह ही समग्र चतुर्व्यूहरूपी वैभव विलास गणों का कारण—

**आदि-चतुर्व्यूह—केह नाहि ईँहार सम।**
**अनन्त चतुर्व्यूहगणेर प्राकट्य-कारण॥१८९॥**

**१८९। प० अनु०—**आदि चतुर्व्यूह के समान कोई नहीं है अर्थात् वह अद्वितीय है। अन्यान्य अनन्त चतुर्व्यूहों के प्राकट्य का कारण भी आदि चतुर्व्यूह ही है।

**अनुभाष्य**

१८९। अनन्त चतुर्व्यूह के गण आदि-चतुर्व्यूह के समान नहीं हैं; आदि चारव्यूह—प्राभवविलास, अन्य चार व्यूहगण—वैभवविलास हैं; वैभवविलास के प्राकट्य प्राप्ति का कारण ही प्राभव-विलास है।

वे ही पुरी (मथुरा और द्वारका धाम) के अधीश्वर—

**कृष्णेर एइ चारि प्राभवविलास।**
**द्वारका-मथुरा-पुरे नित्य ईँहार वास॥१९०॥**

**१९०। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के ये चार प्राभव-विलास ही द्वारका तथा मथुरा पुरी में नित्य निवास करते हैं।

(१) आदि चतुर्व्यूह से ही नाम और अस्त्र की विचित्रता से २४ प्रकार के 'वैभवविलास'—

**एइ चारि हैते चब्बिश मूर्ति परकाश।**
**अस्त्रभेदे नाम भेद—वैभव विलास॥१९१॥**

**१९१। प० अनु०—**इन चारों से ही चौबीस मूर्त्तियाँ प्रकाशित होती हैं। चारों हाथों में धारण करने वाले अस्त्रों के भेद से इनके नाम में भेद हो जाता है। ये वैभव-विलास कहलाते हैं।

(क) पुर से आदि चतुर्व्यूह के साथ कृष्ण ही वैकुण्ठ में द्वितीय चतुर्व्यूह के साथ नारायण रूप में विलास विग्रह—

**पुनः कृष्ण चतुर्व्यूह लञा पूर्वरूपे।**
**परव्योम-मध्ये बैसे नारायणरूपे॥१९२॥**
**ताँहा हैते पुनः चतुर्व्यूह-परकाश।**
**आवरण रूपे चारिदिके जाँर वास॥१९३॥**

**१९२-१९३। प० अनु०—**पुनः कृष्ण चतुर्व्यूह

को अपने साथ पहले की भाँति लेकर परव्योम में नारायण के रूप में वास करते हैं। उनसे पुनः चतुर्व्यूह प्रकाशित होता है, जो आवरण के रूप में चारों ओर वास करते हैं।

**अनुभाष्य**

१९०-१९२। परव्योम के ऊपरी भाग में गोलोक के तीन प्रकार के प्रकोष्ठों में मथुरा और द्वारकापुरी में कृष्ण का प्राभव विलास नित्य अवस्थित है। गोकुल में वैभव प्रकाश बलदेव नित्य विराजमान हैं। चार प्राभवविलास में से प्रत्येक के चारों हाथों में अस्त्र के भेद से चौबीस मूर्त्तियों के रूप में वैभव विलास प्रकाशित हैं। ऊपर वाले भाग गोलोक के निम्नभाग में परव्योम में कृष्ण ही चतुर्भुजयुक्त होकर नारायण रूप में विराजमान हैं।

१९३। परव्योमनाथ नारायण से पुनः आवरण रूप में चारों ओर अनन्त चतुर्व्यूह प्रकाशित हैं।

(ख) द्वितीय चतुर्व्यूह में प्रत्येक का तीन-मूर्त्ति के रूप में प्रकाश-विग्रह—
बारह मास और बारह तिलक के बारह देवता—

**चारिजनेर पुनः पृथक तिन तिन मूर्त्ति।**
**केशवादि जाहा हैते विलासेर पूर्त्ति॥१९४॥**

**१९४। प० अनु०—**चारों पुनः पृथक-पृथक तीन-तीन मूर्त्ति धारण करते है। जिससे केशव आदि विलास-रूपों की पूर्त्ति होती है।

इन बारह मूर्त्तियों के वैभव-विलास का परिचय—

**चक्रादि-धारण-भेदे नाम-भेद सब।**
**वासुदेवेर मूर्त्ति—केशव, नारायण, माधव॥१९५॥**
**संकर्षणेर मूर्त्ति—गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन।**
**ए अन्य गोविन्द—नहे व्रजेन्द्रनन्दन॥१९६॥**
**प्रद्युम्नेर मूर्त्ति—त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर।**
**अनिरुद्धेर मूर्त्ति—हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर॥१९७॥**

**१९५-१९७। प० अनु०—**चक्र आदि धारण के भेद से सबमें नाम का भेद आ जाता है। वासुदेव की मूर्त्ति—केशव, नारायण तथा माधव है। सङ्कर्षण की मूर्त्ति—गोविन्द, विष्णु तथा मधुसूदन है। सङ्कर्षण की मूर्त्ति के रूप में वर्णित गोविन्द अन्य गोविन्द हैं, व्रजेन्द्रनन्दन नहीं। प्रद्युम्न की मूर्त्ति—त्रिविक्रम, वामन तथा श्रीधर है और अनिरुद्ध की मूर्त्ति हृषिकेश, पद्मनाभ और दामोदर है।

वे ही बारह मासों के बारह देवता—

**द्वादश-मासेर देवता—एइ बार जन।**
**मार्गशीर्षे—केशव, पौषे—नारायण॥१९८॥**
**माघेर देवता—माधव, गोविन्द—फाल्गुने।**
**चैत्रे—विष्णु, वैशाखे—मधुसूदने॥१९९॥**
**ज्येष्ठे—त्रिविक्रम, आषाढ़े—वामन देवेश।**
**श्रावणे—श्रीधर, भाद्रे—देव हृषीकेश॥२००॥**
**आश्विने—पद्मनाभ, कार्तिके—दामोदर।**
**'राधा-दामोदर' अन्य व्रजेन्द्र-कोमर॥२०१॥**

**१९८-२०१। प० अनु०—**बारह मासों के देवता—यही बारह जन हैं। मार्गशीर्ष के देवता केशव, पौष के नारायण, माघ के माधव, फाल्गुन के गोविन्द, चैत्र के विष्णु, वैशाख के मधुसूदन, ज्येष्ठ के त्रिविक्रम, आषाढ़ के वामनदेव, श्रावण के श्रीधर, भाद्र के हृषीकेश, आश्विन के पद्मनाभ तथा कार्तिक के दामोदर है। ये दामोदर व्रजेन्द्र नन्दन राधा-दामोदर से भिन्न हैं।

पुनः वही बारह तिलक
मन्त्रों के बारह देवता—

**द्वादश-तिलक-मन्त्र एइ द्वादश नाम।**
**आचमने एइ नामे स्पर्शि तत्ततस्थान॥२०२॥**

**२०२। प० अनु०—**बारह तिलक के मन्त्र भी यही बारह नाम हैं। आचमन करते समय इन

नामों का उच्चारण करते हुए ही उन-उन स्थानों को स्पर्श करते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०२। **आचमन—**आह्निक पूजा के बाद मुख में जिस जल स्पर्शरूप आचमन का विधान है, वह।

**अनुभाष्य**

२०२। बारह तिलकमन्त्रों में बारह विष्णुनाम—''ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे। वक्षः स्थले माधवन्तु गोविन्दं कण्ठकूपके॥ विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्। त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके॥ श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशन्तु कन्धरे। पृष्ठे च पद्मनाभञ्च कट्यां दामोदरं न्यसेत्॥''

**वैष्णवाचमन** (हः भः विः तृतीय विः १२० संख्या)—''त्रिः पाने केशवं नारायणं माधवमप्यथ। प्रक्षालने द्वयोः पाण्योर्गोविन्दं विष्णुमप्युभौ॥ मधुसूदनमेकञ्च मार्जनेऽन्यं त्रिविक्रमम्। उन्मार्जनेऽप्यधरयोर्वामन-श्रीधरावुभौ॥ प्रक्षालने पुनः पाण्योर्हृषीकेशञ्च पादयोः। पद्मनाभं प्रोक्षणे तु मूर्ध्नोनोदामोदरं ततः॥ वासुदेवं मुखे सङ्कर्षणं प्रद्युम्नमित्युभौ। नासयोर्नेत्रयुगलेऽनिरुद्धं पुरुषोत्तमम्॥ अधोक्षजं नृसिंहञ्च कर्णयानाभितोऽच्युतम्। जनार्द्दनञ्च हृदये उपेन्द्रं मस्तके ततः॥ दक्षिणे तु हरिं बाहौ वामे कृष्णं यथाविधि। नमोऽन्तञ्च चतुर्थ्यन्तमाचमेत् क्रमतो जपन्॥''

(ग) द्वितीय चतुर्व्यूह में प्रत्येक के दो मूर्त्ति करके विलास-विग्रह—आठ वैभवविलास—

**एइ चारिजनेर विलास-मूर्त्ति आर अष्ट जन।**
**ताँ सबार नाम कहि, शुन, सनातन॥२०३॥**
**पुरुषोत्तम, अच्युत, नृसिंह, जनार्द्दन।**
**हरि, कृष्ण, अधोक्षज, उपेन्द्र,—अष्टजन॥२०४॥**
**वासुदेवेर विलास दुइ—अधोक्षज, पुरुषोत्तम।**
**सङ्कर्षणेर विलास—उपेन्द्र, अच्युत, दुइजन॥२०५॥**
**प्रद्युम्नेर विलास—नृसिंह, जनार्द्दन।**
**अनिरुद्धेर विलास—हरि, कृष्ण, दुइजन॥२०६॥**

**२०३-२०६। प० अनु०—**इन चारों की विलास मूर्त्ति और आठ जन हैं। हे सनातन—सुनो, मैं उन सबका नाम बतला रहा हूँ। ये आठ विलास-मूर्त्ति हैं—पुरुषोत्तम, अच्युत, नृसिंह, जनाद्र्दन, हरि, कृष्ण, अधोक्षज और उपेन्द्र। वासुदेव के दो विलास—अधोक्षज और पुरुषोत्तम, सङ्कर्षण के दो विलास—उपेन्द्र और अच्युत, प्रद्युम्न के दो विलास—नृसिंह और जनाद्र्दन तथा अनिरुद्ध कि दो विलास—हरि तथा कृष्ण हैं।

प्राभव विलास आदि-चतुर्व्यूह का ही विलास—वैभव-विलास; अस्त्र के भेद से नाम की विचित्रता—

**एइ चब्बिश मूर्त्ति—वैभव विलास प्रधान।**
**अस्त्रधारण-भेदे धरे भिन्न-भिन्न नाम॥२०७॥**

**२०७। प० अनु०—**ये चौबीस रूप भगवान् के मुख्य वैभव-विलास हैं। अस्त्र को धारण करने के भेद से इनके भिन्न-भिन्न नाम होते हैं।

वेश और आकार के भेद से पुनः इनका ही विलास-वैभव-वैचित्र्य—

**इँहार मध्ये जाँहार हय आकार-वेश-भेद।**
**सेइ सेइ हय विलास-वैभव-विभेद॥२०८॥**

**२०८। प० अनु०—**इन समस्त रूपों में से जिनका आकार तथा वेश में भेद होता है, उनमें विलास-वैभव की विचित्रता (विभेद) होती है।

आकार में विचित्रता से युक्त विष्णुमूर्त्तिगण—

**पद्मनाभ, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन।**
**हरि, कृष्ण आदि हय 'आकारे' विलक्षण॥२०९॥**

**२०९। प० अनु०—**पद्मनाभ, त्रिविक्रम, नृसिंह,

वामन, हरि तथा कृष्ण आदि 'आकार' में विलक्षण (भिन्न) होते हैं।

द्वितीय चतुर्व्यूह के अलावा अवशिष्ट (बची हुई) बीस मूर्त्तिया विलास-विग्रह—

**कृष्णेर प्राभवविलास—वासुदेवादि चारिजन।**
**सेइ चारिजनार विलास—विंशति गणन॥२१०॥**

**२१०। प० अनु०—**वासुदेव आदि चार जन कृष्ण के प्राभव-विलास हैं। उन चारों का विलास बीस प्रकार का होता है।

आठों दिशाओं के प्रत्येक ओर तीन-तीन मूर्त्ति करके चौबीस मूर्त्तियाँ ही वैकुण्ठ में अपने-अपने धाम में नित्य-विराजमान—

**इहाँ-सबार पृथक वैकुण्ठ—परव्योम-धामे।**
**पूर्वादि अष्टदिके तिन तिन क्रमे॥२११॥**

**२११। प० अनु०—**परव्योम धाम में इन सबका पृथक् वैकुण्ठ है। पूर्व-पश्चिम आदि आठों दिशाओं में क्रमशः तीन-तीन, कुल चौबीस मूर्त्तियाँ विराजमान हैं।

किसी-किसी तदेकात्मरूप का अपने-अपने धाम सहित ब्रह्माण्ड में अधिष्ठान—

**यद्यपि परव्योम सबाकार नित्यधाम।**
**तथापि ब्रह्माण्डे कारो काँहो सन्निधान॥२१२॥**

**२१२। प० अनु०—**यद्यपि परव्योम सभी का नित्य धाम है, तथापि किसी-किसी का अपने-अपने धाम सहित ब्रह्माण्ड में भी अधिष्ठान है।

वैकुण्ठ में द्वितीय-चतुर्व्यूह के आवरण के साथ नारायण, उसके ऊपर गोलोक में अर्थात् पुर आदि चतुर्व्यूह आवरण के साथ देवकीनन्दन और गोकुल में यशोदानन्दन—

**परव्योम-मध्ये नारायणेर नित्य-स्थिति।**
**परव्योम-उपरि कृष्णलोकेर विभूति॥२१३॥**

**२१३। प० अनु०—**परव्योम में नारायण का नित्य अवस्थान है, परव्योम के ऊपरी भाग में समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण कृष्णलोक है।

गोलोक में तीन प्रकोष्ठ—

**एक 'कृष्णलोक' हय त्रिविधप्रकार।**
**गोकुलाख्य, मथुराख्य, द्वारकाख्य आर॥२१४॥**

**२१४। प० अनु०—**एक ही कृष्णलोक तीन विभागों में विभाजित है—गोकुल, मथुरा और द्वारका।

ब्रह्माण्ड में चौबीस विभिन्न स्थानों पर चौबीस मूर्त्तियों का अपने-अपने धाम के साथ अधिष्ठान—

**मथुराते केशवेर नित्य सन्निधान।**
**नीलाचले पुरुषोत्तम—'जगन्नाथ' नाम॥२१५॥**
**प्रयागे माधव, मन्दारे श्रीमधुसूदन।**
**आनन्दारण्ये वासुदेव, पद्मनाभ, जनार्द्दन॥२१६॥**
**विष्णुकाञ्चीते विष्णु, हरि रहे मायापुरे।**
**ऐछे आर नाना मूर्त्ति ब्रह्माण्ड-भितरे॥२१७॥**

**२१५-२१७। प० अनु०—**मथुरा में केशव का नित्य वास है। नीलाचल में पुरुषोत्तम भगवान् जगन्नाथ के नाम से अवस्थित हैं। प्रयाग में माधव, मन्दार में श्रीमधुसूदन, आनन्दारण्य में वासुदेव, पद्मनाभ और जनार्द्दन, विष्णुकाञ्ची में विष्णु तथा मायापुरी (हरिद्वार) में हरि रहते हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में और भी बहुत सी मूर्त्तियाँ विराजमान हैं।

**अनुभाष्य**

२१५-२१७। ब्रह्माण्ड में अर्चा-मूर्त्ति के रूप में मथुरा में 'केशव', नीलाचल में 'पुरुषोत्तम जगन्नाथ', प्रयाग में 'बिन्दु माधव'; मन्दार में 'मधुसूदन', केरल प्रान्त के दक्षिण में आनन्द अरण्य में 'वासुदेव', 'पद्मनाभ' और 'जनार्द्दन' विष्णुकाञ्ची में 'वरदराज विष्णु', मायापुर (हरिद्वार)

में 'हरि' एवं अन्यान्य स्थानों पर अनेक मूर्त्तियों में भगवान् विराजमान हैं।

भक्तों को सन्तुष्ट करना, धर्म की स्थापना करना तथा अधर्म के नाश रूपी विलास अथवा लीला के निमित्त ही ब्रह्माण्ड में उनका प्राकट्य—

**एइमत ब्रह्माण्ड-मध्ये सबार 'परकाश'।**
**सप्तद्वीपे नवखण्डे जाँहार विलास॥२१८॥**
**सर्वत्र प्रकाश ताँर—भक्ते सुख दिते।**
**जगतेर अधर्म नाशि, धर्म स्थापिते॥२१९॥**

**२१८-२१९। प॰ अनु॰—**इस प्रकार ब्रह्माण्ड में भगवान के अनेक 'प्रकाश' है। जो सात द्वीपों के नौ खण्डों में विलास करते हैं। भगवान् भक्तों को प्रसन्न करने तथा जगत के अधर्म का नाश करके धर्म को स्थापित करने के लिये ही सभी स्थानों पर प्रकाशित होते हैं।

**अनुभाष्य**

२१८। सप्तद्वीप,—(सिद्धान्तशिरोमणि में गोलाध्याय में गोलप्रशंसा-प्रकरण में)—''भूमेरर्द्धं क्षीरासिन्धोरुदकस्थं जम्बुद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः। अर्द्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेशः॥ शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं क्रोञ्चञ्च गोमेदकपुष्करे च। द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्र-योर्द्वीपमुदाहरन्ति॥''—१) जम्बु, २) शाक, ३) शाल्मली, ४) कुश, ५) क्रौञ्च, ६) गोमेद अथवा प्लक्ष और ७) पुष्कर,—यह सप्तद्वीप हैं।

नवखण्ड,—१) भारत, २) किन्नर (किंपुरुष), ३) हरि, ४) कुरु, ५) हिरन्मय, ६) रम्यक (रमणक), ७) इलावृत, ८) भ्रदाश्व, ९) केतु-माल—ये नवखण्ड अथवा वर्ष (जम्बुद्वीप के नौ अंश); दो पर्वतों के बीच वाले प्रदेश को 'खण्ड' अथवा 'वर्ष' कहते हैं—गोलाध्याय में भुवनकोष द्रष्टव्य।

उनमें से कोई-कोई जगत् में अवतीर्ण—

**ईँहार मध्ये कारो हय 'अवतारे' गणन।**
**जैछे विष्णु, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन॥२२०॥**

**२२०। प॰ अनु॰—**इनमें से विष्णु, त्रिविक्रम, नृसिंह, वामन आदि किसी-किसी की अवतारों में गिनती होती है।

अस्त्र के भेद से परस्पर के नाम का वैचित्र्य—

**अस्त्रधृति-भेद—नाम-भेदेर कारण।**
**चक्रादि-धारण-भेद शुन, सनातन॥२२१॥**
**दाक्षिणाधो हस्त हैते वामाधः पर्यन्त।**
**चक्रादि अस्त्रधारण-गणनार अन्त॥२२२॥**

**२२१-२२२। प॰ अनु॰—**अस्त्र आदि को धारण करने का भेद ही नाम में भेद होने का कारण है। हे सनातन, अब तुम चक्र आदि धारण के भेद के विषय में सुनो। नीचे वाले दाएँ हाथ से प्रारम्भ करके नीचे वाले बाएँ हाथ तक चक्र आदि अस्त्रों को धारण करने की गणना होती है।

**अनुभाष्य**

२२२। चतुर्भुज विष्णु के दाँयी ओर के नीचे वाले हाथ में, दाँयी ओर के ऊपर वाले हाथ में, बाँयी ओर के ऊपर वाले हाथ में एवं बाँयी ओर के नीचे वाले हाथ में क्रमशः बारी-बारी चार प्रकार के अस्त्र लिखे गये हैं।

सिद्धार्थ-संहिता-कथित चौबीस मूर्त्ति—

**सिद्धार्थ-संहिता करे चब्बिश मूर्त्ति गणन।**
**तार मते आगे कहि चक्रादि-धारण॥२२३॥**

**२२३। प॰ अनु॰—**सिद्धार्थ-संहिता में चौबीस मूर्त्तियों की गणना की गयी है। पहले मैं उसी के मतानुसार चक्र आदि धारण के विषय में बतला रहा हूँ।

**अनुभाष्य**

२२३। चौबीस मूर्त्ति—१) वासुदेव, २) सङ्कर्षण, ३) प्रद्युम्न, ४) अनिरुद्ध, ५) केशव, ६) नारायण, ७) माधव, ८) गोविन्द, ९) विष्णु, १०) मधुसूदन, ११) त्रिविक्रम, १२) वामन, १३) श्रीधर, १४) हृषीकेश, १५) पद्मनाभ, १६) दामोदर, १७) पुरुषोत्तम, १८) अच्युत, १९) नृसिंह, २०)जनाद्‌र्दन, २१) हरि, २२) कृष्ण, २३) अधोक्षज और २४) उपेन्द्र।

परव्योम में द्वितीय-चतुर्व्यूह के अस्त्रभेद—

**वासुदेव—गदा-शङ्‌ख-चक्र-पद्मधर।**
**सङ्कर्षण—गदा-शङ्‌ख-पद्म-चक्रधर॥२२४॥**
**प्रद्युम्न—चक्र-शङ्‌ख-गदा-पद्मधर।**
**अनिरुद्ध—चक्र-गदा-शङ्‌ख-पद्मकर॥२२५॥**
**परव्योमे वासुदेवादि—निज निज अस्त्रधर।**
**ताँर मत कहि, जे-सब अस्त्रकर॥२२६॥**

**२२४-२२६। प० अनु०—**भगवान् वासुदेव अपने नीचे वाले दाएँ हाथ में गदा, ऊपर वाले दाएँ हाथ में शंख, ऊपर वाले बाएँ हाथ में चक्र तथा नीचे वाले बाएँ हाथ में पद्म (कमल) धारण करते हैं। [सभी विग्रह चार हाथों में चार अस्त्र धारण करते हैं, सभी विग्रहों के दायीं तथा बायीं ओर दो-दो हाथ होते हैं। दायीं ओर एक नीचे तथा एक ऊपर, इसी प्रकार बायीं ओर एक ऊपर तथा एक नीचे। दायीं ओर के निचले हाथ से लेकर यथाक्रम (Clockwise) बायीं ओर के निचले हाथ में धारण किये गये अस्त्रों को स्वयं ही क्रम से समझ लेना चाहिए अर्थात् पहला अस्त्र प्रत्येक मूर्त्ति के नीचे वाले दाएँ हाथ का है, दूसरा अस्त्र ऊपर वाले दाएँ हाथ का, तीसरा अस्त्र ऊपर वाले बाएँ हाथ का तथा चौथा अस्त्र नीचे वाले बाएँ हाथ का है] सङ्कर्षण—गदा, शंख, पद्म तथा चक्र धारण करते हैं। प्रद्युम्न—चक्र, शंख, गदा तथा पद्म धारण करते हैं। अनिरुद्ध—चक्र, गदा, शंख तथा पद्म धारण करते हैं। परव्योम में वासुदेव आदि अपने-अपने अस्त्रों को धारण करते हैं। मैं सिद्धार्थ संहिता के मतानुसार उनके हाथ में जो-जो अस्त्र होते हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ।

परव्योम में बाकी बीस मूर्त्तियों के अस्त्र के अन्तर का वर्णन—

**श्रीकेशव—पद्म-शङ्‌ख-चक्र-गदाधर।**
**नारायण—शङ्‌ख-पद्म-गदा-चक्रधर॥२२७॥**
**श्री माधव—गदा-चक्र-शङ्‌ख-पद्मकर।**
**श्री गोविन्द—चक्र-गदा-पद्म-शङ्‌खधर॥२२८॥**
**विष्णुमूर्त्ति—गदा-पद्म-शङ्‌ख-चक्रकर।**
**मधुसूदन—चक्र-शङ्‌ख-पद्म-गदाधर॥२२९॥**
**त्रिविक्रम—पद्म-गदा-चक्र-शंखकर।**
**श्रीवामन—शङ्‌ख-चक्र-गदा-पद्मधर॥२३०॥**
**श्रीधर—पद्म-चक्र-गदा-शङ्‌खकर।**
**हृषीकेश—गदा-चक्र-पद्म-शङ्‌खधर॥२३१॥**
**पद्मनाभ—शङ्‌ख-पद्म-चक्र-गदाकर।**
**दामोदर—पद्म-चक्र-गदा-शङ्‌खधर॥२३२॥**
**पुरुषोत्तम—चक्र-पद्म-शङ्‌ख-गदाधर।**
**श्रीअच्युत—गदा-पद्म-चक्र-शङ्‌खधर॥२३३॥**
**श्रीनृसिंह—चक्र पद्म-गदा-शङ्‌खधर।**
**जनार्द्दन—पद्म-चक्र-शङ्‌ख-गदाकर॥२३४॥**
**श्रीहरि—शङ्‌ख-चक्र-पद्म-गदाकर।**
**श्रीकृष्ण—शङ्‌ख-गदा-पद्म-चक्रकर॥२३५**
**अधोक्षज—पद्म-गदा-शङ्‌ख-चक्रकर।**
**उपेन्द्र—शङ्‌ख-गदा-चक्र-पद्मकर॥२३६॥**

**२२७-२३६। प० अनु०—**श्रीकेशव—पद्म, शङ्‌ख, चक्र तथा गदा धारण करते हैं। नारायण—शङ्‌ख, पद्म गदा तथा चक्र धारण करते हैं। श्रीमाधव—गदा, चक्र, शङ्‌ख तथा पद्म धारण करते है। श्रीगोविन्द—चक्र, गदा, पद्म

तथा शङ्ख धारण करते हैं। विष्णुमूर्त्ति—गदा, पद्म, शङ्ख तथा चक्र धारण करते हैं। मधुसूदन—चक्र, शङ्ख, पद्म तथा गदा धारण करते हैं। त्रिविक्रम—पद्म, गदा, चक्र तथा शङ्ख धारण करते हैं। श्रीवामन—शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करते हैं। श्रीधर—पद्म, चक्र, गदा तथा शङ्ख धारण करते हैं। हृषीकेश—गदा, चक्र, पद्म तथा शङ्ख धारण करते हैं। पद्मनाभ—शङ्ख, पद्म, चक्र तथा गदा धारण करते हैं। दामोदर—पद्म, चक्र, गदा तथा शङ्ख धारण करते हैं। पुरुषोत्तम—चक्र, पद्म, शङ्ख तथा गदा धारण करते हैं। श्री अच्युत—गदा, पद्म, चक्र तथा शङ्ख धारण करते हैं। श्री नृसिंह—चक्र, पद्म, गदा तथा शङ्ख धारण करते हैं। जनार्द्दन—पद्म, चक्र, शङ्ख तथा गदा धारण करते हैं। श्रीहरि—शङ्ख, चक्र, पद्म तथा गदा धारण करते हैं। श्रीकृष्ण—शङ्ख, गदा, पद्म तथा चक्र धारण करते हैं। अधोक्षज—पद्म, गदा, शंख तथा चक्र धारण करते हैं। उपेन्द्र—शङ्ख, गदा, चक्र तथा पद्म धारण करते हैं।

### अनुभाष्य

२२४-२३६। सिद्धार्थ-संहिता में—(हः भः विः पञ्चम विः १७६ और १७७ संख्या) ''वासुदेवो गदाशङ्ख चक्रपद्मधरो मतः। पद्मं शङ्खं तथा चक्रं गदां वहति केशवः। शङ्खं पद्मं गदाञ्चक्रं धत्ते नारायणः सदा। गदां चक्रं तथा शङ्खं पद्मं वहति माधवः। चक्रं पद्मं तथा शङ्ख गदाञ्च पुरुषोत्तमः। पद्मं कौमोदकीं शङ्खं चक्रं धतेऽप्यधोक्षजः। सङ्कर्षणो गदाशङ्ख पद्मचक्रधरः स्मृतः। चक्रं गदां पद्मशङ्खौ गोविन्दो धरते भुजैः॥ गदां पद्म तथा शङ्खं चक्रं विष्णुविभर्त्ति यः। चक्रं शङ्खं तथा पद्मं गदाञ्च मधुसूदनः। गदां सरोजं चक्रञ्च शङ्खं धत्तेऽच्युतः सदा। शङ्खं कौमोदकीं चक्रमुपेन्द्रः पद्ममुद्वहेत्। चक्रशङ्खं गदापद्मधरः प्रद्युम्न उच्यते। पद्मं कौमोदकीं चक्रं शखं धत्ते त्रिविक्रमः॥ शङ्खं चक्रं गदां पद्मं वामनो वहते सदा। पद्मं चक्रं गदां शङ्खं श्रीधरो वहते भुजैः॥ चक्रं पद्मं गदां शङ्खं नरसिंहो विभर्त्ति यः। पद्मं सुदर्शनं शङ्खं गदां धत्ते जनाद्र्दन॥ अनिरुद्धश्चक्रगदाशङ्खं पद्मलसद्भुजः। हृषीकेशो गदां चक्रं पद्मं शङ्खंञ्च धारयेत्॥ पद्मनाभो वहेत् शङ्खं पद्मं चक्रं गदां तथा। पद्मं, चक्रं गदां शङ्खं धत्ते दामोदर सदा॥ शङ्ख चक्रं सरोजञ्च गदां वहति यो हरि। शङ्ख कौमोदकीं पद्मं चक्रं कृष्णो विभर्ति यः। एताश्च मूर्त्तयो ज्ञेया दक्षिणाधः-करक्रमात्॥''

हयशीर्ष-पञ्चरात्र में कथित सोलह मूर्त्तियों के अस्त्र-भेद का वर्णन—

**हयशीर्ष-पञ्चरात्रे कहे षोलजन।**
**तार मते कहि एबे चक्रादि-धारण॥२३७॥**
**केशव-भेदे पद्म-शङ्ख-गदा-चक्रधर।**
**माधव-भेदे चक्र-गदा-शङ्ख-पद्मकर॥२३८॥**
**नारायण-भेदे नाना अस्त्र-भेद-धर।**
**इत्यादिक भेद एइ सब अस्त्रकर॥२३९॥**

**२३७-२३९। प० अनु०—**अब हयशीर्ष-पञ्चरात्र में कही गयी सोलह मूर्त्तियों के हाथों में चक्र आदि धारण का उसी के मतानुसार वर्णन करता हूँ। केशव पूर्वोक्त सिद्धान्त संहिता के अनुसार वर्णित मत से भिन्न, पद्म, शङ्ख, गदा तथा चक्र धारण करते हैं तथा माधव चक्र, गदा, शङ्ख तथा पद्म धारण करते हैं। इसी प्रकार श्री नारायण के अस्त्र धारण में भी दोनों मतों में पार्थक्य है। इस प्रकार अस्त्रधारण के भेद से सब मूर्त्तियों में भेद हैं।

### अनुभाष्य

२३७। सोलहजन,—१) वासुदेव, २) सङ्कर्षण, ३) प्रद्युम्न, ४) अनिरुद्ध, ५) केशव, ६) नारायण, ७) माधव, ८) गोविन्द, ९) विष्णु, १०) मधुसूदन, ११) त्रिविक्रम, १२) वामन, १३) श्रीधर, १४) हृषीकेश, १५) पद्मनाभ, १६) दामोदर।

**अनुभाष्य**

२३८-२३९। हयशीर्ष-पञ्चरात्र में (हः भः विः पञ्चम विः १६८-१७५)—''आदिमूर्त्तिवासुदेवः सङ्कर्षणमथासृजत्। चतुर्मूर्त्तिः परं प्रोक्तं एकैको भिद्यते त्रिधा। केशवादिप्रभेदेन मूर्त्तिर्द्वादशकं स्मृतं॥ पङ्कजं दक्षिणे दद्यात् पाञ्चजन्यं तथोपरि। वामोपरि गदा यस्य चक्रं चाधो व्यवस्थितम्॥ आदिमूर्त्तेस्तु भेदोऽयं केशवेति प्रकीर्त्त्यते। अधरोत्तरभावेन कृतमेतत्तु यत्र वै। नारायणाख्या सा मूर्त्तिः स्थापिता भुक्तिमुक्तिदा॥ सव्याधः पङ्कजं यस्य पाञ्चजन्यं तथोपरि। दक्षिणोर्द्धं गदा यस्य चक्रं चाधो व्यवस्थितम्। आदिमूर्त्तस्तु भेदोऽयं माधवेति प्रकीर्त्त्यते॥ दक्षिणाधः स्थितं चक्रं गदा यस्योपरि स्थिता। वामोर्द्धसंस्थितं पद्मं शङ्खं चाधो व्यवस्थितम्। सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं गोविन्देति प्रकीर्त्त्यते॥ दक्षिणोपरि पद्मन्तु गदा चाधो व्यवस्थिता। सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं विष्णुरित्यभिशब्दते॥ दक्षिणोपरि शङ्खञ्च चक्रं चाधः प्रदृश्यते॥ वामोपरि तथा पद्मं गदाः चाधः प्रदृश्यते। मधुसूदन नामायं भेदः सङ्कर्षणस्य च॥ वामोर्द्धसंस्थितञ्चक्रमधः शङ्खं प्रदृश्यते। ब्रह्माण्डगं वामपदं दक्षिणं शेषपृष्ठगम्। बलिवञ्चन संयुक्तं वामनञ्चाप्यधः स्थितम्॥ वामोर्द्धे कौमोदी यस्य पुण्डरीकमधःस्थितम्। दक्षिणोर्द्धं सहस्त्रारं पाञ्चजन्यमधःस्थितम्। सप्ततालप्रमाणेन वामनं कारयेत् सदा। उर्ध्वंदक्षिणतश्चक्रमधः पद्मं व्यवस्थितम्। पद्मा पद्मकरा वामे पार्श्वे यस्य व्यवस्थिता। स्थितो वाप्युपविष्टो वा सानुरागो विलासवान्। प्रद्युम्नस्य हि भेदोऽयं श्रीधरेति प्रकीर्त्त्यते॥ दक्षिणोर्द्धं महाचक्रं कौमोदी तदधः स्थिता। वामोर्द्धे नलिनं यस्य अधः शङ्खं विराजते। हृषीकेशेति विज्ञेयः स्थापितः सर्वकामदः॥ दक्षिणोर्द्धे पुण्डरीकं पाञ्जन्य मधस्तथा। वामोर्द्धे संस्थितं चक्रं कौमोदी तदधः-स्थिता। पद्मनाभेति सा मूर्त्तिः स्थापिता मोक्षदायिनी॥ दक्षिणोर्द्ध कौमोदी चेन हेतिराज-मधःस्थितम्। अनिरुद्धस्य भेदोऽयं दामोदर इति स्मृतः॥ ऐतषान्तु स्त्रियौ कार्ये पद्मवीणाधरे शुभे। इति क्रमेण मार्गादि-मासाधिपः केशवादयो द्वादश॥

व्रजेन्द्रनन्दन के दो नाम—

**'स्वयं भगवान्', आर 'लीला-पुरुषोत्तम'।**
**एइ दुइ नाम धरे व्रजेन्द्रनन्दन॥२४०॥**

**२४०। प॰ अनु॰—**स्वयं भगवान् और लीला पुरुषोत्तम—व्रजेन्द्रनन्दन इन दोनों नामों को धारण करते हैं।

मथुरा और द्वारका के आवरण के रूप में नवव्यूह—

**पुरीर आवरणरूपे पुरीर नवदेशे।**
**नवव्यूहरूपे नवमूर्त्ति परकाशे॥२४१॥**

**२४१। प॰ अनु॰—**मथुरा और द्वारकापुरी के नौ स्थानों पर नवव्यूह के रूप में नौ मूर्त्तियाँ आवरण के रूप में प्रकाशित होती है।

**अनुभाष्य**

२४१। यहाँ पर द्रष्टव्य यह है कि इस नवव्यूह के अन्तर्गत वराह और हयग्रीव 'वैभवा-स्वस्थ' अवतार होने पर भी परावस्थ के समान हैं।

नवव्यूह का परिचय—
लघुभागवतामृत (१/४५१) में—

**चत्वारो वासुदेवाद्या नारायणनृसिंहकौ।**
**हयग्रीवो वराहश्च ब्रह्मा चेति नवोदिताः॥२४२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२४२। वासुदेवादि चारजन, नारायण, नृसिंह, हयग्रीव, वराह और ब्रह्मा,-ये नौ जन।

**अनुभाष्य**

२४२। वासुदेवाद्याः (वासुदेव सङ्कर्षण-प्रद्युम्ना-निरुद्धाः) चत्वारः (द्वितीय-व्यूहाः) नारायणनृसिंहको (नारायणः नृसिंहश्च द्वौ), हयग्रीवः, वराहश्च, ब्रह्मा

च इति नवमूर्त्तय: (व्यूहा:) उदिता: (कथिता:—''तत्र ब्रह्मा तु विज्ञेय: पूर्वोक्त-विधया हरि:'' इति, ''भवेत क्वचिन्महाकल्पे ब्रह्मा जीवोऽप्युपासनै:। क्वचिदत्र महाविष्णुर्ब्रह्मत्वं प्रतिपद्यते॥'' इति पाद्मवचनोक्तरीत्या ब्रह्मणोऽत्रेश्वरकोटित्वं ज्ञेयम्।

अब तक कृष्ण स्वरूप के छह प्रकार के विलास के अन्तर्गत प्राभव और वैभव रूपी दो प्रकार के प्रकाशों का विलास वर्णित; अब स्वांश और शक्तयावेशरूपी दो प्रकार के अवतारों का वर्णन—

**प्रकाश-विलासेर एइ कैलुँ विवरण।**
**स्वांशेर भेद एबे शुन, सनातन॥२४३॥**

**२४३। प० अनु०—**हे सनातन, मैंने अब तक तुम्हें भगवान् के प्रकाश-विलास का विवरण प्रदान किया है, किन्तु अब तुम स्वांश के भेद को सुनो।

स्वांश के प्रधानत: दो रूप—(१) प्रकृति के अधिष्ठाता चालक, (२) साधुओं के पालक और असाधुओं के विनाश करने वाले रूप में अनेक अवतार—

**सङ्कर्षण, मत्स्यादिक,—दुइ भेद ताँर।**
**सङ्कर्षण—पुरुषावतार, मत्स्यादि—लीलावतार॥२४४॥**

**२४४। प० अनु०—**स्वांश के दो भेद हैं—सङ्कर्षण और मत्स्य आदि। सङ्कर्षण—पुरुषावतार तथा मत्स्य आदि—लीला अवतार हैं।

छह प्रकार के अवतार—

**अवतार हय कृष्णेर षड्विध प्रकार।**
**पुरुषावतार एक, लीलावतार आर॥२४५॥**
**गुणावतार, आर मन्वन्तरावतार।**
**युगावतार, आर शक्त्यावेशावतार॥२४६॥**

**२४५-२४६। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के अवतार छह प्रकार के होते हैं। वे क्रमश—पुरुषावतार, लीलावतार, गुणावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार तथा शक्तयावेशावतार कहलाते हैं।

**अनुभाष्य**

२४५। **पुरुषावतार—**महासङ्कर्षण से कारणोदकशायी (भा: ११/४/३), गर्भोदकशायी (भा: १/३/२-३) और क्षीरोदकशायी (भा: १/१८/२१, २/२/८, २/८/१६, १०/८८/५)—ये तीन मूर्त्ति।

**लीलावतार—**(भा: प्रथम स्कन्ध तृतीय अध्याय द्रष्टव्य) १) चतु:सन, २) नारद, ३) वराह, ४) मत्स्य, ५) यज्ञ, ६) नरनारायण, ७) कार्द्दमि कपिल, ८) दत्त (आत्रेय—भा: २/७/४), ९) हयशीर्षा (भा: २/७/११), १०) हंस (भा: २/७/१९, ११) ध्रुवप्रिय अथवा पृश्निगर्भ (भा: २/७/८), १२) ऋषभ, १३) पृथु, १४) नृसिंह, १५) कूर्म, १६) धन्वन्तरि, १७) मोहिनी, १८) वामन, १९)भार्गव परशुराम, २०) राघवेन्द्र २१) व्यास, २२) प्रलम्बारि बलराम २३) कृष्ण २४) बुद्ध २५) कल्कि—ये पच्चीस मूर्त्ति लीलावतार हैं; ये प्राय: प्रतिकल्प में ही (ब्रह्मा के एक दिन का नाम ही एक 'कल्प' है,) आविर्भूत होने के कारण 'कल्पावतार' के नाम से भी जाने जाते हैं। इनमें 'हंस' और 'मोहिनी'—अचिरस्थायी और अनतिप्रसिद्ध प्राभवावस्थ अवतार हैं; कपिल, दत्तात्रेय, ऋषभ, धन्वन्तरि और व्यास,—ये पाँच मूर्त्ति चिरस्थायी और विस्तृत कीर्ति एवं मुनि चेष्टा युक्त प्राभवावस्थ अवतार हैं; और कूर्म, मत्स्य, नारायण, वराह, हयग्रीव, पृश्निगर्भ और प्रलम्बघ्न बलदेव-वैभवावस्थ अवतार हैं।

**अनुभाष्य**

२४६। **गुणावतार—**ब्रह्मा, विष्णु और शिव (भा: १०/८८/३),—ये तीन मूर्त्ति। **मन्वन्तरावतार—**(भा: अष्टम स्कन्ध, प्रथम अध्याय, पञ्चम अध्याय और त्रयोदश अध्याय)—१) यज्ञ, २) विभु, ३) सत्यसेन, ४) हरि, ५) वैकुण्ठ, ६) अजित, ७) वामन, ८) सार्वभौम, ९) ऋषभ, १०) विष्वक्सेन, ११) धर्मसेतु, १२) सुधामा, १३) योगेश्वर, १४)

वृहद्भानु,—इन चौदह मूर्त्तियों में से 'यज्ञ' और 'वामन' लीलावतार भी हैं, अतएव १२ मूर्त्ति मन्वन्तरावतार हैं; पुनः ये चौदह मन्वन्तरावतार 'वैभवावस्थ' अवतार के नाम से भी कहे जाते हैं।

**युगावतार—**१) सत्ये 'शुक्ल' (भाः ११/५/२१), २) त्रेताय 'रक्त' (भाः ११/५/२४), ३) द्वापरे 'श्याम' (भाः ११/५/२७), ४) साधारण कलि में 'कृष्णवर्ण' एवं विशेष कलि में 'पीतवर्ण' (भाः ११/५/३२ और १०/८/१३ द्रष्टव्य)।

**शक्त्यावेशावतार—**(क) भगवदावेश—कपिल और ऋषभदेव, (ख) शक्तयावेश—१) वैकुण्ठस्थ शेष (स्व-सेवनशक्ति), २) अनन्त (भूधारण शक्ति), ३) ब्रह्मा (सृष्टिशक्ति), ४) चतुःसन (ज्ञानशक्ति), ५) नारद (भक्तिशक्ति), ६) पृथु (पालनशक्ति), ७) परशुराम (दुष्टदमन शक्ति)—ये सातमूर्त्ति हैं।

किशोर कृष्ण के छह प्रकार के विलासों में से युग के धर्म के अन्तर से दो प्रकार के विलास अथवा लीला—

**बाल्य, पौगण्ड हय विग्रहेर धर्म।**
**एतरूपे लीला करेन व्रजेन्द्रनन्दन॥२४७॥**

**२४७। प० अनु०—**बाल्य तथा पौगण्ड विग्रह का धर्म है। व्रजेन्द्रनन्दन इतने रूपों में लीला करते हैं।

कृष्ण के असंख्य अवतार—

**अनन्त अवतार कृष्णेर, नाहिक गणन।**
**शाखा-चन्द्र-न्याय करि दिगदरशन॥२४८॥**

**२४८। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के अनन्त अवतार हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। मैं तो केवल शाखा-चन्द्र-न्याय की भाँति दिगदर्शन कर रहा हूँ।

### अनुभाष्य

२४८। शाखाचन्द्रन्याय—भूमि पर स्थित समतल में वृक्ष शाखा निर्देश करके आकाश-गोल में स्थित चन्द्र के स्थान के निर्देश की भाँति दिशा-प्रदर्शन मात्र। अवतार समूह लौकिक दर्शन के गोचरीभूत होने पर भी वे मायिक नहीं हैं। उनकी अप्राकृत लीला—अन्वय (मुख्य) भाव से अनुगत जीवों के लिये ही ज्ञेय (जानी जाती) है, वह तर्कपन्थी लोगों की प्राकृत इन्द्रियों के द्वारा ग्रहणीय नहीं है।

श्रीमद्भागवत (१/३/२६) में—

**अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः।**
**यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥२४९॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

२४९। हे, द्विज गण, जैसे बहुत बड़े सरोवर में से सैकड़ों-सैकड़ों छोटे जलाशय उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि हरि के अवतार-असंख्य हैं।

### अनुभाष्य

२४९। शौनकादि ऋषियों को श्रीसूत गोस्वामी श्रीहरि के असंख्य अवतारों की कथा का वर्णन करके अवतारों के असंख्य होने के विषय में बतला रहे हैं—

हे द्विजाः, अविदासिनः (अपक्षयहीनात्) सरसः सकाशात्, यथा, कुल्याः (स्वल्पप्रवाहाः) सहस्रशः स्युः (सम्भवन्ति), हि (तथा हि) सत्त्वनिधेः (सर्वसत्त्वाश्रयस्य विशुद्धसत्वसेवधः) हरेः असंख्येयाः (गणनातीतः) अवताराः।

(क) सर्वप्रथम तीन पुरुषावतार—कारण-गर्भ-क्षीरसागरशायी—

**प्रथमेइ करे कृष्ण 'पुरुषावतार'।**
**सेइ त' पुरुष हय त्रिविध प्रकार॥२५०॥**

**२५०। प० अनु०—**सर्वप्रथम श्री कृष्ण 'पुरुषावतार' प्रकाशित करते हैं। वह पुरुषावतार तीन प्रकार के होते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२५०। 'सेइत पुरुष हय त्रिविध प्रकार'—यहाँ तक कृष्ण के बहुत प्रकार के स्वरूपों का विचार हुआ। अब कृष्ण की शक्ति का विचार किया जायेगा।

लघुभागवतामृत (१/३३) में उद्धृत
सात्वत तन्त्र वाक्य—

**विष्णोस्तु त्रीणि रुपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः।**
**एकन्तुः महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्।**
**तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते॥२५१॥**

२५१। नित्यधाम में श्रीविष्णु के तीन रूप हैं—प्रथम महत्तत्त्व की सृष्टि करनेवाले कारणाब्धिशायी महाविष्णु; द्वितीय गर्भोदशायी समष्टिब्रह्माण्डगत पुरुष (समस्त ब्रह्माण्ड के अन्तर्यामी); तृतीय क्षीरोदशायी व्यष्टि ब्रह्माण्डगत पुरुष (ब्रह्माण्ड के अन्तर्यामी), वे प्रत्येक जीव के अन्तर्यामी ईश्वर एवं परमात्मा हैं। इन तीनों के तत्त्व को जानने से जीव जड़बुद्धि से मुक्त हो जाता है।

**अनुभाष्य**

२५१। आदि, पञ्चम परिच्छेद ७७ संख्या द्रष्टव्य।

एक कृष्ण ही तीन प्रकार की स्वरूप शक्ति के
अधिष्ठाता—

**अनन्तशक्ति-मध्ये कृष्णेर तिन शक्ति प्रधान।**
**'इच्छाशक्ति', 'ज्ञानशक्ति', 'क्रियाशक्ति', नाम॥२५२॥**

**२५२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियों में से उनकी तीन शक्तियाँ प्रधान है। जिनके नाम—इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रिया शक्ति है।

स्वयं कृष्ण—इच्छा अथवा आनन्द शक्ति के एवं
चतुर्व्यूह के बीच में (१) वासुदेव रूप में वही
सम्वित्शक्ति के प्रभु—

**इच्छाशक्ति-प्रधान कृष्ण—इच्छाय सर्वकर्त्ता।**
**ज्ञानशक्ति-प्रधान वासुदेव चित-अधिष्ठाता॥२५३॥**
**इच्छा-ज्ञान-क्रिया बिना ना हय सृजन।**
**तिनेर तिन शक्ति मेलि' प्रपञ्च-रचन॥२५४॥**

**२५३-२५४। प० अनु०—**इच्छाशक्ति के अधिष्ठातृ देवता कृष्ण हैं—वे सब प्रकार की इच्छाएँ करते हैं। ज्ञानशक्ति के अधिष्ठातृ देवता वासुदेव हैं। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया शक्ति के बिना सृष्टि नहीं होती। तीनों की तीनों शक्तियाँ मिलकर प्रपञ्च की रचना करती हैं।

वे ही बलराम अथवा सङ्कर्षण के रूप में
सन्धिनीशक्ति के प्रभु, तीन प्रकार की शक्ति
के द्वारा चिद्-अचिद् जगत का प्राकट्य—

**क्रियाशक्ति-प्रधान सङ्कर्षण बलराम।**
**प्राकृताप्राकृत-सृष्टि करेन निर्माण॥२५५॥**

**२५५। प० अनु०—**क्रिया-शक्ति के अधिष्ठातृ देवता सङ्कर्षण बलराम हैं। वे ही प्राकृत-अप्राकृत सब प्रकार की सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं।

सङ्कर्षण ही आदिपुरुष अथवा कारणशायी और
चिद्वैभव की सत्ता के कारण—

**अहङ्कारेर अधिष्ठाता कृष्णेर इच्छाय।**
**गोलोक, वैकुण्ठ सृजे चिच्छक्तिद्वाराय॥२५६॥**

**२५६। प० अनु०—**अहङ्कार के अधिष्ठातृ देवता संकर्षण कृष्ण की इच्छा से चिद् शक्ति के द्वारा गोलोक तथा वैकुण्ठ का सृजन करते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२५२-२५६। उन अद्वयतत्त्व कृष्ण की अनन्त शक्तियां है, उनमें से 'इच्छाशक्ति', 'ज्ञानशक्ति' और 'क्रियाशक्ति'—सभी कार्यों में ही इन तीनों का विशेष परिचय है; इच्छाशक्ति के प्रधान—'कृष्ण'

हैं, जिनकी इच्छा से समस्त कार्य ही होते हैं; ज्ञानशक्ति के प्रधान—'वासुदेव' और क्रिया शक्ति के प्रधान—'सङ्कर्षण' हैं। इन तीनों की इन शक्तियों को लेकर ही प्राकृत-अप्राकृत जगत् सृष्ट अथवा प्रकटित हुआ है। अहङ्कार के अधिष्ठाता 'सङ्कर्षण' ने कृष्ण की इच्छा से चित् शक्ति द्वारा चिद्‌शक्ति विलास रूप गोलोक-वैकुण्ठ आदि धाम प्रकट किया है।

चिद्‌शक्ति विलास तद्-रूप वैभव सङ्कर्षण से प्रकाशित—

**यद्यपि असृज्य नित्य चिच्छक्तिविलास।**
**तथापि सङ्कर्षण-इच्छाय ताँहार प्रकाश॥२५७॥**

**२५७। प० अनु०—**यद्यपि नित्य चिद्‌शक्ति का विलास असृज्य है, तथापि सङ्कर्षण की इच्छा से उसका प्रकाश होता है।

अनन्तरूपी सङ्कर्षण से गोलोक धाम का प्राकट्य—ब्रह्मसंहिता (५/२) में—

**सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदम्।**
**तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसम्भवम्॥२५८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२५८। गोकुल नामक महत् पद—सौ पत्तों वाला कमल; उसकी कर्णिका ही उसका आधार है, सब कुछ ही अनन्त के अंश से उत्पन्न हुआ है।

**अनुभाष्य**

२५८। गोकुलाख्यं महत् पदं (तद्रूपवैभवश्रेष्ठं धाम)—सहस्रपत्रं कमलं (सहस्रदल-पद्ममिव); तत्कर्णिकारं (तत् पद्म-पुष्प मध्यम् एव) तद्धाम (तस्य कृष्णस्य धाम); तत्—अनन्तांशसम्भवं (बल-देवांशजातम्)।

सांख्यवाद का खण्डन, सङ्कर्षण की ईक्षण (दृष्टिपात) शक्ति से क्षुब्ध जड़ीय माया ही क्रियावती होकर विश्व की सृष्टि करने वाली—

**माया-द्वारे सृजे तिंहो ब्रह्माण्डेर गण।**
**जड़ रूपा प्रकृति नहे ब्रह्माण्ड-कारण॥२५९॥**

**२५९। प० अनु०—**माया के माध्यम से सङ्कर्षण ही ब्रह्माण्डों की सृष्टि करते हैं। जड़ रूपा प्रकृति ब्रह्माण्ड का कारण नहीं है।

**जड़ हैते सृष्टि नहे ईश्वरशक्ति बिने।**
**ताहातेइ सङ्कर्षण करे शक्तिर आधाने॥२६०॥**

**२६०। प० अनु०—**ईश्वर की शक्ति के बिना जड़ से सृष्टि नहीं हो सकती। जड़ रूपा प्रकृति में सङ्कर्षण ही शक्ति का आधान (वपन) करते हैं।

उपमा—

**ईश्वरेर शक्त्ये सृष्टि करये प्रकृति।**
**लौह जेन अग्निशक्त्ये पाय दाह-शक्ति॥२६१॥**

**२६१। प० अनु०—**ईश्वर की शक्ति से ही प्रकृति सृष्टि करती हैं, जैसे लोहा अग्नि की शक्ति से दाहक-शक्ति (जलाने की शक्ति) प्राप्त करता है।

**अनुभाष्य**

२५९-२६१। आदि, पञ्चम परिच्छेद ६०-६४ संख्या द्रष्टव्य।

रामकृष्ण ही विश्व के एकमात्र जनक और नियामक—श्रीमद्भागवत (१०/४६/३१) में—

**एतो हि विश्वस्य च बीजयोनी**
**रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम्।**
**अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य**
**ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ॥२६२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२६२। ये—राम-कृष्ण; इस विश्व के बीज योनि स्वरूप हैं। इन दोनों ने ही समस्त भूतों में प्रवेश करके परस्पर भेद-ज्ञान उत्पन्न किया है।

**अनुभाष्य**

२६२। कृष्ण के अनुरोध से व्रजवासियों के कृष्ण के विरह से उत्पन्न शोक को कम करने के उद्देश्य से महात्मा उद्धव के व्रज में आकर विश्राम करने के बाद नन्द के द्वारा कृष्ण के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर नन्द-यशोदा के समक्ष उद्धव के द्वारा कृष्ण के माहात्म्य का वर्णन,—

रामः मुकुन्दश्च इति एतौ—विश्वस्य बीजयोनी (निमित्तोपादाने), पुरुषः (अंशः), प्रधानं (शक्तिः) अतः प्रधान-पुरुषौ अपि एतौ एवेत्यर्थः,—एवम-नयोर्जनकत्वमुक्तम्; इमौ—पुराणौ (अनादि, सनातनौ; अतः) भूतेषु अन्वीय (अनुप्रविश्य भूतानां तदुप-हितस्य), विलक्षणस्य (नानाभेदस्य) ज्ञानस्य (जीवस्य) च ईशाते (नियन्तारौ भवतः, एवमनयो-र्नियन्तृत्वमप्युक्तम्)।

प्रपञ्चातीत धाम से कृपापूर्वक प्रपञ्च में प्राकट्य और अवतरण ही अवतार—

**सृष्टि-हेतु जेइ मूर्त्ति प्रपञ्चे अवतरे।**
**सेइ ईश्वरमूर्त्ति 'अवतार' नाम धरे॥२६३॥**
**मायातीत परव्योमे सबार अवस्थान।**
**विश्वे अवतरि' धरे 'अवतार' नाम॥२६४॥**

**२६३-२६४। प० अनु०—**सृष्टि के लिये जो मूर्त्ति प्रपञ्च में अवतरित होती है, ईश्वर की वही मूर्त्ति ही अवतार नाम धारण करती है। मायातीत परव्योम में ही सभी का वासस्थान है। इस विश्व में अवतरित होने पर ही वे अवतार नाम धारण करते हैं।

**अनुभाष्य**

२६४। आदि, पञ्चम परिच्छेद ८१ संख्या द्रष्टव्य।

सङ्कर्षण ही प्रकृति के प्रति ईक्षण और बीज बोने वाले आदि-पुरुषावतार—

**सेइ माया अवलोकिते श्रीसङ्कर्षण।**
**पुरुषरुपे अवतीर्ण हइला प्रथम॥२६५॥**

**२६५। प० अनु०—**उसी माया का अवलोकन करने के लिये ही श्रीसङ्कर्षण प्रथम पुरुष के रूप में अवतीर्ण हुए।

श्रीमद्भागवत (१/३/१) में—

**जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।**
**सम्भूतं षोड़शकलमादौ लोकसिसृक्षया॥२६६॥**

२६६। भगवान् ने जगत् की सृष्टि की इच्छा से महद् आदि द्वारा सम्भूत और सोलह कलाओं से युक्त पुरुषाख्य-रूप धारण किया था।

**अनुभाष्य**

२६६। शौनकादि ऋषियों के पञ्चम प्रश्न के उत्तर में श्रीसूत गोस्वामी भगवान् के अवतार-कथा का वर्णन कर रहे हैं,—

आदौ (सर्गारम्भे) भगवान् (महासंकर्षणः) लोक-सिसृक्षया (लोकानां भुवनानां स्त्रष्टुमिच्छया) महदा-दिभिः (महदहंकारपंचमहाभूतैकादशेन्द्रियपंच तन्मात्रैः) सम्भूतं (मिलित) षोडशकलं (तत्सृष्टयुपयोगिपूर्ण-शक्तिमत्) पौरुषं रूपं जगृहे (प्रकटयाभास)।

षोडशकलं—लघुभागवतामृत में पुरुष-वर्णन के प्रसंग में (६८ संख्या)—"श्रीर्भूःकीर्त्तिरिला लीला कान्ति-र्विद्येति सप्तकम्। विमलाद्या नवेत्येता मुख्याः षोडश शक्तयः॥" इसकी श्रीबलदेवकृत टीका में—"विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा तथैव च। प्रह्वीसत्या तथेशानानुग्रहेति नव स्मृताः॥" भगवत्सन्दर्भ की (१०२ संख्या में)—"श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्त्या तुष्ट्येलयोर्जया। विद्ययाऽ-विद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्॥ सन्धिनी-सम्बित्ह्लादिनीभक्त्याधारशक्तिमूर्त्ति विमलाजया योगा प्रह्वीशानुग्रहादयश्च ज्ञेयाः। ततः श्रियेत्यादौ शक्तिवृत्तिरूपया मायावृत्तिरूपया चेति सर्वत्र

ज्ञेयम्। तत्र पूर्वस्याः भेदः श्रीर्भागवती सम्पत्। उत्तरस्या भेदः। श्रीर्जागती सम्पत्। ** तत्र इला भूस्तदुप-लक्षणत्वेन लीला अपि। अत्र सन्धिन्येव सत्या, जयैवोत्कर्षिणी, योगैव योगमाया, सम्बिदेव ज्ञाना-ज्ञानशक्तिः शुद्धसत्त्वञ्चेति ज्ञेयम्। प्रह्वी विचित्रानन्तसामर्थ्यहेतुः, ईशाना सर्वाधिकारिता शक्तिहेतु- रिति भेदः।"

१) श्री, २) भू, ३) लीला, ४) कान्ति, ५) कीर्त्ति, ६) तुष्टि, ७) गीः, ८) पुष्टि, ९) सत्या, १०) ज्ञानाज्ञाना, ११) जया उत्कर्षिणी, १२) विमला, १३) योगमाया, १४) प्रह्वी, १५) ईशाना एवं १६) अनुग्रहा—वैकुण्ठ में ये षोड़श शक्तियाँ विद्यमान हैं। श्रीमद्‌भागवत में गौड़ीयभाष्य के अन्तर्गत श्रीमध्वकृत भागवत-तात्पर्य एवं तथ्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

२६६। आदि पञ्चम परिच्छेद ८४ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (२/६/४२) में—

**आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य**
**कालः स्वभावः सदसन्मनश्च।**
**द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराट्**
**स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः॥२६७॥**

२६७। कारणाब्धिशायी पुरुष ही भगवान् के आदि अवतार हैं। काल, स्वभाव, कार्य-कारणरूप प्रकृति, मन आदि महत्‌तत्त्व, महाभूतादि अहङ्कार, सत्त्वादि गुण, इन्द्रिय-समूह, विराट्, स्वराट्, स्थावर एवं जङ्गम, ये सब उस पुरुषकी विभूतियाँ हैं।

**अनुभाष्य**

२६७। आदि पञ्चम परिच्छेद ८३ संख्या द्रष्टव्य।

(१) अपने वैकुण्ठ में शेष रूपी पलङ्ग (शैय्या) पर कारणार्णव अथवा विरजाशायी—
प्रकृति के अन्तर्यामी ब्रह्माण्ड के कारण के स्रष्टा—

**सेइ पुरुष विरजाते करेन शयन।**
**'कारणाब्धिशायी' नाम—जगत्कारण॥२६८॥**

**२६८। प॰ अनु॰—**वही पुरुष विरजा में शयन करते हैं। उन्हीं का नाम ही कारणाब्धिशायी है तथा वही जगत् के कारण हैं।

विरजा अथवा कारणाब्धि के एक ओर तुरीय परव्योम अथवा चिद् वैभव वैकुण्ठ, दूसरी ओर माया विलास अथवा अचिद्-वैभव प्राकृत देवीधाम—

**कारणाब्धि-पारे मायार नित्य अवस्थिति।**
**विरजार-पारे परव्योमे नाहि गति॥२६९॥**

**२६९। प॰ अनु॰—**कारण-समुद्र के एक ओर माया की नित्य अवस्थिति (वास) है तथा विरजा अर्थात् कारण-समुद्र के दूसरी ओर स्थित परव्योम में उसका प्रवेश नहीं है।

वैकुण्ठ का माहात्म्य—
श्रीमद्भागवत (२/९/१०) में—

**प्रवर्त्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्वञ्च**
**मिश्रं न च कालविक्रमः।**
**न यत्र माया किमुतापरे हरे-**
**रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः॥२७०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७०। उस वैकुण्ठ में रजस्तमः अथवा उनके साथ मिश्रसत्त्व अथवा काल का प्रभाव नहीं है एवं वहाँ माया तक भी नहीं है, दूसरों का तो क्या कहना; वहाँ श्री कृष्ण के अनुव्रत (उनकी आज्ञा का पालन वाले) सुर-असुर अर्चित पार्षद भक्तगण वास करते हैं।

**अनुभाष्य**

२७०। 'शुद्ध जीवात्मा का किस प्रकार देह सम्बन्ध होता है?'—राजा परीक्षित के इस प्रश्न के उत्तर में श्रीशुकदेव ने उनके समक्ष, भगवान् द्वारा—ब्रह्मा के समक्ष चतुःश्लोकी में कहे गये तत्त्वज्ञान के कीर्त्तन के प्रसङ्ग को बतलाने से पहले सृष्टि के प्रारम्भ में भगवद् दर्शन के लिये ब्रह्मा की दिव्य एक हजार वर्ष तक की तपस्या के फल से भगवान् ने ब्रह्मा को जिस वैकुण्ठधाम का प्रदर्शन कराया था, उस वैकुण्ठ का वर्णन कर रहे हैं,—

यत्र (वैकुण्ठे), रजः, तमः, तयोः मिश्रं (ताभ्यां युक्त) सत्वं च न प्रवर्त्तते,, परन्तु विशुद्धमेव सत्वं प्रवर्त्तते, काल विक्रमः (नाशः च न प्रवर्त्तते), यत्र (वैकुण्ठे), माया न प्रवर्त्तते (नास्ति), अपरे (मायासम्बन्धिनः राग-लोभादयः) न सन्ति इति, किमुत (किं वक्तव्यम्?) यत्र (वैकुण्ठे) सुरा-सुरार्चिताः (देव-दैत्येः सर्वेः अपि पूजिताः) हरेः अनुव्रताः (पार्षदाः) वर्त्तन्ते,।

माया की दो रूपों में दो प्रकार की वृत्ति—(क) प्रकृति और (ख) प्रधान का कार्य—

**मायार जे दुइ वृत्ति—'माया' आर 'प्रधान'।**
**'माया' निमित हेतु, विश्वेर उपादान 'प्रधान'॥२७१॥**

**२७१। प० अनु०—**माया की दो रूपों में दो प्रकार की वृत्ति है—माया और प्रधान। माया निमित्त हेतु तथा प्रधान विश्व का उपादान है।

**अनुभाष्य**

२७१। आदि, पञ्चम परिच्छेद ५८ संख्या द्रष्टव्य।

प्रकृति के प्रति कारणोदशायी का ईक्षण—

**सेइ पुरुष माया-पाने करे अवधान।**
**प्रकृति क्षोभित करि' करे वीर्येर आधान॥२७२॥**

**२७२। प० अनु०—**कारणब्धिशायी माया के प्रति दृष्टिपात करके उसे क्षोभित कर देते हैं तथा फिर उसमें वीर्य का आधान करते हैं।

स्वयं शुद्ध होने पर भी अशुद्ध की भाँति प्रतीत, सङ्कल्पमात्र से ही प्रकृति-स्पर्श और प्रकृति की योनि में लोम कूप में रहने वाले अनन्त चित्परमाणु जीवशक्ति का निधान—

**स्वाङ्ग-विशेषाभासरूपे प्रकृति-स्पर्शन।**
**जीव-रूप 'बीज' ताते कैला समर्पण॥२७३॥**

**२७३। प० अनु०—**कारणब्धिशायी पुरुष अपने अङ्ग विशेष नेत्रों के आभास के द्वारा प्रकृति का स्पर्श करते हैं तथा क्षुब्ध प्रकृति में जीव रूपी 'बीज' समर्पित करते हैं।

**अनुभाष्य**

२७२-२७३। ब्रह्मसंहिता में पञ्चम अध्याय का १०-१३ श्लोक द्रष्टव्य।

जीव और उसके भोगों के २७ तत्त्वों की उत्पत्ति का इतिहास; प्रकृति का आदि परिणाम और विश्वांकुर चित्तरूपी महत्त तत्त्व की उत्पत्ति का कारण—

श्रीमद्भागवत (३/२६/१९) में—

**दैवात् क्षुभित धर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्।**
**आधत्त वीर्यं साहसूत महतत्त्वं हिरण्म यम्॥२७४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७४। उन श्रेष्ठ पुरुष ने कालक्रम से क्षुभित-धर्मिणी (क्षोभित धर्म वाली अपनी माया) में अपने वीर्य का आधान (स्थापन) किया था, उससे माया ने हिरणमय महतत्त्व को जन्म दिया।

**अनुभाष्य**

२७४। देवहूति के द्वारा पुरुष और प्रकृति के लक्षण की जिज्ञासा करने पर भगवान् कपिलदेव उनके समक्ष महद् आदि अठाईस-तत्त्वों का वर्णन

करके तदधीश (उनके अधीश्वर)-तत्त्व पुरुषावतार भगवान् और उनसे जीव के प्रकट होने का वर्णन कर रहे हैं—

दैवात् (कालात्) क्षुभितधर्मिण्यां (श्रुभिताः धर्माः गुणाः यस्यां तस्या) (स्वकीयाया) योनौ (अभिव्यक्ति स्थाने प्रकृतौ) परः पुमान् (परम पुरुषः भगवान् कारणार्णवशायी) वीर्यं (जीवशक्तिम्) आधत्त (आहितवान्); सा (प्रकृतिः) हिरण्मयं (प्रकाशबहुल) महतत्त्वम् असूत।

जीव शक्ति के प्रकट होने का इतिहास—
श्रीमद्भागवत (३/५/२६) में—

**कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः।**
**पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान्॥२७५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७५। कालवृत्ति के द्वारा गुणमयी (क्षुभिता) माया में वीर्यवान् (चिद् शक्ति मान्) अधोक्ष्ज (महावैकुण्ठनाथ) आत्मांश स्वरूप पुरुष अर्थात् प्रकृति के अधिष्ठाता आदि पुरुष द्वारा वीर्य (चित्परमाणुपुञ्ज जीव शक्ति) का आधान (स्थापन) किया गया था।

**अनुभाष्य**

२७५। महात्मा विदुर के द्वारा श्रीमैत्रेय ऋषि के निकट श्रीहरि के पुरुषावतार-लीलाकथा के विषय में जिज्ञासा करने पर श्रीमैत्रेय ऋषि पुरुषावतार के माया द्वारा विश्व की सृष्टि करने का वर्णन करने के बाद उनसे जीवसर्ग के उत्पन्न होने का वर्णन कर रहे हैं,—

वीर्यवान् (चिच्छक्तिमान्) अधोक्षजः (अतीन्द्रियः महावैकुण्ठनाथः भगवान्) आत्मभूतेन (स्वांशेन) पुरुषेण (प्रकृत्याधिष्ठातृ-रूपेण कारणब्धिशायिना) कालवृत्त्या (निमित्तभूतया कालशक्तया) गुणमय्यां (क्षुभितगुणाया) मायायां वीर्यं (चिदाभासजीवाख्य-शक्तिम्) आधत (आदधौ)।

ब्रह्माण्ड के उपादान-कारण—महतत्त्व से 'अहङ्कार-त्रय'—

**तबे महतत्व हैते त्रिविध अहङ्कार।**
**जाहा हैते देवतेन्द्रियभूतेर प्रचार॥२७६॥**

**२७६। प॰ अनु॰—**प्रकृति की परिणति से महतत्त्व उत्पन्न होता है, महत्तत्व से तीन प्रकार के अहङ्कारों की उत्पत्ति होती है। पुनः इन्हीं अहङ्कारों से देवता, इन्द्रियाँ तथा पञ्चभूत प्रकाशित होते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७६। तीन प्रकार के अहङ्कार—वैकारिक, तेजस और तामस।

**अनुभाष्य**

२७६। चितरूप में महतत्व का अवस्थान, जिसके अधिष्ठातृदेव—वासुदेव (भाः ३/२६/२१) हैं; महत्तत्व के विकार से (१) वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कार, उससे एकादश (ग्यारह) इन्द्रियाँ अथवा मन, जिसके अधिष्ठातृ देव—अनिरुद्ध (भाः ३/२६/२७-२८) हैं; २) तेजस अर्थात् राजस अहङ्कार से 'बुद्धि' (जिसके अधिष्ठातृ देव-प्रद्युम्न) हैं एवं इन्द्रियाँ (भाः ३/२६/३०-३१); ३) तामस अहङ्कार से शब्द तन्मात्र एवं उससे आकाश और श्रौत (श्रवण) इन्द्रिय आदि की उत्पत्ति (भाः ३/२६/३२); इन तीन प्रकार के अहङ्कारों के अधिष्ठातृदेव-सङ्कर्षण (भाः ३/२६/२५) हैं। सांख्याकारिकाय—''सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहङ्कारात्—भूतादेस्तन्मात्रं तामसस्तेजसा-द्युभयम्।''

अठाइस तत्त्वों से युक्त अनन्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि—

**सर्वतत्व मिलि' सृजिल ब्रह्माण्डेर गण।**
**अनन्त ब्रह्माण्ड, तार नाहिक गणन॥२७७॥**

**२७७। प॰ अनु॰—**सभी तत्वों को मिलाकर भगवान् ने ब्रह्माण्डों का सृजन किया। इन ब्रह्माण्डों

की संख्या अनन्त है, उनकी गिनती नहीं की जा सकती।

यही महतत्व की सृष्टि करने वाले महाविष्णु; इनके लोमकूप में ही अनन्त चित्परमाणु-जीव—

**ईँहो महत्स्रष्टा पुरुष—'महाविष्णु' नाम।**
**अनन्त ब्रह्माण्ड ताँर लोमकूपे धाम॥२७८॥**

**२७८। प॰ अनु॰—**उस प्रथम अवतार महत्-स्रष्टा पुरुष का नाम महाविष्णु भी है। उनके लोमकूपों में अनन्त ब्रह्माण्ड वास करते हैं।

**अनुभाष्य**

२७८। महत्तत्त्व के सृष्टिकर्त्ता आदि पुरुषावतार का नाम 'महाविष्णु है। महा-विष्णु के लोमकूप में अनन्त ब्रह्माण्ड आश्रित हैं।

उनके निःश्वास से ब्रह्माण्ड की 'सृष्टि', प्रश्वास में 'प्रलय'—

**गवाक्षे उड़िया जैछे रेणु आसे जाय।**
**पुरुष-निश्वास-सह ब्रह्माण्ड बाहिराय॥२७९॥**

वे ही स्वयं मायाधीश तत्त्व—

**पुनरपि निश्वास-सह जाय अभ्यन्तर।**
**अनन्त ऐश्वर्य ताँर, सब—माया-पार॥२८०॥**

**२७९-२८०। प॰ अनु॰—**गवाक्ष (झरोकों) में से उड़कर जैसे रेणु आती-जाती है, उसी प्रकार महाविष्णु के निश्वास के साथ ब्रह्याण्ड बाहर निकलते हैं तथा पुनः उन्हीं के निश्वास के साथ अन्दर चले जाते हैं। महाविष्णु का समस्त अनन्त ऐश्वर्य मायातीत है।

ब्रह्मसंहिता (५/४८) में—

**यस्यैक-निश्वसितकालमथावलम्ब्य**
**जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।**
**विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो**
**गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥२८१॥**

२८१। ब्रह्माण्ड नाथ समूह जिनके रोमकूप से जन्म लेकर उनके एक निःश्वास-काल तक विराजमान रहते हैं, वही महाविष्णु जिनके कला-विशेष हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ।

**अनुभाष्य**

२८१। आदि, पञ्चम परिच्छेद ७१ संख्या द्रष्टव्य।

समग्र जीवशक्ति और प्रकृति के कारणरूप में वे ही अनन्तकोटि धामों के मूलकर्त्ता—

**समस्त ब्रह्माण्डगणेर ईँहो अन्तर्यामी।**
**कारणाब्धिशायी—सब जगतेर स्वामी॥२८२॥**

**२८२। प॰ अनु॰—**महाविष्णु ही समस्त ब्रह्माण्डों के अन्तर्यामी हैं। कारण समुद्र में शयन करने वाले वे ही समस्त जगत के स्वामी हैं।

(२) प्रद्युम्नरूपी द्वितीय-पुरुषावतार गर्भोदकशायी का वर्णन—

**एइत कहिलुँ प्रथम पुरुषेर तत्व।**
**द्वितीय पुरुषेर एबे शुनह महत्त्व॥२८३॥**

**२८३। प॰ अनु॰—**हे सनातन! इस प्रकार मैंने प्रथम पुरुष महाविष्णु (कारणब्धिशायी) के तत्त्व का वर्णन किया है, अब तुम द्वितीय पुरुष के माहात्म्य का श्रवण करो।

कारणोदशायी ही ब्रह्माण्ड में संस्थित गर्भोदशायी—

**सेइ पुरुष अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड-सृजिया।**
**एकैक-मूर्त्त्ये प्रवेशिला बहुमूर्त्ति हञा॥२८४॥**
**प्रवेश करिया देखे, सब—अन्धकार।**
**रहिते नाहिक स्थान, करिला विचार॥२८५॥**

**२८४-२८५। प॰ अनु॰—**अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डों की सृष्टि करके प्रथम पुरुष कारणब्धि-शायी ने बहुत से रूप धारण करके एक-एक रूप में अर्थात् द्वितीय पुरुष के रूप में समस्त

ब्रह्माण्डों में प्रवेश किया। समस्त ब्रह्माण्डों में प्रवेश करके उन्होंने देखा कि वहाँ तो सब ओर अन्धकार है। उन्होंने विचार किया कि यहाँ तो रहने का कोई स्थान नहीं है।

गर्भवारि-प्राकट्य, वहाँ वैकुण्ठ में शेषशय्या पर शयन—

**निजाङ्ग-स्वेदजले ब्रह्माण्डार्द्ध भरिल।**
**सेइ जले शेष-शय्याय शयन करिल॥२८६॥**

**२८६। प० अनु०—**तब द्वितीय पुरुष ने अपने स्वेद (पसीने) के जल (गर्भवारि) से ब्रह्माण्ड के आधे भाग को भर दिया तथा उन्होंने उसी जल में शेष-शय्या पर शयन किया। इसलिए उन्हें गर्भोदशायी कहते हैं।

चतुर्मुख-अन्तर्यामी गर्भोदकशायी से ही गुणावतारों का प्राकट्य,—

(क) जगत् स्रष्टा ब्रह्मा की उत्पत्ति—

**ताँर नाभिपद्म हैते उठिल एक पद्म।**
**सेइ पद्मे हइल ब्रह्मार जन्म-सद्म॥२८७॥**
**सेइ पद्मनाले हैल चौद्द भुवन।**
**तिंहो 'ब्रह्मा' हञा सृष्टि करिला सृजन॥२८८॥**

**२८७-२८८। प० अनु०—**उन्हीं गर्भोदशायी के नाभिकमल से एक कमल उत्पन्न हुआ तथा वही कमल ही ब्रह्मा का जन्म स्थान बना। उसी कमल की नाल में ही चौदह भुवनों की स्थिति है। उन्हीं गर्भोदशायी ने ही ब्रह्मा बनकर सृष्टि की रचना की।

**अनुभाष्य**

२८७। सद्म—गृह, निकेतन, आवास।

ख) जगत्पालक विष्णु का प्राकट्य; वे सत्व के अधिष्ठातृ देवता होने पर भी स्वयं गुणमायातीत—

**'विष्णु'-रूप हञा करे जगत् पालने।**
**गुणातीत विष्णु—स्पर्श नाहि माया-सने॥२८९॥**

**२८९। प० अनु०—**वे द्वितीय पुरुष ही विष्णुरूप होकर जगत् का पालन करते हैं। विष्णु गुणातीत हैं, उनका माया के साथ कोई सम्पर्क नहीं है अर्थात् माया उन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकती।

**अनुभाष्य**

२८९। विष्णुमाया विष्णु का ब्रह्मा और शिव की भाँति आवरण नहीं कर सकती; क्योंकि विष्णु-गुणातीत वस्तु हैं, इसलिए मायिक गुण उन्हें स्पर्श करने में समर्थ नहीं हैं। गुणावतार ब्रह्मा और शिव—माया के अधीन हैं, किन्तु विष्णु वैसे नहीं हैं; क्योंकि "मायाधीश-मायावश ईश्वर और जीव में भेद है।"

(ग) जगत्-संहारक रुद्र की उत्पत्ति—

**'रुद्र'-रूप धरि' करे जगत् संहार।**
**सृष्टि, स्थिति, प्रलय हय इच्छाय जाँहार॥२९०॥**

**२९०। प० अनु०—**सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय—ये तीनों ही जिन द्वितीय पुरुष की इच्छा के अनुसार होते है, वे द्वितीय पुरुष ही रुद्र का रूप धारण करके जगत् का संहार करते हैं।

तीन गुणावतारों को तीन प्रकार के अधिकार का दायित्व-प्रदान—

**ब्रह्मा, विष्णु, शिव—ताँर 'गुण-अवतार'।**
**सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर तिनेर अधिकार॥२९१॥**

**२९१। प० अनु०—**ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश (शिव)—ये तीनों द्वितीय पुरुष के गुणावतार हैं। सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय पर क्रमशः इन तीनों का अधिकार है।

हिरण्यगर्भ अथवा समष्टिजीवों के अन्तर्यामी ये गर्भोदकशायी ही ऋकसूक्त द्वारा स्तवनीय—

**हिरण्यगर्भ-अन्तर्यामी—गर्भोदकशायी।**
**'सहस्रशीर्षादि' करि' वेदे जाँरे गाइ॥२९२॥**

**२९२। प० अनु०—**ये द्वितीय पुरुष गर्भोदकशायी

हिरण्यगर्भ अथवा समष्टि जीव (ब्रह्मा) के अन्तर्यामी हैं। वेद उनका 'सहस्त्र शीर्ष आदि' कहकर गान करते हैं।

**अनुभाष्य**

२९२। ''सहस्त्रशीर्ष पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र-पात'' इत्यादि ऋक्सूक्त।

वे भी स्वयं मायाधीश तत्व—

**एइ त' द्वितीय-पुरुष—ब्रह्माण्डेर ईश्वर।**
**मायार 'आश्रय' हय, तबु माया-पार॥२९३॥**

**२९३। प॰ अनु॰—**ये द्वितीय पुरुष गर्भोदकशायी ही ब्रह्माण्ड के ईश्वर हैं। यद्यपि ये माया के आश्रय हैं, तब भी माया के स्पर्श तक से भी परे हैं।

(३) अनिरुद्धरूपी तृतीय-पुरुषावतार क्षीरोदशायी अथवा गुणावतार विष्णु—

**तृतीय-पुरुष विष्णु—'गुण-अवतार'।**
**दुइ अवतार-भितर गणना ताँहार॥२९४॥**

**२९४। प॰ अनु॰—**अनिरुद्ध रूपी तृतीय पुरुषा-वतार गुणावतार के अन्तर्गत विष्णु कहलाते हैं। यद्यपि तृतीय पुरुष क्षीरोदकशायी द्वितीय पुरुष के अंश हैं, किन्तु क्योंकि वे जगत् पालन के लिये सत्त्वगुण के नियामक के रूप में भी अवतीर्ण होते हैं, इसलिए इन्हें गुणावतार भी कहते हैं। अतः अनिरुद्ध पुरुषावतार तथा गुणा-वतार—इन दोनों अवतारों में गिने जाते हैं।

वे ही सभी भूतों में अवस्थित अर्थात् विराट् अथवा व्यष्टिजीवों के अन्तर्यामी और पालक—

**विराट व्यष्टि-जीवेर तिंहो अन्तर्यामी।**
**क्षीरोदकशायी तिंहो—पालनकर्त्ता, स्वामी॥२९५॥**

**२९५। प॰ अनु॰—**तृतीय पुरुष अनिरुद्ध क्षीरोदकशायी ही व्यष्टि जीव के अन्तर्यामी हैं। वे ही विराट रूप वाले तथा सभी जीवों का पालन करने वाले प्रभु हैं।

(ख) लीलावतार का वर्णन—

**पुरुषावतारेर एइ कैलुँ निरूपण।**
**लीलावतार एबे शुन, सनातन॥२९६॥**

**२९६। प॰ अनु॰—**हे सनातन, अब तक मैंने पुरुषावतारों का निरूपण किया है। अब तुम लीलावतारों के विषय में सुनो।

असंख्य लीलावतारों में २५ मूर्त्ति ही मुख्य—

**लीलावतार कृष्णेर ना जाय गणन।**
**प्रधान करिया कहि दिगदरशन॥२९७॥**

**२९७। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण के लीलावतारों की गणना नहीं की जा सकती। उनमें से प्रधान-प्रधान के विषय में कहकर दिग्दर्शन करूँगा।

उनमें से किसी-किसी का नाम—

**मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन।**
**वराहादि—लेखा जाँर ना जाय गणन॥२९८॥**

**२९८। प॰ अनु॰—**मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन तथा वराह आदि अनेक लीलावतार हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती।

शास्त्र प्रमाण—
श्रीमद्भागवत (१०/२/४०)—

**मत्स्याश्व-कच्छप-नृसिंह-वराह-हंस-**
**राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।**
**त्वं पासि नस्त्रिभुवनञ्च तथाधुनेश**
**भारं भुवो हर यदुतम वन्दनं ते॥२९९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**२९९।** हे यदुत्तम्, मत्स्य, अश्वग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, दाशरथि, परशुराम, वामन इत्यादि रूपों में विविध अवतार लेकर हमारा एवं

त्रिभुवन का आप प्रतिपालन करते हैं; मैं आपकी वन्दना करता हूँ, हे ईश्वर! अब इस पृथ्वी का भार ग्रहण कीजिए।

**अनुभाष्य**

२९९। देवताओं सहित ब्रह्मा असुरों के संहार के लिये कंस के कारागार में स्थित देवकी के गर्भ गत (प्रविष्ट) भगवान् श्रीकृष्ण का स्तव कर रहे हैं,—

हे ईश, त्वं मत्स्याश्वकच्छपवराहनृसिंह-हंस राजन्य विप्रविबुधेषु (मत्स्य-हयग्रीव-कूर्म-वराह-नृसिंह-हंस-दाशरथि-परशुराम-वामनादिषु कला-रुपेण, कृतावतारः सन् (रुपाणि प्रकाश्य अवतारान् प्रकटयन्, अवतीर्णः सन्) नः (अस्मान् देवान्) त्रिभुवनं (भूर्भुवः स्वरिति स्वर्गमर्त्त्यपातालान् वा लोकत्रयान्) च (अन्यदा यथा) पासि (रक्षयसि), तथा अधुना (अपि) भुवः (पृथिव्याः) भारम् (अधर्म) हर (नाशय, अस्मान् पाहीत्यर्थः); (अतः) हे यदुत्तम्, (यदुकुलश्रेष्ठ), ते (तुभ्यं) वन्दनं (कूर्मः इति वयं सर्वे तां शिरोभिः प्रणमामः),।

(ग) तीन गुणावतारों का वर्णन—

**लीलावतारेर कैलुँ दिगदरशन।**
**गुणावतारेर एबे शुन विवरण॥३००॥**

**३००। प० अनु०—**मैंने लीलावतारों का दिग्दर्शन किया है। हे सनातन! अब तुम गुणावतारों का विवरण सुनो।

तीन जन—तीन कार्यों को करने वाले—

**ब्रह्मा, विष्णु, शिव,—तिन गुण-अवतार।**
**त्रिगुण अङ्गीकरि' करे सृष्टयादि-व्यवहार॥३०१॥**

**३०१। प० अनु०—**ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीन गुणावतार हैं। सत्व, रज और तमोगुण को अङ्गीकार करके ये सृष्टि आदि कार्य करते हैं।

**अनुभाष्य**

३०१। 'त्रिगुण अङ्गीकरि',—रजः, सत्त्व और तमोगुण को अङ्गीकार करके अर्थात् स्वीकार करके जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि व्यवहार के उद्देश्य से ब्रह्मा, विष्णु और शिव,—ये तीन गुणावतार हैं।

(१) रजोगुण से ब्रह्मा,—कभी तो महत्तम जीव के वैराज-ब्रह्मत्व, कभी तो उसके भाव में गर्भोदकशायी का ही हिरण्यगर्भ-ब्रह्मत्व—

**भक्तिमिश्रकृत-पुण्ये कोन जीवोतम।**
**रजोगुणे विभावित करि' ताँर मन॥३०२॥**
**गर्भोदकशायी द्वारा शक्ति सञ्चारि'।**
**व्यष्टि सृष्टि करे कृष्ण ब्रह्मा-रूप धरि'॥३०३॥**

**३०२-३०३। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३०१-३०३। वे गर्भोदकशायी पुरुषावतार विष्णु—सत्व, रजः और तमोगुण का आश्रय करके विष्णु, ब्रह्मा और शिव—यह तीन गुणावतार प्रकाशित करते हैं। उनमें से किसी उत्तम जीव को भक्तिमिश्रपुण्य क्रम के अनुसार रजोगुण में विभावित करके, उसमें अपनी शक्ति सञ्चार करके 'ब्रह्मारूप में व्यष्टि सृष्टि करते हैं।

ब्रह्मसंहिता (५/४९) में—

**भास्वान् यथाश्मसकलेषु निजेषु तेजः**
**स्वीयं कियत प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।**
**ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्त्ता**
**गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥३०४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३०४। सूर्य जिस प्रकार भिन्न-भिन्न पत्थरों में अपने तेज को कुछ परिमाण में प्रकट करते हैं, उसी प्रकार जो आदिपुरुष गोविन्द किसी जीव

में अपनी शक्ति का आधान (स्थापन) करके 'ब्रह्मा' होकर जगदण्ड (जगत् की सृष्टि का) विधान करते हैं, उनका मैं भजन करता हूँ।

**अनुभाष्य**

३०४। यथा भास्वान् (सूर्य:) निजेषु (नित्य-स्वीयत्वेन विख्यातेषु) अश्मसकलेषु अपि (सूर्यकान्ताख्येषु) स्वीयं कियत्तेज: (किञ्चित् प्रभाव) प्रकटयति, तद्वत् य: एष: पुरुष: (गर्भोदशायी) अत्र (ब्रह्माण्डे) ब्रह्मा (सन्) जगदण्डविधानकर्त्ता (ब्रह्माण्डस्य व्यष्टि सृष्टि कर्त्ता,) तं आदिपुरुषं गोविन्दम् अहं भजामि।

**कोन कल्पे यदि योग्य जीव नाहि पाय।**
**आपने ईश्वर तबे अंशे 'ब्रह्मा' हय॥३०५॥**

**३०५। प० अनु०—**किसी कल्प में यदि ऐसा योग्य जीव नहीं मिलता, तब ईश्वर स्वयं अपने अंश से ब्रह्मा बन जाते हैं।

**अनुभाष्य**

३०५। कल्प—ब्रह्मा की आयु का काल, ब्रह्मा की सौ वर्ष की स्थिति का काल। ब्रह्मा के एक दिन में अर्थात् सहस्त्र चतुर्युग में ४,३२,००,००००० सौरवर्ष में मनुष्य का 'कल्प' अर्थात् ब्रह्मदिन होता है। वैसे ३६० दिनों में ब्रह्मवर्ष होता है, वैसे सौ वर्ष ही ब्रह्मा की आयु का समय है।

श्रीमद्भागवत (१०/६८/३७)—

**यस्याङ्घ्रिपंकजरजोऽखिललोकपालै-**
**र्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासित-तीर्थतीर्थम्।**
**ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः**
**श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व॥३०६॥**

३०६। लोकपाल और समस्त तीर्थों के तीर्थ-स्वरूप जिनकी पदरज को अपने मस्तक पर धारण करते हैं एवं ब्रह्मा, शिव, मैं बलदेव तथा लक्ष्मी—हममें से कोई अंश अथवा अंशांश के रूप में जिनकी पदरज को सदा धारण करते हैं, उनके सामने सामान्य राजसिंहासन का क्या माहात्म्य है?

**अनुभाष्य**

३०६। आदि पञ्चम परिच्छेद १४१ संख्या द्रष्टव्य।

(२) तमोगुण में रुद्र; माया सङ्गिरूप में गर्भोदकशायी का ही रुद्र बनना—

**निजांश-कलाय कृष्ण तमो-गुण अङ्गीकारे।**
**संहारार्थे माया-सङ्गे रुद्र-रूप धरे॥३०७॥**

कृष्ण के स्वांश रूप में वस्तुतः अभिन्नांश ईश्वर-कोटि होने पर भी रुद्र—माया सङ्ग के विकार से जगत् के संहारक के रूप में विभिन्नांश जीव—

**मायासङ्ग-विकारे रुद्र—भिन्नाभिन्न रूप।**
**जीवतत्व-हय, नहे कृष्णेर 'स्वरूप'॥३०८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३०७-३०८। अपने अंश और कला में तमोगुण अङ्गीकार करके संहार करने के उद्देश्य से माया के साथ 'रुद्र' रूप धारण करते हैं। मायासङ्ग के विकार से रुद्र-भेदाभेद प्रकाश रूप तत्त्व हैं; अतः वे जीवतत्व में परिगणित अर्थात् गिने जाते हैं, वे कृष्ण के 'स्वरूप' नहीं हैं।

**अनुभाष्य**

३०७। कृष्ण अपने सङ्कर्षण रूप के अंश कारणार्णवशायी की कला गर्भोदकशायी महाविष्णु बनकर तमोगुण को ग्रहण करके जगत् के संहार के लिये गुणावतार रुद्र रूप धारण करते हैं। विष्णु में सत्वगुणाधिष्ठान स्वीकृत होने पर भी उनकी मायाधीनता, सम्भवपर नहीं है। जहाँ विष्णुत्व का अभाव है, वहाँ शिवत्व अथवा ब्रह्मत्व है;

उनमें माया का संयोग है। शिवत्व और ब्रह्मत्व—विष्णुमाया के अभिभाव्य हैं।

रुद्र के भेदाभेद प्रकाश होने की उपमा—दूध और दही का दृष्टान्त—

**दुग्ध जेन अम्लयोगे दधिरूप धरे।**
**दुग्धान्तर वस्तु नहे, दुग्ध हैते नारे॥३०९॥**

**३०९। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

३०८-३०९। **रुद्र—**विष्णु के साथ भेदाभेदतत्व हैं; माया के साथ में विकार प्राप्त करने से विष्णु से 'भिन्न' एवं स्वयं वस्तुतः विष्णु के साथ अभिन्न हैं। **विष्णु—**विष्णु के साथ कभी भी भिन्न नहीं हैं, किन्तु माया के वश के कारण शिव और ब्रह्मा आदि—विष्णु से भिन्न हैं। विष्णु कभी भी विकारी नहीं है। जहाँ ईश्वरत्व में मायिक विकार लक्षित होता है, वहाँ विष्णु से भिन्नरूप-गुणावतार-संज्ञक शिव अथवा ब्रह्मा हैं। अतएव—रुद्र-विकार युक्त भेदाभेद प्रकाश जीवतत्व हैं, स्वरूपतः कृष्णस्वरूप विष्णुतत्त्व नहीं, परन्तु वैष्णतत्त्व हैं। ईश्वररूपी दुग्ध मायारूपी अम्ल (खट्टे) के संयोग से दुग्धावस्था से दूध के विकार दही के रूप में परिवर्तित होने के कारण, यह दही दूध से उत्पन्न होने पर भी कभी भी दूध कहकर अपना परिचय प्रदान करने में समर्थ नहीं होती।

ब्रह्मसहिता (५/४५) में—

**क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्**
**संजायते न तु ततः पृथगस्ति हेतोः।**
**यः शम्भूतामपि तथा समुपैति कार्याद्-**
**गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥३१०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१०। विकार के संयोग से दूध जिस प्रकार दही बन जाता है, विकार के अलावा उसमें और कोई कारण नहीं है, उसी प्रकार जो आदिपुरुष गोविन्द कार्य के कारण शम्भुता स्वीकार करते हैं, मैं उनका भजन करता हूँ।

**अनुभाष्य**

३१०। क्षीरं (दुग्धं) यथा विकारविशेषयोगात् (अम्ल संयोगेन) दधि संजायते (दधिरुपेण परिणमते), ततः हेतोः (क्षीरात् अपि तु) न पृथक् (भिन्नम) अस्ति; तथा कार्यात् (प्राकृत-विश्वसंहारार्थं गुण-मायासङ्गज-विकारात्) यः पुरुषः (गर्भोदकशायी विष्णुः) शम्भुतां (रुद्रत्वम्) अपि समुपैति (गृह्णाति) तम् आदिपुरुषं गोविन्दम् अहं भजामि।

रुद्र और विष्णु में अन्तर—

**'शिव'—मायाशक्तिसङ्गी, तमोगुणावेश।**
**मायातीत, गुणातीत 'विष्णु'—परमेश॥३११॥**

**३११। प० अनु०—**शिव माया शक्ति के सङ्गी तथा तमोगुण में आविष्ट रहते हैं। किन्तु विष्णु मायातीत तथा गुणातीत होने के कारण परमेश्वर हैं।

**अनुभाष्य**

३११। भगवान् विष्णु—त्रिगुणातीत और अपनी माया के लिये अचिन्त्य स्वतन्त्र परमेश्वर वस्तु हैं। शिव स्वरूपतः भागवत होने पर भी त्रिगुण में से अन्यतम (एक) तमोगुण के अधीश्वर होकर माया सम्बन्धयुक्त एवं माया शक्ति के सङ्ग के बल से उससे जुड़े हुए हैं। भगवान् विष्णु में माया का अस्तित्व नहीं है; माया के अस्तित्व की अनुभूति में ही शिव की सत्ता है, अतएव रुद्र विष्णुतत्व नहीं होकर माया से सम्पर्क युक्त तत्व-विशेष हैं। अपनी भागवत-सत्तानुभूति में शिव की मायापतित्व अथवा माया भोक्तृत्व-बुद्धि के दूर होने पर ही उनका हरिजनत्व प्रकटित होता है।

व्यवहारतः रुद्र सदैव गुणमाया से मिलित—
श्रीमद्भागवत (१०/८८/३-५)—

**शिवः शक्तियुक्तः शश्वत् त्रिलिङ्गो गुणसंवृत्तः।**
**वैकारिकस्तेजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा॥३१२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१२। वैकारिक, तेजस और तामस,—इन तीन प्रकार के अहङ्कार द्वारा संवृत एवं सर्वदा मायाशक्तियुक्त तत्त्व ही 'शिव' हैं।

**अनुभाष्य**

३१२। रुद्र और विष्णु के उपासकों की विरुद्ध गति के विषय में जिज्ञासा करने पर परीक्षित के प्रति श्रीशुकदेव की निम्नलिखित उक्ति—शिवः शस्वत् (नित्य) शक्तियुतः (स्वेच्छा-गृहीत्या गुणसाम्यावस्थया मायाशक्ता समन्वितः) वैकारिकः (सात्त्विकः) तैजसः (राजसः) तामसः च इति अहं (अहङ्कार तत्त्व)—त्रिधा (अन्योऽन्योप-मर्द्देन तमसस्त्रैविध्यात्) त्रिलिङ्गः (गुणत्रयोपाधिविष्टः) गुणसंवृतः (प्रकटैश्च सद्भिः तैः गुणैः दूरतः संवृतः तदधिष्ठाता)।

विष्णु के गुणों का मायातीत और अधोक्षज होना—

**हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।**
**स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणों भवेत्॥३१३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१३। श्रीहरि—प्रकृति से अतीत साक्षात् निर्गुण पुरुष हैं; वे सर्वदृक (सभी वस्तुओं को देखने वाले) एवं सभी के उपदेष्टा हैं; उनका भजन करने से जीव निर्गुण होता है।

**अनुभाष्य**

३१३। हरिः हि (खलु) प्रकृते परः (न तु ब्रह्माशिवादिवत् प्राकृतगुणमिश्रः, अधोक्षजत्वात्) साक्षात् (अनावृतः) निर्गुणः (सङ्कल्पैनैव सत्वस्य प्रवर्त्तनात्) पुरुषः (पुरुषोत्तमः); सः (हरिः) सर्वदृक् (सर्वेषां ब्रह्म शिवादीनां दृक् मोक्षहेतुर्ज्ञानं यस्मात् सः, सर्वं पश्यतीति वा, अतः) उपद्रष्टा (सन्निधौ मुक्तान् पश्यति, मुक्तगम्यः, आदिसाक्षी वा अतः) तं (हरिं) भजन् निर्गुणो (स्वरूपस्थः) भवेत्।

(३) सत्वगुण में विष्णु गर्भोदकशायी के ही विलास, कृष्ण की कला—

**पालनार्थ स्वांश विष्णुरूपे अवतार।**
**सत्त्वगुण दृष्टान्त, ताते गुणमाया-पार॥३१४॥**
**स्वरूप—ऐश्वर्यपूर्ण, कृष्णसम प्राय।**
**कृष्ण अंशी, तेंहो अंश, वेदे हेन गाय॥३१५॥**

**३१४-३१५ प॰ अनु॰—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१४-३१५। ब्रह्मा शक्त्यावेश होने पर भी गुणावतार हैं। रुद्र भेदाभेद होने पर भी गुणावतार हैं। किन्तु विष्णु स्वांशरूप में गुणावतार होने पर भी उनके शुद्धसत्त्व रूपी गुण के दर्शन से उन्हें माया के गुणों के अतीत कहना होगा। विष्णु—अंश, कृष्ण—उनके अंशी है; अतएव कृष्ण की भाँति विष्णु स्वरूप-ऐश्वर्य से पूर्ण हैं।

दीपक का दृष्टान्त—
ब्रह्मसंहिता (५/४६) में—

**दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य**
**दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा।**
**यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति**
**गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥३१६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१६। दीपक की किरणें जिस प्रकार भिन्न आधार में एक अलग दीपक की भाँति कार्य करती है अर्थात् पहले वाले दीपक की भाँति समान धर्म से युक्त होती है, उसी प्रकार जो

आदिपुरुष गोविन्द 'विष्णु' बनकर प्रकाशित हो रहे हैं, उनका मैं भजन करता हूँ।

**अनुभाष्य**

३१६। (यतः) हि दीपार्च्चिः (प्रदीपशिखा) एव दशान्तरं (महादीपात् क्रमपरम्परया अन्यदीपम्) अभ्युपेत्य विवृतहेतुसमानधर्मा (प्राकट्य-कारण-मूल-दीपेन सह सधर्म्मयुक्तः अर्थात् (ज्योतीरूपत्वांशे यथा तेन सह समः) (भाति), दीपायते (दीप इव आचरति) तादृक एव यः पुरुषः हि विष्णुतया (गर्भोदशायिनः विलासरुपक्षीरोदशयित्वेन) च विभाति (दिव्यति), तम् आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि।

विष्णु, ब्रह्मा और शिव का स्वरूप ब्रह्मा और शिव—वश्य तत्व और कृष्ण से भिन्न-आकृति; विष्णु—ईश-तत्त्व और कृष्ण के समान आकृति वाले—

**ब्रह्मा, शिव—आज्ञाकारी भक्त-अवतार।**
**पालनार्थे विष्णु—कृष्णेर स्वरूप-आकार॥३१७॥**

**३१७। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

३१७। पालनशक्ति से युक्त विष्णु कृष्ण से भिन्न वस्तु नहीं हैं; वे-यद्यपि कृष्णस्वरूप ही हैं, परन्तु ब्रह्मा अथवा शिव-उनके आज्ञाकारी (आज्ञावाहक अथवा आज्ञानुवर्ती) भक्तावतार दास हैं।

श्रीमद्भागवत (२/६/३२) में—

**सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।**
**विश्वं पुरुषरुपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्॥३१८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१८। ब्रह्मा ने कहा—हरि के नियोग मत से ही मैं सृष्टि करता हूँ, उनकी आज्ञा से ही शिव नाश करते हैं, त्रिशक्तिधृक (तीन शक्तियों को धारण करनेवाले) वह हरि ही पुरुष रूप में विश्व का पालन करते हैं।

**अनुभाष्य**

३१८। देवर्षि नारद के द्वारा अपने गुरु ब्रह्मा से उनके भी आराध्य सर्वश्रेष्ठ-तत्त्व परमात्मा श्रीहरि के सम्बन्ध में जानने की इच्छा करने पर, ब्रह्मा उनके निकट भगवान् के विश्वरूप का वर्णन करने के बाद अद्वयज्ञान-विष्णु के परमेश्वर होने का कीर्त्तन कर रहे हैं—

अहं (ब्रह्मा) तन्नियुक्तः (तेन प्रयोजितः सन् तस्य हरेः अनुज्ञया विश्व) सृजामि; हरः (शिवः) तद्वशः (तन्नियुक्तः सन् तस्य हरेरनुज्ञया विश्व) हरति (विनाशयति); त्रिशक्तिधृक् (त्रिशक्तिः त्रिगुण मायाशक्तिः, अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा, तटस्था शक्तिः वा, तां धरति यः सः ईश्वर स्वयम् एव) पुरुषरूपेण (क्षीरोदशायि-विष्णु रूपेण, परिपाति (पालयति)।

(घ) मन्वन्तरावतार वर्णन—

**मन्वन्तरावतार एबे, शुन सनातन।**
**असख्य गणन ताँर, शुनह कारण॥३१९॥**

**३१९। प० अनु०—**हे सनातन, अब मन्वन्तरावतार के विवरण को सुनो। उनके असंख्य होने का कारण सुनो।

**अनुभाष्य**

३१९। मन्वन्तरावतार,—आदि द्वितीय परिच्छेद ९७ संख्या का अमृतप्रवाह भाष्य एवं आदि तृतीय परिच्छेद ७-९ संख्या का अनुभाष्य और मध्य २० परिच्छेद १६७ संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

मन्वन्तरावतार का समय—

**ब्रह्मार एकदिने हय चौद्दह मन्वन्तर।**
**ए चौद्द अवतार ताँहा करेन ईश्वर॥३२०॥**

**३२०। प० अनु०—**ब्रह्मा के एक दिन में

चौदह मन्वन्तर होते हैं। इन चौदह मन्वन्तरों में भगवान् चौदह अवतार ग्रहण करते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३२०। मन्वन्तरावतार,—ब्रह्मा के एक दिन में १४ मन्वन्तर तथा उन चौदह मन्वन्तरों में १४ अवतार होते हैं। ब्रह्मा के एक मास में ४२० एवं एकवर्ष (३६० दिनों) में ५०४० अवतार तथा ब्रह्मा के जीवन में ५०४००० मन्वन्तरावतार होते हैं।

संख्या का निर्देश—

**चौद्द एक दिने, मासे चारिशत बिश।**
**ब्रह्मार वत्सरे पञ्चसहस्त्र चल्लिश॥३२१॥**

**३२१। प० अनु०—**ब्रह्मा के एक दिन में चौदह अवतारों की गणना के अनुसार ब्रह्मा के एक मास में चार सौ बीस तथा ब्रह्मा के एक वर्ष में पाँच हजार चालीस अवतार होते हैं।

**शतेक वत्सर हय 'जीवन' ब्रह्मार।**
**पञ्चलक्ष चारिसहस्त्र मन्वन्तरावतार॥३२२॥**

**३२२। प० अनु०—**ब्रह्मा का जीवन एक सौ वर्ष का होता है, उसमें पाँच लाख चालीस हजार मन्वन्तरावतार होते हैं।

कारणाब्धिशायी के निश्वास त्याग करने से लेकर प्रश्वास लेने तक ब्रह्मा की आयु—

**अनन्त ब्रह्माण्डे ऐछे करह गणन।**
**महाविष्णु एकश्वासे ब्रह्मार जीवन॥३२३॥**

**३२३। प० अनु०—**अब अनन्त ब्रह्माण्डों में होने वाले ऐसे अवतारों की गणना करों। कारणब्धिशायी महाविष्णु के एक श्वास अर्थात् निश्वास त्याग से प्रश्वास ग्रहण करने के समय तक ब्रह्मा का जीवन होता है।

**महाविष्णुर निश्वासेर नाहिक पर्यन्त।**
**एक मन्वन्तरावतारेर देख लेखार अन्त॥३२४॥**

**३२४। प० अनु०—**महाविष्णु के निश्वासों की कोई सीमा नहीं है। देखो, एक मन्वन्तरावतारों के विषय में बतलाना ही कितना कठिन है।

चौद्दह मन्वन्तरावतारों के नाम—

**स्वायम्भूवे 'यज्ञ', स्वारोचिषे 'विभु' नाम।**
**उत्तमे 'सत्यसेन', तामसे 'हरि' अभिधान॥३२५॥**
**रैवते 'वैकुण्ठ', चाक्षुषे 'अजित', वैवस्वते 'वामन'।**
**सावर्ण्ये 'सार्वभौम', दक्षसावर्ण्ये 'ऋषभ' गणन॥३२६॥**
**ब्रह्मसावर्ण्ये 'विष्वक्सेन', 'धर्मसेतु' धर्मसावर्ण्ये।**
**रुद्रसावर्ण्ये 'सुधामा', 'योगेश्वर' देवसावर्ण्ये॥३२७॥**
**इन्द्रसावर्ण्ये 'बृहदभानु' अभिधान।**
**एक चौद्द मन्वन्तरे चौद्द 'अवतार' नाम॥३२८॥**

**३२५-३२८। प० अनु०—**स्वायम्भुव मन्वन्तर में 'यज्ञ' अवतार, स्वरोचिष मन्वन्तर में 'विभु' अवतार, उत्तम मन्वन्तर में 'सत्यसेन' अवतार, तामस मन्वन्तर में 'हरि' अवतार, रैवत मन्वन्तर में 'वैकुण्ठ' अवतार, चाक्षुष मन्वन्तर में 'अजित' अवतार, वैवस्वत मन्वन्तर में 'वामन' अवतार, सावर्ण्य मन्वन्तर में 'सार्वभौम' अवतार, दक्षसावर्ण्य में 'ऋषभ' अवतार, ब्रह्मसावर्ण्य में 'विष्वक्सेन' अवतार, धर्म सावर्ण्य में 'धर्मसेतु' अवतार, रुद्र सावर्ण्य में 'सुधामा' अवतार, देवसावर्ण्य में 'योगेश्वर' अवतार तथा इन्द्रसावर्ण्य में 'बृहद्भानु' अवतार होता है। इन चौदह मन्वन्तरों में चौदह अवतारों के ये ही नाम हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३२५। स्वायम्भुव में,—स्वायम्भुव-मन्वन्तर में यज्ञ अवतार, स्वरोचिष मन्वन्तर में 'विभु' इत्यादि चौदह मन्वन्तरों में चौदह अवतार हैं।

**अनुभाष्य**

३२५-३२८। मनुगण—यथा (१) स्वायम्भूव,—स्वयम्भू ब्रह्मा के पुत्र; (२) स्वारोचिष,—स्वरोचिः वा अग्नि के पुत्र; (३) उत्तम—प्रियव्रत के पुत्र; (४) तामस,—उत्तम के भ्राता; (५) रैवत,—तामस के सहोदर; (६) चाक्षुष—चक्षु के पुत्र; (७) वैवस्वत,—विवस्वान् सूर्य के पुत्र; ८) सावर्णि,—सूर्य के ओरस से छाया के गर्भ से उत्पन्न पुत्र; (९) दक्षसावर्णि,—वरुण के पुत्र; १०) ब्रह्मसावर्णि,—उपश्लोक के पुत्र; (११-१४) रुद्र सावर्णि, धर्म सावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्र सावर्णि का नामान्तर रुद्रपुत्र रोच्य, सत्यसहा-पुत्र और भौत्यक।

ड) युगावतार-वर्णन—

**युगावतार एबे शुन, सनातन।**
**सत्य-त्रेता-द्वापर-कलि-युगेर गणन॥३२९॥**

**३२९। प० अनु०—**हे सनातन, अब युगावतारों के विषय में श्रवण करो। सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि—ये युग कहलाते हैं।

चारों युगों में चार
वर्ण अवतार—

**शुक्ल-रक्त-कृष्ण-पीत—क्रमे चारि वर्ण।**
**चारिवर्ण धरि' कृष्ण करेन युगधर्म॥३३०॥**

**३३०। प० अनु०—**सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि में क्रमशः शुक्ल, रक्त, कृष्ण तथा पीत वर्ण धारण करके कृष्ण युगधर्म का संस्थापन करते हैं।

**अनुभाष्य**

३३०। सत्ययुग में—शुक्लवर्ण युगावतार; त्रेतायुग में—रक्तवर्ण युगावतार, द्वापरयुग में,—कृष्णवर्ण युगावतार एवं कलियुग में,—पीतवर्ण युगावतार; इन चार प्रकार के वर्णों को धारण करके कृष्ण युगावतार धर्म की रक्षा करते हैं।

श्रीमद्भागवत (१०/८/१३) में—

**आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुः।**
**शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥३३१॥**

३३१। [गर्गाचार्य ने श्रीनन्द महाराज से कहा—] आपका यह पुत्र अन्य तीन युगों में शुक्ल, रक्त एवं पीतवर्ण धारण करता है परन्तु वर्तमान द्वापर युग में इसने कृष्णवर्ण धारण किया है।

**अनुभाष्य**

३३१। आदि तृतीय परिच्छेद ३६ संख्या द्रष्टव्य है।

सत्य में ब्रह्मचारी वेष में, शुक्लवर्ण
के चतुर्भुज भगवान्—

**सत्ययुगे ध्यान-धर्म कराय 'शुक्ल'-मूर्त्ति धरि'।**
**कर्द्दमके वर दिला यिंहो कृपा करि'॥३३२॥**

**३३२। प० अनु०—**सत्ययुग में भगवान् शुक्ल रूप धारण करके ध्यान-कर्म को संस्थापित करते हैं। उन्होंने ही कृपा करके कद्‌र्दम ऋषि को वर प्रदान किया था।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३३२। कद्‌र्दम,—प्रजापति, जिन्होंने मनु की कन्या देवहूति से विवाह किया एवं जिनके पुत्र कपिलदेव हैं। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने शुक्ल मूर्त्ति में उन्हें दर्शन दिया था।

**अनुभाष्य**

३३२। **(भाः ११/५/२१)—**''कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलोवल्कलाम्बरः। कृष्णजिनोपवीताक्षान् विभ्रद् दण्डकमण्डलु॥'' एवं भाः ३/२१/१६, ३५, ५१, ३/२२/१९, ३/२३/२३, ५/१०/१६ द्रष्टव्य।

त्रेता में रक्तवर्ण वाले चतुर्भुज भगवान्—

**कृष्ण-'ध्यान' करे लोक ज्ञान-अधिकारी।**

**त्रेतार धर्म 'यज्ञ' कराय 'रक्त'-वर्ण धरि'॥३३३॥**

**३३३। प० अनु०—**ज्ञान के अधिकारी व्यक्ति सत्ययुग में कृष्ण का ध्यान करते हैं। त्रेतायुग में भगवान् रक्त वर्ण धारण करके त्रेता के धर्म 'यज्ञ' को संस्थापित करते हैं।

**अनुभाष्य**

३३३। **(भाः ११/५/२४)—**'त्रेतायां रक्त-वर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः। हिरण्यकेशस्त्रयात्मा स्रुक-स्रुवाद्युपलक्षणः॥'' भाः ११/५/२६ श्लोक द्रष्टव्य।

द्वापर में श्यामवर्ण द्विभुज भगवान—

**'कृष्णपदार्चन' हय द्वापरेर धर्म।**
**'कृष्ण'-वर्णे कराय लोके कृष्णार्च्चन-कर्म॥३३४॥**

**३३४। प० अनु०—**द्वापर युग का धर्म कृष्ण के चरणों का अर्चन करना है। भगवान् द्वापर में कृष्ण वर्ण धारण करके लोगों से कृष्ण का अर्चन रूपी कार्य करवाते हैं।

श्रीमद्भागवत (११/५/२७, २९) में—

**द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः।**
**श्रीवत्सादिभिरङ्केश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥३३५॥**

३३५। द्वापरयुग में भगवान् श्यामवर्ण, पीतवास, वंशी आदि अपने आयुध एवं श्रीवत्सादि चिह्नों से युक्त—इस रूप में उपलक्षित होते हैं।

**अनुभाष्य**

३३५। आदि, तृतीय परिच्छेद ३९ संख्या द्रष्टव्य। श्याम,-अतसी-कुसुम-सङ्काश वर्ण। सभी द्वापर युगों में स्वयंरूप श्रीकृष्ण मूर्त्ति का अवतार नहीं होता; श्रीकृष्णावतार के पूर्ववर्ती अन्यान्य द्वापुर युगों में भगवान् शुक-पत्र-वर्ण अर्थात् हरिद्वर्ण आदि धारण करके अंश के द्वारा अवतीर्ण हुए थे,—यह श्रीविष्णुपुराण में, श्रीहरिवंश में और महाभारत आदि में सुना जाता है।

**नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।**
**प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः॥३३६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३३६। भगवान् वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को नमस्कार।

**अनुभाष्य**

३३६। 'किस युग में किस वर्ण को धारण करके किस विधि के द्वारा भगवान् पूजित होते हैं?'—विदेहराज निमि के इस प्रकार जिज्ञासा करने पर नव योगेन्द्रों में से एक करभाजन ऋषि द्वापर युग के अवतार का प्रणाम मन्त्र बतला रहे है—

(चतुर्व्यूहात्मकस्य भगवतः नामान्याह—) ते (तुभ्य) भगवते वासुदेवाय नमः ; (तुभ्य) सङ्कर्षणाय नमः ; (तुभ्य) प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय च नमः।

**एइ मन्त्रे द्वापरे करे कृष्णार्च्चन।**
**'कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन'—कलियुगेर धर्म॥३३७॥**

**३३७। प० अनु०—**उपरोक्त मन्त्र के द्वारा द्वापर में कृष्ण-अर्चन का प्रवर्त्तन कराते हैं। कलियुग का धर्म कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन है।

कलियुग में पीतवर्ण नाम-प्रेम-प्रचारक द्विभुज भगवान्—

**'पीत'-वर्ण धरि' तबे कैला प्रवर्तन।**
**प्रेमभक्ति दिला लोके लञा भक्तगण॥३३८॥**

**३३८। प० अनु०—**कलियुग में भगवान् पीत-वर्ण धारण करके कृष्णनाम सङ्कीर्त्तन का प्रवर्त्तन करते हैं। भगवान् ने अपने भक्तों के साथ-साथ लेकर लोगों को भी प्रेमभक्ति प्रदान की।

**अनुभाष्य**

३३८। कृष्ण ने पीतवर्ण धारण करके कलियुग के धर्म कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन का प्रवर्त्तन एवं भक्तों के साथ लोगों को भी कृष्ण प्रेमभक्ति प्रदान की।

कलि में स्वयं कृष्ण ही अवतारी
के रूप में अवतीर्ण—

**धर्म प्रवर्तन करे व्रजेन्द्रनन्दन।**
**प्रेमे गाय, नाचे लोक, करे सङ्कीर्तन॥३३९॥**

**३३९। प॰ अनु॰—**व्रजेन्द्रनन्दन ही धर्म का प्रवर्त्तन करते हैं। लोग प्रेम से नृत्य करते हैं तथा गाते हुए सङ्कीर्त्तन करते हैं।

श्रीमद्भागवत (११/५/३२) में—

**कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।**
**यज्ञैः सङ्कीर्त्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥३४०॥**

३४०। जिनके मुख में सदैव कृष्ण-वर्ण (कृष्ण-कथा, कृष्णमहिमा-वर्णन) है, जिनकी कान्ति अकृष्ण अर्थात् गौर है, उन्हीं अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र एवं पार्षद से परिवेष्टित महापुरुष का सुबुद्धिमान् जन संकीर्त्तन-प्राय यज्ञ के द्वारा यजन करते हैं।

### अनुभाष्य

३४०। आदि तृतीय परिच्छेद ५१ संख्या द्रष्टव्य।

कलियुग-धर्म नाम कीर्त्तन
का माहात्म्य—

**आर तिनयुगे ध्यानादिते जेइ फल हय।**
**कलियुगे कृष्णनामे सेइ फल पाय॥३४१॥**

**३४१। प॰ अनु॰—**अन्य तीन युगों में ध्यान आदि का जो फल होता है, कलियुग में लोग कृष्णनाम करने से वही फल प्राप्त करते हैं।

कलियुग की प्रशंसा—
श्रीमद्भागवत (१२/३/५१-५२) में—

**कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।**
**कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥३४२॥**
**कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।**
**द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्॥३४३॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

३४२-३४३। हे राजन्, दोषों की निधि कलि का एक महान् गुण है; कलियुग में कृष्ण-कीर्त्तन से ही जीव अत्यधिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त करता है। सत्ययुग में विष्णु का ध्यान करके, त्रेतायुग में यज्ञ के द्वारा याजन करके एवं द्वापर युग में अर्चन आदि करके जो फल प्राप्त होता है, कलियुग में हरिकीर्त्तन से वह सब फल प्राप्त होता है।

### अनुभाष्य

३४२। परीक्षित के द्वारा पापमय कलियुग में मनुष्यों के धर्म और अनर्थों के नाश के उपाय की जिज्ञासा करने पर श्रीशुकदेव ने सत्य, त्रेता तथा द्वापर युग के धर्म का वर्णन एवं कलियुग के असंख्य दोष बतलाने के बाद अध्याय के अन्त में उसके गुणों का कीर्त्तन करते हुए कहा—

हे राजन् दोषनिधेः (दोषाणां आधारस्य अपि) कलेः (कलियुगस्य) एकः महान् गुणः अस्ति; हि (यतः) कृष्णस्य कीर्त्तनात् (श्रीहरेः तदीयानां च नाम-रूप गुणलीलानुवादात्) एव मुक्तसङ्गः (अन्याभिलाष-वर्जितः ज्ञानकर्माद्यानावृतः च सन्) परं (पञ्चम्-पुरुषार्थं कृष्णप्रेम) व्रजेत (लभेत्)।

### अनुभाष्य

३४३। कृते (सत्ययुगे) विष्णुं ध्यायतः (हरिध्यानपरस्य जनस्य), त्रेतायां मखैः (यज्ञादिभिः) यजतः (वैदिकविधानेन अनुष्ठानरतः जनस्य), द्वापरे परिचर्यायां (पाञ्चरात्रिक-विधानेन अर्चनाया) यत् (फलं लब्धं), तत् (सर्वं) कलौ हरिकीर्त्तनात् एव (प्राप्नोति)।

विष्णुपुराण (६/२/१७) में, पाद्मोत्तर खण्ड (७२/२५) में, बृहद् नारदीय (३८/९७) में—

**ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्च्चयन्।**
**यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्त्य केशवम्॥३४४॥**

३४४। ध्यान और जप के द्वारा सत्ययुग में, यज्ञ द्वारा त्रेतायुग में एवं अर्चन द्वारा द्वापरयुग में जो फल मिलता है, वह कलियुग में केवल भगवन्नाम कीर्त्तन करने से ही प्राप्त हो जाता है।

**अनुभाष्य**

३४४। कृते (सत्ययुगे) ध्यायन् (ध्यानानुष्ठानेन), त्रेतायां यज्ञैः यजन् (यज्ञेश्वरं परितोषयन्), द्वापरे अर्चयन् (श्रीमूर्त्यादिकं पूजयन्) यत् (फलम्) अप्नोति (लभते), कलौ केशवं सङ्कीर्त्य (बहुभिर्मिलित्वा कीर्त्तयन्) तत् (सर्वम् एव भगवतोषणरूपफलम्) आप्नोति।

श्रीमद्भागवत (११/५/३६) में—

**कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।**
**यत्र सङ्कीर्त्तनेनैव सर्वस्वार्थोऽभिलभ्यते॥३४५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३४५। सभी गुणज्ञ सारग्राही आर्यपुरुष कलि को इसलिए 'धन्य' कहते हैं, क्योकि सङ्कीर्त्तन के द्वारा ही कलिकाल में सब प्रकार के स्वार्थों की प्राप्ति होती है।

**अनुभाष्य**

३४५। विदेहराज निमि के द्वारा किस युग में किस वर्ण को धारण करके किस किस विधि के द्वारा श्रीभगवान् पूजित होते हैं?'-इस विषय में जिज्ञासा करने पर नवयोगेन्द्रों में से एक करभाजन ऋषि कलियुग में भावी अवतारी श्रीगौरसुन्दर को प्रणाम करके कलियुग के गुण और माहात्म्य का कीर्त्तन कर रहे हैं—

यत्र (कलौ) सङ्कीर्त्तनेन (कीर्त्तनाख्यभक्त्यनुष्ठानेन) एव सर्वः स्वार्थः (सर्वपुरुषार्थः) अभिलभ्यते (सर्वतोभावेन प्राप्यते, अतः इति) गुणज्ञाः (कलेर्गुणं जानन्ति ये ते) आर्याः (महात्मानः) सारभागिनः (गुणांशग्रहिणः तं कलिं) सभाजयन्ति (अर्चयन्ति)।

**पूर्ववत् लिखि जबे गुणावतारगण।**
**असंख्य सख्या ताँर, ना हय गणन॥३४६॥**

**३४६। प० अनु०—**जैसा कि मैंने गुणावतारों का वर्णन करते हुए कहा था, उसी प्रकार युगावतारों को भी असंख्य मानना चाहिए, इनकी गणना नहीं की जा सकती।

गौरलीला-तत्वज्ञ, कृष्णभजन-चतुर सनातन—

**चारियुगावतारे एइ त' गणन।''**
**शुनि' भङ्गि करि' ताँरे पुछे सनातन॥३४७॥**

**३४७। प० अनु०—**इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष संक्षेप में चारों युगों के अवतारों का विवरण प्रस्तुत किया है। श्रीमन्महाप्रभु की बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी ने भङ्गिमा करते हुए उनसे पूछा—।

चतुर-चतुर में वार्त्तालाप—

**राजमन्त्री सनातन—बुद्ध्ये बृहस्पति।**
**प्रभुर कृपाते पुछे असङ्कोच-मति॥३४८॥**

**३४८। प० अनु०—**श्रीसनातन गोस्वामी राजमन्त्री थे, उनकी बुद्धि बृहस्पति के समान थी, श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से उन्होंने बिना किसी सङ्कोच के श्रीमन्महाप्रभु से पूछा—।

स्वयं प्रभु के श्रीमुख से प्रभु के अवतार के उद्देश्य की बिना किसी भय के जिज्ञासा—

**''अति क्षुद्र जीव मुञि नीच, नीचाचार।**
**केमने जानिब कलिते कोन् अवतार??''३४९॥**

**३४९। प० अनु०—**''मैं अत्यन्त क्षुद्र जीव हूँ, नीच हूँ तथा नीच आचरण करने वाला हूँ। मुझे कैसे पता चलेगा कि कलियुग का कौन-सा अवतार है?''

प्रभु के द्वारा कलियुग के अवतार का परिचय-प्रदान—

**प्रभु कहे,—"अन्यावतार शास्त्र-द्वारा जानि।**
**कलिते अवतार तैछे शास्त्रद्वारा मानि॥३५०॥**

**३५०। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने बतलाया—"जिस प्रकार अन्यान्य अवतारों के विषय में शास्त्र के द्वारा जाना जाता है, उसी प्रकार कलियुग के अवतार के विषय में भी शास्त्र के वचनों के द्वारा जाना जा सकता है।

शास्त्र के आलोक में ही भगवद्-ज्ञान की प्राप्ति—

**सर्वज्ञ मुनिर वाक्य—शास्त्र-'प्रमाण'।**
**आमा-सबा जीवेर हय शास्त्रद्वारा 'ज्ञान'॥३५१॥**

**३५१। प॰ अनु॰—**सर्वज्ञ मुनियों के वचन ही शास्त्र-प्रमाण हैं, हम सब जीवों को शास्त्र के द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।

परोक्षवाद ही अवतार को प्रिय; लक्षण के द्वारा तत्व को जानने वालों द्वारा वस्तु का निर्देश—

**अवतार नाहि कहे,—'आमि अवतार'।**
**मुनि सब जानि' करे लक्षण-विचार॥३५२॥**

**३५२। प॰ अनु॰—**अवतार स्वयं नही कहता—'मैं अवतार हूँ'। मुनिगण सबकुछ जानकर उनके लक्षणों पर विचार करते हैं।

जीव के दुःसाध्य और अपरिमेय वीर्य के द्वारा विष्णु तत्त्व की उपलब्धि—

श्रीमद्भागवत (१०/१०/३४) में—

**यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरिष्वशरीरिणः।**
**तैस्तैरतुल्यातिशयेर्वीर्येर्देहिष्विसङ्गतैः॥३५३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३५३। प्राकृत शरीर रहित अप्राकृत शरीरी परमेश्वर के अवतार तत्त्व—जीवों के लिये दुःसाध्य है; अतिशय अतुलनीय और अलौकिक वीर्य के द्वारा ही वैसे आपके अवतारों के विषय में कुछ ज्ञान होता है।

**अनुभाष्य**

३५३। जब कृष्ण ने कृपा प्रकाशित करते हुए यमलार्जुन नामक दो वृक्षों को गिरा दिया, तब कुबेर के वे नलकुबर और मणिग्रीव नामक दो पुत्र कृष्ण का स्तव कर रहे हैं—

देहिषु (जीवेषु) असङ्गतैः (दुष्प्राप्येः) अतुल्यातिशयैः (नास्ति तुल्यम् अतिशयम् आधिक्यम् येभ्यः तैः) तेः तेः वीर्येः (विभवैः) शरीरिषु (प्रपञ्चे देहिषु जीवेषु मध्ये) अशरीरिणः (प्राकृतशरीर-वर्जितस्य अपि) यस्य (तव) अवताराः ज्ञायन्ते।

स्वरूप और तटस्थ लक्षण की संज्ञा—

**'स्वरूप'-लक्षण, आर 'तटस्थ-लक्षण'।**
**एइ दुइ लक्षणे 'वस्तु' जाने मुनिगण॥३५४॥**

**३५४। प॰ अनु॰—**स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण—इन दो लक्षणों के द्वारा मुनिगण वस्तु के विषय में जानते हैं।

**आकृति, प्रकृति, स्वरूप,—स्वरूप-लक्षण।**
**कार्यद्वारा ज्ञान,—एइ तटस्थ-लक्षण॥३५५॥**

**३५५। प॰ अनु॰—**आकृति, प्रकृति तथा स्वरूप—ये स्वरूप लक्षण है तथा किसी वस्तु के कार्य द्वारा जिन लक्षणों का ज्ञान होता है—उसे तटस्थ लक्षण कहते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३५५। आकृति,—आकार ; प्रकृति—स्वभाव; स्वरूप,—मूर्त्ति; स्वरूप-लक्षण—उस विग्रह का व्यवहार; तटस्थ-लक्षण—कार्य द्वारा ज्ञान।

**अनुभाष्य**

३५५। आकृति, प्रकृति एवं स्वरूप,—ये तीन ही 'स्वरूप' अथवा 'मुख्य' लक्षण हैं। कार्य के द्वारा ज्ञान ही 'तटस्थ' अथवा 'गौण' लक्षण है।

श्रीमद्भागवत (१/१/१) में मङ्गलाचरण के प्रारम्भ में स्वरूप और तटस्थ लक्षण से परमेश्वर कृष्ण का निरूपण—

**भागवतारम्भे व्यास मङ्गलाचरणे।**
**'परमेश्वर' निरूपिल एइ दुइ लक्षणे॥३५६॥**

**३५६। प० अनु०—**श्रीमद्भागवत के आरम्भ में श्रीव्यास देव ने मङ्गलाचरण में इन लक्षणों के आधार पर ही परमेश्वर का निरुपण किया है।

**अनुभाष्य**

३५६। भागवत के 'जन्माद्यस्य' श्लोक में 'सत्यं' और 'परं' नामक दो शब्द स्वरूप लक्षण एवं विश्व-सृष्टि-स्थिति-लय, ब्रह्मा के हृदय में वस्तु ज्ञान प्रकट करना और अर्थाभिज्ञता आदि तटस्थ लक्षण व्यक्त करके परमेश्वर को निरूपित किया गया है।

श्रीमद्भागवत (१/१/१) में—

**जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्**
**तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।**
**तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा**
**धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥३५७॥**

३५७। इस विश्व का जन्म, स्थिति और लय जिस तत्त्व से हुआ है, कहकर निश्चित होता है, अन्वय-व्यतिरेक द्वारा विचार करने पर जो समस्त अर्थ अथवा व्यापार में एकमात्र परम 'ज्ञ-तत्त्व' जो अर्थात् 'स्वरूपतत्त्व' के रूप में स्थिर होते हैं; जो दृश्यमान जगत् में एकमात्र स्वराट् अर्थात् स्वतन्त्र राजा है; जिन्होंने आदिकवि ब्रह्मा को अन्तर्यामी के रूप में ब्रह्म तत्त्व की शिक्षा दी है; जिनके प्रति समस्त बुद्धिमान् पण्डितों में मुहर्मुहः (बारम्बार) मोह उत्पन्न होता है; जिनमें तेजोवारि-मृत्तिका (अग्नि, जल और मिट्टी) आदि भूतों का विनमय अर्थात् पृथक् रूप में सत्ता है; जिनमें तीन प्रकार की सृष्टि अर्थात् चिद् उदय रूप सृष्टि, जीव-प्राकट्य रूप सृष्टि और मायिक ब्रह्माण्ड रूप सृष्टि—सत्यरूप में वर्त्तमान है; उन्हीं आत्म शक्ति द्वारा नित्य-कुहक-शून्य परमसत्य तत्त्वरूपी श्रीकृष्ण का हम ध्यान करते हैं।

**अनुभाष्य**

३५७। मध्य अष्टम परिच्छेद २६६ संख्या द्रष्टव्य।

इस प्रथम श्लोक में परमेश्वर का (१) स्वरूप लक्षण—

**एइ श्लोके 'परं'-शब्दे 'कृष्ण'-निरुपण।**
**'सत्यं' शब्दे कहे ताँर स्वरूप-लक्षण॥३५८॥**

**३५८। प० अनु०—**इस श्लोक में 'परं' शब्द के द्वारा कृष्ण का निरुपण तथा 'सत्य' शब्द के द्वारा उनके स्वरूप लक्षण को बतलाया गया है।

(२) तटस्थ लक्षण—

**विश्वसृष्ट्यादि कैल, वेद ब्रह्माके पड़ाइल।**
**अर्थाभिज्ञता, स्वरूपशक्तये माया दूर कैल॥३५९॥**
**एइसब कार्य—ताँर तटस्थ-लक्षण।**
**अन्य अवतार ऐछे जाने मुनिगण॥३६०॥**

**३५९-३६०। प० अनु०—**कृष्ण ने विश्व की सृष्टि आदि की, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया, उन्हें पूर्ण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष ज्ञान है तथा उन्होंने स्वरूप शक्ति के प्रभाव से माया को दूर किया—ये सब कार्य उनके तटस्थ लक्षण है। मुनिगण अन्यान्य अवतारों के विषय में भी इन्हीं लक्षणों के द्वारा जान लेते हैं।

जानने वालों के द्वारा उक्त दो लक्षणों के द्वारा ही सभी अवतारों का निर्णय—

**अवतार-काले हय जगतेर गोचर।**
**एइ दुइ लक्षणे केह जानेन ईश्वर॥''३६१॥**

**३६१। प० अनु०—**भगवान् जब अवतार लेते हैं तो वे जगत के गोचर होते हैं, उपरोक्त दो

लक्षणों के द्वारा कोई-कोई उन्हें ईश्वर के रूप में जान लेते हैं।

भजन में चतुर भक्तों के निकट भगवान् का गुप्त स्वभाव व्यक्त—

**सनातन कहे,—"जाते ईश्वर-लक्षण।**
**पीतवर्ण, कार्य—प्रेमदान-सङ्कीर्तन॥३६२॥**

**३६२। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

### अनुभाष्य

३६२। कलिकाल में युगावतार का स्वरूप-लक्षण,—पीतवर्ण तथा आकार है तथा तटस्थ-लक्षण—प्रेमदान और सङ्कीर्त्तनरूपी कार्य है।

सनातन के द्वारा प्रभु की लीला की व्याख्या को श्रवण करने की अभिलाषा—

**कलिकाले सेइ 'कृष्णावतार' निश्चय।**
**सुदृढ़ करिया कह, जाउक संशय॥"३६३॥**

**३६३। प॰ अनु॰—**कलिकाल में वह कृष्णावतार अवश्य ही होगा। आप मुझे दृढ़तापूर्वक बतलाइये, जिससे मेरा संशय दूर हो जाये।

भक्त की जीत, भगवान् की पराजय—

**प्रभु कहे,—"चतुरालि छाड़, सनातन।**
**शक्त्यावेशावतारेर शुन विवरण॥३६४॥**

**३६४। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—हे सनातन, अपनी चतुरायी छोड़ो तथा अब शक्त्या-वेशावतारों का विवरण सुनो।

### अनुभाष्य

३६४। चतुरालि,—कुशलता पूर्वक मनोगत अभिप्राय को स्थापित करना, निपुणता-प्रदर्शित करना, बुद्धिमता प्रकाशित करना।

कृष्ण के छह प्रकार के विलास और तीन प्रकार के रूपों में से एक (ग) शक्त्यावेशावतार का वर्णन—

**शक्त्यावेशावतार कृष्णेर असंख्य गणन।**
**दिग्‌दरशन करि मुख्य मुख्य जन॥३६५॥**

**३६५। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण के असंख्य शक्त्या-वेशावतार हैं, मैं केवल मुख्य-मुख्य शक्त्या-वेशावतारों का वर्णन करके दिग्दर्शन कराऊँगा।

दो प्रकार के शक्त्यावेश—साक्षात् शक्त्याविष्ट मुख्य—'अवतार' और शक्त्याभासाविष्ट 'गौण-विभूति' संज्ञा—

**शक्त्यावेश दुइरूप—**
**'मुख्य', 'गौण' देखि।**
**साक्षात्शक्त्ये 'अवतार',**
**आभासे 'विभूति' लिखि॥३६६॥**

**३६६। प॰ अनु॰—**शक्त्यावेश अवतार मुख्य तथा गौण—दो प्रकार के होते हैं। जिनमें साक्षात्-शक्ति का आवेश हैं वे अवतार अर्थात् मुख्य शक्त्यावेशावतार तथा जिनमें शक्ति के आभास का आवेश हैं, उन्हें विभूति अर्थात् गौण शक्त्या-वेशावतार कहते हैं।

### अमृतप्रवाह भाष्य

३६६। शक्त्यावेश—गौण और मुख्य के भेद से दो प्रकार के होते हैं; जिसमें साक्षात् शक्ति का अवतार होता है,—वे मुख्य शक्त्यावेश अवतार; एवं जिस स्थान पर शक्ति का आभास मात्र विभूति के रूप में देखा जाता है, वह गौण शक्त्यावेश अवतार होता है।

१) मुख्यावेशावतारों का नाम—

**'सनकादि', 'नारद', 'पृथु', 'परशुराम'।**
**जीवरूप 'ब्रह्मार' आवेशावतार-नाम॥३६७॥**

**३६७। प॰ अनु॰—**सनकादि, नारद, पृथु, परशु-राम तथा जीवरूप ब्रह्मा मुख्य शक्त्यावेश अवतार कहलाते हैं।

**वैकुण्ठे 'शेष'—धरा धरये 'अनन्त'।**
**एइ मुख्यावेशावतार—विस्तारे नाहि अन्त॥३६८॥**

**३६८। प० अनु०—**वैकुण्ठ में 'शेष' तथा अपने अन्य रूप से धरती को धारण करने वाले 'अनन्त' —ये मुख्य शक्त्यावेशावतार हैं। मुख्य शक्त्यावेशावतारों की भी संख्या का कोई अन्त नहीं है।

मुख्य शक्ति के भेद से
मुख्य-आवेशावतार—

**सनकाद्ये 'ज्ञान'-शक्ति, नारदे शक्ति 'भक्ति'।**
**ब्रह्माय 'सृष्टि'-शक्ति, अनन्ते**
**'भू-धारण'-शक्ति॥३६९॥**
**शेषे 'स्व-सेवन'-शक्ति, पृथुते 'पालन'।**
**परशुरामे 'दुष्टनाशक-वीर्यसञ्चारण'॥३७०॥**

**३६९-३७०। प० अनु०—**भगवान के द्वारा शक्ति सञ्चालित करने के कारण सनक आदि में ज्ञान शक्ति का, नारद में भक्ति शक्ति का, ब्रह्मा में सृष्टि शक्ति का, अनन्त में भू-धारण शक्ति का, शेष में 'भगवान् की सेवन' शक्ति का, पृथु में पालन शक्ति का तथा परशुराम में 'दुष्टों का नाश करने की शक्ति का आवेश हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३७०। शेषे स्व-सेवनशक्ति—शेषरूपी भगवद्-अवतार में अपनी सेवारूपी शक्ति अर्पित हुई है।

आवेशावतार की संज्ञा—
लघुभागवतामृत (१/१/१८) के आवेश प्रकरण में—

**ज्ञानशक्त्यादिकलया यत्राविष्टो जनार्दनः।**
**त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः॥३७१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३७१। ज्ञान शक्ति आदि कला द्वारा जिस स्थान पर भगवद्-आवेश है, वे सभी महत्तम (महान व्यक्तियों में श्रेष्ठ) जीव 'आवेश-अवतार' के रूप में गिने जाते हैं।

**अनुभाष्य**

३७१। यत्र (महत्तमेषु जीवेषु) ज्ञानशक्त्यादिकलया (ज्ञान-भक्ति-सृष्टि सेवा-पालन-धारण-विनाशनादि-भागेन) जनार्द्दनः आविष्टः, ते महत्तमाः जीवाः एव 'आवेशाः' (आवेशावताराः) निगद्यन्ते (कथ्यन्ते)।

(२) गीता में विभूति का वर्णन—

**'विभूति' कहिये जैछे गीता-एकादशे।**
**जगत् व्यापिल कृष्णशक्त्याभासावेशे॥३७२॥**

**३७२। प० अनु०—**गीता के एकादश अध्याय में भगवान् की जिन विभूतियों का वर्णन किया गया है, उसी को विभूति कहते हैं। कृष्ण के शक्त्याभासावेश से ही जगत व्याप्त हो गया।

**अनुभाष्य**

३७२। भा २/७/३९ श्लोक में माया की विभूतियों का परिचय द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भगवद्गीता (१०/४१-४२) में—

**यद्यद्विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।**
**ततदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंशसम्भवम्॥३७३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३७३। जो सब जीव—विभूतिमान् और श्रीमान् हैं, उन्हें मेरा तेजांश सम्भव कहकर जानना।

**अनुभाष्य**

३७३। विभूतिमत् (ऐश्वर्ययुक्त) श्रीमत् (सम्पत्ति-युक्तम्) उर्ज्जितं (बलप्रभावादिना गुणेनातिशयित) यत् यत् सत्त्वं (प्राकृतं वस्तु) भवति, तत् तत् एव मम तेजोअंशसम्भवं (प्रभावकलया सिद्धं प्रभावस्यांशेन सम्भूतम् इति) त्वम् अवगच्छ (जानीहि)।

**अथवा बहुनेतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।**
**विष्टभ्याऽमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥३७४॥**

३७४। हे अर्जुन! अधिक क्या कहूँ, मैं ही एक अंश के द्वारा परमात्मा रूप में अखिल जगत् में प्रविष्ट होकर विराजमान हूँ।

**अनुभाष्य**

३७४। आदि द्वितीय परिच्छेद २० संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण स्वरूप के छह प्रकार के विलासों में
से अन्य दो प्रकार की आयु वाले के
रूप में लीला—

**एइत' कहिलुँ शक्त्यावेश-अवतार।**
**बाल्य-पौगण्ड-धर्मेर शुनह विचार॥३७५॥**

**३७५। प० अनु०—**इस प्रकार मैंने तुम्हें शक्त्यावेश अवतार के विषय में बतलाया। अब तुम कृष्ण के बाल्य-पौगण्ड आदि धर्म का विचार सुनो।

स्वयं कृष्ण के द्वारा लीला-प्रकट करने से पहले
गुरुवर्ग के रूप में सेवकों को प्रकटित करना—

**किशोर शेखर-धर्मी व्रजेन्द्रनन्दन।**
**प्रकटलीला करिबारे जबे करे मन॥३७६॥**
**आदौ प्रकट कराय माता-पिता-भक्तगणे।**
**पाछे प्रकट हय जन्मादिक-लीलाक्रमे॥३७७॥**

**३७६-३७७। प० अनु०—**व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण किशोर शेखर हैं। जब उनकी लीला को प्रकट करने की इच्छा होती है, तब वे पहले माता-पिता आदि भक्तों को प्रकट करते हैं तथा बाद में क्रमशः स्वयं जन्म आदि लीला को प्रकटित करते हैं।

भक्तिरसामृतसिन्धु (२/६३)—

**वयसो विविधत्वेऽपि सर्व भक्ति रसाश्रयः।**
**धर्मी किशोर एवात्र नित्यलीला-विलासवान्॥३७८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३७८। नित्यलीला विलासवान् सर्वभक्ति रसाश्रय कृष्ण की अनेक वयस (आयु) रहने पर भी किशोर अवस्था ही श्रेष्ठ है।

**अनुभाष्य**

३७८। वयसः विविधत्वे (बाल्यपौगण्डकिशोरादिप्रकारभेदे) अपि अत्र सर्वभक्तिरसाश्रयः नित्यलीला विलासवान् किशोरः एव धर्मी (सर्ववयोः धर्म-विशिष्टः पूर्णतमः)।

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में प्रतिक्षण में वह विचित्र
नवनवायमान चिन्मयी लीला—

**पूतना-वधादि जत लीला क्षणे क्षणे।**
**सब लीला नित्य प्रकट करे अनुक्रमे॥३७९॥**

**३७९। प० अनु०—**पूतना वध आदि जितनी भी लीलाएँ हैं, वह क्षण-क्षण में चलती रहती है। कृष्ण समस्त लीलाओं को क्रमशः नित्य प्रकट करते हैं।

**अनन्त ब्रह्माण्ड, तार नाहिक गणन।**
**कोन लीला कोन ब्रह्माण्डे हय प्रकटन॥३८०॥**

**३८०। प० अनु०—**अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। कोई-न-कोई लीला किसी-न-किसी ब्रह्माण्ड में प्रकटित होती ही होती है।

कृष्णावतार की लीला का दृष्टान्त—जैसे
निरविच्छिन्न गङ्गा की धारा—

**एइमत सब लीला—जेन गङ्गाधार।**
**से-से लीला प्रकट करे व्रजेन्द्रकुमार॥३८१॥**

**३८१। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीव्रजेन्द्रनन्दन समस्त लीलाओं को गङ्गा की धारा की भाँति निरन्तर प्रकटित करते रहते हैं।

किशोर कृष्ण की ही व्रजलीला—

**क्रमे बाल्य-पौगण्ड-कैशोरता—प्राप्ति।**
**रास-आदि लीला करे, कैशोरे नित्यस्थिति॥३८२॥**

**३८२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण सर्वप्रथम बाल्य,

उसके पश्चात् पौगण्ड तथा फिर किशोरावस्था को प्राप्त करते हैं। कैशोरावस्था में श्रीकृष्ण रास-लीला आदि प्रकाशित करते हैं तथा कैशोर में ही उनकी नित्य-स्थिति है।

कृष्णलीला के नित्य
होने की व्याख्या—

**'नित्यलीला' कृष्णेर सर्वशास्त्रे कय।**
**बुझिते ना पारे लीला केमने 'नित्य' हय॥३८३॥**

**३८३। प० अनु०—**सभी शास्त्र ही कहते हैं कि कृष्ण की लीला 'नित्यलीला' है। किन्तु साधारण लोग नहीं समझ पाते कि वह कैसे नित्य है।

ज्योतिश्चक्र (प्रकाश के गोले) का उदाहरण—

**दृष्टान्त दिया कहि यदि, तबे लोक जाने।**
**कृष्णलीला—नित्य, ज्योतिश्चक्र-प्रमाणे॥३८४॥**

**३८४। प० अनु०—**इसलिए मैं एक दृष्टान्त देता हूँ, जिससे लोग उसे जान पायेंगे। ज्योतिश्चक्र की भाँति कृष्णलीला नित्य है।

**ज्योतिश्चक्रे सूर्य जेन फिरे रात्रि-दिने।**
**सप्तद्वीपाम्बुधि लङ्घि' फिरे क्रमे क्रमे॥३८५॥**
**रात्रि-दिने हय षष्ठिदण्ड-परिमाण।**
**तिन सहस्र छयशत 'पल' तार मान॥३८६॥**

**३८५-३८६। प० अनु०—**ज्योतिश्चक्र में सूर्य जिस प्रकार रात-दिन घूमता रहता है तथा सातों द्वीपों और सातों समुद्रों को क्रमशः लाँघता हुआ चला जाता है। रात और दिन में साठ दण्ड होते हैं, तथा उसमें तीन हजार छह सौ 'पल' होते हैं।

**सूर्योदय हैते षष्ठिपल-क्रमोदय।**
**सेइ एक दण्ड, अष्ट दण्डे 'प्रहर' हय॥३८७॥**

**३८७। प० अनु०—**सूर्योदय से लेकर क्रमशः साठ पल में वह एक दण्ड होता है तथा आठ दण्ड का एक प्रहर होता है।

**एक-दुइ-तिन-चारि प्रहरे अस्त हय।**
**चारिप्रहर रात्रि गेले पुनः सूर्योदय॥३८८॥**

**३८८। प० अनु०—**सूर्य एक-दो-तीन-चार प्रहर में अस्त होता है। चार प्रहर रात के बीत जाने पर पुनः सूर्योदय होता है।

चौदह मन्वन्तरों में समग्र ब्रह्माण्डों में अवतार-लीला—

**ऐछे कृष्णेर लीला-मण्डल चौद्द मन्वन्तरे।**
**ब्रह्माण्ड मण्डल व्यापि' क्रमे क्रमे फिरे॥३८९॥**

**३८९। प० अनु०—**इसी प्रकार श्रीकृष्ण की लीला का मण्डल चौदह मन्वन्तरों में क्रमशः ब्रह्माण्ड मण्डल में व्याप्त होकर घूमता रहता है।

कृष्ण की प्रकट-लीला का समय—

**सओयाशत वत्सर कृष्णेर प्रकट-प्रकाश।**
**ताहा जैछे व्रज-पुरे करिला विलास॥३९०॥**

**३९०। प० अनु०—**एक सौ पच्चीस वर्ष तक श्रीकृष्ण की लीला का प्रकट-प्रकाश है, जिसमें उन्होंने व्रजपुर में वर्त्तमान रहकर विलास किया है।

कृष्णावतार की लीला की उपमा—जैसे, अलातचक्र (फुलझड़ी की भाँति गोलाकार में) भ्रमण—

**अलातचक्रप्राय सेइ लीलाचक्र फिरे।**
**सब लीला सब ब्रह्माण्डे क्रमे उदय करे॥३९१॥**

**३९१। प० अनु०—**फुलझड़ी या किसी लकड़ी के एक सिरे को जलाकर तेजी से घुमाने पर जैसे एक अटूट अलात-चक्र दिखलायी देता है, उसी प्रकार ही श्रीकृष्ण की लीला का चक्र भ्रमण करता है। समस्त लीलाएँ समस्त ब्रह्माण्डों में क्रम-क्रम से उदित होती रहती हैं।

जन्म से लेकर मौषल लीला तक की लीलाएँ—

**जन्म, बाल्य, पौगण्ड, कैशोर-प्रकाश।**
**पूतना-वधादि करि' मौषलान्त विलास॥३९२॥**

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों में किसी-न-किसी ब्रह्माण्ड में नित्य ही एक-न-एक लीला वर्त्तमान, इसलिए लीला की 'नित्यता'—

**कोन ब्रह्माण्डे कोन लीलार हय अवस्थान।**
**ताते लीला 'नित्य' कहे निगम-पुराण॥३९३॥**

**३९२-३९३। प० अनु०**—जन्म, बाल्य, पौगण्ड तथा कैशोर-अवस्था को प्रकाशित करते हुए क्रमशः पूतना वध आदि करने से लेकर मौषल-लीला पर्यन्त कृष्ण की जितनी लीलाएँ है, किसी-न-किसी ब्रह्माण्ड में इनमें से कोई-न-कोई लीला चलती ही रहती है, इसलिए वेद तथा पुराण लीला को नित्य कहते हैं।

**अनुभाष्य**

३९१-३९३। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ति-ठाकुर ने स्वरचित 'रागवर्त्म-चन्द्रिका' के द्वितीय प्रकाश में उज्ज्वलनीलमणि के ''तद्भावबद्धरागा ये जनास्ते'' श्लोक की टीका में लिखा है—'अनुरागौघं रागानुगाभजनौत्कण्ठ्यं, न त्वनुराग-स्थायिनं, साधक-देहेऽनुरागोत्पत्त्यसम्भवात्। व्रजेऽभवन्निति अवतार-समये नित्यप्रियाद्या यथा आविर्भवन्ति, तथैव गोपिकागर्भे साधनसिद्धा अपि आविर्भवन्ति। ततश्च गोपिकादेहेउत्पद्यन्ते, पूर्वजन्मनि साधक देहे तेषां (स्नेह मान प्रणय रागानुरागमहाभावानाम्) उत्पत्त्य-सम्भवात्। '' साधकदेहभङ्गसमये एव तस्मै प्रेमवते भक्ताय ''चिदानन्दमयी गोपिकातनुश्च दीयते। सैव तनुर्योगमायया वृन्दावनीय प्रकटप्रकाशे कृष्ण-परिवार पादुर्भावसमये गोपीगर्भादुद्भाव्यते। नात्र कालविलम्बगन्धोऽपि,—प्रकटलीलया अपि विच्छेदा-भावात्। यस्मिन्नेव ब्रह्माण्डे तदानीं वृन्दावनीय-लीलानां प्राकट्यं, तत्रैवास्यामेव व्रजभूमौ, अतः साधकप्रेमिभक्तदेह समकालेऽपि सपरिकर-श्रीकृष्ण-प्रादुर्भावः सदैवास्ति, इति भो भो महानुरागि-सोत्कण्ठ-भक्ताः, मा भेष्ट, सुस्थिरास्तिष्ठत, स्वस्त्येवास्ति भवद्भ्यः इति।'' [ अर्थात् तद्भावबद्धरागा ये जनास्ते साधने रताः। तद्योग्यमनुरागोघं प्राप्योत्कण्ठा-नुसारतः। ता एकशोऽथवा द्वित्राः काले काले व्रजेऽभवन्।" अर्थात् 'जो व्रजवासियों के विशेष भाव में अनुरक्त होकर साधन में रत हैं, वे उत्कण्ठा के अनुरूप उसके योग्य अनुराग को प्राप्त करके अकेले अथवा दो-तीन जन एक साथ समय-समय पर व्रजभूमि में आविर्भूत हुए थे।' यहाँ पर 'अनुरागौघं' अर्थात् रागानुग-भजनोचित उत्कण्ठा—स्थायिभावगत अनुराग नहीं है, क्योंकि साधक की देह में अनुराग की उत्पत्ति असम्भव है। 'व्रजेऽभवन्'—व्रज में आविर्भूत हुए थे, इसका अर्थ यह है कि, श्रीकृष्ण के अवतार-काल में नित्यप्रियाएँ जिस प्रकार से आविर्भूत होती हैं, उसी प्रकार साधनसिद्ध गण भी गोपियों के गर्भ से आविर्भूत होते हैं। उसके बाद (नित्यसिद्धाओं के संग की महिमा से) उक्त गोपीदेह में स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग महाभाव समूह उत्पन्न होते हैं, क्योंकि पूर्वजन्म (उक्त साधकदेह) में उनकी उत्पत्ति सम्भवपर नहीं होती। वही सिद्धदेह ही योगमाया वृन्दावन की लीला के 'प्रकट' प्रकाश के समय कृष्ण परिकरों के आविर्भाव के समय गोपियों के गर्भ से उत्पन्न करती हैं। यहाँ पर काल के विलम्ब की गन्धमात्र भी नहीं है, क्योंकि प्रकट-लीला में भी विच्छेद नहीं है। जिस किसी ब्रह्माण्ड में ही उनकी वृन्दावन की लीला का प्राकट्य हुआ करता है, उसी व्रजभूमि में ही गोपी के गर्भ से साधनसिद्ध गणों का आविर्भाव हुआ करता है। अतएव साधक-प्रेमि भक्त के देह भंग के समय भी सपरिकर श्रीकृष्ण का आविर्भाव सदैव ही हुआ करता है। अतएव, हे महानुरागी उत्कण्ठायुक्त भक्तगण! भयभीत मत होना, सुस्थिर होओ, आपका कल्याण निश्चित है। ]

सङ्कर्षण के चिद्-वैभव समस्त विष्णुधाम ही विष्णु के समान और हरि के साथ प्रपञ्च में अवतीर्ण—

**गोलोक, गोकुल-धाम—'विभु' कृष्णसम।**
**कृष्णेच्छाय ब्रह्माण्डगणे ताहार संक्रम॥३९४॥**

**३९४। प॰ अनु॰—**गोलोक तथा गोकुल धाम श्रीकृष्ण की भाँति विभु (सर्वव्यापक) है। श्रीकृष्ण की इच्छा से वह ब्रह्माण्डों में क्रमशः आविर्भूत होता रहता है।

ब्रह्माण्ड समूहों में अवतारी के साथ उनका गोलोकधाम भी अवतीर्ण—

**अतएव गोलोकस्थाने नित्य विहार।**
**ब्रह्माण्डगणे क्रमे प्रकट ताहार॥३९५॥**

**३९५। प॰ अनु॰—**अतएव गोलोक में श्रीकृष्ण का नित्य विहार है, तथा ब्रह्माण्ड में क्रमशः गोलोक प्रकट होता है।

**अनुभाष्य**

३७९-३९५। कृष्ण की लीला—नित्य प्रकटित रहती है। अनन्त ब्रह्माण्डों में समय-समय पर क्रमशः नित्यलीला प्रकटित होती है। एक ब्रह्माण्ड में कृष्ण-जन्म-लीला से आरम्भ करके १२५ वर्षों तक मौषलान्त लीला तक प्रकटित होकर उस ब्रह्माण्ड में लीला अप्रकट हो जाती है। कृष्ण की लीला का क्षण काल एक ब्रह्माण्ड में प्रकट होकर, प्रथम क्षण के अन्त में द्वितीय-क्षण के आरम्भ होने पर प्रथम क्षण से सम्बन्धित लीला अन्य किसी ब्रह्माण्ड में प्रकटित होती है। इस प्रकार असंख्य अनन्त ब्रह्माण्डों में प्रतिक्षण से सम्बन्धित लीला प्रकटित होकर अन्य ब्रह्माण्ड में पुनः उसी क्षण से सम्बन्धित लीला का उदय होता है। इसके उदाहरण में सूर्य का भ्रमण मार्ग अर्थात् ज्योतिश्चक्र में भ्रमण कहा गया है। अनन्त ब्रह्माण्डों में कृष्ण की असंख्य लीलाएँ क्रमशः उदित होकर अप्रकटित हो रही हैं। जीव के ज्ञान से उस अनन्त लीला की उपलब्धि की सम्भावना नहीं है। गङ्गा की धारा जिस प्रकार निरवच्छिन्न है, अलातचक्र (फुलझड़ी को घुमाने से बनने वाले चक्र) का भ्रमण जिस प्रकार निरन्तर और व्यापक होता है, उसी प्रकार कृष्णलीला का भी निरवच्छिन्न (नैरन्तर्यमयता) प्रकटित होना भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डों में उपलब्ध होता है। कृष्ण की जन्म, बाल्य और पौगण्ड-किशोर आदि लीलाएँ नित्य काल ही संघटित हो रही हैं। किसी एक ब्रह्माण्ड में रहने वाले जीवों की कृष्णलीला की नित्य प्रकटित होने की अनुभूति नहीं होने पर भी उसकी नित्यता है। सभी लीलाओं के एक समय में नित्य प्राकट्य का नाम ही 'नित्यलीला' है; किन्तु प्रपञ्च में क्रमपूर्वक ही लीलाओं का प्राकट्य होता है। उस समय अन्यान्य लीला अन्य ब्रह्माण्डों में प्रकटित होती हैं, इसलिए किसी एक ब्रह्माण्ड में एक ही समय में उसका नित्यत्त्व उपलब्ध नहीं होता। वास्तव में लीला—नित्य है; चौदह मन्वन्तर अर्थात् कल्प के निर्दिष्ट काल में किसी एक ब्रह्माण्ड में क्रम पूर्वक कृष्णलीला मण्डल पुनः घूमता है; अतएव लीला अनित्य नहीं है। क्योंकि अन्य किसी ब्रह्माण्ड में चल रही नित्यलीला हमें दिखलायी नहीं पड़ती, इसलिए इस ब्रह्माण्ड के लोग नित्यलीला की उपलब्धि करने में समर्थ नहीं होते। इसलिए वेद-पुराण आदि नित्यलीला की कथा ही कहते हैं। गोलोक की नित्य विहार स्थली क्रमशः ब्रह्माण्ड में प्रकटित होती है।

व्रज में कृष्ण—पूर्णतम, मथुरा और द्वारका में पूर्णतर तथा परव्योम में पूर्ण विग्रह के रूप में प्रकाशित—

**व्रजे कृष्ण—सर्वेश्वर्यप्रकाशे 'पूर्णतम'।**
**पुरीद्वये, परव्योमे—'पूर्णतर', 'पूर्ण'॥३९६॥**

**३९६। प॰ अनु॰—**व्रज में श्रीकृष्ण के समस्त

ऐश्वर्य का 'पूर्णतम' प्रकाश है, मथुरा तथा द्वारका में 'पूर्णतर' तथा परव्योम वैकुण्ठ में 'पूर्ण' प्रकाश है।

**अनुभाष्य**

३९६। कृष्ण व्रज में सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रकाशित करते हैं, इसलिए व्रजेन्द्रनन्दन 'पूर्णतम' हैं। द्वारका और मथुरा नामक दोनों पुरियों में कृष्ण उसकी अपेक्षा कम रूप में सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रकाशित करते है, इसलिए वहाँ वे—'पूर्णतर' एवं परव्योम वैकुण्ठ में कृष्ण दोनों पुरियों की अपेक्षा भी स्वल्प रूप में सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रकटित करते हैं, इसलिए वहाँ वे—'पूर्ण' हैं।

गोस्वामि-वचन—
भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/२२१-२२३)—

**हरिः पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्ण इति त्रिधा।**
**श्रेष्ठमध्यादिभिः शब्दैर्नाट्य यः परिकीर्त्तितः॥३९७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३९७। श्रेष्ठ-मध्य आदि—शब्द के द्वारा नाट्य शास्त्र में जिनका कीर्त्तन है, वही भगवान् हरि—पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम—इन तीन प्रकार के हैं।

**अनुभाष्य**

३९७। नाट्य (नाट्यशास्त्रे) श्रेष्ठमध्यादिभिः शब्दैः यः (कीर्त्तितः,सः) हरिः पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्णः इति त्रिधा परिकीर्त्तितः।

**प्रकाशिताखिलगुणः स्मृतः पूर्णतमो बुधैः।**
**असर्वव्यञ्जकः पूर्णतरः पूर्णोऽल्पदर्शकः॥३९८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३९८। अल्पगुणों के प्रकाशक हरि-पूर्ण; सभी गुणों के स्वल्पप्रकाशक हरि-पूर्णतर; और जिनमें अखिल गुण प्रकाशित हैं, वे हरि-पूर्णतम हैं; पण्डितजन यही कहते हैं।

**अनुभाष्य**

३९८। प्रकाशिताखिलगुणः (प्रकाशिताः अखिलाः गुणाः यस्मिन् सः, प्रकटित-समग्रगुणः हरिः)—पूर्णतमः; असर्वव्यञ्जकः (स्वल्पप्रकटित- सर्वगुणः हरिः)-पूर्णतरः ; अल्पदर्शकः (प्रकटित- स्वल्प गुणः हरिः) पूर्णः इति बुधैः स्मृतः।

**कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्ताभूद्गोकुलान्तरे।**
**पूर्णता पूर्णतरता द्वारका-मथुरादिषु॥३९९॥**

३९९। गोकुल में कृष्ण की पूर्णतमता, द्वारका-मथुरा में पूर्णतरता और परव्योम में पूर्णता व्यक्त हुई थी।

**अनुभाष्य**

३९९। गोकुलान्तरे कृष्णस्य पूर्णतमता; द्वारका-मथुरादिषु पूर्णतरता; परव्योमे पूर्णता व्यक्ताभूत।

*विंश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

**एइ कृष्ण—व्रजे 'पूर्णतम' भगवान्।**
**आर सब स्वरूप—'पूर्णतर', 'पूर्ण' नाम॥४००॥**

**४००। प॰ अनु॰—**यह कृष्ण व्रज में 'पूर्णतम' भगवान् हैं तथा उनके अन्य सभी स्वरूप 'पूर्णतर' तथा 'पूर्ण' नाम धारण करते हैं।

**अनुभाष्य**

४००। भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन—'पूर्णतम' प्रकाश, द्वारकानाथ मथुरेश—पूर्णतर प्रकाश एवं वैकुण्ठ-नाथ—'पूर्ण' प्रकाश है।

कृष्ण के स्वरूप का विचार अत्यधिक संक्षेप में वर्णित; स्वयं शेष की भी उसके सम्पूर्ण कीर्त्तन में असमर्थता—

**संक्षेपे कहिलुँ कृष्णेर स्वरूप-विचार।**
**'अनन्त' कहिते नारे इहार विस्तार॥४०१॥**

**४०१। प० अनु०—**मैंने संक्षेप में श्रीकृष्ण के स्वरूप-विचार का वर्णन किया है, अनन्त भी इसका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कर सकते।

ग्रन्थकार का दैन्य; शाखा चन्द्र-न्याय के आधार पर वर्णित—

**अनन्त स्वरूप कृष्णेर नाहिक गणन।**
**शाखा-चन्द्र-न्याये करि दिग्‌दरशन॥''४०२॥**

**४०२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के अनन्त स्वरूपों की गणना नहीं की जा सकती। मैंने उसका शाखा-चन्द्र-न्याय से दिग्दर्शन किया हैं।

**अनुभाष्य**

४०२। शाखाचन्द्र-न्याय,—मध्य, २० परिच्छेद २४८ संख्या द्रष्टव्य।

*विंश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

कृष्णस्वरूप के कीर्त्तन के श्रवण से तत्त्वज्ञान की स्फूर्त्ति की प्राप्ति—

**इहा जेइ शुने, पड़े, सेइ भाग्यवान्।**
**कृष्णेर स्वरूप तत्वेर हय किछु ज्ञान॥४०३॥**

**४०३। प० अनु०—**इसे जो भी सुनता है, पढ़ता है, वही भाग्यवान् है। उसे इससे कृष्ण के स्वरूप तत्व का कुछ ज्ञान हो सकता है।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥४०४॥**

*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्यखण्ड में स्वरूपतत्वरूप-श्रीभगवत्-स्वरूपभेदविचार नामक विंश-परिच्छेद समाप्त।*

**४०४। प० अनु०—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य चरितामृत का गान कर रहा है।

✵✵✵

# एकविंश परिच्छेद

**कथासार**—इस परिच्छेद में प्रभु ने कृष्णलोक-तत्व, परव्योम-तत्व, कारणवारितत्व एवं मायिक ब्रह्माण्ड तत्व वर्णन करके द्वारका में ब्रह्मा के दर्प का हरण करने वाली कृष्ण की एक लीला का वर्णन किया है। उसके बाद ग्रन्थकार ने महाप्रभु के वचन कहकर कृष्ण-रूप के सौन्दर्य प्रकाशक कुछेक मधुर पद लिखे हैं। यहाँ तक सम्बन्ध तत्त्व कहा गया।

(अः प्रः भाः)

ग्रन्थकार के द्वारा गौरकृष्ण के माधुर्य-ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए मङ्गलाचरण—

**अगत्येकगतिं नत्वा हीनार्थाधिकसाधकम्।**
**श्रीचैतन्यं लिखाम्यस्य माधुर्येश्वर्यशीकरम्॥१॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१। अगति की गति एवं हीन व्यक्तियों के प्रति अधिक अर्थ प्रदान करने वाले अथवा उपकार करने वाले श्रीचैतन्य को प्रणाम करके उनके माधुर्य-ऐश्वर्य के कण का वर्णन कर रहा हूँ।

### अनुभाष्य

१। अगत्येकगतिं (गतिहीनानाम् एकावलम्बन) हीनार्थाधिकसाधकं (हीनानां कृष्णप्रेम-दरिद्राणां ये अर्थाः प्रयोजनानि तेषाम् अधिकं यथा स्यात्तथा साधक) श्रीचैतन्यं नत्वा (प्रणम्य) अस्य (भगवतः चैतन्यदेवस्य) माधुर्येश्वर्यशीकरं (माधुर्ये यदेश्वर्यं, माधुर्यं ऐश्वर्यञ्च वा तयोः शीकरं कण) लिखामि।

**जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प॰ अनु॰**—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्रीगौर भक्त वृन्द की जय हो।

परव्योम में सभी विष्णु-विग्रहों का अनन्त वैकुण्ठ-धाम—

**''सर्वस्वरूपेर धाम—परव्योम-धामे।**
**पृथक पृथक वैकुण्ठ, नाहिक गणने॥३॥**
**शत, सहस्त्र, अयुत, लक्ष, कोटि-योजन।**
**एक एक वैकुण्ठेर विस्तार वर्णन॥४॥**

**३-४। प॰ अनु॰**—भगवान् श्रीकृष्ण के विलास और अवतार आदि अनन्त स्वरूपों में से प्रत्येक का ही परव्योम में एक-एक अपना वैकुण्ठ धाम है। पृथक-पृथक बहुत से वैकुण्ठ है, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। एक-एक वैकुण्ठ का परिमाण सौ, हजार, दस हजार, लाख, करोड़ योजन हैं अर्थात् वास्तव में उनका कोई परिमाण नहीं है, अचिन्त्य-शक्ति के प्रभाव से प्रयोजन के अनुसार वह कम अथवा अधिक होता रहता है।

### अनुभाष्य

४। वैकुण्ठ का परिमाण मायिक ब्रह्माण्ड के समान नहीं है। वैकुण्ठ—सैकड़ों, हजारों, दस हजारों, लाखों, करोड़ों अथवा असंख्य योजन वाला है, जिसमें किसी प्रकार के परिमाण से

युक्त कुण्ठा धर्म नहीं है, वही 'वैकुण्ठ' है। [ इसलिए आगे कहा जा रहा है कि— ]

परव्योम में आधार और आधेय, धाम और विग्रह—
अभिन्न शुद्धसत्त्वचिद्विलासमय भगवद्-विग्रह—

**सब वैकुण्ठ—व्यापक, आनन्द-चिन्मय।**
**पारिषद-षड़ेश्वर्य-पूर्ण सब हय॥५॥**
**अनन्त वैकुण्ठ एक एक देशे जार।**
**से परव्योमेर केबा गणये विस्तार॥६॥**

**५-६। प॰ अनु॰—**सभी वैकुण्ठ व्यापक हैं, चिन्मय हैं, आनन्दमय हैं प्रत्येक वैकुण्ठ ही वहाँ के धाम के अधिष्ठात्री-देवता के परिकरों से तथा छह प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं। जिसके एक-एक प्रान्त में ही अनन्त वैकुण्ठ हैं, उस परव्योम के परिमाण की गणना कौन कर सकता है?

गोलोक ही सहस्त्रदल-कमल के समान
परव्योम की कर्णिका—

**अनन्त-वैकुण्ठ-परव्योम जार दलश्रेणी।**
**सर्वोपरि कृष्णलोक 'कर्णिकार' गणि॥७॥**

**७। प॰ अनु॰—**अनन्त वैकुण्ठमय परव्योम और उनमें से सर्वश्रेष्ठ द्वारका, मथुरा एवं गोलोक से मण्डित कृष्णलोक—इन सबका मिलित आकार एक कमल के पुष्प की भाँति है। अनन्त वैकुण्ठ उस कमल के पुष्प के दल (पत्ते) हैं तथा कृष्णलोक उस पुष्प की कर्णिका स्थलीय है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७। **चिन्मयजगत—**एक कमल के स्वरूप का है; उस कमल के ऊपरी (बीच वाले) भाग 'कर्णिका' रूपी कृष्णलोक के चारों ओर पंखुड़ियों के रूप में अनन्त वैकुण्ठ परव्योम में विराजमान हैं।

विष्णु और विष्णुधाम, दोनों ही अधोक्षज होने के कारण ब्रह्मा आदि के लिये भी अगोचर—

**एइमत षड़ेश्वर्य, स्थान, अवतार।**
**ब्रह्मा, शिव अन्त ना पाय—जीव कोन् छार॥८॥**

**८। प॰ अनु॰—**षड़-ऐश्वर्यों से परिपूर्ण समस्त वैकुण्ठों और भगवद्-अवतारों का ब्रह्मा, शिव आदि भी पार नहीं पा सकते, क्षुद्र जीव का तो फिर कहना ही क्या?

**अनुभाष्य**

८। वैकुण्ठ के षड़ ऐश्वर्यपूर्ण स्थान एवं षड़ ऐश्वर्य से युक्त अवतारों की सीमा मायिक राज्य के ईश्वर ब्रह्मा अथवा शिव आदि के भी गोचर नहीं हो सकती—वशीभूत जीवों की तो बात ही नहीं।

अप्राकृत अतीन्द्रिय अधोक्षज विष्णु—
मनोधर्म वालों के लिये दुर्ज्ञेय—
श्रीमद्भागवत (१०/१४/२१)—

**को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्**
**योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्।**
**क्व वा कथं वा कतिवा कदेति**
**विस्तारयन क्रीड़सि योगमायाम्॥९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९। हे भूमन्, हे भगवन्, हे परात्मन्, हे योगेश्वर, इस त्रिभुवन में आपकी लीला कहाँ, किस रूप में होती है, योगमाया का विस्तार करके आप कब लीला करते हैं, यह कौन जान सकता है?

**अनुभाष्य**

९। गैयाओं और बछड़ों के हरण के फलस्वरूप ब्रह्मा का घमंड श्रीकृष्ण के द्वारा चूर्ण होने पर ब्रह्मा श्रीकृष्ण के परमेश्वर होने से अवगत होकर निम्नलिखित दो श्लोकों के द्वारा उनका स्तव कर रहे हैं—

हे भूमन्, (विराट) भगवन्, परात्मन्, योगेश्वर, भवतः ऊतीः (लीलाः) क्व वा, कथं वा, कदा वा, कति वा, योगमायां विस्तारयन् क्रीड़सि, इति त्रिलोक्यां कः वेत्ति? (न कोऽपि जानात्यतोऽचिन्त्यं तव योगमायावैभवमिति भावः)।

**एइमत कृष्णेर दिव्य सद्‌गुण अनन्त।**
**ब्रह्मा-शिव-सनकादि ना पाय जाँर अन्त॥१०॥**

**१०। प॰ अनु॰—**इस प्रकार कृष्ण के अनन्त दिव्य सद्‌गुण हैं, ब्रह्मा-शिव-सनक आदि भी उनका पार नहीं पा सकते।

विश्व का सबसे अधिक सूक्ष्म गणना करने वालों के लिये भी विष्णु के गुणों का परिमाण करने में असामर्थ्य—
श्रीमद्भागवत (१०/१४/७)—

**गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं**
**हितावतीर्णस्य क इशिरेहस्य।**
**कालेन येर्वा विमिताः सुकल्पै-**
**भू-पांशवः खे मिहिका द्युभासः॥११॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११। पण्डितों ने भूमि के धूल के कणों की एवं आकाश के हिम कणों की तथा नक्षत्र आदि के काल की गणना की है; किन्तु क्या उनमें से कोई भी, जगत् के हित के लिये अवतीर्ण एवं अनन्त गुण स्वरूप जो आप है, आपके गुणों की गणना करने में समर्थ होता है?

**अनुभाष्य**

११। यैः सुकल्पैः (सुनिपुणैः जनैः बहुजन्मना) वा (वितर्कै) कालेन भू-पांशवः (पृथ्वीपरमाणवः) खे (आकाशे) मिहिकाः (हिमकणाः) द्युभासः (दिवि ज्योतिष्काणां किरणपरमाणवः) अपि विमिताः (विशेषेण गणिताः तेषा) के (लोकाः) अस्य (विश्व-स्य) हितावतीर्णस्य (मङ्गलाय प्रकटमानस्य, पाल-नाय बहुगुणाविष्कारेण अवतीर्णस्य वा) गुणात्मनः (त्रिगुणाधिष्ठातुः) ते (तव) गुणान् अपि (पुनः) विमातुं (एतावन्तः इति गणयितुम्) ईशिरे (समर्थाः बभूवुः, दूरतः तद्विशेषवार्त्ता इत्यर्थः) भाः २/७/४० और ११/४/२ श्लोक द्रष्टव्य।

स्वयं शेष भी कृष्ण के गुणों का कीर्त्तन करके उसका शेष (अन्त) नहीं पाते—

**ब्रह्मादि रहु—सहस्रवदने 'अनन्त'।**
**निरन्तर गाय मुखे, ना पाय गुणेर अन्त॥१२॥**

**१२। प॰ अनु॰—**ब्रह्मा आदि की बात तो रहने ही दो—सहस्रवदन (हजार मुख वाले) अनन्त भी अपने मुख से निरन्तर उनके गुणों का गान करके श्रीकृष्ण के गुणों का अन्त नहीं पाते।

**अनुभाष्य**

१२। चतुर्मुख से ब्रह्मा अथवा पाँच मुख से शिव की बात तो दूर, अनन्तदेव निरन्तर सहस्र मुखों से गान करके भी उनके गुणों की सीमा नहीं प्राप्त करते। पाठान्तर शास्त्र प्रमाण में,—''ब्रह्मादि रहु, अनन्त सहस्रवदन। निरन्तर गाय मुखे, ना पाय गणन॥''

शास्त्र-प्रमाण—
श्रीमद्भागवत (२/७/४१)—

**नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते**
**मायावलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये।**
**गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः**
**शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम्॥१३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३। [ब्रह्माजी नारदजी से कह रहे हैं—] मैं ब्रह्मा एवं तुम्हारे अग्रज सनक आदि सभी मुनि मायाधीश पुरुष का अन्त नहीं जान सकते; औरों का तो कहना ही क्या? सहस्रानन अनन्तदेव भी उनका गुणगान गाते-गाते आज तक भी पार नहीं पा पाये।

**अनुभाष्य**

१३। ब्रह्मा अपने शिष्य नारद के निकट भगवान् विष्णु के लीलावतार-समूह की चेष्टा, प्रयोजन और विभूति की कथा का वर्णन करके

उनके दुर्ज्ञेय और अपरिमेय शक्ति वैभव के विषय में बतला रहे हैं—

पुरुषस्य (भगवतः) विष्णोः मायावलस्य (मायाविभूतेः) अन्तम् अहं (ब्रह्मा) न विदामि (वेद्मि, तथा) ते (तव) अग्रजाः (भ्रातरः) अमी मुनयः (सनकादयः) च न जानन्ति ; दशशताननः (सहस्र वदनः) आदिदेवः शेषः (भूधारी अनन्तः) अपि अस्य (भगवतः) गुणान् गायन् (कीर्त्तयन्) अधुना (साम्प्रतम्) अपि पारं (सीमान) न समवस्यति (निश्चिनोति प्राप्नोतीत्यर्थः, अतः) ये अपरे (लोकाः, ते) कुतः? (विदन्तीति भावः)।

साक्षात् कृष्ण के निकट भी कृष्ण के गुण अपरिमेय—

**तेंहो रहु,—सर्वज्ञ-शिरोमणि श्रीकृष्ण।**
**निज-गुणेर अन्त ना पाञा हयेन सतृष्ण॥१४॥**

**१४। प॰ अनु॰—**अनन्त की बात को रहने दो—सर्वज्ञ-शिरोमणि श्रीकृष्ण भी अपने ही गुणों का अन्त नहीं पाकर सतृष्ण (उत्कण्ठित) रहते हैं।

**अनुभाष्य**

१४। **तेंहो रहु (उनकी तो छोड़ो),—**अनन्त देव की बात तो दूर, स्वयं श्रीकृष्ण भी अपने गुणों की सीमा को प्राप्त नहीं कर पाने के कारण तृष्णातुर हैं।

अतनिरसन पूर्वक निर्विशेष-वर्णन के बाद सविशेष विग्रह के वर्णन में ही श्रुति पर्यवसित—
श्रीमद्भागवत (१०/८७/४१) में—

**द्युपत्य एव ते न यजुरन्तमनन्ततया**
**त्वमपि यदन्तराणुनिचया ननु सावरणाः।**
**ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छुय-**
**स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः॥१५॥**

१५। श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके श्रुतियों ने कहा—हे भगवन्! स्वर्ग आदि के लोकाधिपति तथा ब्रह्मादि देवता भी आपका अन्त नहीं पाते, और-तो-और स्वयं अनन्त होने पर आप भी अपना अन्त नहीं पा पाते। (आपके अनन्त होने का प्रमाण यह है कि), आकाश में धूलि के कण जिस प्रकार घूमते रहते हैं, उसी प्रकार आपमें भी (आपके रोमकूपों में) सावरण (उत्तरोत्तर दस गुणा सप्त आवरण युक्त) ब्रह्माण्ड समूह कालचक्र के द्वारा (प्रवर्तित होकर) युगपत् परिभ्रमण कर रहे हैं। इसलिए, आपमें ही समाप्ति को प्राप्त करने वाली श्रुतियाँ आपके अतिरिक्त अन्यान्य सभी वस्तुओं को निरसन करते-करते आपको ही विषयीभूत बनाकर सफलता प्राप्त किया करती हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५। [श्रुतियाँ श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके कह रही हैं—] आप—अनन्त हैं, इसलिए देवता भी आपका अन्त नहीं पा पाये। आप स्वयं भी अपने गुणों का अन्त नहीं पाते। आकाश में परमाणुओं की भाँति आवरण सहित सभी ब्रह्माण्ड काल के साथ घूम रहे हैं। इस कारण हम श्रुतियाँ आपका अनुसन्धान करने जाकर, जिसे भी लक्ष्य करती हैं, वे आप नहीं हैं—ऐसा अनुभव करते-करते [अन्त में] सब कुछ ही आपमें पर्यवसित होता है; इस प्रकार स्थिर करके आप ही सभी के आधार हैं,—ऐसा सिद्धान्त करती हैं।

**अनुभाष्य**

१५। जनलोक में ब्रह्मसत्र यज्ञ में श्रवण के इच्छुक ऋषियों के समीप चतुःसन में से एक ब्रह्मर्षि सनन्दन ने श्रुतियों के द्वारा की गयी इस भगवद्स्तुति का कीर्त्तन किया था, जिसका पुनः आदि ऋषि नारायण ने देवर्षि नारद के निकट बाद में वर्णन किया था—

हे भगवन्, द्युपतयः (स्वर्गाधिपाः लोकपतयः ब्रह्मादयः) एव (अपि) ते (तव) अनन्ततया (अन्ताभावेन) अन्तं (गुणसीमां) न ययुः (प्रापुः—यत् अन्तवद्वस्तु, तत् किमपि त्वं न भवसीत्यर्थः);

(आस्थां द्युपतयः) यद् (यस्मात्) त्वमपि (स्वयम् आत्मनः अन्तं अनन्ततया न यासि); ननु (अहो) यद् (यस्य तव) अन्तरा (मध्ये) सावरणाः (उत्तरोतरं दशगुणसप्तावरणसमन्विताः) अण्डनिचयाः (ब्रह्माण्ड -गणाः) वयसा (कालचक्रेण) खे (आकाशे) रजांसि इव सह (एक दैव, न तु पर्यायेण) वान्ति (परिभ्रमन्ति); यद् (यस्मात्) श्रुतयः अतन्निरसनेन (निरन्तरं जड़निषेधेन) भवन्निधनाः (भवति त्वयि निधनं समाप्तिः यासां ताः सत्यः) त्वयि (चिद्-विलास-विशेषमये) हि फलन्ति (पर्यवसन्ति)।

व्रज में कृष्ण की अद्भुत गोचारण-लीला का वर्णन—

**सेह रहु—व्रजे जबे कृष्ण-अवतार।**
**ताँर चरित्र विचारिते मन ना पाय पार॥१६॥**

**१६। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं तथा उनके गुण आदि की बात को भी छोड़ो, श्रीकृष्ण ने व्रज में अवतरित होकर जो सब लीलाएँ की हैं, उनमें से, नीचे की पयारों में वर्णित, ब्रह्मा के द्वारा ग्वालों तथा बछड़ों के हरण के बाद एक ही समय में असंख्य प्राकृत-अप्राकृत ब्रह्माण्ड की सृष्टि की लीला की बात भी मन और बुद्धि के अगोचर है।

चिद्-विलास प्रकट करके बछड़ो को चुराने हेतु ब्रह्मा के दर्प (अहङ्कार) का नाश—

**प्राकृताप्राकृत सृष्टि कैला एकक्षणे।**
**अशेष वैकुण्ठजाण्ड स्व-स्व-नाथ-सने॥१७॥**

**१७। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण ने प्राकृत तथा अप्राकृत ब्रह्माण्ड (वैकुण्ठ आदि) की एक ही क्षण में सृष्टि कर दी। उन्होंने अनन्त वैकुण्ठ तथा अनन्त ब्रह्माण्डों की क्रमशः उनके-उनके नाथ अर्थात् विष्णु और ब्रह्मा के साथ सृष्टि कर दी।

**अनुभाष्य**

१७। एक क्षण में ही कृष्ण ने परव्योमनाथ के साथ असंख्य अप्राकृत वैकुण्ठ एवं बहुत से ब्रह्मादि के साथ असंख्य प्राकृत ब्रह्माण्डों की सृष्टि की।

उस लीला ही परम-चमत्कारिता—

**एमत अन्यत्र नाहि शुनिये अद्भुत।**
**जाहार श्रवणे चित हय अवधूत॥१८॥**

**१८। प॰ अनु॰—**ऐसी अद्भुत लीला के विषय में अन्यत्र कहीं भी नहीं सुना जाता, जिसे सुनने मात्र से चित अभिभूत हो जाता है।

**अनुभाष्य**

१८। अवधूत,—कम्पित, आन्दोलित, उद्वेलित, अभिभूत, पराहत। पाठान्तर में, ''जाहार श्रवणे चित-मल हय धूत''।

कृष्ण के द्वारा असंख्य गैयाओं और बछड़ो को प्रकट करना—

**''कृष्णवत्सैरसंख्यातैः''—शुकदेव-वाणी।**
**कृष्ण-सङ्गे कत गोप—संख्या नाहि जानि॥१९॥**

**१९। प॰ अनु॰—'असंख्यातैः (असंख्य) कृष्ण-वत्सैः ( कृष्ण के गोवत्सद्वारा)**। 'असंख्य कृष्ण वत्स' अर्थात् कृष्ण के साथ असंख्य गोवत्स (बछड़े) थे उनके द्वारा।—यह शुकदेव गोस्वामी की ही वाणी है तथा श्रीकृष्ण के साथ कितने गोप थे, उनकी संख्या का भी कुछ नहीं पता अर्थात् वे भी असंख्य थे।

**अनुभाष्य**

१९। भा १०/१२/३ श्लोक का प्रथम चरण।

**एक एक गोप करे जे वत्स चारण।**
**कोटि, अर्बुद, शङ्ख, पद्म, ताहार गणन॥२०॥**

२०। **प॰ अनु॰—**एक-एक गोप कितने बछडों को चराता है, उनकी संख्या भी करोड़, अरब, शङ्ख, पद्म आदि है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७-२०। कृष्णावतार में ब्रह्मा द्वारा कृष्ण की महिमा की परीक्षा करने के लिये बछड़ो एवं गोपबालकों को चुराने पर कृष्ण ने अपनी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से प्राकृत एवं अप्राकृत सब कुछ प्रकट किया था। उन्होंने चिन्मय गैयाओं, गोपबालकों और अशेष वैकुण्ठतत्त्व को प्रकटित करके अप्राकृत सृष्टि की। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा सहित अनन्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि करके प्राकृत सृष्टि की। इस अद्‌भुत कथा का श्रवण करने से चित्त का मल धुल जाता है। 'असंख्य कृष्णवत्स' इस शब्द के द्वारा कृष्ण के साथ रहने वाले सभी बछड़े एवं सभी गोपबालक असंख्य रूप में प्रकटित हुए।

**अनुभाष्य**

२०। एकं दश शतञ्चैव सहस्त्रमयुतं तथा। लक्षञ्च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च॥ वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्खपद्मौ च सागरः। अन्त्यं मध्यं परार्द्धञ्च दशवृद्ध्या यथाक्रमम्॥

**वेत्र, वेणु, दल, शृङ्ग, वस्त्र, अलङ्कार।**
**गोपगणेर जत, ताय नाहि लेखा-पार॥२१॥**

२१। **प० अनु०—**गोप बालकों के वेत्र (गैयाओं को फिराकर लाने वाली बेंत), वेणु, दल (पत्तों से बनी वंशी), शृङ्ग (एक प्रकार का वाद्य यन्त्र), वस्त्र तथा अलङ्कार आदि भी जितने प्रकार के हैं, उसकी भी कोई गिनती नहीं है।

कृष्ण के द्वारा प्रकटित असंख्य वैकुण्ठनाथ और ब्रह्माण्डपतियों द्वारा कृष्ण-स्तुति—

**सबे हैला चतुर्भुज वैकुण्ठेर पति।**
**पृथक् पृथक् ब्रह्माण्डेर ब्रह्मा करे स्तुति॥२२॥**

**२२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण से प्रकटित सभी गोपबालक, सभी बछड़े, सभी वेणु तथा प्रत्येक अलंकार आदि सबकुछ चतुर्भुज वैकुण्ठपति बन गये। वे सभी पृथक-पृथक ब्रह्माण्डों के ब्रह्माओं के साथ श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे।

कृष्ण से लीला-प्रकाशित, कृष्ण में ही सङ्गोपन—

**एक कृष्णदेह हैते सबार प्रकाशे।**
**क्षणेके सबाइ सेइ शरीरे प्रवेशे॥२३॥**

**२३। प० अनु०—**वे सभी एक ही श्रीकृष्ण की देह से प्रकाशित हुए तथा क्षण मात्र में ही वे सभी उन्हीं के शरीर में प्रवेश कर गये।

ब्रह्मा का विस्मय और मूर्च्छा, मूर्च्छा के बाद कृष्ण की कृपा से कृष्ण के ऐश्वर्य को जानना—

**इहा देखि' ब्रह्मा हैला मोहित, विस्मित।**
**स्तुति करि' सेइ पाछे करिला निश्चित॥२४॥**

**२४। प० अनु०—**श्रीकृष्ण की देह की ऐसी विभुता अथवा सर्व-व्यापकता अर्थात् ऐश्वर्य को देखकर हमारे ब्रह्माण्ड का ब्रह्मा,—जिन्होंने श्रीकृष्ण के बछड़े तथा सखाओं को चुराया था,—मोहित तथा विस्मित हो गया। श्रीकृष्ण की स्तुति करने के पश्चात् उन्होंने निश्चित किया कि—।

अधोक्षज कृष्ण वैभव के निर्णय में अपनी अक्षमता ज्ञापन—

**"जे कहे,—'कृष्णेर वैभव मुञि सब जानों।**
**से जानुक,—कायमने मुञि एइ मानों॥२५॥**
**एइ जे तोमार अनन्त वैभवामृतसिन्धु।**
**मोर वाङ्मानसेर गम्य नहे एक बिन्दु॥२६॥**

**२५-२६। प० अनु०—**जो कहता है कि मैं श्रीकृष्ण के समस्त वैभव के विषय में जानता हूँ, वह जानता है तो जाने, किन्तु मैं तो अपने काय तथा मन से यही मानता हूँ कि हे कृष्ण! आपका जो यह अनन्त वैभव रूपी अमृत का सिन्धु है, उसकी एक बूँद की महिमा भी मेरे वाणी और मन के अगोचर है।

श्रीमद्भागवत (१०/१४/३८) में—

**जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो।**
**मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः॥''२७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७। जो कहते है, 'मैं कृष्ण तत्त्व जानता हूँ', तो वे जाने, किन्तु मैं बहुत कुछ बोलना नहीं चाहता हूँ। प्रभो, मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि आपका समस्त वैभव—मेरे मन, शरीर और वचनों के अगोचर है।

**अनुभाष्य**

२७। गैयाओं और बछड़ों को हरण करने के फलस्वरूप श्रीकृष्ण के द्वारा ब्रह्मा के अभिमान के चूर्ण होने पर ब्रह्मा कृष्ण के भक्तवात्सल्य और उनके अधोक्षज होने का कीर्त्तन कर रहे हैं—

हे प्रभो, जानन्तः (विज्ञाः त्वदचिन्त्यानन्तगुण-गणज्ञानाभिमानिनः) एव जानन्त, बहूक्तया (अति प्रजल्पेन) किम्? (अधिक-वाग्वेगेन फलंनास्तीत्यर्थः) तव वैभव ये (मम ब्रह्मणः) मनसः वपुषः वाचः (कायमनोवाक्याना) न गोचरः (न विषयः न स्पर्श-नाधिकारः भवति)।

कृष्ण से अभिन्न श्रीवृन्दावन-धाम—

**कृष्णेर महिमा रहु—केबा तार ज्ञाता।**
**वृन्दावन-स्थानेर देख—आश्चर्य विभूता॥२८॥**

**२८। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण की महिमा की बात तो छोड़ो, उसे कौन जान सकता है? आप तो भौम्य-वृन्दावन धाम की ही आश्चर्यपूर्ण सर्व-व्यापकता को देखो।

वृन्दावन के एक ओर परव्योम में स्थित अनन्त करोड़ो वैकुण्ठ—

**षोलक्रोश वृन्दावन,—शास्त्रेर प्रकाशे।**
**तार एकदेशे वैकुण्ठजाण्डगण भासे॥२९॥**

**२९। प॰ अनु॰—**शास्त्रों के अनुसार वृन्दावन का परिमाण मात्र सोलह क्रोस है; इससे प्रतीत होता है कि वह एक सीमा बद्ध छोटा-सा स्थान है किन्तु उसी वृन्दावन के एक पार्श्व में ही अनन्तकोटि वैकुण्ठ और अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते हैं। [**अतएव इससे यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि क्षुद्र—सीमाबद्ध प्रतीत होने पर भी वृन्दावन वास्तव में सीमाबद्ध नहीं है, वह अनन्त है अन्यथा उसमें इतने वैकुण्ठों और ब्रह्माण्डों का समावेश सम्भवपर नहीं होता।**]

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२९। व्रजमण्डल में जो बारह वन हैं—जो सब मिलाकर चौरासी कोस होता है, उनमें से वृन्दावन नामक वन वर्त्तमान समय में वृन्दावन शहर की सीमा से नन्दग्राम-वृषभानुपुर (बरसाना) तक सोलह कोस है।

**अनुभाष्य**

२९। शास्त्रों में वृन्दावन 'सोलह कोस' का कहा गया है। इसी के एक पार्श्व में समस्त वैकुण्ठ और बहुत विस्तृत ब्रह्माण्ड प्रकाशित हैं।

असीम कृष्ण वैभव सिन्धु की एक बूँद का निर्देश—

**अपार ऐश्वर्य कृष्णेर—नाहिक गणन।**
**शाखा-चन्द्र-न्याये करि दिग्‌दरशन॥३०॥**

**३०। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य अपार है। उसकी गणना नहीं की जा सकती। मैं तो केवल शाखा-चन्द्र-न्याय से उसका दिग्दर्शन कर रहा हूँ अर्थात् अति संक्षेप में ही उसका किञ्चित् उल्लेख कर रहा हूँ।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३०। **शाखा-चन्द्र-न्याय,—**चन्द्र की एक शाखा दिखलाकर जिस प्रकार चन्द्र का परिचय दिया जाता है, उसी प्रकार किसी तत्त्व का एक देश (अङ्ग) दिखलाकर सब देशों का किञ्चित ज्ञान

दिया जाता है। इसी न्याय को शाखा-चन्द्र-न्याय कहते हैं।

वचन और मानस (मन) से परे कृष्ण के ऐश्वर्य के वर्णन में ब्रह्मा का विह्वल होना—

**ऐश्वर्य कहिते स्फुरिल ऐश्वर्य-सागर।**
**मनेन्द्रिय-डुबिला, प्रभु हइला फाँपर॥३१॥**
**भागवतेर एइ श्लोक पड़िला आपने।**
**अर्थ आस्वादिते सुखे करेन व्याख्याने॥३२॥**

**३१-३२। प० अनु०—**ऐश्वर्य की बात कहते-कहते श्रीमन्महाप्रभु के मन में श्रीकृष्ण का समुद्र तुल्य अगाध और अपार ऐश्वर्य स्फुरित हो उठा, उनका मन तथा इन्द्रियाँ उसी में डूब गयी तथा उनकी देह में कम्पन होने लगा। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक का स्वयं उच्चारण किया तथा उस श्लोक के अर्थ का आस्वादन करने के लिये स्वयं आनन्दपूर्वक उसकी व्याख्या करने लगे।

तीन सर्गों के अधीश्वर अद्वितीय अविनश्वर लोकपालों के द्वारा पूजित-विग्रह—
श्रीमद्भागवत (३/२/२१) में—

**स्वयन्त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः**
**स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः।**
**बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः**
**किरीटकोटीड़ितपादपीठः॥३३॥**

३३। [ श्रीउद्धव श्रीविदुर के समक्ष श्रीकृष्ण के विषय में कह रहे हैं— ] जो स्वयं भगवान् हैं, जिनके समान अथवा जिनकी अपेक्षा कोई बड़ा नहीं है, जो तीन लोकों (गोलोक, परव्योम, देवीधाम अथवा गोकुल, मथुरा, द्वारका) अथवा गर्भोद-कशायी, कारणोदकशायी, पयोब्धीशायी नामक तीन पुरुषों के अथवा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के अधिष्ठातृ देवता क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा, शिव के अथवा भूर्भुवः स्व के अथवा स्वर्ग-मर्त्त्य-पाताल लोक के अधीश्वर हैं, परमानन्द स्वरूप सम्पत्ति द्वारा जिन्होंने समस्त काम्य वस्तुओं को प्राप्त किया है, पूजोपहार समर्पण पूर्वक ब्रह्मादि चिरलोकपाल करोड़ों-करोड़ों मुकुटों के अग्रभाग के द्वारा जिनकी पादपीठ की पूजा करते हैं (वही श्रीकृष्ण उग्रसेन के अनुवर्ती होकर चलेंगे, यही उनके दास—हमारे लिये अत्यन्त दुःख का विषय है।)

### अमृतप्रवाह भाष्य

३३। वे स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अधीश्वर हैं, अतएव वे समान, हीन और अतिशय से रहित एवं स्वाराज्यलक्ष्मी द्वारा समस्त काम को प्राप्त हुए हैं। चिरलोकपाल उनकी पूजा करने आकर उनकी पाद पीठ की स्तुति करते हुए मस्तक पर सुशोभित करोड़ों मुकुटों को झुकाकर शब्द किया करते हैं।

### अनुभाष्य

३३। लघुभागवतामृत के पूर्वखण्ड में 'श्रीकृष्ण —नारायण के विलास हैं' इस पूर्वपक्ष (प्रश्न) का खण्डन करते हुए उत्तरपक्ष वर्णन में ३०२-३२३ संख्या में इस श्लोक की व्याख्या और कारिका द्रष्टव्य है। श्रीकृष्ण के अप्रकट होने पर श्रील उद्धव उनके वियोग में शोकाकुल होकर श्रीविदुर के निकट कृष्ण के बालचरित और परम-ऐश्वर्य का कीर्त्तन कर रहे हैं-

स्वयं (भगवान्) तु असाम्यातिशयः (न साम्यं अतिशयश्च यस्मात् सः असमोर्द्ध्वः), त्र्यधीशः (गोलोक-परव्योम-देवीधाम्नां, गोकुल-मथुरा-द्वारका धाम्नां वा, कारणं च समष्टिः हिरण्यगर्भो वा व्यष्टिः विराट वेति सर्गत्रयाणां वा, सत्त्वरजस्तमो-गुणाधिष्ठातृणां विष्णु ब्रह्माशिवानां वा, चिज्जीव-मायाशक्तीनां वा, भूर्भुवः स्वरिति व्याहृतित्रयाणां वा, स्वर्ग-मर्त्त्य-पाताल लोकत्रयाणां वा ईशः अधि-पतिः) स्वाराज्यलक्ष्मयाप्तसमस्तकामः (परमचिदा-नन्दस्वरूप-सम्पत्त्या एव लब्ध निखिलभोगः) बलिं

(करं अर्हणं वा) हरद्भिः (समर्पयद्भिः) चिरलोकपालैः (चिरकालीनैः ब्रह्मरुद्राद्यैः) किरीट-कोटीड़ित-पाद-पीठः (किरीट-कोटिभिः मुकुटाग्रैः ईड़ितं वन्दितं पादपीठं पाद सिंहासनं यस्य सः—उग्रसेनं यत् न्यबोधयत्, तत् नः विग्लापयतीत्युत्तरेणान्वयः)।

कृष्ण—(१) असाम्यातिशय (जिनके समान और जिनसे बढ़कर कोई नहीं)—

**परम ईश्वर कृष्ण स्वयं भगवान्।**
**ताते बड़, ताँर सम केह नाहि आन॥३४॥**

**३४। प० अनु०—[** श्रीमन्महाप्रभु स्वयं द्वारा उच्चारित श्रीभागवत के उपरोक्त श्लोक के 'स्वयं' शब्द का अर्थ कर रहे हैं— ] परम ईश्वर श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं अर्थात् उनकी भगवत्ता अन्य किसी पर भी निर्भर नहीं है, बल्कि अन्यों की भगवत्ता उनकी भगवत्ता पर निर्भर करती है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण परम ईश्वर हैं। श्रीकृष्ण से बड़ा या फिर उनके समान अन्य कोई नहीं है [ यही उपरोक्त श्लोक के 'असाम्यातिशय' शब्द का अर्थ है। **निम्नोक्त श्लोक में इस प्रकार के अर्थ का प्रमाण दे रहे हैं]**

ब्रह्मसंहिता (५/१) में—

**ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।**
**अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥३५॥**

३५। सच्चिदानन्दविग्रह श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं; वे स्वयं अनादि एवं सभी के आदि और सर्वकारणों के कारण हैं।

**अनुभाष्य**

३५। आदि द्वितीय परिच्छेद १०७ संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण—(२) त्र्यधीश; (क) गुणावतारगत प्रथम (बाह्य अथवा गौण) अर्थ—

**ब्रह्मा, विष्णु, हर,—एइ सृष्ट्यादि-ईश्वर।**
**तिने आज्ञाकारी कृष्णेर, कृष्ण—अधीश्वर॥३६॥**

**३६। प० अनु०—[** इस पयार में श्रीमन्महाप्रभु उपरोक्त श्लोक के 'त्र्यधीशः' शब्द का अर्थ कर रहे हैं। त्र्यधीश—त्रि (तीन)—के अधीश (अधीश्वर), जो तीनों के अधीश्वर हैं, वही त्र्यधीश हैं। त्र्यधीश शब्द का अर्थ है, तीन ईश्वरों के ईश्वर। किन तीन ईश्वरों के ईश्वर, उसी के विषय में बतला रहे हैं— ] ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों क्रमशः सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के ईश्वर हैं। ये तीनों भी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करने वाले हैं, अर्थात् श्रीकृष्ण की आज्ञा से ही वे सृष्टि, स्थिति तथा संहार करते हैं; श्रीकृष्ण ही इन तीनों के नियन्ता होने के कारण इन तीनों के अधीश्वर हैं। [ **ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों श्रीकृष्ण के आदेश से ही सृष्टि आदि कार्य करते हैं, श्रीमन्महाप्रभु निम्नोद्धृत श्लोक में उसी का प्रमाण दे रहे हैं— ]**

**अनुभाष्य**

३६। ब्रह्मा—जगत् की सृष्टि करने वाले, विष्णु—जगत् का पालन करने वाले, हर (शिव)—जगत् का संहार करने वाले, यह तीन कार्य करने वाले (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) कृष्ण की आज्ञा का पालन करने वाले दास हैं; कृष्ण ही एकमात्र सर्वेश्वर हैं।

श्रीमद्भागवत (२/६/३२) में—

**सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।**
**विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्॥३७॥**

३७। ब्रह्मा ने कहा—हरि के नियोग मत से ही मैं सृष्टि करता हूँ, उनकी आज्ञा से ही शिव नाश करते हैं, त्रिशक्तिधृक (तीन शक्तियों को धारण करनेवाले) वह हरि ही पुरुष रूप में विश्व का पालन करते हैं।

**अनुभाष्य**

३७। मध्य विंश परिच्छेद ३१८ संख्या द्रष्टव्य है।

(ख) पुरुषावतारगत द्वितीय
(बाह्य) अर्थ—

**ए सामान्य, त्र्यधीश्वरेर शुन अर्थ आर।**
**जगत्कारण तिन पुरुषावतार॥३८॥**
**महाविष्णु, पद्मनाभ, क्षीरोदकस्वामी।**
**एइ तिन—स्थूल-सूक्ष्म-सर्व-अन्तर्यामी॥३९॥**
**एइ तिन—सर्वाश्रय, जगत्-ईश्वर।**
**ईँहो—कला-अंश जाँर, कृष्ण अधीश्वर॥४०॥**

**३८-४०। प॰ अनु॰—**मैंने त्र्यधीश का ब्रह्मा, विष्णु और महेश के ईश्वर नामक जो अर्थ पहले किया है, वह तो सामान्य अर्थ है, अब तुम त्र्यधीश्वर का अन्य अर्थ सुनो। जगत के कारण महाविष्णु (कारणोदकशायी), पद्मनाभ (गर्भोद-कशायी), तथा क्षीरोदकशायी विष्णु—ये तीनों ईश्वर क्रमशः सर्व-अन्तर्यामी, सूक्ष्म-अन्तर्यामी तथा स्थूल अन्तर्यामी हैं। ये तीनों ईश्वर सभी के आश्रय तथा जगत् के ईश्वर होने पर भी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के कला तथा अंश है—इसलिए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इन तीनों ईश्वरों के अंशी, नियन्ता अथवा ईश्वर हैं, इसलिए वे इन तीनों के अधीश्वर अथवा त्र्यधीश हैं। [**श्रीमन्महाप्रभु इस उक्ति के प्रमाण स्वरूप एक श्लोक का उच्चारण कर रहे हैं—** ]

**अनुभाष्य**

३९। महाविष्णु,—कारणोदशायी अर्थात् सर्वान्तर्यामी; पद्मनाभ,—ब्रह्मा की सृष्टि करने वाले गर्भोदयशायी अर्थात् हिरण्यगर्भ, समष्टि अथवा सूक्ष्मार्न्तयामी एवं क्षीरोदकशायी—विष्णु अर्थात् विराट, व्यष्टि स्थूलान्तर्यामी।

ब्रह्मसंहिता (५/४४) में—

**यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य**
**जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।**
**विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो**
**गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥४१॥**

४१। ब्रह्माजी कह रहे हैं—ब्रह्माण्ड नाथ समूह जिनके रोमकूप से जन्म लेकर उनके एक निःश्वास-काल तक विराजमान रहते हैं, वही महाविष्णु जिनके कलाविशेष हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ।

**अनुभाष्य**

४१। आदि पञ्चम परिच्छेद ७१ संख्या द्रष्टव्य।

(ग) कृष्णाधीन धामगत तृतीय (गुह्य) अर्थ—

**एइ अर्थ—बाह्य, शुन 'गूढ़' अर्थ आर।**
**तिन आवास-स्थान कृष्णेर, शास्त्रे ख्याति जार॥४२॥**

**४२। प॰ अनु॰—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—**'त्र्यधीश' शब्द का उपरोक्त अर्थ भी बाह्य अर्थ है। अब तुम गूढ़ अर्थ सुनो। शास्त्रों में श्रीकृष्ण के तीन आवास-स्थानों का सर्वत्र वर्णन प्राप्त होता है। उन्हीं के अधीश्वर होने के कारण श्रीकृष्ण त्र्यधीश हैं।

**अनुभाष्य**

४२। तीन आवास-स्थान,—१) अन्तरावास गोलोक, (२) मध्यमावास परव्योम, ३) बाह्यवास देवीधाम।

१) अन्तर-आवास गोलोक-वृन्दावन का वर्णन—

**'अन्तःपुर—गोलोक-श्रीवृन्दावन।**
**जाँहा नित्यस्थिति मातापिता-बन्धुगण॥४३॥**

**४३। प॰ अनु॰—**अन्तःपुर गोलोक श्रीवृन्दावन श्रीकृष्ण की माधुर्यमयी लीलाओं का स्थान है।

श्रीकृष्ण की लीलाओं की पुष्टि के लिये वहाँ पर माता-पिता-बन्धु-बान्धवों का नित्य वास है।

**मधुर ऐश्वर्य-माधुर्य-कृपादि-भाण्डार।**
**योगमाया—दासी, जाँहा रासादि लीला-सार॥४४॥**

**४४। प० अनु०—**[ अन्तःपुर में श्रीकृष्ण के ] मधुर-ऐश्वर्य अर्थात् श्रीकृष्ण के प्रति प्रीति का वर्धन करने वाला अत्यन्त आस्वादनीय ऐश्वर्य तथा माधुर्य और कृपा आदि का भण्डार है। अन्य धामों में जो माधुर्य, ऐश्वर्य तथा कृपादि है, वह इसी मूल भण्डार से ही जाता है। श्रीकृष्ण की अन्तरङ्गा चिद् शक्ति, जो उनकी प्रीतिजनक समस्त लीलाओं की पुष्टि करती हैं, वही योगमाया वहाँ पर श्रीकृष्ण की दासी है तथा श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं की सार रास आदि लीला भी इसी वृन्दावन में ही प्रकाशित होती है। [ **श्रीमन्महाप्रभु इसी का प्रमाण निम्नोक्त श्लोक में प्रदान कर रहे हैं—** ]

गोस्वामिपादोक्त-श्लोक—

**करुणानिकुरम्बकोमले**
**मधुरेश्वर्यविशेषशालिनि।**
**जयति व्रजराजनन्दने न हि**
**चिन्ताकणिकाभ्युदेति नः॥४५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४५। अपनी करुणासमूह के द्वारा कोमल (चित्त वाले) तथा मधुर-ऐश्वर्य अर्थात् अत्यन्त आस्वादनीय ऐश्वर्य विशेष से युक्त ब्रजराज-नन्दन श्रीकृष्ण के जययुक्त होने से हमारी चिन्ताकणिका का अर्थात् लेशमात्र चिन्ता का भी उदय नहीं हो सकता।

**अनुभाष्य**

४५। करुणानिकुरम्बकोमले (करुणासमूहेन कोमलः स्वभावः यस्य सः तस्मिन्) मधुरेश्वर्यविशेष-शालिनि (माधुर्येश्वर्याविचित्र-सम्पत्ति सम्पन्ने) व्रजराजनन्दने (कृष्णे) जयति (सर्वोत्कर्षमाविष्कुर्वति सति) नः (अस्माक) चिन्ताकणिका (चिन्तालवमात्रं अपि) न अभ्युदेति (आविर्भवति)।

(२) मध्यमवास विष्णुलोक वैकुण्ठ का वर्णन—

**तार तले परव्योम—'विष्णुलोक'-नाम।**
**नारायण-आदि अनन्त स्वरूपेर धाम॥४६॥**
**'मध्यम-आवास' कृष्णेर—षड़ेश्वर्य-भाण्डार।**
**अनन्त स्वरूपे जाँहा करेन विहार॥४७॥**
**अनन्त वैकुण्ठ जाँहा—भाण्डार-कोठरि।**
**पारिषदगणे षड़ेश्वर्ये आछे भरि'॥४८॥**

**४६-४८। प० अनु०—**[ अब श्रीमन्महाप्रभु **श्रीकृष्ण के मध्यम आवास के विषय में बतला रहे हैं—** ] गोलोक वृन्दावन के नीचे विष्णुलोक के नाम से भी प्रसिद्ध परव्योम है। वह श्रीनारायण आदि अनन्त भगवत-स्वरूपों का धाम है। महिमा में अन्तपुरः रूप श्रीवृन्दावन एवं बाह्य आवास रूप प्राकृत ब्रह्माण्ड के मध्यवर्ती होने के कारण परव्योम को मध्यम-आवास कहा गया है। वह माधुर्यमय ऐश्वर्य का नहीं बल्कि छह प्रकार के शुद्ध ऐश्वर्यों का भाण्डार है। मध्यम-आवास में श्रीकृष्ण अपने अनन्त स्वरूपों में विहार करते हैं। उस मध्यम-आवास में स्थित श्रीकृष्ण के विभिन्न स्वरूपों के विभिन्न धामों को भिन्न-भिन्न कोठरी स्वरूप कहा गया है। वहाँ भगवान् के अनन्त स्वरूपों के परिकर भी षड् ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं। [ **श्रीमन्महाप्रभु अपने इन्हीं वचनों के प्रमाण स्वरूप निम्नोक्त कुछेक श्लोकों का उच्चारण कर रहे हैं—** ]

ब्रह्म संहिता (५/४३) में—

**गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य**
**देवी-महेश-हरिधामसु तेषु तेषु।**
**ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन**
**गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥४९॥**

४९। श्रीब्रह्मा ने कहा—श्रीकृष्ण के निजधाम गोलोक में अर्थात् श्रीवृन्दावन में एवं उस गोलोक के नीचे यथाक्रम से हरिधाम (परव्योम), महेशधाम एवं देवी धाम में जिन्होंने यथा-योग्य भाव से अपने समस्त प्रभावों का विस्तार किया है, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४९। गोलोकनामक निज-धाम के नीचे देवी, महेश और हरि के धाम समूह में जिन्होंने उन समस्त प्रभावों को विहित किया है, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ।

**अनुभाष्य**

४९। तस्य (कृष्णस्य) गोलोकनाम्नि तले (निम्नभागे) देवीमहेशहरिधामसु (पारम्पर्यक्रमेण वैकुण्ठ-शिवधाम-देवीधामसु) तेषु तेषु च येन (गोविन्देन) ते ते प्रभावनिचयाः (विक्रमसमूहाः) विहिताः (स्थापिताः) च, तं आदि पुरुषं गोविन्दं अहं भजामि।

विरजा में अवस्थान का वर्णन—
पाद्मोतरखण्ड (२५५/५७) में—

**प्रधान-परमव्योम्नोरन्तरे विरजा नदी।**
**वेदाङ्ग स्वेदजनितैस्तोयेः प्रस्राविता शुभा॥५०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५०। प्रधान अर्थात् मायिकतत्त्व एवं परव्योम, इन दोनों के बीच में विरजा नामक नदी है; वह नदी—मङ्गलजनक वेदाङ्ग अर्थात् भगवान् के घर्म (पसीने) से उत्पन्न जल से युक्त है।

**अनुभाष्य**

५०। प्रधान-परव्योम्नाः (देवीधाम-वैकुण्ठयोः) अन्तरे (मध्ये) वेदाङ्गस्वेदजनितैः (वेदाः अङ्गानि यस्य—''अस्य निश्वसितम्'' इति श्रुतेः, तस्य भगवतः घर्मोद्भवैः) तोयैः (सलिलैः) प्रसाविता (प्रवाहिता) शुभा (जड़क्रियाहीना नैष्कर्म्मरूपिणी चिन्मात्रमयी) विरजा नदी (वर्त्तते)।

परव्योम अथवा वैकुण्ठ में अवस्थान का वर्णन—
पाद्मोतर खण्ड (२५५/५८) में—

**तस्याः पारे परव्योम त्रिपादभूतं सनातनम्।**
**अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम्॥५१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५१। उस विरजा के [**एक तट पर प्राकृत ब्रह्माण्ड तथा अन्य**] तट पर अमृत, नित्य, सनातन, अनन्त, परमपद-स्वरूप, त्रिपादभूत परव्योम है, तात्पर्य यह है कि,—परव्योम-चित् जगत है, अतएव अशोक, अभय और अमृत-स्वरूप त्रिपाद-विभूति उसमें नित्य वर्त्तमान है। समस्त मायिक वस्तुएँ मिलकर कृष्ण की एकपाद विभूतिमात्र हैं। [**परव्योम षड्-ऐश्वर्यों से युक्त है, पूर्वोक्त पयार का प्रमाण इस श्लोक के 'त्रिपाद-भूतं' के द्वारा प्रदान किया गया है**]

**अनुभाष्य**

५१। तस्याः (विरजायाः नद्याः) पारे (तटे) त्रिपादभूतं (तुरीय) सनातनम् (नित्यवर्त्तमानम्) अमृतम् (अक्षय) शाश्वतं नित्यम् अनन्तं परमं पदं परव्योम।

(३) बाह्यवास देवीधाम ही जीव के
भोग का स्थान माया राज्य—

**तार तले 'बाह्यवास' विरजार पार।**
**अनन्त ब्रह्माण्ड जाँहा कोठरि अपार॥५२॥**

**५२। प० अनु०—[अब श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण के बाह्य-आवास के विषय में बतला रहे हैं—]** उस परव्योम के नीचे विरजा (कारण समुद्र) के इस पार श्रीकृष्ण का बाह्य आवास है। अनन्त प्राकृत-ब्रह्माण्ड ही इस बाह्य-आवास की अनन्त-कोठरीयाँ है।

**'देवीधाम' नाम तार, जीव जार वासी।**
**जगल्लक्ष्मी राखे, जाँहा रहे मायादासी॥५३॥**

**५३। प० अनु०—**माया देवी के धाम प्राकृत

ब्रह्माण्ड को ही देवीधाम कहते हैं, भोग परायण बद्ध जीव ही इस देवीधाम के निवासी हैं। श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करने वाली मायी दासी ही प्राकृत ब्रह्माण्ड में रहकर जगत्-लक्ष्मी [ **जगत अर्थात् प्राकृत ब्रह्माण्ड स्वरूप और लक्ष्मी अर्थात् सम्पत्ति** ] की देखभाल करती है।

**अनुभाष्य**

५३। **जीव**—भोग परायण बद्धजीव [ इस बाह्य आवास ] देवीधाम में वास करता है; स्वराज्य-लक्ष्मी कृष्ण सेविका बनकर कृष्ण की अभिलाषा पूर्ण करती हैं, जगत्-लक्ष्मी देवी-धाम-वासी जीवों की रक्षा करती हैं। जाँहा,—इस देवी धाम में जगत् लक्ष्मी की दासी माया ही अधिष्ठात्री हैं।

**एइ तिन धामेर हय कृष्ण अधीश्वर।**
**गोलोक-परव्योम—प्रकृतिर पर॥५४॥**

**५४। प॰ अनु॰—गोलोक, परव्योम तथा देवी-धाम**—इन तीनों धामों के कृष्ण ही अधीश्वर हैं। इन तीनों धामों में से गोलोक तथा परव्योम प्रकृति अर्थात् देवी-धाम से परे अथवा माया से अतीत अप्राकृत तत्त्व हैं।

**अनुभाष्य**

५४। तीन धाम,—सर्वोपरिधाम गोलोक, हरि-धाम परव्योम और देवीधाम। देवीधाम से मुक्त जीव परव्योम में हरिसेवा प्राप्त नहीं करने पर महेश-धाम प्राप्त करते हैं। देवीधाम से ऊपर होने पर भी वह हरिधाम-परव्योम के अन्तर्गत नहीं है।

शुद्धसत्वमय चिच्छक्ति विलास तद्-रूप
वैभव—कृष्ण की तीन पाद विभूति,
देवीधाम—एकपाद-विभूति—

**चिच्छक्तिविभूति-धाम—त्रिपादेश्वर्य-नाम।**
**मायिक विभूति—एकपाद अभिधान॥५५॥**

**५५। प॰ अनु॰**—गोलोक तथा परव्योम धाम भगवान् की चिद्-शक्ति की विभूति है तथा इन दोनों धामों को त्रिपाद-ऐश्वर्य के नाम से भी जाना जाता है अर्थात् यह दो धाम त्रिपाद-ऐश्वर्यात्मक है। इन दोनों धामों में भगवान् का त्रिपाद-ऐश्वर्य विराजित है तथा भगवान् की मायिक विभूति अर्थात् ऐश्वर्य देवीधाम को एकपाद विभूति कहा जाता है। [ **श्रीमन्महाप्रभु ने इसी के प्रमाण हेतु निम्नोक्त श्लोक का उच्चारण किया**— ]

**अनुभाष्य**

५५। हरिधाम-परव्योम और गोलोक—अप्राकृत चिद्शक्ति-विभूति से युक्त धाम है; वह 'त्रिपाद-ऐश्वर्य' के नाम से प्रसिद्ध है। मायिक- विभूति से युक्त देवीधाम—'एकपाद' के नाम से प्रसिद्ध है।

त्रिपादविभूति—माया से अतीत और
एकपादविभूति—मायिक—
लघुभागवतामृत (१/५६३) में—

**त्रिपाद्विभूतेर्धामत्वात् त्रिपाद्भूतं हि तत् पदम्।**
**विभूतिर्मायिकी सर्वा प्रोक्ता पादात्मिका यतः॥५६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५६। 'त्रिपादविभूति' का धाम (आश्रय) होने के कारण उस (गोलोक तथा परव्योम नामक चिन्मय) पद धाम को त्रिपादभूत कहते हैं, और समस्त मायिक विभूति—एकपाद मात्र हैं।

**अनुभाष्य**

५६। तत्पदं त्रिपादविभूतेर्धामत्वात् त्रिपादभूतं हि (त्रिचरणात्मकम् एव उच्यते); यतः सर्वा मायिकी विभूतिः पादात्मिका (एकचरणा) प्रोक्ता (कथिता)।

एकपाद विभूति देवीधाम का वर्णन—

**त्रिपादविभूति कृष्णेर—वाक्य-अगोचर।**
**एकपाद विभूतिर शुनह विस्तार॥५७॥**

**५७। प॰ अनु॰**—भगवान् श्रीकृष्ण की तीन पाद विभूति अनन्त होने के कारण वचन के

अगोचर है। हे सनातन! तुम एकपाद विभूति के विस्तार के विषय में श्रवण करो।

'चिरलोकपाल'-शब्द का अर्थ—

**अनन्त ब्रह्माण्डेर जत ब्रह्मा-रुद्रगण।**
**चिरलोकपाल-शब्दे ताँहार गणन॥५८॥**

**५८। प० अनु०—**प्रत्येक ब्रह्माण्ड के एक ब्रह्मा तथा एक रुद्र हैं। इस प्रकार अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के अनन्त कोटि ब्रह्मा तथा अनन्त कोटि रुद्र हैं तथा इन्हीं अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त ब्रह्मा तथा रुद्रों को चिरलोकपाल कहा जाता है। [**इन वचनों के द्वारा यही प्रमाणित होता है कि श्रीकृष्ण** की एकपाद विभूति का अनुमान लगाना भी अत्यन्त कठिन है।]

**अनुभाष्य**

५८। चिरलोकपाल—ब्रह्माण्ड के आधिकारिक चिरस्थायी-कार्यों को करने वाले ब्रह्मा रुद्रादि; लोकपाल शब्द से साधारणतः आठ दिक्पाल समझ आते हैं, यथा—इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, नैऋति, वायु, कुबेर और शिव।

कृष्ण के ऐश्वर्य के दर्शन के लिये आये ब्रह्मा के अहङ्कार के नाश के सम्बन्ध में एक पौराणिक-उपाख्यान—

**एकदिन द्वारकाते कृष्ण देखिबारे।**
**ब्रह्मा आइला,—द्वारपाल जानाइल कृष्णेरे॥५९॥**

**५९। प० अनु०—इसी ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत स्थित भौम्य** द्वारका में एकदिन **चतुर्मुख ब्रह्मा** श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये आये तथा द्वारपाल ने उनके आने का संवाद जाकर श्रीकृष्ण को दिया।

**कृष्ण कहेन,—"कोन् ब्रह्मा, कि नाम ताहार?"**
**द्वारी आसि' ब्रह्मारे पुछे आर बार॥६०॥**

**६०। प० अनु०—**श्रीकृष्ण ने भङ्गिमापूर्वक पूछा—कौन से ब्रह्मा आये हैं, उनका नाम क्या है? द्वारपाल ने आकर ब्रह्मा से पुनः पूछा—श्रीकृष्ण आपका परिचय जानना चाहते है कि आप कौन से ब्रह्मा हैं?

**विस्मित हञा ब्रह्मा द्वारीके कहिला।**
**'कह गिया सनक-पिता चतुर्मुख आइला॥'६१॥**

**६१। प० अनु०—**विस्मित होकर ब्रह्मा ने द्वार-पाल से कहा—जाओ, और जाकर कहो कि सनक के पिता चतुर्मुख ब्रह्मा आये हैं।

**कृष्णे जानाञा द्वारी ब्रह्मारे लञा गेला।**
**कृष्णेर चरणे ब्रह्मा दण्डवत कैला॥६२॥**

**६२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण को चतुर्मुख ब्रह्मा के विषय में बतलाने के बाद द्वारपाल ब्रह्मा को लेकर चले गये। चतुर्मुख ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण के चरणों में दण्ड्वत किया।

**कृष्ण मान्य-पूजा करि' ताँरे प्रश्न कैल।**
**"कि लागि' तोमार इँहा आगमन हैल?"६३॥**

**६३। प० अनु०—**श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा का यथोचित आदर-सत्कार करने के बाद उनसे पूछा कि आपका किस उद्देश्य से यहाँ पर आगमन हुआ है।

**ब्रह्मा कहे,—"ताहा पाछे करिब निवेदन।**
**एक संशय मने हय, करह छेदन॥६४॥**

**६४। प० अनु०—**ब्रह्मा ने कहा—उसके विषय में मैं बाद में निवेदन करूँगा। किन्तु उससे पहले मेरे मन में एक संशय है, आप कृपया उसका छेदन कीजिए।

**'कोन ब्रह्मा?' पुछिले तुमि कोन् अभिप्राये?**
**आमा वइ जगते आर कोन् ब्रह्मा हये?"६५॥**

**६५। प० अनु०—**कौन से ब्रह्मा आये हैं?

आपने किस अभिप्राय से ऐसा पूछा था? क्या मेरे अलावा जगत में अन्य कोई ब्रह्मा भी है?'

**शुनि' हासि' कृष्ण तबे करिलेन ध्याने।**
**असंख्य ब्रह्मार गण आइला ततक्षणे॥६६॥**

**६६। प० अनु०—**ब्रह्मा की बात सुनकर श्री कृष्ण मुस्करा दिये तथा उन्होंने [ **चतुर्मुख ब्रह्मा के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही अन्यान्य ब्रह्माण्डों के आधिकारिक समस्त ब्रह्माओं का** ] ध्यान किया। श्रीकृष्ण के स्मरण मात्र से ही तत्क्षण वहाँ पर असंख्य ब्रह्मा आ गये।

**दश-बिश-शत-सहस्त्र-अयुत-लक्ष-वदन।**
**कोट्यर्बुद मुख कारो, ना जाय गणन॥६७॥**

**६७। प० अनु०—**उनमें से किसी ब्रह्मा के दस-किसी के बीस-सौ-हजार-दस हजार-एक लाख, एक करोड़, एक अरब मुख तक भी थे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती।

**रुद्रगण आइला लक्ष-कोटि-वदन।**
**इन्द्रगण आइला लक्ष-कोटि-नयन॥६८॥**

**६८। प० अनु०—**लाखों-करोड़ों मुख वाले रुद्र भी आये तथा लाखों-करोड़ों नेत्रों वाले इन्द्र भी आये।

**देखि' चतुर्मुख ब्रह्मा फाँपर हइला।**
**हस्तिगण-मध्ये जेन मशक रहिला॥६९॥**

**६९। प० अनु०—**इन सब ब्रह्माओं, रुद्रों और इन्द्रों के मस्तक, मुख, नेत्र आदि को देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा की तो श्वास ही बन्द होने लगी। वे चतुर्मुख ब्रह्मा ऐसे प्रतीत होने लगे, मानो हाथियों के झुण्ड में मशक (मच्छर) हो।

**आसि' सब ब्रह्मा कृष्ण-पादपीठ-आगे।**
**दण्डवत करिते मुकुट पादपीठे-लागे॥७०॥**

**७०। प० अनु०—**समस्त ब्रह्मा आकर जब श्रीकृष्ण की चरण रखने वाली चौकी के आगे दण्ड्वत करने लगते, तब उनके मुकुट उस पादपीठ (चौकी) से टकरा जाते।

**कृष्णेर अचिन्त्य-शक्ति लिखिते केह नारे।**
**जत ब्रह्मा, तत मूर्त्ति एकइ शरीरे॥७१॥**

**७१। प० अनु०—**चतुर्मुख ब्रह्मा के गर्व का नाश करने के लिये श्रीकृष्ण ने अचिन्त्य शक्ति को प्रकाशित किया। श्रीकृष्ण की देह तो एक ही थी, किन्तु श्रीकृष्ण ने एक ही देह में एक ही समय उतनी मूर्त्ति बनकर अलग-अलग जितने भी ब्रह्मा थे, उन सबके साथ वार्त्तालाप की थी। इसे चतुर्मुख ब्रह्मा के अलावा अन्य कोई भी नहीं देख पाया। अन्य सभी ब्रह्माओं को यही प्रतीत हुआ कि वह अकेले ही श्रीकृष्ण के साथ वार्त्तालाप कर रहे हैं। इन्हीं कारणों से भगवान् श्रीकृष्ण की अचिन्त्य शक्ति के विषय में कोई भी नहीं लिख सकता।

**पादपीठ-मुकुटाग्र-संघट्टे उठे ध्वनि।**
**पादपीठे स्तुति करे मुकुट हेन जानि'॥७२॥**

**७२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के पादपीठ और ब्रह्माओं के मुकुट के टकराने से बहुत जोर का शब्द होता। इस शब्द को सुनकर ऐसा प्रतीत होता मानो मुकुट पादपीठ की स्तुति कर रहे हो।

**जोड़-हाते ब्रह्मा-रुद्रादि करये स्तवन।**
**''बड़-कृपा करिला प्रभु, देखाइला चरण॥७३॥**

**७३। प० अनु०—**हाथ जोड़कर ब्रह्मा तथा रुद्र आदि श्रीकृष्ण का स्तव करते हुए कहने लगे—हे प्रभु! आपने बहुत कृपा करके अपने चरणों का दर्शन प्रदान किया है।

**भाग्य, मोरे बोलाइला 'दास' अङ्गीकरि'।**
**कोन आज्ञा हय, ताहा करि शिरे धरि'॥''७४॥**

**७४। प० अनु०—**मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे अपने 'दास' के रूप में अङ्गीकार करके मुझे बुलाया है। यदि आपकी कोई आज्ञा हो तो मैं उसे शिरोधार्य करना चाहता हूँ।

**कृष्ण कहे,—''तोमा-सबा देखिते चित हैल।**
**ताहा लागि' एक ठाञि सबा बोलाइल॥७५॥**

**७५। प० अनु०—**श्रीकृष्ण ने कहा—तुम्हें देखने की इच्छा हुई। इसी कारण मैंने तुम्हें एकसाथ बुलाया है।

**सुखी हओ सबे, किछु नाहि दैत्य-भय?''**
**तारा कहे,—''तोमार प्रसादे सर्वत्रइ जय॥७६॥**

**७६। प० अनु०—**तुम लोग प्रसन्न तो हो, दैत्यों का कोई भय तो नहीं है? उन्होंने कहा—आपकी कृपा से सर्वत्र ही जय है।

**सम्प्रति पृथिवीते जेबा हैयाछिल भार।**
**अवतीर्ण हञा ताहा करिला संहार॥''७७॥**

**७७। प० अनु०—**सम्प्रति (इस समय) पृथ्वी पर जो दैत्यों का भार हो गया था, आपने अवतरित होकर उसका तो संहार कर दिया है। [**वास्तव में सभी ब्रह्मा मान रहे थे कि श्रीकृष्ण उन्हीं के ही ब्रह्माण्ड में अवतीर्ण हुए हैं। श्रीकृष्ण किन्तु तब चतुर्मुख ब्रह्मा के इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत द्वारका में एक राजमहल में बैठे हुए थे, उसी एक राजमहल में ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के अनन्त कोटि ब्रह्मा तथा अनन्त कोटि रुद्र एवं अनन्त कोटि इन्द्र समा गये।**]

**द्वारकादि—विभूतिर एइ त' प्रमाण।**
**'आमारइ ब्रह्माण्डे कृष्ण' सबार हैल ज्ञान॥७८॥**

**७८। प० अनु०—**द्वारका आदि की विभूति का यही तो प्रमाण है कि सभी को यही लगा कि श्रीकृष्ण हमारे ही ब्रह्माण्ड में हैं।

**कृष्ण-सह द्वारका-वैभव अनुभव हैल।**
**एकत्र मिलने केह काहो ना देखिल॥७९॥**

**७९। प० अनु०—**इस प्रकार चतुर्मुख ब्रह्मा को श्रीकृष्ण के साथ द्वारका के वैभव का भी अनुभव हुआ तथा चतुर्मुख ब्रह्मा ने यह भी अनुभव किया कि एक साथ होने पर भी किसी भी ब्रह्मा ने किसी भी अन्य ब्रह्मा को नहीं देखा।

**अनुभाष्य**

७९। कृष्ण एवं द्वारका धाम की अलौकिक विभूति को चतुर्मुख ब्रह्मा ने अनुभव किया। यद्यपि दस-सौ-हजार-अयुत (दस हजार)-लाख-करोड़ मुख वाले ब्रह्मा और रुद्र एक साथ मिलित हुए। इस मिलन को चतुर्मुख ब्रह्मा और कृष्ण ने ही देखा, तथापि कृष्ण की इच्छा से आये बृहत् ब्रह्मा और बृहत् शिवों का परस्पर में साक्षात्कार नहीं हुआ; अथवा, बहुत, ब्रह्मा-शिव आदि की ऐसी भीड़ हुई कि उन्हें परस्पर मिलने और आलाप करने का बिल्कुल भी अवसर ही नहीं मिला एवं किसी को भी किसी का आदर अथवा सत्कार करने का समय ही नहीं मिला।

**तबे कृष्ण सर्व-ब्रह्मागणे विदाय दिला।**
**दण्डवत हञा सबे निज घरे गेला॥८०॥**

**अनुभाष्य**

**८०। प० अनु०—**तब श्रीकृष्ण ने समस्त ब्रह्माओं को विदायी दी। श्रीकृष्ण को दण्ड्वत करके सभी अपने-अपने घर लौट गये।

**देखि' चतुर्मुख ब्रह्मार हैल चमत्कार।**
**कृष्णेर चरणे आसि' कैला नमस्कार॥८१॥**

**८१। प० अनु०—**यह सब देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों में आकर प्रणाम किया।

**ब्रह्मा बले,—"पूर्वे आमि जे निश्चय करिलुँ।**
**तार उदाहरण आमि आजि त' देखिलुँ॥८२॥**

**८२। प० अनु०—**ब्रह्मा ने कहा—पहले मैंने (व्रज में) जो निश्चय किया था, उसका उदाहरण मैंने आज (द्वाराका में) ही देखा है।

श्रीमद्भागवत (१०/१४/३८) में—

**जानन्तु एव जानन्तु किं बहूत्त्या न मे प्रभो।**
**मनसो-वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः॥८३॥**

८३। जो कहते है, 'मैं कृष्ण तत्त्व जानता हूँ', तो वे जाने, किन्तु मैं बहुत कुछ बोलना नहीं चाहता हूँ। प्रभो, मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि आपका समस्त वैभव—मेरे मन, शरीर और वचनों के अगोचर है।

**अनुभाष्य**

८३। मध्य एकविंश परिच्छेद २७ संख्या द्रष्टव्य।

**कृष्ण कहे,—"एइ ब्रह्माण्ड पञ्चाशत-कोटि योजन।**
**अति क्षुद्र, ताते तोमार चारि वदन॥८४॥**

**८४। प० अनु०—**श्रीकृष्ण ने कहा—यह ब्रह्माण्ड पचास करोड़ योजन का है। यह ब्रह्माण्ड बहुत ही छोटा है, इसलिए तुम्हारे केवल चार ही मुख हैं।

**अनुभाष्य**

८४। ब्रह्माण्ड को सौ करोड़ योजन का मानने पर उसका आधा पचास करोड़ योजन होता है। मनु ने लिखा है—'स्वयंमेवात्मनो ध्यानात् तदण्डमकरोदद्विधा।'' सूर्यसिद्धान्त के १२वें अध्याय के ९० श्लोक में ''ख व्योम-खत्रय-खसागर-षट्कनागव्योमाष्टशून्य-यमरूप-नगाष्टचन्द्राः। ब्रह्माण्डसम्पुटपरिभ्रमणं समन्तादभ्यन्तरे दिनकरस्य करप्रसारः॥'' सिद्धान्त-शिरोमणि में ग्रहगणित में मध्यमाधिकार में कक्षा-प्रक्रम में तथा गोलोकध्याय के भुवनकोश के ६७ श्लोक में—''कोटिघ्नैर्न-खनन्दषट्क-नखभू-भूभृद्भुजङ्गेन्दुभिर्ज्योतिः शास्त्र-विदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः तद् ब्रह्माण्ड-कटाहसम्पुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं केचित् प्रोचुरदृश्यक-गिरिं पौराणिकां सुरयः॥'' १८७१-२०६९२००००००० योजन खकक्षा; उसे कोई-कोई ब्रह्माण्ड रूपी दो कटाहों के मिलन स्थल को घिरा हुआ परिमाण कहते हैं।

**कोन ब्रह्माण्ड शतकोटि, कोन लक्षकोटि।**
**कोन नियुतकोटि, कोन कोटि-कोटि॥८५॥**

**८५। प० अनु०—**कोई ब्रह्माण्ड सौ करोड़ योजन का, कोई एक लाख करोड़ योजन का, कोई पचास लाख कोटि योजन का तो कोई करोड़ों-करोड़ों योजन का है।

**ब्रह्माण्डानुरूप ब्रह्मार शरीर-वदन।**
**एइरूपे पालि आमि ब्रह्माण्डेर-गण॥''८६॥**

**८६। प० अनु०—**ब्रह्माण्ड के अनुरूप ही ब्रह्मा का शरीर तथा मुख हैं। इसी प्रकार ही मैं ब्रह्माण्डों का पालन करता हूँ।"

**'एकपाद विभूति', इहार नाहि परिमाण।**
**'त्रिपाद विभूति' र केबा करे परिमाण॥८७॥**

**८७। प० अनु०—**मेरी इस एकपाद विभूति का कोई परिमाण नहीं है अर्थात् यह जीवों की धारणा के परे की बात है। तब फिर मेरी त्रिपाद विभूति के परिमाण को कौन जान सकता है?

पाद्मोत्तर खण्ड (२५५/५८) में—

**तस्याः पारे परव्योम त्रिपाद्भूतं सनातनम्।**
**अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तं परमं पदम्॥८८॥**

८८। उस विरजा के पार अमृत, नित्य, सनातन, अनन्त, परमपद-स्वरूप, त्रिपादभूत परव्योम है, तात्पर्य यह है कि,—परव्योम-चित् जगत है, अतएव अशोक, अभय और अमृत-स्वरूप त्रिपाद-विभूति उसमें नित्य वर्तमान है। समस्त मायिक वस्तुएँ मिलकर एकपाद विभूतिमात्र है।

**अनुभाष्य**

८८। मध्य २१ परिच्छेद ५१ श्लोक द्रष्टव्य है।

कृष्ण का वैभव—दुर्ज्ञेय—

**तबे कृष्ण ब्रह्मारे दिलेन विदाय।**
**कृष्णेर विभूति-स्वरूप जानान ना जाय॥८९॥**

**८९। प० अनु०—**तब श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को विदायी दी। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामी से कहा—हे सनातन! श्रीकृष्ण की विभूति के स्वरूप अर्थात् ऐश्वर्य के तत्त्व को बतलाया नहीं जा सकता।

**अनुभाष्य**

५९-८९। लघुभागवतामृत में पूर्वखण्ड में 'श्रीकृष्ण—नारायण के विलास' इस पूर्वपक्ष (प्रश्न) का खण्डन करते हुए श्रीरूप कृत व्याख्या और कारिका में ३१३-३२३ संख्या में यह उपाख्यान वर्णित है।

(घ) कृष्ण के तद् रूप वैभव-धामगत चतुर्थ (गूढ़) अर्थ—

**'त्र्यधीश्वर'-शब्देर अर्थ 'गूढ़' आर हय।**
**'त्रि'-शब्दे कृष्णेर तिन लोक कय॥९०॥**

**९०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामी से कहा कि** 'त्र्यधीश्वर' शब्द का अन्य एक गूढ़ अर्थ है, त्रि-शब्द श्रीकृष्ण के तीन धामों—गोकुल, मथुरा और द्वारका के विषय में बतलाता है।

कृष्ण के तीन धाम—

**गोलोकाख्य गोकुल, मथुरा, द्वारावती।**
**एइ तिन लोके कृष्णेर सहजे नित्यस्थिति॥९१॥**

**९१। प० अनु०—**गोलोक के नाम से विख्यात गोकुल, मथुरा तथा द्वारका—इन तीन लोकों में श्रीकृष्ण की सहज में ही नित्य-स्थिति है।

**अनुभाष्य**

९१। गोलोक के तीन प्रकोष्ठ—१) गोकुल, २) मथुरा, ३) द्वारका। कृष्णलीला के तीन प्रकोष्ठों की भाँति गौरलीला में भी अन्तरङ्ग पूर्णऐश्वर्यमय तीन प्रकोष्ठ हैं—(१) नवद्वीप-मण्डल, (२) श्री क्षेत्रमण्डल, (दाक्षिणात्य?) और (३) व्रजमण्डल।

स्वयं कृष्ण ही तीनों धामों के सम्राट—

**अन्तरङ्ग-पूर्णैश्वर्यपूर्ण तिन धाम।**
**तिनेर अधीश्वर—कृष्ण स्वयं भगवान्॥९२॥**

**९२। प० अनु०—**ये तीनों धाम अन्तरङ्ग-सब प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इन तीनों के अधीश्वर हैं।

अनन्त वैकुण्ठ, ब्रह्माण्ड और दिशाओं के अधिपतियों के द्वारा वन्दित-चरण कृष्ण—

**पूर्व-उक्त ब्रह्माण्डेर जत दिक्पाल।**
**अनन्त वैकुण्ठावरण, चिरलोकपाल॥९३॥**
**ताँ-सबार मुकुट कृष्णपादपीठ-आगे।**
**दण्ड्वतकाले तार मणि पीठे लागे॥९४॥**
**मणि-पीठे ठेकाठेकि, उठे झनझनि।**
**पीठेर स्तुति करे मुकुट—हेन जानि॥९५॥**

**९३-९५। प० अनु०—**[इसी परिच्छेद के ३३ संख्यक श्लोक 'स्वयन्त्वसाम्यातिशय' इत्यादि श्लोक के अन्तर्गत 'लोकपालैः शब्द का जो अर्थ किया गया है, वह एकपाद विभूति के अन्तर्गत है। यहाँ पर तीन पयारों में त्र्यधीश शब्द के चतुर्थ प्रकार के अर्थ के साथ सामञ्जस्य बनाकर

**'लोकपोल' शब्द का अर्थ कर रहे हैं। यहाँ पर 'लोकपाल' शब्द के द्वारा मायिक ब्रह्माण्ड के दिक्पाल एवं वैकुण्ठ के आवरण-देवताओं को बतलाया जा रहा है। ये सभी गोकुल-मथुरा-द्वारिका के अधीश्वर श्रीकृष्ण को प्रणाम करते हैं। ]** पहले बतलाये गये ब्रह्माण्डों के जितने भी दिकपाल हैं। अनन्त वैकुण्ठों के आवरणों में रहने वाले जितने चिरलोकपाल हैं, उन सबके मुकुटों की मणियाँ कृष्ण पादपीठ के आगे दण्ड्वत करते समय उससे टकराती हैं। मणि के पादपीठ पर टकराने से झनझन की ध्वनि उठती है। ऐसा लगता है मानो मुकुट पाद-पीठ की स्तुति कर रहे हो।

**अनुभाष्य**

९३। मध्य २१ परिच्छेद ५८ संख्या द्रष्टव्य।

स्वराज्य लक्ष्मी का अर्थ—

**निज-चिच्छक्तये कृष्ण नित्य विराजमान।**
**चिच्छक्ति-सम्पत्तिर 'षड़ेश्वर्य' नाम॥९६॥**

**९६। प॰ अनु॰—**अब श्रीमन्महाप्रभु 'स्वयन्त्व-साम्यतिशय' श्लोक के 'स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्त-कामः'—इस अंश का अर्थ कर रहे हैं। श्रीकृष्ण निज चिद्-शक्ति (स्वराज्य) में नित्य विराजमान रहते हैं। श्रीकृष्ण की चिद्-शक्ति की सम्पत्ति (स्वाराज्यलक्ष्मी) का नाम षड्-ऐश्वर्य है।

**अनुभाष्य**

९६। कृष्ण—स्वाराज्यलक्ष्मीरूप अपनी चित् शक्ति से युक्त होकर नित्य विराजमान हैं। भगवान् की चित् शक्ति-सम्पत्ति को ही 'षड़ऐश्वर्य' कहते हैं। चिच्छक्ति-चिद् शक्तिमद् विग्रह कृष्ण की निजशक्ति और सेविका हैं।

वे—कृष्णसेविका—

**सेइ स्वाराज्यलक्ष्मी करे नित्य पूर्णकाम।**
**अतएव वेदे कहे 'स्वयं भगवान्'॥९७॥**

**९७। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण की षड्ऐश्वर्यरूपी वह स्वाराज्यलक्ष्मी ही (चिद् शक्ति अपने वैभव के द्वारा) नित्य श्रीकृष्ण की कामनाओं की पूर्त्ति करती है। श्रीकृष्ण की कामना को पूर्ण करने के लिये चिद्-शक्ति को अन्य किसी की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती—श्रीकृष्ण अपनी शक्ति के द्वारा ही अपनी कामनाओं को पूर्ण करते हैं, इसलिए वेद श्रीकृष्ण को स्वयं भगवान् कहते हैं।

कृष्ण का ऐश्वर्य—अगाध अमृत का समुद्र—

**कृष्णेर ऐश्वर्य—अपार अमृतेर सिन्धु।**
**अवगहिते नारि' तार छुँइलु एक बिन्दु॥''९८॥**

**९८। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—हे सनातन! श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य अपार अमृत का सिन्धु है। मैं उसमें अवगाहन (डुबकी लगाके स्नान) नहीं कर सकता हूँ, मैंने केवल उसकी एक बूँद को ही स्पर्श किया है।

ऐश्वर्य-माधुरी का वर्णन करते हुए प्रभु में
कृष्ण-विग्रह की माधुरी की स्फूर्ति—

**ऐश्वर्य कहिते प्रभुर कृष्ण स्फूर्त्ति हैल।**
**माधुर्ये मजिल मन, एक श्लोक पड़िल॥९९॥**

**९९। प॰ अनु॰—श्रीकृष्ण के** ऐश्वर्य का वर्णन करते-करते श्रीमन्महाप्रभु को कृष्ण के माधुर्य की स्फूर्ति हो आयी। उनका मन श्रीकृष्ण के माधुर्य में रम गया तथा उन्होंने निम्नलिखित एक श्लोक का उच्चारण किया—।

अपनी नर-लीला के उपयुक्त अलौकिक
लीला-माधुर्य से कृष्ण स्वयं ही मुग्ध—
श्रीमद्भागवत (३/२/१२) में—

**''यन्मर्त्त्यलीलोपयिकं स्वयोगमाया-**
**बलं दर्शयता गृहीतम्।**
**विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः**
**परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्॥१००॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१००।** उद्धव ने विदुरजी से कहा—वही श्रीकृष्ण मूर्त्ति अपनी चिद्-शक्ति का बल प्रदर्शित कराने की इच्छा से मर्त्त्यलीला के उपयोगी, स्वयं में भी विस्मय उत्पन्न कर देने वाले एवं समस्त सौभाग्य-ऋद्धि के परमपद (पराकाष्ठा) और समस्त भूषणोंको भूषित करने में समर्थ है।

**अनुभाष्य**

१००। श्री कृष्ण की अप्रकट अवस्था में श्रील उद्धव उनके विरह में शोक से कातर होकर श्रीविदुर के निकट श्रीकृष्ण के अतुल रूप-माधुर्य का कीर्त्तन कर रहे हैं—

यत् (बिम्ब) मर्त्त्यलीलौपयिकं (मर्त्त्यलीला-सुऊपयिकं योग्यं नराकार) स्वयोग मायाबलं (निजचिच्छक्तेः वीर्य) दर्शयता (प्रकाशयता) भागवता (स्वयं) गृहीतं (स्वीकृत) स्वस्य च (आत्मनः अपि) विस्मापनं (विस्मयजनक) सौभगर्द्धेः (सौभाग्या-तिशयस्य) परं पदं (पराकाष्ठा, प्रतिष्ठा) भूषण भूषणाङ्गं (भूषणाङ्गं भूषणानि अङ्गानि यस्मिन् तत् स्वबिम्बं प्रदर्श्य अन्तरधात् इति पूर्वेणान्वयः)।

दो भुजाओं वाला चिरकिशोर मुरलीधर-विग्रह—
यथा रागः,

**कृष्णेर जतेक खेला, सर्वोत्तम-नरलीला,**
**नरवपु ताहार स्वरूप।**
**गोपवेश, वेणुकर, नवकिशोर, नटवर,**
**नरलीलार हय अनुरूप॥१०१॥**

**१०१। प० अनु०—**अब श्रीमन्महाप्रभु स्व-उच्चारित श्लोक के 'यन्मर्त्त्यलीलोपयिकं' शब्द का अर्थ कर रहे हैं—श्रीकृष्ण की जितनी भी लीलाएँ हैं, उन सबमें से सर्वोत्तम नरवत् लीला ही है। श्रीकृष्ण का अनादिसिद्ध निज-स्वरूप ही नराकृति है। उनका गोप वेश, हाथ में वेणु धारण करना, नव किशोर वयस, नटवर रूप नरलीला के अनुरूप (यन्मर्त्त्यलीलोपयिक) ही होता है।

**अनुभाष्य**

१०१। कृष्ण की गोकुल-लीला, वासुदेव-सङ्कर्षणादि परव्योम-लीला, कारणार्णवशायी आदि पुरुषावतार लीला, मत्स्य-कूर्म आदि नैमित्तिक अवतार लीला, ब्रह्मा-शिव आदि गुणावतार लीला, पृथु व्यास आदि आवेशावतार लीला, सविशेष परमात्मादि लीला, निर्विशेष ब्रह्म आदि अनन्त क्रीड़ामय भगवान् की लीलाओं में से तारतम्य (श्रेष्ठ और निम्न) के विचार से कृष्ण की नरलीला ही सर्वश्रेष्ठ है। कृष्ण का स्वरूप—नरवपु, गोपवेश, वेणुधारी, नवकिशोर और नटवर है। कृष्ण का स्वरूप—नरलीला के समान है, किन्तु हेय (घृणित), मर्त्त्य, अनित्य, अनुपादेय, ससीम, अविच्छिन्न अथवा परिच्छिन्न इत्यादि जागतिक मल से युक्त नहीं है।

कृष्ण के श्रीविग्रह की माधुरी का वर्णन; कृष्ण का रूप—सभी को आकर्षित करने वाला—

**कृष्णेर मधुर रूप, शुन, सनातन।**
**जे रूपेर एक कण, डुबाय जे त्रिभुवन,**
**सर्व प्राणी करे आकर्षण॥१०२॥ध्रु॥**

**१०२। प० अनु०—**हे सनातन, श्रीकृष्ण के जिस रूप का एक कण त्रिभुवन को डुबो देता है तथा समस्त प्राणियों को आकर्षित करता है, तुम श्रीकृष्ण के उसी मधुर रूप के विषय में सुनो।

**अनुभाष्य**

१०२। कृष्ण के मधुर रूप का एक कण गोकुल, मथुरा और द्वारका,—इन तीन भुवनों को, अथवा अन्तःपुर गोलोक वृन्दावन, मध्यमावास परव्योम और बाह्यावास देवीधाम,—इस त्रिभुवन को डुबो देने में समर्थ है एवं उन तीनों लोकों के प्राणियों को अपनी रूपमाधुरी से आकर्षित करता है।

नित्यलीला प्रकट करने में योगमाया
के प्रभाव का प्रदर्शन—

**योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्धसत्त्व-परिणति,**
**तार शक्ति लोके देखाइते।**
**एइ रूप-रतन, भक्तगणेर गूढ़धन,**
**प्रकट कैला नित्यलीला हैते॥१०३॥**

**१०३। प० अनु०—**अब श्रीमन्महाप्रभु स्व-उच्चारित श्लोक के 'स्वयोगमायाबलं दर्शयता' अंश का अर्थ कर रहे हैं—विशुद्ध सत्त्व ही जिसकी परिणति अथवा वृत्तिविशेष है, उस चिद्-शक्ति योगमाया की शक्ति को लोगों को दिखलाने के लिये ही श्रीकृष्ण ने भक्तों के गूढ़ (गोपनीय) धन स्वरूप अपने असमोर्द्ध एवं सर्वचित्ताकर्षक रूप रत्न को नित्यलीला से इस जगत् में प्रकाशित किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०३। श्रीकृष्णमूर्त्ति—उनकी चिद्-शक्ति-नामक योगमाया के सन्धिनीगत विशुद्ध सत्त्व-तत्त्व का परिणाम-स्वरूप है।

**अनुभाष्य**

१०३। परव्योम आदि में विशुद्ध सत्व की परिणति रूपा चित्शक्ति योगमाया का वास नहीं है। उस योगमाया के अपूर्व असामान्य शक्ति के कार्य को दिखलाने के लिये ही भगवान् ने भक्तों के लिये अत्यन्त गोपनीय और आदरणीय रत्न स्वरूप नित्यलीला गोलोक से प्रपञ्च में प्रकटित की।

अपने रूप का भोग करने के लिये
स्वयं की ही तीव्र आङ्काक्षा—

**रूप देखि' आपनार, कृष्णेर हैल चमत्कार,**
**आस्वादिते मने उठे काम।**
**'स्वसौभाग्य' जाँर नाम, सौन्दर्यादि-गुणग्राम,**
**एइरूप नित्य तार धाम॥१०४॥**

**१०४। प० अनु०—**अब श्रीमन्महाप्रभु पहले स्व-उच्चारित श्लोक के 'विस्मापनं च स्वस्य' तथा फिर 'सौभगर्द्धेः परं पदं' अंश का अर्थ कर रहे हैं—अपने ही रूप को देखकर श्री कृष्ण चमत्कृत हो उठे तथा उनके मन में उस रूप का आस्वादन करने की कामना जागृत हो उठी। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य आदि गुण जिनका नाम 'स्व-सौभाग्य' है, यह श्रीकृष्ण-स्वरूप उन सबका नित्य आश्रय है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०४। सौन्दर्य आदि गुण समूह जिस चित्-तत्त्व का परम सौभाग्य है, वह इस कृष्ण रूप में नित्य वास करता है।

**अनुभाष्य**

१०४। कृष्णरूप की असामान्य चमत्कारिता ऐसी है कि वह स्वयं कृष्ण में ही विस्मय उत्पन्न करती है एवं उसे आस्वादन करने के लिये कृष्ण की उत्कण्ठा ही वर्द्धित होती है। समग्र सौन्दर्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य, यश और वैराग्यात्मक छः प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण निज-सौभाग्य-अतिशय कृष्ण में ही नित्य अवस्थित है।

गोलोक के आश्रयवर्ग विषय के रूप से मुग्ध और
आकृष्ट—

**भूषणेर भूषण अङ्ग, ताँहे ललित त्रिभङ्ग,**
**ताहार उपर-भ्रूधनु-नर्तन।**
**तेरछे नेत्रान्त बाण, तार दृढ़ सन्धान,**
**बिन्धे राधा-गोपीगण-मन॥१०५॥**

**१०५। प० अनु०—**अब श्रीमन्महाप्रभु स्व-उच्चारित श्लोक के 'भूषणभूषणाङ्गम' शब्द का अर्थ कर रहे है। अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१०५। **अलङ्कार—**अङ्गों के भूषण; किन्तु कृष्ण के अङ्गों की शोभा इतनी अपरूप (अद्भुत)

है कि जैसे कृष्ण के अङ्ग मानो अलङ्कारों के भी अलङ्कार हैं। वैसी अङ्गों की शोभा होने पर भी ललित-त्रिभङ्ग से तो मानो अधिक परिमाण में शोभा वर्द्धित हुई है। वैसा होने पर भी नेत्रों के ऊपरी भाग में धनुष जैसी भ्रू (भौंहे) नृत्य कर रही हैं। त्रियक (तिरछे) भाव से अपाङ्ग दृष्टि रूप बाण, भ्रू रूपी धनुष पर चढ़ाकर राधा एवं उनकी अनुगत गोपियों के मन को बिद्ध (घायल) करने के उद्‌देश्य से दृढ़ रूप में सन्धान कर रहे हैं।

कृष्ण के रूप के प्रति परव्योम के नारायण और लक्ष्मियाँ भी आकृष्ट—

**ब्रह्माण्डोपरि परव्योम, ताँहा जे स्वरूपगण,**
**ताँ-सबार बले हरे मन।**
**पतिव्रता-शिरोमणि, जाँरे कहे वेदवाणी,**
**आकर्षये सेइ लक्ष्मीगण॥१०६॥**

**१०६। प० अनु०—**अब श्रीमन्महाप्रभु स्व-उच्चारित श्लोक के 'विस्मापनं स्वस्यच' अंश क 'च' शब्द का अर्थ कर रहे हैं। अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१०६। कृष्ण का रूप इतना मनोरम है कि वह प्राकृत जगत के सभी प्राणी और देवताओं की बात तो दूर, ब्रह्माण्ड के ऊपर स्थित परव्योम में रहने वाले नारायण आदि कृष्ण स्वरूपों के मन को भी बलपूर्वक हरण करता है। वेदों में जिन लक्ष्मियों को एकमात्र 'पतिव्रता-शिरोमणि' कहा गया है, वे भी कृष्ण के सौन्दर्य से आकर्षित होकर कृष्ण के चरणकमलों की अभिलाषा करती हैं।

''राधाजी के साथ सुशोभित होने पर ही मदनमोहन''—

**चड़ि' गोपी-मनोरथे, मन्मथेर मन मथे,**
**नाम धरे 'मदन मोहन'।**
**जिनि' पञ्चशर-दर्प, स्वयं नवकन्दर्प,**
**रास करे लञा गोपीगण॥१०७॥**

**१०७। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१०७। कृष्ण गोपियों के अनुकूल चित्तवृत्तिरूप मनोरथ में चढ़कर उनके द्वारा अपनी सेवा स्वीकार करके कन्दर्प के मन का मथन करके 'मदन मोहन' के नाम से संज्ञित होते अर्थात् जाने जाते हैं। रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्शात्मक पाँच बाणों वाले मदन के 'अपने सौन्दर्य द्वारा नारी-विमोहन-रूप अहङ्कार' को पैरों के नीचे रौंदकर कृष्ण स्वयं नवकन्दर्प-(व्रज में अप्राकृत नवीन मदन) बनकर गोपियों के साथ रास में लीला करते हैं।

कृष्ण की वेणु की माधुरी का वर्णन—

**निज-सम सखा-सङ्गे, गोगण-चारण-रङ्गे,**
**वृन्दावने स्वच्छन्दे विहार।**
**जाँर वेणु-ध्वनि शुनि', स्थावर-जङ्गम-प्राणी,**
**पुलक, कम्प, अश्रु बहे धार॥१०८॥**

**१०८। प० अनु०—**वेश में, भूषा में, आयु में तथा व्यवहार आदि में श्रीकृष्ण अपने समान सखाओं के साथ गैयाओं को आनन्दपूर्वक चराते हुए वृन्दावन में स्वछन्द विहार करते हैं। श्रीकृष्ण की वेणु की ध्वनि को सुनकर स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी पुलकित हो जाते हैं, उनके अङ्गों में कम्पन होने लगता है तथा उनके नेत्रों से अश्रुओं की धारा बहने लगती है।

कृष्ण के रूप का वर्णन—

**मुक्ताहार—वकपाँति, इन्द्रधनु-पिच्छ तथि,**
**पीताम्बर—बिजली सञ्चार।**
**कृष्ण नव-जलधर, जगत-शस्य-उपर,**
**वरिषये लीलामृत-धार॥१०९॥**

**१०९। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१०९। कृष्ण के गलदेश (कंठ) में जो मुक्ता का हार है, वह सफेद बगुलों की श्रृंखला के समान है, कृष्ण के सिर पर जो मोर पंख है, वह इन्द्रधनुष के समान है एवं कृष्ण का पीताम्बर विद्युत के समान है। कृष्ण—मानो नवमेघ (नये-नये बादल) के समान हैं, और गोपियाँ—जैसे जगत् की फसल आदि के समान हैं। उस फसल के ऊपर मेघों के जल बरसने की भाँति कृष्ण अपनी लीलामृत-धारा का वर्षण करके उनमें जीवन का सञ्चार करते हैं। वर्षाकाल में बगुले उड़ते हैं, इन्द्र धनुष और बिजली भी दिखलायी देती है।

कृष्णमाधुर्यरूपी सर्वोत्कृष्ट भगवता एकमात्र भागवत में ही वर्णित—

**माधुर्य भगवता-सार, व्रजे कैल परचार,**
**ताहा शुक—व्यासेर नन्दन।**
**स्थाने स्थाने भागवते, वर्णियाछे जानाइते,**
**ताहा शुनि' नाचे भक्तगण॥''११०॥**

**११०। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य एवं अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११०। माधुर्य भगवता का सार है,—समग्र ऐश्वर्य, समग्र वीर्य, समग्र यश, समग्र (श्री) सौन्दर्य, समग्र ज्ञान, समग्र वैराग्य,—इन छः गुणों को 'भगवत्ता' कहते हैं; उनमें से समग्र श्री का नाम 'माधुर्य' है; वही छः प्रकार की भगवता का सार है; उसी का नामान्तर ही 'माधुर्य' है। श्रीकृष्ण-मूर्त्ति में माधुर्य प्रधान भगवता एवं नारायण आदि मूर्त्ति में ऐश्वर्यप्रधान भगवता है।

**अनुभाष्य**

११०। षड् ऐश्वर्य पूर्ण भगवान् की भगवता का सार ही माधुर्य है; यह माधुर्य व्रज में ही प्रचारित हुआ है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के पुत्र शुकदेव ने भक्तों के लिये भक्तहृदय को उन्माद ग्रस्त कर देने वाले उस माधुर्य के कण का श्रीमद्भागवत के स्थान-स्थान पर वर्णन किया है। [जिसके विषय में सुनकर भक्तगण नृत्य करते हैं।]

कृष्ण के गुण का वर्णन करते हुए प्रभु द्वारा गोपियों के सौभाग्य का वर्णन—

**कहिते कृष्णेर रसे, श्लोक पड़े प्रेमावेशे,**
**प्रेमे सनातन-हात धरि'।**
**गोपी-भाग्य, कृष्ण-गुण, जे करिल वरणन,**
**भावावेशे मथुरा-नागरी॥१११॥**

**१११। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१११। मथुरा वासिनी स्त्रियों ने गोपियों के असामान्य सौभाग्य और कृष्ण के अलौकिक गुणों का भावपूर्वक जिस प्रकार वर्णन किया है, श्रीगौरहरि ने 'कृष्णरस' का वर्णन करते हुए प्रेम से भरकर सनातन का हाथ पकड़कर प्रेमावेश में उस श्लोक का उच्चारण किया।

श्रीमद्भागवत (१०/४४/१४) में—

**''गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं**
**लावण्यसारमसमोर्द्धमनन्यसिद्धम्।**
**दृग्भिः पिवन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-**
**मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य॥११२॥**

११२। मथुरावासिनियों ने कहा,—आहा! गोपियों ने कौन-सी तपस्या की है कि श्री, ऐश्वर्य, एवं यशसमूह के एकान्त आश्रय, दुर्लभ, स्वतःसिद्ध, समानाधिक-रहित (जिसके समान और जिससे अधिक रूप कहीं नहीं है), लावण्य के सारस्वरूप इस श्रीकृष्णवदनामृत को वे नेत्रों के द्वारा निरन्तर पान करती हैं।

### अनुभाष्य

११२। आदि चतुर्थ परिच्छेद १५६ संख्या द्रष्टव्य है।

कृष्ण के तारुण्यामृत-सिन्धु की लावण्यामृत तरङ्ग में गोपियों का नित्य भासमान होना (तैरना)—

**तारुण्यामृत—पारापार, तरङ्ग—लावण्यसार,**
**ताते से आवर्त्त भावोद्गम।**
**वंशीध्वनि—चक्रवात, नारीर मन—तृणपात्,**
**ताहा डुबाय, ना हय उद्गम॥११३॥**

**११३। प॰ अनु॰—श्रीमन्महाप्रभु 'गोप्यस्तपः किमचरन्' इत्यादि श्लोक का अर्थ कर रहे हैं।** अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

११३। नित्य तरुण अवस्था रूप महासमुद्र की तरङ्ग की भाँति लावण्य का सार कृष्ण के शरीर में लक्षित होता है। उसमें भावों का उदय आवर्त्त अर्थात् भंवर एवं वंशीध्वनि—घूर्णीवायु (चक्रवात) है; ऐसी अवस्था में स्त्रियों का चित्त तिनकों की भाँति उसमें फंसकर उसके चक्र से निकल नहीं पाता।

### अनुभाष्य

११३। चक्रवात,—गोलाकार चक्र जैसी घूमती हुई वायु।

कृष्ण रूप रूपी अमृत के पान से गोपियाँ कृतकृतार्थ—

**सखि हे, कोन् तप कैल गोपीगण।**
**कृष्ण रूप-सुमाधुरी, पिबि' पिबि' नेत्र भरि',**
**श्लाध्य करे जन्म-तनु-मन॥११४॥ध्रु॥**

**११४। प॰ अनु॰—[श्रीकृष्ण के रूप को देखकर मथुरा की स्त्रियाँ परस्पर को सम्बोधन करके कह रही हैं— ]** हे सखि, गोपियों ने कौन सी तपस्या की है। जिसके फलस्वरूप वे श्री कृष्ण के रूप की अत्यधिक माधुरी को नेत्रों के द्वारा भर-भरकर पान कर के अपने जन्म-शरीर तथा मन को सफल बनाती हैं।

कृष्ण के रूप का माधुर्य—असमोर्द्ध, नारायण में भी उसका अभाव—

**जे माधुरीर उर्द्ध आन, नाहि जार समान,**
**परव्योमे स्वरूपेर गणे।**
**जिंहो सर्व-अवतारी, परव्योम-अधिकारी,**
**ए माधुर्य नाहि नारायणे॥११५॥**

**११५। प॰ अनु॰—[श्रीमन्महाप्रभु 'गोप्यस्तपः किमचरन्' श्लोक के 'असमोर्द्ध' इत्यादि शब्द का अर्थ कर रहे हैं]** जिस माधुरी से श्रेष्ठ तथा जिस माधुरी के समान परव्योम के अन्यान्य भगवद् स्वरूपों का तो कहना ही क्या, जो उन सबके अवतारी तथा परव्योम के अधिपति नारायण हैं—यह माधुरी उनमें भी नहीं है।

प्रमाण—नारायणी लक्ष्मी में भी कृष्ण के माधुर्य के प्रति लोभ—

**ताते साक्षी सेइ रमा, नारायणेर प्रियतमा,**
**पतिव्रतागणेर उपास्या।**
**तिंहो जे माधुर्यलोभे, छाड़ि' सब कामभोगे,**
**व्रत करि' करिला तपस्या॥११६॥**

**११६। प॰ अनु॰—[ परव्योम अधिपति नारायण में भी श्रीकृष्ण के समान माधुर्य नहीं है, श्रीमन्महाप्रभु इसी का प्रमाण दे रहे हैं— ]** इस विषय में पतिव्रता स्त्रियों की उपास्य नारायण की अत्यन्त प्रियतमा लक्ष्मी ही साक्षी है। उस लक्ष्मी ने श्रीकृष्ण के इसी माधुर्य के लोभ से सब प्रकार के काम-भोगों को छोड़कर व्रत धारण करके तपस्या की थी।

अन्यान्य प्रकाश-विग्रह में स्वेच्छा के अनुरूप
प्रयोजन के अनुसार अपने स्वतः सिद्ध
माधुर्य के अंश का प्रकटन—

**सेइ त' माधुर्य-सार, अन्य-सिद्धि नाहि तार,**
**तिंहो—माधुर्यादि-गुणखनि।**
**आर सब प्रकाशे, ताँर दत गुण भासे,**
**जाँहा जत प्रकाशे कार्य जानि॥११७॥**

**११७। प० अनु०—**[ अब श्रीमन्महाप्रभु 'गोप्य-स्तपः किमचरन्' श्लोक के 'अनन्यसिद्धम्' शब्द का अर्थ कर रहे हैं— ] अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११७। वह कृष्णमाधुर्य अनन्यसिद्ध अर्थात् स्वयं सिद्ध है, वह और किसी गुण [ **अथवा** अलङ्कार आदि ] के द्वारा सिद्ध नहीं होता। वह कृष्णमूर्त्ति अपने अन्य-अन्य प्रकाश में अर्थात् नारायण आदि मूर्त्ति में अपने प्रकाश के द्वारा जो-जो कार्य होगा, उसके अनुरूप ऐश्वर्य-वीर्य आदि गुण प्रकटित कराती है।

कृष्ण माधुर्य और गोपीप्रेम, दोनों ही
नित्य-नवनवायमान—

**गोपीभाव-दरपण, नव नव क्षणे क्षण,**
**तार आगे कृष्णेर माधुर्य।**
**दोंहे करे हुड़ाहुड़ि, बाड़े मुख नाहि मुड़ि,**
**नव नव दोंहार प्राचुर्य॥११८॥**

**११८। प० अनु०—**[ अब श्रीमन्महाप्रभु 'गोप्य-स्तपः किमचरन्' श्लोक के 'अनुसवाभिनव अर्थात् प्रतिक्षण नित्य-नवीन' शब्द का अर्थ कर रहे हैं— ] गोपियों का भाव उस दर्पण के समान है, जिसके आगे श्रीकृष्ण का माधुर्य क्षण-क्षण में नव-नवायमान रूप धारण करता है। गोपियों का भाव तथा श्रीकृष्ण का माधुर्य—दोनों में होड़ सी लग जाती है, दोनों ही वस्तुएँ बढ़ती जाती हैं, कोई भी मुख नहीं मोड़ता अर्थात् अपनी हार नहीं मानता, बल्कि दोनों ही नव-नवायमान होकर बढ़ते ही जाते हैं।

रागानुगा भक्ति के बिना कृष्ण का माधुर्य—सुदुर्लभ—

**कर्म, तप, योग, ज्ञान, विधि-भक्ति, जप, ध्यान,**
**इँहा हैते माधुर्य दुर्लभ।**
**केवल जे रागमार्गे, भजे कृष्णे अनुरागे,**
**तारे कृष्ण-माधुर्य सुलभ॥११९॥**

**११९। प० अनु०—**[ अब श्रीमन्महाप्रभु 'गोप्य-स्तपः किमचरन्' श्लोक के 'दुरापं' (दुर्लभ) शब्द का अर्थ कर रहे हैं— ] अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

११९। कर्म, तप, योग, ज्ञान, विधिभक्ति, जप, ध्यान आदि साधनों के द्वारा माधुर्य की प्राप्ति नहीं होती; कृष्ण माधुर्य केवल मात्र रागमार्ग से कृष्ण-नाम भजन में अनुराग युक्त व्यक्ति के लिये ही सहज प्राप्य है।

व्रज के स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन
से ही अन्यान्य भगवता—

**सेइरूप व्रजाश्रय, ऐश्वर्य-माधुर्यमय,**
**दिव्यगुणगण-रत्नालय।**
**आनेर वैभव-सत्ता, कृष्णदत भगवता,**
**कृष्ण—सर्व-अंशी, सर्वाश्रय॥१२०॥**

**१२०। प० अनु०—**[ अब श्रीमन्महाप्रभु 'गोप्य-स्तपः किमचरन्' श्लोक के 'एकान्त धाम यशसः श्रिय ईश्वरस्य' पद का अर्थ कर रहे हैं— ] पूर्ववर्णित श्रीकृष्ण रूप केवल व्रज में ही विद्यमान है। वह रूप ऐश्वर्य-माधुर्यमय तथा दिव्य गुण रूपी रत्नों का सागर रूपी आवास-स्थान है। अन्यान्य भगवद्-अवतारों का वैभव तथा भगवत्ता कृष्ण के द्वारा ही प्रदत्त है। श्रीकृष्ण सबके अंशी तथा सबके आश्रय हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२०। नारायण आदि की जो वैभव सत्ता है, उसे कृष्ण द्वारा प्रदत्त भगवता ही जानना।

कृष्ण—समस्त चिन्मय सद्‌गुणों के समाश्रय—

**श्री, लज्जा, दया, कीर्ति, धैर्य, वैशारदी मति,**
**एइ सब कृष्णे प्रतिष्ठित।**
**सुशील, मृदु, वदान्य, कृष्ण बिना नाहि अन्य,**
**कृष्ण करे जगतेर हित॥१२१॥**

**१२१। प॰ अनु॰—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२१। नारायण में श्री, लज्जा, दया, कीर्ति, धैर्य, वैशारदी (निपुण) मतिरूपी जो सब उज्ज्वल गुण समूह दिखलायी देते हैं, वह सब कृष्ण के द्वारा उनमें प्रतिष्ठित हुए हैं। किन्तु सुशीलता, मृदुता और वदान्यता—कृष्ण के अलावा और किसी भी प्रकाश में दिखलायी नहीं पड़ती। [ श्रीकृष्ण ही जगत् का हित करते हैं। ]

कृष्ण के रूप-माधुर्य के पान में अनिमेष (पलकों के बिना) चक्षुओं की आकाङ्क्षा—

**कृष्ण देखि' जत जन, कैल निमिषे निन्दन,**
**व्रजे विधि निन्दे गोपीगण।''**
**सेइ सब श्लोक पड़ि', महाप्रभु अर्थ करि',**
**सुखे माधुर्य करे आस्वादन॥१२२॥**

**१२२। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण के रूप माधुर्य को देखकर अनेक लोगों ने अपनी पलकों के झपकने की निन्दा की है। व्रज में गोपियों ने तो पलकों को बनाने वाले विधाता तक की भी निन्दा की है। श्रीमन्महाप्रभु उन सब श्लोकों को उच्चारण करके तथा उनके अर्थों को प्रकाशित करके आनन्दपूर्वक श्रीकृष्ण के माधुर्य का आस्वादन करने लगे।

**अनुभाष्य**

१२२। निमिषे निन्दन,—नेत्रों के आवरण-पत्र को 'पक्ष्म' कहते हैं, वह नेत्रों के ऊपर लगाने के कारण देखने में बाधा होने के कारण निन्दनीय है।

कृष्ण के मुखकमल के मधु का पान करने से जड़ वस्तु की भाँति तृप्ति नहीं ; गोपियों के प्रतिक्षण में आनन्द रूपी समुद्र की वृद्धि—
श्रीमद्भागवत (९/२४/६५) में—

**''यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-**
**भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम्।**
**नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिवन्त्यो**
**नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च॥१२३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२३। जिन (श्रीकृष्ण) का मुखचन्द्र, मकर-कुण्डल से सुशोभित कर्ण, शोभायमान कपोल (गाल), सौन्दर्य, विलासपूर्ण मुस्कराहट,—इन सब नित्य उत्सवों को नेत्रों द्वारा पान करके नर-नारी परमान्दित होते थे एवं दर्शन के बाधक नेत्रों के निमेष (पलकों) के प्रति क्रोधित होते थे।

**अनुभाष्य**

१२३। श्रील शुकदेव महाराज परीक्षित को यदुवंश का वर्णन करते-करते श्रीकृष्ण के अवतारों के उद्देश्य और उनके सर्वलोक-मनोहर अतुल सुन्दर रूप-माधुर्य का वर्णन कर रहे हैं—

यस्य (कृष्णस्य) मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्-कपोल सुभगं (मकरकुण्डलाभ्यां चारु शोभितौ कर्णौ ताभ्यां भ्राजन्तौ समुज्ज्वलौ यौ कपोलौ गण्डदेशौ, ताभ्यां सुभगं कमनीय) सविलासहासं (सविलासः सलीलः हासः यस्मिन् तत्) नित्योत्सवम् (नित्यम् उत्सवः आनन्दः यस्मिन् तत्) आननं (मुख-पद्मं) नार्यः नराः दृशिभिः (नेत्रैः) पिवन्त्यः (अपि) न तु ततृपुः (तृप्ताः; निमेषोन्मेषमात्रव्यवधानमप्य-

सहमानास्तत्कर्त्तुः) निमेः (विधातुः) कुपिताः (क्रुधाः च बभूवुः)।

श्रीमद्भागवत (१०/३१/१५) में—

**अटति यद्भवानह्नि काननं**
**त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।**
**कुटिलकुन्तलं श्रीमुखञ्च ते**
**जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम्॥१२४॥**

१२४। गोपियों ने कहा,—हे कृष्ण, तुम दिन में जब वन में चले जाते हो, तब तुम्हारें कुटिल-कुन्तल-युक्त श्रीमुख को न देखकर हमारा एक-एक त्रुटि-काल भी युग के समान हो जाता है। तुम्हारे श्रीमुख के दर्शक जो हमारे चक्षु हैं, उसमें जिस विधाता ने पलकों का सृजन किया, उसे हम निर्बोध मानती हैं।

**अनुभाष्य**

१२४। आदि चतुर्थ परिच्छेद १५३ संख्या द्रष्टव्य है।

कामगायत्री—साक्षात् कृष्ण विग्रह, एक एक अक्षर—एक-एक अङ्ग-प्रत्यङ्ग—

**यथा रागः,**
**कामगायत्री-मन्त्ररूप, हय कृष्णेर स्वरूप,**
**सार्द्ध-चब्बिश अक्षर तार हय।**
**से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्ण करि' उदय,**
**त्रिजगत कैला काममय॥१२५॥**

**१२५। प० अनु०—**[ अब श्रीमन्महाप्रभु पूर्वोक्त—'यस्याननं मकरकुण्डलं' एवं 'अटति यद्भवानह्नि'—दो श्लोकों के अर्थ का आस्वादन करने के लिये कामगायत्री के स्वरूप को प्रकाशित कर रहे हैं— ] मन्त्ररूपी काम गायत्री कृष्ण का स्वरूप है। उसमें कुल मिलाकर साढ़े चौबीस अक्षर हैं। उन साढ़े चौबीस अक्षरों ने चन्द्रों के समान बनकर कृष्ण को उदित कराके त्रिभुवन को काममय (श्रीकृष्ण-कामनामय) बना दिया है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२५। कामगायत्री मन्त्र—कृष्णस्वरूप है। कामबीज को अर्द्ध (आधा) अक्षर मानने से उसमें साढ़े चौबीस अक्षर होते हैं।

**अनुभाष्य**

१२५। कामगायत्री,—मध्य अष्टम परिच्छेद १३७ संख्या द्रष्टव्य है। कामगायत्री के साढ़े चौबीस अक्षर ही कृष्ण के अङ्ग में साढ़े चौबीस चन्द्र जैसे हैं एवं वे-कृष्णस्वरूप हैं, क्योंकि वे—सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन नामक तीन तत्त्वों से समन्वित हैं।

कृष्ण के साढ़े चौबीस अङ्ग-चन्द्र के ऊपर श्रीमुखचन्द्र का राजत्व—

**सखि हे, कृष्ण मुख—द्विजराज-राज।**
**कृष्णवपु-सिंहासने, बसि' राज्य-शासने,**
**करे सङ्गे चन्द्रेर समाज॥१२६॥ध्रु.॥**

**१२६। प० अनु०—[ श्रीमन्महाप्रभु श्रील सनातन गोस्वामी को साढ़े चौबीस चन्द्रों में से सर्वप्रथम मुखचन्द्र के विषय में बतला रहे हैं— ]** हे सखि, श्रीकृष्ण का मुख चन्द्र अन्यान्य सभी चन्द्रों का भी राजा है। वह कृष्ण के शरीर रूपी सिंहासन पर बैठकर चन्द्र के समाज को लेकर राज्य पर शासन करता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२६। द्विजराज-राज—चन्द्र का राजा। वह कृष्णमुखचन्द्र राजा बनकर, कृष्ण शरीर रूपी सिंहासन में बैठकर, (अङ्ग-प्रत्यङ्ग आदि) चन्द्र का समाज लेकर माधुर्य रूपी राज्य पर शासन कर रहा है। कहाँ कौन सा चन्द्र है, वह बाद में बतलाया जा रहा है।

**दुइ गण्ड सुचिक्कण, जिनि' मणि-सुदर्पण,**
**सेइ दुइ पूर्णचन्द्र जानि।**
**ललाटे अष्टमी-इन्दु, ताहाते चन्दन-बिन्दु,**
**सेह एक पूर्णचन्द्र मानि॥१२७॥**
**करनख-चान्देर ठाट, वंशी-उपर करे नाट,**
**तार गीत मुरलीर तान।**
**पदनख-चन्द्रगण, तले करे नर्त्तन,**
**नूपुरेर ध्वनि जार गान॥१२८॥**

**१२७-१२८। प० अनु०—**मणियों से बने सुदर्पण की शोभा को भी तिरस्कृत कर देने वाले श्रीकृष्ण के दो अत्यन्त उज्ज्वल कपोल दो पूर्ण चन्द्र हैं। ललाट पर अष्टमी का चन्द्र अर्द्धचन्द्र तथा उसमें चन्दन का बिन्दु एक पूर्णचन्द्र के समान है। हाथों के नख रूपी चन्द्र आनन्दपूर्वक वंशी के ऊपर नृत्य करते हैं, उनका गीत ही मुरली की तान छेड़ता है। चरणों के नख रूपी चन्द्र पृथ्वी पर नृत्य करते हैं, नुपूर की ध्वनि ही उनका गान है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२७। अष्टमी-इन्दु—अर्द्धचन्द्र।

**अनुभाष्य**

१२६-१२८। कृष्णमुखमण्डल चन्द्र ही चन्द्रराज है; १) मुखचन्द्र २) वामगण्डचन्द्र (बायाँ कपोल चन्द्र) ३) दक्षिणगण्डचन्द्र (दाँया कपोल चन्द्र), (४) चन्दनबिन्दुचन्द्र, (५-१४) करनख चन्द्र, (१५-२४) पद नखचन्द्र, (२४ १/२) ललाट का अर्द्धचन्द्र;—ये २४१/२ (साढ़े चौबीस चन्द्र का समाज लेकर कृष्ण मुख चन्द्र रूपी राजा, कृष्ण देह रूपी सिंहासन पर बैठकर राजत्व कर रहा है।

**अनुभाष्य**

१२८। ठाट,—स्थिति; नाट,—नाट्य।

विलास में मत्त क्षत्रिय की भाँति कृष्णमुखकमल—
गोपियों के चित्त को बींध देने वाला—

**नाचे मकर-कुण्डल, नेत्र—लीला-कमल,**
**विलासी राजा सतत नाचाय।**
**भ्रू धनु, नेत्र—बाण, धनुर्गुण—दुई काण,**
**नारीमन-लक्ष्य बिन्धे ताय॥१२९॥**

**१२९। प० अनु०—**[ अब श्रीमन्महाप्रभु पूर्वोक्त 'यस्यानन-मकरकुण्डल चारुवर्ण' इत्यादि अंश का अर्थ कर रहे हैं। ] अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१२९। कृष्णमुखचन्द्र—विलासी राजा; वह मुखचन्द्र मकरकुण्डल और नेत्रकमल को सदैव नृत्य कराता है। भौंहे—धनुष के समान हैं, नेत्र उसके बाण हैं; दोनों कान—धनुष की रस्सी से बंधे हुए हैं; कानों तक विस्तृत नेत्रों के द्वारा कृष्ण गोपस्त्रियों के मन रूपी लक्ष्य वस्तु को बिद्ध करते हैं।

महावदान्य रूप में सभी को अङ्ग-चन्द्र
से अमृत का वितरण—

**एइ चान्देर बड़ नाट, पसारि' चान्देर हाट,**
**बिनि-मूले बिलाय निजामृत।**
**काँहो स्मित-ज्योत्स्नामृते, काँहारे अधरामृते,**
**सब लोक करे आप्यायित॥१३०॥**

**१३०। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१३०। कृष्ण मुखचन्द्र का नाट्य सभी को ही अतिक्रम करता है एवं अन्य साढ़े तेईस चन्द्र रूपी पण्य द्रव्य के द्वारा हाट (बाजार) का विस्तार करके अपने अमृत को बिना मूल्य के वितरण करता है। किसी खरीददार को मधुर

हास्य रूपी ज्योत्सनामृत के द्वारा, किसी खरीददार को अधरामृत के द्वारा एवं अन्यान्य खरीददारों को किसी ओर प्रकार से आप्यायित (सन्तुष्ट) करता है।

कामक्रीड़ा में मत्त मुखचन्द्र रूपी
राजा के मन्त्री और प्रमोदविलास-
भवन आदि का वर्णन—

**विपुलायतारुण, मदन-मद-घूर्णन,**
**मन्त्री जार ए दुइ नयन।**
**लावण्य—केलि-सदन, जन-नेत्र-रसायन,**
**सुखमय गोविन्द-वदन॥१३१॥**

**१३१। प॰ अनु॰—**विपुल आकर्ण विस्तृत अरुण वर्ण स्वरूप दो नयन—उस कृष्ण मुख रूपी राजा के मन्त्री है, वे मदन के मद को नष्ट करते हैं। सुखमय श्रीगोविन्द के मुखकमल का लावण्य लीला का वासस्थान है तथा वह सभी जनों के नेत्रों के रसायन स्वरूप है अर्थात् उनके नेत्रों के समस्त सन्ताप दूर हो जाते हैं तथा नेत्र अपूर्व तृप्ति की प्राप्ति करते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३१। अत्यधिक विस्तृत अरुणवर्ण-स्वरूप दो नयन—उन कृष्णमुखरूपी राजा के मन्त्री हैं, वे मदन के मद को नष्ट करते हैं।

कृष्णमुखचन्द्र के दर्शन से गोपियों की
नवनवायमान, नित्य वर्द्धित होने वाली,
परम चमत्कारमयी चिन्मयी अतृप्ति,
उसके लिये विधि की निन्दा—

**जाँर पुण्यपुञ्ज-फले, से-मुख-दर्शन मिले,**
**दुइ आँखि कि करिबे पाने?**
**द्विगुण बाड़े तृष्णा-लोभ, पिते नारे—मनःक्षोभ,**
**दुःखे करे विधिर निन्दने॥१३२॥**

**१३२। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३२। दुई आँखि कि करिबे पाने (दो नेत्र क्या पान करेंगे) दर्शक के दो नेत्र किस प्रकार उस अमृत समुद्र का पान कर सकते हैं?

**अनुभाष्य**

१३२। भक्ति को उत्पन्न करने वाले अनुष्ठान से ही भक्ति-उन्मुखी 'सुकृति' उत्पन्न होती है। देखने वाले व्यक्ति के दो नेत्रों के द्वारा ऐसे कृष्णमुख का कितना पान करना सम्भव होता है? उसकी तृष्णा और लोभ दो गुणा वर्द्धित होने पर भी अभीप्सित (अभिलषित) परिमाण के अनुसार पान नहीं कर पाने से क्षुब्ध होता है; द्रष्टा तब दुःखी चित्त से अपने सृष्टिकर्त्ता को दोष देता है।

विधि—कृष्णमाधुरी-रस को नहीं जानने वाली—

**ना दिलेक लक्ष-कोटि, सबे दिला आँखि दुटि,**
**ताते दिला निमिष-आच्छादन।**
**विधि—जड़ तपोधन, रसशून्य तार मन,**
**नाहि जाने योग्य सृजन॥१३३॥**

**१३३। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१३३। अतृप्त द्रष्टा तब खेद-पूर्वक कहता है, 'मेरे लाख-करोड़ नेत्र नहीं है, केवलमात्र दो ही हैं, वे भी पुनः पाता से ढ़के हुए है; बीच-बीच में जब थोड़ी देरी के लिये पलकें गिरती है, उस समय भी पुनः कृष्ण-दर्शन में बाधा होती है। इसलिए शरीर को बनाने वाला सृष्टिकर्त्ता—अत्यन्त निर्बोध (अज्ञानी) एवं कृष्ण के दर्शन रूपी सेवा को छोड़कर तुच्छ तपस्या में रत होने के कारण बिल्कुल भी 'रसज्ञ' नहीं है, सृष्टि आदि शुष्क कार्यों को ही करने वाला है—कहाँ किस प्रकार का विधान करना उचित है, इस विषय में सम्पूर्ण रूप से अनभिज्ञ (अनजान) है।

विधि को परामर्श और
उपदेश-प्रदान—

**जे देखिबे कृष्णानन, तार करे द्वि-नयन,**
**विधि हञा हेन अविचार।**
**मोर यदि बोल धरे, कोटी आँखि तार करे,**
**तबे जानि योग्य सृष्टि तार॥१३४॥**

**१३४। प॰ अनु॰**—जो श्रीकृष्ण के मुख के दर्शन करेगा, विधि विचारहीन होकर उसे भी केवल दो ही नेत्र प्रदान करती है। तदुपरान्त अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१३४। मेरे परामर्श को ग्रहण करके, कृष्णमुख देखने वाले द्रष्टा को करोड़ों नेत्र प्रदान करने से ही मैं विधाता को सृष्टि करने के विषय में योग्य समझती।

कृष्ण की अङ्ग-माधुरी, मुख-माधुरी
और हास्य-माधुरी में गोपीभावान्वित
प्रभु का लोभ—

**कृष्णाङ्ग-माधुर्य—सिन्धु, सुमधुर मुख इन्दु,**
**अति-मधु स्मित—सुकिरणे।**
**ए तिने लागिल मन, लोभे करे आस्वादन,**
**श्लोक पड़े, स्वहस्त-चालने॥१३५॥**

**१३५। प॰ अनु॰**—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३५। **ए-तिने लागिल मन**—कृष्ण के अङ्गों का माधुर्य-मानो समुद्र हो, उनका सुमधुर मुख—मानो समुद्र में से उठा चन्द्र हो, एवं उनकी अत्यधिक मधुर मुस्कुराहट—मानो उस चन्द्र की किरण हो—इन तीनों में मन लग गया।

**अनुभाष्य**

१३५। साधारणतः प्रथम-दृष्टि में ही कृष्ण के अङ्ग रूपी माधुर्य समुद्र का दर्शन, विशेष द्वितीय-दृष्टि में अङ्ग-सिन्धु में स्थित सुमधुर मुखचन्द्र एवं सविशेष तृतीय दर्शन में मधुर से भी अधिक मधुर मृदुहास्य रूपी मुखचन्द्र की किरण—इन तीनों का माधुर्य प्रभु के श्लोक के उच्चारण के समय क्रमशः उदित होने लगा एवं प्रभु के द्वारा अपने हाथ को हिलाने रूपी विकार दिखलायी दिया।

गोपियों के लिये कृष्ण के अङ्ग, कृष्ण का मुख
और कृष्ण की हास्य-माधुरी का तारतम्य—
श्रीकृष्णकर्णामृत (९२) में विल्वमङ्गलवाक्य—

**मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो-**
**र्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।**
**मधुगन्धि-मृदुस्मितमेतदहो**
**मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥१३६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३६। इन कृष्ण का शरीर—मधुर, इनका मुख—उससे भी मधुर और इनका मधुगन्धि मृदुहास्य और भी मधुर है; अहो! इनका सबकुछ ही मधुर है।

**अनुभाष्य**

१३६। अस्य विभोः (कृष्णस्य) वपुः (मूर्त्तिः अङ्गं वा) मधुरं मधुरं (तादृश-स्वयं रूपेतर-सर्व-विग्रहाणां रूप-तारतम्येन अतिमधुरम्); (कृष्णस्य) वदनं (च) मधुरं मधुरं मधुरं (कृष्णाङ्ग-तारतम्येन अतितरं मधुरम्); अहो, एतत् मधुगन्धि (मधु-सुरभि-युक्त) मृदु स्मितं (मन्दहास्यं च) मधुरं मधुरं मधुरं मधुरं (कृष्णदेह-कृष्णमुख-तारतम्येन अतितमं मधुरम्)।

गोपी भाव में निमग्न प्रभु की कृष्ण के माधुर्य के
आस्वादन में नित्य बढ़ने वाली अतृप्ति—

**[ यथा रागः ]**
**सनातन, कृष्णमाधुर्य—अमृतेर सिन्धु।**
**मोर मन—सन्निपाति, सब पिते करे मति,**
**दुर्दैव, वैद्य ना देय एक बिन्दु॥१३७॥ध्रु॥**

**१३७। प॰ अनु॰—श्रीमन्महाप्रभु उपरोक्त 'मधुरं मधुरं' श्लोक का अर्थ करते हुए कहने लगे—**हे सनातन! कृष्ण का माधुर्य अमृत का सिन्धु है। मेरा मन सन्निपात रोग से ग्रस्त होने के कारण उनके सम्पूर्ण रूप का पान करने की इच्छा करता है। किन्तु मेरा ऐसा दुर्दैव है कि वैद्य मुझे उसकी एक बूँद भी नहीं देता।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३७। धातु (कफ, वात और पित्त) में त्रिदोष के उत्पन्न होने पर उसे 'सन्निपात' कहते हैं। मेरा मन जब, कृष्ण के अङ्ग के माधुर्य, कृष्ण के मुख के माधुर्य और कृष्ण की मुस्कराहट के माधुर्य—इन तीनों का आघात (चोट) खाकर पीड़ित हो गया है, तब मेरा मन सन्निपात रोग से ही पीड़ित हुआ है इसमें सन्देह नहीं। वह उस-उस सौन्दर्य समुद्र के प्रति पिपासु होकर दौड़ रहा है। साधारण सन्निपात रोग के वैध जिस प्रकार रोगी को एक बूँद भी जल का पान नहीं करने देते, उसी प्रकार मेरे इस रोग के वैद्य कृष्ण के अतिरिक्त और कोई नहीं होने पर भी वे अपने सौन्दर्यामृत-समुद्र की एक बूँद को भी मुझे पान नहीं करने देते—यही दुःख (दुर्दैव, दुर्भाग्य) है।

**अनुभाष्य**

१३७। विप्रलम्भ-रस में गोपीभाव में विभावित प्रभु के कृष्ण माधुर्य-आस्वादन की प्यास इतनी तीव्र है कि वे अपार कृष्ण माधुर्य का आस्वादन करके भी अप्राकृत परम चमत्कार पूर्ण उत्तरोत्तर वर्द्धनशील अतृप्तभाव वशतः प्रबल आवेग और उत्कण्ठा वशतः सामान्य परिमाण में भी कृष्ण के माधुर्य का आस्वादन नहीं कर पा रहे हैं, ऐसा कहकर खेद और आक्षेप कर रहे हैं।

कृष्ण के अङ्ग—मधुर, कृष्ण का मुख—मधुरतर,
कृष्ण का हास्य—मधुरतम—

**कृष्णाङ्ग—लावण्यपूर, मधुर हैते सुमधुर,**
**ताते जेइ मुख सुधाकर।**
**मधुर हैते सुमधुर, ताहा हैते सुमधुर,**
**ताँर जेइ स्मित ज्योत्सना-भर॥१३८॥**

**१३८। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण का कलेवर तो लावण्य का समुद्र है, मधुर से भी सुमधुर है। उसमें जो मुखचन्द्र है, वह तो उससे भी अधिक मधुर से भी सुमधुर है, उस मुखचन्द्र में मन्दस्मित (मुस्कान रूपी) चाँदनी छिटक रही है वह तो उस मुख चन्द्र से भी सुमधुर है।

**अनुभाष्य**

१३८। **तार (उनका)**,—कृष्णमुखचन्द्र का; कृष्ण के मुख पर मन्द-मुस्कराहट—मानो गोपियों को आनन्द प्रदान करने वाली चन्द्रिका का पूर्ण आलोक (प्रकाश) हो।

समग्र त्रिभुवन ही—उस हास्य
की चन्द्रिका के आलोक में स्नात—

**मधुर हैते सुमधुर, ताहा हैते सुमधुर,**
**ताहा हैते अति सुमधुर।**
**आपनार एक कणे, व्यापे सब त्रिभुवने,**
**दशदिक् व्यापे जार पूर॥१३९॥**

**१३९। प॰ अनु॰—**वह मन्द मुस्कान मधुर से भी सुमधुर, उससे भी सुमधुर, उससे भी अत्यधिक सुमधुर है। अपने केवल मात्र एक ही कण से सम्पूर्ण त्रिभुवनों में व्याप्त होकर दशों-दिशाओं को अपने आलोक से स्नात कर देती है।

**अनुभाष्य**

१३९। यद्यपि श्रीमुख के एक ओर वह मुस्कुराहट दिखलायी देती है, ऐसा होने पर भी

उससे गोलोक, परव्योम और देवीधाम व्याप्त होकर दसों दिशाओं में आलोक (प्रकाश) भर जाता है।

कृष्ण की क्रीड़ा की विग्रह वेणु-माधुरी से त्रिभुवन उन्मत्त—

**स्मित-किरण-सुकर्पूरे, पैशे अधर-मधुरे,**
**सेइ मधु माताय त्रिभुवने।**
**वंशीछिद्र आकाशे, तार गुण शब्दे पैशे,**
**ध्वनिरूपे पाञा परिणामे॥१४०॥**

**१४०। प॰ अनु॰—**उस मन्द-हास्य रूपी मुखचन्द्र की किरण उत्तम कर्पूर की भाँति है, वह मधुर अधरों में प्रवेश करके, पुनः वंशी के छिद्र रूपी आकाश के माध्यम से वंशी की ध्वनि के रूप में परिणत होकर अपनी मधुरता से त्रिभुवन को मत्त कर देती है।

**अनुभाष्य**

१४०। **स्मितकिरण-सुकर्पूरे**—मन्द हास्य-किरण रूपी कर्पूर से। **पैशे,**—प्रवेश करती है।

कृष्ण की वंशी—ब्रह्माण्ड, परव्योम और गोलोक के सम्पूर्ण शुद्धसत्व की, विशेषतः शृङ्गार-रस के आश्रित जनों की उन्मादिनी—

**से ध्वनि चौदिके धाय, अण्ड भेदि' वैकुण्ठे**
**जाय, बले पैशे जगतेर-काणे।**
**सबा मातोयाल करि', बलात्कारे आने धरि',**
**विशेषतः युवतीर गणे॥१४१॥**

**१४१। प॰ अनु॰—**वह वंशी ध्वनि चारों दिशाओं में धावित (प्रसारित, व्याप्त) होने लगती है तथा ब्रह्माण्ड को भेद करके वैकुण्ठ में प्रवेश कर जाती है तथा वह बलपूर्वक लोगों के कानों में प्रवेश कर जाती है। वह ध्वनि सभी को मदमस्त करके विशेषत: युवतियों को जोर-जबरदस्ती पकड़ कर ले लेती है।

**अनुभाष्य**

१४१। अण्ड भेदि',—ब्रह्माण्डरूपी प्राकृत-राज्य को भेद करके अप्राकृत वैकुण्ठ में जाता है एवं बलपूर्वक गोपीजन अर्थात् गोपियों रूपी जगत के कर्ण में प्रवेश करता है।

वेणु-माधुरी का प्रभाव—

**ध्वनि—बड़ उद्धत, पतिव्रतार भाङ्गे व्रत,**
**पति-कोल हैते टानि' आने।**
**वैकुण्ठेर लक्ष्मीगणे, जेइ करे आकर्षणे,**
**तार आगे केबा गोपीगणे॥१४२॥**

**१४२। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण की वेणु की ध्वनि बहुत उद्धत है अर्थात् किसी अन्य के हित और अहित के ज्ञान से रहित है। वह पतिव्रता-स्त्रियों तक के व्रत को भङ्ग करा देती है। उन्हें पतियों की गोद से भी खींचकर ले आती है। उसमें इतना सामर्थ्य है कि वह वैकुण्ठ की लक्ष्मियों तक को भी आकर्षित कर लेती है, तब फिर उसके आगे गोपियाँ तो क्या चीज है?

**नीवि खसाय पति-आगे, गृहधर्म कराय त्यागे,**
**बले धरि' आने कृष्णस्थाने।**
**लोकधर्म, लज्जा, भय, सब ज्ञान लुप्त हय,**
**ऐछे नाचाय सब नारीगणे॥१४३॥**

**१४३। प॰ अनु॰—**वंशी की ध्वनि गोपियों की तो नीवि (नाड़े) को ही उनके पतियों के सामने ही ढ़ीला कर देती है, उन गोपियों को उनके गृह-धर्म का त्याग करा देती है तथा उन्हें बलपूर्वक पकड़कर उस स्थान पर ले आती है, जहाँ पर श्रीकृष्ण विराजमान होते हैं। उन गोपियों का लोक धर्म, लज्जा, भय इत्यादि का सब ज्ञान लुप्त हो जाता है, वह वंशी की ध्वनि ऐसे व्रज की समस्त गोपियों को अपने इशारों पर नचाती है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४३। नीवि,—घागरे को कमर से बाँधने वाली रस्सी।

कृष्ण के अलावा अन्यान्य सब प्रकार के शब्दों को रोक देने वाली—

**काणेर भितर वासा करे, आपने ताँहा सदा स्फुरे, अन्य शब्द ना देय प्रवेशिते।**
**आन कथा ना शुने काण, आन बलिते बोलय आन, एइ कृष्णेर वंशीर चरिते॥१४४॥**

**१४४। प० अनु०—**वह वंशी ध्वनि गोपियों के कान के भीतर जाकर वहीं अपने वासस्थान का निर्माण कर लेती हैं तथा स्वयं ही वहाँ पर सदैव स्फुरित (ध्वनित) होती है, उन गोपियों के कानों में अन्य किसी भी प्रकार के शब्द को प्रवेश तक नहीं करने देती। इसी कारण गोपियों के कान वंशी ध्वनि के अलावा अन्य किसी शब्द को सुनते तक ही नहीं है। जब कोई उन्हें कुछ बोलता है, तो वे वास्तव में उसके द्वारा कहीं गयी बात को सुन नहीं पाने के कारण अपने अनुमान से अन्य कुछ उत्तर प्रदान करती हैं। ऐसा ही श्रीकृष्ण की वंशी का चरित्र है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४४। काणेर भितर वासा करे (कान के भीतर वास करती है),—'हम गोपी हैं, हमारे कान के भीतर वंशीध्वनि वास करती है अर्थात् सर्वदा कान में लगी ही रहती है।

**अनुभाष्य**

१४४। कृष्ण की वंशी की ध्वनि गोपियों के कान में आवास बनाकर स्वयं ही ध्वनि की स्फूर्त्ति से गोपियों को उन्मत्त प्राय बनाकर रखती है, तब गोपियों के कान में अन्य कोई शब्द प्रवेश नहीं कर पाता तथा वे अन्यमनस्क होकर ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पातीं। वह वंशी ध्वनि गोपियों को सम्पूर्ण रूप से विमन कर देती है।

*एकविंश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

प्रभु का बाह्य दशा में आगमन, अमानी और मानद-धर्म—

**पुनः कहे बाह्य ज्ञाने, आन कहिते कहिलुँ आने, कृष्ण-कृपा तोमार उपरे।**
**मोर-चित्त-भ्रम करि', निजेश्वर्य-माधुरी, मोर मुखे शुनाय तोमारे॥१४५॥**

**१४५। प० अनु०—**कुछ बाह्यज्ञान होने पर श्रीमन्महाप्रभु पुनः कहने लगे—मैं क्या कहते-कहते क्या कह गया? हे सनातन! तुम पर श्रीकृष्ण की कृपा है, इसलिए उन्होंने ही मेरे चित्त को भ्रमित कराके, अपने ऐश्वर्य की माधुरी को मेरे मुख के माध्यम से तुम्हें सुनाया है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४५। प्रेम के आवेश में कृष्ण तत्त्व बोलते-बोलते बाह्यज्ञान शून्य होकर महाप्रभु ने जिस रससन्दर्भ को प्रकाशित किया, यह स्थान उसका वर्णनस्थल नहीं है; अतएव कह रहे हैं,—'मैं एक विषय कहने जाकर अन्य विषय कह रहा हूँ; मेरे चित्त में भ्रम उत्पन्न कराके कृष्ण ने कृपा करके स्वयं की ऐश्वर्य-माधुरी तुम्हें श्रवण करायी है।

*एकविंश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

गोपीभाव में आविष्ट प्रभु की कृष्ण माधुर्य में ग्रस्त अपने चित की वश्यता और सौभाग्य का प्रख्यापन (भली-भाँति स्थापन)—

**आमि त' बाउल, आन कहिते आन कहि।**
**कृष्णेर माधुर्यस्त्रोते आमि जाइ बहि'॥''१४६॥**

**१४६। प० अनु०—**मैं तो उन्मत्त हूँ, एक प्रसङ्ग कहने जाकर अन्य प्रसङ्ग कहता हूँ। मैं तो कृष्ण के माधुर्य रूपी स्त्रोत में बहा जा रहा हूँ।

प्रभु का क्षणकाल के लिये मौनभाव—

**तबे महाप्रभु क्षणेक मौन करि' रहे।**
**मने एक करि' पुनः सनातने कहे॥१४७॥**

**१४७। प॰ अनु॰—**तब श्रीमन्महाप्रभु ने एक क्षण तक मौन धारण किया। मन को स्थिर करके पुनः वे श्रीसनातन गोस्वामी से कहने लगे—[ इसका वर्णन अगले परिच्छेद में किया जायेगा। ]

कृष्ण-माधुर्य का श्रवण करने वाले का कृष्णप्रेम रूपी सुख में निमज्जन—

**कृष्णेर माधुरी आर महाप्रभुर मुखे।**
**इहा जेइ शुने, सेइ भासे प्रेमसुखे॥१४८॥**

**१४८। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण की माधुरी, और वह भी श्रीमन्महाप्रभु के मुख से, इसे जो भी श्रवण करता है वह प्रेम-सुख में निमज्जित हो जाता है।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥१४९॥**

*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्यखण्ड में सम्बन्धतत्वविचार नामक श्रीकृष्णैश्वर्यमाधुर्यवर्णन नामक एकविंश परिच्छेद समाप्त।*

**१४९। प॰ अनु॰—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य चरितामृत का गान कर रहा है।

✵ ✵ ✵

# द्वाविंश परिच्छेद

**कथासार**—इस द्वाविंश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु ने अभिधेय-तत्त्व का वर्णन किया है। सर्वप्रथम जीव का तत्व, बाद में भक्ति की श्रेष्ठता एवं केवल ज्ञान योग आदि की अकर्मण्यता, समस्त जीवों की भक्ति-विषयक कर्त्तव्यता की व्याख्या की एवं ज्ञानियों का मुक्त-अभिमान वृथा है, उसे भी दिखलाया। भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-काम का परित्याग करके शुद्ध भक्तियोग से अभीष्ट अथवा प्रयोजन आदि सबकुछ ही सिद्ध होता हे। यद्यपि किसी व्यक्ति के भजन के समय में सब प्रकार की कामनाएँ अज्ञानतावशतः कुछ-कुछ रहती हैं, तथापि कृष्ण उन्हें दूर करके उस व्यक्ति को शुद्धभक्ति प्रदान करते हैं। महत् (महाजन) की कृपा के बिना भक्ति का उदय नहीं होता, इसलिए साधुसङ्ग ही अवश्य कर्त्तव्य है। श्रद्धा ही अनन्यभक्ति में अधिकार प्रदान करती है। इसके बाद प्रभु ने उसका एवं अनन्यभक्तों के प्रकार भेद एवं वैष्णवों के स्वभाव का वर्णन किया। स्त्रीसङ्ग और अभक्त-सङ्ग ही असत्सङ्ग है। इन दोनों का परित्याग करके, वर्णाश्रम की आसक्ति को छोड़कर कृष्ण के शरणागत होना चाहिए। शरणागति के छह लक्षणों की भी व्याख्या हुई है। साधनभक्ति—वैधी और रागानुगा के भेद से दो प्रकार की है। वैधीभक्ति के चौंसठ अङ्ग ही प्रधान है; उनमें से अन्तिम पाँच अङ्ग ही अत्यन्त बलवान है। भक्ति के एक अङ्ग अथवा बहुत से अङ्गों के साधन में भी फल होता है। ज्ञान-वैराग्य-योग आदि कभी भी भक्ति के अङ्ग नहीं है; अहिंसा, यम, नियम आदि के लिये कोई पृथक चेष्टा नहीं करनी पड़ती; वे भक्ति के साथ-साथ ही रहते हैं। रागानुगा भक्ति—रागत्मिक भक्ति की ही अनुगमिनी है। व्रजवासियों की रागत्मिका भक्ति ही मुख्य है। रागत्मिकभक्ति के लक्षण बतलाकर प्रभु ने उसके बाद रागानुगा-भक्ति के साधन-लक्षण को बतलाया।

(अः प्रः भाः)

कलियुग पावनावतारी प्रेमदाता प्रभु को प्रणाम—

**वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यदेवं तं करुणार्णवम्।**
**कलावप्यतिगूढेयं भक्तिर्येन प्रकाशिता॥१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१। जिनके द्वारा कलिकाल में भी अत्यधिक गूढ़ भक्ति प्रकाशित हुई है, उन करुणा के सागर श्रीकृष्णचैतन्य देव की मैं वन्दना करता हूँ।

**अनुभाष्य**

१। कलौ (धर्म रहिते तर्काश्रितवादसमये) युगे अपि येन (महाप्रभुणा) अतिगूढ़ा (धर्मबहुले सत्यत्रेता-द्वापरयुगे सद्धर्मज्ञैवरप्यज्ञाता) इयं भक्तिः (हेतुरहिता कृष्णसेवा) प्रकाशिता (साधारण्ये प्रचारिता), तं करुणार्णवं (जीव दया सागर) श्रीकृष्णचैतन्यदेवम् अहं वन्दे।

**जय जय श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प० अनु०**—श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो, श्रीअद्वैत चन्द्र की जय हो, श्रीगौर भक्तवृन्द की जय हो।

समग्र वेदशास्त्रों में कृष्ण ही 'सम्बन्ध' के रूप में निरूपित—

**''एइ त' कहिलुँ सम्बन्ध-तत्वेर विचार।**
**वेदशास्त्रे उपदेशे, कृष्ण—एक सार॥३॥**

**३। प० अनु०—**हे सनातन! अब तक मैंने तुम्हें सम्बन्ध-तत्त्व के विचार को बतलाया है। वेदशास्त्र यही उपदेश देते हैं कि कृष्ण ही एकमात्र सार हैं।

**श्रीसनातन-शिक्षा—(२) अभिधेय (कृष्णभक्ति)-वर्णन;** अभिधेय ही सम्बन्ध और प्रयोजन-प्रदाता—

**एबे कहि, शुन, अभिधेय-लक्षण।**
**जाहा हैते पाइ—कृष्ण, कृष्णप्रेमधन॥४॥**

**४। प० अनु०—**हे सनातन, अब मैं उस अभिधेय-लक्षण के विषय में बतलाता हूँ। जिससे कृष्ण तथा कृष्णप्रेमधन की प्राप्ति होती है।

कृष्णभक्ति ही अभिधेय—

**कृष्णभक्ति—अभिधेय, सर्वशास्त्रे कय।**
**अतएव मुनिगण करियाछे निश्चय॥५॥**

**५। प० अनु०—**सभी शास्त्र कृष्णभक्ति को ही अभिधेय बतलाते हैं। अतएव मुनियों ने भी यही निर्णय लिया है।

श्रुति-स्मृति-पुराण-पञ्चरात्र में कृष्णभक्ति ही 'अभिधेय' कहकर विहित—(मुनिवाक्य)—

**श्रुतिर्माता पृष्टा दिशति भवदाराधनविधिं**
**यथा मातुर्वाणी स्मृतिरपि तथा वक्ति भगिनी।**
**पुराणाद्या ये वा सहजनिवहास्ते तदनुगा**
**अतः सत्यं ज्ञातं मुरहर भवानेव शरणम्॥६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६। हे मुरहर! माता स्वरूपणी श्रुति से जिज्ञासा करने पर वे आपकी आराधना की विधि का उपदेश देती हैं, स्मृति भी बहिन स्वरूपिणी बनकर वही उपदेश देती हैं; पुराण आदि भी भाई के रूप में श्रुति माता के अनुगत होकर वही कह रहे हैं। अतएव हे मुरहर! आप ही एकमात्र शरण हैं, इसे मैंने सत्य के रूप में जान लिया है।

**अनुभाष्य**

६। माता (मातृवत् हिताभिलाषिणी जीव-पालयित्री) श्रुतिः पृष्टा (जिज्ञासिता सती) भवदाराधनविधिं (कृष्णसेवा) दिशति (आज्ञापयति); यथा मातुः (श्रुतेः) वाणी (कथा), तथा भगिनी (श्रुतिमातृ लाल्या) स्मृतिः अपि वक्ति (प्रकाशयति, कृष्णभक्तिं कथयति); पुराणाद्याः (पुराण-आगमा-दयः) ये वा सहजनिवहाः (सहोदराः), ते (अपि) तदनुगाः (मातृ-भगिन्योः अनुगामिनः सन्तः कृष्ण-भक्त्युपदेशपराः); अतः हे मुरहर, (मुरारे), भवान् एव (मम) शरणम् इति (मया) सत्यं ज्ञातम्।

कृष्ण और स्वरूपशक्ति एकात्मा होने पर भी विलास के लिये परस्पर आशिलष्ट (दो रूपों में प्रकाशित)—

**अद्वयज्ञान-तत्व कृष्ण—स्वयं भगवान्।**
**'स्वरूप-शक्ति' रूपे ताँर हय अवस्थान॥७॥**

**७। प० अनु०—**अद्वयज्ञानतत्त्व श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् है तथा वे विलास के उद्देश्य से अपने से अभिन्न स्वयं में से स्वरूप शक्ति को प्रकाशित करके उस रूप में भी अवस्थान करते हैं।

**अनुभाष्य**

७। कृष्ण-अद्वयज्ञान-तत्त्व हैं। शक्ति और शक्तिमान्—अभेद-तत्व हैं। भूलवशतः 'शक्ति'-शब्द से किसी को जीव के स्वरूप का आवरण करने वाली मायाशक्ति को नहीं समझना चाहिए। जो शक्ति—कृष्ण-स्वरूप की सेवा में ही केवलमात्र नियुक्त है, वह स्वरूप-शक्ति—मायाशक्ति से पृथक् है। स्वरूप शक्ति एवं स्वरूपशक्तिमान् कृष्ण अभिन्न रूप में अवस्थित हैं।

असंख्य वैकुण्ठों में स्वांश विष्णु के रूप में और ब्रह्माण्ड में जीव के रूप में लीला-विलास—

**स्वांश-विभिन्नांश-रूपे हञा विस्तार।**
**अनन्त वैकुण्ठ-ब्रह्माण्डे करेन विहार॥८॥**

**८। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण स्वांश तथा विभिन्नांश के रूप में अपना विस्तार करके अनन्त-अनन्त वैकुण्ठों एवं ब्रह्माण्डों में विहार करते हैं।

स्वांश-विलास चतुर्व्यूह और अवतारगण—
कृष्णस्वरूप अथवा शक्तिमत्तत्व;
जीव—विभिन्नांश अथवा शक्तितत्व—

**स्वांश-विस्तार—चतुर्व्यूह, अवतारगण।**
**विभिन्नांश जीव—ताँर शक्तिते गणन॥९॥**

**९। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण स्वांश का विस्तार चतुर्व्यूह तथा अवतारों के रूप में करते हैं। विभिन्नांश जीव की गणना कृष्ण की शक्ति के रूप में होती है।

दो प्रकार के जीव—

**सेइ विभिन्नांश जीव—दुइत' प्रकार।**
**एक—'नित्यमुक्त', एक—'नित्य-संसार'॥१०॥**

**१०। प॰ अनु॰—**वे विभिन्नांश जीव नित्य-मुक्त तथा नित्य-संसार (नित्य बद्ध) के भेद से दो प्रकार के हैं।

(१) नित्यमुक्त का चरित्र—

**'नित्यमुक्त'—नित्य कृष्णचरणे उन्मुख।**
**'कृष्ण-पारिषद' नाम, भुञ्जे सेवा-सुख॥११॥**

**११। प॰ अनु॰—**नित्यमुक्त तो सदैव श्रीकृष्ण के चरणों के प्रति उन्मुख रहते हैं, उन्हें कृष्ण के परिकर कहा जाता है तथा वे सेवा रूपी सुख का आस्वादन करते हैं।

(२) नित्यबद्ध जीव का चरित्र—

**'नित्यबद्ध'—कृष्ण हैते नित्य-बहिर्मुख।**
**'नित्यसंसार', भुञ्जे नरकादि-दुःख॥१२॥**

**१२। प॰ अनु॰—**नित्यबद्ध श्रीकृष्ण से सदैव बहिर्मुख होते हैं, वे सब समय संसार में ही उलझे रहते है तथा नरक आदि दुःख भोग करते हैं।

कृष्ण-विमुखता का फल अथवा सजा—

**सेइ दोषे माया-पिशाची दण्ड करे तारे।**
**आध्यात्मिकादि तापत्रय तारे जारि' मारे॥१३॥**
**काम-क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।१४क।**

**१३-१४क। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण से बहिर्मुखता रूपी दोष के कारण माया-पिशाची बद्धजीवों को दण्डित करती हैं तथा आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापों के द्वारा उन्हें जलाकर मार डालती है। बद्धजीव काम और क्रोध का दास बनकर माया की लात खाता रहता है।

उद्धार का उपाय—

**भ्रमिते-भ्रमिते यदि साधु-वैद्य पाय॥१४ ख॥**
**ताँर उपदेश-मन्त्रे पिशाची पलाय।**
**कृष्णभक्ति पाय, तबे कृष्ण-निकट जाय॥१५॥**

**१४ ख-१५। प॰ अनु॰—**इस प्रकार ठोकरें खाते-खाते यदि उसे साधु रूपी वैद्य की प्राप्ति होती है तब उस साधु रूपी वैद्य के उपदेश रूपी मन्त्र के द्वारा माया-पिशाची दूर भाग जाती है तथा वह जीव कृष्णभक्ति को प्राप्त करता है एवं श्रीकृष्ण के निकट पहुँच जाता है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

८-१५। स्वांश-रूपे,—अर्थात् चतुर्व्यूह और उनके अवतारों के रूप में। स्वांश-अवस्था में कृष्ण का स्व-स्वरुपत्व सर्वत्र लक्षित होता है। जीव—उनके विभिन्नांश रूप हैं। जीव भी कृष्ण की शक्ति में गिने जाते हैं। जीव दो प्रकार के हैं—नित्यमुक्त और नित्यसंसार (बद्ध)। नित्यमुक्त जीवों ने कभी भी माया के सम्बन्ध का आस्वादन

नहीं किया। वे कृष्ण के चिन्मय धाम में कृष्ण के चरणों के उन्मुख रहकर 'कृष्ण-पारिषद' अथवा कृष्ण-पार्षद के नाम से परिचित है एवं कृष्ण सेवा सुख ही उनका भोग है। नित्यबद्ध जीव कृष्ण से नित्य बहिर्मुख रहकर संसार में स्वर्ग-नरक आदि सुख-दुःख का भोग करते हैं; कृष्ण बहिर्मुखता दोष के लिये माया-पिशाची उन्हें स्थूल और सूक्ष्म आवरण में बाँधकर दण्ड प्रदान करती है अर्थात् आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के ताप उन्हें बहुत ही जर्जरित करते हैं; वे काम-क्रोध आदि छह तरंगों के वशीभूत होकर माया रूपी पिशाची की लातें खाते रहते है;—यही जीवों का रोग है। संसार में इस प्रकार ऊपर-नीचे (स्वर्ग-नरक में) भ्रमण करते-करते यदि कभी साधु रूपी वैद्य को प्राप्त करता है, तब उनके उपदेश रूपी मन्त्र से माया-पिशाची भाग जाती है एवं जीव भी कृष्णभक्ति प्राप्त करके कृष्ण के निकट पहुँच जाता है।

शरणागत की प्रार्थना—
भक्तिरसामृतसिन्धु (३/२/२५)—

**कामादीनां कति न कतिधा पालिता दुर्निदेशा-**
**स्तेषां जाता मयि न करुणा न त्रपा नोपशन्तिः।**
**उत्सृज्यैतानथ यदुपते साम्प्रतं लब्धबुद्धि-**
**स्त्वामायातः शरणमभयं मां नियुङ्क्ष्वात्म दास्ये॥१६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६। हे भगवन्, काम आदि के कितने ही प्रकार के दुष्ट आदेशों का ही मैंने पालन किया है। तथापि मेरे प्रति उनकी करुणा तथा मेरी लज्जा को भी उपशान्ति (शान्ति की निकटता) तक भी प्राप्त नहीं हुई। हे यदुपते! आपाततः मैं उन्हें परित्याग करके सद्बुद्धि प्राप्त करके आपके अभय चरणों में शरणागत हुआ, आप अब मुझे आत्मदास्य में नियुक्त करो।

**अनुभाष्य**

१६। कामादीनां (कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यादीनां) दुर्निदेशाः (दुष्टाः आदेशाः) कतिधा (प्रकाराः) मया कति न पालिताः (अपि तु पालिता एव); तेषां (कामादिरिपुणां) मयि करुणा (दया) न त्रपा (ममाति लज्जा) न उपशान्तिः (मम-तद्विसर्जनेच्छापि न च जाता) अथ (अनन्तरं) हे यदुपते, साम्प्रतम् (इदानीं) तान् (कामादीन्) उत्सृज्य (रिपुपारवश्यं त्यक्तवा) लब्धबुद्धिः (अभिज्ञः सन्) अभयम् (अकुतोभयं) शरणं त्वाम् आयातः (प्राप्तः); माम् आत्मदास्ये (निजकैङ्कर्ये) नियुंक्ष्व (नियोजय)।

भक्ति ही निरपेक्ष अभिधेय एवं कर्म-ज्ञान-योगादि भक्ति-सापेक्ष—

**कृष्णभक्ति हय अभिधेय-प्रधान।**
**भक्तिमुख-निरीक्षक कर्म-योग-ज्ञान॥१७॥**

भक्ति के आश्रय के बिना कर्म-ज्ञान-योग आदि की निष्फलता—

**एइ सब साधनेर अति तुच्छ बल।**
**कृष्णभक्ति बिना ताहा दिते नारे फल॥१८॥**

**१७-१८। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य एवं अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७-१८। शास्त्रों में अनेक स्थानों पर कर्म का, अनेक स्थानों पर योग का तथा अनेक स्थानों पर ज्ञान का 'अभिधेय' कहकर वर्णन किया गया है; तथापि सर्वत्र भक्ति को ही सर्वप्रधान 'नित्य अभिधेय' कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि कृष्णभक्ति ही परमपुरुषार्थ (प्रेम) को प्राप्त करने का एकमात्र प्रधान अर्थात् 'साक्षात' अभिधेय है; कर्म, योग और ज्ञान का जो अभिधेयत्व है, वह—'गौण' है; क्योकि, भक्ति के मुख की अपेक्षा

करके ही उनका फल आदि जो कुछ भी प्रदान करना होता है; भक्ति के आश्रय के बिना कर्म, योग और ज्ञान कोई भी फल नहीं दे सकते। भक्ति का आश्रय प्राप्त करने पर ही कर्म और हठयोग भुक्ति (भोग रूपी) फल एवं ज्ञान और राजयोग मुक्ति और सिद्धि फल दे सकता है।

भक्तिविहीन शुष्कज्ञान अथवा निष्काम कर्म की भी व्यर्थता—

श्रीमद्भागवत (१/५/१२) में—

**नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव-वर्जितं**
**न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।**
**कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे**
**ना चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥१९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९। [ श्रीनारद ऋषि ने कहा— ] नैष्कर्म्यरूपी निर्मलज्ञान ही जब अच्युत भक्ति से वर्जित होने पर शोभा नहीं पाता, तब सदैव अभद्र (अशुभ) स्वभाव वाले कर्म ईश्वर में अर्पित नहीं होने पर निष्काम होने पर भी किस प्रकार शोभा पा सकते हैं?

**अनुभाष्य**

१९। श्रीव्यासदेव बहुत सी तपस्याओं के अनुष्ठान और सभी शास्त्रों का प्रणयन आदि करने पर भी आत्म प्रसन्नता की प्राप्ति से वञ्चित होकर सरस्वती नदी के तट पर अप्रसन्नचित्त से मन-मन में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क और खेद कर रहे थे, उनके अन्तर्यामी गुरुदेव श्रीनारद गोस्वामी वहाँ आकर उपस्थित हुए। व्यासदेव ने उनसे अपनी आत्मा की प्रसन्नता के अभाव के कारण की जिज्ञासा की, तब श्रीनारद कर्म और ज्ञान आदि सभी मार्गों की अपेक्षा शुद्ध हरिभक्ति के माहात्म्य का कीर्त्तन कर रहे हैं—

अच्युतभाववर्जितं (अच्युते कृष्णे भाववर्जितम् अनुकूलानुशीलनविहीनं चेत्) निरञ्जनं (निरुपाधिकं निर्मलमितियावत्) नैष्कर्म्यं (फलभोगराहित्यम् अपि) ज्ञानम् फलं (अत्यर्थं) न शोभते (सम्यक् मोक्षाय न कल्पते); पुनः तथा शाश्वत् (सर्वसमये साधनकाले प्राप्तिकाले च, अतएव) अभद्रं (दुःखात्मक) यत् च अकारणं कर्म (प्रवृतिपरं काम्यं यद्यपि निवृत्तिपरम् अकाम्यं तच्चापि कर्म) ईश्वरे (विष्णो) न अर्पितं (नोद्दिष्टं सत्) कुतः (शोभते? नैवहीति भावः)।

कृष्ण को अर्पित किये बिना समस्त प्रकार के कर्म-काण्ड—संसार जनक—

श्रीमद्भागवत (२/४/१७) में—

**तपस्विनो दानपरा यशस्विनो**
**मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः।**
**क्षेमं न विन्दन्ति बिना यदर्पणं**
**तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥२०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा— ] सभी तपस्वी, सभी दान परायण व्यक्ति, सभी यशस्वी व्यक्ति, मनस्वी व्यक्ति, वेदों के मन्त्रों को जानने वाले सभी व्यक्ति, उनके द्वारा कृत स्व-स्व कर्म सुमङ्गल होने पर भी, जिन्हें अर्पण नहीं करने से किसी भी प्रकार से मङ्गल प्राप्त नहीं कर सकते, उन सुभद्रश्रवा (मङ्गलकीर्ति वाले) भगवान् को पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ।

**अनुभाष्य**

२०। परीक्षित के द्वारा मायाधीश श्रीहरि की सृष्टि आदि लीला के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर, श्रीशुकदेव, श्रीहरि और उनकी सेवा के माहात्म्य का वर्णन कर रहे हैं—

तपस्विनः (तपोनिरताः ज्ञानिनः) दानपराः (वदान्याः) यशस्विनः (कीर्त्तिमन्तः) मनस्विनः (योगिनः) मन्त्रविदः (निगमागमविदः) सुमङ्गलाः (सदाचाराः) यदर्पणं (यस्मिन् श्रीहरौ पूर्वोक्त-

तपआदिना स्व-स्व प्राप्यफलसमर्पण) बिना (ऋते) क्षेमं (कल्याण) न विन्दन्ति (न प्राप्नुवन्ति), तस्मै सुभद्रश्रवसे (मङ्गलकीर्तिविग्रहाय भागवते श्रीहरये) नमो नमः।

भक्तिविहीन ज्ञान मुक्तिप्रद नहीं; मुक्ति—भक्ति की दासी—

**केवल ज्ञान 'मुक्ति' दिते नारे भक्ति बिने।**
**कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय बिना-ज्ञाने॥२१॥**

**२१। प॰ अनु॰—**अमृतभाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

२१। "ज्ञानतः सुलभा मुक्तिः" इस शास्त्रवचन से जाना जाता है कि ज्ञान ही मुक्ति दे सकता है, किन्तु उसमें एक गूढ़ बात यह है कि,—भक्ति के आश्रय से ही ज्ञान मुक्ति दिया करता है। पक्षान्तर में, कृष्णोन्मुखी भक्ति के उदित होने पर किसी भी प्रकार की ज्ञान की चेष्टा नहीं करने पर भी वह मुक्ति स्वयं ही उपस्थित होती है।

### अनुभाष्य

२१। केवल-ज्ञान अर्थात् भक्ति रहित सम्विद् वृत्ति का अनुभव जीव को जड़ीय बन्धन से मुक्त नहीं करा सकता। जीव जितना ही अतन्निरसन (नेति, नेति) क्यों न करे, उसमें कृष्ण-स्वरूप की अज्ञानता के कारण अहंग्रहोपासना ही प्रबल हो जाती है, तथा वह अधःपतित हो जाता है। ज्ञानानुशीलन नहीं करने पर भी कृष्ण की सेवा में तत्पर होने पर वह जीव ज्ञान के फल जड़ीय बन्धन से मुक्ति प्राप्त करके कृष्ण के स्वरूप के अनुभव को प्राप्त करता है। "भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदि स्याद्देवेन नः फलति दिव्यकिशोर-मूर्त्तिः। मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलिः सेवतेऽस्मान् धर्मार्थकामगतयः समय प्रतीक्षाः॥ [अर्थात् हे भगवन्! आपके प्रति यदि हमारी अचला भक्ति रहे, तब आपकी अप्राकृत किशोरमूर्त्ति स्वतः ही हमारे हृदय में उदित होती है। उस समय मुक्ति स्वयं हाथ जोड़कर हमारी सेवा में रत होती हैं एवं धर्म, अर्थ और काम भी सेवा के लिये आदेश के समय की प्रतीक्षा करते हैं।] (कर्णामृत में)।

भक्ति के मार्ग में ही एकमात्र नित्य कल्याण, उसके अलावा शुष्क ज्ञान से वृथा परिश्रम ही सार (फल)—श्रीमद्भागवत (१०/१४/४) में—

**श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो**
**क्लिश्यन्ति जे केवलबोधलब्ध्ये।**
**तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते**
**नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥२२॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

२२। [श्रीब्रह्मा कह रहे है—] हे विभो, आपके प्रति की गयी भक्ति ही श्रेयः पथ है, उसे परित्याग करके जो सब व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये अर्थात्, 'मैं ब्रह्म' हूँ, इसी को ही स्थिर रूप में जानने के लिये अनेक प्रकार के कष्ट स्वीकार करते हैं, स्थूल-भूसी को पीसने वालों को जिस प्रकार चावल नहीं मिलते, उसी प्रकार, उन्हें भी अन्त में कष्टमात्र ही प्राप्त होता है, और कुछ भी नहीं।

### अनुभाष्य

२२। बछड़ों को हरण करने के फलस्वरूप श्रीकृष्ण द्वारा ब्रह्मा के अभिमान के चूर्ण होने पर ब्रह्मा श्रीकृष्ण के एकान्त शरणागत होकर स्तव कर रहे हैं—

हे विभो, (भगवन्) ये (जनाः आरोहवादितर्क-पन्थिन) श्रेयःसृति (श्रेयसां अभ्युदयापवर्ग लक्षणानां सृतिं सरणं मार्गभूता) ते (तव) भक्तिं (शुद्धभजन) उदस्य (त्यक्त्वा) केवलबोधलब्धये (भक्तिरहित-ज्ञानमात्रप्राप्तये) क्लिशयन्ति (वैराग्यतपःक्लेशादिकं स्वीकुर्वन्ति), तेषां (निर्भेद-ब्रह्मवादि शुष्क ज्ञानिना) यथा स्थूलतुषावघातिनां (शस्यान्तःकणहीनान् स्थूल-

धान्याभासान् तुषान् अवघ्नतां यथा व्यर्थश्रमः एव भवति, तथा) असौ (शास्त्राभ्यासषट्क साधनादि-जनितः) क्लेशलः (क्लेशः व्यर्थश्रमः) एव शिष्यते (अवशिष्यते) न अन्यत् (तेषां न किञ्चित् तदितरं फलम्-तेषां ज्ञानप्राप्तिरपि दुर्लभा एवेत्यर्थः)।

भगवान् के शरणागत की ही माया से मुक्ति—
श्रीमद्भगवद्गीता (७/१४) में—

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥२३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२३। यह माया—मेरी ही शक्ति है अतएव दुर्बल जीव के पक्ष में स्वभावतः ही कठिनाई से पार पायी जा सकने वाली है। जो मेरे भगवत्-स्वरूप के प्रति प्रपत्ति (शरणागति) स्वीकार करते हैं, केवल वही इस माया समुद्र से पार हो सकते हैं।

**अनुभाष्य**

२३। मध्य बीस परिच्छेद १२१ संख्या द्रष्टव्य है।

जीव के संसार-बन्धन
का कारण—

**'कृष्ण-नित्यदास'—जीव, ताहा भुलि' गेल।**
**एइ दोषे माया तार गलाय बान्धिल॥२४॥**

**२४। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

२४। 'जीव कृष्ण का नित्यदास है'—इस सत्य को भूलने से ही माया जीव को अनेक प्रकार से लोभान्वित और विमोहित (मोहग्रस्त) करके तीन गुणों की बेड़ी के द्वारा उसके गले को बाँध देती हैं। उसी से बद्ध जीव का भोग-वासना-रूपी मायिक बेड़ी के बन्धन से छूट पाना कठिन हो जाता है।

उद्धार की प्राप्ति और प्रयोजन की
प्राप्ति का एकमात्र उपाय—

**ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।**
**मायाजाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण॥२५॥**

**२५। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

२५। गुरु सेवा और कृष्णभजन के बल से ही बद्ध जीव माया के जाल से मुक्त होकर कृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करता है।

भक्तिविहीन वर्णाश्रम धर्म के पालन
से नरक की प्राप्ति—

**चारि वर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे।**
**स्वकर्म करिलेओ से रौरवे पड़ि' मजे॥२६॥**

**२६। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

२६। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के द्वारा अपने-अपने वर्ण धर्म का भली प्रकार से पालन करने पर भी, अथवा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी के द्वारा अपने-अपने आश्रमधर्म का सुष्ठु रूप से पालन करने पर भी यदि वे कृष्णभजन नहीं करते, तब वे जागतिक-अभिमान के कारण उच्च अवस्था प्राप्त करने पर भी अन्त में पुण्य के क्षय होने पर रौरव नामक नरक में अवश्य ही पतित होते हैं। अप्राकृत भक्ति के अनुशीलन के अलावा विषयी वर्णाश्रमी का बिल्कुल भी मङ्गल नहीं हो सकता।

दैव-वर्णाश्रम-धर्म की उत्पत्ति—
श्रीमद्भागवत (११/५/२-३) में—

**मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।**
**चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥२७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७। [श्रीचमस ऋषि ने कहा—] ब्रह्मा के

मुख से 'ब्राह्मण', भुजा से 'क्षत्रिय', जंघा से 'वैश्य' और पद से 'शूद्र'—ये चार वर्ण पृथक-पृथक आश्रमों के साथ एवं अपने वर्णगत गुणों के साथ उत्पन्न हुए थे।

**अनुभाष्य**

२७। वसुदेव के समक्ष श्रीनारद श्रीभागवत धर्म का कीर्त्तन करते हुए विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्र के संवाद का वर्णन कर रहे हैं; 'हरिभजन विमुख गोदास (इन्द्रियों के दास) की गति क्या होती है?—महाराज निमि के इस प्रश्न के उत्तर में नवयोगेन्द्रों में से एक चमस ऋषि निम्नलिखित दो श्लोकों में भक्ति के अनुकूल दैव-वर्णाश्रम-सृष्टि और उसका व्यभिचार करने वालों की दुरावस्था का वर्णन कर रहे हैं—

पुरुषस्य (भगवतः वैराजस्य ब्रह्मणः) मुख बाहुरूपादेभ्यः गुणैः (सत्त्वरजस्तमोगुणैः) आश्रमैः (ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थभिक्षुकाश्रमचतुष्टयैः) सह पृथक् विप्रादयः (ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः) चत्वारः वर्णाः जज्ञिरे।

भक्ति के प्रतिकूल अदैव (आसुरी)-वर्णाश्रमी को नरक की प्राप्ति—

**य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्।**
**न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥२८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२८। [ श्रीचमस ऋषि ने कहा— ] इन चारों वर्णाश्रमियों में से जो अपने प्रभु भगवान् विष्णु का साक्षात् भजन नहीं करके, अपने-अपने वर्णाश्रम के अहङ्कार के कारण उनके भजन में अवज्ञा करते हैं, वे अपने स्थान से भ्रष्ट होकर अधःपतित हो जाते हैं।

**अनुभाष्य**

२८। एषां (विप्रक्षत्रियवैश्यशूद्राणां ब्रह्मचारि-गृहस्थवानप्रस्थ-यतीनां मध्ये) ये (जनाः) साक्षात् आत्मप्रभवम् (आत्मनः प्रभवः जन्म प्राकट्यं वा, यस्मात् तम्) ईश्वरम् (अज्ञात्वा कृतघ्नाः सन्तः) न भजन्ति, अवजानन्ति, ज्ञात्वापि वर्णाश्रम-मर्यादा-मदभरेण कृष्णभजनस्यावश्यकता नास्तीति मन्यमानाः द्विषन्ति), (ते हरिगुरु-वैष्णवसेवा-विहीनाः) स्थानात् (स्व-स्व-वर्णाश्रमात्) भ्रष्टाः (सन्तः) अधःपतन्ति (निरयं यान्ति; यतः प्राकृतवर्णाश्रमधर्मः अनित्यः कालक्षुब्धश्च तात्कालिक-फलोपयोगी असच्छब्द-वाच्यश्च)।

भक्ति-रहित मुक्ताभिमानी ज्ञानी भी समल (अशुद्ध)-मनोधर्मी, शुद्ध-भक्त ही निर्मल आत्मधर्मी—

**ज्ञानी जीवन्मुक्तदशा पाइनु करि' माने।**
**वस्तुतः बुद्धि 'शुद्ध' नहे कृष्णभक्ति बिने॥२९॥**

**२९। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य एवं अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२९। मायावाद आदि मत का अवलम्बन करने वाले व्यक्ति स्वयं अपने को 'ज्ञानी' कहते हैं, किन्तु वास्तव में कृष्णभक्ति के बिना बुद्धि शुद्ध नहीं होती।

**अनुभाष्य**

२९। यद्यपि ज्ञानी मान सकते हैं,—'मैं जीव दशा में संसार-बन्धन से मुक्त हो गया हूँ', तथापि कृष्णभक्ति के अलावा अहंग्रहोपासना से बुद्धि शुद्ध नहीं हो सकती; क्योंकि मुक्तिकामी स्वयं की बद्ध-अवस्था को जानकर उससे मुक्ति एवं मुक्त अवस्था समझकर उसके अलावा दृश्य वस्तुओं में स्वयं को बद्ध मानता है, अतएव ऐसे अनित्य भावसमूह के हाथ से मुक्त नहीं हो पाता।

कृष्णभक्ति रहित शुष्कज्ञानी को अधोगति की प्राप्ति—
श्रीमद्भागवत (१०/२/३२) में—

**येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्य-**
**स्तभावादविशुद्धबुद्धयः।**
**आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः**
**पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदऽघ्रयः॥३०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३०। [ब्रह्मादि देवताओं ने कहा— ] हे अरविन्दाक्ष, जो 'विमुक्त हो गया हूँ' ऐसा कहकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिरहित होने के कारण अविशुद्ध (अपवित्र) बुद्धि वाले हैं। वे अत्यधिक कष्ट करके माया से अतीत परमपद ब्रहम पर्यन्त आरोहण करके भी भगवद् भक्ति के अनादर के कारण अधःपतित होते हैं।

**अनुभाष्य**

३०। कंस के कारागार में रह रही देवकी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण के आविभूत होने पर ब्रह्मादि देवता 'गर्भस्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध स्तव में भगवान् की स्तुति कर रहे हैं—

हे अरविन्दाक्ष, (पद्मपलाशलोचन) अन्ये (अभक्ताः जनाः) ये विमुक्तमानिनः (विमुक्ताः ज्ञानिनः वयमिति मन्यमानाः) त्वयि (भगवति) अस्तभावात् (अस्तः निरस्तः अतएव असन् यः भावः तस्मात्, भक्तेरभावात् तदनुशीलनराहित्यात्) अविशुद्धबुद्धयः (न विशुद्धा बुद्धि येषां ते तथा, मुक्तिपिशाचीं बहुमन्यमानाः ज्ञान जनित-कैतवकल्मषकषाय-दुष्ट-मतयः इत्यर्थः) कृच्छेण (बहुज्ञानवैराग्याभ्यास-विधिना) परं पदं (मोक्षसन्निहितमिति स्वामिचरणाः, मोक्षपीठादव्यवहितप्रदेशम्) आरुह्य (अधिरुह्य) अनादृतयुष्मदऽघ्रयः (न आदृतौ युष्मदंघ्री यैः ते, तव पादपद्मनित्यसेवायाः अनादरेण अपराधवशात् कृष्णकृपारज्जुविच्छिन्नाः सन्तः) ततः (परमोच्चज्ञानाख्य-पीठाप्रान्तात्) अधः पतन्ति (अज्ञानान्धकारे संसार-तमिस्रे निमज्जन्ति)।

कृष्ण के दर्शन में माया का दर्शन नहीं,
माया का दर्शन कृष्ण का दर्शन नहीं—

**कृष्ण—सूर्यसम, माया हय अन्धकार।**
**जाँहा कृष्ण, ताँहा नाहि मायार अधिकार॥३१॥**

**३१। प० अनु०—**श्रीकृष्ण सूर्य के समान हैं तथा माया अन्धकार सदृश है। जहाँ पर कृष्ण हैं, वहाँ माया का अधिकार नहीं हो सकता।

**अनुभाष्य**

३१। भागवत की चतुःश्लोकी में लिखा हुआ है कि, ''ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासोयथा तमः॥'' प्रकाश के रहने पर जिस प्रकार अन्धकार नहीं रहता, उसी प्रकार जीव कृष्णोन्मुख होने पर मायिक वासनाओं के हाथ से मुक्त हो जाता है। कृष्णभक्त के अलावा ज्ञानी, कर्मी और अन्याभिलाषी व्यक्ति को माया ग्रास करती है।

मायारूपी चेटी (दासी) अपने प्रभु के सामने खड़े होने में लज्जिता, दूसरी ओर, प्रभु से विमुख लोगों को विवर्त्तबुद्धि (उल्टी बुद्धि, भ्रमित बुद्धि) प्रदान करके कारागार में बन्द करने वाली—
श्रीमद्भागवत (२/५/१३) में—

**विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।**
**विमोहिता विकथ्यन्ते ममाहमिति दुर्धियः॥३२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३२। [श्रीब्रह्मा ने कहा— ] कृष्ण के दर्शनपथ पर रहते समय माया लज्जित होती है; उसी माया के द्वारा विमोहित होकर दुर्बुद्धि परायण व्यक्ति 'मैं' 'मेरा' इस प्रकार के बहुत से वाग्जाल (वाक्यरूपी जाल) को प्रकाशित करते हैं।

**अनुभाष्य**

३२। देवर्षि नारद के द्वारा लोकपितामह ब्रह्मा को तपस्या में प्रवृत्त देखकर उनके अलावा भी जो एक व्यक्ति स्वतन्त्र सर्वेश्वरेश्वर नियन्त्रण

करने वाला है, उसके विषय में जिज्ञासा करने पर ब्रह्मा उन परमात्मा श्रीहरि की लीला और माया के द्वारा सृष्टिादि का वर्णन कर रहे हैं—

यस्य (भगवतः) ईक्षापथे (नेत्रगोचरे) स्थातुं विलज्जमानया (मत्कपटोऽसौ प्रभुर्जानातीति लज्जा-युक्तया) अमुया (मायया) विमोहिताः (मुग्धाः) दुर्द्धियः (अविद्यावृतज्ञानाः असिद्धयः जीवाः एव केवल) 'मम' 'अहम्' इति (एतत्) विकथ्यन्ते (आत्मानं श्लाघन्ते, तस्मै नमः इति पूर्वेणान्वयः)।

यहाँ पर पाठान्तर में (भाः २/७/४७) श्लोक उद्धृत हुआ है—''शश्वत् प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम्। शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रियार्थो माया परैत्याभिमुखे च विलज्जमाना॥ तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम्॥'' मुनिगण जिस वस्तु को बृहत् निर्विकल्प-ब्रह्म' कहकर जानते हैं, वही परम पुरुष भगवान् का प्रथम-प्रतीति-स्वरूप है। यह ब्रह्म अजस्त्र-सुख-युक्त, विशोक, नित्य-प्रशान्त, भेदशून्य, अभय, ज्ञानैकरस, शुद्ध, विषय-करण-सङ्ग से रहित, परमात्मतत्त्व उत्पत्ति आदि चार प्रकार की क्रियाओं के फल के प्रकाशक हैं; कर्मकाण्डीय शब्द का व्यापार उनका बोधक नहीं हो सकता एवं माया उनके सम्मुख में लज्जित होकर भाग जाती है।

सम्पूर्ण रूप से आत्मनिवेदन करने वाले अथवा सम्बन्धज्ञान प्राप्त भक्त का ही संसार-मोचन —

**'कृष्ण, तोमार हऊ' यदि बले एकबार।**
**मायाबन्ध हैते कृष्ण तारे करे पार॥३३॥**

**३३। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३३। जो सब समय केवल मुख से अभ्यास-वशतः 'कृष्ण मैं तुम्हारा हूँ' यह बात बार-बार बोलते हैं, उनकी यह बात सहृदय (हृदयपूर्वक अथवा सरलतापूर्वक कही गयी बात) नहीं हैं; किन्तु जो एकबार भी सहृदय (हृदय से, काय-मन और वचन से) ''हे कृष्ण, मैं—तुम्हारा दास हूँ''—यह बात कहता है, उसे कृष्ण माया के बन्धन से पार लगाते हैं।

परमदयालु कृष्ण की आश्वासन देने वाली वाणी—हरिभक्तिविलास (११/३३७) में उद्धृत श्लोक, रामायण के लङ्काकाण्ड (१८/३३) में विभीषण के गमन के प्रसङ्ग में श्रीरामचन्द्र के वचन—

**सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।**
**अभयं सर्वदा तस्मै ददाम्येतदव्रतं मम॥३४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३४। [भगवान् श्रीरामचन्द्र ने कहा—] मेरा यह व्रत है कि यदि कोई वास्तव में शरणागत होकर एकबार भी ''मैं तुम्हारा हूँ'' यह कहकर मुझसे अभय की याचना करता है, तब मैं उसे सदैव अभय प्रदान करता हूँ।

**अनुभाष्य**

३४। यः (जनः) प्रपन्नः (शरणागतः सन्) तवास्मि (त्वया सह नित्यदास्यसूत्रे आबद्धः भवामि) इति सकृदेव (बारमेक) च याचते (काकुयुक्तः प्रार्थयते), अहं (दशरथिः भगवान्) तस्मै सर्वदा अभयं ददामि,—एतत् (एव) मम व्रतं (प्रतिज्ञातम्)।

सकाम अशान्त पुरुषों को निरन्तर भजन के फल से शान्ति की प्राप्ति—

**मुक्ति-भुक्ति-सिद्धिकामी 'सुबुद्धि' यदि हय।**
**गाढ़-भक्तियोगे तबे कृष्णेरे भजय॥३५॥**

**३५। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३५। दुर्वासना और दुःसङ्ग वशतः जीव में मुक्ति, भुक्ति और सिद्धि रूपी कामनाएँ उदित होती हैं। ऐसे जीव की यदि किसी सत्सङ्ग से

सुबुद्धि उदित होती है, तब वह जीव मुक्ति-भुक्ति-सिद्धि की प्यास को परित्याग करके घनीभूत शुद्ध भक्तियोग के द्वारा कृष्ण का भजन करता है।

बुद्धिमान् मात्र के लिये ही कृष्णभजन विधेय (नियम)—
श्रीमद्भागवत (२/३/१०) में—

**अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।**
**तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥३६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३६। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा— ] मनुष्य पहले अकाम अर्थात् किसी भी प्रकार की कामना से रहित ही हो, सर्वकाम अर्थात् सब प्रकार की कामनाओं से युक्त ही हो अथवा मोक्ष की कामना करने वाला ही क्यों न हो, उदार बुद्धि होने मात्र से ही वह तीव्र शुद्धभक्तियोग से परमपुरुष कृष्ण का भजन करेंगे।

**अनुभाष्य**

३६। 'म्रियमाण (मरने के निकट बैठे हुए) मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है?''—परीक्षित के इस प्रश्न के उत्तर में श्रीशुकदेव जीव के लिये अहैतुकी शुद्धकृष्णभक्ति को ही एकमात्र नित्यधर्म कहकर दुर्बलचित्त वाले कामी (कामनाएँ करने वाले) व्यक्तियों के लिये भी श्रीहरि का भजन करना ही कर्त्तव्य है, यह कह रहे हैं—

सर्वकामः (उक्तानुक्तसर्वकामना युक्तः) मोक्ष-कामः (मुमुक्षुः) अकामः (एकान्त शुद्धभक्तः) वा, उदारधीः (सुधीः पुरुषः) तीव्रेण (दृढ़ेन स्वभावतः एव अप्रतिहतेन) भक्तियोगेन परं (मायाधीश) पुरुषं (पुरुषोत्तम) यजेत (सेवेत)।

कृष्ण की अहैतुकी दया का परिचय—

**अन्यकामी यदि करे कृष्णेर भजन।**
**ना मागिलेह कृष्ण तारे देन स्व-चरण॥३७॥**

**कृष्ण कहे,—''आमा भजे, मागे विषय-सुख।**
**अमृत छाड़ि' विष मागे,—एइ बड़ मूर्ख॥३८॥**
**आमि—विज्ञ, एइ मूर्खे 'विषय' केने दिब?**
**स्व-चरणामृत दिया 'विषय' भुलाइब॥''३९॥**

**३७-३९। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३७-३९। मुक्ति, भुक्ति और सिद्धि की कामना करने वाले शुद्धभक्ति की कामना करने वाले नहीं हैं; वे किसी भाग्यवशतः यदि शुद्ध कृष्ण भजन में लग जायें, साधनभक्ति का फल जो प्रेम है, वह यद्यपि तब उनका उद्देश्य नहीं भी हो, तब भी कृष्ण कृपा करके उन्हें प्रेम प्रदान करते हैं। कृष्ण यही बात कहते हैं कि, 'इस समय भजन में लगे हुए इस व्यक्ति के हृदय में विषय-सुख की स्पृहा थी एवं अवशिष्ट (बाद में, किञ्चित) कुछ स्वभावगत हो गया है; इस व्यक्ति ने प्रेमरूपी अमृत को छोड़कर विषय रूपी विष की वासना की है, अतएव यह व्यक्ति बड़ा ही मूर्ख है यद्यपि यह व्यक्ति अनजाने में सद्-विषय की प्रार्थना नहीं कर पाया, किन्तु मैं—विज्ञ और अभिज्ञ, इसके लिये जो सद्-असद् है, उसे जानता हूँ, अतएव मैं अपना चरणामृत देकर इसकी विषयरूपी विष की प्यास को भुलवा दूँगा'।

सकाम उपासक की भी कृष्ण की कृपा से
शुद्धभक्ति की कामना अथवा निष्कामता—
श्रीमद्भागवत (५/१९/२६) में—

**सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां**
**नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः।**
**स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-**
**मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥४०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४०। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा— ] कृष्ण

प्रार्थना किये जाने पर मनुष्यों की प्रार्थना को पूर्ण करते हैं, यह बात सत्य है, परन्तु जिस अर्थ (द्रव्य) से उनकी बार-बार प्रार्थना का उदय होता है, वह उस अर्थ को नहीं देते। अन्यकामी होकर जो केवल उनके पादपल्लव को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करने पर भी उनका भजन करते हैं, वे उन्हें स्वयं ही अन्यान्य कामनाओं को शान्त कर देने वाले अपने उन्हीं चरणकमलों को दिया करते हैं।

### अनुभाष्य

४०। श्रीशुकदेव महाराज परीक्षित को देवताओं के द्वारा की गयी मानव-जन्म की सभी जन्मों की अपेक्षा श्रेष्ठता और प्रयोजनीयता एवं मनुष्यों में अवतरित श्रीहरि और अहैतुकी शुद्ध हरिभक्ति के माहात्म्य का गान कर रहे हैं—

(सः हरिः कामिभिः) अर्थितः (प्रार्थितः सन्) नृणां (कामिनां पुंसाम्) अर्थितं (प्रार्थितं अभीष्टं द्रव्य) दिशति (ददाति इति) सत्यम् (तथापि सः प्रभुः प्रायशः तेषाम्) अर्थदः (परमार्थप्रदः) न (भवत्येव); यत् (यस्मात्) यतः (दत्तादनन्तरं सकामैः पुरुषैः) पुनः अपि अर्थिता (कामपूरण प्रार्थना) भवति। (तु) अनिच्छतां (निष्कामाना) भजतां (सेवकाना) इच्छापिधानं (इच्छानां वासनानां पिधानं आच्छादकं सर्वकामपरिपूरक) स्वयम् एव विधत्ते (सम्पादयति)।

किसी-किसी सकाम उपासक की शुद्धभक्ति के
अलावा किसी असत् कामना के रहने पर भी
निरन्तर सेवा-आनन्द के प्रभाव से ऐसे अभद्र
(अशुभ) का नाश, तब भी सकाम भाव
निष्काम भाव का कारण नहीं—

**काम लागि' कृष्णे भजे, पाय कृष्ण-रसे।**
**काम छाड़ि' 'दास' हैते हय अभिलाषे॥४१॥**

**४१। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

४१। सामान्य कामनाओं के उद्देश्य से यदि कोई कृष्णभजन का अनुसन्धान करके साधुसङ्ग में शुद्ध कृष्णभजन का अवलम्बन करें, तब उसकी पूर्व-उदिष्ट कामनाएँ दूर हो जाती हैं एवं उसे कृष्णरस प्राप्त होता है। कृष्ण भजन ऐसी एक पवित्र वस्तु है कि, कृष्ण भजन में प्रवृत्त व्यक्ति पूर्वोद्दिष्ट काम को त्याग करके कृष्ण का दास बनने की अभिलाषा करता है।

सकाम ध्रुव की श्रीहरि के
दर्शन होने पर प्रार्थना—
हरिभक्तिसुधोदय में ध्रुव-चरित्र (७/२८) में—

**स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं**
**त्वां प्राप्तवान् देवमुनीन्द्रगुह्यम्।**
**काचं विचिन्वन्नपि दिव्यरत्नं स्वामिन्**
**कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे॥४२॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

४२। ध्रुव को जब कृष्ण ने वर देने की इच्छा की, तब ध्रुव ने कहा,—स्वामिन्, मैं स्थान प्राप्ति का अभिलाषी बनकर आपकी तपस्या में स्थित हुआ था, किन्तु अब देवताओं और मुनियों के लिये भी दुर्लभ आपको प्राप्त करके मैं कृतार्थ हो गया हूँ—सामान्य एक काँच को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुझे दिव्यरत्न मिल गया है! मैं और किसी अन्य वर की याचना नहीं करता हूँ।

### अनुभाष्य

४२। स्थानाभिलाषी (स्थानं पदम् अभिलषितुं शीलमस्य तथाभूतः) अहं तपसि स्थितः; हे प्रभो, काचं विचिन्वन् (अन्वेषणं कुर्वन्) दिव्यरत्नम् (इव) देवमुनीन्द्रगुह्यं (देवानां मुनीन्द्राणामपि गुह्यं दुर्लभ) त्वां प्राप्तवान्; हे स्वामिन् अहं कृतार्थः अस्मि, अतः अन्यं वरं न याचे (ना प्रार्थये)।

सुकृतिमान् जीव
का वर्णन—

**संसार भ्रमिते कोन भाग्ये केह तरे।**
**नदीर प्रवाहे जेन काष्ठ लागे तीरे॥४३॥**

**४३। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

४३। अनन्त कृष्ण विमुख जीव उपाय रहित होकर संसार में उच्च-नीच योनियों में भ्रमण कर रहे हैं। उनमें से किसी की कोई सुकृति उदित होने पर, वह व्यक्ति महत् व्यक्ति के चरणों की सेवा के प्रभाव से उत्तीर्ण (अर्थात् उद्धार को प्राप्त) हो जाता है। नदी में बहुत से लकड़ी के गट्ठे तैरते हुए जाते है; प्रवाह के घात-प्रतिघात से कोई एक लकड़ी का गट्ठा तट पर आकर लगता है, अन्य लकड़ी के गट्ठे जल के प्रवाह में आगे बढ़ते ही जाते हैं।

श्रीमद्भागवत (१०/३८/५)—

**मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम्।**
**ह्रियमाणः कालनद्या क्वचितरति कश्चन्॥४४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४४। [ महात्मा अक्रूर ने विचार किया— ] 'मैं अत्यन्त अधम होने के कारण भगवान् का दर्शन प्राप्त नहीं कर पाऊँगा'—मेरी ऐसी आशंङ्का—झूठी है। काल रूपी नदी के वेग में बहते-बहते कदाचित् कोई-कोई नदी के पार भी लग जाता है।

**अनुभाष्य**

४४। देवर्षि नारद के द्वारा कंस वध आदि कार्यों के विषय में बतलाने के बाद प्रस्थान करने पर, महात्मा अक्रूर रामकृष्ण को लाने के लिये गोकुल में यात्रा करके मार्ग में अपने कृष्णदर्शन के सौभाग्य की चर्चा कर रहे हैं—

(एतदुत्तम:श्लोकदर्शनं मम दुर्लभं एवं मन्ये; यद्वा;) मैवम्; अधमस्य (नीचस्यापि) मम अच्युत दर्शनं स्यात् एव); (यतः) कालनद्या ह्रियमाणः कश्चन् क्वचित् तरति। (अयं भावः—यथा नद्यां ह्रियमाणानां तृणादीनां किञ्चित् कदाचित् तरति, तथा कर्मवशेन कालेन ह्रियमाणानां क्वचित् जीवानामपि मध्ये कश्चित् तरेदिति सम्भवतीत्यर्थः।

भक्ति उन्मुखी सुकृति के
फल से बद्धजीव को
सिद्धि की प्राप्ति—

**कोन भाग्ये कारो संसार क्षयोन्मुख हय।**
**साधुसङ्गे तरे, कृष्णे रति उपजय॥४५॥**

**४५। प० अनु०—**किसी भाग्य से किसी का संसार क्षय होने लगता है। वह साधुसङ्ग से तर जाता है, उसकी कृष्ण में रति उत्पन्न हो जाती है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४५। यहाँ पर 'भाग्य' शब्द का अर्थ क्या केवल घटनामात्र है, या फिर कुछ और? भक्ति शास्त्र 'सुकृति' को ही 'भाग्य' कहते हैं। सुकृति तीन प्रकार की है—भक्त्युन्मुखी सुकृति, भोगोन्मुखी सुकृति और मोक्षोन्मुखी सुकृति। जो सब कार्य संसार में शुद्धभक्ति को उत्पन्न करने वाले के रूप में स्थिर किये गये हैं, वे सब कार्य भक्त्युन्मुखी सुकृति को उत्पन्न करते है; जिन सब कार्यों का फल—विषयभोग है, वे सब कार्य ही भोगोन्मुखी सुकृति प्रदान करने वाले हैं; जिन सभी कार्यों का फल—मोक्ष है, वे सब कार्य ही मोक्षोन्मुखी सुकृति उत्पन्न करने वाले हैं। संसार के क्षय होने पर स्वरूप धर्म कृष्णभक्ति का उद्घाटन करने वाली सुकृति जब पुष्ट होकर फलोन्मुखी होती है, तभी भक्त साधुसङ्ग में संसार से उद्धार प्राप्त करता है एवं कृष्ण में उसकी रति उत्पन्न होती है।

सुकृति के फल से साधुसङ्ग, उसके फल से भजन में प्रवृति और अनर्थनिवृति के क्रम से साधन की सिद्धि अथवा साध्य कृष्णप्रेम की प्राप्ति—
श्रीमद्भागवत (१०/५१/५३) में—

**भवापवर्गो भ्रमतो यदा**
**भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।**
**सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ**
**परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥४६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४६। [ मुचुकुन्द ने कहा— ] हे अच्युत, संसार भ्रमण करते-करते अपवर्ग (अर्थात् संसार की समाप्ति) होने पर जब जीव को सत्सङ्ग की प्राप्ति होती है, तभी उसकी सद्गति और परावरेश्वर स्वरूप आपमें रति उत्पन्न होती है।

**अनुभाष्य**

४६। कालयवन-दैत्य के पद के आघात से निद्रा से उठे मुचुकुन्द के द्वारा कालयवन के ऊपर दृष्टिपात करने पर देवताओं से पूर्व में प्राप्त वर के प्रभाव से कालयवन के भस्म होने पर श्रीकृष्ण मुचुकुन्द को वर देने के लिये उद्यत हुए, तब मुचुकुन्द श्रीकृष्ण का स्तव कर रहे हैं—

हे अच्युत, भ्रमतः (संसरतः जनस्य) (भगवदनुकम्पया)भवापवर्गः (भवस्य संसारस्य अपवर्गः अन्तः नाशः) भवेत्, (प्रातःकालः स्यादित्यर्थः), (तदा) सत्समागमः (साधुसङ्गः) भवेत्, यर्हि (यदा) सत्सङ्गमः हि भवेत्, (तदा) एव सद्गतौ (सर्वोत्तम जन प्राप्ये नित्यपरमपदे) परावरेशे (भगवति कृष्णे) त्वयि रतिः (भक्तिः) जायते, (ततो संसारात् मुच्यते इति भावः)।

कृष्ण की कृपा से ही गुरु की कृपा की प्राप्ति—

**कृष्ण यदि कृपा करे कोन भाग्यवाने।**
**गुरु-अन्तर्यामि-रूपे शिखाय आपने॥४७॥**

**४७। प॰ अनु॰—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४७। पूर्वोक्त भक्त्युन्मुखी-सुकृतिशाली व्यक्ति के निकट यदि कोई महात्मा पुरुष उपस्थित भी न हों, तथापि कृष्ण अन्तर्यामि-गुरु के रूप में उसे शुद्धभक्ति की शिक्षा प्रदान करते हैं।

श्रीमद्भागवत (११/२९/६) में—

**नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश**
**ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः।**
**योऽन्तर्वहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्व-**
**न्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥४८॥**

४८। [ श्रीउद्धव ने भगवान् से कहा— ] हे ईश, ब्रह्मा के समान परम आयु प्राप्त करने वाले कविगण भी आपके स्मरण से उत्पन्न आनन्द के द्वारा आपके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करने में समर्थ नहीं होते हैं। क्योंकि, आप अपार कृपावशतः देहधारी जीवों के समस्त अशुभ को नाश एवं स्वगति प्रकाश करने हेतु बाहर से आचार्य के रूप में और अन्तर में अन्तर्यामीरूप में अवस्थित हैं।

**अनुभाष्य**

४८। आदि प्रथम परिच्छेद ४८ संख्या द्रष्टव्य।

दीक्षा के अन्त में सम्बन्धज्ञान और अभिधेय के फल से अनर्थनिवृत्ति, रुचि, आसक्ति और प्राप्य-प्रयोजन की प्राप्ति—

**साधुसङ्गे कृष्णभक्तये श्रद्धा यदि हय।**
**भक्तिफल 'प्रेम' हय, संसार जाय क्षय॥४९॥**

**४९। प॰ अनु॰—**साधु सङ्ग के प्रभाव से यदि कृष्णभक्ति में श्रद्धा होती है, तभी भक्ति के फल प्रेम की प्राप्ति होती है तथा संसार क्षय हो जाता है।

श्रद्धावान् भक्तियोगी अत्यधिक रागी (भोगी) अथवा अत्यधिक वैरागी (त्यागी) नहीं—
श्रीमद्भागवत (११/२०/८)—

**यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।**

**न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥५०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५०। [ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— ] किसी भाग्य के उदित होने पर व्यक्ति—मेरी कथा के प्रति श्रद्धावान्—जो व्यक्ति अत्यधिक वैरागी भी नहीं होता, अत्यधिक आसक्त भी नहीं होता—उसी के लिये ही भक्तियोग प्रेमभक्ति रूपी सिद्धि प्रदान किया करता है।

**अनुभाष्य**

५०। श्रीउद्धव को तीन प्रकार के योगों की बात बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण भक्तियोग के अधिकारी का निर्णय कर रहे हैं—

यदृच्छया (केनापि भाग्योदयेन) यः पुमान् मत्कथादौ (भगवत्कथा-श्रवण-कीर्त्तनादौ) तु जातश्रद्धः (अथच) निर्विण्णः (अतिविरक्तः फल्गु-वैराग्याश्रितः) न, अतिसक्तः (संसारे अत्याभिनि-विष्टः) च न, अस्य (श्रद्धालोर्जनस्य एव) भक्ति-योगः सिद्धिदः (अभीष्टप्रदः भवति)।

गुरु और वैष्णव अथवा साधु की कृपा से ही अनर्थ-निवृत्ति और शुद्धभक्ति की प्राप्ति—

**महत्-कृपा बिना कोन कर्मे 'भक्ति' नय।**
**कृष्णभक्ति दूरे रहु, संसार नहे क्षय॥५१॥**

**५१। प० अनु०—**महत् अर्थात् शुद्ध कृष्णभक्त की कृपा के बिना किसी भी प्रकार का कोई भी कार्य करने पर किसी में 'भक्ति' उत्पन्न नहीं हो सकती, कृष्ण भक्ति की बात को तो छोड़ो, किसी के संसार का भी क्षय नहीं हो सकता।

**अनुभाष्य**

५१। कर्मकाण्डीय किसी प्राकृत सुकृति के द्वारा अप्राकृत कृष्णभक्ति नहीं होती। एकमात्र कृष्ण भक्त की कृपा के अलावा अप्राकृत कृष्णभक्ति के उदित होने की सम्भावना नहीं है; कृष्णभक्ति की बात तो दूर, प्राकृत बुद्धि रूपी संसार तक भी नष्ट नहीं होता। कृष्ण भक्त के अलावा अन्य किसी भी जीव में महानता की सम्भावना नहीं होती। कृष्णभक्त ही एकमात्र अप्राकृत है। प्राकृत-दर्शन में उसे कुछ लोगों के द्वारा 'प्राकृत' समझने पर भी वास्तव में प्राकृत समस्त वस्तुओं को परित्याग करने वाले कृष्णभक्त को ही अतुलनीय श्रेष्ठ और जीवों के एकमात्र प्रार्थनीय हितैषी जानकर उनकी कृपा का भिक्षु बनने से ही प्राकृत भोग और नहीं रहते एवं अप्राकृत कृष्ण सेवाधिकार प्राप्त होता है।

महत् अथवा शुद्धभक्त के आनुगत्य के बिना कृष्णप्राप्ति सुदुर्लभ—

श्रीमद्भागवत (५/१२/१२) में—

**रहुगणैतत्तपसा न याति न**
**चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।**
**न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना**
**महत्पादरजोऽभिषेकम्॥५२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५२। [ महाभागवत भरत ने कहा— ] हे रहुगण, महाजनों के चरणों की रज में अभिषेक किये बिना भगवान् की भक्ति, तपस्या द्वारा, वैदिक अर्चन आदि के द्वारा, संन्यास पालन द्वारा, गृहस्थ धर्म के पालन द्वारा, वेद पाठ के द्वारा अथवा जल-अग्नि-सूर्य द्वारा कभी भी प्राप्त नहीं होती।

**अनुभाष्य**

५२। सिन्धुसौवीराधिपति रहुगण के द्वारा द्विज-बन्धुलिङ्ग अवधूत भरत के मुख से तत्त्वज्ञान का श्रवण करते समय उन्हें प्रणाम करके दुर्बोध्य अध्यात्मयोग की सुबोध्य रूप में व्याख्या करने की प्रार्थना करने पर ब्राह्मणवेषी महाभागवत-परमहंस भरत रहुगण को पहले अविद्या और उसके विनाशक शुद्धज्ञानमय विग्रह भगवान् वासुदेव की कथा सुनाकर बाद में भगवद् प्राप्ति के उपाय का वर्णन कर रहे हैं—

हे रहुगण, महत्पादरजोऽभिषेकं (शुद्ध कृष्ण भक्त पदरेणुना अभिषेचनं) बिना (ऋते) एतत् (अप्राकृतं वासुदेवात्मकभगवतत्त्व) तपसा (वानप्रस्थ-धर्मेण) न, इज्यया (वैदिककर्मणा देवार्चनेनेत्यर्थः) च न, निर्वपणात् (योषित् सङ्ग राहित्यात् सन्यासात् इत्यर्थः) न गृहात् योषित्सङ्गमूलक-गृहमेध-यज्ञ-चालनात् वा न), छन्दसा (वेदाभ्यासेन)न, जलाग्नि-सूर्यैः (तत्तदुपासितैः) न याति (न प्राप्नोति) एव।

महत् अथवा शुद्ध वैष्णव की कृपा से ही अनर्थनाश और उसके फलस्वरूप विष्णुपद की प्राप्ति—
श्रीमद्भागवत (७/५/३२) में—

**नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं**
**स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।**
**महीयसां पादरजोऽभिषेकं**
**निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥५३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५३। [श्रीप्रह्लाद महाराज ने कहा—] जब तक मनुष्यों की मति निष्किञ्चन भगवद्भक्तों की पदधूलि द्वारा अभिषिक्त नहीं होती, तब तक वह अनर्थनाशक कृष्णपादपद्मों का स्पर्श नहीं कर पाते।

**अनुभाष्य**

५३। देवर्षि नारद धर्मराज युधिष्ठिर को प्रह्लाद के उपाख्यान का वर्णन कर रहे हैं। महाभागवत प्रह्लाद के द्वारा दैत्यराज हिरण्यकशिपु के प्रश्न के उत्तर में विष्णु की नवविद्या भक्ति को एकमात्र सर्वश्रेष्ठ पाण्डित्य और शिक्षा के रूप में वर्णन करने पर, हिरण्यकशिपु ने गुरुपुत्र षण्डामर्क की बहुत अधिक भर्त्सना की। तब षण्डामर्क ने प्रह्लाद की स्वाभाविकी मति को ही उनकी विष्णु-भक्ति के कारण के रूप में निर्देष करके अपने दोष को झुठलाया, तब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से उनकी ऐसी वैष्णवी मति का कारण बतलाने के लिए कहा, प्रह्लाद उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहकर विष्णुभक्ति के विरोधी गृहव्रती जनों के बन्धन और मोक्ष का उपाय बतला रहे हैं—

निष्किञ्चनानां (निरस्तसकल विषयाभिमानाना) महीयसां (महत्तमानां वैष्णवाना) पादरजोऽभिषेकं पदरजसा अभिषेचनं लेपन) यावत् न वृणीत (कुर्वीत) तावत् (श्रुतिवाक्यतो ज्ञातोऽपि एषां गृहव्रताना) मतिः (प्रवृत्तिः) उरुक्रमाघ्रिं: (उरुक्रमस्य पदं न स्पृशति (न प्राप्नोति असम्भावनादिभिर्हिन्यते इत्यर्थः); अनर्थापगमः (अनर्थस्य असदवग्रहस्य, तत्पदस्पर्श-विघ्नस्य संसारस्येत्यर्थं अपगमः विनाशः) यदर्थः (यस्याः अङ्घ्रिस्पर्शिन्याः मतेः अर्थः फलं, महदनु-गृहाभावान्न तत्त्वनिश्चयः नापि मोक्षस्तेषामित्यर्थः)।

चेतन के आधे क्षण के सङ्ग के फल से ही जीव की चिद्-वृत्ति कृष्ण-सेवा का उद्बोधन और साध्य की प्राप्ति—

**'साधुसङ्ग', 'साधुसङ्ग'—सर्वशास्त्रे कय।**
**लवमात्र साधुसङ्गे सर्वसिद्धि हय॥५४॥**

**५४। प० अनु०—**इसलिए सभी शास्त्र साधुसङ्ग, साधुसङ्ग करने के लिये कहते हैं, क्योकि लवमात्र के साधुसङ्ग से सर्वसिद्धि की प्राप्ति होती है।

**अनुभाष्य**

५४। लव,—निमेषकाल, सवा ग्यारह लव में एक सैकेण्ड होता है।

साधुसङ्ग की महिमा—
श्रीमद्भागवत (१/१८/१३) में—

**तुलयाम् लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।**
**भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥५५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५५। [शौनक आदि ऋषियों ने श्रीसूत से कहा—] भगवान् के सङ्गी के सङ्ग द्वारा जीव का जो असीम मङ्गल होता है, उसके साथ स्वर्ग

अथवा मोक्ष की बिल्कुल भी तुलना नहीं की जा सकती, राज्य आदि प्राप्ति की तो बात बहुत दूर है।

**अनुभाष्य**

५५। शौनक आदि ऋषि यज्ञानुष्ठान आदि तुच्छ कर्मकाण्ड में स्वयं के व्यर्थ के परिश्रम का उल्लेख करके महाभागवत हरिकथा-कीर्त्तन कारी सूत के सङ्ग के माहात्म्य का वर्णन कर रहे हैं—

(हे सूत), भगवत्सङ्गिसङ्गस्य (भगवत्सङ्गी हरि-जनः तस्य सङ्गस्य) लवेन (अत्यल्पक्षणेन अपि) स्वर्गम् (आदर्श सुख भोग स्थान) न तुलयाम (तुल्यं न पश्याम्), अपुनर्भवं (मोक्षं वा) न (तुल-याम); मर्त्यानां (प्राकृतदेव विप्राजन्या दीनाम्) आशिषः (अतितुच्छाः वित्त वैभवाद्याः) किमुत (किं वक्तव्यं, नैव तुलयामेत्यर्थः)।

गीता की शिक्षा—

**कृष्ण कृपालु अर्जुनेरे लक्ष्य करिया।**
**जगतेरे राखियाछेन उपदेश दिया॥५६॥**

**५६। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण बहुत कृपामय है। उन्होंने अर्जुन को लक्ष्य करके जगत् में अपने उपदेश को प्रदान किया है।

कृष्णप्राप्ति के उद्देश्य से ही सभी क्रियाएँ करना कर्त्तव्य—
श्रीमद्भगवद्गीता (१८/६४-६५)—

**सर्वगुह्यतमं भूयः श्रुणु मे परमं वचः।**
**इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥५७॥**
**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**
**मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥५८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५७-५८। [भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—] तुम—मेरे अत्यन्त आत्मीय हो, अतएव तुम्हें तुम्हारे हित के लिये सर्वगुह्यतम् (सबसे गोप्य) सर्वश्रेष्ठ उपदेश दे रहा हूँ;—तुम मन्मना (मुझमें ही अपने मन को लगाने वाले), मेरे भक्त और मेरा ही अर्चन करने वाले तथा मेरे शरणागत बनो, तभी मुझे निश्चय ही प्राप्त करोगे। तुम—मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसलिए मैंने अपने इन प्रतिज्ञा पूर्ण वचनों को तुमसे कहा है।

**अनुभाष्य**

५७-५८। हे अर्जुन, मे (मम) सर्वगुह्यतमं (अत्यन्तगोप्य) परमं वचः (वाक्य) भूयः (पुनः) श्रृणु; (यतः) मे (मम) दृढ़ (अत्यन्त) इष्टः (प्रियतमः) असि, ततः (तस्माद्धेतोः) ते (तव) हितं (मङ्गल) वक्ष्यामि (कथयामि)—(त्व) मन्मनाः (मच्चित्तः) मद्भक्तः (मद्भजनशीलः) मद्याजी (मदर्चनशीलः) भव, मां (अन्यप्राकृतदेवादीन् परित्यज्य अप्राकृतं मां कृष्णरूपं एव) नमस्कुरु; (एव वर्त्तमानस्त्वं मत्प्रसादात् शुद्धभक्त्या) माम् एव ऐष्यसि (प्राप्स्यसि, अत्र च संशयं मा कार्षीः) त्वं हि मे प्रियः असि, (अतः) सत्यं (यथा भवति एव) ते (तुभ्य) अहं प्रतिजाने (प्रतिज्ञां करोमि)।

पहले कर्म-ज्ञान-योग आदि के अभिधेय होने के विषय में कहने पर भी, सबसे अन्तिम आज्ञा कृष्णभक्ति ही एकमात्र अभिधेय और विधि—

**पूर्व आज्ञा,—वेद-धर्म, कर्म, योग, ज्ञान।**
**सब साधि' अवशेष-आज्ञा—बलवान्॥५९॥**

**५९। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण ने भगवद्-गीता में पहले वेद-धर्म, कर्म, योग तथा ज्ञान आदि का उपदेश प्रदान किया है, किन्तु उनके द्वारा दिया गया उपरोक्त अन्तिम उपदेश अत्यन्त बलवान है।

सब प्रकार के धर्मों को छोड़कर कृष्ण भजन की चेष्टा—

**एइ आज्ञाबले भक्तेर 'श्रद्धा' यदि हय।**
**सर्वकर्म त्याग करि' से कृष्णेरे भजय॥६०॥**

**६०। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के इस उपदेश की शक्ति में यदि किसी भक्त की श्रद्धा होती है, तब वह भक्त सब प्रकार के कर्मों का त्याग करके श्रीकृष्ण का ही भजन करता है।

श्रीमद्भागवत (११/२०/९)—

**तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।**
**मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥६१॥**

६१। [ भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा— ] जब तक कर्म मार्ग में निर्वेद (वैराग्य) उदित ना हो, अथवा मेरी कथा के श्रवण आदि में श्रद्धा उत्पन्न ना हो, तब तक नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म करने चाहिए।

**अनुभाष्य**

६१। मध्यलीला नवम परिच्छेद २६६ संख्या द्रष्टव्य है।

श्रद्धा की संज्ञा—

**'श्रद्धा'-शब्दे—विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय।**
**कृष्णे भक्ति कैले सर्वकर्म कृत हय॥६२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६२। 'कृष्ण भक्ति करने से सब कार्य करना हो जाता है'—ऐसे सुदृढ़ निश्चयात्मक विश्वास को भक्ति का अधिकार प्रदान करने वाली 'श्रद्धा' कहते हैं।

**अनुभाष्य**

६२। सुदृढ़ निश्चयात्मक विश्वास को 'श्रद्धा' कहते हैं; कृष्ण की सेवा करने से प्राकृत-राज्य के समस्त पितृ-भूत-देव-ऋण को चुकाने आदि कर्त्तव्य-अनुष्ठानों की आवश्यकता नहीं रहती। कर्म,—बद्धजीव का भोगपरक अनुष्ठान मात्र हैं; भगवद् भक्ति के उदित होने पर कर्मफल के लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ती। कर्मफल की सबसे उत्तम प्राप्य वस्तु 'वैराग्य' सदैव भक्तों में आनुषङ्गिक रूप में रहता है।

कृष्ण के पूजन से ही सभी की पूजा—

श्रीमद्भागवत (४/३१/१४)—

**यथा तरोर्म्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति**
**तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।**
**प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव**
**सर्वार्हणमच्युतेज्या॥६३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६३। [ श्रीनारद ऋषि ने कहा— ] जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में जल सींचने से, उस वृक्ष के स्कन्ध, भुजाएँ, उपशाखाएँ आदि सभी तृप्त हो जाते हैं एवं प्राणों की तृप्ति से ही जिस प्रकार सभी इन्द्रियों की तृप्ति होती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की पूजा करने से ही समस्त देवताओं की पूजा हो जाती है।

**अनुभाष्य**

६३। प्रजापति दक्ष के पुत्र प्रचेतागणों के द्वारा अपने गुरुदेव देवर्षि श्रीनारद के दर्शन करके उनसे पुनः आत्मतत्त्व अर्थात् श्रीहरि की कथा का कीर्त्तन करने का अनुरोध करने पर श्री नारद सर्वभूतात्मा श्रीहरि के माहात्म्य का वर्णन कर रहे हैं—

यथा तरोः (वृक्षस्य) मूलनिषेचनेन (पाददेशेजल-प्रक्षेपेण) तत्स्कन्ध-भुजोपशाखाः (स्कन्धादिपत्र-पुष्पाद्यन्तानि सर्वाणि वृक्षाङ्गानि) तृप्यन्ति (न तु मूलसेकं बिना ताः स्वस्वनिषेचनेन), (यथा) प्राणो-पहारात् (प्राणस्य उपहारः भोजनं तस्मात्) इन्द्रियाणां च तृप्तिः (न तु ततदिन्द्रियेषु पृथक् पृथगन्नलेपनेन), तथा अच्युतेज्या (भगवतः विष्णोः अर्चनम्) एव सर्वार्हणं (सकलदेवताराधनम्, न हि पृथगुपासनायामा-वश्यकतास्तीत्यर्थः)।

भक्ति के अधिकारी (तीन प्रकार के भक्ति के अधिकारियों का) निर्णय और भेद—

**श्रद्धावान् जन हय भक्ति-अधिकारी।**
**'उत्तम', 'मध्यम', 'कनिष्ठ'—श्रद्धा-अनुसारी॥६४॥**

६४। **प० अनु०—**श्रद्धावान् व्यक्ति ही भक्ति के अधिकारी हैं तथा श्रद्धा के अनुसार ही वे उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ होते हैं।

### अनुभाष्य

६४। श्रद्धावान् अर्थात् केवल वास्तव वस्तु नित्य सत्य परमार्थ कृष्ण में सुदृढ़-निश्चयात्मक-विश्वास से युक्त व्यक्ति ही भक्ति का अधिकारी होता है। भक्त के विश्वास की निश्चयात्मक दृढ़ता के तारतम्य पर ही अधिकार में उत्तमत्व, मध्यमत्व और कनिष्ठत्व निर्भर करता है।

(१) उत्तम-अधिकारी
की संज्ञा—

**शास्त्रयुक्तये सुनिपुण, दृढ़श्रद्धा जाँर।**
**'उत्तम अधिकारी' सेइ तारय संसार॥६५॥**

६५। **प० अनु०—**जो भक्त शास्त्र तथा शास्त्रों की युक्तियों में अत्यन्त निपुण होने के कारण दृढ़ श्रद्धावान् होता है, वे उत्तमाधिकारी हैं, तथा वह संसार के सभी प्राणियों का उद्धार कर सकता है।

### अनुभाष्य

६५। (भः रः सिः पूः विः द्वितीय लहरी वैधीभक्ति के वर्णन में ११ श्लोक में) श्रीरूप-गोस्वामिपाद ने लिखा है—''शास्त्रे युक्तौ च निपुणः सर्वथा दृढ़-निश्चयः। प्रौढ़ श्रद्धोऽधिकारी यः स भक्तावुत्तमो मतः॥'' 'भक्ति-शास्त्र में दक्ष एवं उसके अतिरिक्त अन्यान्य मार्गों के खण्डन में दृढ़ युक्ति में पटु',—ऐसे प्रौढ़ श्रद्धा वाले व्यक्ति ही भक्तों में 'उत्तम अधिकारी' है।

(२) मध्य-अधिकारी की संज्ञा—

**शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ़, श्रद्धावान्।**
**'मध्यम-अधिकारी' सेइ महा-भाग्यवान्॥६६॥**

**६६। प० अनु०—**जो शास्त्रों की युक्तियों को भली-भाँति नहीं जानता, किन्तु हैं दृढ़ श्रद्धावान्, वह महाभाग्यवान् व्यक्ति मध्यम-अधिकारी है।

(३) कनिष्ठ-अधिकारी की संज्ञा—

**जाहार-कोमल श्रद्धा, से—'कनिष्ठ' जन।**
**क्रमे-क्रमे तेंहो भक्त हइबे 'उत्तम'॥६७॥**

**६७। प० अनु०—**जिसकी श्रद्धा बहुत कोमल है, वह कनिष्ठ-अधिकारी है। क्रमशः वह भी उत्तम भक्त बन जाता है।

भक्त के तारतम्य (अन्तर) का कथन—

**रति-प्रेम-तारतम्ये भक्त—तर-तम।**
**एकादश स्कन्धे तार करियाछे लक्षण॥६८॥**

**६८। प० अनु०—**रति और प्रेम के तारतम्य से भक्तों में भी तारतम्य होता है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में श्री शुकदेव गोस्वामी ने इसके लक्षण बतलाये हैं।

### अमृतप्रवाह भाष्य

६४-६८। पहले कहे गये मतानुसार जिनके हृदय में श्रद्धा हुई है, वे ही भक्ति के अधिकारी हैं। वे श्रद्धावान् व्यक्ति —'उत्तम', 'मध्यम' और 'कनिष्ठ' के भेद से तीन प्रकार के हैं। जो शास्त्र और युक्ति में दक्ष होकर दृढ़ श्रद्धावान् हुए हैं, वे—'उत्तमाधिकारी' हैं; जो दृढ़शास्त्रयुक्ति नहीं जानते, किन्तु श्रद्धावान् हैं, वे—'मध्यमाधिकारी' हैं; जिनकी श्रद्धा दृढ़ नहीं हुई, वे 'कनिष्ठाधिकारी' हैं। इन तीन प्रकार के विभाग के द्वारा भक्तों का विभाग हुआ केवल ऐसा नहीं है, इससे शुद्धभक्ति के अधिकारी व्यक्ति का भी विभाग हुआ है। 'कनिष्ठ-

श्रद्ध' केवल 'कृष्ण भक्ति करना अच्छा है',—इतना ही विश्वास करता है; किन्तु शुद्धकृष्ण भक्ति क्या है, एवं भक्ति के तटस्थ लक्षण के द्वारा सिद्ध प्रक्रिया क्या है, वह उसे नहीं जानता। इसलिए कोमल श्रद्धा वालों के हृदय में ज्ञान-कर्म का मिश्रित भाव पाया जाता है। उसके तिरोहित (दूर) होने पर साधक 'मध्यमाधिकारी' बन जाता है। पुनः वह मध्यमाधिकारगत श्रद्धा शास्त्र युक्ति के द्वारा जब दृढ़ होती है, तब वह 'उत्तमाधिकारी' बन जायेंगे। यहाँ तक भक्ति का अधिकार निर्णीत हुआ; अब भक्तों का विभाग कर रहे हैं;—रति और प्रेम के तारतम्य से 'भक्त', 'भक्ततर' और 'भक्ततम',—ये तीन प्रकार के विभाग हैं।

### अनुभाष्य

६६-६८। (भः रः सिः पूः विः द्वितीय लहरी के १२ श्लोक में) श्रीरूपगोस्वामिपाद ने लिखा है,—''यः शास्त्रादिष्वनिपुणः श्रद्धावान् स तु मध्यम। यो भवेत् कोमलश्रद्धः स कनिष्ठो निगद्यते॥'' मध्यमभक्त श्रद्धावान् होने पर भी शास्त्रादि के तात्पर्य में वैसा कुशल नहीं होता एवं जो कोमल श्रद्धा वाला है, वही कनिष्ठ है। कनिष्ठाधिकारी अभक्तों के सङ्ग से कृष्ण के चरणकमलों के प्रति की गयी कोमल श्रद्धा से भी विच्युत हो सकता है। मध्यमाधिकारी शास्त्र आदि के तात्पर्य द्वारा अभक्त के सङ्ग के कुफल से तत्क्षणात् मुक्त नहीं हो पाने पर भी शास्त्र आदि और हरिजन के सङ्ग के प्रभाव से दृढ़ता प्राप्त करता है। अभक्त-सङ्ग किसी भी प्रकार से उत्तमाधिकारी की श्रद्धा की बिल्कुल भी हानि नहीं कर सकता। श्रद्धा की वृद्धि के साथ-साथ भक्तों का अधिकार उन्नत होता है।

६८। अजात-रुचि (जिनकी रुचि अभी उत्पन्न नहीं हुई है, ऐसे) वैध-भक्तों की श्रद्धा के परिमाणानुसार रति (जात रुचि भक्तों की श्रद्धा को ही 'रति' कहते हैं) का तारतम्य होता है। रति के तारतम्य के भेद से प्रेमभक्तिरस का तारतम्य है। एकादश स्कन्ध में श्रीभगवान और उद्धव के संवाद में भक्तों का अधिकार लिखा गया है।

उत्तम भक्त अथवा महाभागवत का लक्षण—
श्रीमद्भागवत (११/२/४५-४७) में—

**सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।**
**भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥६९॥**

६९। [ नवयोगेन्द्रों में से एक 'हवि' कह रहे हैं— ] जो उत्तम भागवत होते है, वे सभी प्राणियों में आत्मा के भी आत्म रूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को ही देखते हैं एवं आत्मा के आत्म स्वरूप श्रीकृष्ण में समस्त जीवों को देख पाते हैं।

### अनुभाष्य

६९। मध्य अष्टम परिच्छेद २७४ संख्या द्रष्टव्य।

मध्यम भक्त के लक्षण—

**ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।**
**प्रेम-मैत्री-कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥७०॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

७०। [ नवयोगेन्द्रों में से एक 'हवि' कह रहे हैं— ] जो भक्त ईश्वर के प्रति प्रेम, भक्त के प्रति मित्रता, मूर्ख व्यक्तियों के प्रति कृपा एवं विद्वेषी लोगों के प्रति उपेक्षा का भाव रखता है, वह—'मध्यम भक्त' है।

### अनुभाष्य

७०। श्रीनारद वसुदेव के समक्ष भागवतधर्म का कीर्त्तन करते समय विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्र के संवाद का वर्णन कर रहे हैं। निमि के द्वारा तीन प्रकार के भक्तों अथवा भागवतों के लक्षण और आचरण के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर उसके उत्तर में नवयोगेन्द्रों में से एक

हवि-ऋषि ने कहा—यः इश्वरे (भगवति कृष्णे) प्रेमाणं करोति, तदधीनेषु (उत्तम-मध्यम-कनिष्ठाधि-कारिषु भगवद् भक्तेषु) मैत्रीं (शुश्रुषाप्रणति समादरादि यथोचितसख्यता) करोति, बालिशेषु (भक्त्यनभिज्ञेषु) कृपां करोति, द्विषत्सु (भगवद्भागवत-विरोधि-जनेषु) उपेक्षां करोति (वीतरागं प्रदर्शयति, तेषां सङ्गं सर्वथा वर्जयतीत्यर्थः), सः (भागवतः) मध्यमः (मध्यम-संज्ञकः, एवम्भूतस्य भेदस्य दर्शनात्)।

कनिष्ठ भक्त के लक्षण—

**अर्च्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।**
**न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥७१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७१। जो लौकिक और पारिवारिक प्रथा के अनुसार परम्परागत श्रद्धा के साथ अर्चा मूर्त्ति में हरि की पूजा करते हैं, तब भी शास्त्र-अनुशीलन के द्वारा शुद्धभक्ति तत्त्व को नहीं जानने के कारण हरि के भक्तों की पूजा नहीं करते, वे—'प्राकृत भक्त' हैं अर्थात् उन्होंने अभी भक्तिपर्व प्रारम्भ मात्र ही किया है। उन्हें 'भक्त प्राय' अथवा 'वैष्णवाभास' नामक शब्दों के द्वारा सम्बोधित किया जाता है।

६९-७१। तात्पर्य यह है कि जब कोई ईश्वर के प्रति 'प्रेम' भक्तों के प्रति 'मैत्री', मूर्ख जनों के प्रति 'कृपा' एवं भगवद्-विद्वेषी और भगवद्भक्त-विद्वेषी की 'उपेक्षा करने में समर्थ होता है, तभी वह शुद्धभक्त के रूप में 'मध्यम भक्त' में गिना जाता है। बाद में भजन करते-करते जब वह सभी प्राणियों में अपने सम्बन्ध से भगवद्-भाव और आत्म-स्वरूप भगवद् प्रदार्थ में समस्त प्राणियों की विद्यमानता देखता है, तब उसका ईश्वर, उनके अधीन व्यक्ति, सरल एवं विद्वेषी के प्रति भेदभाव नहीं रहता; उस अवस्था में वह 'भागव-तोत्तम' कहलाता है।

**अनुभाष्य**

७१। यः हरये (भगवते गुरवे आत्मानं निवेद्य) अर्चायां (श्रीविग्रहे) श्रद्धया (दीक्षितः सन् मिश्रत्वेन भक्त्याभासेन पाञ्चरात्रिकविधानेन) पूजाम् ईहते (करोति), तद्भक्तेषु (हरिजनेषु) पूजां न (ईहते भक्त-तारतम्यज्ञानाभावात्) अन्येषु च (हरिविमुखसङ्गं च वर्जयतीत्यर्थः), स भक्तः प्राकृतः (कनिष्ठः वैष्णव-प्रायः, न तु शुद्धः इत्यर्थः) स्मृतः (कथितः)।

शुद्धभक्त कृष्ण के सभी गुणों में विभूषित—

**सर्व महा-गुणगण वैष्णव-शरीरे।**
**कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण, सकलि-सञ्चारे॥७२॥**

**७२। प० अनु०—**वैष्णवों की देह में समस्त महद् गुण विराज करते हैं। भगवान् श्री कृष्ण के भक्तों में कृष्ण के समस्त गुण सञ्चारित होते हैं।

**अनुभाष्य**

७२। श्रीभगवान् विष्णु भक्तों की एकमात्र उपास्य-वस्तु हैं; भगवद्गुण समूह—भक्तों की ही सम्पत्ति हैं। भगवान् के समस्त गुण शुद्धभक्त में सञ्चारित होते हैं।

शुद्ध-वैष्णव—सब प्रकार के महागुणों में गुणी,
अवैष्णव—बिल्कुल ही गुणहीन—
(श्रीमद्भागवत ५/१८/१२)—

**यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना**
**सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।**
**हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा**
**मनोरथेनासति धावतो वहिः॥७३॥**

७३। [श्रीशुकदेव महाराज परीक्षित से कह रहे हैं—] श्रीकृष्ण में जिनकी केवला-भक्ति है, उनमें समस्तगुण सहित देवतागण वास करते हैं। जो हरिभक्ति-विहीन हैं, उनका मन सदैव असत् बाहरी विषयों की ओर धावित रहता है। उनमें महद्गुण आना असम्भव है।

**अनुभाष्य**

७३। श्रीशुक परीक्षित के समक्ष 'भद्रश्रवा' नामक वर्षपति और अनुचरगण के द्वारा किये गये भगवान् श्रीनृसिंह और उनके शुद्धभक्तों के स्तवगान का वर्णन कर रहे हैं। आदि अष्टम परिच्छेद ५८ संख्या द्रष्टव्य है।

वैष्णवों के छब्बीस गुण अथवा
लक्षणों का वर्णन—

**सेइ सब गुण हय वैष्णव-लक्षण।**
**सब कहा ना जाय, करि दिग्‌दरशन॥७४॥**

**७४। प० अनु०—**वे सब गुण ही वैष्णव के लक्षण हैं। उन समस्त गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता, मैं उनका केवल दिग्दर्शन ही कर रहा हूँ।

उनमें से कृष्ण के प्रति शरणागति ही 'स्वरूप' तथा अन्य सब 'तटस्थ' लक्षण—

**कृपालु, अकृतद्रोह, सत्यसार, सम।**
**निर्दोष, वदान्य, मृदु, शुचि, अकिञ्चन॥७५॥**
**सर्वोपकारक, शान्त, कृष्णैकशरण।**
**अकाम, निरीह, स्थिर, विजित-षड्‌गुण॥७६॥**
**मितभुक्, अप्रमत्त, मानद, अमानी।**
**गम्भीर, करुण, मैत्र, कवि, दक्ष, मौनी॥७७॥**

**७५-७७। प० अनु०—**भक्त कृपालु, शत्रु भाव से रहित, सत्य को ही सार जानने वाला, समबुद्धि से युक्त निर्दोष, दानी, कोमलचित्त, पवित्र, जागतिक धन-सम्पत्ति से रहित अथवा श्रीकृष्ण की सेवा के लिये सब त्याग करने वाला, सभी का उपकार करने वाला, शान्त (निष्काम), कृष्ण की ही शरण में रहने वाला, अकाम (अपनी इन्द्रियों की तृप्ति की वासना से रहित) निरीह (जागतिक उन्नति की चेष्टा से रहित), भक्ति में स्थिर, काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद तथा ऐश्वर्य नामक छह प्रकार के दुर्गणों को जीतने वाला, मितभुक (परिमित भोग स्वीकार करने वाला), अप्रमत्त (उन्मत्त नहीं होने वाला), मानद (दूसरों को सम्मान देने वाला), अमानी (अपने सम्मान की अभिलाषा से रहित), गम्भीर, करुण (दयालु), सभी का मित्र, कवि, दक्ष तथा मौनी होता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७५-७७। 'कृपालु' से लेकर 'मौनी' तक गुण—वैष्णवों के लक्षण हैं।

श्रीमद्भागवत (३/२५/२१) में—

**तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।**
**अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः॥७८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७८। [भगवान् श्रीकपिलदेव ने कहा—] समस्त साधु तितिक्षा (सहनशीलता से) युक्त, करुणा से युक्त, सभी जीवों के सुहृत (बन्धु), अजातशत्रु, शान्त और साधुभूषण होते हैं।

**अनुभाष्य**

७८। शौनक आदि ऋषियों के द्वारा भगवान् कपिलदेव की लीलाकथा की जिज्ञासा करने पर महाभागवत सूत उन्हें व्यास-सखा भगवान् मैत्रेय के द्वारा पूर्वकाल में विदुर के समक्ष वर्णित इस आत्मतत्त्व और भगवान् कपिल और देवहूति के संवाद का प्रसङ्ग वर्णन कर रहे हैं, कपिलदेव असद् वस्तु में आसक्ति को ही जीव के बन्धन का कारण और सद्-वस्तु में आसक्ति को ही मोक्ष के द्वार के रूप में वर्णन करके सद्‌वस्तु साधुओं के पहले 'तटस्थ', बाद में 'स्वरूप'-लक्षण बतला रहे हैं—

(साधुनां लक्षणमाह—) तितिक्षवः (सहिष्णवः) कारुणिका (दयार्द्रचित्ताः) सर्वदेहिनां (सर्वजीवाना) सुहृदः (बान्धवाः) अजातशत्रवः (निर्वैराः) शान्ताः (निष्कामाः) साधुभूषणाः (साधु सुशीलं, तदेव भूषणं येषां ते) साधवः (शास्त्रानुवर्त्तिनः)।

महत् अथवा वैष्णवों की सेवा से ही माया से छुटकारा; स्त्री-सङ्गी की सेवा से संसार-बन्धन और नरक की प्राप्ति—(श्रीमद्भागवत ५/५/२) में—

**महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्-**
**तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।**
**महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता**
**विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥७९॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

७९। [ भगवान् ऋषभदेव ने कहा— ] पण्डितों ने महत्-सेवा को ही वास्तविक मुक्ति के द्वार-स्वरूप एवं स्त्रियों के प्रति जिनकी आसक्ति है, उनके सङ्ग को ही तमोगुण का द्वार कहा है। जो—साधु हैं, वे—श्रेष्ठ व्यवसायी हैं, समचित्त, प्रशान्त, अक्रोध एवं सभी के सुहृत हैं।

### अनुभाष्य

७९। किसी समय राजर्षि भरत के पिता भगवान् ऋषभदेव ने ब्रह्मावर्त्त में उपस्थित होकर ऋषियों के निकट उपदेश श्रवण में रत पुत्रों के समक्ष मोक्षधर्म और पारमहस्य-धर्म का वर्णन किया था—

(तत्त्वकोविदाः) महत् सेवां (वैष्णवपरिचर्या) विमुक्तेः (संसारबन्धन-मोचनस्य) द्वारं (हेतुम् आहः (कथयन्ति) ; योषितां सङ्गिसङ्गं (स्त्री सङ्गिविषयिणां भोक्तृणां सङ्गं) तमोद्वारं (संसारस्य नरकस्य वा, द्वारं हेतुम् आहुः); (तत्र) ये समचित्ताः (समदर्शिनः पण्डिताः) प्रशान्ताः (शुद्धचित्ताः) विमन्यवः (क्रोधरहिताः) सुहृदः (बान्धवाः) साधवः (परदोषा-दर्शिनः), ते महान्तः (ज्ञेयाः)।

साधुसङ्ग के माहात्म्य का वर्णन; साधुसङ्ग के फल से ही कृष्णसेवा की प्राप्ति—

**कृष्णभक्ति-जन्ममूल हय 'साधुसङ्ग'।**
**कृष्णप्रेम जन्मे, तिंहो पुनः मुख्य अङ्ग॥८०॥**

**८०। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

८०। साधुसङ्ग यद्यपि प्रथमावस्था में कृष्ण-भक्ति के उत्पन्न होने का मुख्य कारण है, तथापि कृष्णप्रेम उत्पन्न होने पर भी वही साधु सङ्ग ही पुनः प्रेम के मुख्य अङ्ग में गिना जाता है।

सुकृति के फल से साधुसङ्ग, उसके फलस्वरूप कृष्णभक्ति—
श्रीमद्भागवत (१०/५१/५३) में—

**भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-**
**ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।**
**सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्‌गतौ**
**परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥८१॥**

**८१।** मुचुकुन्द ने कहा—हे अच्युत, संसार भ्रमण करते-करते अपवर्ग (अर्थात् संसार की समाप्ति) होने पर जब जीव को सत्सङ्ग की प्राप्ति होती है, तभी सद्‌गति और परावरेश्वर स्वरूप आपमें रति उत्पन्न होती है।

### अनुभाष्य

८१। मध्य २२ परिच्छेद ४६ संख्या द्रष्टव्य।

सत्सङ्ग ही परमधन—
श्रीमद्भागवत (११/२/३०) में—

**अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः।**
**संसारेऽस्मिन् क्षणार्द्धोऽपि सत्सङ्गःसेवधिर्नृणाम्॥८२॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

८२। [ महाराज निमि ने नवयोगेन्द्रों से कहा— ] हे निष्पाप, आपके समक्ष मैं जीवों के आत्यान्तिक (सर्वोत्तम) मङ्गल के विषय में जिज्ञासा कर रहा हूँ, क्योंकि संसार में आधे क्षण के परिमाण का साधु सङ्ग भी जीवों के लिये अमूल्य रत्ननिधि है।

### अनुभाष्य

८२। वसुदेव के समक्ष श्रीनारद भागवतधर्म

का कीर्त्तन करते हुए विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्रके संवाद का वर्णन कर रहे हैं। महाराज निमि यज्ञ कर रहे हैं, ऐसे समय में महाभागवत नवयोगेन्द्र दैववश वहाँ उपस्थित हुए, उन्हें देख निमि उनकी यथाविधि पूजा करके कह रहे हैं—

(हे) अनघाः, (निष्पापाः, निरवद्याः ऋषयः), अतः (भगवद्भागवत-दर्शनदुर्लभत्वात) भवतः (युष्मान्) आत्यान्तिकं (निरतिशय) क्षेमं (कल्याण) पृच्छामः; (यतः) अस्मिन् संसारे (भवे) क्षणार्द्धः (अत्यल्पकालम्) अपि (स्थायी) सत्सङ्गः नृणां (पुंसा) सेवधिः (सर्वफलप्रदः निधिः-निधिलाभे यथानन्दो भवति, तथा परमानन्दः इत्यर्थः)।

प्रमाण—
श्रीमद्भागवत (३/२५/२५)—

**सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति**
**हृत्कर्णरसायनः कथाः।**
**तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि**
**श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥८३॥**

८३। [भगवान् श्रीकपिलदेव ने कहा—] साधु-सङ्ग में मेरी वीर्य सूचक हृत्कर्णरसायन कथाएँ आलोचित होती हैं। उन-उन कथाओं का श्रवण करते-करते शीघ्र ही अपवर्ग पथ स्वरूप मुझमें पहले श्रद्धा फिर रति तथा अन्त में प्रेम भक्ति उदित होती है।

### अनुभाष्य

८३। आदि प्रथम परिच्छेद ६० संख्या द्रष्टव्य।

वैष्णव का आचार एवं
अवैष्णव का निर्देश—

**असत्सङ्गत्याग,—एइ वैष्णव-आचार।**
**'स्त्री-सङ्गी'—एक असाधु, 'कृष्णाभक्त' आर॥८४॥**

**८४। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

८४। **साधुसङ्ग,—**जिस किसी प्रकार से 'अन्वय' (प्रत्यक्ष) रूप में वैष्णव-आचार, **असत् सङ्ग त्याग**—'व्यतिरेक (अप्रत्यक्ष) रूप में वैष्णव-आचार। 'असत्'—दो प्रकार का है; स्त्रीसङ्गी अर्थात् स्त्री के प्रति आसक्त व्यक्ति—एक प्रकार का 'असाधु' एवं 'कृष्ण का अभक्त' व्यक्ति—दूसरी प्रकार का 'असाधु' है। शुद्धभक्त इन दो प्रकार के असत्-सङ्ग के त्याग में विशेष रूप से प्रयत्न करेंगे।

### अनुभाष्य

८४। अवैष्णव सङ्ग का परित्याग ही वैष्णवों का एकमात्र सदाचार है। 'अवैष्णव' कहने से 'स्त्री सङ्गी' और 'कृष्ण अभक्त',—इन दो श्रेणियों के लोगों को ही समझना चाहिए। स्त्री सङ्ग दो प्रकार का है—'वैध धर्म-परक' स्त्री सङ्ग, जिस पर वर्णाश्रम धर्म प्रतिष्ठित (टिका हुआ) है एवं 'अवैध' स्त्रीसङ्ग, जो—अधर्म, परक है एवं जिसके फलस्वरूप वर्णाश्रम-धर्म में विश्रृङ्खलता के कारण कर्मफल हेतु नरक आदि की प्राप्ति होती है। संसार में पाप परायण व्यक्ति 'वैष्णव'-नाम के बिल्कुल ही अयोग्य हैं। 'धर्म' 'अर्थ' और काम नामक त्रिवर्ग स्त्रीसङ्ग रूपी अवैष्णवाचार में आबद्ध है। 'मोक्ष'-नामक चतुर्थ वर्ग स्त्रीसङ्ग से उत्पन्न नहीं होने पर भी कृष्ण-विमुखता वशतः मोक्षाभिलाषी स्त्रीसङ्गी की अपेक्षा अधिक अवैष्णव और हेय है। मायावादी और मायाविलासी,—दोनों का सङ्ग ही वैष्णवता अथवा शुद्धभक्तिनाश का कारण है। मायावादी मुमुक्षु—मोक्षफलभोग कामना में आत्मोत्कर्ष के लिये जड़ भोग त्यागी और स्त्रीसङ्गी—बुभुक्षु अथवा भोगी है; दोनों ही अपनी-अपनी जड़ेन्द्रियों के तर्पण-परायण, कृष्ण के अलावा अन्यान्य फलों का अन्वेषण करने वाले कपटतायुक्त होने के कारण 'कृष्णदास' नहीं है।

स्त्री-सङ्ग और स्त्री-सङ्गी के सङ्ग का भयानक परिणाम—

श्रीमद्भागवत (३/३१/३३-३५) में—

**सत्यं शोचं दया मौनं बुद्धिर्ह्रीः श्रीर्यशः क्षमा।**
**शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम्॥८५॥**
**तेष्वशान्तेषु मूढ़ेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।**
**सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित् क्रीड़ामृगेषु च॥८६॥**
**न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।**
**योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥८७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८५-८७। सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, लज्जा, श्री, यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य इत्यादि सब कुछ ही जिनके सङ्ग से क्षय हो जाता है, उस शोच्य आत्मविनाशकारी अशान्त मूढ़ स्त्रियों के खेलने के मृग असाधु का सङ्ग कभी भी मत करना। अन्य किसी प्रसङ्ग में जीव का ऐसा मोहबन्ध नहीं होता, जैसा स्त्रीसङ्ग एवं स्त्रीसङ्गी के सङ्ग से होता है।

**अनुभाष्य**

८५-८६। भगवान् कपिलदेव देवहूति को पाप-पुण्य के कारण कृष्ण विमुख स्वरूप-विस्मृत जीव के जन्म प्राप्ति से पूर्व में योनि-भ्रमण और गर्भ-यन्त्रणा का वर्णन करने के बाद उसके जन्म प्राप्ति के बाद बाल्य, पौगण्ड और यौवन अवस्था में अनेक प्रकार के इन्द्रिय-तर्पण अथवा स्त्रीसङ्ग की स्पृहा, उसके प्रभाव तथा कुफल की बात तीन श्लोकों में बतला रहे हैं—

यत्सङ्गात (येषां असतां सङ्गवशात्) सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः (पारमार्थिकीत्यर्थः) ह्रीः श्रीः (भक्तिसम्पत) यशः क्षमा शमः दमः भगः (ऐश्वर्यं वैभवं वा) इति संक्षयं (सम्यक् विनाश) याति (प्राप्नोति), तेषु अशान्तेषु (जड़ विषय भोग-लम्पटेषु) मूढ़ेषु असाधुषु खण्डितात्मसु (प्राकृत देहादौ अप्राकृतात्मबुद्धिषु) योषित्-क्रीड़ा-मृगेषु (स्त्रीणां क्रीड़ा मृगाः एकान्त वशीभूताः तेषु स्त्रैणषु) शोच्येषु (दुःखाश्रयेषु) असाधुषु (अवैष्णवेषु) सङ्गं न कुर्यात्।

**अनुभाष्य**

८७। अस्य (पुंसः) यथा योषितसङ्गात (जड़-भोक्तृबुद्धया भोग्य-सहवासेन) यथा (च) तत्सङ्गि-सङ्गतः (योषिद्भोक्तृणां रक्त-शुक्रमय-देहादौ आत्म-बुद्धीनां वा सहवासेन), मोहः (बुद्धिनाशः) बन्धः (भवबन्धः) च भवेत्, तथा अन्यप्रसङ्गतः न भवेत्।

हरिविमुख-सङ्ग के प्रति भक्त का मनोभाव—

कात्यायन-संहिता-वचन—

**वरं हुतवहज्वाला-पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः।**
**न शौरिचिन्ताविमुख-जनसंवासवैशसम्॥८८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८८। अग्नि की ज्वाला में तथा पिञ्जरे में बन्द होने से जो कष्ट होता है, उसे सहन करना तब भी उचित है, किन्तु कृष्ण के चिन्तन से बहिर्मुख व्यक्तियों का कष्ट प्रदान करने वाला सङ्ग कभी भी मत करना। तात्पर्य यह है कि यदि किसी को आग में जलकर मरने अथवा कारागार में बन्द होना पड़े, उसे भी स्वीकार करना, किन्तु कृष्ण बहिर्मुख लोगों के साथ सङ्ग मत करना।

**अनुभाष्य**

८८। हुतवहज्वाला-पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः (प्रज्वलितवह्निशिखायां पिञ्जरमध्यनिवासः अपि) वरं (प्रार्थनीयः तथापि) शौरिचिन्ताविमुख जनसंवास-वैशसं (शौरेः कृष्णस्य चिन्तायाः विमुखः जनः तेन सह सम्यक् वासः, स एव वैशसं विपत्पातः) न।

विष्णुभक्ति से रहित व्यक्ति के प्रति व्यवहार की विधि—

गोस्वामिपादोक्ति—

**मा द्राक्षीः क्षीणपुण्यान् क्वचिदपि**
**भगवद्भक्तिहीनान् मनुष्यान्॥८९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८९। क्षीण पुण्य अर्थात् ऐसे व्यक्ति जिनके पुण्य क्षीण हो गये हैं, ऐसे भगवद्-भक्ति विहीन मनुष्यों को कभी भी मत देखना।

**अनुभाष्य**

८९। भगवद्भक्तिहीनान् (कृष्णसेवाविहीनान्) क्षीणपुण्यान् (मन्दभाग्यान्) मनुष्यान् क्वचित् (लौकिक-मर्यादादौ) अपि मा (न) अद्राक्षीः (पश्येत्)।

परमहंस अथवा निष्किञ्चन वैष्णव का आचरण—

**एत सब छाड़ि' आर वर्णाश्रम-धर्म।**
**अकिञ्चन हञा लय कृष्णैक-शरण॥९०॥**

**९०। प० अनु०—**भक्त—स्त्रीसङ्गी तथा कृष्ण के अभक्त और वर्णाश्रम धर्म का छोड़कर अकिञ्चन होकर श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९०। उपरोक्त दो प्रकार का असाधुसङ्ग एवं वर्णाश्रमधर्म की आसक्ति का परित्याग करके अकिञ्चनभाव से एकमात्र कृष्ण के शरणागत होओ।

श्रीमद्भगवदगीता (१८/६६) में—

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥९१॥**

९१। [भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—] समस्त धर्म परित्याग करके एकमात्र, मैं जो कि भगवान् हूँ, मेरे शरणागत होओ। वैसा होने पर मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त करूँगा। तुम शोक मत करना।

**अनुभाष्य**

९१। मध्य अष्टम परिच्छेद ६३ संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण ही एकमात्र भजनीय वस्तु—

**भक्तवत्सल, कृतज्ञ, समर्थ, वदान्य।**
**हेन कृष्ण छाड़ि' पण्डित नाहि भजे अन्य॥९२॥**

**९२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण भक्तवत्सल, किये गये कर्म को जानने वाले, समर्थ तथा वदान्य हैं, ऐसे श्रीकृष्ण के अलावा पण्डित व्यक्ति अन्य किसी का भजन नहीं करता।

**अनुभाष्य**

९२। भक्तवत्सल, कृतज्ञ, उदार और सामर्थ्य-वान् कृष्ण को छोड़ करके कोई भी पण्डित कृष्ण के अतिरिक्त अन्यान्य तुच्छ वस्तुओं का भजन नहीं करता। जो कृष्णभजन छोड़कर जड़-विषयों के प्रति मुग्ध होता है, उसके समान मूर्ख आत्मघाती व्यक्ति अत्यन्त विरले होते हैं।

स्वयं तक को प्रदान कर देने वाले सर्वात्मा कृष्ण—श्रीमद्भागवत (१०/४८/२६) में—

**कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीया-**
**द्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात्।**
**सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा-**
**नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य॥९३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९३। [अक्रूरजी भगवान् की वन्दना करते हुए कह रहे हैं—] प्रिय, सत्यवादी, सुहृत और कृतज्ञरूपी आपको छोड़कर कौन पण्डित दूसरों के शरणागत होता है? आप भजनशील सुहृद व्यक्तियों की समस्त कामनाएँ एवं स्वयं तक को भी प्रदान किया करते हैं, जबकि आपका ह्रास तथा वृद्धि नहीं होती।

**अनुभाष्य**

९३। भगवान् श्रीकृष्ण के कुब्जा की अभीष्ट-वाञ्छा को पूर्ण करके अक्रूर को हस्तिनापुर में भेजने की इच्छा से बलराम जी के साथ उनके

घर पर उपस्थित होने पर, अक्रूर उनकी वन्दना करते-करते स्तव कर रहे हैं—

(यतो भवान्) भजतः (भजनशीलान्) सर्वान् सुहृदः (मित्रान्) अभिकामान् (सर्वतोभावेन कामान्), यस्य (च) उपचयापचयो (ह्रासवृद्धी) न स्तः (तादृशम्) आत्मानं (निज-विग्रहम्) अपि ददाति, अतः, भक्तप्रियात् (भक्तवत्सलात्) ऋतगिरः (सत्य- वाचः) सुहृदः (बान्धवात्) कृतज्ञात् (भक्तप्रेम प्रतिदानकारिणः) तत्त्वः (त्वां बिना) अपरं शरणं (आश्रयं) कः पण्डितः समीयात् (गच्छेत्)?

उद्धव ही अनन्य-कृष्ण भजन के प्रमाण—

**विज्ञ जने हय यदि कृष्णगुण-ज्ञान।**
**अन्य त्यजि' भजे, ताते उद्धव—प्रमाण॥९४॥**

**९४। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

९४। कृष्ण के गुणों का ज्ञान होने मात्र से ही अभिज्ञ (बुद्धिमान) व्यक्ति अन्यान्य उपासनाओं को त्याग करके कृष्ण का ही भजन करता है; इस विषय में उद्धव ही प्रमाण हैं।

कृष्ण—परम दयालु, दया के सागर—
श्रीमद्भागवत (३/२/२३)—

**अहो बकी यं स्तनकालकूटं**
**जिघांसयापाययदप्यसाधवी।**
**लेभे गतिं धात्र्यचितां ततोऽन्यं**
**कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥९५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९५। [श्रीउद्धवजी ने विदुर से कहा—] अहो, जिन श्रीकृष्ण का वध करने के लिये बकासुर की बहन पूतना ने असाधु-वृत्ति से युक्त होकर उन्हें स्तन काल कूट (विष से लिप्त स्तन) का पान कराया था एवं ऐसा करने पर भी उसने माता के योग्य गति को प्राप्त किया था, उन श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अर्थात् उनके अलावा और किस दयालु के शरणागत हो सकता हूँ?

**अनुभाष्य**

९५। महाभागवत श्रील उद्धव श्रीकृष्ण के विच्छेद (बिछोह) के कारण शोक से आकुल होकर विदुर के निकट श्रीकृष्ण की बाल्यलीला आदि का वर्णन कर रहे हैं,—

अहो (आश्चर्य), बकी (पूतना) जिघांसया (हन्तुम् इच्छया अपि) स्तनकालकूटं (स्तनयोः गृहीतं कालकूटं विषं) यं (कृष्णम्) अपाययत्, असाध्वी (कृष्णविरोधिनी दुष्टा दानवी अपि) धात्रुचितां (पालयित्र्याः स्तनदातृकायाः योग्या) गतिम् (उत्तमां गतिं) लेभे, ततः (श्रीकृष्णात्) अन्यं (अपर) कं वा दयालुं (वदान्य) शरणं व्रजेम (भजेमेत्यर्थः)।

परमहंस अथवा वैष्णव ही कृष्ण के प्रति समर्पित-आत्मा—

**शरणागतेर, अकिञ्चनेर—एकइ लक्षण।**
**तार मध्ये प्रवेशये 'आत्मसमर्पण'॥९६॥**

**९६। प॰ अनु॰—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९६। 'अकिञ्चन-भक्त' और 'शरणागत-भक्त'—इन दोनों के एक ही लक्षण हैं। इन दोनों में से शरणागत में 'आत्म-समर्पण' रूपी एक लक्षण अधिक होता है।

छह प्रकार की शरणागति—
हरिभक्तिविलास (११/४१७) में उद्धृत
वैष्णव-तन्त्र-वाक्य—

**आनुकूलस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य-वर्जनम्।**
**रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृप्ते वरणं तथा।**
**आत्मनिक्षेप-कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥९७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९७। शरणागति के छह प्रकार के लक्षण—(१)

आनुकूल्यसङ्कल्प अर्थात् 'कृष्णभक्ति के जो अनुकूल है' उसे मैं अवश्य ही स्वीकार करूँगा'—ऐसा सङ्कल्प; (२) प्रातिकूल्यस्य-विवर्जन अर्थात् 'कृष्ण-भक्ति के जो प्रतिकूल है, उसका मैं अवश्य ही वर्जन (त्याग) करूँगा' इस भावना से त्याग; (३) 'वे मेरी रक्षा करेंगे' अर्थात् 'कृष्ण के अलावा मेरा और कोई रक्षाकर्त्ता नहीं है', यह विश्वास—'अभेद ब्रह्मज्ञान के द्वारा मैं मृत्यु से रक्षा प्राप्त कर सकता हूँ' ऐसा विश्वास नहीं, बल्कि 'कृष्ण कृपा करके मेरी रक्षा करेंगे',—ऐसा विश्वास; (४) कृष्ण को 'गोप्ता' अथवा 'पालन करने वाले' के रूप में वरण करना अर्थात् 'समस्त कर्म करके मैं उन-उन कर्मों के अधिष्ठातृ देवता के द्वारा पालित होऊँगा',—ऐसे विश्वास का परित्याग करके 'कृष्ण ही मेरे एकमात्र पालनकर्त्ता हैं एवं देवताओं तथा मनुष्यों में से कोई भी मेरा पालनकर्त्ता नहीं है—ऐसा स्थिर विश्वास; (५) आत्मनिक्षेप अर्थात् 'मेरी इच्छा स्वतन्त्र नहीं है, वह—कृष्ण की इच्छा के परतन्त्र है' ऐसी बुद्धि (भावना) ही आत्मसमर्पण है, एवं (६) कार्पण्य अर्थात् स्वयं को दीन-हीन मानना।

**अनुभाष्य**

९७। आनुकूलस्य (कृष्णभजनसहायस्य) सङ्कल्पः (सम्यक् निर्णयः, ग्रहणं वा), प्रातिकूल्य स्यवर्जनं (कृष्णभजन-विरोधिवस्तु-सङ्गत्यागः), मां रक्षिष्यति इति विश्वासः (दृढ़श्रद्धा,—''क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्रयधीशः'' इत्यादि प्रकारः), गोप्तृप्ते (प्रभुत्वे, पालयितृत्वे, पतित्वे वा) वरणं (प्रार्थनम् अङ्गीकरणं वा—''त्वां प्रपन्नोऽस्मि शरणं देवदेवं जनार्द्दनम। इति यः शरणं प्राप्तस्तं क्लेशादुद्धराम्यहम्॥'' इति नारसिंहोक्तप्रकारम्) आत्मनिक्षेप-कार्पण्ये (आत्मसमर्पणं ''केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि, तथा करोमि'' इति गौतमीय-तन्त्रोक्तप्रकारं च, स्वीय दैन्य ज्ञापकं कार्पण्यं ''परमकारुणिको न भवत्परः परम शोच्यतमो न च मत्परः'' इत्यादि प्रकारं च—काकु भाषण-ञ्चेत्यर्थः)—इति षड्विधा शरणागतिः (शरणापत्तिः)।

भक्ति सन्दर्भ में २३६ संख्या में श्रीजीवप्रभु—''अङ्गागिभेदेन षड्विधा; तत्र 'गोपतृत्वे वरणम्' एवाङ्गि, शरणागतिशब्देनैकार्थ्यात्; अन्यानि त्वङ्गानि, तत्परिकरत्वात्।'' तदेवं यस्य सर्वाङ्ग सम्पन्ना शरणा-पत्तिस्तस्य झटित्येव सम्पूर्णफला; अन्येषां तु यथासम्पत्ति यथाक्रमञ्चेति ज्ञेयम्। तामेतां शरणा-पत्तिं श्लाघते (भाः ११/१९/९ पद्येन)- शरणागतानां सर्वदुःखदूरीकरणं निज-माधुरीणां सर्वतो वर्षण-ञ्चात्राभिहितम्।''

शरणागत का आचरण—
हरिभक्तिविलास (११/४१८) में उद्धृत
वैष्णव-तन्त्र-वाक्य—

**तवास्मीति वदन् वाचा तथैव मनसा विदन्।**
**तत्स्थानमाश्रितस्तन्वा मोदते शरणागतः॥९८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९८। शरणागत व्यक्ति भगवान् की लीला-स्थली का शरीर द्वारा आश्रय ग्रहण पूर्वक 'हे भगवन्, मैं—आपका हूँ' ऐसा मुख से बोलकर एवं मन में जानकर आनन्द प्राप्त किया करता है।

**अनुभाष्य**

९८। शरणागतः (प्रपन्नः) (अहं) तव (एव), अस्मि' इति वाचा वदन्, तथा एव मनसा विदन् (आत्मानं सेवापरं जानन्) तन्वा (शरीरेण) तत्स्थानं (भगवतः भक्तस्य च स्थानम्) आश्रितः (सन्) मोदते (हृष्यति)।

वैष्णव—कृष्ण से अभिन्न—

**शरण लञा करे कृष्णे आत्मसमर्पण।**
**कृष्ण ताँरे करे तत्काले आत्मसम॥९९॥**

**९९। प० अनु०—**जो भी व्यक्ति श्रीकृष्ण की

शरण लेकर उनके प्रति आत्मसमर्पण करता है, श्रीकृष्ण तत्काल उसे अपने समान बना देते हैं। अर्थात् अपने प्रिय भक्त के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

कृष्ण की भाँति वैष्णव भी सच्चिदानन्दमय—
श्रीमद्भागवत (११/२९/३४) में—

**मर्त्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा**
**निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।**
**तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो**
**मयात्मभूयाय च कल्पते वै॥१००॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१००। [श्रीभगवान् ने कहा—] मरणशील जीव जब समस्त कर्मों का परित्याग कर स्वयं को मेरे प्रति सम्पूर्ण रूप से निवेदन करके मेरी इच्छा से क्रिया करता है, तब वह अमृतत्व को प्राप्त करके मेरे साथ एक सूत्र में चित् स्वरूप रस के भोग करने के योग्य होता है।

**अनुभाष्य**

१००। भगवान् श्रीकृष्ण निजप्रेष्ठ भक्तश्रेष्ठ उद्धव को सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनतत्त्व का वर्णन करके अन्त में एकान्त समर्पित आत्मा शुद्ध भक्त की गति का वर्णन कर रहे हैं,—

यदा मर्त्त्यः (मनुष्यः) त्यक्तसमस्तकर्मा (विरत भोग-मोक्षः सन्) मे (मह्यं) निवेदितात्मा (भवति, आत्मसमर्पणं करोतीत्यर्थः), तदा (असो) मया विचिकीर्षितः (प्रेरितः सन् विशेषं कर्त्तुमभिलषितो भवति; ततश्च) अमृतत्वं (मोक्षं) प्रतिपद्यमानः (लभमानः) मया (सह) आत्मभूताय (मादृश सच्चि-दानन्दमयत्वाय) कल्पते (योग्यो भवति)।

**(१) साधन भक्ति के लक्षण का वर्णन—**
**एबे साधनभक्ति-लक्षण शुन, सनातन।**
**जाहा हैते पाइ कृष्णप्रेम-महाधन॥१०१॥**

**१०१। प० अनु०—**हे सनातन, अब तुम उस साधन भक्ति के लक्षण के विषय में सुनो, जिससे महाधन रूपी कृष्णप्रेम की प्राप्ति होती है।

साधन की संज्ञा—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२)—

**कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।**
**नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥१०२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०२। साध्य भावभक्ति जब कृति (इन्द्रिय)-साध्य होती है, तब उसे 'साधन-भक्ति' कहते हैं। भक्ति ही जीव का नित्यसिद्ध भाव है, उसे हृदय में प्रकट अवस्था में लाने का नाम ही 'साध्यता' है। तात्पर्य यह है कि, चित्कण जीव में स्वाभाविक रूप में चित्सूर्य कृष्ण का जो आनन्दकण है, मायाबद्ध होकर वह इस समय लुप्तप्राय है। वही नित्यसिद्ध भाव ही हृदय में प्रकट कराने के योग्य है। इसी अवस्था में ही नित्यसिद्ध वस्तु की साध्य-अवस्था हुई। वही साध्य भाव रूपी भक्ति जब बद्धजीव की इन्द्रियों के द्वारा साधित होती है, तब उसी का ही नाम 'साधन भक्ति' है।

**अनुभाष्य**

१०२। कृतिसाध्या (कृत्या इन्द्रिय-प्रेरणया साधनीया या) साध्यभावा (साधनीयः भावः यया सा) साधनाभिधा (साधनभक्तिनाम्नी) भवेत्; हृदि (जीवात्म-हृदये) नित्यसिद्धस्य (नित्यवर्त्तमानस्य स्वतः प्रकाशस्य) भावस्य (कृष्णप्रेमभावस्य) प्राकट्यम् (आविष्करणम् एव) साध्यता (साधनयोग्यता)।

साधन भक्ति का स्वरूप
और तटस्थ लक्षण—

**श्रवणादि-क्रिया—तार 'स्वरूप'-लक्षण।**
**'तटस्थ'-लक्षणे उपजय प्रेमधन॥१०३॥**

नित्यसिद्ध निरपेक्ष शुद्ध (अनन्य, केवल अथवा अनुकूल) अभिधेय के द्वारा ही नित्यसिद्ध स्वप्रकाशित शुद्धप्रयोजन की प्राप्ति—

**नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम 'साध्य' कभु नय।**
**श्रवणादि-शुद्धचित्ते करये उदय॥१०४॥**

साधन भक्ति का भेद—(१) वैधी और (२) रागानुगा—

**एइ त' साधन भक्ति—दुइ त' प्रकार।**
**एक 'वैधी-भक्ति', 'रागानुगा-भक्ति' आर॥१०५॥**

**(क) वैधीभक्ति का वर्णन और संज्ञा-निर्देश—**

**रागहीन जन भजे शास्त्रेर आज्ञाय।**
**'वैधी-भक्ति' बलि' तारे सर्वशास्त्रे गाय॥१०६॥**

**१०३-१०६। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०३-१०६। अनुकूलभाव के साथ श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण ही उस भक्ति का 'स्वरूप'-लक्षण है। अन्याभिलाष का त्याग और ज्ञानकर्म के साथ सम्बन्ध-छेदन के द्वारा वह स्वरूप लक्षण 'प्रेमधन' उत्पन्न करता है। कृष्णप्रेम—नित्यसिद्ध वस्तु है, वह कभी भी (शुद्धभक्ति के अलावा अन्य किसी अभिधेय से) साध्य नहीं है; केवलमात्र श्रवण आदि द्वारा भली-भाँति शोधित चित्त में ही उसका उदित होना सम्भवपर है। अतएव शुद्ध-श्रवण-कीर्त्तन आदि क्रिया ही प्रधानतः साधन-भक्ति है; वह दो प्रकार की है,—'वैधी' और 'रागानुगा'। जिनके हृदय में राग का उदय नहीं हुआ, उनकी शास्त्रों की आज्ञानुसार जो भजनप्रवृत्ति होती है, वही 'वैधीभक्ति' है।

श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करने की विधि—श्रीमद्भागवत (२/१/५) में—

**तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।**
**श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्त्तव्यश्चेच्छता भयम्॥१०७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०७। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित से कह रहे हैं— ] हे भारत, सर्वात्मा भगवान् ईश्वर हरि अभय प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों के लिये सर्वदा ही श्रोतव्य (श्रवणीय), कीर्त्तितव्य (कीर्त्तनीय) और स्मर्त्तव्य (स्मरणीय) हैं।

**अनुभाष्य**

१०७। 'मुमुर्षु व्यक्ति के लिये क्या करना कर्त्तव्य है?'—राजा परीक्षित के इस प्रश्न के उत्तर में श्रील शुकदेव गोस्वामी इस प्रश्न की विशेष रूप से प्रशंसा करके सर्वप्रथम गृहमेधी व्यक्तियों की बद्धदशा का वर्णन करके उससे मुक्त होने का उपाय बतला रहे हैं,—

हे भारत (भरतवंश्य), तस्मात् (कृष्णविमुखो जीवः स्वनिधनं पश्यन्नपि न पश्यति, अतः कारणात्) अभयं (स्वपरा-भवाभावं मोक्षम्, आत्म-त्राणं वा) इच्छता (द्वितीयाभिनिवेशत्यागमभिलषता जनेन इत्यर्थः) सर्वात्मा (सर्वान्तर्यामी) भगवान् ईश्वरः हरिः (एव) श्रोतव्यः (श्रवणीयः) कीर्त्तितव्यः (कीर्त्त-नीयः) स्मर्त्तव्यः च (स्मरणीयश्च)।

वैधी भक्ति के प्रारम्भ में परमहंस-अवस्था को प्राप्त करने से पहले दैव-वर्णाश्रम-धर्म का पालन; उसकी उत्पत्ति—

श्रीमद्भागवत (११/५/२-३)—

**मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।**
**चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥१०८॥**

१०८। [ श्रीचमस ऋषि ने कहा— ] ब्रह्मा के मुख से 'ब्राह्मण', भुजा से 'क्षत्रिय', जंघा से 'वैश्य' और पद से 'शूद्र'—ये चार वर्ण पृथक-पृथक आश्रमों के साथ एवं अपने वर्णगत गुणों के साथ उत्पन्न हुए थे।

**अनुभाष्य**

१०८। मध्य, द्वाविंश परिच्छेद, २७ संख्या द्रष्टव्य।

विष्णु स्मृति की उद्दीपक प्रत्येक क्रिया ही 'विधि', विष्णु स्मृति विनाशक प्रत्येक क्रिया ही 'निषेध'— पद्मपुराण-वाक्य (७२/१००)—

**स्मर्त्तव्य सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।**
**सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥१०९॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१०९। 'विष्णु सदैव स्मरणीय हैं, कभी भी विस्मरणीय नहीं हैं'—समस्त प्रकार के विधि और निषेध इन्हीं दो बातों के अनुगत है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रों में जितनी प्रकार की 'विधियाँ' उत्पन्न हुई हैं और 'निषेध' बतलाये गये हैं, वह सभी उक्त दोनों बातों के आधार पर ही कही गयी हैं। जिसका अवलम्बन करने से भगवान् स्मरणपथ पर आते हैं, वही कर्त्तव्य के रूप में 'विधि'; जिस कार्य के द्वारा भगवान् का विस्मरण होता है, वही कार्य ही 'निषेध' है।

### अनुभाष्य

१०९। विष्णुः सततं स्मर्त्तव्यः, न जातुचित् (कदाचित्) विस्मर्त्तव्यः—सर्वे विधिनिषेधाः एतयोः (विष्णु स्मरणास्मरण-रुपयोः विधिनिषेधेयोः द्वयोः) एव किङ्कराः (अनुगताः भृत्याः) स्युः (भवेयुः)।

असंख्य वैधी-भक्ति में चौंसठ भक्ति के अङ्गों का वर्णन—

**विविधाङ्ग साधनभक्तिर बहु'त विस्तार।**
**संक्षेपे कहिये किछु साधनाङ्ग-सार॥११०॥**

**११०। प॰ अनु॰—**अनेक प्रकार के अङ्गों वाली साधन भक्ति का बहुत विस्तृत वर्णन है। मैं यहाँ पर संक्षेप में साधन के अङ्गों का सार बतला रहा हूँ।

**गुरुपादाश्रय, दीक्षा, गुरुर सेवन।**
**सद्धर्म्म-शिक्षा-पृच्छा, साधुमार्गानुगमन॥१११॥**
**कृष्णप्रीत्ये भोगत्याग, कृष्णतीर्थे वास।**
**यावत् निर्वाह-प्रतिग्रह, एकादशयुपवास॥११२॥**
**धात्र्यश्वत्थ-गो-विप्र-वैष्णव-पूजन।**
**सेवा-नामापराधादि दूरे विसर्जन॥११३॥**
**अवैष्णव-सङ्ग-त्याग, बहुशिष्य ना करिब।**
**बहुग्रन्थ-कलाभ्यास-व्याख्यान वर्जिब॥११४॥**
**हानि-लाभे सम, शोकादिर वश ना हइब।**
**अन्यदेव, अन्यशास्त्र निन्दा ना करिब॥११५॥**
**विष्णु-वैष्णव-निन्दा, ग्राम्यवार्त्ता ना शुनिब।**
**प्राणीमात्रे मनोवाक्ये उद्वेग ना दिब॥११६॥**
**श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, वन्दन।**
**परिचर्या, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन॥११७॥**
**अग्रे नृत्य, गीत, विज्ञप्ति, दण्डवन्नति।**
**अभ्युत्थान, अनुव्रज्या, तीर्थगृहे गति॥११८॥**
**परिक्रमा, स्तवपाठ, जप, संकीर्त्तन।**
**धूप-माल्य-गन्ध-महाप्रसाद-भोजन॥११९॥**
**आरात्रिक-महोत्सव-श्रीमूर्त्ति-दर्शन।**
**निजप्रिय-दान, ध्यान, तदीय-सेवन॥१२०॥**
**'तदीय'—तुलसी-वैष्णव-मथुरा-भागवत।**
**एइ चारिर सेवा हय कृष्णेर अभिमत॥१२१॥**
**कृष्णार्थे अखिल चेष्टा, तत्कृपावलोकन।**
**जन्म-दिनादि-महोत्सव लञा भक्तगण॥१२२॥**
**सर्वथा शरणापत्ति, कार्त्तिकादि-व्रत।**
**'चतुः षष्ठि अङ्ग' एइ परम-महत्व॥१२३॥**

**१११-१२३। प॰ अनु॰—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१११-१२५। (१) गुरुपादाश्रय, (२) दीक्षा अर्थात् मन्त्रदीक्षा, (३) गुरुसेवा, (४) सद्धधर्म की शिक्षा और जिज्ञासा, (५) साधुओं के पथ का अनुगमन, (६) कृष्णप्रीति के लिये अपना भोग-त्याग, (७) कृष्णतीर्थ में वास, (८) जितना मात्र प्राप्त करने पर जीवन का निर्वाह होता है, उसी परिमाण में प्रतिग्रह (ग्रहण करना), (९) एकादशी का उपवास एवं (१०) धातृ (आवँला) अश्वथ

(पीपल), गो-ब्राह्मण-वैष्णव का सम्मान,—यह दस अङ्ग ही भजन के प्रारम्भिक रूप हैं; एवं (११) सेवापराध और नामापराध का दूर से ही त्याग, (१२) अवैष्णव का सङ्ग-त्याग, (१३) बहुत से शिष्य नहीं बनाना, (१४) बहुत से ग्रन्थों में कला अर्थात् आंशिक अभ्यास एवं व्याख्यावाद का त्याग, (१५) हानि एवं लाभ में सम बुद्धि, (१६) शोक आदि के वशीभूत नहीं होना, (१७) अन्य देवता अथवा शास्त्रों की अवज्ञा नहीं करना, (१८) विष्णु और वैष्णवों की निन्दा नहीं सुनना, (१९) ग्राम्यवार्त्ता अर्थात् स्त्री-पुरुष की इन्द्रिय तर्पण मूलक गृहवार्त्ता को नहीं सुनना, (२०) प्राणीमात्र के मन में उद्वेग प्रदान नहीं करना,—इन अन्तिम दस निषेद्य-लक्षण रूपी अङ्गों का व्यतिरेक भाव से (गौण रूपसे) अनुष्ठान करना। 'व्यवहार में अकार्पण्यं' और 'महारम्भेर अनुद्यम'—इन दोनों को भक्तिरसामृत सिन्धु में इन दस अङ्गों में रखा गया है। भक्तिरसामृतसिन्धु में इस ग्रन्थ में लिखित 'ग्राम्यवार्त्ता मत सुनना'—यह अङ्ग पूर्वोक्त दस अङ्गों में उद्धृत नहीं किया गया।

यह बीस अङ्ग ही भजनमन्दिर में प्रवेश करने के द्वार-स्वरूप हैं। इनमें से 'गुरु-पादाश्रय', 'दीक्षा' और 'गुरुसेवा'—यह तीन प्रधान अङ्गों में गिने जाते हैं। (१) श्रवण, (२) कीर्त्तन, (३) स्मरण, (४) पूजन, (५) वन्दन, (६) परिचर्या, (७) दास्य, (८) सख्य, (९) आत्म-निवेदन, (१०) श्रीविग्रह के समक्ष नृत्य, (११) गीत, (१२) विज्ञप्ति, (१३) दण्डवत् प्रणाम, (१४) अभ्युत्थान अर्थात् भगवान् अथवा भक्त को आते देखकर उठना, (१५) अनुव्रज्या अर्थात् भक्त अथवा भगवान् के यात्रा करने अर्थात् उठकर जाने पर उनके पीछे-पीछे जाना, (१६) तीर्थ एवं भगवान् के घर (धाम) में जाना, (१७) परिक्रमा; (१८) स्तवपाठ, (१९) जप, (२०) सङ्कीर्तन, (२१) भगवान् की प्रसादी धूप और माला की गन्ध को ग्रहण करना, (२२) महाप्रसाद का सेवन, (२३) आरति आदि महोत्सवों का दर्शन, (२४) श्रीमूर्ति का दर्शन, (२५) अपनी प्रियवस्तु भगवान् को समर्पित करना, (२६) ध्यान; तदीय अर्थात् भगवान् से अभिन्न वस्तुओं का सेवन—(२७) तुलसी आदि का सेवन, (२८) वैष्णव-सेवन, (२९) मथुरा-वास एवं (३०) भागवत का आस्वादन, (३१) कृष्ण के लिये समस्त चेष्टा, (३२) उनकी कृपा की प्रतीक्षा, (३३) भक्तों के साथ जन्मदिन (जन्माष्टमी) आदि महोत्सव का पालन, (३४) सब प्रकार से शरणागति, (३५) कार्तिक आदि व्रत,—इन पैंतीस अङ्गों में और चार अङ्गों का योग करना होगा अर्थात् देह में (१) वैष्णवचिह्न धारण, (२) हरिनामाक्षरधारण, (३) निर्माल्यधारण और (४) चरणामृत पान;—इन चार अङ्गों को कविराज गोस्वामी ने अर्चन आदि के अन्तर्गत स्वीकार किया है। इन चार अङ्गों के योग से उन्तालीस (३९) अङ्ग होते हैं, उनमें (१) साधुसङ्ग (२) नामकीर्त्तन, (३) भागवत-श्रवण, (४) मथुरावास, (५) श्रद्धापूर्वक श्रीमूर्त्तिसेवा रूपी अन्य पाँच अङ्गों का पुनः योग करना होगा। श्रीरूप गोस्वामी ने (भः रः सिः पूर्व विभाग, द्वितीय लहरी में चौंसठ वैधीभक्ति के अङ्गों के वर्णन के अन्त में लिखा है,—'अङ्गानां' पञ्च-कस्यास्य पूर्वविलिखितस्य च। निखिल-श्रेष्ठ्य-बोधाय पुनरप्यत्र शंसनम्॥'', इन पांच अङ्गों का योग करने से चव्वालीस अङ्ग होते हैं, इन चव्वालीस को पहले बतलाये गये बीस के साथ योग करने पर कुल मिलाकर चौंसठ अङ्ग होते हैं। भक्ति के इन चौंसठ अङ्गों का ही शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरण के द्वारा पृथक-पृथक भजन अथवा उपासना; इनमें से कुछेक—बिल्कुल ही पृथक हैं, और कुछेक-मिश्रित भाव सम्पन्न हैं।

उनमें से साधुसङ्ग आदि पाँच
अङ्गों का सर्वश्रेष्ठ होना—

**साधुसङ्ग, नामकीर्त्तन, भागवत श्रवण।**
**मथुरावास, श्रीमूर्त्तिर श्रद्धाय सेवन॥१२४॥**

उनके आंशिक अनुष्ठान के प्रभाव से
ही कृष्ण-प्रेम का उदय—

**सकलसाधन-श्रेष्ठ एइ पञ्च अङ्ग।**
**कृष्णप्रेम जन्माय एइ पाँचेर अल्प सङ्ग॥१२५॥**

**१२४-१२५। प० अनु०**—साधुसङ्ग, नाम कीर्त्तन, भागवतश्रवण, मथुरावास तथा श्रीमूर्त्ति की श्रद्धापूर्वक सेवा—समस्त प्रकार के साधन के अङ्गों में यह पाँच अङ्ग सबसे श्रेष्ठ हैं। इन पाँचों में से किसी एक के अल्प सङ्ग से ही कृष्णप्रेम उत्पन्न हो जाता है।

साधुसङ्ग और भागवत के श्रवण की विधि—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/९०-९१)—

**सजातीयाशये स्निग्धे साधौ सङ्गः स्वतो वरे।**
**श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह॥१२६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२६। एक ही प्रकार की वासना के द्वारा स्निग्ध, किन्तु अपने से श्रेष्ठ साधु का सङ्ग करना। ऐसे रसिक साधुओं के साथ श्रीमद्भागवत के अर्थों का आस्वादन करना।

**अनुभाष्य**

१२६। सजातीयाशये (समजातीयवासना-विशिष्टे) स्निग्धे (गाढ़-विश्रम्भात्मक-स्नेहपरे) स्वतः (आत्मनः) वरे (श्रेष्ठे) साधौ सङ्गः (कार्यः)। रसिकैः (कृष्णभजनविज्ञैः) सह श्रीमद्भागवतार्थानाम् आस्वादः (कार्यः, तात्पर्यं ग्रहणीयमित्यर्थः—श्रौत मार्ग-भक्ति-योगत्यागी वैयाकरणस्य शब्दिकस्य योषितसङ्गि-गृहव्रतस्य विष्णुवैष्णव विरोधिनः मायावादिनः नामापराधिनः वेषोपजीविनः मन्त्रजीविनः भागवत-जीविनः इन्द्रिय तर्पणरत-विषयिणश्च ''यस्य देवे परा: भक्तिः'' इति ''भक्तया भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया'' इति श्रुति-स्मृतिवचनात् तेषां पारमहंस्यशास्त्रार्थ-बोधासम्भवात् ग्रन्थतात्पर्यार्थग्रहणे अनधिकारत्वाच्च) तैः सह आस्वादो न कार्यः।

विशेष करके श्रीविग्रह की पूजा, श्रीनाम सङ्कीर्तन
और श्रीधाम वास का माहात्म्य—
भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व विः साधनभक्ति
लहरी ४१ श्लोक—

**श्रद्धा विशेषतः प्रीतिः श्रीमूत्तेरङ्घ्रिर सेवने।**
**नामसङ्कीर्तनं श्रीमन्मथुरामण्डले स्थितिः॥१२७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२७। श्रद्धा से श्रीमूर्त्ति की पदसेवा में प्रीति, नाम-सङ्कीर्तन एवं मथुरामण्डल में अवस्थिति।

**अनुभाष्य**

१२७। श्रीमूत्तेरंघ्रिसेवने श्रद्धा विशेषतः (विशेषेण) प्रीतिः (बहिः पूजायाम् अर्चने सामान्यतः, व्रजदम्पत्योः मानस सेवायां विशेषतः सार्वकालिक भजनानुरागः), नामसङ्कीर्त्तनं (नामभजन) श्रीमन्मथुरा-मण्डले स्थितिः (कृष्णवसतिस्थले अवस्थानम्;—श्रीगौरमण्डल भूमौ चिन्तामणिज्ञानं, तदेव मथुरावासः इति श्रीमन्नरोतमप्रभुचरणैः प्रेमभक्तिचन्द्रिकायां निर्णीतम्। श्रीगौर विलास भूमि-श्रीमायापुर आदि धाम वासः श्री क्षेत्र-दाक्षिणात्य-व्रजमण्डलादिधाम-वासश्च मथुरावासेन सह अभिन्नो ज्ञेयः। तद्भेद-वादिनां तथाकथित-मथुरावासोऽपि प्राकृत-भोगमयः अधोगतिप्रदश्चेति)।

भक्तिरसामृत सिन्धु (१/२/८७)—

**दुरुहाद्भुतवीर्योऽस्मिन् श्रद्धा**
**दूरेऽस्तु पञ्चके।**
**यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः**
**सद्धियां भाव जन्मने॥१२८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२८। सहसा दुरुह दुःसाध्य और अद्‌भुत वीर्य (शक्ति) से सम्पन्न अन्तिम पाँच अङ्गों में श्रद्धा की बात तो दूर रहे, बहुत कम सम्बन्ध उत्पन्न होने पर भी वह निरापराधी व्यक्ति की भावोत्पत्ति का कारण बन जाता है।

**अनुभाष्य**

१२८। अस्मिन् दुरुहाद्भुतवीर्ये (दुःसाध्ये अपूर्वे च प्रभावमये) पञ्चके (साधुसङ्गाद्यङ्गेषु पञ्चसु) श्रद्धा दूरे अस्तु, यत्र (साधनश्रेष्ठाङ्गपञ्चके) स्वल्पः सम्बन्धः अपि सद्धियां (सद्बुद्धिमतां सुचतुराणां वैष्णवाणा) भावजन्मने (भावस्य अभिव्यक्तये समर्थः भवतीति शेषः)।

इनमें से प्रत्येक के अनुशीलन के नैरन्तर्य के फल से कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

**'एक' अङ्ग साधे, केह साधे 'बहु' अङ्ग।**
**'निष्ठा' हैते उपजय प्रेमेर तरङ्ग॥१२९॥**

**१२९। प० अनु०—**कोई भक्त इन पाँच सबसे श्रेष्ठ साधन के अङ्गों में से केवल किसी एक ही अङ्ग का पालन करता है तो अन्य कोई भक्त इनमें से बहुत से अङ्गों का पालन करता है। निष्ठा से प्रेम की तरङ्ग उत्पन्न होती है।

**अनुभाष्य**

१२९। भजनानुष्ठान के फल से जीव की अनर्थ निवृति होने से ही निष्ठा उदित होती है; निष्ठा से प्रेम उत्पन्न होता है।

नवधाभक्ति में से किसी-किसी की एक-एक अङ्ग के अनुशीलन में, किसी की सभी अङ्गों के अनुशीलन से सिद्धि अथवा भगवद्-प्रेम की प्राप्ति—

**'एक' अङ्गे सिद्धि पाइल बहु भक्तगण।**
**अम्बरीषादि भक्तेर 'बहु' अङ्ग-साधन॥१३०॥**

**१३०। प० अनु०—**नवधा भक्ति के किसी एक अङ्ग का पालन करने से बहुत से भक्तों को सिद्धि की प्राप्ति हुई है, किन्तु अम्बरीष आदि जैसे भक्तों ने बहुत से अङ्गों का साधन भी किया था।

नवधा भक्ति के एक-एक अङ्ग के अनुशीलन में रत भक्तों के नाम—
पद्यावली (५३) और भः रः सिः (१/२/२६३)—

**श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्त्तने**
**प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।**
**अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्योऽथ सख्येऽर्ज्जुनः**
**सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत कृष्णाप्तिरेषां परम्॥१३१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३१। राजा परीक्षित ने श्रीविष्णु की कथा के श्रवण से, शुकदेव ने उसके कीर्त्तन से, प्रह्लाद ने उसके स्मरण से, लक्ष्मी ने उनके चरण कमलों की सेवा से, पृथु राजा ने उनके पूजन से, अक्रूर ने उनका अभिवन्दन करके, कपिपति (वानर राज) हनुमान ने उनके दास्य से, अर्जुन ने उनके सख्य से एवं बलि ने उन्हें सर्वस्व और आत्मनिवेदन से श्रेष्ठरूप में कृष्ण को प्राप्त किया था।

**अनुभाष्य**

१३१। परीक्षित (विष्णुरातः) श्रीविष्णौः श्रवणे (श्रीमद्भागवततोक्त-कृष्णनामरूपगुणलीला-श्रवणे), वैयासिकिः (ब्रह्मरातः शुकदेवः) कीर्त्तने (श्रीहरि-कथात्मक श्रीमद्भागवत-कीर्त्तने), प्रह्लादः (विष्णोः), स्मरणे (शुद्धान्तःकरणत्वात्) लक्ष्मीः तदङिघ्रभजने (नारायण-पादपद्मसेवने), पृथुः (विष्णोः) पूजने (अर्चने), अक्रूरः तु (यादवस्य), अभिवन्दने, कपि-पतिः (हनुमान्) दास्ये (राम-कैङ्कर्य), अर्जुनः (कृष्णेन सह), सख्ये, बलिः (प्रहलाद-पौत्रः) सर्व-स्वात्म-निवेदने (आत्मसर्मपणे) परं (केवलं निष्ठितः) अभूत; एषां (हरिजनानाम् एकैकाङ्गनिष्ठया एव), कृष्णाप्तिः (कृष्ण लाभः अभूत)।

अम्बरीश का सभी इन्द्रियों के द्वारा कृष्णानुशीलन—श्रीमद्भागवत (९/४/१८-२०) में—

**स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिञ्चकाराच्युतसत्कथोदये॥१३२॥
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्र स्पर्शेऽङ्गसङ्गमम्।
घ्राणञ्च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते॥१३३॥
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने।
कामञ्च दास्ये न तु काम कामय्या
यथोत्तमः-श्लोक जनाश्रया रतिः॥१३४॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१३२-१३४। राजा अम्बरीष ने कृष्ण के चरणकमलों में अपने मन को, वैकुण्ठ-गुणानुवर्णन में अपनी वाणी को, हरिमन्दिर मार्जन आदि में अपने दोनों हाथों को और कृष्णकथा आदि में अपने कानों को, कृष्ण की श्रीमूर्त्ति दर्शन में अपने दोनों नेत्र, कृष्ण दासों के अङ्गों के स्पर्श में अपने शरीर को, कृष्ण के चरणकमलों की सुगन्धि की घ्रांण में अपनी नासिका को, कृष्ण को अर्पित तुलसी के आस्वादन में अपनी जिह्वा को, कृष्ण क्षेत्र में अनुगमन से अपने दोनों चरणों को, हृषीकेश के चरणों में अपने मस्तक को, काम रहित दास्य में अपने 'काम' को ऐसे नियुक्त किया था कि उससे कृष्णभक्तगणों में आश्रय योग्य रति उदित होती है।

### अनुभाष्य

१३२-१३४। विष्णुरात परीक्षित के द्वारा महाभागवत ब्राह्मण-गुरु अम्बरीष के अप्राकृत कृष्ण सेवामय चरित्र के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर श्रील शुकदेव गोस्वामी अम्बरीष की सभी इन्द्रियों के द्वारा हृषीकेश की सेवन-वृत्ति का कीर्त्तन कर रहे हैं,—

उत्तम श्लोकजनाश्रया (हरिजनानुगता) रतिः (अभिरुचिः) यथा (भवेत तथा) सः अम्बरीषः कृष्णपदारविन्दयोः (कृष्णपादपद्मयोः) मनः, वैकुण्ठ-गुणानुवर्णने (हरिगुणमहिमकथने) वचांसि (वाक्यानि), हरेः मन्दिरमार्जनादिषु (भगवदालय-वैष्णवचरण-नीराजन-धौति-लेपनादि-कर्मणि शङ्खचक्राद्युर्द्ध्व-पुण्ड्रादि-रचनादिषु वा) करौ (भुजौ), अच्युतसत्क-थोदये (अच्युतस्य विष्णोः सत्कथानाम् उदये) श्रुतिं (कर्णद्वयं), मुकुन्द-लिङ्गालयदर्शने (कृष्णस्य लिङ्गानाम अर्चानाम् आलयानि मन्दिराणि तेषां दर्शने) दृशो (नेत्रे), तद्भृत्यगात्रस्पर्शे (हरिजन शरीर-स्पर्शने) अङ्गसङ्गमम (त्वचा उत्तमाङ्गस्पर्शनं), श्रीमत्तु-लस्याः (श्रीमत्याः तुलस्याः) तत्पादसरोज सौरभे (भगवच्चरणपद्मस्य यत् सौरभं तस्मिन् गन्धे) घ्राणं (नासिका), तदर्पिते (तस्मै कृष्णाय निवेदिते महा-प्रसादादौ) रसनां (जिह्वा), हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे (धाम परिक्रमाणादौ) पादौ, हृषीकेशपदाभिवन्दने (गोविन्द चरणप्रणमनादौ) शिरः (मस्तक), दास्ये (भगवदुपयुक्तस्रगन्ध-वासोऽलङ्कारादीनां महाप्रसाद-त्वेन स्वीकारे) कामं च न तु कामकाम्यया (भोगे-च्छया), चकार (नियुक्तवान्)।

एकान्तिक शरणागत भक्त कृष्ण के अलावा अन्य किसी के निकट बाध्य नहीं—

**काम-त्यजि' कृष्ण भजे शास्त्र-आज्ञा मानि'।
देव-ऋषि-पितृदिगेर कभु नहे ऋणी॥१३५॥**

**१३५। प० अनु०—**जो समस्त प्रकार की कामनाओं को छोड़कर शास्त्र की आज्ञा मानकर केवल कृष्ण का भजन करता है, वह देवताओं, ऋषियों तथा पितरों के कभी भी ऋणी नहीं होते।

### अनुभाष्य

१३५। देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण, भूतऋण और मनुष्यऋण,—यह पाँच ऋण पाँच प्रकार के यज्ञ के द्वारा चुकाये जाते हैं। ''अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽ-तिथिपूजनम्॥'' होम द्वारा देव यज्ञ, अध्यापन द्वारा ब्रह्मयज्ञ अथवा ऋषि यज्ञ, तर्पणद्वारा पितृयज्ञ,

बलि द्वारा भूतयज्ञ और अतिथि पूजा के द्वारा नृयज्ञ सम्पन्न होता है।

वैधी भक्ति के अधिकारी के लिये पाँच प्रकार के यज्ञ आदि कर्मकाण्ड की अनावश्यकता—
श्रीमद्भागवत (११/५/४१) में—

**देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न**
**किङ्करो नायमृणी च राजन्।**
**सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं**
**गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तम्॥१३६॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१३६। जो पार्थिव (जागतिक) कर्त्तव्यों को परित्याग करके सर्वस्व रूप में शरण्य मुकुन्द के शरणागत हुए हैं, हे राजन्, वह देवता, ऋषि, अन्यप्राणी, आत्मीय, मनुष्य, पितृगणों के निकट और ऋणी नहीं रह जाते। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जन्म लेने के साथ ही इन सब ऋणों से ऋणी बन जाता है एवं शास्त्रों के मतानुसार बहुत प्रकार के कर्त्तव्यानुष्ठान के द्वारा इन सब ऋणों को चुकाता है। किन्तु जो समस्त प्रकार की कामनाओं का परित्याग करके कृष्ण के चरणों में शरणागत होता है, उसके ये सब ऋण उपयुक्त कर्मानुष्ठान नहीं करने पर भी चुक जाते हैं।

### अनुभाष्य

१३६। वसुदेव के निकट श्रीनारद ने भागवत-धर्म का वर्णन करते समय विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्र के संवाद का कीर्त्तन किया था। पहले आठ योगेन्द्रों के द्वारा क्रमशः निमि के प्रश्नों का उत्तर प्रदान करने पर उनमें से एक करभाजन ऋषि निमि के समक्ष भगवान् विष्णु के चार युगावतारों के वर्ण-भेद और उपासना-भेद एवं भारत के विभिन्न स्थानों पर भविष्य में वैष्णवों के आविर्भाव का वर्णन करके अन्त में कृष्ण के एकान्त शरणागतों की महिमा का निम्नलिखित दो श्लोकों में कीर्त्तन कर रहे हैं,—

हे राजन् यः (जनः) कर्त्तं (भेदं, कृत्यं स्वधर्मं वा) परिहृत्य (परित्यज्य) सर्वात्मना (कायेन मनसा वाचा) शरण्यं (सर्वाश्रयं) मुकुन्दं शरणं गतः, (सः) अयं देवर्षिभूताप्तनृणां (देवानाम् ऋषीणां भूतानाम् आप्तानां पोष्य-कुटुम्बिनां नृणा) पितृणां न किङ्करः (न बाध्यः) न ऋणी च (अतः भक्ति-मार्गाश्रितस्य फलकामि-कर्मिवत् पञ्चयज्ञाद्यनुष्ठान-स्यावश्यकता नास्त्येवत्यर्थः)।

वैष्णव कभी भी पापी नहीं होता अथवा पापी कभी भी वैष्णव नहीं हो सकता—

**विधि-धर्म छाड़ि' भजे कृष्णेर चरण।**
**निषिद्ध पापाचारे तार कभु नहे मन॥१३७॥**

दैववश साधक का पाप होने पर भी कृष्ण की कृपा से उसकी सम्पूर्ण पाप-निवृति—

**अज्ञाने वा हय यदि 'पाप' उपस्थित।**
**कृष्ण ताँरे शुद्ध करे, ना कराय प्रायश्चित॥१३८॥**

**१३७-१३८। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१३७-१३८। जो वैदिक विधि के अन्तर्गत सभी प्रकार के धर्मों का परित्याग करके निष्किञ्चन होकर भजन करता है, उसकी स्वाभाविक रूप से किसी निषिध पापाचार में मति नहीं होती, यदि किसी कारण से पाप उपस्थित भी होता है अर्थात् पाप कार्य हो जाता है, कृष्ण उसे कोई प्रायश्चित नहीं कराके ही शुद्ध कर देते हैं।

अन्तर्यामी-चैत्यगुरु के रूप में पाप-शोधन—
श्रीमद्भागवत (११/५/४२) में—

**स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य**
**त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः।**

**विकर्म्म यच्चोत्पतितं कथञ्चित्**
**धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः॥१३९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३९। जो अन्यभाव को परित्याग करके स्वयं हरि के चरणकमलों का भजन करता है, उस कृष्ण प्रिय व्यक्ति में यदि कभी भी विकर्म (पाप) किसी भी प्रकार से उपस्थित होता है, परमेश्वर हरि उनके हृदय में प्रविष्ट रहकर उसके उस पाप को विनष्ट कर देते हैं।

**अनुभाष्य**

१३९। स्वपादमूलं (निजपादपल्लव) भजतः (सेवनकारिणः) प्रियस्य (प्रेमवतः) त्यक्तान्यभावस्य (त्यक्तः भगवतः हरेः शुद्ध-निष्कामसेवनात् अनयस्मिन् देहादौ देवतान्तरे वा भावः येन तस्य, अनन्य भक्ति परायणस्य) कथञ्चित (प्रमाददिना) यत्विकर्म (निषिधं कर्म) उत्पतितं (दुर्दैवात् अनुष्ठितं भवेत्) तत् अपि, सर्वं परेशः हरिः हृदि सन्निविष्टः (अन्तर्यामिरुपेण स्थितः) धुनोति (विनाशयति)।

मनोधर्म ज्ञान और वैराग्य कभी भी आत्मधर्म भक्ति के अङ्ग नहीं, भक्ति के अनुगामी दो पुत्र मात्र—

**ज्ञान-वैराग्यादि—भक्तिर कभु नहे 'अङ्ग'।**
**अहिंसा-यम-नियमादि बुले कृष्णभक्त-सङ्ग॥१४०॥**

**१४०। प० अनु०—**ज्ञान तथा वैराग्य आदि कभी भी 'भक्ति' के अङ्ग नहीं हो सकते। अहिंसा-यम-नियम आदि स्वयं ही कृष्ण भक्त के पीछे-पीछे घूमते हैं।

**अनुभाष्य**

१४०। अनेक लोग भ्रान्तिवशतः सोचते हैं कि ज्ञान और कर्म से उत्पन्न वैराग्य ही भगवद् भक्ति का सोपान (सीढ़ी) है, वास्तव में ऐसा निश्चित रूप में नहीं है। ज्ञान अथवा कर्म से उत्पन्न वैराग्य अपने स्वरूप-तात्पर्य से युक्त नहीं है एवं अनित्य-अवस्था का परिणामशील धर्म विशेष है, इसलिए वह नित्य कृष्णदास्य का अङ्ग नहीं है। कर्म और ज्ञान का फल—परिणामशील अनित्य-अनुभूति का विकार है एवं भोग तथा मोक्ष ही उसका परिणाम है। अतएव नित्यभक्ति के साथ उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान अथवा वैराग्य परिव्यक्त होने पर ही शुद्धभक्ति हो सकती है। कृष्णभक्त स्वभाव से ही हिंसाशून्य, संयमशाली और नियमों में रत रहते हैं। उन्हें इन सब गुणों का उपार्जन अर्थात् कमाई नहीं करनी पड़ती।

भक्ति के बिना ज्ञान-वैराग्य से मङ्गल की प्राप्ति नहीं होती—

श्रीमद्भागवत (११/२०/३१)—

**तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः।**
**न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥१४१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४१। [श्रीभगवान् ने उद्धव से कहा—] मेरे प्रति भक्तियुक्त मुझमें ही चित्त को लगाने वाले प्रिय योगी के लिये ज्ञान तथा वैराग्य की चेष्टा प्रायः ही मङ्गलकर नहीं होती। तात्पर्य यह है कि, भक्ति—स्वाभाविक रूप में ही स्वतन्त्र है; ज्ञान-वैराग्य-योग आदि प्राथमिक अवस्था में उसके लिये किञ्चित् उपयोगी होने पर भी भक्ति के अङ्ग में नहीं गिने जाते।

**अनुभाष्य**

१४१। श्रीमद् उद्धव ने कृष्ण से विधि और निषेधात्मक भगवद्-आज्ञा रूप वेदवाक्यों से जीवों की भोग-बुद्धि की उत्पत्ति, पुनः उन्ही वेदवाक्यों के द्वारा ही भोगबुद्धि के विनाश के विषय में श्रवण करके, उससे जीव की बुद्धि की भ्रान्ति अथवा मोह को दूर करने के उपाय की जिज्ञासा की। भगवान् ने सर्वप्रथम कर्म, ज्ञान और भक्ति मार्ग के तारतम्य (छोटे-बड़े होने का) वर्णन करने

के बाद भक्ति के सर्वश्रेष्ठत्व का वर्णन किया,—

तस्मात् (भक्तेः सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तत्वात्) वै (निश्चित) मद्भक्तियुक्तस्य मदात्मनः (मयि कृष्णे आत्मा मनः यस्य तस्य) योगिनः (भक्तियोगयुक्तस्य जनस्य) इह न ज्ञानं, न च वैराग्यं प्रायः श्रेयः (निःश्रेयसकारण) भवेत्।

शुद्धभक्त अन्यों को उद्वेग नहीं देते—
स्कन्दपुराण के वचन—

**एते न ह्यद्भुता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः।**
**हरिभक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः परतापिनः॥१४२॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४२। हे व्याध, तुममें जो अंहिसा आदि गुण उत्पन्न हुआ है, वह अद्‌भुत नहीं है, क्योकि, जो हरिभक्ति में प्रवृत्त होता है, वह दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाला नहीं होता।

### अनुभाष्य

१४२। हे व्याध, तव एते अंहिसादयः गुणाः अद्‌भुताः (असाधारणाः) न; हि (यतः) ये (जनाः) हरिभक्तौ (कृष्णभजने) प्रवृत्ताः (अनुरताः), ते (भक्ताः) परतापिनः (अपरद्रोहपराः) न स्युः (भवन्ति)।

**(ख) रागानुगा-भक्ति**
**का वर्णन—**

**वैधीभक्ति-साधनेर कहिलुँ विवरण।**
**रागानुगा-भक्तिर लक्षण शुन, सनातन॥१४३॥**

**१४३। प० अनु०—**हे सनातन, मैंने वैधी भक्ति के साधन का विवरण प्रस्तुत किया है। अब तुम रागानुगा भक्ति के लक्षण सुनो।

रागात्मिका और रागानुगा-भक्ति का परिचय—

**रागात्मिका-भक्ति—'मुख्या' व्रजवासि-जने।**
**तार अनुगत भक्तिर 'रागानुगा'-नामे॥१४४॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४४। व्रजवासी भक्तों की जो राग-स्वरूप (रागत्मिका) भक्ति है, वही मुख्य है अर्थात् वैसी भक्ति और कहीं नहीं है। व्रजवासियों के अनुगत होकर जो भक्ति विद्यमान रहती है, उसी का नाम ही रागानुगा भक्ति है।

**रागत्मिका-भक्ति की संज्ञा—**
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२७२)—

**इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।**
**तन्मयी या भेवद्भक्तिः सात्र रागत्मिकोदिता॥१४५॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४५। इष्ट (अभिलषित) वस्तु में स्वाभाविकी और परम-आविष्टता मयी जो सेवनवृत्ति है, उसका नाम 'राग' है; कृष्णभक्ति तन्मयी (वैसी रागमयी) होने पर 'रागत्मिका' नाम से उक्त होती है।

### अनुभाष्य

१४५। इष्टे (अभीष्टवस्तुनि या) स्वारसिकी (स्वीय-सिद्धरसोपयोगिनी स्वाभाविकी गाढ़तृष्णाम-यीत्यर्थः परमाविष्टता) (तदभिनिवेशमयी सेवन-प्रवृत्तिः सा,) रागः भवेत्। तन्मयी (एवम्विध रागमयी) या भक्तिः भवेत्, अत्र (शुद्धभक्तिसाहित्ये) सा 'रागत्मिका' उदिता (कथिता)।

रागत्मिका-भक्ति का 'स्वरूप' और 'तटस्थ' लक्षण—
'गाढ़-तृष्णा' और 'आविष्टता'—

**इष्टे 'गाढ़-तृष्णा'—रागेर स्वरूप-लक्षण।**
**इष्टे 'आविष्टता'—तटस्थ-लक्षण कथन॥१४६॥**
**रागमयी भक्तिर हय 'रागत्मिका' नाम।**
**ताहा शुनि' लुब्ध हय कोन भाग्यवान्॥१४७॥**

**१४६-१४७। प० अनु०—**इष्ट-वस्तु में गाढ़-तृष्णा—राग का स्वरूप-लक्षण है तथा इष्ट-वस्तु में आविष्टता को तटस्थ लक्षण कहा जाता है। रागमयी भक्ति का नाम ही 'रागत्मिका' भक्ति है। उसके विषय में सुनकर कोई भाग्यवान् ही लुब्ध होता है।

### अनुभाष्य

१४६। अपने आनुकूल्य-विषय अर्थात् अभीष्ट वस्तु में गाढ़ तृष्णारूपी राग ही मुख्य अर्थात् स्वरूप-लक्षण है। कार्य के द्वारा ज्ञान—जिसे तटस्थ-लक्षण कहते हैं, वही—इस स्थान पर अभीष्ट वस्तु में आविष्टता है।

रागानुगा-भक्त की प्रकृति
अथवा लक्षण—

**लोभे व्रजवासीर भावे करे अनुगति।**
**शास्त्रयुक्ति नाहि माने—रागानुगार प्रकृति॥१४८॥**

**१४८। प० अनु०—**रागानुग भक्त व्रजवासियों के भावों के प्रति लुब्ध होकर उनके भावों का ही अनुगमन करता है तथा रागानुग भक्त स्वभावतः ही अपनी नित्यसिद्ध रुचि के विरुद्ध जाने वाली शास्त्र की युक्तियों को स्वीकार नहीं करता।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४८। अनुगति—अनुगमन।

### अनुभाष्य

१४८। व्रजवासियों के भावों के प्रति लुब्ध होकर उनके भावों-इच्छाओं का अनुगमन करना ही रागानुग भक्तों की स्वाभाविकी प्रवृत्ति होती है। जातरुचि भक्त अर्थात् ऐसा भक्त, जिसमें रागानुग भक्ति के प्रति रुचि जागृत हो गयी है, स्वाभाविक रूप में ही शास्त्र की युक्तियों में सुनिपुण होता है, उनकी नित्यसिद्ध रुचि के विरुद्ध में अन्य व्यक्ति यदि शास्त्रयुक्ति को प्रदर्शित करने आता भी है, तब भी वह उसे स्वीकार नहीं करता। ज्ञातव्य (जानने योग्य बात) यह है कि, प्राकृत-सहजिया आदि कुपथ के आश्रित सम्प्रदाय वाले व्यक्ति वास्तव में अजातरुचि होने पर भी रागानुगभक्ति के अभिमान में भक्ति के ग्रन्थों की चर्चा और श्रीरूपानुग पथ का परित्याग करके अवैध-स्त्रीलम्पट और मूर्ख जनों के लिये उचित जागतिक-रुचि का पोषण करके अपना सर्वनाश किया करते हैं। वे—वञ्चित तथा दुर्भागे हैं।

रागानुगा-भक्ति की संज्ञा—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२६८)—

**विराजन्तीमभिव्यक्तां व्रजवासिजनादिषु।**
**रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥१४९॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४९। व्रजवासिजनों में अभिव्यक्ति (अत्यन्त प्रकाशित) के रूप में रागत्मिका-भक्ति विराजमान है। उस भक्ति की अनुसूता (अनुगत) जो भक्ति है, वही 'रागानुगा' भक्ति है।

### अनुभाष्य

१४९। या व्रजवासिजनादिषु अभिव्यक्तां (सुप्रकाशितं यथा स्यात् तथा) विराजन्तीं (शोभमाना) रागत्मिकां (नित्यसिद्ध व्रजजन-स्वभावगता) भक्तिम् अनुसृता (अनुगता), सा 'रागानुगा' उच्यते।

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२९२)—

**तत्तदभावादिमाधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।**
**नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभात्पति लक्षणम्॥१५०॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१५०। व्रजवासियों के भाव आदि के माधुर्य को सुनने में बुद्धि जिस लोभ की अपेक्षा रखती है, वही रागानुगा-भक्ति का अधिकार प्रदान करती है। शास्त्र अथवा युक्ति उस लोभ की उत्पत्ति का लक्षण नहीं है।

### अनुभाष्य

१५०। जातरुचि महाभागवतगुरुमुखात् श्रीमद्भागवतपद्म-पुराणदिसिद्धशास्त्राद्वा) तत‌द्भावादि माधुर्ये (व्रजवासिनां शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुर-रसाश्रितभावादीनां माधुर्ये) श्रुते (श्रवणेन अनुभूते

सति) यत् (यस्य) धीः (बुद्धिः) अत्र (इह) शास्त्रं (विधि-वाक्यं) न, युक्तिं (विचारणं) च न अपेक्षते (परन्तु स्वतः स्वभावतः एव प्रवर्त्तते), तदेव लोभोत्पत्तिलक्षणं (रागोदयलक्षणम्)।

जिसके अनर्थ दूर हो गये हैं, ऐसे साधक देह में और सिद्ध देह में रागानुगा-भक्ति का दो प्रकार का अनुशीलन—

**बाह्य, अभ्यन्तर,—इहार दुइ त' साधन।**
**'बाह्ये' साधक-देहे करे श्रवण-कीर्त्तन॥१५१॥**
**'मने' निज-सिद्धदेह करिया भावन।**
**रात्रि-दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥१५२॥**

**१५१-१५२। प० अनु०—**इस रागानुगा भक्ति का 'बाह्य' एवं 'आन्तरिक'—दो प्रकार से अनुशीलन होता है। रागानुगा भक्त साधक देह से बाहर में तो श्रवण तथा कीर्त्तन करता है और मन में अपनी सिद्ध देह की भावना करके रात-दिन व्रज में कृष्ण की सेवा करता है।

शास्त्र-प्रमाण—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२९५)—

**सेवा साधक रूपेण सिद्ध रूपेण चात्र हि।**
**तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥१५३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५३। रागात्मिका-भक्ति में जिनका लोभ होता है, वे व्रजवासियों के कार्यों के अनुसार साधक रूप में बाह्य एवं सिद्धरूप में भीतर में सेवा करते हैं।

**अनुभाष्य**

१५३। अत्र (रागानुगा-भक्तिसाधने) तद्भावलिप्सुना (तत् तस्य व्रजस्थितस्य निजाभीष्टस्य कृष्ण-प्रेष्ठस्य गुरोः यः भावः तस्य लिप्सुना तदनुगमनेन निजायत्तीकर्त्तुमिच्छुना) साधकरूपेण (साधकशरीरे कीर्त्तनाख्यभक्त्याश्रितेन) सिद्ध रूपेण (स्वरूपसिद्धौ नित्यसेवनोपयोगिमानसदेहेन) च व्रजलोकानुसारतः (तदनुरागि-व्रजजनानुगत्येन) सेवा हि कार्या (करणीया)।

रागानुग-भक्त की सब समय गुरु के आनुगत्य में अपनी अभीष्ट-सिद्धसेवा—

**निजाभीष्ट कृष्णप्रेष्ठ पाछे त' लागिया।**
**निरन्तर सेवा करे अन्तर्मना हञा॥१५४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५४। व्रजवासिभक्त ही कृष्ण के प्रेष्ठ हैं; उन व्रजवासियों में से जो जिस व्रज के भक्त के माधुर्य के कारण लोभ पूर्वक उनके अनुगमन (आनुगत्य) में अभीष्ट-सेवा की कामना करता है, वह उनके पीछे-पीछे रहकर अन्तर्मन से निरन्तर कृष्णसेवा करता है।

जिसके अनर्थ दूर हो गये है, ऐसे रागानुग-भक्त का निर्जन में अभीष्ट का स्मरण आदि—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२९४)—

**कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।**
**तत्तत्कथा-रतश्चासौ कुर्याद् वासं व्रजे सदा॥१५५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५५। कृष्ण एवं उनके निज-निर्वाचित प्रेष्ठ-जनों का सर्वदा स्मरण पूर्वक उन-उन कथाओं में रत होकर सर्वदा व्रज में वास करेंगे; शरीर से व्रजवास करने में असमर्थ होने पर, मन-मन में ही व्रजवास करेंगे।

**अनुभाष्य**

१५५। कृष्णं च अस्य (कृष्णस्य) प्रेष्ठं (प्रियतमं) निज समीहितं (निजाभीष्टं) जनं च स्मरन् असौ (साधकः) तत्तत्कथारतः (तत्तद्रसोचित-कथानुरक्तः सन्) सदा (नित्यकाल) व्रजे (नन्द-नन्दन-सेवामय-वृन्दावने) वासं कुर्यात् (स्थूलशरीरे मनसापि वा नित्यनिवासं स्थापयेत्—कृष्ण भजन-विहीनस्य प्राकृत-विषय-भोग-विमूढ़स्य धामवासः कदापि न भवति, परन्तु नित्य-भजन शीलस्य

लौकिकदृष्ट्या अन्यत्रावस्थानेऽपि अहरहः नित्यधाम-वास एव स्यादिति भावार्थः)।

रागानुग की चार रसों में कृष्ण सेवा, शान्तरस में विद्यमानता नही—

**दास-सखा-पित्रादि-प्रेयसीर गण।**
**रागमार्गे निज-निज-भावेर गणन॥१५६॥**

**१५६। प० अनु०—**रागमार्ग में दास-सखा-पिता आदि तथा प्रेयसी के रूप में साधक अपने-अपने भाव के अनुरूप प्रवृत्त होता है।

रागानुग भक्त कृष्ण के साथ चार रसों में सम्बन्धयुक्त और अनन्यभाक् एवं काल और प्रकृति से अतीत—
श्रीमद्भागवत (३/२५/३८) में—

**न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे**
**नऽक्ष्यन्ति नो मेहनिमिषो लेढ़ि हेतिः।**
**येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च**
**सखा गुरुः सुहृदो देवमिष्टम्॥१५७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५७। [भगवान् श्रीकपिलदेव अपनी माता देवहूति से कह रहे हैं— ] मैं ही जिनका प्रिय, आत्मा, पुत्र, सखा, गुरु, सुहृत, देव और इष्ट हूँ, वे—सदैव मेरे परायण रहते हैं। हे शान्तरूपा माता, मेरा कालचक्र उनका कभी भी नाश नहीं करता।

**अनुभाष्य**

१५७। भगवान् मैत्रेय-ऋषि विदुर को कपिल-देवहूति के संवाद का वर्णन कर रहे हैं। देवहूति के द्वारा भगवान् कपिलदेव के निकट भगवद्-भक्तियोग और आत्मतत्त्व के विषय में जिज्ञासा करने पर, कपिलदेव सांख्ययोग के नाम से प्रसिद्ध शुद्धभक्तियोग का कीर्त्तन करते हुए सर्वप्रथम भक्ति को सर्वश्रेष्ठ अभिधेय बतलाकर शुद्धभक्त हरिजनों के माहात्म्य का कीर्त्तन कर रहे हैं,—

हे मातः, शान्तरूपे (मन्निष्ठामयि, शान्तं विकाररहितं शुद्धसत्वं रूपं यस्मिन् तद्रूपे नित्य धाम्नि वैकुण्ठे वा) येषां (भक्तानाम्) अहं प्रियः (प्रेमपात्रं), सुतः (स्नेहविषयः) आत्मा (प्रेष्ठः), सखा (विश्वासास्पदं), गुरुः (उपदेष्टा), सुहृदः (हितकारी), इष्टं देवं (पूज्यः, ते एव) मत्पराः (मद्भक्ताः), (अतः मया रक्षमाणाः) कर्हिचित (कदाचिदपि) न नङ्क्ष्यति (निर्विशेषाः, भोगहीना न भवन्ति यतः) अनिमिषः (कालः) मे (मदीयः) हेतिः (कालचक्र) न लेढ़ि (तान् न ग्रसते)।

रागानुग भक्तों को प्रणाम—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/३०८)—

**पति पुत्र सुहृद्भ्रातृपितृवन्मित्रवद्धरिम्।**
**ये ध्यायन्ति सदोद्युक्तास्तेभ्योऽपीह नमो नमः॥१५८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५८। पति, पुत्र, सुहृत, भ्राता, पिता, मित्र इत्यादि के रूप में हरि का जो सदैव यत्नवान् होकर ध्यान करते हैं, उन्हें बारम्बार नमस्कार है।

**अनुभाष्य**

१५८। इह (अस्मिन् जगति) ये (भक्ताः जनाः) सदा उपयुक्ताः (उत्साह युक्ताः सन्तः) हरिं (भगवन्त) पतिपुत्रसुहृदभ्रातृपितृवत् मित्रवत् च ध्यायन्ति, तेभ्यः अपि नमः नमः।

प्रतिक्षण गुरु के आनुगत्य में निर्दिष्ट अभीष्टसेवा से ही रागानुग-साधक की सिद्धि अथवा भावभक्ति की प्राप्ति—

**एइमत करे जेबा रागानुगा-भक्ति।**
**कृष्णेर चरणे ताँर उपजय 'प्रीति'॥१५९॥**

**१५८। प० अनु०—**जो इस प्रकार रागानुगा-भक्ति का पालन करता है, उसकी श्रीकृष्ण के चरणों में 'प्रीति' उत्पन्न होती है।

### अनुभाष्य

१५९-१६०। जो 'इस प्रकार' अर्थात् बाहर से साधक देह में सुनी हुई हरिकथा के कीर्त्तन द्वारा सेवा एवं मन में कृष्ण-सेवोपयोगी अपने रस के अनुकूल सिद्धदेह से सर्वदा व्रज में राधा-कृष्ण की सेवा करता है, वह शास्त्र अथवा गुरु के शासन के बल से वैधी-भक्ति के स्थान पर अपनी स्वाभाविक जातरुचि के प्रभाव से रागानुग-पथ पर चलते-चलते कृष्ण के चरणों में प्रगाढ़ प्रीति प्राप्त करता है। रागानुग-मार्ग में रति अथवा भाव के प्रभाव से कृष्ण वशीभूत होते हैं एवं तभी कृष्णप्रेम सेवा की प्राप्ति होती है।

*द्वाविंश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

**(२) 'साध्य' भावभक्ति अथवा रति का वर्णन—**
कृष्णप्रेम की अस्फुट अवस्था ही कृष्ण को आकर्षित करने वाली 'भाव रति' अथवा 'रति'—
**प्रीत्यंकुरे 'रति', 'भाव'—हय दुइ नाम।**
**जाहा हैते वश हन श्रीभगवान्॥१६०॥**

**१६०। प॰ अनु॰—**प्रीति के अंकुर के रति तथा भाव—ये दो नाम हैं। जिससे श्रीभगवान् वशीभूत हो जाते हैं।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१६०। 'प्रीत्यङ्कुरे 'रति', 'भाव' हय दुइ नाम'—प्रेम अथवा प्रीति के अंकुर के दो नाम हैं अर्थात् 'रति' और 'भाव'।

*द्वाविंश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

भाव अथवा रति के उदित होने तक 'साधन' रूप 'अभिधेय'; उसी से 'प्रयोजन' की प्राप्ति—
**जाहा हैते पाइ कृष्णेर प्रेम सेवन।**
**एइत' कहिलुँ 'अभिधेय'-विवरण॥१६१॥**

**१६१। प॰ अनु॰—**जिससे कृष्ण की प्रेम-सेवा की प्राप्ति होती है, मैंने तुम्हें उसी अभिधेय के विषय में बतलाया है।

अभिधेय साधनभक्ति का संक्षेप से वर्णन—
**अभिधेय, साधन-भक्ति एबे कहिलुँ सनातन।**
**संक्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना जाय वर्णन॥''१६२॥**

**१६२। प॰ अनु॰—**हे सनातन, मैंने अभिधेय साधन भक्ति का संक्षेप में वर्णन किया है, क्योंकि विस्तार से इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

साधनभक्ति के श्रवण से कृष्णप्रेम का उदय—
**अभिधेय साधनभक्ति शुने जेइ जन।**
**अचिरात् पाय सेइ कृष्णप्रेमधन॥१६३॥**

**१६३। प॰ अनु॰—**जो भी व्यक्ति इस अभिधेय साधनभक्ति के विषय में सुनता है, उसे अतिशीघ्र कृष्णप्रेमधन की प्राप्ति होती है।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥१६४॥**
*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्यखण्ड में अभिधेय-भक्तितत्वविचार नामक द्वाविंश परिच्छेद समाप्त।*

**१६४। प॰ अनु॰—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य चरितामृत का गान कर रहा है।

❊❊❊

# त्रयोविंश परिच्छेद

**कथासार—**प्रभु ने इसके उपरान्त श्रीसनातन के समक्ष भाव के लक्षण, प्रेम और प्रेम के प्रादुर्भाव के लक्षण एवं ऐसा व्यक्ति जिसमें भाव उदित हो गया है, उसके व्यवहार-लक्षण वर्णन करके प्रेम जिस क्रम से 'महाभाव' होता है, उसका एवं पाँच प्रकार की रति की व्याख्या से उस-उस रस की व्याख्या, रस की स्थिति और शृङ्गार रस का सर्वोत्कर्ष संस्थापन एवं उसके स्वकीय-पारकीय-भेद से विविध होने का वर्णन किया है। श्रीमन्महाप्रभु ने कृष्ण के चौंसठ गुणों की व्याख्या, राधिका के पच्चीस गुणों की व्याख्या एवं कृष्णभक्ति रस के अधिकारी का स्वरूप और अष्टाङ्ग लक्षणों का वर्णन किया। प्रभु ने सनातन को भागवत के गूढ़ सिद्धान्त, हरिवंश में लिखित गोलोक की नित्यलीला, केशावतार की विरुद्ध-व्याख्या और शुद्ध व्याख्या—इन समस्त शिक्षाओं को प्रदान करके सनातन के मस्तक पर हस्त अर्पण करके उनमें शक्ति का सञ्चार किया। (अः प्रः भाः)

अनर्पितचर-नामप्रेम प्रदाता महावदान्य
गौर को प्रणाम—

**चिराददत्तं निज गुप्त-वित्तं**
**स्वप्रेम-नामामृतमत्युदारः।**
**आपामरं यो विततार गौरः**
**कृष्णो जनेभ्यस्तमहं प्रपद्ये॥१॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१। अपना प्रेमनामामृत रूपी गुप्त वित्त,—जो इससे पूर्व और किसी को भी दिया नहीं गया था, वही—अति उदार स्वभाव जिन गौर कृष्ण ने आपामर (सभी) व्यक्तियों को वितरण किया था, उनके प्रति मैं शरणागत होता हूँ।

### अनुभाष्य

१। अत्युदारः (महावदान्यः) यः (गौरः कृष्णः) चिरात् अदत्तम् (अनर्पितचर) निजगुप्तवित्तं (स्वीय-गूढ़ रहस्यात्मकधन) स्वप्रेमनामामृतम् आपामरं (साध्व-साध्वधिकार-निर्विशेषेण) जनेभ्यः विततार (अर्पयामास), तं (गौरकृष्णम्) अहं प्रपद्ये (शरणं यामि)।

**जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प॰ अनु॰—**श्री श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो, श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

**[ श्रीसनातन-शिक्षा—(३) प्रयोजन ] (कृष्णप्रेम) का वर्णन—**

अभिधेय साधनभक्ति के फल से प्रयोजन रूप
'साध्य' प्रेमभक्ति—

**''एबे शुन भक्तिफल—'प्रेम'-प्रयोजन।**
**जाहार श्रवणे हय भक्तिरस-ज्ञान॥३॥**

**३। प॰ अनु॰—**हे सनातन, अब तुम भक्ति के फल प्रेम रूपी प्रयोजन के विषय में सुनो। जिसे सुनने से भक्तिरस का ज्ञान होता है।

भाव अथवा रति—प्रेम की तरल अथवा
अंकुर-अवस्था; गाढ़ अथवा पक्व
अवस्था में वही 'प्रेम'—

**कृष्णे रति गाढ़ हैले 'प्रेम'-अभिधान।**
**कृष्णभक्ति-रसेर सेइ 'स्थायीभाव'-नाम॥४॥**

**४। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के प्रति रति के गाढ़ होने पर वह 'प्रेम' कहलाती है। उस प्रेम को कृष्णभक्ति रस का 'स्थायीभाव' कहते हैं।

भाव की संज्ञा;
स्वरूप और तटस्थ-लक्षण—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/३/१)—

**शुद्धसत्वविशेषात्मा प्रेम-सूर्यांशु-साम्यभाक्।**
**रुचिभिश्चितमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५। प्रेम सूर्य का (जो) किरण स्थलीय विशुद्ध सत्त्व स्वरूप है, (और) रुचि द्वारा चित्त को जो तत्त्व द्रवीभूत करता है, उसे ही 'भाव' कहते हैं।

**अनुभाष्य**

५। शुद्धसत्त्वविशेषात्मा (भगवतः कृष्णस्य सर्वप्रकाशक-संविदाख्य-स्वरूपशक्तिवृत्तिरूपः शुद्धसत्त्व विशेषः, स एव आत्मा तन्नित्यप्रियजना-धिष्ठानतया नित्यसिद्धं स्वरूपं यस्य सः) प्रेम सूर्यांशुसाम्यभाक् (प्रेमरूप-सूर्यकिरणसादृश्ययुक्तः—प्रेमणः अत्र प्रथमच्छविरूपः) रुचिभिः (प्राप्त्य-भिलाष-सकर्त्तृकानुकूल्याभिलाष-सौहार्दाभिलाषैः) चित्तमासृण्यकृत (चित्तार्द्रता-सम्पादकः) असौ भावः (प्रेमाङ्कुररूपः) उच्यते।

प्रेम के लक्षण का वर्णन—

**एइ दुइ,—भावेर 'स्वरूप', 'तटस्थ' लक्षण।**
**प्रेमेर लक्षण एबे शुन, सनातन॥६॥**

**६। प० अनु०—**उपरोक्त श्लोक में लिखित शुद्ध सत्व विशेषात्मा आदि—भाव के स्वरूप लक्षण तथा रुचिद्वारा चित्त का द्रवीभूत होना—भाव के तटस्थ लक्षण हैं। हे सनातन, अब तुम प्रेम के लक्षण सुनो।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६। शुद्धसत्त्व स्वरूप ही भाव का 'स्वरूप'-लक्षण है; रुचि के द्वारा चित्त को जो द्रवीभूत करता है,—यही भाव का 'तटस्थ'-लक्षण है।

**अनुभाष्य**

६। **'ऐई दुई**—श्लोक में लिखित (१) शुद्धसत्त्व विशेषात्मादि—भाव का स्वरूप-लक्षण, (२) रुचि द्वारा चित का द्रवीभूत होना—भाव का तटस्थ-लक्षण।

**दो भावों का—**(१) साधन-अभिनिवेशज-भाव, (२) कृष्ण और तद्भक्तप्रसादज-भाव। 'साधना-भिनिवेशेन कृष्ण-तद्भक्तयोस्तथा। प्रसादेनाति-धन्यानां-भावो द्वेधाभिजायते॥'' पुनः कोई-कोई उक्त दो भावों के 'केवला' और 'मिश्रा' अर्थ करते हैं; किन्तु यह अर्थ यहाँ सङ्गत नहीं है, पहले वाला अर्थ ही सङ्गत है।

प्रेम की संज्ञा—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/४/१)—

**सम्यक्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।**
**भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७। जब वह भाव चित्त को सम्पूर्ण रूप में द्रवीभूत करके अत्यन्त ममता द्वारा परिचित होता है एवं स्वयं गाढ़ स्वरूप होता है, तब उसे पण्डितगण 'प्रेम' कहकर सम्बोधित करते हैं।

**अनुभाष्य**

७। सम्यक् मसृणितस्वान्तः (सुष्ठु मसृणितः आर्द्रीकृतं स्वान्तः यस्मात् सः) ममत्वातिशयाङ्कितः (ममत्वातिशययुक्तः—इति तटस्थ लक्षण द्वय-विशिष्टः य सान्द्रात्मा घनीभूतस्वरूपः) (इति स्वरूप-लक्षणयुक्तः) भावः स एव बुधैः 'प्रेमा' निगद्यते (कथ्यते)।

पञ्चरात्र के मतानुसार प्रेम की संज्ञा—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/४/२) में उद्धृत
नारद-पञ्चरात्र के वचन—

**अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसङ्गता।**
**भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रहलादोद्धवनारदैः॥८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८। विष्णु में अनन्य-ममता अर्थात् विष्णु ही एकमात्र ममता के पात्र हैं, और कोई भी नहीं, ऐसी प्रेम सङ्गत ममता को भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदि वैष्णवगण (प्रेम)'भक्ति' कहते हैं।

**अनुभाष्य**

८। विष्णो (भगवति), प्रेमसङ्गता (प्रेमयुक्ता) अनन्य-ममता (एकान्तिकी सम्बन्धमयी) ममता (प्रीतिः) इति भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः (भक्तैः सा), भक्तिः (भावः) उच्यते।

प्रेमभक्ति-प्राप्ति की क्रमपन्था; सर्वप्रथम 'श्रद्धा' से 'आसक्ति' पर्यन्त अभिधेय 'साधन भक्ति' और बाद में रति अथवा 'भावभक्ति' का उदय; रति के घनीभूत होने पर प्रयोजन 'प्रेमभक्ति'—

**कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।**
**तबे सेइ जीव 'साधुसङ्ग' करय॥९॥**
**साधुसङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्त्तन'।**
**साधनभक्तये हय 'सर्वानर्थनिवर्त्तन'॥१०॥**
**अनर्थनिवृति हैले भक्त्ये 'निष्ठा' हय।**
**निष्ठा हैते श्रवणाद्ये 'रुचि' उपजय॥११॥**
**रुचि हैते भक्तये हय 'आसक्ति' प्रचुर।**
**आसक्ति हैते चित्ते जन्मे कृष्णे प्रीत्यांकुर॥१२॥**
**सेइ 'रति' गाढ़ हैले धरे 'प्रेम'-नाम।**
**सेइ प्रेमा—'प्रयोजन' सर्वानन्द-धाम॥१३॥**

**९-१३। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९-१३। किसी भक्ति-उन्मुखी सुकृति के बल से किसी जीव की यदि अनन्य भक्ति के प्रति श्रद्धा-उत्पन्न होती है, तो फिर वह जीव शुद्ध भक्त रूपी साधु का सङ्ग करता है। उस साधुसङ्ग से ही श्रवण-कीर्त्तन होता है। श्रवण और कीर्त्तन जितने परिमाण में होता है, साधनभक्ति में उसी परिमाण में अनर्थ दूर होते रहते हैं। श्रद्धा के उदय के समय से लेकर श्रवण और कीर्त्तन द्वारा स्थूल-स्थूल अनर्थों के दूर होने पर श्रद्धा ही अनन्य भक्ति के प्रति 'निष्ठा' के रूप में उदित होती है; निष्ठा ही क्रमशः 'रुचि' हो जाती है। उस रुचि से बाद में 'आसक्ति' उत्पन्न होती है। आसक्ति के निर्मल होने पर कृष्ण प्रीति का अंकुर-स्वरूप 'भाव' अथवा 'रति' होती है। वही रति गाढ़ होने पर 'प्रेम'-नाम प्राप्त करती है। वही प्रेम ही सर्वानन्दधाम स्वरूप 'प्रयोजन' तत्त्व है।

**अनुभाष्य**

९-१३। **साधनभक्ति**—सर्वप्रथम साधक की श्रद्धा, उसके फलस्वरूप साधुसङ्ग अथवा गुरु-पादाश्रय, उसके साथ-साथ भजनक्रिया, उसके फलस्वरूप अनर्थ-निवृत्ति, उसके फलस्वरूप निष्ठा अथवा अविक्षेप (बिना किसी बाधा के) सब समय के लिये भजन क्रिया, उसके फलस्वरूप रुचि, उसके फलस्वरूप आसक्ति अथवा स्वारसिकी रुचि। साधन-भक्ति से आसक्ति के फलस्वरूप जिस 'साध्य' रति का उदय होता है, वही 'भाव' कहलाती है।

**भावभक्ति—**प्रेमसूर्यकिरण सदृशी एवं रुचि के द्वारा चित्त को द्रवीभूत कर देने वाली प्रेम की प्रथम अंकुरावस्था को ही 'भाव-भक्ति' कहते हैं। प्रेम से पूर्व 'भाव'-संज्ञा ही बाद में उत्कृष्ट पक्व (पक जाने) अथवा परिणत होने पर 'प्रेमभक्ति' कहलाती है। इसलिए 'प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्'-शब्द में 'भाव' और 'प्रेम' भक्ति का तारतम्य (अन्तर) लिखा है। वह भक्त जिसमें रति उत्पन्न हो गयी है,

ऐसा जातरति भक्त उत्कृष्ट होकर क्रमशः प्रेमभक्ति प्राप्त करता है। रति के गाढ़े होने पर उसे 'प्रेम' कहते हैं। यही प्रेम ही भक्ति का फल है, प्रयोजन एवं परमानन्दमय है।

शास्त्र प्रमाण—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/४/१५-१६)—

**आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।**
**ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥१४॥**
**अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।**
**साधकानामयं प्रेमणः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥१५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४-१५। सर्वप्रथम श्रद्धा, उससे साधुसङ्ग, उससे भजनक्रिया, उससे अनर्थनिवृत्ति, उसके बाद निष्ठा, उससे रुचि और आसक्ति,—यहाँ तक साधन भक्ति होती है; उससे क्रमशः 'भाव' और अन्त में 'प्रेम' उदित होता है। साधकों के प्रेमोदय का यही क्रम जानना चाहिए।

**अनुभाष्य**

१४-१५। आदौ श्रद्धा (असति परिणामशीले वस्तुनि शिथिलानुरागः सन् अप्राकृते सच्चिदानन्द-विग्रहे विष्णो दृढ़ विश्वासः), ततः (लब्धविश्वासात्) साधुसङ्गः (अप्राकृतबुद्धया गुरुवैष्णवचरणाश्रयः ततः कृष्णदीक्षादि-भजनरीतिशिक्षणं च), अथ (अतः श्रौतवर्त्मना तेषामानुगत्येन गुरुचरणन्तिके) भजन-क्रिया (कृष्ण-भजनानुष्ठान), ततः (भजनानुष्ठानात्) अनर्थ-निवृत्तिः (परमार्थे प्रवृत्तौ तु तदितरविषय-भोगनिवृत्तिः) स्यात् (भवति); ततः (विषयसङ्ग-त्यागादनन्तर) निष्ठा ('शमो मन्निष्ठता बुद्धेः' इति भगवद्वचनात् अविक्षेपेण सातत्य), ततः रुचिः (रागः), अथ (तदनन्तर) आसक्तिः (स्वारसिकी रुचिः), ततः भावः (आदौ प्रेमाङ्कुरः) ततः प्रेमा (चरम-प्रयोजनम्) अभ्युदञ्चति (उदेति)-साधकानां प्रेमणः प्रादुर्भावे (उदये) अयं क्रमः भवेत्।

श्रीभागवत-प्रमाण—
श्रीमद्भागवत (३/२५/२५) में—

**सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति**
**हृत्कर्ण-रसायनाः कथाः।**
**तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि**
**श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥१६॥**

१६। [भगवान् श्रीकपिलदेव ने कहा—] साधु-सङ्ग में मेरी वीर्य सूचक हृत्कर्णरसायन कथाएँ आलोचित होती हैं। उन-उन कथाओं का श्रवण करते-करते शीघ्र ही अपवर्ग पथ स्वरूप मुझमें पहले श्रद्धा फिर रति तथा अन्त में प्रेम भक्ति उदित होती है।

**अनुभाष्य**

१६। आदि, प्रथम परिच्छेद ६० श्लोक द्रष्टव्य।

पूर्व परिच्छेद में
(१) साधन भक्ति के लक्षण वर्णित;
अब (२) भावभक्ति के लक्षण का वर्णन—

**जाँहार हृदये एइ भावांकुर हय।**
**ताँहाते एतेक चिह्न सर्वशास्त्रे कय॥१७॥**

**१७। प० अनु०—**जिनके हृदय में यह भावांकुर होता है, उनमें निम्नलिखित लक्षण उदित होते हैं, सभी शास्त्र ऐसा कहते हैं।

**अनुभाष्य**

१७। भाव के अंकुरित होने पर अर्थात् रति के उदित होने पर नौ लक्षण साधक में देखे जाते हैं।

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/३/२५-२६)—

**क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।**
**आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः॥१८॥**
**आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।**
**इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावांकुरे जने॥१९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८-१९। क्षान्ति अर्थात् क्षमा, अव्यर्थकालत्व अर्थात् काल वृथा न जाए—ऐसा प्रयत्न, विरक्ति अर्थात् कृष्ण सम्बन्ध विहीन अन्य वस्तुओं के प्रति वैराग्य, मानशून्यता अर्थात् सम्मान प्राप्त करने का कारण रहने पर भी मान हीन होना, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, सर्वदा कृष्ण नाम गान में रुचि, कृष्ण के गुणों के वर्णन में आसक्ति, कृष्ण के वासस्थान में प्रीति,—इस प्रकार सभी अनुभाव भावाङ्कुर के उत्पन्न होने पर मनुष्य के स्वभाव में लक्षित होते हैं।

**अनुभाष्य**

१८-१९। जात भावांकुरे जने (जातरुचौ भक्ते) क्षान्तिः (क्षोभहेतो प्राप्ते सति अक्षुभितात्मता), अव्यर्थकालत्वं (कृष्ण सम्बन्ध वस्तुनि एव केवलं कालक्षेपः) विरक्तिः (कृष्णेतरवस्तुनि वीतस्पृहा), मानशून्यता (उत्कृष्टत्वेऽपि अमानित्वम्), आशाबन्धः (भगवतः दृढ़प्राप्ति-सम्भावना), समुत्कण्ठा (निजाभीष्टलाभाय गुरुलुब्धता), नामगाने सदा रुचिः, तदगुणाख्याने आसक्तिः, तद्वसतिस्थले प्रीतिः—इत्यादयः 'अनुभावाः' स्युः (वर्त्तन्ते)।

श्लोक-व्याख्या—(१) क्षान्ति
अथवा क्षोभराहित्य—

**एइ नव प्रीत्यांकुर जाँर चित्ते हय।**
**प्राकृत-क्षोभे ताँर क्षोभ नाहि हय॥२०॥**

**२०। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

**२०।** पूर्वलिखित नौ प्रकार का प्रीति का अंकुर भाव जिसके चित्त में उदित होता है, इस प्राकृत-राज्य में उसके लिये किसी प्रकार की असुविधा का विषय उपस्थित होने पर भी उसको वह कुछ भी मानता नहीं है।

श्रीमद्भागवत (१/१९/१५)—

**तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा**
**गङ्गा च देवी घृतचितमीशे।**
**द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको**
**वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः॥२१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१। [महाराज परीक्षित ने कहा—] विप्र रूपी आप सब एवं गङ्गादेवी मुझे शरणागत और कृष्ण में अर्पित चित्त वाला समझें। इस समय ब्राह्मण के द्वारा प्रेरित कुहक ही हो अथवा तक्षक ही हो, मुझे यथेच्छा (अपनी इच्छानुसार) डसे; आप कृष्णकथा का गान करते रहिए।

**अनुभाष्य**

२१। शमीक-ऋषि के पुत्र श्रृङ्गी के शाप का श्रवण करके गङ्गा के तट पर प्रायोपवेशन का सङ्कल्प लेकर महाराज परीक्षित कृष्ण चिन्ता में रत हुए थे; उस समय उनके निकट बहुत से ऋषि आकर उपस्थित हुए, महाराज परीक्षित उनका विधि-अनुसार सत्कार करके, ब्राह्मण के शाप को हरिकथा के श्रवण का सुयोग प्रदान करने वाले मङ्गलमय वर के रूप में वर्णन करके ऋषियों से सर्वक्षण हरिकथा का कीर्त्तन करने का अनुरोध कर रहे हैं,—

हे विप्राः भवन्तः, देवी (देवतारूपा) गङ्गा च ईशे धृतचित्तम् (ईश्वरार्पितचित्त) तं (तथाभूत) मा (माम्) उपयातं (शरणागत) प्रतियन्तु (जानन्तु); द्विजोपसृष्टः (द्विज-प्रेरितः) कुहकः तक्षकः वा अलं दशतु, विष्णुगाथा (विष्णुकथाः) गायत (यूयं कीर्त्तयत)।

(२) अव्यर्थकालत्व और (३) इन्द्रियतर्पण-विरक्ति—

**कृष्ण-सम्बन्ध बिना काल व्यर्थ नाहि जाय।**
**भुक्ति, सिद्धि, इन्द्रियार्थ ताँरे नाहि भाय॥२२॥**

**२२। प० अनु०—**कृष्ण से सम्बन्धित क्रियाओं

के अलावा जातरति भक्त का समय बिल्कुल भी व्यर्थ नहीं जाता। भोग, सिद्धि तथा इन्द्रियों के सुख की कोई भी वस्तु उसे अच्छी नहीं लगती।

### अनुभाष्य

२२। जिस व्यक्ति में रति उत्पन्न हो गयी है, ऐसे जातरति भक्त के ऐहिक (इस जगत् के) और पारलौकिक भोग (स्वर्ग से लेकर सत्यलोक तक के भोग), अणिमादि सिद्धि और इन्द्रियतर्पण आदि शोभा नहीं पाते एवं उसे इन सबकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

समस्त इन्द्रियों के द्वारा कृष्णसेवा करने पर भी भावभक्तों की चिन्मयी (अप्राकृत) चमत्कारमयी अतृप्ति—
हरिभक्तिसुधोदय (१२/३८) में—

**वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा स्मरन्तस्तन्वा**
**नमस्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः।**
**भक्ताः स्रवन्नेत्रजलाः**
**समग्रमायुर्हरेरेव समर्पयन्ति॥२३॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

२३। भक्त नेत्रों में जलधारा (अश्रुओं) के साथ-साथ वचनों के द्वारा स्तव, मन के द्वारा स्मरण एवं शरीर के द्वारा नमस्कार करके भी तृप्त नहीं हो पाता। इस प्रकार की क्रिया के द्वारा वह अपनी सम्पूर्ण आयु श्रीहरि में समर्पण (अर्थात् उनके उद्देश्य से व्यतीत) करता है।

### अनुभाष्य

२३। भक्ताः अनिशं (सर्वकाल) वाग्भिः स्तुवन्तः, मनसा स्मरन्तः, तन्वा नमन्तः अपि, न तृप्ताः भवन्ति,; स्रवन्नेत्रजलाः (वाष्पविगलित- नयनाः सन्तः) समग्रम आयुः हरेः (हरयेः) एव समर्पयन्ति।

कृष्ण के अतिरिक्त अन्य विषय भोगों से विरक्त भरत का दृष्टान्त—
श्रीमद्भागवत (५/१४/४३) में—

**यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः।**
**जहौ युवैव मलवदुतमः श्लोकलालसः॥२४॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

२४। भरत महाराज ने उत्तमः श्लोक कृष्ण को प्राप्त करने की लालसा से युवावस्था में ही हृदय को चुरा लेने वाली पत्नी, पुत्र, सुहृद और राज्य आदि का मल की भाँति परित्याग किया था;—यही जातभाव व्यक्ति की विरक्ति का लक्षण है।

### अनुभाष्य

२४। परीक्षित के निकट श्रील शुकदेव महाभागवत भरत के शुद्ध हरि भजन के आचरण-रूपी गुण-महिमा का कीर्तन कर रहे हैं,—

यः (भरतः) उत्तमश्लोकलालसः (उत्तमः श्लोके लालसा लम्पटत्वं यस्य सः कृष्णोत्कण्ठः सन्) हृदिस्पृशः (मनोज्ञान्) दुस्त्यजान् (दुष्परिहरान्) सुहृद्राज्यं (उभयोर्द्वन्द्वक्य) दार सुतान् युवैव (मलवत्) जहौ (परित्यक्तवान्) तस्य आर्षभस्य अनुवर्त्म अन्यो नृपः नार्हतीति पूर्वेणान्वयः।

(४) मानशून्यता और (५) आशाबन्ध—

**'सर्वोत्तम' आपनाके 'हीन' करि' माने।**
**'कृष्ण कृपा करिबेन'—दृढ़ करि' जाने॥२५॥**

**२५। प॰ अनु॰—**सर्वोत्तम होने पर भी भावभक्त स्वयं को हीन मानता है तथा 'कृष्ण कृपा करेंगे ही करेंगे' वह यह दृढ़ रूप से जानता है।

अमानी होने का दृष्टान्त—
पद्मपुराण के वचन—

**हरौ रतिं वहन्नेषो नरेन्द्राणां शिखामणिः।**
**भिक्षामटन्नरिपुरे श्वपाकमपि वन्दते॥२६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२६। हरि के प्रति रति से युक्त होकर यह राजशिरोमणि (सम्राट) अरिपुर (शत्रु के गढ़) में भिक्षा करते हुए चण्डाल की भी वन्दना कर रहे हैं।

**अनुभाष्य**

२६। नरेन्द्राणां शिखामणिः (नृपकुलचूड़ामणिः) एषः हरौ रतिं वहन् (पोषयन्) अरिपुरे (शत्रुनिवासे) भिक्षां अटन् (तदर्थं परिभ्रमन्) श्वपाकं (सुनीचम्) अपि वन्दते।

आशाबन्धयुक्त की उक्ति—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/३/३५)—
श्रीरूप गोस्वामि द्वारा उद्धृत श्रीसनातन-प्रभु के वाक्य—

**न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि वा योगोऽथवा वैष्णवो**
**ज्ञानं वा शुभकर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्ति वा।**
**हीनार्थाधिकसाधके त्वयि तथाप्यच्छेद्यमूला सती**
**हे गोपीजनवल्लभ व्यथयते हा हा मदाशैव माम्॥२७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७। मुझमें प्रेम, श्रवण आदि भक्ति, वैष्णव योग (वैष्णव सङ्ग), ज्ञान अथवा शुभकर्म अथवा सद्जाति कुछ भी नहीं है। हे गोपीजनवल्लभ, अकिञ्चन के अर्थसाधकरूपी आपके प्रति एक प्रकार अच्छेद्यमूलक जो श्रद्धा आशा मेरे हृदय में है, वह मुझे व्यथित कर रही है।

**अनुभाष्य**

२७। मम , प्रेमा वा, श्रवणदि भक्तिः अपि, अथवा वैष्णवः (विष्णुध्यानमयः) योगः (शुद्ध भक्ति योगः), ज्ञानं (ब्रह्म-निष्ठे) वा शुभकर्म (दैववर्णाश्रमादिरूपं) वा, अहो (खेदे) कियत् सज्जातिः (सद्वंशजातसम्मानम्) अपि वा न अस्ति, हे गोपीजनवल्लभ, हीनार्थाधिकसाधके (हीनजने योग्यतापरिमाणाधिकफलदातरि) त्वयि अच्छेद्यमूला (सर्वेथैव अविच्छेद्या) सती (शुद्धा) हा हा मत् आशा (मम) आशा मां व्यथयते एव।

(६) समुत्कण्ठा और (७) नाम गान में सदा रुचि—

**समुत्कण्ठा हय सदा लालसा-प्रधान।**
**नाम-गाने सदा रुचि, लय कृष्णनाम॥२८॥**

**२८। प० अनु०—**जिसके चित्त में प्रेम का अंकुर उत्पन्न होता है उसमें कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करने की तीव्र उत्कण्ठा रहती है तथा उसकी नाम-गान में सदा रुचि रहती है एवं वह सदैव कृष्णनाम उच्चारण करता है।

समुत्कण्ठा में भक्त की उक्ति—
श्रीकृष्णकर्णामृत (३२) में
उद्धृत बिल्वमङ्गलवाक्य—

**त्वच्छेशवं त्रिभुवनाद्भुतमित्यवेहि**
**मच्चापलञ्च तव वा मम वाधिगम्यम्।**
**तत् किं करोमि विरलं मुरलीविलासि मुग्धः**
**मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम्॥२९॥**

२९। हे वंशीविलासि कृष्ण, तुम्हारे शैशवकाल (बचपन) का माधुर्य त्रिभुवन में अद्भुत है। तुम्हारी चपलता को तुम और मैं ही जानती हूँ, और कोई नहीं जानता। मैं अपने इन दोनों चक्षुओं द्वारा एकान्त में तुम्हारे सुन्दर मुख रूपी कमल के दर्शन करने के लिये अब क्या करूँ?

**अनुभाष्य**

२९। मध्य, द्वितीय परिच्छेद ६१ संख्या द्रष्टव्य।

नामगान का दृष्टान्त—
भक्तिरसामृत सिन्धु (१/३/३८)—

**रोदनबिन्दुमकरन्द-स्यन्दि-दृगिन्दीवराद्य गोविन्द।**
**तव मधुरस्वरकण्ठी गायति नामावलीं वाला॥३०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३०। हे गोविन्द, यह कम आयु वाली राधिका आज अपने नयनकमल में अश्रु भरकर मधुरकण्ठ से आपकी नामावली का गान कर रही है।

### अनुभाष्य

३०। हे गोविन्द, अद्य रोदनबिन्दुमकरन्द-स्यन्दि-दृगिन्दीवरा (रोदनबिन्दवः एव मकरन्दाः पुष्परसाः ते स्यन्दन्ति दृशौ इव इन्दीवरौ नीलपद्म-नेत्राभ्यां यस्याः सा) मधुरस्वरकण्ठि (सौन्दर्यवती) बाला (राधिका) तव नामावली गायति।

(८) कृष्ण के गुणों के आख्यान में आसक्ति और
(९) कृष्ण के वास स्थान में प्रीति—

**कृष्णगुणाख्याने हय सर्वदा आसक्ति।**
**कृष्णलीला-स्थाने करे सर्वदा वसति॥३१॥**

**३१। प० अनु०—**भावभक्त में कृष्ण के गुणों के वर्णन वाले प्रसङ्गों में सदैव आसक्ति रहती है तथा वह कृष्ण की लीला-स्थलियों में सदैव वास करता है।

कृष्ण के माधुर्य का वर्णन—
श्रीकृष्णकर्णामृत (९२) में बिल्वमङ्गलवाक्य—

**मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो-**
**र्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।**
**मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो**
**मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥३२॥**

३२। इन कृष्ण का शरीर—मधुर, इनका मुख—उससे भी मधुर और इनकी मधुगन्धि मृदुहास्य और भी मधुर हैं; अहो! इनका सबकुछ ही मधुर है।

### अनुभाष्य

३२। मध्य, इक्कीस परिच्छेद १३६ संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण के प्रिय वास-स्थान के प्रति प्रीति का दृष्टान्त—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/१५६)—

**कदाहं यमुनातीरे नामानि तव कीर्तयन्।**
**उद्बाष्पः पुण्डरीकाक्ष रचयिष्यामि ताण्डवम्॥३३॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

३३। हे पुण्डरीकाक्ष, मैं कब आपका नाम कीर्त्तन करते-करते अश्रुपूर्णनेत्रों से युक्त होकर यमुना के तट पर नृत्य करूँगा।

### अनुभाष्य

३३। हे पुण्डरीकाक्ष, कदा अहं यमुनातीरे (कालिन्दी तटे) तव नामानि कीर्त्तयन्, उद्बाष्पः (अश्रुपूर्णनेत्रः सन्) ताण्डवं (नृत्य), रचयिष्यामि (करिष्यामि)?

यहाँ तक भाव भक्ति के लक्षण वर्णित, अब (३) प्रेमभक्ति के लक्षण का वर्णन—

**कृष्णे 'रतिर' चिह्न एइ कैलुँ विवरण।**
**'कृष्णप्रेमेर' चिह्न एबे शुन, सनातन॥३४॥**

**३४। प० अनु०—**हे सनातन, मैंने कृष्ण के प्रति होने वाली रति के लक्षणों के विषय में बतलाया, अब तुम कृष्णप्रेम के लक्षणों के विषय में श्रवण करो।

कृष्ण के प्रेमिक वैष्णव अथवा शुद्धभक्त—
प्राकृत सर्वश्रेष्ठ सूक्ष्मदर्शी समालोचकों के लिये भी दुर्बोध्य—

**जाँर चित्ते कृष्णप्रेमा करये उदय।**
**ताँर वाक्य, क्रिया, मुद्रा विज्ञेह ना बुझय॥३५॥**

**३५। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

### अनुभाष्य

३५। जिस भक्त में प्रेम उदित हो गया है, ऐसे उदित प्रेम भक्त के वचन, अनुष्ठान और क्रिया-मुद्रा को विचक्षण पण्डित भी समझने में समर्थ नहीं होते।

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/४/१७)—

**धन्यस्यायं नवप्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि।**
**अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सुदुर्गमा॥३६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३६। जिस धन्य व्यक्ति के चित्त में नवप्रेम उदित होता है, उसकी समस्त क्रिया और मुद्रा अर्थात् समस्त चिह्न शास्त्रज्ञ पुरुषों के लिये भी अत्यधिक दुर्बोध्य हो पड़ते हैं।

**अनुभाष्य**

३६। यस्य धन्यस्य (सफलार्थस्य भक्तजनस्य) चेतसि (चित्ते) नवप्रेमा उन्मीलति (प्रकटो भवति) तस्य, अस्य मुद्रा (चेष्टा) अन्तर्वाणिभिः (शास्त्र-विद्भिः) अपि सुष्ठु सुदुर्गमा (बोधुम अतीव अशक्या)।

प्रेमी भक्तों के लक्षण और क्रिया-चेष्टा—
श्रीमद्भागवत (११/२/४०)—

**एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्त्या**
**जातानुरागो द्रुतचित उच्चैः।**
**हसत्यथो रोदिति रौति**
**गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥३७॥**

३७। कृष्णसेवा-व्रती पुरुष विवश-चित्त होकर निज प्रियतम श्रीकृष्ण के नामकीर्तन में जातानुराग-वश श्लथ-हृदय (नरमदिल के) होते हैं; वे उन्मत्त की भाँति लोक-बाह्य अर्थात् अपेक्षा-रहित होकर कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी शोर मचाते हैं, कभी गाते हैं, नृत्य करते हैं।

**अनुभाष्य**

३७। आदि सप्तम परिच्छेद ९४ संख्या द्रष्टव्य।

प्रेम के गाढ़ होने के तारतम्य का वैशिष्ट्य;
अन्त में 'महाभाव'—

**प्रेमा क्रमे बाड़ि' हय—स्नेह, मान, प्रणय।**
**राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय॥३८॥**

**३८। प० अनु०—**प्रेम क्रमशः बढ़ते-बढ़ते स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव हो जाता है।

उपमा—

**जैछे बीज, इक्षुरस, गुड़, खण्ड, सार।**
**शर्करा, सिता, मिछरि, शुद्धमिछरि आर॥३९॥**

बीजरूपी रति और प्रेम की गाढ़-अवस्था के समूह के तारतम्य से रस के आस्वादन की अधिकता का तारतम्य—

**इँहा जैछे क्रमे निर्मल क्रमे बाड़े स्वाद।**
**रति-प्रेमादिर तैछे बाड़ये आस्वाद॥४०॥**

**३९-४०। प० अनु०—**जिस प्रकार गन्ने का बीज, गन्ना, रस, गुड़, खण्ड, शर्करा, सिता मिश्री तथा शुद्ध मिश्री एक ही वस्तु होने पर भी क्रमशः निर्मल (शुद्ध) होते जाते हैं तथा उनका क्रमशः स्वाद भी बढ़ता जाता है, उसी प्रकार रति-प्रेम आदि का भी क्रमशः आस्वादन बढ़ता ही जाता है।

पाँच प्रकार की रति—

**अधिकारि-भेदे रति—पञ्च प्रकार।**
**शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर आर॥४१॥**

**४१। प० अनु०—**अधिकारी के भेद से रति शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर—इन पाँच प्रकार की होती है।

**अनुभाष्य**

**४१।** रति—(भक्तिरसामृत सिन्धु पूर्व विभाग तृतीय लहरी) ''व्यक्तं मसृणिते-वान्तर्लक्षते रति-लक्षणम्। मुमुक्षुप्रभृतीनाञ्चेद्भवेदेषा रतिर्न हि। किन्तु बालचमत्कारकारी तच्चिह्नवीक्षया। अभिज्ञेन सुबोधोऽयं रत्याभास प्रकीर्त्तितः॥'' आन्तरिक द्रवी-भूतता जहाँ प्रकाशित होती है, वही रति का लक्षण है, किन्तु मुमुक्षु (मुक्तिकामी) अथवा बुभुक्षु (भोगाकाङ्क्षी) में लक्षित होने पर वह कभी भी 'रति'-पदवाच्य नहीं है। कृष्ण सेवा रहित अन्य अभिसन्धि से युक्त इस रति के चिह्न को देखकर अज्ञानी बालिश (भोले-भाले) व्यक्ति ही चमत्कृत

होते हैं। किन्तु भक्ति-सिद्धान्त को जानने वाले व्यक्तियों ने उसे 'रति का आभास' कहकर कीर्त्तन किया है।

पाँच रसों से ही कृष्ण वशीभूत—

**एइ पञ्च स्थायीभावे हय पञ्च 'रस'।**
**जे-रसे भक्त 'सुखी', कृष्ण हय 'वश'॥४२॥**

**४२। प० अनु०—**इन पाँच स्थायी भावों में पाँच रस होते हैं, जिस रस में भक्त सुखी होता है श्रीकृष्ण भी उसी रस में ही उसके वशीभूत हो जाते है।

**अनुभाष्य**

४२। स्थायी भाव, (भक्तिरसामृतसिन्धु दक्षिण विभाग पञ्चम लहरी प्रथम श्लोक)—अविरुद्धान विरुद्धांश्च भावान् यो वशतां नयन्। सु-राजेव विराजेत स स्थायी भाव उच्यते॥ स्थायी भावोऽत्र स प्रोक्तः श्रीकृष्ण विषया रतिः।'' हास्य आदि अविरुद्ध भाव एवं क्रोध आदि विरुद्ध भाव समूहों को जो भाव वशीभूत करके उत्तम राजा की भाँति विराजित होता है, वही स्थायी भाव है। इस स्थान पर श्रीकृष्ण-विषयक रति को ही 'स्थायी-भाव' कहा जाता है।

स्थायीभाव अथवा रति के साथ सामग्री के मिलन से रस की उत्पत्ति; रति ही रस का 'मूल'—

**प्रेमादि स्थायीभाव सामग्री-मिलने।**
**कृष्णभक्ति रसरूपे पाय परिणामे॥४३॥**

**४३। प० अनु०—**प्रेम आदि स्थायी भाव के साथ सामग्री के मिलन से कृष्णभक्ति रस रूप में परिणत हो जाती है।

चार प्रकार की सामग्री—

**विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी।**
**स्थायीभाव 'रस' हय एइ चारि मिलि'॥४४॥**

उपमा—

**दधि जेन खण्ड-मरिच-कर्पूर-मिलने।**
**'रसालाख्य' रस हय अपूर्वास्वादने॥४५॥**

**४४-४५। प० अनु०—**दही जिस प्रकार चीनी, काली मिर्च तथा कर्पूर के मिलाने पर अपूर्व आस्वादनीय 'रसाला' रूपी रस बन जाती है उसी प्रकार स्थायीभाव—विभाव, अनुभाव, सात्विक तथा व्यभिचारी से मिलकर—रस बन जाता है।

**अनुभाष्य**

४३-४४। (भक्ति रसामृतसिन्धु दक्षिण विभाग प्रथम लहरी का श्लोक)—''अथास्याः केशवरतेर्ल-क्षिताया निगद्यते। सामग्रीपरिपोषेण परमारस-रूपता॥ विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचा-रिभिः। स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः। एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत॥''

रस के 'हेतु' विभाव के दो प्रकार—(१) आलम्बन और (२) उद्दीपन—

**द्विविध 'विभाव',—आलम्बन, उद्दीपन।**
**वंशीस्वरादि—'उद्दीपन', कृष्णादि—'आलम्बन'॥४६॥**

**४६। प० अनु०—**विभाव दो प्रकार के होते हैं—आलम्बन तथा उद्दीपन। वंशी की ध्वनि आदि उद्दीपन तथा कृष्ण आदि आलम्बन कहलाते हैं।

**अनुभाष्य**

४६। (भक्तिरसामृतसिन्धु दक्षिण विभाग प्रथम लहरी का श्लोक)—''तत्र ज्ञेया विभावस्तु रत्या-स्वादन-हेतवः। ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्-दीपनाः परे॥'' तदुक्तमग्नि पुराणे—''विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते। विभावो नाम स द्वेधालम्बनोद्दीपनात्मकः॥'' कृष्णरति के आस्वादन के कारण को 'विभाव' कहते हैं; वह दो प्रकार का होता है—आलम्बन और उद्दीपन। जिससे एवं जिसके द्वारा रति आदि विभावित होती है,

वही अग्निपुराण आदि में 'विभाव' (आलम्बनमय और उद्दीपनमय) के नाम से कथित है।

**आलम्बन—**"कृष्णश्च कृष्णभक्ताश्च बुधैरालम्बना मताः। रत्यादेर्विषयत्वेन तथाधारतयापि च॥" रति इत्यादि (अर्थात् गौण हास्य-आदि रस के) विषय के रूप में 'कृष्ण' एवं आधार-स्वरूप में 'कृष्ण-भक्त'—इन दोनों को पण्डितगण 'आलम्बन' कहते हैं।

**उद्दीपन—**"उद्दीपनास्तु ते प्रोक्ता भावमुद्दीपयन्ति ये। ते तु श्रीकृष्णचन्द्रस्य गुणाश्चेष्टा; प्रसाधनम्॥ स्मिताङ्गसौरभे वंशशृङ्गनूपुरकम्बरः। पदाङ्क-क्षेत्र-तुलसी-भक्त-तदवास-रादयः॥" जो भाव प्रकाशित करते हैं, वही उद्दीपन हैं; यथा;—श्रीकृष्ण के गुण, चेष्टा और प्रसाधन (कंघे आदि के द्वारा केश-विन्यास आदि देह के सज्जोपकरण) एवं स्मित (मृदुहास्य), अङ्गगन्ध, वंशी, श्रृङ्ग, नुपुर, शङ्ख, पदचिह्न, क्षेत्र, तुलसी, भक्त, हरिवासर आदि एकादशी-व्रत।

रस के 'कार्य' अनुभाव के १३ प्रकार
के भेद; आठ प्रकार के सात्विक
और रस के 'कार्य'—

**'अनुभाव'—स्मित, नृत्य, गीतादि उद्भास्वर।**
**स्तम्भादि—'सात्विक' अनुभावेर भितर॥४७॥**

**४७। प० अनु०—**अनुभाव—स्मित (मन्दहास्य), नृत्य, गीत आदि उद्भास्वर (आङ्गिक अनुभाव) हैं और स्तम्भ आदि सात्त्विक भाव अनुभाव के अन्तर्भुक्त ही हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४७। **उद्भास्वर—**आङ्गिक अनुभावविशेष, (वह) पाँच प्रकार के हैं—वेश-भूषा का शिथिल होना, गात्रमोटन (शरीर को मोड़ना), जम्भाई, श्वास का फूँलना, निश्वास का त्याग और प्रश्वास-ग्रहण करना।

**अनुभाष्य**

४७। **अनुभाव—**(भक्तिरसामृतसिन्धु दक्षिण विभाग द्वितीय लहरी प्रथम श्लोक)" अनुभावास्तु चित्तस्थ भावानामवबोधकः। ते बहिर्विक्रियाप्रायाः प्रोक्ता उद्भास्वराख्या॥ नृत्यं विलुठितं गीतं क्रोशनं अनुमोटनम्। हुङ्कारो जृम्भणं श्वासभूमा लोकानपेक्षिता। लालास्रावोऽट्टहासश्च घूर्णा-हिक्कादयोऽपि च॥ ते शीताः क्षेपणाश्चेति यथार्थाख्या द्विधोधिताः। शीताः स्युर्गीतजृम्भाद्या नृत्याद्याः क्षेपणाभिधाः॥" चित्त में स्थित भावसमूह के प्रकाशक बाह्य-विकार प्रायः होकर जो 'उद्भास्वर'- नाम से प्रसिद्ध हैं, वही 'अनुभाव' हैं। नृत्य, भूमि में लोट-पोट, गान, उच्च रव (शोर), शरीर को हिलाना-डुलाना, हुङ्कार, हाय-तौबा, गहरा श्वास, लोक्षापेक्षा का त्याग, लार का बहना, अट्टहास्य, घूर्णा और हिचकी इत्यादि। ये 'शीत' और 'क्षेपण'—इन दो नामों से जाने जाते हैं; इनमें से गीत और जम्भाई इत्यादि को 'शीत' और नृत्य आदि को 'क्षेपण' कहते हैं।

**उद्भास्वर—**"उद्भासन्ते स्वधाम्नीति प्रोक्ता उद्भास्वरा बुधैः। नीव्युत्तरीयधम्मिल्लस्रंसनं गात्रमोटनम्। जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निश्वासाद्याश्च ते मताः॥" भावयुक्त व्यक्ति के शरीर में जो-जो प्रकाशित होता है, पण्डितगण उसे 'उद्भास्वर' कहते हैं। नीवि (नाड़ा), उतरीय-वस्त्र (दुपट्टा) और जूड़े का खुल जाना, शरीर को मोड़ना, जम्भाई, नाक को फुलाना, श्वास छोड़ना, लोट-पोट खाना एवं हिचकी पूर्वलिखित विकार समूह हैं।

**स्तम्भादि—**मध्य, चतुर्दश परिच्छेद १६७ संख्या द्रष्टव्य।

रस के 'सहायक' व्यभिचारी भाव—तैंतीस—

**निर्वेद-हर्षादि—तेत्रिश 'व्यभिचारी'।**
**सब मिलि' 'रस' हय चमत्कारकारी॥४८॥**

**४८। प० अनु०—**निर्वेद-हर्षादि तेंतीस व्यभिचारी भाव हैं। इन सबके मिलने पर स्थायीभाव अत्यन्त चमत्कारी रस बन जाता है।

**अनुभाष्य**

४८। **निर्वेद-हर्षादि—**मध्य, चतुर्दश परिच्छेद १६७ संख्या द्रष्टव्य।

**व्यभिचारी—**(भक्तिरसामृतसिन्धु दक्षिण विभाग चतुर्थ लहरी प्रथम श्लोक) ''त्रयस्त्रिंशद्भावाः ये व्यभिचारिणः। विशेषेणभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति। वागङ्गसत्त्वसूच्या ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः॥ सञ्चारयन्ति भावस्य गतिं सञ्चारिणोऽपि ते। उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति स्थायिन्यमृतवारिधौ। उर्मिवद्व र्द्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपताञ्च ते॥'' व्यभिचारी भावसमूह तैंतीस होते हैं; वे विशेष करके प्राधान्य रूप में स्थायिभाव में विचरण करते हैं। वाक्य, अङ्ग (भ्रू-नेत्रादि) एवं सत्त्व से उत्पन्न अनुभाव के द्वारा व्यभिचारी भाव समूह भाव की गति का सञ्चार करते हैं, इसी कारण उन्हें 'सञ्चारी' कहा जाता है। ये स्थायिभाव रूपी अमृत-सागर में निमग्न होकर तरङ्ग की भाँति उसे वर्द्धित कराके उनके जैसे रूप को प्राप्त करते हैं।

पाँच प्रकार के
रसों का वर्णन—

**पञ्चविध रस—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य।**
**मधुर-रसे शृङ्गार-भावेर प्राबल्य॥४९॥**

**४९। प० अनु०—**शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर—इन पाँच रसों में से मधुर रस में ही शृङ्गारभाव की प्रबलता है।

'प्रेम' तक शान्तरस के और 'राग'
तक दास्यरस की सीमा—

**शान्तरसे शान्ति-रति 'प्रेम' पर्यन्त हय।**
**दास्य-रति 'राग' पर्यन्त क्रमेते बाड़य॥५०॥**

'अनुराग' तक सख्य और वात्सल्य की सीमा;
उनमें से सुबल आदि प्रियनर्म सखाओं की
भी भाव तक सीमा—

**सख्य-वात्सल्य-रति पाय 'अनुराग-सीमा'।**
**सुबलाद्येर 'भाव' पर्यन्त प्रेमेर महिमा॥५१॥**

**५०-५१। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

५०-५१। शान्तरस में 'रति' वृद्धि प्राप्त करके 'प्रेम' तक सीमा प्राप्त करती है। दास्यरस में 'दास्यरति' स्नेह, मान, प्रणय और राग तक वर्द्धित होती है। सख्यरस में 'सख्यरति' तथा वात्सल्य रस में 'वात्सल्य-रति' स्नेह, मान, प्रणय, राग और अनुराग तक वर्द्धित होती है। विशेषतः यह है कि सख्य रसाश्रित होने पर भी सुबल आदि की सख्यरति स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव पर्यन्त वर्द्धित होती है।

शान्त आदि पाँच प्रकार के रसों
के भेद की विचित्रता—

**शान्तादि रसेर 'योग', 'वियोग'—दुइ भेद।**
**सख्य-वात्सल्ये योगादिर अनेक विभेद॥५२॥**

**५२। प० अनु०—**शान्त तथा दास्य रस के दो भेद हैं—'योग' एवं 'वियोग'। सख्य तथा वात्सल्य रस में योग आदि के अनेक भेद हैं।

**अनुभाष्य**

५२। भक्तिरसामृतसिन्धु पश्चिम विभाग द्वितीय लहरी ४१ श्लोक—''अयोग-योगावेतस्य प्रभेदौ कथिताबुभौ'' अर्थात् इस प्रीतिभक्तिरस के 'अयोग और योग'—यह दो भेद कहे गये हैं।

**अयोग**—''सङ्गाभावो हरेर्धीरैरयोग इति कथ्यते। अयोगे त्वन्मनस्कत्वं तद्गुणाद्यनुसन्ध्यः। तत्प्राप्त्यु-पायचिन्ताद्याः सर्वेषां कथिताः क्रियाः॥'' पण्डितगण भगवान् के साथ सङ्ग के अभाव को 'अयोग' कहते हैं। अयोग में हरिमनस्कता अर्थात् हरि में

मन का समर्पण एवं हरि के गुणों आदि का अनुसन्धान किया जाता है। दास आदि सभी भक्तों की कृष्ण प्राप्ति के उपाय-भावना आदि को क्रिया कहा जाता है।

**योग—**''कृष्णेन सङ्गमो यस्तु स योग इति कीर्त्त्यते'' अर्थात् श्रीकृष्ण के साथ मिलन को 'योग' कहते हैं।

**शान्तादि-रस का—**शान्त और दास्य में 'योग और वियोग', ये दो प्रकार के भेद हैं; उनमें योग और अयोग के अनेक भेद नहीं हैं। यद्यपि पाँच प्रकार के रसों में ही योग और अयोग का भेद है, किन्तु सख्य और वात्सल्य में बहुत से विभेद हैं।

**योगविभेद—**''योगोऽपि कथितः सिद्धि स्तुष्टि-स्थिति-रति त्रिधा'' अर्थात् योग के तीन प्रकार के भेद हैं—सिद्धि, तुष्टि और स्थिति।

**अयोगविभेद—**''उत्कण्ठितं वियोगश्चेत्ययोगोऽपि द्विधोच्यते'' अर्थात् 'अयोग' उत्कण्ठित' और 'वियोग' दो प्रकार का होता है।

द्वारका में ऐश्वर्यमयी स्वकीया मधुर-रति में 'रुढ़-महाभाव' एवं वृन्दावन में माधुर्यमयी केवला पारकीया मधुर-रति में 'अधिरुढ़-महाभाव'—

**'रुढ़', 'अधिरुढ़', भाव—केवल 'मधुरे'।**
**महिषीगणेर 'रुढ़', 'अधिरुढ़' गोपिका-निकरे॥५३॥**

**५३। प० अनु०—**रूढ़ तथा अधिरूढ़ महाभाव तो केवल मधुर रस में हैं। महिषियों की रति में रूढ़ महाभाव तथा व्रजगोपियों की रति में अधिरूढ़ महाभाव रहता है।

### अनुभाष्य

५३। अधिरुढ़,—(उज्ज्वलनीलमणि स्थायि-भाव-प्रकरण १७०) ''रुढ़ोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः काम-प्याप्ता विशिष्टताम्। यत्रानुभावा दृश्यन्ते सोऽधिरुढ़ो निगद्यते॥''

मधुरस में मधुर-रति स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव तक वर्धित होती है। रुढ़ और अधिरुढ़-महाभाव केवलमात्र मधुर-रस में ही विद्यमान है। द्वारका में 'रुढ़' एवं गोकुल में ही केवल 'अधिरुढ़'-भाव देखा जाता है।

अधिरुढ़-महाभाव भी दो प्रकार का—(१) सम्भोग में 'मादन'-संज्ञा, (२) विप्रलम्भ में 'मोहन'-संज्ञा—

**अधिरुढ़-महाभाव—दुइ त' प्रकार।**
**सम्भोगे 'मादन', विरहे 'मोहन' नाम तार॥५४॥**

**५४। प० अनु०—**अधिरूढ़ महाभाव दो प्रकार का होता है—सम्भोग में उसका नाम 'मादन' तथा विरह में उसका नाम 'मोहन' होता है।

सम्भोगमय 'मादन' और विप्रलम्भमय 'मोहन' में अनेक प्रकार के भाव और भेद का वैचित्र्य—

**'मादने'—चुम्बनादि हय अनन्त विभेद।**
**'उद्घूर्णा', 'चित्रजल्प'—'मोहने' दुइ भेद॥५५॥**

**५५। प० अनु०—**'मादन' में चुम्बन आदि अनन्त भेद हैं किन्तु 'मोहन' में 'उद्घूर्णा और 'चित्रजल्प' यह दो भेद होते हैं।

भाः १०/४७ अध्याय—भ्रमर-गीत में विप्रलम्भ की अवस्था में श्रीराधिकादि गोपियों का दिव्योन्माद—

**चित्रजल्पेर दश अङ्ग—प्रजल्पादि-नाम।**
**'भ्रमर-गीता'र दश श्लोक ताहाते प्रमाण॥५६॥**

**५६। प० अनु०—**चित्रजल्प के दस अङ्ग है, उनके नाम प्रजल्प आदि हैं। भ्रमर-गीता के दस श्लोक इसके प्रमाण हैं।

### अमृतप्रवाह भाष्य

५६। चित्रजल्प दस प्रकार का है—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्ज्वल, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प। भ्रमरगीता—श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ४७ अध्याय में।

विप्रलम्भ में दिव्य-उन्माद की चरम अवस्था—अप्राकृत-कृष्ण-सेवामयी परम चमत्कारिणी सर्वोत्तमावस्था—

**उद्घूर्णा, विरह-चेष्टा—दिव्योन्माद-नाम।**
**विरहे कृष्णस्फूर्त्ति, आपनाके 'कृष्ण'-ज्ञान॥५७॥**

**५७। प० अनु०—**उद्घूर्णा में विवश कर देने वाली विरहमयी चेष्टाओं का नाम दिव्योन्माद है। इसमें विरह में कृष्ण की स्फूर्त्ति होती है तथा कभी-कभी गोपियाँ स्वयं को ही कृष्ण मानने लगती हैं।

### अनुभाष्य

५४-५७। मध्य प्रथम परिच्छेद ८७ संख्या द्रष्टव्य।

दो प्रकार के शृङ्गार-रस—(१) सम्भोग और (२) विप्रलम्भ; सम्भोग असख्य प्रकार का—

**'सम्भोग'-'विप्रलम्भ'-भेदे द्विविध शृङ्गार।**
**'सम्भोगेर अनन्त अङ्ग, नाहि अन्त तार॥५८॥**

**५८। प० अनु०—**सम्भोग एवं विप्रलम्भ के भेद से शृङ्गार रस दो प्रकार का होता है। सम्भोग के अनन्त अङ्ग हैं, उनका कोई अन्त नहीं है।

### अनुभाष्य

५८। ''स विप्रलम्भसम्भोग भेदेन द्विविधा मतः'' अर्थात् मधुररस सम्भोग और विप्रलम्भ के भेद से दो प्रकार का है;

**विप्रलम्भ—**(उज्ज्वल नीलमणि विप्रलम्भ-प्रकरण का ३-४ श्लोक)—''यूनोरयुक्तयोर्भावो युक्तयोर्वाथ यो मिथः। अभीष्टालिङ्गनादी-नामनवाप्तौ प्रकृष्यते॥ स विप्रलम्भो विज्ञेयः सम्भोगान्नति कारकः।'' ''न बिना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टि मश्नुते॥'' नायक-नायिका के प्रथम मिलन से पहले अयुक्त, मिलन होने के बाद युक्त—इन दोनों समयों में परस्पर अभीष्ट आलिङ्गन आदि की अप्राप्ति से जो भाव होता है, उसे 'विप्रलम्भ' कहते हैं; वह—सम्भोग का पुष्टि-कारक है।

**सम्भोग—**''दर्शनालिङ्गनादीनामानुकूल्यान्निषेवया। यूनोरुल्लासमारोहन् भावः सम्भोग ईर्यते॥'' दर्शन और आलिङ्गन आदि परस्पर के सुख-तात्पर्य के निषेवण (भली-भाँति सेवन) के द्वारा नायक और नायिका के उल्लास से भी ऊपर आरोहण करने पर जो भाव उदित होता है, उसे 'सम्भोग' कहते हैं। जाग्रत-अवस्था में मुख्य-सम्भोग चार प्रकार का है (१) पूर्वराग के बाद 'संक्षिप्त', (२) मान के बाद 'सङ्कीर्ण', (३) कुछ दूरी पर प्रवास के बाद 'सम्पन्न' और (४) सुदूर प्रवास के बाद 'समृद्धिमान्'। स्वप्नावस्था में गौण-सम्भोग भी पहले की भाँति चार प्रकार का है।

चार प्रकार का विप्रलम्भ—

**'विप्रलम्भ' चतुर्विध—पूर्वराग, मान।**
**प्रवासाख्य, आर प्रेमवैचित्य-आख्यान॥५९॥**

**५९। प० अनु०—**विप्रलम्भ पूर्वराग, मान, प्रवास और प्रेम-वैचित्र्य के भेद से चार प्रकार का है।

### अनुभाष्य

५९। **पूर्वराग—**(उज्ज्वल नीलमणि विप्रलम्भ-प्रकरण का पञ्चम श्लोक) ''रतिर्या सङ्गमात् पूर्वं दर्शनश्रवणादिजा॥ तयोरुन्मीलति प्राज्ञैः पूर्वरागः स उच्यते॥'' जो रति सङ्गम से पहले दर्शन-श्रवण आदि से उत्पन्न होकर दोनों के विभाव आदि के मिश्रण से आस्वादनमयी होती है, वही 'पूर्वराग' है।

**मान—**''दम्पत्योर्भाव एकत्र सतोरप्यनुरक्तयोः। स्वाभीष्टा श्लेषवीक्षादिनिरोधी मान उच्यते॥'' परस्पर अनुरक्त एक ही साथ अवस्थित अथवा भिन्न स्थान पर स्थित नायक और नायिका के अपने अभीष्ट के प्रति ईक्षण (दर्शन) और आलिङ्गन आदि के निरोधी भाव को 'मान' कहते हैं।

**प्रवास**—''पूर्वसङ्गतयोर्यूनोर्भवेद्देशान्तरादिभिः। व्यवधानं तु यत् प्राज्ञैः स प्रवास इतीर्यते॥'' पूर्व-सङ्गम से युक्त दम्पत्ति की देशान्तर आदि बाधा को बुद्धिवान् जन 'प्रवास' कहते हैं।

**प्रेमवैचित्र्य**—''प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष-स्वभावतः। या विशेषाधियार्त्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्य-मुच्यते॥'' प्रेमोत्कर्ष-स्वभावपूर्वक प्रिय के सङ्ग में अवस्थान करने पर भी उनके साथ विरह के भय से जो आर्ति उपस्थित होती है, वही 'प्रेमवैचित्र्य' है।

व्रज में राधिका आदि गोपियों और द्वारका की महिषियों के विप्रलम्भ भाव की विचित्रता—

**राधिकाद्ये 'पूर्वराग' प्रसिद्ध 'प्रवास', 'माने'।**
**'प्रेमवैचित्त्य' श्रीदशमे महिषीगणे॥६०॥**

**६०। प० अनु०**—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६०। चार प्रकार के विप्रलम्भ में से राधिका आदि गोपियों के 'पूर्वराग', 'प्रवास' और 'मान'—ये तीन प्रसिद्ध हैं; द्वारका में महिषियों में 'प्रेमवैचित्र्य' प्रसिद्ध है।

समीप रहने पर भी प्रेम वैचित्त्य के कारण महिषियों को कृष्ण के विच्छेद की आशङ्का—
श्रीमद्भागवत (१०/९०/१५)—

**कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे**
**स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः।**
**वयमिव सखि कच्चिद्गाढ़निर्विद्धचेता**
**नलिन-नयन-हासोदार-लीलेक्षितेन॥६१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६१। [द्वारका की महिषियाँ कह रही हैं—] हे सखि, कुररि (पक्षी), देखो! रात्रि में गुप्त रूप से ईश्वर श्रीकृष्ण नींद में जा रहे हैं, और तुम्हें नींद नहीं आने के कारण तुम सो नहीं रही हो, केवल विलाप कर रही हो। क्या तुम भी हमारी भाँति कमलनयन श्रीकृष्ण के हास्य और उदार-लीला के दर्शन से निर्बिद्ध (अत्यधिक आकर्षित) चित्त वाली होकर ऐसा कर रही हो?

**अनुभाष्य**

६१। द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा लीला-विलास द्वारा महिषियों के चित्त का हरण करने पर वे उनमें आविष्ट होने के कारण अति निकट होने पर भी सदैव 'अभी खो बैठेंगी' 'अभी खो बैंठेगी' भाव से युक्त होकर उन्मत्त की भाँति इस प्रकार कहती थीं,—

हे कुररि, ईश्वरः (कृष्णः) रात्र्यां गुप्तबोधः (सुप्तचेतनः इव) स्वापिति (शेते); त्वं तु जगति (एका), वीत निद्रा (सती), न शेषे (न स्वपिषि, शयनेच्छामपि न कुरुषे, परन्तु निद्राभङ्ग कुर्वती) विलपसि (तदनुचितमित्यर्थः)। हे सखि, (अथवा नापराधस्त्व, यतः), वयम् इव त्वं नलिन-नयन हासोदारलीलेक्षितेन (पद्मलोचनस्य भगवतः हासेन सहितम् उदारं यत् लीलेक्षितं तेन अकुण्ठि-तस्मितकटाक्षेण) कच्चित् (प्रश्ने) गाढ़-निर्विद्धचेता (अतिशयेन आकृष्टचित्ता)?

कृष्ण—नायक-शिरोमणि, श्रीराधिका—नायिका-शिरोमणि—

**व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण—नायक-शिरोमणि।**
**नायिकार शिरोमणि—राधा-ठाकुराणी॥६२॥**

**६२। प० अनु०**—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण नायक शिरोमणि तथा श्री राधा ठाकुरानी नायिकाओं में शिरोमणि हैं।

प्रमाण—
भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/१७)—

**नायकानां शिरोरत्नं कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**
**यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महागुणाः॥६३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६३। स्वयं भगवान् कृष्ण ही नायकों के शिरोरत्न हैं; उन कृष्ण में सभी महान् गुण नित्यरूप में विराजमान हैं।

**अनुभाष्य**

६३। नायकानां मध्ये स्वयं भगवान् कृष्णस्तु शिरोरत्नं (चूड़ामणि:); यत्र (कृष्णे) सर्वे महागुणाः नित्यतया विराजन्ते (शोभन्ते)।

श्रीराधिका के आठ विशेषण—
बृहद्-गौतमीय तन्त्र-वाक्य—

**देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।**
**सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा॥६४॥**

६४। श्रीमती राधारानी 'देवी', 'कृष्णमयी' 'राधिका', 'परदेवता', 'सर्वलक्ष्मीमयी', 'सर्वकान्ति', 'सम्मोहिनी' तथा 'पराशक्ति' के रूप में कथित हैं।

**अनुभाष्य**

६४। आदि चतुर्थ परिच्छेद ८३ संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण की असंख्य सद्गुण राशि में
से चौंसठ प्रधान गुण—

**अनन्त कृष्णेर गुण, चौषट्टि—प्रधान।**
**एक एक गुण शुनि' जुड़ाय भक्त-काण॥६५॥**

**६५। प० अनु०—**श्रीकृष्ण के अनन्त गुणों में से उनके चौंसठ प्रधान गुण हैं। उन चौसठ गुणों में से एक-एक गुण के विषय में सुनकर भक्तों के कान तृप्त होते हैं।

चौंसठ गुणों की तालिका; सर्वप्रथम पचास गुणों का वर्णन—भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/२३-२९)—

**अयं नेता सुरम्याङ्गः सर्वसल्लक्षणान्वितः।**
**रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् वयसान्वितः॥६६॥**
**विविधाद्भुतभाषावित् सत्यवाक्यः प्रियंवदः।**
**वावदूकः सुपाण्डित्यो बुद्धिमान् प्रतिभान्वितः॥६७॥**
**विदग्धश्चतुरो दक्षः कृतज्ञः सुदृढ़व्रतः।**
**देशकाल-सुपात्रज्ञः शास्त्रचक्षुः शुचिर्वशी॥६८॥**
**स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो गम्भीरो धृतिमान् समः।**
**वदान्यो धार्मिकः शूरः करुणो मान्यमानकृत॥६९॥**
**दक्षिणो विनयी ह्रीमान् शरणागतपालकः।**
**सुखी भक्तसुहृत प्रेमवश्यः सर्वशुभङ्करः॥७०॥**
**प्रतापी कीर्तिमान् रक्तलोकः साधुसमाश्रयः।**
**नारीगण-मनोहारी सर्वराध्यः समृद्धिमान्॥७१॥**
**वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्तिताः॥**
**समुद्रा इव पञ्चाशतदुर्विगाह्या हरेरमी॥७२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६६-७२। यह नायक रूपी कृष्ण—१) सुरम्य अङ्ग युक्त, (२) सब प्रकार के सुलक्षणों से युक्त, ३) सुन्दर, ४) महातेजवान्, ५) बलवान्, (६) किशोर अवस्था से युक्त, (७) विविध अद्भुत् भाषाओं को जानने वाले, (८) सत्यवचन, (९) प्रियवचनों से युक्त, (१०) वाक्पटु (बात करने में निपुण), (११) सुपण्डित, (१२) बुद्धिमान्, (१३) प्रतिभा से युक्त, (१४) विदग्ध, (१५) चतुर, (१६) दक्ष, (१७) कृतज्ञ, (१८) सुदृढ़व्रत, (१९) देश-काल और पात्र को जानने वाले, (२०) शास्त्र दृष्टि से युक्त, (२१) शुचि (पवित्र), (२२) वश में हो जाने वाले, (२३) स्थिर, (२४) दमनशील, (२५) क्षमाशील, (२६) गम्भीर, (२७) धृतिमान्, (२८) एक समान रहने वाले सौम्य चरित्र से युक्त, (२९) वदान्य, (३०) धार्मिक, (३१) शूर, (३२) करुण, (३३) मान देने वाले, (३४) दक्षिण (सरल और उदार) (३५) विनयी, (३६) लज्जा से युक्त, (३७) शरणागतपालक, (३८) सुधी, (३९) भक्तबन्धु, (४०) प्रेमवश्य, (४१) सर्वशुभकारी, (४२) प्रतापी, (४३) कीर्त्तिमान्, (४४) लोकानुरक्त, (४५) साधुओं के समाश्रय, (४६) नारी के मन का हरण करने वाले, (४७)

सर्वाराध्य, (४८) समृद्धिमान, (४९) श्रेष्ठ और (५०) ऐश्वर्ययुक्त—इन पचास गुणों से युक्त हैं।

**अनुभाष्य**

६६-७२। अयं नेता (नायकः कृष्णः) सुरम्यङ्गः (परम रमणीयाङ्ग-सन्निवेशयुक्तः) सर्वसल्लक्षणान्वितः (सामुद्रिक-शास्त्रोक्त-गुणोत्थ द्वात्रिंशंच्छुभ-चिह्नयुक्तः अङ्कोत्थषोड़श रेखा समन्वितश्च), रुचिरः (लोचनानन्दि सौन्दर्य विशिष्टः) तेजसा युक्तः (तेजस्वी), बलीयान् (बली), वयसान्वितः (नित्य-किशोरवयः) विविधाद्धुत-भाषावित् (नानापूर्व-भावभाषाकुशलः) सत्यवाक्यः (ऋतगीः), प्रियम्वदः, वावदूकः (श्रुतिमधुररसालङ्कारादियुक्तवचनप्रयोग-क्षमः), सुपाण्डित्यः (अप्राकृतविद्यानिपुणः) प्रतिभान्वितः (नवनवप्रकाश-शालिनीबुद्धियुक्तः), विदग्धः (कलाविलासकुशलः), चतुरः (धीमान्) दक्षः (निपुणः), कृतज्ञः (भक्तप्रेमप्रतिदानकारी), सुदृढ़व्रतः (सत्यसन्धः), देशकालसुपात्रज्ञः (देशकाल-पात्रवित्), शास्त्रचक्षुः (वेददृक्), शुचिः, वशी (आत्मवशः), स्थिरः (अचलः आफलोदयकर्मकृत), दान्तः (क्लेशसहिष्णुः) क्षमाशीलः (परापराध-सहिष्णुः), गम्भीरः (गाम्भीर्य पूर्णः), धृतिमान् (अवरुद्ध सौरतः, जितेन्द्रियः), समः (राग-द्वेष-विहीनः), वदान्यः (उदारः), धार्मिकः, शूरः (समरे उत्साहान्वितः), करुणः (दयालु), मान्यमानकृत् (माननीयजनेषु पूजकः), दक्षिणः (सरलोदारः), विनयी (अमानी), ह्रीमान् (आत्मप्रशंसायां लज्जा-शीलः), शरणागतपालकः (प्रपन्नरक्षकः), सुखी (नित्यामोदी), भक्तसुहृत (सेवकबन्धुः), प्रेमवश्यः (प्रेमबाध्यः), सर्वशुभङ्करः (सर्वेषां हितकारी), प्रतापी (प्रभावशाली), कीर्त्तिमान् (सुभद्रश्रवाः), लोक-रक्तः (लोकानुरागभाक्), साधु समाश्रयः (जगति सज्जन-पक्षाश्रितः), नारीगणमनोहारी (भुवन मनोमोहनः), सर्वाराध्यः (सर्वेश्वरः), समृद्धिमान् (वैभवशाली), वरीयान् (श्रेष्ठः), ईश्वरः (प्रभुः) च-इति अमी पञ्चाशत् गुणाः समुद्राः (पाररहिताः सिन्धवः) इव दुर्विगाहाः (सम्यक् ज्ञातुम अशक्याः अगाधाः इत्यर्थः)।

पचास गुण बूँद-बूँद के रूप में सभी जीवों में विद्यमान—भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/३०)—

**जीवष्वेते वसन्तोऽपि बिन्दुबिन्दुतया क्वचित्।**
**परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव पुरुषोत्तमे॥७३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७३। ये पचास गुण बिन्दु-बिन्दु रूप में सभी जीवों में हैं, किन्तु परिपूर्ण समुद्र के रूप में पुरुषोत्तम कृष्ण में विद्यमान है।

**अनुभाष्य**

७३। एते गुणाः बिन्दुबिन्दुतया क्वचित् जीवेषु वसन्तः अपि तत्रैव पुरुषोत्तमे परिपूर्णतया भान्ति।

और भी पाँच अधिक गुणों का वर्णन; रुद्रादि श्रेष्ठ-जीवों में यह पचपन गुण आंशिक रूप में और विष्णु में पूर्णरूप में नित्य विद्यमान—भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/३७-३८)—

**अथ पञ्चगुणा ये स्युररंशेन गिरिशादिषु।**
**सदा स्वरूपसंप्राप्तः सर्वज्ञो नित्यनूतनः॥७४॥**
**सच्चिदानन्दसान्द्राङ्गश्चिदानन्दघनाकृतिः।**
**स्ववशखिलसिद्धिः स्यात् सर्वासिद्धिनिषेवितः॥७५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७४-७५। उपरोक्त पचास गुणों से ऊपर और भी पाँच महागुण परिपूर्ण मात्रा में कृष्ण (विष्णु) में एवं आंशिक रूप में शिव आदि देवताओं में विद्यमान हैं—१) सदैव स्वरूप सम्प्राप्त (अर्थात् सदैव एक जैसे स्वरूप से युक्त), (२) सर्वज्ञ, (३) नित्य-नवीन, (४) सच्चिदानन्दधनीभूत स्वरूप, (५) समस्त प्रकार की सिद्धियों को वश में रखने वाले,

अतएव सर्वसिद्धि द्वारा निषेवित (भलीभाँति सेवित)।

### अनुभाष्य

७४-७५। अथ गिरिशादिषु (शिवादिषु) ये पञ्चगुणाः अंशेन (अपूर्णभावेन) स्युः (वर्त्तन्ते, ते उच्यन्ते);—सदास्वरूप-संप्राप्त (मायया अनभिभाव्यानुभूतिविशिष्टः), सर्वज्ञः (अभिज्ञः, भूतभविष्यद्वर्त्तमानेति त्रिकालज्ञः), नित्यनूतनः (स्वमाधुरीभिः अननुभूतः इव नवनवायमानः), सच्चिदानन्दसान्द्राङ्गः (घन सच्चिदानन्दविग्रहाकारः) सर्वसिद्धिनिषेवितः (सर्वैः प्राप्यफलैरर्चित-चरणः) स्ववशाखिलसिद्धिः स्यात् पाठान्तरे, स्ववेशत्यादि-शेषद्विचरणयोरभावः)।

श्रीनारायण में और भी पाँच अधिक गुण अर्थात् साठ गुण परिपूर्ण रूप में अवस्थित—
भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/३९-४०)—

**अथोच्यन्ते गुणाः पञ्च ये लक्ष्मीशदि-वर्त्तिनः।**
**अविचिन्त्यमहाशक्तिः कोटि ब्रह्माण्ड विग्रहः॥७६॥**
**अवतारावलीबीजं हतारिगतिदायकः।**
**आत्मारामगणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः॥७७॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

७६-७७। परव्योमनाथ नारायण आदि में और भी पाँच गुण विद्यमान हैं। वह कृष्ण में भी परिपूर्ण मात्रा में रहते हैं, किन्तु शिव आदि देवता या फिर जीवों में नहीं हैं,—१) अविचिन्त्य महाशक्ति से युक्त, २) करोड़ों ब्रह्माण्डों में व्याप्त विग्रह वाले, ३) सब अवतारों के बीज स्वरूप, ४) मारे गये शत्रुओं को भी सुगति प्रदान करने वाले, ५) आत्माराम जनों को भी आकर्षित करने वाले—यह पाँच गुण नारायण आदि में होने पर भी कृष्ण में अद्भुत रूप में विराजमान हैं।

### अनुभाष्य

७६-७७। अथ लक्ष्मीशादिवर्त्तिनः (लक्ष्मीपति-नारायणदि-विग्रहे वर्त्तमानाः) ये पञ्चगुणाः, ते उच्यन्ते—अविचिन्त्य-महाशक्तिः (अपरिमेयमहाशक्तिशाली), कोटिब्रह्माण्ड विग्रहः (कोटिब्रह्माण्डव्यापी विग्रहो यस्य सः), अवतारावलीबीजं (निखिलावतार-कारण), हतारिगतिदायकः (निहत-शत्रुणामपि मुक्तिदाता), आत्मारामगणाकर्षी (ब्रह्मभूतमुक्त-परमहंसानामपि आकर्षकः) इति अमी (गुणाः) कृष्णे अद्भुताः किल।

स्वयं कृष्ण में नारायण की अपेक्षा और भी चार निजी अधिक गुण अर्थात् कुल चौंसठ गुण परिपूर्णमात्रा में नित्य-विद्यमान—
भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/४१-४४)—

**सर्वाद्भुतचमत्कार-लीलाकल्लोलवारिधिः।**
**अतुल्यमधुरप्रेम-मण्डितप्रियमण्डलः॥७८॥**
**त्रिजगन्मानसाकर्षि-मुरलीकलकूजितः।**
**असमानोर्द्धरूपश्री-विस्मार्पितचराचरः॥७९॥**
**लीला-प्रेमणा प्रियाधिक्यं माधुर्यं वेणुरूपयोः।**
**इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम्।**
**एवं गुणाश्चतुर्भेदाश्चतुःषष्टिरुदाहृता॥८०॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

७८-७९। इन साठ गुणों के अलावा और भी चार गुण कृष्ण में प्रकाशित है; वह नारायण में भी प्रकाशित नहीं हैं—१) सभी लोगों का चमत्कार कर देने वाली लीलाओं का कल्लोल-समुद्र, २) शृङ्गार रस के अतुलनीय प्रेम के द्वारा शोभा से युक्त प्रेष्ठमण्डल, ३) तीनों लोकों के चित्त को आकर्षित करने वाली मुरली के गीत का गान करने वाले, (४) जिसके समान और जिससे श्रेष्ठ नहीं है एवं जिसने चराचर को विस्मित कर दिया है—ऐसे सौन्दर्यशाली।

८०। इस प्रकार की (प्रेममयी) लीला, अति उत्कृष्ट प्रिया का सङ्ग (अर्थात् प्रेमिक-प्रियजन-वात्सल्य), रूप माधुर्य और वेणु माधुर्य—यह चार श्रीकृष्ण के असाधारण गुण हैं। चार प्रकार के भेद से अर्थात् साधारण-जीव, शङ्कर आदि देवता,

नारायण आदि परमेश्वर स्वरूप एवं साक्षात् (स्वयं रूप) गोविन्द के भेद से, सर्वशुद्ध गणना के अनुसार चौंसठ गुण बतलाये गये हैं।

### अनुभाष्य

७८-७९। सर्वाद्भुतचमत्कार-लीला-कल्लोल-वारिधिः (सर्वेषाम् अद्भुतानां चमत्कारः विस्मयोत्पादकः यतः एवम्भूता या लीलाकल्लोलानां तरङ्गाणां वारिधिः, सकलविचित्रविस्मयकारिणी-लीलाश्रयः) अतुल्यमधुरप्रेममण्डितप्रियमण्डलः (अतुल्येन मधुर-प्रेमणा मण्डितः प्रियजनसमूहः येन सः, अनुपम-मधुरप्रेमालङ्कृत निजप्रेष्ठजनः) त्रिजगन्मानसाकर्षिमुरलीकल-कूजितः (गोलोक-परव्योम-देवीधामेति त्रयाणां त्रिजगतां मानसानि आकृष्टं शीलमस्य तथाभूतं मुरल्याः वश्याः कलं मधुरास्फुटं कूजितं ध्वनि यस्य सः) असमानोर्द्ध्वरूप-श्रीविस्मापित-चराचरः (येन सह समं यतः उर्द्ध्वं रुपम् अन्येषां नास्ति, तादृशाद्वितीय-सौन्दर्य-श्रिया विस्मापितं कोतुहलोत्पादितं चराचरं स्थिर-जङ्गमं येन सः)।

८०। लीला प्रेमणा प्रियाधिक्यं वेणुरुपयोः माधुर्ये इति गोविन्दस्य असाधारणं चतुष्ट्यं लक्षणं, प्रोक्तम्-एवं चतुर्भेदाः गुणाः सर्वसाकल्येन, चतुः-षष्टिः उदाहृताः।

श्रीराधिका के कृष्णाकर्षी पच्चीस गुणों का वर्णन—

**अनन्त गुण श्री राधिकार, पँचिश—प्रधान।**
**जेइ गुणेर 'वश' हय कृष्ण भगवान्॥८१॥**

**८१। प॰ अनु॰—**श्रीमती राधिका के भी अनन्त गुण हैं, जिनमें से पच्चीस प्रधान गुण हैं, जिन गुणों के भगवान् कृष्ण भी वशीभूत हो जाते हैं।

उज्जवलनीलमणि के श्रीराधाप्रकरण (११-१५) में—

**अथ वृन्दावनेश्वर्याः कीर्त्तयन्ते प्रवरा गुणाः।**
**मधुरेयं नव-वयाश्चलापाङ्गोज्ज्वलस्मिता॥८२॥**
**चारु-सौभाग्यरेखाढ्या गन्धोन्मादितमाधवा।**
**सङ्गीतप्रसराभिज्ञा रम्यवाक् नर्मपण्डिता॥८३॥**
**विनीता करुणा-पूर्णा विदग्धा पाटवान्विता।**
**लज्जाशीला सुमर्यादा धैर्या गाम्भीर्यशलिनी॥८४॥**
**सुविलासा महाभावपरमोत्कर्षतर्षिणी।**
**गोकुल-प्रेमवसतिर्जगच्छ्रेणीलसद्यशाः॥८५॥**
**गुर्व्वर्पितगुरुस्नेहा सखीप्रणयितावशा।**
**कृष्णप्रियावलीमुख्या सन्तताश्रव-केशवा॥८६॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

८२-८६। अब वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका के प्रधान-प्रधान गुणों का कीर्त्तन किया जा रहा है,—१) मधुरा, २) नवीन वयस (आयु) से युक्त, ३) चञ्चल-नेत्रों वाली, ४) उज्ज्वल-हास्य से युक्त, ५) सुन्दर-सौभाग्यरेखा से युक्त, ६) सुगन्धि से कृष्ण को उन्मादित बना देने वाली, ७) सङ्गीत के विस्तार में अभिज्ञा, ८) रमणीय वाणी से युक्त, ९) नर्म गुणों में पण्डिता, १०) विनीता, ११) करुणापूर्णा, १२) चतुरा, १३) कर्त्तव्य-कुशला, १४) लज्जाशीला, १५) सुमर्यादा, १६) धैर्ययुक्ता, १७) गाम्भीर्यमयी, १८) सुविलासयुक्ता, १९) परमोत्कर्ष महाभावमयी, २०) गोकुल प्रेम की वसति, २१) आश्रय जगत् श्रेणी में उद्दीप्त-यश से युक्ता, २२) गुरुजनों में समर्पित गुरुस्नेहवती, २३) सखियों के प्रणय के वशीभूत रहने वाली, २४) कृष्णप्रिया रमणियों में मुख्या, २५) सदैव केशव को अपने अधीन करने वाली।

### अनुभाष्य

८२-८६। अथ वृन्दावनेश्वर्याः (श्री राधिकायाः) प्रवराः (प्रधानाः) गुणाः कीर्त्तयन्ते,—इयं (श्रीराधिका) मधुरा (माधुर्यवती), नववयाः (नवं वयः यस्याः सा, किशोरी), चपलाङ्गा (चलः चञ्चलः अपाङ्गः यस्याः सा), चारु सौभाग्य रेखाढ्या (चारवः सौभाग्यरेखाः ताभिः आढ्या युक्ता), गन्धोन्मादित-माधवा (गन्धेन स्वीयाङ्गसुरभिणा उन्मादितः माधवो

यया), सङ्गीत-प्रसराभिज्ञा (सङ्गीतस्य प्रसरे विस्तारे अभिज्ञा पारदर्शिनी), रम्यवाक् (रम्या श्रुतिमनोज्ञा वाक् यस्याः सा), नर्मपण्डिता (नर्मणि परिहास कर्मणि पण्डिता अभिज्ञा), विनीता (नम्रा), करुणा-पूर्णा (स्वाश्रित गोपी-दुःख सहने असमर्था, परम-दयामयी), विदग्धा (रतिकलाभिज्ञा) पाटवान्विता (कर्त्तव्य-कुशला), लज्जाशीला (स्वप्रशंसायां वीतस्पृहा), सुमर्यादा (कृष्ण-गौरविणी), धैर्या (धीरा) गाम्भीर्यशालिनी (अचञ्चला), सुविलासा (लीला-मयी), महाभावपरमोत्कर्षतर्षिणी (महाभावस्य परमोत्कर्षविषये तृष्णान्विता), गोकुलप्रेम वसतिः (गोकुल वासिनां प्रेमास्पद), जगच्छ्रेणीलसद्‌यशाः (जगतां आश्रयवर्गाणां श्रेणीषु लसन्ति यशांसि यस्याः सा), गुर्वर्पित-गुरुस्नेहा (गुरुजनानामधिक-स्नेहपात्री), सखीप्रणयितावशा (सखीनां प्रणयिताया प्रणयभावस्य वशा वशीभूता), कृष्ण प्रियावली-मुख्या (कृष्ण-प्रेष्ठा), सन्तताश्रव-केशवा (सन्ततं अविरतम् आश्रवः वशम्वदः केशवः यस्याः सा)।

दो प्रकार के आलम्बन—(१) एकमात्र 'विषय' कृष्ण और (२) बहुत प्रकार के 'आश्रय', उनमें से श्रीराधा की सर्वश्रेष्ठता—

**नायक-नायिका, —दुइ रसेर 'आलम्बन'।**
**सेइ दुइ श्रेष्ठ,—राधा, व्रजेन्द्रनन्दन॥८७॥**

**८७। प० अनु०—**नायक तथा नायिका दोनों क्रमशः मधुर रस के विषय तथा आश्रयालम्बन हैं। श्रीराधा तथा श्रीव्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ नायिका तथा नायक हैं।

शान्त के अलावा अन्य सेवकों के चार प्रकार के रसों में कृष्ण सेवा का वर्णन—

**एइमत दास्ये दास, सख्ये सखागण।**
**जैछे रस हय, शुन ताहार लक्षण॥८८॥**

**८८। प० अनु०—**इसी प्रकार दास्य, सख्य तथा वात्सल्य रस में क्रमशः दास, सखा तथा माता-पिता उन-उन रसों के आश्रयालम्बन है तथा श्रीकृष्ण विषयालम्बन है।

### अनुभाष्य

८८। जिस प्रकार व्रजेन्द्रनन्दन और वृषभानु-कुमारी मधुर रस में दो श्रेष्ठ आलम्बन हैं, उसी प्रकार दास्यरस में व्रजेन्द्रनन्दन और चित्रक, रक्तक, पत्रक आदि एवं सख्य रस में व्रजेन्द्रनन्दन और श्रीदाम, सुदाम, सुबल आदि सखा एवं वात्सल्य में व्रजेन्द्रनन्दन और नन्द-यशोदा आदि ही श्रेष्ठ 'आलम्बन' हैं।

भक्तिरसामृतसिन्धु (२/१/७-१०)—

**भक्तिनिर्धूत-दोषाणां प्रसन्नोज्ज्वलचेतसाम्।**
**श्रीभागवतरक्तानां रसिकासङ्गरङ्गिणाम्॥८९॥**
**जीवनीभूत-गोविन्दपादभक्तिसुखाश्रियाम्।**
**प्रेमान्तरङ्गभूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम्॥९०॥**
**भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कारयुगलोज्ज्वला।**
**रतिरानन्दरूपैव नीयमाना तु रस्यताम्॥९१॥**
**कृष्णदिभिर्विभावाद्यैर्गतैरनुभवाध्वनि।**
**प्रौढ़ानन्दश्चमत्कारकाष्ठामापद्यते पराम्॥९२॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

८९-९२। जो—भक्ति के द्वारा सम्पूर्ण रूप से धोये गये दोषों से मुक्त, प्रसन्न और उज्ज्वलचित्त, श्रीभागवत में अनुरक्त, रसिकों के सङ्ग में रङ्गयुक्त (आनन्दित), गोविन्द के श्रीचरणों की भक्ति का सुखश्री ही जिनका जीवनस्वरूप है, प्रेम के अन्तरङ्ग सभी कार्यों का अनुष्ठान करने वाले उन भक्तों के हृदय में प्राचीन और आधुनिक संस्कारों के द्वारा उज्ज्वल आनन्दरूपी रति रसता प्राप्त करके विराजमान होती हैं। वह कृष्णादि विभावादि के द्वारा अनुभव के पथ पर प्रौढ़-आनन्द-चमत्काररूपी पराकाष्ठा को प्राप्त होती है।

### अनुभाष्य

८९-९२। भक्तिनिर्धूत दोषाणां (भक्त्या निर्धूताः

क्षालिताः दोषाः येषां) प्रसन्नोज्ज्वलचेतस्यां (प्रसन्नम् उज्ज्वलं चेतः येषां) श्रीभागवतरक्तानां (श्रीभागवतार्थानां आस्वादने अनुरक्तानां) रसिका-सङ्गरङ्गिणां (रसिकैः सह रसास्वादन-तत्पराणां) जीवनी भूत-गोविन्दपाद भक्तिसुखश्रियां (जीवनीभूता गोविन्दपाद-भक्तिसुखश्रीः कृष्ण सेवा सुख सम्पत्तिः येषां) प्रेमान्तरङ्गभूतानि (प्रेमणः अन्तरङ्ग भूतानि) कृत्यानि (अनुष्ठानादीनि) अनुतिष्ठतां भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कारयुगलोज्ज्वला (प्राक्तनाधुनिक संस्कार द्वयेन उज्ज्वला) आनन्दरूपा रतिः एव तु अनुभवा-ध्वनि (अनुभव-मार्गे) गतैः कृष्णादिभिः विभावाद्यैः रस्यतां (रसत्व) नीयमाना परां प्रौढ़ा- नन्दचमत्कार-काष्ठां (सान्द्रानन्दपराकाष्ठाम्) आपद्यते (प्राप्नोति)।

यह चिन्मय अप्राकृत रसास्वादन—अद्वयज्ञान-कृष्णाश्लिष्ट मुक्त कृष्ण-भक्तों के पक्ष में ही सम्भव, जड़ीय कुरसिकों के पक्ष में असम्भव—

**एइ रस-आस्वाद नाहि अभक्तेर गणे।**
**कृष्णभक्तगण करे रस आस्वादने॥९३॥**

**९३। प० अनु०—**इन रसों का आस्वादन अभक्तगण नहीं कर सकते, केवल कृष्ण के भक्त ही इन रसों का आस्वादन करते हैं।

शास्त्रप्रमाण—
भक्तिरसामृतसिन्धु (२/५/१३१)—

**सर्वथैव दुरुहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः।**
**तत्पादाम्बुजसर्वस्वैर्भक्तैरेवानुरस्यते॥९४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९४। अभक्तों के लिये यह भगवद्-रस सब प्रकार से दुर्लभ है, कृष्ण चरण कमल ही जिनका सर्वस्व है, भक्तिरस—उन्हीं के ही प्राप्य है।

**अनुभाष्य**

९४। अभक्तैः (भुक्ति मुक्ति पिपासुभिः हरि-विमुखैः जनैः) अयं भगवद्रसः सर्वथा एव दुरुहः (दुर्लभः), किन्तु तत्पादाम्बुज-सर्वस्वैः (एकान्तिकभक्तैः) एव अनुरस्यते (आस्वाद्यः स्यात्)।

प्रयोजन-तत्व-विचार
संक्षेप में वर्णित—

**संक्षेपे कहिलुँ एइ 'प्रयोजन'-विवरण।**
**पञ्चम-पुरुषार्थ—एइ 'कृष्णप्रेम' महाधन॥९५॥**

**९५। प० अनु०—**हे सनातन! मैंने 'प्रयोजन' तत्व का संक्षेप में वर्णन किया है। कृष्ण प्रेमरूपी महाधन ही पञ्चम-पुरुषार्थ हैं।

पहले प्रयाग में दशाश्वमेघ घाट पर श्रीरूप को कृष्णरस की शिक्षा-प्रदान—

**पूर्वे प्रयागे आमि रसेर विचारे।**
**तोमार भाइ रूपे कैलुँ शक्ति-सञ्चारे॥९६॥**

**९६। प० अनु०—**मैंने कुछ समय पूर्व प्रयाग में तुम्हारे भाई रूप में शक्ति का सञ्चार करके उसे रस-तत्त्व के विचार का श्रवण कराया था।

प्रभु के द्वारा वैष्णवाचार्य सनातन को आचार्योचित चार साम्प्रदायिक सेवाओं का दायित्व प्रदान—

**तुमिह करिह भक्तिशास्त्रेर प्रचार।**
**मथुराय लुप्ततीर्थेर करिह उद्धार॥९७॥**
**वृन्दावने कृष्णसेवा, वैष्णव-आचार।**
**भक्तिस्मृतिशास्त्र करि' करिह प्रचार॥''९८॥**

**९७-९८। प० अनु०—**तुम भी भक्ति-शास्त्रों का प्रचार करना तथा मथुरा में लुप्त-तीर्थों का उद्धार करना। वृन्दावन में श्रीकृष्ण की सेवा को प्रकाशित करना तथा वैष्णव-आचार और भक्ति-मूलक स्मृतिशास्त्र के द्वारा वैष्णवों के लिये उचित आचरण का प्रचार करना।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९८। भक्ति-स्मृतिशास्त्र—'हरिभक्तिविलास'-ग्रन्थ।

**अनुभाष्य**

९७-९८। भक्तिशास्त्र का प्रचार—श्रीदशम स्कन्ध की टिप्पणी 'बृहद्-वैष्णव-तोषणी' और बृहद् भागवतामृतादिग्रन्थ प्रकाश करके (१) शुद्ध-भक्ति के सिद्धान्त का संस्थापन, (२) लुप्त तीर्थों का उद्धार—वृन्दावन के कुण्ड आदि और अन्यान्य स्थानों का निरुपण, (३) वृन्दावन में कृष्णसेवा—श्रीमूर्ति को प्रकट करके सेवा का प्रकाश, (४) वैष्णव-आचार—वैष्णव-स्मृति ग्रन्थ का सङ्कलन करके वैष्णव-सदाचार का प्रवर्त्तन और प्रचार एवं वैष्णव-समाज में संस्थापन,—श्रीमन्महाप्रभु ने इन चार साम्प्रदायिक सेवाओं का भार श्रीसनातन गोस्वामी को प्रदान किया।

युक्त-वैराग्य ही जीव का काम्य और साध्य एवं फल्गु-वैराग्य—सदैव त्याज्य—

**युक्तवैराग्य-स्थिति सब शिखाइल।**
**शुष्कवैराग्य-ज्ञान सब निषेधिल॥९९॥**

**९९। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामी को युक्त-वैराग्य में स्थित रहने की सम्पूर्ण शिक्षा प्रदान की तथा शुष्क-वैराग्य से सम्बन्धित ज्ञान इत्यादि को संग्रह करने का निषेध किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९९। जगत् को कृष्ण के सम्बन्ध में व्यवहार करने से ही 'युक्त-वैराग्य' होता है, जगत् को तुच्छ मानकर संन्यास ग्रहण करने से ही 'शुष्क-वैराग्य' होता है।

**अनुभाष्य**

९९। यहाँ पाठान्तर में,—"अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः। निर्बन्धः कृष्ण सम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥" एवं "प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धि-वस्तुनः। मुमुक्षुभि परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥"—यह दो श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु के पूर्वविभाग की द्वितीय लहरी से उद्धृत हुए हैं।

गीता में कृष्णप्रिय भक्तों के तटस्थ-लक्षणों का निर्देश—
श्रीमद्भगवद्गीता (१२/१३-२०) में—

**अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।**
**निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥१००॥**
**सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।**
**मयार्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥१०१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१००-१०१। [भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं—] जो भक्त सभी प्राणियों से हिंसा-रहित है, मित्रता से युक्त, करुण, ममता-रहित (उदासीन), अहङ्कार शून्य, सुख और दुःख के प्रति समान बुद्धि रखने वाला, क्षमाशील, सदैव सन्तुष्ट, संयत स्वभाव वाला, दृढ़ निश्चय, भक्ति-योगी एवं मुझमें मन और बुद्धि को अर्पित करने वाला होता है—वह मेरा प्रिय है।

**अनुभाष्य**

१००-१०१। सर्वभूतानां (सकल जीवानाम्) अद्वेष्टा (हिंसा रहितः), मैत्रः (उत्तमेषु द्वेषशून्यः समेषु मित्रतया वर्त्तते यः सः), करुणः (हीनेषु कृपालुः), निर्ममः (ममतारहितः, उदासीनः), निरहङ्कारः, समदुःखसुख (सुख दुःखे तुल्यभाव विशिष्टः), क्षमी (अपराधसहनशीलः), सततं (लाभेऽलाभे च) सन्तुष्टः (सुप्रसन्न-चित्तः), योगी (अप्रमत्तः), यतात्मा (संयत-स्वभावः), दृढ़निश्चयः (मद्विषये स्थिरः निश्चयः यस्य सः), मयि अर्पितमनोबुद्धि (अर्पित मनोबुद्धी येन, एवम्भूतः) यः मद्भक्तः, सः मे प्रियः।

**यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।**
**हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥१०२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०२। जिससे लोगों को उद्वेग नहीं मिलता,

जो लोगों को उद्वेग नहीं देता एवं हर्ष और क्रोध-भय रूप उद्वेग से मुक्त है, वह भी मेरा प्रिय है।

**अनुभाष्य**

१०२। यस्मात् (सकाशात्) लोकः न उद्विजते (भयशङ्कया संक्षोभं ना प्राप्नोति), यः च लोकात् न उद्विजते, यः च हर्षामर्षभयोद्वेगैः (हर्षं स्वस्य इष्टार्थलाभे उत्साहः, अमर्षः परस्य लाभे असहनं, भयं त्रासः, उद्वेगः भयादिनिमित्त-चित्तक्षोभ;, एतैः) यः मुक्तः स च मे प्रियः।

**अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।**
**सर्वारम्भपरित्यागी यो मेभक्तः स मे प्रियः॥१०३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१०३।** मेरा जो भक्त—अपेक्षाशून्य, पवित्र, पटु, उदासीन, व्यथारहित, सर्वारम्भत्यागी है, वह—मेरा प्रिय है।

**अनुभाष्य**

१०३। ये अनपेक्षः (अन्यापेक्षारहितः यदृच्छयोपस्थितेऽप्यर्थे निस्पृहः), शुचिः (बाह्याभ्यन्तर-शौचसम्पन्नः), दक्षः (अनलसः), उदासीनः (पक्षपातरहितः), गतव्यथः (आधिशून्यः),—सर्वारम्भ-परित्यागी (सर्वान् दृष्टा दृष्टार्थान् आरम्भानुद्यमान् परित्युक्तं शीलं यस्य सः एवम्भूतः भक्तः), स मे प्रियः।

**यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।**
**शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥१०४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०४। जो—हर्ष, द्वेष, शोक और आकांक्षा-रहित है एवं शुभ-अशुभ फल-त्यागी और भक्तिमान् है, वह—मेरा प्रिय है।

**अनुभाष्य**

१०४। यः प्रियं प्राप्य, न हृष्यति, अप्रियं प्राप्य, न द्वेष्टि, इष्टार्थनाशे सति यः, न शोचति, अप्राप्तमर्थं यः, न काङ्क्षति, शुभाशुभपरित्यागी (शुभाशुभे पुण्यपापे परित्यक्तुं शीलं यस्य सः) एवम्भूतः भूत्वा यः मयि, भक्तिमान् स मे प्रियः।

**समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।**
**शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥१०५॥**
**तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनाचित्।**
**अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् में प्रियो नरः॥१०६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०५-१०६। शत्रु-मित्र और मान-अपमान में समान बुद्धि, सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख में समान बुद्धि, आसक्ति-रहित, निन्दा और स्तुति में एक जैसा विचार रखने वाला, मौनी, जिस-तिस में ही सन्तुष्ट, गृह-रहित, स्थिरमति वाला भक्तिमान् व्यक्ति ही—मेरा प्रिय है।

**अनुभाष्य**

१०५-१०६। शत्रौ मित्रे च तथा मानापमानयोः (सम्माना-सम्मानेषु) अपि समः (एकः तुल्यव्यवहारः इत्यर्थः), शीतोष्ण-सुखदुःखेषु (शीतोष्णयोः सुखदुःखयोः च), समः (तुल्यः), सङ्गविवर्जितः (क्वचिदप्यनासकः, अपरसहायहीनः वा), तुल्य- निन्दास्तुतिः (तुल्या निन्दा स्तुतिश्च यस्य सः, प्रशंसा-निन्दा-सम-बुद्धिः इत्यर्थः) मौनी (संयत- वाक्), येन केनचित् (यथालब्धेन) सन्तुष्टेः, अनिकेतः (नियत- वासशून्यः गृहवर्जितः इत्यर्थ), स्थिरमतिः (व्यवस्थित- चित्तः, एवम्भूतः यः मयि) भक्तिमान् नरः, सः मे प्रियः।

**ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।**
**श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव में प्रियाः॥१०७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०७। जो इस धर्मामृत के श्रद्धान्वित एवं मेरे परायण होकर उपासना करते हैं, वे मेरे भक्त हैं और मुझे अतिशय प्रिय है।

**अनुभाष्य**

१०७। ये (भक्ताः) यथोक्तं (उक्तप्रकारम्) इदं धर्मामृतं (धर्ममेवामृतम् अमृतसाधनत्वात्) पर्युपासते (अनुतिष्ठन्ति), श्रद्दधानाः (श्रद्धां कुर्वन्तः) मत्परमाः च (मन्निरताः सन्तः) मद्भक्ताः ते मे अतीव प्रियाः भवन्ति,।

भक्ति के अनुगामी शुद्ध-वैराग्य-मूलक-वाक्य—
श्रीमद्भागवत (२/२/५) में—

**चिराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां**
**नैवांघ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्।**
**रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्**
**कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान॥१०८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०८। [श्रीशुकवेद गोस्वामी कह रहे हैं— ] अहो, क्या मार्ग में फटे-पुराने वस्त्र नहीं पड़े रहते, वृक्ष क्या भिक्षा प्रदान नहीं करते, क्या सब नदियाँ इत्यादि सूख गयी हैं? गुफाएँ क्या बन्द हो गयी हैं? ईश्वर क्या शरणागत व्यक्तियों का पालन नहीं करते? यदि ऐसा ही है तो पण्डित लोग धन के दुर्मद में अन्धे व्यक्तियों का क्यों भजन करते हैं?

**अनुभाष्य**

१०८। श्रीशुकदेव परीक्षित को स्थूलजगत के धारणामय भोग के प्रति स्पृहाशून्य होकर अनासक्त भाव से जितने में निर्वाह हो जाएँ, उतनी ही वस्तु को ग्रहण रूपी युक्त-वैराग्य की बात बतला रहे हैं,—

पथि चीराणि (छिन्नवस्त्रखण्डानि) किं न सन्ति (व्यक्तानि, न वर्त्तते)? परभृतः (परान् विभ्रति फलादिभिः पुष्णन्ति ये तथा भूताः) अङ्घ्रिपाः (वृक्षाः) भिक्षां न एव दिशन्ति (न दास्यन्ति किम्)? सरितः (सरांसि नद्यः) अपि अशुष्यन् (शुष्काः किम्)? गुहाः (गिरिदर्यः) रुद्धाः किम्? अजितः (विष्णुः) उपसन्नान् (शरणागतान्) किं न अवति (रक्षति)? (यद्येवं, तदा) कवयः (हरिरसविदः पण्डिताः) कस्मात् (केन हेतुना) धनदुर्म्मदान्धान् (धनेन यः दुर्मदः तेन अन्धान् नष्ट-विवेकान्) भजन्ति (अनुगच्छन्ति)?

सनातन के परिप्रश्न के उत्तर में प्रभु द्वारा भागवत के गूढ़ सिद्धान्त का कीर्त्तन—

**तबे सनातन सब सिद्धान्त पुछिला।**
**भागवत-गूढ़सिद्धान्त प्रभु सकलि कहिला॥१०९॥**
**हरिवंशे कहियाछे गोलोके नित्यस्थिति।**
**इन्द्र आसि' करिल जबे श्रीकृष्णेर स्तुति॥११०॥**

१०९-११०। **प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के मुख से इन सब विचारों को श्रवण करने के बाद श्रील सनातन गोस्वामी ने बहुत से सिद्धान्तों के विषय में पूछा। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामी को श्रीमद्भागवतम् के समस्त गूढ़-सिद्धान्तों का श्रवण कराया। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामी को हरिवंश नामक ग्रन्थ में इन्द्र के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करते समय वर्णित गोलोक की नित्य स्थिति के विषय में भी समझाया।

**अनुभाष्य**

११०। हरिवंश में विष्णुपर्व के १९वें अध्याय में—''मनुष्यलोकादूर्द्ध्वं तु खगानां गतिरुच्यते। आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान्॥ स्वर्गादूर्द्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगण-सेवितः। तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषाञ्च महात्मनाम्॥ तस्योपरि गवां लोकः साध्यान्तं पालयन्ति हि। स हि सर्वगतः कृष्णः महाकाशगतो महान्। उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी। यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि

पितामहम्॥ गतिः शम-दमाढ्यानां स्वर्गः सुकृत-कर्मणाम्। ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः। गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः॥ सः तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना। धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम्॥'' अर्थात् गोवर्द्धन धारण के बाद इन्द्र ने कृष्ण का इस प्रकार से स्तव किया था,—''मनुष्यलोक के उच्च भाग में पक्षियों की गति है। आकाश के ऊपर स्वर्ग का प्रकाशमान सूर्य द्वार एवं स्वर्ग के ऊपरी भाग में ब्रह्मर्षियों के द्वारा सेवित ब्रह्मलोक है। देवीधाम के ऊपर में स्थित उस धाम में उमा के साथ शिव वर्त्तमान हैं; वह तेजः सम्पन्न ब्रह्मा आदि मुक्त पुरुषों का आवास-स्थान है। वैकुण्ठ के ऊपर गोलोक, वहाँ श्रीमती राधिका आदि और नन्द-यशोदा आदि साध्यगण पालन करते हैं। वैकुण्ठ आदि धाम—गोलोक की तुलना में स्वल्प-आकाश मात्र हैं; गोलोक ही महाकाश है। हम ब्रह्मा से जिज्ञासा करके भी आपकी तपोमयी गतिरूपा सर्वोपरि गोलोकपति की उपलब्धि नहीं कर पाये। शम-दमादि सम्पद् युक्त सुकृतिशाली कर्मीगण स्वर्ग में गमन करते हैं। नारायण के दास्य से ही वैकुण्ठ-प्राप्ति होती है; किन्तु गो गणों का लोक वह गोलोक—अत्यन्त दुरारोह है। हे कृष्ण, उसी गोलोक के साथ आप यहाँ अवतीर्ण हुए हो एवं मैंने जो उपद्रव किया है, वह मेरी मूर्खता के द्वारा ही उत्पन्न हुआ है, उसी को मैं स्तव के द्वारा बतला रहा हूँ।''

इस स्थान पर नीलकण्ठ ने अपनी टीका में लिखा है,—''तथा च मन्त्रवर्णः—(ऋक सं १/२१/१५४/६) ''ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्ये यत्र गावो भूरिश्रृङ्गा अयासः। अत्राह तदुरुगायस्य कृष्णः परमं पदमवभाति भूरि'' इति।—तानि वां भुवयोः रामकृष्णयोर्वास्तूनि रम्यस्थानानि गमध्ये गन्तुम् उश्मसि उश्मः कामयामहे, न तु तत्र गन्तुं प्रभु वामः, यत्र तेषु वास्तुषु भूरिश्रृङ्गाः महाश्रृङ्गवत्यो गावः आयासः सञ्चरन्ति। अत्र भूलोके अह निश्चितं तत् गोलोकाख्यं परमं पदं भूरि अत्यन्तं मुख्यादपि विशिष्टम् अवभाति अत्यन्तं शोभते। कृष्णः आनन्दवर्षुकस्य उरुगायस्य महाकीर्त्तेरित्यर्थः।

कुछेक असुरमोहिनी अनित्य
प्राकृत घटनाएँ—

**मौषल-लीला, आर कृष्ण-अन्तर्ध्यान।**
**केशावतार, आर विरुद्ध व्याख्यान॥१११॥**

प्रभु के द्वारा कहीं गयी मौषल-लीलादि
के सम्बन्ध में वास्तविक सिद्धान्त-व्याख्या—

**महिषी-हरण आदि, सब—मायामय।**
**व्याख्या शिखाइल जैछे सुसिद्धान्त हय॥११२॥**

**१११-११२। प० अनु०—**मौषल-लीला, कृष्ण का अन्तर्ध्यान होना, केशावतार तथा अन्यान्य विरुद्ध व्याख्यान, महिषी-हरण आदि सब—माया-माया है, इन सबकी श्रीमन्महाप्रभु ने व्याख्या करके श्रील सनातन गोस्वामी को सुसिद्धान्त की शिक्षा प्रदान की।

### अमृतप्रवाह भाष्य

१११। 'काक कृष्णकेश'-रूपी कृष्णावतार—यह जो विरुद्ध व्याख्यान हैं, उसे धिक्कार देकर ईश-केश' अर्थात् कृष्ण—'ब्रह्मा के ईश्वर' इस प्रकार शुद्ध व्याख्या की शिक्षा दी।

*त्रयोविंश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

### अनुभाष्य

१११-११२। महाभारत की मौषल-लीला, कृष्ण के अन्तर्ध्यान की लीला, केशावतार और महिषी-हरण आदि आख्यान,—सभी मिथ्या हैं, नित्य अप्राकृत लीला नहीं हैं। मूढ़मति प्रापञ्चिक विष्णु-विद्वेषी असुर लोगों के मोह और भ्रम को

उत्पन्न करने के उद्देश्य से केवल मात्र इन सबका वर्णन हुआ है।

**केशावतार—**(भाः २/७/२६ द्रष्टव्य); विष्णु पुराण में—''उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महा-बल''; महाभारत में—''स चापि केशौ हरिरुच्चकर्त्त एकं शुक्लमपरञ्चापि कृष्णम्। तौ चापि केशवाविशतां यदूनां कुले स्त्रियो रोहिणीं देवकीञ्च॥ तयोरेको बलभद्रो बभूवः योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः। कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशः योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्त इति॥ भागवत, विष्णुपुराण और महाभारत में केशावतार का इस प्रकार उल्लेख है,—'श्रीहरि ने अपने मस्तक से शुक्लवर्ण (सफेद) और कृष्णवर्ण (काले)—दो केशों को तोड़ा था। दो केश यदुकुल की स्त्री रोहिणी और देवकी में प्रविष्ट होने से पहले सफेद केश से वर्ण के अनुसार 'बलदेव' और दूसरे काले-केश से 'कृष्ण' उत्पन्न हुए, ऐसा कहा जाता है। असुरों के द्वारा विमर्दित पृथ्वी के क्लेश नाश के लिये जो अंश द्वारा सितकृष्ण हुए, वे हरि अवतीर्ण होकर अपने महत्त्वसूचक कार्य करेंगे॥'' इस स्थान पर लघुभागवतामृत में कृष्णामृत-नामक पूर्वखण्ड की १५६-१६४ संख्या में 'श्रीकृष्ण—क्षीरोदशायी केश के अवतार' इस पूर्व पक्ष के खण्डन में श्रीरूप प्रभु और उसके टीकाकार श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु का विचार एवं षट् सन्दर्भ के अन्तर्गत कृष्णसन्दर्भ की २९ संख्या और सर्वसम्वादिनी में श्रीजीव प्रभु का विचार आलोच्य है।

*त्रयोविंश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

प्रभु के चरणों में सनातन
का दैन्य और प्रार्थना—

**तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया।**
**निवेदन करे दन्ते तृण-गुच्छ लञा॥११३॥**

**''नीचजाति, नीचसेवी, मुञि—सुपामर।**
**सिद्धान्त, शिखाइला,—जेइ ब्रह्मार अगोचर॥११४॥**
**तुमि जे कहिला, एइ सिद्धान्तामृत-सिन्धु।**
**मोर मन छुँइते नारे इहार एक बिन्दु॥११५॥**

**११३-११५। प॰ अनु॰—**तब श्रील सनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण करके, दाँतों में तृण का गुच्छा लेकर उनसे निवेदन करने लगे—हे प्रभु! मैं नीच जाति का हूँ, मैंने नीच लोगों की ही सेवा की है तथा मैं अत्यन्त अधम हूँ, किन्तु तब भी आपने मुझे उन सब सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान की है, जो ब्रह्मा के लिये भी अगोचर हैं। आपने जो कुछ वर्णन किया है, वह तो सिद्धान्त रूपी अमृत का सिन्धु है। मेरा मन तो इसके एक बिन्दु को भी नहीं छू सकता।

**पंगु नाचाइते यदि हय तोमार मन।**
**वर देह' मोर माथे धरिया चरण॥११६॥**

उल्लिखित भक्तिसिद्धान्तवाणी की स्फूर्ति की
प्राप्ति के लिये प्रभु के निकट
वर की याचना—

**'मुञि जे शिखाइ तोरे स्फुरुक सकल।'**
**एइ तोमार वर हैते हबे मोर बल॥''११७॥**

**११६-११७। प॰ अनु॰—**हे प्रभु ! यदि इस पंगु (लगड़े) को नाचने की आपके मन में इच्छा हो, तब आप मेरे सिर पर अपने चरण रखकर मुझे यह वर प्रदान कीजिए कि 'मैंने तुम्हें जो भी सिखाया है, वह सब तुम्हारे हृदय में स्फुरित हो' आपके द्वारा दिये गये इस वरदान से ही मुझे बल की प्राप्ति होगी।

सनातन को प्रभु
द्वारा वरदान—

**तबे महाप्रभु ताँर शिरे धरि' करे।**
**वर दिला—'एइ सब स्फुरुक तोमारे॥'११८॥**

**११८। प० अनु०—**श्रील सनातन गोस्वामी की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने उनके सिर पर अपना हाथ रखकर वर दिया कि यह सब तुममें स्फुरित हो।

कृष्णप्रेमरूपी प्रयोजनतत्व और
प्रभु की कृपा का आख्यान
संक्षेप में वर्णित—

**संक्षेपे कहिलुँ—'प्रेम' प्रयोजन-संवाद।**
**विस्तारि' कहन ना जाय प्रभुर प्रसाद॥११९॥**

**११९। प० अनु०—**श्रील कविराज गोस्वामी कह रहे हैं कि मैंने श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रील सनातन गोस्वामी में हुए 'प्रेम' रूपी प्रयोजन के संवाद का संक्षेप में ही वर्णन किया है, क्योकि श्रीमन्महाप्रभु की कृपा का विस्तार से वर्णन करना मेरे लिये सम्भवपर नहीं है।

प्रभु के उपदेशामृत के श्रवण से आत्मा की
चिद्वृत्ति कृष्णसेवा का उद्बोधन (उद्घाटन)
और प्रेम की प्राप्ति—

**प्रभुर उपदेशामृत शुने जेइ जन।**
**अचिरात् मिलये ताँरे कृष्णप्रेमधन॥१२०॥**

**१२०। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के इस उपदेशामृत का जो कोई भी श्रवण करता है, उसे बहुत शीघ्र ही कृष्णप्रेम रूपी धन की प्राप्ति होती है।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥१२१॥**

*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्यखण्ड में प्रेमप्रयोजन-विचार नामक त्रयोविंश परिच्छेद समाप्त।*

**१२१। प० अनु०—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य चरितामृत का गान कर रहा है।

❋ ❋ ❋

# चतुर्विंश परिच्छेद

**कथासार—**श्रीसनातन की प्रार्थना के अनुसार महाप्रभु ने 'आत्मारामश्च मुनयः'' इस श्लोक के ६१ प्रकार के अर्थ किये। पृथक-पृथक पदों की व्याख्या करते हुए 'च' और 'अपि'—इन दो शब्दों के अर्थ के संयोग से ये सब अर्थ निष्पन्न किये। अन्त में इस श्लोक की व्याख्या में ज्ञानी, कर्मी और योगी, सभी अपने-अपने दोष का परित्याग करके उसके साथ कृष्णभजन करते हैं, इस निश्चित अर्थ को स्थिर कर दिया। व्याख्या में नारद और व्याध के एक संवाद में साधुसङ्ग के माहात्म्य का वर्णन किया। नारद ने पर्वत मुनि को लाकर व्याध की हरिभक्ति दिखलायी। इसके बाद प्रभु ने सनातन का स्तव सुनकर श्रीमद्भागवत का तात्पर्य और माहात्म्य प्रकाशित किया। अन्त में सनातन की इच्छानुसार महाप्रभु ने हरिभक्तिविलास के सूत्रों को बतला दिया।

(अः प्रः भाः)

''आत्मारामाश्च''—श्लोक में कुतर्कका हरण करने वाले गौर के आशीर्वाद की याचना—

**आत्मारामेति पद्यार्कस्यार्थांशून् यः प्रकाशयन्।**
**जगतमो जहाराव्यात् स चैतन्योदयाचलः॥१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१। जिन्होंने ''आत्मारामेति'' पद्यरूपी सूर्य की अर्थ रूपी किरणों को प्रकाशित करके जगत के अन्धकार का हरण किया था, वे उदयाचल रूपी श्रीचैतन्य जगत का पालन करें।

**अनुभाष्य**

१। यः (श्रीचैतन्यदेवः) आत्मारामेति ('आत्मारामश्च' इति भागवतस्य) पद्यार्कस्य (श्लोकसूर्यस्य) अर्थांशून् (अर्थाः एव. अंशवः किरणास्तान्) प्रकाशयन् (प्रकटयन्) जगत्तमः (कुसिद्धान्तान्धकार) जहार (नाशयामास), स चैतन्योदयाचलः (श्रीकृष्णचैतन्य एव उदयाचलः, अर्कस्य उदयस्थलत्वात्) अव्यात् (अवतु)।

**जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प॰ अनु॰—**श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो, श्री गौरभक्तवृन्द की जय हो।

सनातन की प्रभु के श्रीचरणों में प्रार्थना—

**तबे सनातन प्रभुर चरणे धरिया।**
**पुनरपि कहे किछु विनय करिया॥३॥**

पहले सार्वभौम के निकट-वर्णित ''आत्मारामाश्च'' श्लोक की अठारह प्रकार की व्याख्या को सुनने की अभिलाषा—

**''पूर्वे शुनियाछों, तुमि सार्वभौम-स्थाने।**
**एक श्लोकेर आठार अर्थ कैराछ व्याख्याने॥४॥**

**३-४। प॰ अनु॰—**तब श्रील सनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण करके पुनः विनयपूर्वक कहा—'मैंने सुना है कि आपने पहले श्रीसार्वभौम-भट्टाचार्य को आत्माराम श्लोक के अठारह प्रकार के अर्थों की व्याख्या करके सुनायी थी।

श्रीमद्भागवत (१/७/१०)—

**आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।**
**कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥५॥**

५। आत्मा में ही जिनकी रति हैं, ऐसे वासना रूपी ग्रन्थियों से शून्य मुनिगण भी बृहद्कर्मा श्रीकृष्ण के प्रति अहैतुकी भक्ति करते हैं; क्योंकि, जगत् के चित का हरण करनेवाले हरि का एक ऐसा ही (अद्भुत) गुण है।

**अनुभाष्य**

५। मध्य, षष्ठ परिच्छेद १८६ संख्या द्रष्टव्य।

**आश्चर्य शुनिया मोर उत्कण्ठित मन।**
**कृपा करि' कह यदि, जुड़ाय श्रवण॥''६॥**

**६। प॰ अनु॰—**इस बात को सुनकर मैं बहुत आश्चर्यचकित हुआ था। उन अर्थों को सुनने के लिये मेरा मन भी उत्कण्ठित हो रहा है। यदि आप कृपा करके मुझे भी उस श्लोक की व्याख्या सुनाएँ तो मेरे कर्ण भी तृप्त हो जाएँ।

प्रभु के द्वारा स्वयं की अप्राकृत बाउल-कहकर दैन्य के आवरण में आत्मगोपन की चेष्टा—

**प्रभु कहे,—''आमि वातुल, आमार वचने।**
**सार्वभौम वातुलता सत्य करि' माने॥७॥**

**७। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—''मैं तो पागल हूँ, मुझ पागल के वचनों को सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें सत्य मानता है।

कीर्त्तन करने वाले प्रभु के उपयुक्त श्रोता सनातन को बहुमानन करके पहले वाले अठारह प्रकार के अर्थ को छोड़कर नयी व्याख्या प्रदान—

**किबा प्रलापिलाङ्ग, तार नाहि किछु मने।**
**तोमार सङ्ग-बले यदि किछु हय मने॥८॥**
**सहजे आमार किछु अर्थ नाहि भासे।**
**तोमा-सबार सङ्ग-बले जे किछु प्रकाशे॥९॥**

**८-९। प॰ अनु॰—**मैंने उस समय क्या प्रलाप किया था, उसमें से मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है। फिर भी मैं प्रयास करता हूँ यदि तुम्हारे सङ्ग के प्रभाव से मुझे कुछ स्मरण हो जाएँ। स्वाभाविक रूप से तो मेरे मन में कोई भी अर्थ प्रकाशित नहीं होता जो कुछ भी प्रकाशित होता है वह सब आप लोगों के सङ्ग के प्रभाव से ही होता है

आत्मारामाश्च'' श्लोक में कुल इग्यारह पद—

**एकादश पद एइ श्लोके सुनिर्मल।**
**पृथक पृथक नाना अर्थ पदे करे झलमल॥१०॥**

**१०। प॰ अनु॰—**इस श्लोक में अत्यधिक स्पष्ट रूप में ग्यारह पद हैं, किन्तु एक-एक पद में पृथक-पृथक अनेक अर्थ झलकते हैं।

**अनुभाष्य**

१०। एकादश पद—(१) आत्मारामाः, (२) च, (३) मुनयः, ४) निर्ग्रन्थाः, (५) अपि, (६) उरुक्रमे, (७) कुर्वन्ति, (८) अहैतुकीं, (९) भक्तिं, (१०) ईत्थम्भूतगुणः, (११) हरिः।

(१) 'आत्मा'-शब्द के सात अर्थ—

**'आत्मा'-शब्दे ब्रह्म, देह, मन, यत्न, धृति।**
**बुद्धि, स्वभाव,—एइ सात अर्थ-प्राप्ति॥११॥**

**११। प॰ अनु॰—**आत्मा शब्द के—ब्रह्म, देह, मन, यत्न, धृति, बुद्धि तथा स्वभाव—यह सात अर्थ प्राप्त होते हैं।

विश्वप्रकाश में—

**''आत्मा देहमनोब्रह्मस्वभाव-**
**धृतिबुद्धिषु प्रयत्ने च'' इति॥१२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२। 'आत्म'-शब्द का अर्थ—देह, मन, ब्रह्म, स्वभाव, धृति, बुद्धि और यत्न।

'आत्मा'-शब्द के अर्थ को लेकर
आत्माराम सात प्रकार के—

**एइ साते रमे जेइ, सेइ आत्मारामगण।**
**आत्मारामगणेर आगे करिये गणन॥१३॥**

**१३। प० अनु०—**इन सातों में जो रमण करते हैं, वे आत्माराम गण हैं। आत्मारामों की आगे गणना करूँगा।

(२) 'मुनि'—शब्द के सात अर्थ—

**'मुनि'-आदि शब्देर अर्थ शुन, सनातन।**
**पृथक पृथक अर्थ करि, पाछे करिब मिलन॥१४॥**
**'मुनि'-शब्दे मननशील, आर कहे मौनी।**
**तपस्वी, व्रती, यति, आर ऋषि, मुनि॥१५॥**

**१४-१५। प० अनु०—**हे सनातन, अब तुम मुनि आदि शब्दों का अर्थ सुनो। पहले मैं इन सबका पृथक-पृथक अर्थ करके बतला रहा हूँ, बाद में मैं एकसाथ इन सबको मिलाकर अर्थ बतलाऊँगा। मुनि शब्द के मननशील, मौनी, तपस्वी, व्रती, यति, ऋषि तथा मुनि—ये सात अर्थ प्राप्त होते हैं।

(३) 'निर्ग्रन्थ'-शब्द का अर्थ—

**'निर्ग्रन्थ'-शब्दे कहे, अविद्या-ग्रन्थि-हीन।**
**विधि-निषेध-वेदशास्त्र-ज्ञानादि-विहीन॥१६॥**
**मूर्ख, नीच, म्लेच्छ आदि शास्त्ररिक्तगण।**
**धन सञ्चयी—निर्ग्रन्थ, आर जे निर्धन॥१७॥**

**१६-१७। प० अनु०—**निर्ग्रन्थ शब्द के अर्थ अविधा की ग्रन्थियों से रहित, विधि-निषेध तथा वेदशास्त्र और ज्ञान आदि से रहित, शास्त्र को नहीं जानने वाले मूर्ख, नीच, म्लेच्छ, धन का सञ्चय करने वाले तथा निर्धन है।

'निर' उपसर्ग और 'ग्रन्थ'-शब्द के अर्थ का प्रमाण—
विश्व प्रकाश में—

**निर्निश्चये निष्क्रमार्थे निर्निर्माण-निषेधयोः।**
**ग्रन्थो धनेऽथ सन्दर्भे वर्णसंग्रथनेऽपि च॥१८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८। 'निर' उपसर्ग—निश्चय में, क्रम अर्थ में, निर्माण में, निषेध में व्यवहृत होता है। 'ग्रन्थ'-शब्द—धन के लिये, सन्दर्भ में, वर्ण के संग्रहण (सबको एकत्रित करने) में व्यवहृत होता है।

(४) 'उरुक्रम' (उरु+क्रम) शब्द का अर्थ—

**'उरुक्रम'-शब्दे कहे, बड़ जाँर क्रम।**
**'क्रम'-शब्दे कहे, एइ पादविक्षेपण॥१९॥**
**शक्ति कम्पयुक्त परिपाट्ये आक्रमण।**
**चरण-चालने काँपाइल त्रिभुवन॥२०॥**

**१९-२०। प० अनु०—**उरुक्रम शब्द उसे कहते है, जिसका क्रम बड़ा है तथा क्रम शब्द का अर्थ है एक-एक पाद-विक्षेप अर्थात् एक पग कितना बड़ा है उसका माप। क्रम शब्द के अन्य कुछ अर्थ शक्ति, कम्पनयुक्त, परिपाटी (पद्धति) तथा आक्रमण भी है। अतएव उरुक्रम शब्द का मुख्य अर्थ है—वे जिन्होंने अपने चरणों को बढ़ाकर त्रिभुवन को कम्पायमान कर दिया था।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०। 'उरुक्रम'—शब्द के 'उरु'—शब्द से बड़े-बड़े एवं 'क्रम'-शब्द से—पाद-विक्षेपण एवं (शक्ति आदि के कारणभूत) कम्पन आदि। अतएव उरुक्रम-शब्द से वामन-आकार के विष्णु को समझाया; क्योंकि, बड़े-बड़े चरणों के क्रम के द्वारा उन्होंने ही जगत को कम्पायमान् किया था।

प्राकृत (जागतिक) सर्वश्रेष्ठ सूक्ष्मतम परमाणु को
गिनने वाले के लिये भी वामन के वीर्य को
मापना असम्भव—
श्रीमद्भागवत (२/७/४०) में—

**विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोर्हतीह**
**यः प्रार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि।**

**चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं**
**यस्मात् त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम्॥२१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२१। [श्रीब्रह्मा ने कहा—] पृथ्वी के धूलि-कणों की गणना करना सम्भवपर होने पर भी विष्णु के बल की कौन गणना कर सकता है? उन्होंने वामन के रूप में अपने अस्खलित-चरण के वेग से त्रिगुणमयी प्रकृति के मूल से त्रिपृष्ठ (सत्यलोक) तक को कम्पित करके धारण किया था।

**अनुभाष्य**

२१। ब्रह्मा अपने शिष्य देवर्षि नारद के निकट भगवान् विष्णु के लीलावतार-समूह की चेष्टा, प्रयोजन और विभूति की कथा का वर्णन करके भगवान् वामनदेव के अपरिमेय (असीम) वीर्य की महिमा का वर्णन कर रहे हैं,—

इह (अस्मिन् संसारे) यः कविः (पण्डितः) पार्थिवानि रजांसि (पृथिव्याः परमाणुन् अपि) विममे (विगणितवान्, तादृशः अपि) कतमः नु (प्रश्ने) विष्णोः वीर्यगणनां कर्त्तुम्, अर्हति (समर्थो भवति?—न कोऽपीत्यर्थः), यः (विष्णुः) यस्मात् (कारणात् त्रिविक्रमावतारे) अस्खलता (प्रतिघातशून्येन) स्व-वंहसा (स्वपादवेगेन) त्रिसाम्यसदनात् (त्रिगुणसाम्य-रूपं सदनम् अधिष्ठानं प्रधानं तस्मात् आरभ्य) उरुकम्पयानम् (अधिककम्पमान) त्रिपृष्ठं (सत्यलोक) चस्कम्भ (धृतवान्)१—मन्त्रः (ऋग्वेदे प्रथम मः १५४ सूः)—''ॐ विष्णोर्नु वीर्याणि कं प्रावोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। योऽस्कम्भयदुत्तरं सधस्हं विचक्रमाण स्त्रेधारुगायः'' इति।

स्वरूप और माया-शक्ति के वैभव तीनों धामों में शक्ति अथवा वीर्य का विभिन्न परिचय—

**विभुरुपे व्यापे, शक्तये धारण-पोषण।**
**माधुर्यशक्तये गोलोक, ऐश्वर्यें परव्योम॥२२॥**
**माया-शक्तये ब्रह्माण्डादि-परिपाटी-सृजन।**
**'उरुक्रम'-शब्देर एइ अर्थ निरुपण॥२३॥**

**२२-२३। प० अनु०—**भगवान् विभु अर्थात् व्यापक रूप में त्रिभुवन में व्याप्त रहते हैं तथा अपनी शक्ति के द्वारा त्रिभुवन को धारण करते हैं एवं उसका पोषण करते हैं। भगवान् अपनी माधुर्य-शक्ति के द्वारा गोलोक को तथा ऐश्वर्य शक्ति के द्वारा परव्योम को धारण करते है तथा उसका पोषण करते हैं। भगवान अपनी मायाशक्ति के द्वारा ब्रह्माण्ड आदि का अत्यधिक सुन्दर परिपाटी (पद्धति) से सृजन करते हैं। अतः भगवान् 'उरुक्रम' शब्द का यही अर्थ है।

**अनुभाष्य**

२२-२३। विभुरूप में त्रिभुवन में व्याप्त रहते हैं एवं शक्ति के द्वारा उन्हें धारण तथा उनका पोषण करते हैं। माधुर्य शक्ति के द्वारा गोलोक को धारण तथा उसका पोषण करते हैं। ऐश्वर्यशक्ति द्वारा परव्योम को धारण तथा उसका पोषण करते हैं। एवं माया शक्ति द्वारा ब्रह्माण्ड आदि का परिपाटी अनुसार सृजन करते हैं।

क्रमशब्द का समानार्थक शब्द—
विश्वप्रकाश में—

**''क्रमः शक्तौ परिपाट्यां**
**क्रमचालनकम्पयोः॥''२४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२४। क्रम शब्द का अर्थ—शक्ति, परिपाटी, चालन और कम्पन है।

(५) 'कुर्वन्ति'-क्रिया के परस्मैपद का कारण—

**'कुर्वन्ति'-पद—एइ परस्मैपद हय।**
**कृष्णसुखनिमित्त भजने तात्पर्य कहय॥२५॥**

**२५। प० अनु०—**इस श्लोक में 'कुर्वन्ति' पद परस्मैपद के रूप में व्यवहार किया गया है, ऐसा

इसलिए, क्योकि इसमें आत्मारामगण श्रीकृष्ण के सुख हेतु ही भजन करते है, परस्मैपद को व्यवहार करने का यही तात्पर्य है।

**अनुभाष्य**

२५। 'कुर्वन्ति'-पद—परस्मैपद में प्रयुक्त है; फल की प्राप्ति कर्त्ता का अभिप्राय होने पर, 'आत्मनेपद' प्रयुक्त होता। किन्तु यहाँ पर कृष्ण के सुख के लिये वे भजन करते हैं, ऐसा तात्पर्य व्यवहृत हुआ है, इसलिए यहाँ पर 'कुर्वन्ति' का परस्मैपदीय में प्रयोग है।

प्रमाण—
पाणिनि में १/३/७२; सिद्धान्त-कौमुदी में भवादि-प्रकरण में—

**''स्वरितञ्चितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले॥''२६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२६। उभयपदी धातु का स्वरित (सुनायी देने वाला) स्वर और ञ 'इत' होता है। क्रिया का फल यदि कर्त्ता का अभिप्राय होता है, तब वहाँ 'आत्मनेपद्' होता है। इस स्थान पर ऐसा नहीं होकर 'परस्मैपद' प्रयुक्त हुआ है।

(६) 'अहैतुकी'-शब्द के अन्तर्गत 'हेतु'-शब्द के तीन प्रकार के दार्शनिक अर्थ—

**'हेतु'-शब्दे कहे—भुक्ति-आदि वाञ्छान्तरे।**
**भुक्ति, सिद्धि, मुक्ति—मुख्य एइ तिन प्रकारे॥२७॥**

भुक्ति, सिद्धि और मुक्ति में अन्तर—

**एक भुक्ति कहे, भोग—अनन्त प्रकार।**
**सिद्धि—अष्टादश, मुक्ति—पञ्चविधाकार॥२८॥**

**२७-२८। प॰ अनु॰—**हेतु शब्द का अर्थ है किसी कारण से कुछ करना। हेतु शब्द भुक्ति (भोग) इत्यादि कृष्ण-सुख के अलावा अन्यान्य सभी भोगों की वाञ्छाओं को कहा जाता है। हेतु भुक्ति, सिद्धि और मुक्ति—मुख्य रूप से ये तीन प्रकार के होते हैं। हेतु का एक अर्थ भुक्ति (भोग की वाञ्छा) हैं तथा भोग अनन्त प्रकार के हैं। सिद्धियाँ अठारह प्रकार की तथा मुक्ति पाँच प्रकार की होती है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२८। सिद्धि—अणिमा आदि अठारह प्रकार की सिद्धियाँ (भागवत ११/१५ अध्याय द्रष्टव्य)।

'अहैतुकी'-शब्द का अर्थ—

**एइ जाँहा नाहि, सेइ भक्ति—'अहैतुकी'।**
**जाहा हैते वश हय श्रीकृष्ण कौतुकी॥२९॥**

**२९। प॰ अनु॰—**भुक्ति, सिद्धि तथा मुक्ति—इन तीनों की कामना जहाँ पर नहीं है, उस भक्ति को अहैतुकी कहते हैं, जिसके द्वारा लीलामय श्रीकृष्ण वशीभूत हो जाते हैं।

(७) 'भक्ति'-शब्द का अर्थ; दस प्रकार के भेद—

**'भक्ति'-शब्देर अर्थ हय दशविधाकार।**
**एक—'साधन', 'प्रेम भक्ति'—नव प्रकार॥३०॥**
**'रति'-लक्षणा, 'प्रेम'-लक्षणा, इत्यादि प्रचार।**
**भावरूपा, महाभाव-लक्षणरूपा आर॥३१॥**

**३०-३१। प॰ अनु॰—**भक्ति शब्द का अर्थ दस प्रकार का होता है। इसके उपरान्त अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३०। नौ-प्रकार की प्रेम भक्ति—रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव—ये नौ प्रकार।

**अनुभाष्य**

३०-३१। साधन भक्ति का एक प्रकार का लक्षण और प्रेम-भक्ति के नौ प्रकार के लक्षण हैं, यथा रति (भावभक्ति)-लक्षणा, प्रेम-लक्षणा,

स्नेह-लक्षणा, प्रणय-लक्षणा, राग-लक्षणा, अनुराग-लक्षणा, भाव-लक्षणा और महाभाव-लक्षणा।

शान्त और दास्यरस में भक्ति की सीमा—

**शान्त-भक्तेर रति बाड़े 'प्रेम'-पर्यन्त।**
**दास्य-भक्तेर रति हय 'राग' दशा-अन्त॥३२॥**

**३२। प० अनु०—**शान्त रस के भक्तों की रति प्रेम पर्यन्त बढ़ती है तथा दास्य रस के भक्तों की रति राग की दशा तक बढ़ती है।

सख्य और वात्सल्य-रस में भक्ति की सीमा—

**सखागणेर रति हय 'अनुराग' पर्यन्त।**
**पितृ-मातृ-स्नेह आदि 'अनुराग'-अन्त॥३३॥**

**३३। प० अनु०—**सखाओं की रति 'अनुराग' तक तथा पिता-माता की रति 'अनुराग' की अन्तिम सीमा तक बढ़ती हैं।

मधुर रस में भक्ति की सीमा—

**कान्तागणेर रति पाय 'महाभाव'-सीमा।**
**'भक्ति'-शब्दे कहिलुँ एइ अर्थेर महिमा॥३४॥**

**३४। प० अनु०—**कान्ताओं की रति महाभाव की सीमा तक बढ़ती है। 'भक्ति' शब्द के अर्थों की यही महिमा है।

(८) 'इथम्भूतगुण' (इथम्भूत +गुण) शब्द के अर्थ की व्याख्या—

**'इथम्भूतगुणः'-शब्देर शुनह व्याख्यान।**
**'इथम्भूत'-शब्देर भिन्न अर्थ, 'गुण'-शब्देर आन॥३५॥**

'इथम्भूत'-शब्द का अर्थ—

**'इथम्भूत'- शब्देर अर्थ—पूर्णानन्दमय।**
**जाँर आगे ब्रह्मानन्द तृणप्राय हय॥३६॥**

**३५-३६। प० अनु०—**हे सनातन! अब 'इत्थम्भूतगुणः' शब्द की व्याख्या का श्रवण करो। इसमें से इत्थम्भूत शब्द का एक अर्थ है तथा गुण शब्द का अन्य अर्थ है। इत्थम्भूत शब्द का अर्थ पूर्णानन्दमय है, जिसके आगे ब्रह्मानन्द तृण की भाँति प्रतीत होता है।

हरिभक्तिसुधोदय (१४/३६) में—

**त्वत्साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे।**
**सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्गुरो॥३७॥**

३७। हे जगद्गुरो, मैं आपके स्वरूप का साक्षात्कार प्राप्त करके आह्लादरूप-विशुद्ध समुद्र में अवस्थान कर रहा हूँ। बाकी सब सुख मुझे गोष्पदस्वरूप लग रहे हैं; ब्रह्मलय में जीवों का जो सुख है, वह भी गोष्पदस्वरूप है। गोष्पद में अर्थात् गायों के पदचिह्न से जो गड्ढा होता है, उसमें जो जल रहता है, वह समुद्र की तुलना में अतिक्षुद्र है।

**अनुभाष्य**

३७। आदि, सप्तम परिच्छेद ९८ संख्या द्रष्टव्य है।

अपने रूप माधुर्य के द्वारा सभी को बलपूर्वक वश में करने वाले—

**सर्वाकर्षक, सर्वाह्लादक, महारसायन।**
**आपनार बले करे सर्व-विस्मारण॥३८॥**

**३८। प० अनु०—**पूर्णानन्दमय भगवान् सभी को आकर्षित करने वाले हैं, सभी को ह्लादित (आनन्दित) करने वाले हैं, वे महा रसायन अर्थात् रोग (अनर्थ) को दूर करने के साथ पुष्टि (प्रेम) प्रदान करने वाले हैं। वे अपने बल से सभी को सबकुछ भुलाने के लिये बाधित (मजबूर) कर देने वाले हैं।

कृष्णकृपा के प्रभाव से कैतव-नाश—

**भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-सुख छाड़य जार गन्धे।**
**अलौकिक शक्ति-गुणे कृष्णकृपाय बान्धे॥३९॥**

**शास्त्रयुक्ति नाहि इँहा सिद्धान्त-विचार।**
**एइ स्वभाव-गुणे, जाते माधुर्येर सार॥४०॥**

**३९-४०। प॰ अनु॰—**भगवान् की कृपा की गन्ध मात्र के प्रभाव से भुक्ति-मुक्ति तथा सिद्धि के सुखों की वासना दूर भाग जाती है। भगवान् के गुणों में ऐसी अलौकिक शक्ति है कि वे साधक को कृष्ण की कृपा रूपी रस्सी में बाँध देते हैं। इसमें अर्थात् श्रीकृष्ण की कृपा की प्राप्ति में शास्त्र युक्ति तथा सिद्धान्त के विचार की अपेक्षा नहीं है। श्रीकृष्ण का सभी को आकर्षित करने वाला गुण स्वाभाविक ही हैं, क्योकि वे माधुर्य के सार स्वरूप हैं।

'गुण' शब्द का अर्थ; कृष्ण के अनन्तगुणों का अतुलनीय अमोध प्रभाव—

**'गुण'-शब्देर अर्थ—कृष्णेर गुण अनन्त।**
**सच्चिद्रूपे-गुणे सर्व-पूर्णानन्द॥४१॥**
**ऐश्वर्य-माधुर्य-कारुण्ये स्वरूप-पूर्णता।**
**भक्तवात्सल्ये, आत्मा-पर्यन्त वदान्यता॥४२॥**

**४१-४२। प॰ अनु॰—**गुण शब्द का अर्थ है कि श्रीकृष्ण के अनन्त (असंख्य) गुण हैं। श्रीकृष्ण का रूप एवं उनके गुण सच्चिदानन्द हैं। श्रीकृष्ण का रूप तथा उनके गुण सब कुछ ही पूर्णानन्द स्वरूप अर्थात् सब कुछ ही आनन्द-चिन्मय है। श्रीकृष्ण ऐश्वर्य, माधुर्य, कारूण्य एवं स्वरूप में, समस्त विषयों में ही पूर्णतम हैं। श्रीकृष्ण में भक्त-वात्सल्य का भी परिपूर्णतम विकास है तथा श्रीकृष्ण स्वयं तक को भी दान करने वाले वदान्य हैं।

एक-एक गुण एक-एक भक्त को वशीभूत करने वाला—

**अलौकिक रूप, रस, सौरभादि गुण।**
**कारो मन कोन गुणे करे आकर्षण॥४३॥**

**४३। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण अपने अलौकिक रूप, रस, सौरभ (गन्ध) आदि गुणों में से भिन्न-भिन्न भक्तों के मन को भिन्न-भिन्न गुणों से आकर्षित करते हैं।

चरण कमलों की सुगन्ध से चतुःसन को एवं लीला माधुर्य के द्वारा शुकदेव को आकर्षित करना—

**सनकादिर मन हरिल सौरभादि गुणे।**
**शुकदेवेर मन हरिल लीला-श्रवणे॥४४॥**

**४४। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण ने अपने सौरभ आदि गुण से सनक आदि के मन का हरण किया तथा श्रीव्यासदेव के रूप में अपनी लीला का श्रवण कराके उन्होंने शुकदेव गोस्वामी के मन का हरण किया।

श्रीमद्भागवत (३/१५/४३) में—

**तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-**
**किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।**
**अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां**
**संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥४५॥**

४५। [श्रीब्रह्मा ने कहा—] उन कमल-नेत्र-भगवान् के पदकमल के किञ्जल्क (केसर, चन्दन, अगरु आदिसे) मिश्रित तुलसी की मधुर गन्ध से युक्त वायु ने निर्विशेष-ब्रह्मपरायण चतुःसन की नासिका के छिद्र के माध्यम से अन्दर जाकर उनके चित्त में हर्ष और देह में रोमाञ्च उत्पन्न कर दिया था।

**अनुभाष्य**

४५। मध्य १७ परिच्छेद १४२ संख्या द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भागवत (२/१/९) में—

**परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमःश्लोकलीलया।**
**गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥४६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४६। [श्रीशुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित

से कहा— ] हे राजर्षे, नैर्गुण्य में प्रतिष्ठित होने पर भी श्रीकृष्णलीला के प्रति आकर्षित होकर मैंने श्रीमद्भागवत का पाठ किया था।

**अनुभाष्य**

४६। 'मुमुर्षु (मुक्तिकामी) व्यक्ति के लिये क्या करना उचित है?' परीक्षित के इस प्रश्न का बहुमानन करके श्रील शुकदेव श्रीहरिकीर्त्तन और हरिकथा कीर्त्तनमय श्रीमद्भागवत के माहात्म्य का कीर्त्तन करके श्रीहरि के गुणों के प्रभाव का वर्णन कर रहे हैं—

हे राजर्षे, नैगुण्ये (निर्गुण ब्रह्मणि) परिनिष्ठितः (स्थितधीः) अपि अहं (वैयासकिः), उत्तम श्लोक लीलया (कृष्ण गुण-माधुर्येण) गृहीतचेताः (आकृष्ट-चित्तः सन्) यत् आख्यानं (भागवताख्यम्) अधीतवान्, (तत् ते अभिधास्यामिति परेणान्वयः)।

अङ्गमाधुर्य के द्वारा गोपियों का एवं रूप-गुण-माधुर्य से रुक्मिणी के मन का हरण—

**श्रीअङ्ग-रूपे हरे गोपिकार मन।**
**रूप-गुण-श्रवणे रुक्मिण्यादिर आकर्षण॥४७॥**

**४७। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण ने अपने अङ्गों के रूप-सौन्दर्य से गोपियों के मन का हरण कर लिया तथा श्रीकृष्ण के रूप तथा गुणों के विषय में सुनकर रुक्मिणी आदि का मन उनके प्रति आकर्षित हो गया।

कृष्ण के अङ्ग, मुख और हास्य के माधुर्य से मुग्ध गोपियों द्वारा आत्म-निवेदन—
श्रीमद्भागवत (१०/२९/३९) में—

**वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रि**
**गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।**
**दत्ताभयञ्च भुजदण्डयुगं विलोक्य**
**वक्षः श्रियेकरमणञ्च भवाम दास्यः॥४८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४८। [ गोपियों ने कहा— ] हे कृष्ण, आपका अलकाओं से आवृत मुख, आपके कुण्डलों की शोभा, आपका कपोल-अधर-अमृतयुक्त मन्द हास्य के साथ में देखना, अभय प्रदान करने वाली दो भुजाएँ एवं एकमात्र श्री (श्रीवत्स) द्वारा शोभायमान वक्ष को देखकर ही हम आपकी दासी बनी हैं।

**अनुभाष्य**

४८। ज्योत्स्ना (चाँदनी) से स्नात् शारदीय रात्रि में श्रीकृष्ण की वंशी-ध्वनि से अत्यधिक आकृष्ट गोपवधुएँ आत्महारा (बेसुध) होकर श्रीकृष्ण के समीप उपस्थित हुईं, श्रीकृष्ण ने उनके अनुराग को और भी अधिक वर्धित करने के आशय से उन्हें घर लौट जाने को कहा, श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर कृष्णगतप्राणा (अपने प्राणों को कृष्ण में समर्पित कर देने वाली) गोपियाँ दुःखित होकर रुद्धकण्ठ से गद्‌गद् वचनों से कृष्ण से कह रही हैं,—

(हे पुरुषभूषण,) तव अलकावृतमुखं (केशदामैः आवृतमुख) कुण्डलश्रिगण्डस्थलाधरसुधं (कुण्डलयोः श्रीर्ययो ते गण्डस्थले यस्मिन् अधरे सुधा यस्मिन् तच्च मुख) हसितावलोकं (हसितेन सह अवलोकं यस्मिन् तच्च मुख) वीक्ष्य (दृष्ट्वा) दत्ताभयं (दत्तम् अभयं येन तत्) भुजदण्ड युगं (बाहुद्वय) श्रियैकरमणं (श्रियाः लक्ष्मयाः एकं मुख्यं एव रमणं रतिजनकं तत्) वक्षः च विलोक्य वयं दास्यः एव भवाम्।

कृष्ण के गुणों से आकृष्ट रुक्मिणी का आत्मनिवेदन—
श्रीमद्भागवत (१०/५२/३७) में—

**श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते**
**निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।**
**रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं**
**त्वयच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥४९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

४९। [ श्रीरुक्मिणी देवी ने कहा— ] हे

भुवनसुन्दर, तुम्हारे गुण, श्रवण करने वाले व्यक्तियों के कर्ण के छिद्रों में प्रविष्ट होकर उनके अङ्ग के ताप का नाश करते हैं। नेत्रधारी व्यक्ति को तुम्हारे रूप के दर्शन से अखिलार्थ प्राप्त होता है। हे अच्युत, तुम्हारे उन्हीं समस्त गुणों को श्रवण मेरा हमारा चित निर्लज्ज होकर आपमें प्रवेश कर रहा है।

**अनुभाष्य**

४९। परीक्षित के प्रश्न के उत्तर में श्रीशुक भगवान् श्रीकृष्ण और भीष्मक की पुत्री महालक्ष्मी-स्वरूपिणी श्रीमती रुक्मिणी के परिणय के वृत्तान्त का वर्णन कर रहे हैं। लोगों के मुख से श्रीकृष्ण के सद्‌गुणों का श्रवण करके मन-मन में उन्हें अपने पति के रूप में वरण करने पर भी कृष्णद्वेषी ज्येष्ठ भ्राता रुक्मी, चैद्य-शिशुपाल को उनका वर बनाना चाहता है, ऐसा सुनकर रुक्मिणी ने निर्जन में एक प्रेम पत्र लिखकर एक विश्वसनीय ब्राह्मण को देकर तत्क्षणात् श्रीकृष्ण के निकट भेजा। ब्राह्मण द्वारका में उपस्थित होकर श्रीकृष्ण के द्वारा यथाविधि सत्कार प्राप्त करने के बाद रुक्मिणी के उस प्रेमपत्र को श्रीकृष्ण की अनुमति से पाठ करने लगे—

हे अच्युत, हे भुवनसुन्दर, श्रृण्वतां (श्रोतृवर्गाणा) कर्ण-विवरैः (अन्त प्रविश्य) अङ्गतापं हरतः ते (तव) गुणान्, दृशिमतां (चक्षुष्मता) दृशां (चक्षुषाम्) अखिलार्थलाभं (सर्व सारार्थप्रद) रूपं च श्रुत्वा मे (मम्) चितम् अपत्रपं (अपगता त्रपा यस्मात् तत्, लज्जाविहीनं सत्) त्वयि आविशति (आसज्जते, अनुसन्धान-राहित्येन मग्नं भवति)।

वंशी के गान के द्वारा वे लक्ष्मी को एवं नारायणी और विग्रह के माधुर्य से समस्त कान्ताओं को आकर्षित करना—

**वंशी-गीते हरे कृष्ण लक्ष्म्यादिर मन।**
**योग्य भावे जगतेर जत युवतीर गण॥५०॥**

**५०। प॰ अनु॰—**अपनी वंशी के गीत से श्रीकृष्ण लक्ष्मी आदि के मन का हरण करते हैं तथा वेणु और अपने स्वरूप के माधुर्य से समस्त कान्ताओं को आकर्षित करते हैं।

श्रीमद्भागवत (१०/१६/३६) में—

**कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे**
**तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शधिकारः।**
**यद्वाञ्छयां श्रीर्ललनाऽचरतपो विहाय**
**कामान् सुचिरं धृतव्रता॥५१॥**

५१। [कालिय की पत्नियों ने कहा— ] हे देव, जिनकी चरणरज को प्राप्त करने की वासना से लक्ष्मी ने बहुत समय तक समस्त प्रकार के कार्यों का परित्याग करके दृढ़व्रत धारण करके तपस्या की थी, उस चरणरज को इस कालिय नाग ने किस सुकृति के द्वारा लाभ करने का अधिकार प्राप्त किया, उसे हम नहीं जानती।

**अनुभाष्य**

५१। मध्य अष्टम परिच्छेद १४६ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (१०/२९/४०)—

**का स्त्र्यङ्ग ते कलपदामृतवेणुगीत-**
**सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम्।**
**त्रैलोक्यसौभगमिदञ्च निरीक्ष्य रूपं**
**यद्‌गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यविभ्रन॥५२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५२। [गोपियों ने कहा— ] हे कृष्ण, तुम्हारे कलपदामृत वेणु गीत के द्वारा सम्मोहित होकर त्रिभुवन में कौन सी स्त्री आर्यचरित (धर्म) से विचलित नहीं होती? त्रिभुवन के सौभाग्य स्वरूप तुम्हारे इस रूप को देखकर गैयाएँ, पक्षी, वृक्ष और मृग (हिरण) भी पुलक-धारण किया करते हैं।

**अनुभाष्य**

५२। कौमुदी (चाँदनी) से आप्लावित शारदीय-रात्रि में श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि से आकृष्ट गोपियों के बेसुध होकर श्रीकृष्ण के निकट उपस्थित होने पर कृष्ण ने उनके अनुराग को और भी वर्धित करने के अभिप्राय से उन्हें अपने-अपने घर लौट जाने को कहा, तब कृष्णगत चित्ता गोपियाँ दुःखित होकर रुद्धकण्ठ से गद्गद् वाक्यों से कृष्ण से कह रही हैं,—

हे अङ्ग (कृष्ण), त्रिलोक्यां (त्रिभुवन में) का सा स्त्री (नारी गोपीत्यर्थः),—या ते (तव) कलपदामृत-वेणुगीत-सम्मोहिता (कलानि मधुराणि पदानि यस्मिन् तत् च अमृतं तन्मयम् एव वेणुगीतं तेन, कलपदायतमूर्च्छितनेति पाठे—कलानि पदानि यस्मिन् तत् आयतं दीर्घं मूर्च्छितं स्वरालापभेदः तेन सम्मोहिता (आकृष्टहृदया सती) त्रैलोक्यसौभगं (त्रैलोकस्य उर्द्धाधोमध्यवर्त्तमानस्य यावल्लोकस्य सौभगं मनोहरं तव सुन्दरम्) इदं रुपञ्च—यत् (रूपं दृष्ट्वेत्यर्थ्यः) गोद्विज-द्रुममृगाः (सर्वे स्थावर-जङ्गमजीवाः) पुलकानि अविभ्रन् (अविभरुः), तत्—निरीक्ष्य (दृष्ट्वा) आचार्यचरितात् (निज-निजविधिधर्म्मात्) न चलेत् (भ्रश्येत्)?

वात्सल्य रस में मातृगण को और सख्य-दास्य आदि रस में पुरुषरूपी सखाओं और दासों को आकर्षित करना—

**गुरुतुल्य स्त्रीगणेर वात्सल्ये आकर्षण।**
**दास्य-सख्यादि-भावे पुरुषादि गण॥५३॥**

**५३। प० अनु०—**मातृ तुल्य स्त्रियों को वात्सल्य के द्वारा आकर्षित करते हैं तथा दास्य-सख्य आदि भाव से पुरुषों को आकर्षित करते हैं।

शान्तरस में धाम में स्थित समस्त स्थावर-जङ्गम को आकर्षित करना—

**पक्षी, मृग, वृक्ष, लता, चेतनाचेतन।**
**प्रेमे मत्त करि' आकर्षये कृष्णगुण॥५४॥**

**५४। प० अनु—**श्रीकृष्ण के गुण पक्षी, हिरण, वृक्ष, लता तथा चेतन-अचेतन सभी को प्रेम में मत्त करके आकर्षित कर लेते हैं।

(९) 'हरि'-शब्द का अर्थ; दो प्रकार का हरण-
(क) गौण और (ख) मुख्य लक्षण—

**'हरिः'-शब्दे नानार्थ, दुइ—मुख्यतम।**
**सर्व अमङ्गल हरे, प्रेम दिया हरे मन॥५५॥**

**५५। प० अनु०—**यद्यपि हरि शब्द के अनेक अर्थ है तथापि उनमें से दो मुख्यतम हैं—१) सभी के अमङ्गल का हरण करने वाले को हरि कहते हैं तथा २) प्रेम को प्रदान करके मन का हरण करने वाले को हरि कहते हैं।

(१) जीव के आवरण-रूपी अनर्थ को हरने का गुण—
(क) समस्त प्रकार के तापों का विनाश—

**जैछे तैछे जोहि कोहि करये स्मरण।**
**चारिविध ताप तार करे संहरण॥५६॥**

**५६। प० अनु—**जिस किसी प्रकार से जो कोई भी हरि का स्मरण करता है, हरि उसके चार प्रकार के तापों का सम्पूर्ण रूप से हरण कर लेते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५६। चार प्रकार के ताप,—चार प्रकार के पातकों के ताप—१) पातक, २) उरुपातक, ३) महापातक, ४) अतिपातक।

कृष्णभक्ति—पाप, पापबीज और अविद्या, इन तीन प्रकार के क्लेशों का अन्त करने वाली—
श्रीमद्भागवत (११/१४/१९) में—

**यथाग्निः सुसमृद्धार्च्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।**
**तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवेनांसि कृत्स्नशः॥५७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

५७। [श्रीकृष्ण ने कहा—] हे उद्धव,

प्रज्ज्वलित अग्नि जिस प्रकार समस्त लकड़ी को जलाकर भस्म बना देती है, उसी प्रकार मेरी भक्ति भी जीवों के सब प्रकार के पापों को तत्क्षणात् सम्पूर्णरूप से नष्ट कर देती है।

**अनुभाष्य**

५७। सब प्रकार के श्रेयः साधनों में श्रेष्ठ भक्तियोग के सम्बन्ध में और भी अधिक जानने की इच्छा करने पर भगवान् श्रीउद्धव से कह रहे हैं,—

हे उद्धव, यथा सुसमृद्धार्च्चिः (सुसमृद्धा अर्च्चिः यस्य सः) अग्निः एधांसि (काष्ठानि) भस्मसात् करोति (विनाशयति), तथा मद्विषया भक्तिः कृत्स्नशः (सर्वाणि) एनांसि (पापानि-प्रारब्ध-प्रारब्धानि च विधुनोति)।

(ख) अज्ञान और अविद्या का विनाश; तब फिर कृष्ण की प्रसन्नता की कामना से श्रवण-कीर्त्तन आदि शुद्ध-चित्त में स्वयं प्रकाशित नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम का उदय—

**तबे करे भक्तिबाधक कर्म-अविद्या-नाश।**
**श्रवणाद्येर फल 'प्रेमा' करये प्रकाश॥५८॥**

**५८। प० अनु०—**उसके बाद हरि भक्तिबाधक कर्म तथा अविद्या का नाश करते हैं तथा श्रवण आदि के फल 'प्रेम' को प्रकाशित कर देते हैं।

(२) अनावृत शुद्ध जीव के स्वरूप का प्रेम से आकर्षण—

**निज-गुणे तबे हरे देहेन्द्रिय** मन।
**ऐछे कृपालु कृष्ण, ऐछे ताँर गुण॥५९॥**

**५९। प० अनु०—**उसके बाद हरि अपने गुणों के द्वारा भक्त के देह-इन्द्रियों और मन का हरण कर लेते हैं। श्री कृष्ण ऐसे कृपामय हैं, ऐसे उनके अद्भुत गुण हैं।

हरि अथवा हरिप्रेम चतुर्वर्ग-धिक्कारी और सभी के चित्त को हरण करने वाला—

**चारि पुरुषार्थ छाड़ाय, हरे सबार मन।**
**'हरि'-शब्देर एइ मुख्य कहिलुँ लक्षण॥६०॥**

**६०। प० अनु०—**हरि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों को छुड़ाकर सबके मन का हरण करते हैं। हे सनातन! इस प्रकार मैंने तुम्हें 'हरि' शब्द के मुख्य लक्षण के विषय में बतलाया।

**अनुभाष्य**

६०। भगवान् श्रीहरि जीवों के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षात्मक चार पुरुषार्थों को प्राप्त करने की पिपासा को छुड़ा देते है एवं सभी के मन का हरण करके अपने प्रेम के प्रति आकृष्ट करते हैं।

(१०) च-शब्द और (११) अपि-शब्द के अर्थ—

**'च'-'अपि'—दुइ शब्द ताते 'अव्यय' हय।**
**जेइ अर्थ लागाइये, सेइ अर्थ हय॥६१॥**

च-शब्द के सात और अपि-शब्द के सात अर्थ—

**तथापि च-कारेर कहे मुख्य अर्थ सात।**
**अपि-शब्द मुख्य अर्थ सात विख्यात॥६२॥**

**६१-६२। प० अनु०—**'च' और 'अपि'—इस श्लोक में ये दो शब्द अव्यय हैं। यद्यपि इन दोनों का जिस प्रकार के अर्थ में प्रयोग किया जाता है, इनका वही अर्थ हो जाता है। तथापि च-कार (शब्द) के सात मुख्य अर्थ हैं तथा 'अपि'-शब्द के भी सात प्रसिद्ध मुख्य अर्थ हैं।

च-शब्द का प्रयोगस्थल; प्रमाण—विश्वप्रकाश में—

**चान्वाचये समाहारेऽन्योऽन्यार्थे च समुच्चये।**
**यत्नान्तरे तथा पादपूरणेऽप्यवधारणे॥६३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६३। अन्वाचये अर्थात् अनुगम्यसमूह के अर्थ में, समाहार में, अन्योन्याअर्थ में, समुच्चय में, यत्नान्तर में, पादपूर्ण में और अवधारण में अर्थात् निश्चय अर्थ में 'च'-शब्द का प्रयोग होता है।

अपि-शब्द का प्रयोगस्थल, प्रमाण—
विश्वप्रकाश में—

**अपि सम्भावना-प्रश्न-शङ्का-गर्हा-समुच्चये।**
**तथा युक्त पदार्थेषु कामचारक्रियासु च॥६४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६४। 'अपि' शब्द सम्भावना, प्रश्न, शङ्का, गर्हा, समुच्चय, युक्त पदार्थ, कामचार-क्रिया में व्यवहृत होता है।

यहाँ तक पदों का अर्थ निर्णीत; अब उसके द्वारा श्लोक के अर्थ का निर्णय—

**एइ त' एकादश पदेर अर्थ-निर्णय।**
**एबे श्लोकार्थ करि, यथा जे लागय॥६५॥**

**६५। प० अनु०—**हे सनातन! इस प्रकार मैंने इस श्लोक के ग्यारह पदों के पृथक-पृथक अर्थ को बताया है। अब उनमें से जो पद जिसके साथ उचित लगता है, उसके अनुसार उसे लगाकर मैं सम्पूर्ण श्लोक के अर्थ का वर्णन करता हूँ।

सर्वप्रथम 'आत्माराम' पद के अन्तर्गत 'आत्मा'-शब्द की (१) 'ब्रह्म' अर्थ द्वारा व्याख्या—

**'ब्रह्म'-शब्देर अर्थ—तत्व सर्व-वृहतम्।**
**स्वरूप-ऐश्वर्य करि' नाहि जाँर सम॥६६॥**

**६६। प० अनु०—**आत्माराम पद के आत्मा शब्द के अर्थ को ब्रह्म के रूप में स्वीकार करने पर ब्रह्म शब्द का अर्थ होता है 'सबसे बृहतम् (बड़ा) तत्व'। जिनके स्वरूप और ऐश्वर्य के समान और किसी अन्य का स्वरूप तथा ऐश्वर्य नहीं होता।

ब्रह्म की संज्ञा; शास्त्र-प्रमाण—
विष्णुपुराण (१/१२/५७)—

**बृहत्वादवृहरणत्वाच्च तदब्रह्म परमं विदुः।**
**तस्मै नमस्ते सर्वात्मन् योगिचिन्तयाविकारवत्॥६७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६७। बृहत्त्व-प्रयुक्त, ब्रहणत्व अर्थात् वृद्धिकार-कत्व-प्रयुक्त उस तत्त्व को 'परमब्रह्म' कहते हैं। हे सर्वात्मन्, योगिचिन्तयाविकारी जो आप हैं, आपको प्रणाम है।

**अनुभाष्य**

६७। बुधाः, बृहत्वाद् (सर्वव्यापकत्वात्) वृहंणत्वाच्च (सम्वर्द्धकत्वात्, पोषकत्वात् वा) तत् परमं ब्रह्म विदुः (जानन्ति); हे सर्वात्मन्, ते (तव) योगिचिन्त्याविकारवत् (सुरिजनमोहनं स्वरूप) तस्मैः नमः।

आत्मा-शब्द का आततत्त्व ही ब्रह्मत्व—
श्रीमद्भागवत (११/२/४५) श्लोक की व्याख्या में श्रीधरस्वामि-उद्धृत तन्त्र-वाक्य—

**आततत्वाच्च मातृत्वादात्मा हि परमो हरिः॥६८॥**

६८। विस्तृतत्व और परिमातृत्व-प्रयुक्त हरि ही परमात्मा हैं।

**अनुभाष्य**

६८। आतत्वात् (सर्वव्यापकत्वात्) मातृत्वात् (सर्वप्रसवितृत्वात्) च हरिः हिः परमः आत्मा।

'ब्रह्म'-शब्द की अभिधा-वृत्ति से
पूर्ण-प्रतीतिमय भगवान्—

**सेइ 'ब्रह्म'-शब्दे कहे स्वयं भगवान्।**
**अद्वितीय-ज्ञान, जाँहा बिना नाहि आन॥६९॥**

**६९। प० अनु०—**उस ब्रह्म शब्द का अर्थ है स्वयं भगवान् कृष्ण। उनके बिना अद्वितीय-ज्ञान अन्य किसी में भी नहीं है।

शास्त्र-प्रमाण—
श्रीमद्भागवत (१/२/११) में—

**वदन्ति ततत्त्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।**
**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते॥७०॥**

७०। तत्त्वविदगण अद्वयज्ञान को तत्त्व कहते हैं। उसी अद्वयज्ञान की प्रथम प्रतीति—ब्रह्म, द्वितीय प्रतीति—परमात्मा और तृतीय प्रतीति—भगवान् हैं।

### अनुभाष्य

७०। आदि, द्वितीय परिच्छेद ११ संख्या द्रष्टव्य।

कृष्ण ही स्वयं भगवान् और त्रिकालसत्य वस्तु—

**सेइ अद्वय-तत्व कृष्ण—स्वयं भगवान्।**
**तिनकाले सत्य तिंहो—शास्त्र-प्रमाण॥७१॥**

**७१। प० अनु०—**वह अद्वय-तत्व कृष्ण स्वयं भगवान् है। वे भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान—इन तीनों कालों में सत्य हैं, इस विषय में शास्त्र ही प्रमाण है।

सृष्टि से पहले और बाद में कृष्ण का नित्य अधिष्ठान—
श्रीमद्भागवत (२/९/३२) में—

**अहमेवासमेवाग्रे नान्यदयत् सदसत्परम्।**
**पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत् सोऽस्म्यहम्॥७२॥**

७२। इस जगत् की सृष्टि होने से पहले केवल मैं ही था। सत्, असत् और अनिर्वचनीय निर्विशेष ब्रह्म तक अन्य कुछ भी मुझ से पृथक्‌रूप से विद्यमान नहीं था। सृष्टि होने के उपरान्त इन सभी स्वरूपों में मैं ही विराजित हूँ तथा सृष्टि का लय होने के पश्चात् केवल मैं ही अवशिष्ट रहूँगा।

### अनुभाष्य

७२। आदि, प्रथम परिच्छेद ५३ संख्या द्रष्टव्य।

आत्मा-शब्द का अर्थ
विभु कृष्ण—

**'आत्मा'-शब्दे कहे कृष्ण बृहत्व स्वरूप।**
**सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी, परमस्वरूप॥७३॥**

**७३। प० अनु०—**आत्मा शब्द बृहत्व स्वरूप श्रीकृष्ण का सूचक है। वे सर्वव्यापक, सबके साक्षी तथा परम स्वरूप से युक्त हैं।

श्रीमद्भागवत (११/२/४५) श्लोक की व्याख्या में श्रीधरस्वामि-उद्धृत तन्त्र-वचन—

**आततत्वाच्च मातृत्वादात्मा हि परमो हरिः॥७४॥**

७४। विस्तृतत्व और परिमातृत्व-प्रयुक्त हरि ही परमात्मा हैं।

### अनुभाष्य

७४। मध्य, चौबीस परिच्छेद, ६८ संख्या द्रष्टव्य।

तीन प्रकार के अभिधेय में कृष्ण की तीन प्रकार की प्रतीति—(१) ब्रह्म, (२) परमात्मा और (३) भगवान्—

**सेइ कृष्णप्राप्ति-हेतु त्रिविध 'साधन'।**
**ज्ञान, योग, भक्ति,—तिनेर पृथक् लक्षण॥७५॥**
**तिन साधने भगवान् तिन स्वरूपे भासे।**
**ब्रह्म, परमात्मा, भगवत्ता—त्रिविध-प्रकाशे॥७६॥**

**७५-७६। प० अनु०—**ज्ञान, योग तथा भक्ति—ये तीन प्रकार के साधन उन श्रीकृष्ण की प्राप्ति के कारण स्वरूप हैं तथा तीनों के पृथक-पृथक लक्षण हैं। तीन प्रकार के भिन्न-भिन्न साधनों के अनुरूप भगवान् ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्—इन तीन भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकाशित होते हैं।

श्रीमद्भागवत (१/२/११) में—

**वदन्ति ततत्त्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।**
**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥७७॥**

७७। तत्त्वविदगण अद्वयज्ञान को तत्त्व कहते हैं। उसी अद्वयज्ञान की प्रथम प्रतीति—ब्रह्म, द्वितीय प्रतीति—परमात्मा और तृतीय प्रतीति—भगवान् हैं।

**अनुभाष्य**

७७। आदि द्वितीय परिच्छेद, ११ संख्या द्रष्टव्य।

**'ब्रह्म-आत्मा'-शब्दे यदि कृष्णेरे कहय।**
**'रुढ़ि-वृत्त्ये' निर्विशेष अन्तर्यामी कय॥७८॥**

**७८। प० अनु०—**यद्यपि ब्रह्म तथा आत्मा शब्द श्रीकृष्ण के सूचक हैं तथापि इन शब्दों का रूढ़िवृत्ति [ शब्द की प्रत्यक्ष अथवा प्रचलित प्रतीति ] से अर्थ क्रमशः निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी (परमात्मा) सूचित होता है।

ज्ञान मार्ग में चिन्मात्र ब्रह्म, योगमार्ग में सचिन्मय परमात्म-प्रतीति—

**ज्ञानमार्गे—निर्विशेष-ब्रह्म प्रकाशे।**
**योगमार्गे—अन्तर्यामी-स्वरूपेते भासे॥७९॥**

**७९। प० अनु०—**ज्ञानमार्ग के साधकों के समक्ष निर्विशेष-ब्रह्म स्परूप ही प्रकाशित होता है तथा योगमार्ग के साधकों के समक्ष अन्तर्यामी-परमात्मा के स्वरूप में ही प्रतीत होते हैं।

दो प्रकार की भक्ति (रागमयी और वैधी) के द्वारा दो प्रकार के भगवद्-स्वरूप (स्वयं कृष्ण और उनके प्रकाश) की प्राप्ति—

**रागभक्ति, विधिभक्ति हय दुइरुप।**
**'स्वयं-भगवान्', 'भगवान्'—दुइत' स्वरूप॥८०॥**

**८०। प० अनु०—**रागानुगा-भक्ति तथा विधि-भक्ति—इन दो प्रकार की भक्ति के साधकों के समक्ष वह तत्व क्रमशः स्वयं भगवान् तथा भगवान्—इन दो स्वरूपों में प्रकाशित होता है।

रागानुगा-भक्ति की सिद्धि होने पर व्रज में व्रजेन्द्रनन्दन, वैधी भक्ति की सिद्धि होने पर वैकुण्ठ में नारायण का दास्य—

**रागभक्त्ये व्रजे स्वयं-भगवाने पाय।**
**विधिभक्त्ये पार्षद-देहे वैकुण्ठके जाय॥८१॥**

**८१। प० अनु०—**रागानुगा-भक्ति के पालन से साधक को व्रज में स्वयं भगवान् की प्राप्ति होती है तथा विधिभक्ति के पालन से वह पार्षद-देह प्राप्त करके वैकुण्ठ में जाता है।

श्रीमद्भागवत (१०/९/२१) में—

**नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।**
**ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥८२॥**

८२। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा— ] यशोदा के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण भक्ति करने वाले देहधारियों के लिये जिस प्रकार सुलभ है, आत्मभूत ज्ञानियों के लिये वैसे नहीं।

**अनुभाष्य**

८२। मध्य अष्टम परिच्छेद २२७ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (३/१५/२५) में—

**यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृष भानुवृत्या**
**दूरे-यमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः।**
**भर्त्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुराग-**
**वैक्लव्यवाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः॥८३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८३। परस्पर कृष्णकथा के वर्णन में जो अनुराग-वैक्लव्य से उत्पन्न वाष्य-कला के द्वारा पुलकित अङ्ग वाले हैं, वे देवादि-देव कृष्ण के अनुसरण से यम-नियम आदि को दूर में फैंककर मेरे ऊपरिभाग में स्पृहाशील होकर वैकुण्ठ में गमन करते हैं।

**अनुभाष्य**

८३। व्यास-सखा श्रीमैत्रेय ऋषि श्रीविदुर के समक्ष, दिति के गर्भ से भयभीत देवताओं के निकट ब्रह्मा के द्वारा दिति के गर्भ में स्थित दो असुरों के आदि वृत्तान्त को बतलाते हुए चतु:सन आदि के वैकुण्ठ-गमन के उपाख्यान के वर्णन के प्रसङ्ग में वैकुण्ठ के माहात्म्य का कीर्त्तन कर रहे हैं,—

अनिमिषां (कालानधीनानां देवानाम्) ऋषभानु-वृत्त्या (ऋषभस्य श्रेष्ठस्य श्रीहरेः अनुवृत्त्या अनुसरणेन) दूरे-यमाः (दूरे यमः येषां ते, यद्वा, दूरीकृतयमनियमाः) स्पृहणीयशीलाः (स्पृहणीयं कारुण्यादि शीलं येषां ते) भर्त्तुः (हरेः) सुयशसः (सुमङ्गल लीलागुणस्य) मिथः (परस्पर) कथानुरागवैक्लव्यवाष्पकलया (कथने वर्णने यः अनुरागः, तेन वैक्लव्य वैवश्यः तेन वाष्पकला अश्रुबिन्दुः तया सह) पुलकीकृताङ्गाः (पुलकीकृतं रोमाञ्चितम् अङ्गं येषां ते तथाभूताः) च नः (अस्माकम्) उपरि (उपरिस्थित) यत् च वैकुण्ठं, (व्रजन्ति) (गच्छन्ति तत् विकुण्ठमुपेत्य मुनयः परां मुदयापुरिति परेणान्वयः)।

तीन प्रकार के उपासक—

**सेइ उपासक हय त्रिविध प्रकार।**
**अकाम, मोक्षकाम, सर्वकाम आर॥८४॥**

**८४। प० अनु०—**उपासक (साधक) भी अकाम (किसी भी प्रकार की कामना से रहित), सर्वकाम (सब प्रकार की कामनाओं से युक्त) तथा मोक्षकाम (मोक्ष की कामना से युक्त) के भेद से तीन प्रकार के होते हैं।

श्रीमद्भागवत (२/३/१०) में—

**अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।**
**तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम॥८५॥**

८५। पहले अकाम अर्थात् किसी भी प्रकार की कामना से रहित ही हो, सर्वकाम अर्थात् सब प्रकार की कामनाओं से युक्त ही हो अथवा मोक्ष की कामना करने वाला ही क्यों न हो, उदार बुद्धि होने मात्र से ही मनुष्य तीव्र शुद्धभक्तियोग से परमपुरुष कृष्ण का भजन करेंगे।

**अनुभाष्य**

८५। मध्य, बाईस परिच्छेद ३६ संख्या द्रष्टव्य।

'उदारधी' शब्द का अर्थ—

**बुद्धिमान्-अर्थे—यदि 'विचारज्ञ' हय।**
**निज-काम लागिह तबे कृष्णेरे भजय॥८६॥**

**८६। प० अनु०—**उपरोक्त श्लोक में बुद्धिमान (उदारधीः) पद का अर्थ यदि विचारज्ञ अर्थात् विचार ग्रहण करने के योग्य ग्रहण किया जाये, तब तो वह अपनी कामनाओं की पूर्त्ति के उद्देश्य से भी श्रीकृष्ण का ही भजन करेगा।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

८६। इस श्लोक में यदि उदारधी अर्थात्-बुद्धिमान् विचारज्ञ हों, तो फिर कामना-वासना के रहने पर भी कृष्ण का भजन ही करना।

सब प्रकार का साधन ही भक्ति-सापेक्ष,
भक्ति ही केवल निरपेक्ष—

**भक्ति बिना कोन साधन दिते नारे फल।**
**सब फल देय भक्ति स्वतन्त्र प्रबल॥८७॥**

**८७। प० अनु०—**भक्ति के बिना कोई भी साधन फल प्रदान नहीं कर सकता, किन्तु भक्ति अन्यान्य साधनों की अपेक्षा से रहित स्वतन्त्र तथा बहुत अधिक बलशाली है।

भक्ति के आश्रय के बिना अन्य साधन, सभी निष्फल—

**अजागलस्तन-न्याय अन्य साधन।**
**अतएव हरि भजे बुद्धिमान् जन॥८८॥**

**८८। प० अनु०—**जिस प्रकार बकरे के गले के पास लटकते स्तन (मांस के पिण्ड) दूध देने में असमर्थ होते हैं, उसी प्रकार भक्ति के अलावा अन्य समस्त साधन भी किसी फल को प्रदान करने में समर्थ नहीं है। अतएव बुद्धिमान व्यक्ति भगवान् हरि का ही भजन करता है।

### अनुभाष्य

८८। भक्ति के अलावा अन्य प्रकार के साधन—नितान्त निष्फल हैं, कभी भी फल प्रसव नहीं कर सकते; क्योंकि बकरे के गले में लटके हुए स्तन जिस प्रकार दूध नहीं दे सकते, केवलमात्र अनभिज्ञ लोगों के मिथ्या (झूठ-मूठ के) भ्रम का ही विषय होते हैं, उसी प्रकार भक्ति के अलावा ज्ञान और कर्म के साधन का कोई फल नहीं होता।

बुभुक्षु और मुमुक्षु के भेद से चार प्रकार के अनर्थों से युक्त सुकृत; वैसा होने पर भी ये चार प्रकार की कामनाएँ निष्काम भक्ति का कारण नहीं—
श्रीमद्भगवदगीता (७/१६) में—

**चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।**
**आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥८९॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

८९। [ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— ] हे अर्जुन, आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकार के लोग भक्ति-उन्मुखी सुकृतिवान् होने पर, उन-उन कामों का परित्याग करके मेरा भजन करते हैं।

### अनुभाष्य

८९। हे अर्जुन, हे भरतर्षभ, सुकृतिनः (वर्णाश्रमाचारलक्षण-धर्मपराः) जनाः मां भजन्ते; ते च चतुर्विधाः—आर्त्तः (क्लिष्टः आपद् ग्रस्तः—गजेन्द्रादिः), जिज्ञासुः (आत्मस्वरुप ज्ञानेच्छुः—शौनकादिः), अर्थार्थी (सुखसम्पदिच्छुः ध्रुवादि,—एते सकामाः), ज्ञानी (लब्धबोधः—शुकादिः, अयं तु निष्कामः) च।

आर्त्त और अर्थार्थी—बुभुक्षु; जिज्ञासु और ज्ञानी—मुमुक्षु—

**आर्त्त, अर्थार्थी,—दुइ सकाम-भितरे गणि।**
**जिज्ञासु, ज्ञानी,—दुइ मोक्षकामी मानि॥९०॥**

**९०। प० अनु०—**उपरोक्त श्लोक में आर्त्त और अर्थार्थी को सकाम भक्त तथा जिज्ञासु और ज्ञानी—इन दोनों को मोक्ष की कामना करने वाला मानता हूँ।

चार प्रकार की कामनाओं को छोड़ने से ही शुद्धभक्ति को प्राप्त करने की योग्यता—

**एइ चारि सुकृति हय महाभाग्यवान्।**
**ततत्त कामादि छाड़ि', हय शुद्धभक्तिमान्॥९१॥**

**९१। प० अनु०—**यदि उपरोक्त चारों सुकृतिशाली व्यक्ति अत्यधिक सौभाग्यशाली होते हैं, तब वे अपनी-अपनी कामनाओं को छोड़कर शुद्धभक्ति का पालन करने वाले बन जाते हैं।

चार प्रकार की कामनाएँ ही दुःसङ्ग, साधु, गुरु-कृष्ण की कृपा से दुःसङ्ग का मोचन (दूर होना)—

**साधुसङ्ग-कृपा किम्बा कृष्णेर कृपाय।**
**कामादि 'दुःसङ्ग' छाड़ि' शुद्धभक्ति पाय॥९२॥**

**९२। प० अनु०—**साधुओं के सङ्ग तथा उनकी कृपा या फिर कृष्ण की कृपा से वे कामनाओं रूपी दुःसङ्ग को छोड़कर शुद्धभक्ति प्राप्त करते हैं।

सत्सङ्ग का प्रभाव—
श्रीमद्भागवत (१/१०/११) में—

**सत्सङ्गान्मुक्त-दुःसङ्गो हातुं नोऽसहते बुधः।**
**कीर्त्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम्॥९३॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

९३। [श्रीसूत गोस्वामी ने कहा—] सत्सङ्ग के क्रम से दुःसङ्ग का परित्याग करके पण्डित-व्यक्ति भगवान् के कीर्त्तिमान, रुचिकर यश को एकबार सुनकर उन्हें कभी भी परित्याग नहीं कर सकते।

### अनुभाष्य

९३। धर्मराज युधिष्ठिर का राज्य-अभिषेक करने के बाद कुछेक मास हस्तिनापुर में रहने के बाद श्रीकृष्ण के द्वारा द्वारका जाने के अभिलाषी होकर कुरु-पाण्डव कुल के स्त्री-पुरुष सभी को यथाविधि यथायोग्य अभिवादन करके उनसे विदायी लेकर रथ पर आरोहण करने पर, शौनकादि ऋषियों के समक्ष श्रीसूत उनके कृष्ण-विरह में अधैर्य के प्रसङ्ग में साधुओं के सङ्ग के माधुर्य के विषय में बतला रहे हैं,—

सत्सङ्गात (कृष्णभक्तसङ्गात् हेतोः) मुक्तदुःसङ्गः (मुक्तः त्यक्तः ज्ञानकर्मान्याभिलाषविषयः पुत्रादि-विषयो वा दुःसङ्गो येन सः) बुधः (सुधीः) कीर्त्त्य-मानम् (उच्चार्यमाणं) यस्य (श्रीकृष्णस्य) रोचनं (रुचिकर) यशं सकृतं आकर्ण्य (श्रुत्वा) हातुं (सत्-सङ्गत्युक्तु) न उत्सहते, तस्य विरहं पार्थाः कथं सहेरन्निति: परेणान्वयः)।

दुःसङ्ग का अर्थ—

**'दुःसङ्ग' कहिये—'कैतव',—'आत्मवञ्चना'।**
**कृष्ण, कृष्ण भक्ति बिना अन्य कामना॥९४॥**

**९४। प० अनु०—**श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्ण भक्ति के अलावा अन्य कामनाओं को हृदय में रखना ही कैतव (कपटता) तथा आत्म-वञ्चना है। इसी को दुःसङ्ग कहते हैं।

### अनुभाष्य

९४। छलना से युक्त आत्म-वञ्चक ही 'दुःसङ्ग' हैं। कृष्णकाम और कृष्णभक्ति की कामना के अलावा अन्य समस्त कामनाएँ ही 'दुःसङ्ग' हैं।

श्रीमद्भागवत (१/१/२) में—

**धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां**
**वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।**
**श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवा परेरीश्वरः**
**सद्यो हृद्यवरुद्ध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रुषाभिस्तत्क्षणात्॥९५॥**

९५। यह श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ आदि काल में महामुनि श्रीनारायण द्वारा चतुःश्लोकी के रूप में निर्मित हुआ था। इसमें निर्मत्सर अर्थात् सभी जीवों के प्रति दयावान् व्यक्तियों के लिये धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष से भी श्रेष्ठ कैतव-रहित परम धर्म वर्णन हुआ है। यह धर्म जीवों के तीन प्रकार के तापों का नाश करने वाला, शिवद (मङ्गलप्रद) और वास्तववस्तु के तत्त्व-ज्ञान को प्रदान करने वाला है। श्रीमद्भागवत का श्रवण करने के इच्छुक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ईश्वर को अपने हृदय में अवरुद्ध करने में समर्थ होते हैं। इसलिए श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्यशास्त्रों का क्या प्रयोजन है?

### अनुभाष्य

९५। आदि, प्रथम परिच्छेद ९१ संख्या द्रष्टव्य।

'कैतव' के सम्बन्ध में श्रीधरस्वामिपाद की व्याख्या—

**'प्र'-शब्दे—मोक्षवाञ्छा कैतवप्रधान।**
एइ श्लोके श्रीधरस्वामी करियाछेन **व्याख्यान॥९६॥**

**९६। प० अनु०—**उपरोक्त श्लोक का 'प्र'-शब्द सूचित करता है कि मोक्ष की कामना ही प्रधान कैतव कपटता है। इस श्लोक की टीका में श्रीधरस्वामी ने ऐसी व्याख्या की है।

**सकाम-भक्ते 'अज्ञ' जानि' दयालु भगवान्।**
**स्व-चरण दिया करे इच्छार पिधान॥९७॥**

**९७। प० अनु०—**सकाम भक्त को अज्ञ (मूर्ख)

जानकर दयालु भगवान उसे अपने श्रीचरण प्रदान करके उनकी इच्छा को आच्छादित कर देते हैं अर्थात् सर्वोत्तम इच्छा को उसके हृदय में जगाकर अन्यान्य क्षुद्र इच्छाओं को बहुत छोटा प्रतीत करा देते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९७। इच्छार पिधान—इच्छा का आच्छादन होना।

श्रीमद्भागवत (५/१९/२६) में—

**सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां**
**नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः।**
**स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-**
**मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥९८॥**

९८। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा— ] कृष्ण प्रार्थना किये जाने पर मनुष्यों की प्रार्थना को पूर्ण करते हैं, यह बात सत्य है, परन्तु जिस अर्थ (द्रव्य) से बार-बार प्रार्थना का उदय होता है, वह उस अर्थ को नहीं देते। अन्यकामी होकर जो केवल उनके पादपल्लव की प्राप्त करने की इच्छा नहीं करने पर भी उनका भजन करता है, वे स्वयं ही अन्यान्य कामनाओं को शान्त कर देने वाले अपने उन्हीं चरणकमलों को दिया करते हैं।

**अनुभाष्य**

९८। मध्य, बाईस परिच्छेद ४० संख्या द्रष्टव्य।

शुद्धभक्त के सङ्ग, सेवा और कृष्णकृपा से ही अनर्थ-निवृत्ति और सिद्धि की प्राप्ति—

**साधुसङ्ग, कृष्णकृपा, भक्तिर स्वभाव।**
**ए तिने सब छाड़ाय, करे कृष्णे 'भाव'॥९९॥**

**९९। प० अनु०—**साधुसङ्ग, कृष्ण की कृपा तथा कृष्ण भक्ति (सेवा) का स्वभाव ही ऐसा है कि ये तीनों अन्य सब वस्तुओं को छुड़ाकर कृष्ण के प्रति भाव को उत्पन्न कर देते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९९। अकाम, सर्वकाम, और मोक्षकाम,—ये तीन प्रकार के व्यक्ति उन-उन कामनाओं के दोष को छोड़कर कृष्ण के प्रति शुद्धभक्ति करते हैं।

**अनुभाष्य**

९९। ए तिन (ये तीन)—कृष्ण भक्तों का सङ्ग, कृष्णकृपा एवं कृष्णभक्ति। ये कृष्ण के अभक्तों का सङ्ग, माया के द्वारा प्रदान किये गये समस्त सौभाग्य एवं अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान और योग-प्रवृत्ति आदि सबकुछ छुड़ाकर 'कृष्ण' के प्रति भाव उत्पन्न करते हैं।

बाद की सभी व्याख्याओं में यही जानने योग्य—

**आगे जत जत अर्थ व्याख्यान करिब।**
**कृष्णगुणास्वादेर एइ हेतु जानिब॥१००॥**

**१००। प० अनु०—**आगे मैं आत्माराम श्लोक के जितने-जितने अर्थों की व्याख्या करूँगा, हे सनातन, तुम उन्हें श्रीकृष्ण के गुणों का आस्वादन करने का कारण समझना।

**श्लोक व्याख्या लागि' एइ करिलुँ आभास।**
**एबे करि श्लोकेर मूलार्थ प्रकाश॥१०१॥**

**१०१। प० अनु०—**आत्माराम श्लोक की व्याख्या करने के लिये मैंने अब तक उसकी भूमिका बनायी है, अब मैं उसके मुख्य अर्थ को प्रकाशित कर रहा हूँ।

ज्ञानियों के दो प्रकार के विभेद—

**ज्ञानमार्गे उपासक—दुइ त' प्रकार।**
**केवल-ब्रह्मोपासक, मोक्षाकाङ्क्षी आर॥१०२॥**

(१) केवल-ब्रह्मज्ञानी तीन प्रकार के—

**केवल ब्रह्मोपासक तिन भेद हय।**
**साधक, ब्रह्ममय, आर प्राप्त-ब्रह्मलय॥१०३॥**

भक्ति के आश्रित ज्ञान के साधन से ही साधक का ब्रह्मभूत होना—

**भक्ति बिना केवल ज्ञाने 'मुक्ति' नाहि हय।**
**भक्ति साधन करे जेइ 'प्राप्त-ब्रह्मलय'॥१०४॥**

वास्तव-वस्तु के आनुगत्य में अथवा भक्तिफल से ही 'ब्राह्मणत्व' एवं सेवा के संयोग से ही 'वैष्णवत्व'—

**भक्तिर स्वभाव,—ब्रह्म हैते करे आकर्षण।**
**दिव्य देह दिया कराय कृष्णेर भजन॥१०५॥**

वैष्णव होने पर ही कृष्ण की सेवा का अनुष्ठान—

**भक्तदेह पाइले हय गुणेर स्मरण।**
**गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन॥१०६॥**

**१०२-१०६। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१०२-१०६।** ज्ञान मार्ग के उपासक केवल-ब्रह्मोपासक और मोक्षकाङ्क्षी के भेद से दो प्रकार के हैं। कैवल्य की वासना से ब्रह्म की उपासना करने पर 'केवल-ब्रह्मोपासक' होते हैं। उनकी तीन अवस्थाएँ—साधक, (नित्यसिद्ध) ब्रह्ममय और ब्रह्मलय-प्राप्त (अर्थात् ब्रह्मभूत) हैं। भक्ति के बिना ज्ञान मुक्ति नहीं दे सकता। जो व्यक्ति ब्रह्मलयप्राप्त (अर्थात् ब्रह्मभूत हो गया है), वह भक्तिसाधन कर सकता है। भक्ति के साधन के उपस्थित होने पर भक्ति का स्वभाव उपस्थित होता है। उस स्वभाव के क्रम से भक्ति (उन्हें) ब्रह्म से आकर्षण करके दिव्यदेह देकर कृष्णभजन कराती है। भक्त के मनोनीत उपास्य देह प्राप्त होने पर कृष्ण के सभी गुणों का स्मरण होता है एवं उन गुणों के प्रति आकृष्ट होकर निर्मल भजन करते हैं।

मुक्तगणों की भी अप्राकृत सिद्ध देह में भगवत्-सेवा—श्रीमद्भागवत (१०/८७/२१) श्लोक में श्रीधर-उद्धृत सर्वज्ञ भाष्यकार व्याख्या और नृसिंहतापनी (२/५/१६) में—

**मुक्ता अपि लीलया विग्रहं**
**कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥१०७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**१०७।** मुक्तगण भी लीला में विग्रह बनाकर (देह प्राप्त करके) भगवान् का भजन करते हैं।

ब्रह्ममय शुक और चतुःसन आदि भी कृष्ण के प्रति आकृष्ट होकर कृष्ण भजन में रत—

**जन्म हैते शुक-सनकादि 'ब्रह्ममय'।**
**कृष्णगुणाकृष्ट हञा कृष्णेरे भजय॥१०८॥**

**१०८। प० अनु०—**जन्म से ही श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा सनक आदि चार कुमार 'ब्रह्ममय' थे, किन्तु बाद में उन्होंने श्रीकृष्ण के गुणों से आकृष्ट होकर कृष्ण का भजन किया।

चतुःसनादि कृष्ण चरण की गन्ध से आकृष्ट होकर शुद्धभक्ति में रत—

**सनकाद्येर कृष्णकृपाय सौरभे हरे मन।**
**गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन॥१०९॥**

**१०९। प० अनु०—**श्रीकृष्ण की कृपा से श्रीसनक आदि के मन को कृष्ण की सौरभ (सुगन्धि) ने हरण कर लिया था तथा उन्होंने भी श्रीकृष्ण के गुणों से आकृष्ट होकर उनका शुद्ध भजन किया था।

श्रीमद्भागवत (३/१५/४३) में—

**तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द**
**किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।**
**अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां**
**संक्षोभमक्षरजुषामपि चिततन्वोः॥११०॥**

११०। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा— ] उन

कमल-नेत्र-भगवान् के पदकमल के किञ्जल्क (केसर, चन्दन, अगरु आदिसे) मिश्रित तुलसी की मधुर गन्ध से युक्त वायु ने निर्विशेष-ब्रह्मपरायण चतुःसन की नासिका के छिद्र के माध्यम से अन्दर जाकर उनके चित्त में हर्ष और देह में रोमाञ्च उत्पन्न कर दिया था।

**अनुभाष्य**

११०। मध्य, सतरह परिच्छेद १४२ संख्या द्रष्टव्य।

व्यास की कृपा से उनके शिष्य शुक कृष्णलीला के प्रति आकृष्ट होकर शुद्ध भक्ति में रत—

**व्यासकृपाय शुकदेवेर लीलादि-स्मरण।**
**कृष्णगुणाकृष्ट हञा करेन भजन॥१११॥**

**१११। प० अनु०—**श्रीव्यासदेव की कृपा से श्रीशुकदेव को श्रीकृष्ण की लीला आदि का स्मरण हुआ था। श्रीशुकदेव ने भी श्रीकृष्ण के गुणों से आकृष्ट होकर उनका भजन किया था।

कृष्ण के गुणों के प्रति आकृष्ट होकर श्रौतपन्थी शुक का व्यास के निकट भागवत-अध्ययन—
श्रीमद्भागवत (१/७/११) में—

**हरेर्गुणक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः।**
**अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजन प्रियः॥११२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११२। [ श्रीसूत गोस्वामी ने कहा— ] हरि के गुणों में आक्षिप्त मति होकर वैष्णवप्रिय भगवान् शुकदेव ने इस महद्-आख्यान का अध्ययन किया था।

**अनुभाष्य**

**११२।** 'निवृत्ति-में निरत, सर्वत्र-उपेक्षाशील, आत्माराम ब्रह्मज्ञानी श्रीशुकदेव ने किस कारण इस श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया था?'—शौनक के इस प्रश्न के उत्तर में श्रीसूत उसके कारण का वर्णन कर रहे हैं,—

नित्यं विष्णुजनप्रियः (विष्णुजनाः प्रियाः यस्य सः) भगवान् बादरायणिः (वैयासकिः श्रीशुकः) हरेः गुणक्षिप्तमतिः (गुणेन आक्षिप्ता मतिः यस्य सः हरिगुणानुवादाकृष्टचित्तः सन्) महादाख्यानम् (इदं श्री भागवतं महापुराणम्) अध्यगात् (अधीतवान्)।

श्रौतपन्थी ब्रह्मज्ञानी नव-योगेन्द्रों का कृष्णगुण के श्रवण से कृष्णभजन—

**नव-योगीश्वर जन्म हैते 'साधक'-ज्ञानी।**
**विधि-शिव-नारद-मुखे कृष्णगुण शुनि'॥११३॥**
**गुणाकृष्ट हञा करे कृष्णेर भजन।**
**एकादश-स्कन्धे ताँर भक्ति-विवरण॥११४॥**

**११३-११४। प० अनु०—**नवयोगेन्द्र जन्म से ही 'साधक' ब्रह्मज्ञानी थे, उन्होंने ब्रह्मा-शिव-नारद के मुख से श्रीकृष्ण के गुणों के विषय में श्रवण किया, तब श्रीकृष्ण के गुणों के प्रति आकर्षित होकर उन्होंने श्रीकृष्ण का भजन किया। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में उनकी भक्ति का विवरण प्राप्त होता है।

शास्त्र-प्रमाण—
भक्तिरसामृतसिन्धु (३/१/२०) में उद्धृत महोपनिषद्-वाक्य—

**अक्लेशां कमलभुवः प्रविश्य गोष्ठीं**
**कुर्वन्तः श्रुतिशिरसां श्रुतिं श्रुतज्ञाः।**
**उत्तुङ्गं यदुपुरसङ्गमाय रङ्गं**
**योगीन्द्राः पुलक भूतो नवाप्यवापुः॥११५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**११५।** ब्रह्मा की कष्ट रहित सभा में प्रवेश करके नवयोगेन्द्र उपनिषत् श्रवण करके श्रुतज्ञ और पुलकधारी होकर यदुपुरी द्वारका में जाने के लिये रङ्गक्षेत्र को प्राप्त हुए थे।

### अनुभाष्य

११५। श्रुतज्ञाः (वेदकुशलाः) नवयोगीन्द्राः (जायन्तेयाः) कमलभूवः (पद्मयोनेः) अक्लेशां (क्लेशवर्जिता) गोष्ठीं (सभा) प्रविश्य, श्रुतिशिरसाम् (उपनिषदा) श्रुतिं (श्रवण) कुर्वन्तः अपि यदुपुर-सङ्गमाय (द्वारकां गन्तुमित्यर्थः) पुलकभृतः (रोमाञ्चितदेहाः सन्तः) उत्तुङ्गम् (अत्युच्च) रङ्ग (रङ्गक्षेत्रम्) अवापुः (प्राप्तवन्तः)।

(२) मोक्ष-अङ्काक्षी के तीन प्रकार के भेद—

**मोक्षाङ्काक्षी ज्ञानी हय तिनप्रकार।**
**मुमुक्षु, जीवन्मुक्त, प्राप्तस्वरूप आर॥११६॥**

**११६। प० अनु०—**मोक्ष की अङ्काक्षा करने वाले ज्ञानी तीन प्रकार के होते हैं—१) मुमुक्षु, २) जीवन्मुक्त तथा ३) प्राप्त-स्वरूप।

(क) मुमुक्षु विषयी व्यक्तियों का भक्ति के आश्रय में कृष्णभजन—

**'मुमुक्षु' जगते अनेक संसारी जन।**
**'मुक्ति' लागि' भक्त्ये करे कृष्णेर भजन॥११७॥**

**११७। प० अनु०—**जगत में अनेक संसारी व्यक्ति मुमुक्षु (मोक्ष की अङ्काक्षा) करने वाले हैं। मुक्ति के लिये वे भक्ति पूर्वक श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

श्रीमद्भागवत (१/२/२६) में—

**मुमुक्षवो धोररुपान हित्वा भूतपतीनथ।**
**नारायण-कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयरः॥११८॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

११८। मुमुक्षु व्यक्ति घोर रूपी भूतपतियों को परित्यागकर, किन्तु उनके प्रति असूया (अहिंसा)-रहित होकर नारायण की सभी कलाओं का भजन करते हैं।

### अनुभाष्य

११८। निःश्रेय सार्थी बुद्धिमान ही अधोक्षज विष्णु अथवा उनके अवतारों एवं सकाम अशान्त समशील उपासक ही विष्णु के अलावा अन्य देवताओं की उपासना करते हैं, यही श्रीसूत गोस्वामी शौनकादि ऋषियों को बतला रहे हैं,—

ननु अन्यानपि केचिद्भजन्तो दृश्यन्ते? सत्यं, मुमुक्षवस्तु अन्यान् न भजन्ति, किन्तु सकामा एवेत्याह,—अथ (अतएव) घोररुपान् (भीषणाकृतीन्) भूतपतीन् (पितृभूतप्रजेशादीन्) हित्वा (त्यक्त्वा) मुमुक्षवः (निःश्रेयसार्थिनः ज्ञानिनः), अनसूयवः (अहिंस्रव्रताः देवतान्तरानिन्दकाः) शान्ताः (निष्कामाः सन्तः) नारायणकलाः (नारायणस्य अंशावतारान्) हि भजन्ति।

साधुसङ्ग में मुमुक्षा-त्याग—

**सेइ सबेर साधुसङ्गे गुण स्फुराय।**
**कृष्णभजन कराय, 'मुमुक्षा' छाड़ाय॥११९॥**

**११९। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

११९। चतुःसन और शुकदेव की ब्रह्मण्यता एवं नवयोगेन्द्रों के साधकत्व को दिखलाकर, 'मुमुक्षु', 'जीवन्मुक्त' और 'प्राप्त-स्वरूप'—इस प्रकार के तीन प्रकार के मोक्षाङ्काक्षी ज्ञानियों की बात का विचार करके सर्वप्रथम मुमुक्षुजनों की कथा कह रहे हैं; वे मुमुक्षुगण साधुसङ्ग में भगवान् के गुणों की स्फूर्ति हेतु मुमुक्षा को छोड़कर कृष्ण का भजन करते हैं।

सत्सङ्ग के गुण और महिमा—
भक्तिरसामृतसिन्धु (३/२/२७) में उद्धृत हरिभक्ति-सुधोदय के वचन—

**अहो महात्मन् बहुदोषदुष्टोऽप्येकेन**
**भात्येष भवो गुणेन।**
**सत्सङ्गमाख्येन सुखावहेन**
**कृताद्य नो येन कृशा मुमुक्षा॥१२०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२०। हे महात्मन्, इस भवसंसार में बहुत दोष रहने पर भी साधुसङ्ग रूपी एक महागुण है। उसी एक नित्यकल्याणप्रद गुण के द्वारा आज हमारी मुक्ति की वाञ्छा दुर्बल हो गयी है।

**अनुभाष्य**

१२०। हे महात्मन्, अहो एष भवः (मानवजन्म) बहुदोष-दुष्टः (अशेषदोषाकरभूतः) अपि सुखावहेन (अर्थदेन, नित्य-कल्याण-प्रदेन) सत्सङ्गमाख्येन (साधुसङ्गनाम्ना) एकेन गुणेन भाति (दीप्यति), येन (गुणेन) अद्यः नः (अस्माक) मुमुक्षा (मोक्षवाञ्छा) कृशा कृता (क्षयीभूता भवति)।

जिज्ञासु मुमुक्षु शौनक-आदि का शुद्धभक्त के सङ्ग से मुमुक्षा का त्याग—

**नारदेर(?) सङ्गे शौनकादि मुनिगण।**
**मुमुक्षा छाड़िया कैला कृष्णेर भजन॥१२१॥**

**१२१। प॰ अनु॰—**श्रीनारद के संग से शौनक आदि मुनियों ने मुक्ति की वाञ्छा को त्याग करके श्रीकृष्ण का भजन किया।

कभी तो कृष्ण के दर्शन से, कभी कृष्ण की कृपा से मुमुक्षा का त्याग और शुद्धभक्ति की प्राप्ति—

**कृष्णेर दर्शने, कारो कृष्णेर कृपाय।**
**मुमुक्षा छाड़िया गुणे भजे ताँर पा'य॥१२२॥**

**१२२। प॰ अनु॰—**किसी ने श्रीकृष्ण के दर्शन करके तथा किसी ने श्रीकृष्ण की कृपा से मोक्ष की वाञ्छा को छोड़कर उनके गुणों के प्रति आकर्षित होकर उनके श्रीचरणों का भजन किया।

शुद्ध कृष्ण भक्ति प्राप्त करने पर पूर्व में आचरित ज्ञान के प्रयास के कारण खेद—
भक्तिरसामृतसिन्धु (३/१/३४)—

**अस्मिन् सुखघनमूर्तौ परमात्मनि**
**वृष्णिपत्तने स्फुरति।**
**आत्मारामतया मे वृथा गतो**
**वत चिरं कालः॥१२३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२३। इस वृष्णिपत्तन द्वारका में चित्सुख घनमूर्त्ति कृष्ण के स्फुरित होने पर मेरा सुख उदित हुआ। हाय, आत्मारामता का अवलम्बन करते हुए मेरे अनेक दिन वृथा चले गये हैं।

**अनुभाष्य**

१२३। वत (खेदे) वृष्णिपत्तने (द्वारकानगर्यां) सुखघनमूर्त्तौ (चित्सुखघनविग्रहे) परमात्मनि अस्मिन् (श्रीकृष्णे) स्फुरति सति आत्मारामतया (निर्विशेष-ब्रह्मानुशीलनेन)चिरं मे (मम) कालः वृथा गतः (हृतः)।

(ख) दो प्रकार के जीवन्मुक्त—

**'जीवन्मुक्त' अनेक, सेइ दुइ भेद जानि।**
**'भक्त्ये जीवन्मुक्त', 'ज्ञाने जीवन्मुक्त' मानि॥१२४॥**

**१२४। प॰ अनु॰—**जीवन्मुक्त अनेक हैं, उनमें दो श्रेणियाँ हैं। एक प्रकार के जीवन्युक्त तो भक्तिमिश्रित ज्ञान की उपासना से जीवन्मुक्त होते हैं तथा दूसरी प्रकार के भक्ति की सहायता के बिना केवल ज्ञान की उपासना करते है तथा स्वयं को जीवन्मुक्त मानते हैं, किन्तु वास्तव में वे होते नहीं।

भक्ति के फल से जीवन्मुक्त अवरोहपन्थी भक्त को कृष्णसेवानन्द की प्राप्ति, ज्ञान के फल से आरोहपन्थी मुक्ताभिमानी की अधोगति—

**'भक्त्ये जीवन्मुक्त' गुणाकृष्ट हञा भजे।**
**'शुष्कज्ञाने जीवन्मुक्त' अपराधे अधो मजे॥१२५॥**

**१२५। प॰ अनु॰—**जो भक्ति की सहायता से जीवन्मुक्त होते हैं, वही श्रीकृष्ण के गुणों के प्रति आकृष्ट होकर उनका भजन करते हैं तथा केवल ज्ञान की उपासना करके स्वयं को जीवन्मुक्त

माननेवाले अपराध के कारण अधोपतित होते हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२५। अपराधे अधो मजे—शुष्कज्ञान से उत्पन्न जीवन्मुक्त (अभिमानी)-गण अपराधवशतः अधःपतित होकर मजे अर्थात् नष्ट हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवत (१०/२/३२) में—

**येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-**
**स्त्वय्यस्तभावाद विशुद्धबुद्धयः।**
**आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः**
**पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥१२६॥**

१२६। [ब्रह्मा आदि देवताओं ने कहा—] हे अरविन्दाक्ष, जो 'विमुक्त हो गया हूँ' ऐसा कहकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिरहित होने के कारण अविशुद्ध (अपवित्र) बुद्धि वाले हैं। वे अत्यधिक कष्ट करके माया से अतीत परमपद ब्रह्म पर्यन्त आरोहण करके भी भगवद् भक्ति के अनादर के कारण अधःपतित होते हैं।

**अनुभाष्य**

१२६। मध्य, द्वाविंश परिच्छेद ३० संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भगवद्गीता (१८/५४) में—

**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।**
**समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥१२७॥**

१२७। गीता में कहा गया है,—अभेद ब्रह्मवाद रूपी ज्ञान चर्चा द्वारा स्वयं प्रसन्नात्मा, शोक और वांछा रहित तथा सभी जीवों में समभाव युक्त ब्रह्मणता प्राप्त करने के बाद मेरी पराभक्ति की प्राप्ति होती है। तात्पर्य यह है कि, पहले कर्ममिश्रा भक्ति का उल्लेख हुआ था, उसकी अपेक्षा ज्ञानमिश्रा भक्ति श्रेष्ठ है।

**अनुभाष्य**

१२७। मध्य, अष्टम परिच्छेद ६५ संख्या द्रष्टव्य।

भक्तिरसामृतसिन्धु (३/१/४४) में उद्धृत बिल्वमङ्गल वाक्य—

**अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः**
**स्वानन्दसिंहासनलब्धदीक्षाः।**
**शठेन केनापि वयं हठेन**
**दासीकृता गोपवधूविटेन॥१२८॥**

१२८। अद्वैत मार्ग के पथिकों के द्वारा उपास्य, और आत्मानन्द-सिंहासन से दीक्षा प्राप्त करने पर भी मैं किसी गोपवधू-लम्पट शठ द्वारा हठता पूर्वक दासी के रूप में परिणत हो गया हूँ।

**अनुभाष्य**

१२८। मध्य, दशम परिच्छेद १७८ संख्या द्रष्टव्य।

(ग) स्वरूप को प्राप्त करने वाले भक्तों के द्वारा चिदानन्द देह से कृष्णभजन—

**भक्तिबले 'प्राप्तस्वरूप' दिव्यदेह पाय।**
**कृष्णगुणाकृष्ट हञा भजे कृष्ण-पा'य॥१२९॥**

**१२९। प० अनु०**—प्राप्त स्वरूप (स्वरूप की उपलब्धि करने वाला) भक्त भक्ति के बल से दिव्य देह को प्राप्त करता है तथा श्रीकृष्ण के गुणों के प्रति आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण के चरणों का भजन करता है।

दस प्रकार के लक्षणों में से निरोध और मुक्ति का लक्षण—
श्रीमद्भागवत (२/१०/६) में—

**निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः।**
**मुक्तिर्हित्वान्यथारुपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः॥१३०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३०। [श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—] शक्तिगण के साथ आत्मा के अनुशयन को जीव का 'निरोध' कहा जाता है। अन्य प्रकार के रूप का परित्यागकर स्व-स्वरूप में व्यवस्थिति (विशेष रूप से अवस्थान) का नाम ही 'मुक्ति' है।

**अनुभाष्य**

१३०। परीक्षित के समक्ष श्रीशुकदेव सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, उति, मन्वन्तर, ईशकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय,—महापुराण के इन दस लक्षणों को ही दशम-पदार्थ आश्रय स्वरूप भगवान के विशुद्धतत्त्वज्ञान के उद्देश्य से वर्णन करते हुए इस श्लोक में उसके अन्तर्गत निरोध और मुक्ति के स्वरूप के अथवा लक्षण के विषय में बतला रहे हैं,—

श्रीहरेः योगनिद्राम, अनु (पश्चात्) अस्य आत्मनः (जीवस्य) शक्तिभिः (स्वापाधिभिः) शयनं (लयः) निरोधः (इति स्मृतः); तथा अन्यथा रूपं (अविद्यया अध्यस्तं कर्त्तृत्वादि) हित्वा (त्यक्त्वा) स्वरुपेण (भगवद्दास्ये शुद्धजीव स्वरूपेण) व्यवस्थितिः (विशेषेण अवस्थानं स्वरूप-साक्षात्कार इत्यर्थ एव) 'मुक्तिः'।

मायारूपी भोगवाञ्छा में कृष्ण-विमुखता, कृष्ण की सेवा से अथवा कृष्ण-उन्मुखता से माया से मुक्ति—

**कृष्ण-बहिर्मुखता-दोष माया हैते हय।**
**कृष्णोन्मुखी मुक्ति हैते माया-मुक्ति हय॥१३१॥**

**१३१। प॰ अनु॰—**माया के कारण ही कृष्ण-बहिर्मुखता रूपी दोष उत्पन्न होता है तथा कृष्ण-उन्मुखी मुक्ति से ही माया से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

श्रीमद्भागवत (११/२/३७) में—

**भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशा-**
**दपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।**
**तन्माययातो बुध आभजेत्तं**
**भक्त्येकयेशं गुरुदेवतात्मा॥१३२॥**

१३२। कृष्ण से हटकर जो माया है, उसमें अभिनिविष्ट जीव में 'भय' उपस्थित होता है एवं उन ईश्वर से बहिर्मुख होने के कारण माया से उत्पन्न विपरीत स्मृति; इसी कारण पण्डित व्यक्ति गुरु को 'देवता' और 'आत्म' स्वरूप मानकर अनन्य भक्ति के साथ उन परमेश्वर का भजन करेगें।

**अनुभाष्य**

१३२। मध्य, विंश परिच्छेद ११९ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भगवद्गीता (७/१४) में—

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥१३३॥**

१३३। इस त्रिगुणमयी मेरी माया से अत्यन्त कष्टपूर्वक पार हुआ जाता है; मुझमें जो शरणागत होता है, केवल वही इस माया से पार हो सकता है।

**अनुभाष्य**

१३३। मध्य, विंश परिच्छेद १२१ संख्या द्रष्टव्य।

भक्ति के प्रभाव से ही मुक्ति एवं
मुक्त होने पर कृष्ण भक्ति—

**भक्ति बिना मुक्ति नाहि, भक्त्ये मुक्ति हय।**
**भक्त्ये मुक्ति पाइले अवश्य कृष्ण भजय॥१३४॥**

**१३४। प॰ अनु॰—**भक्ति के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती, भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त होती है। जो भक्ति के बल पर मुक्ति प्राप्त करते हैं, वे अवश्य ही श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

श्रीमद्भागवत (१०/१४/४) में—

**श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो**
**क्लिशयन्ति ये केवल-बोधलब्ध्ये।**
**तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते**
**नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥१३५॥**

१३५। [ श्रीब्रह्मा ने कहा— ] हे विभो, तुम्हारे प्रति की गयी भक्ति ही श्रेयः पथ है, उसे परित्याग करके जो सब व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये अर्थात्, 'मैं ब्रह्म' हूँ, इसी को ही स्थिर रूप में जानने के लिये अनेक प्रकार के कष्ट स्वीकार करते हैं, स्थूल-भूसी पीसने वालों को जिस प्रकार चावल नहीं मिलते, उसी प्रकार, उन्हें अन्त में कष्टमात्र ही प्राप्त होता है, और कुछ भी नहीं।

**अनुभाष्य**

१३५। मध्य द्वाविंश परिच्छेद २२ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (१०/२/३२) में—

**येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्य-**
**स्तभावादविशुद्ध बुद्धयः।**
**आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं**
**ततः पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः॥१३६॥**

१३६। हे अरविन्दाक्ष, जो 'विमुक्त हो गया हूँ' ऐसा कहकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिरहित होने के कारण अविशुद्ध (अपवित्र) बुद्धि वाले हैं। वे अत्यधिक कष्ट करके माया से अतीत परमपद ब्रह्म पर्यन्त आरोहण करके भी भगवद् भक्ति के अनादर के कारण अधःपतित होते हैं।

**अनुभाष्य**

१३६। मध्य, द्वाविंश परिच्छेद ३० संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (११/५/३) में—

**य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्।**
**न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥१३७॥**

१३७। चारों वर्णाश्रमियों में से जो अपने प्रभु भगवान् विष्णु का साक्षात् भजन नहीं करके, अपने-अपने वर्णाश्रम के अहङ्कार के कारण उनके भजन में अवज्ञा करते हैं, वे अपने स्थान से भ्रष्ट होकर अधःपतित हो जाते हैं।

**अनुभाष्य**

१३७। मध्य, द्वाविंश परिच्छेद २८ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (१०/८७/२१) श्लोक में श्रीधरउद्धृत सर्वज्ञ भाष्यकार की व्याख्या और नृसिंहतापनी (२/५/१६) में—

**मुक्ता अपि लीलया विग्रहं**
**कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥१३८॥**

१३८। मुक्तगण भी लीला में विग्रह बनाकर अर्थात् देह प्राप्त करके भगवान् का भजन करते हैं।

**अनुभाष्य**

१३८। मध्य, चतुर्विंश परिच्छेद १०७ संख्या द्रष्टव्य।

पूर्वोक्त छह प्रकार के आत्मारामों का कृष्णभजन—

**एइ छह आत्माराम कृष्णेरे भजय।**
**पृथक-पृथक च-कारे इहा 'अपि' र अर्थ कय॥१३९॥**

**१३९। प॰ अनु॰—**केवल-ब्रह्मोपासकों में—१) साधक-आत्माराम, २) ब्रह्मामय-आत्माराम, ३) प्राप्त-ब्रह्मलय-आत्माराम और मोक्ष की अङ्काक्षा करने वालों में, ४) मुमुक्षु-आत्माराम, ५) भक्ति द्वारा जीवन्मुक्त-आत्माराम तथा ६) प्राप्त-स्वरूप-आत्माराम—ये छह के छह आत्माराम श्रीकृष्ण का

भजन करते हैं। आत्माराम शब्द के छह प्रकार के अर्थों में च-कार का अर्थ यहाँ 'अपि' ही ग्रहण किया गया है अर्थात् आत्माराम-शब्द के प्रत्येक अर्थ के साथ अपि-अर्थवाचक 'च'-शब्द का पृथक-पृथक योग करना है यथा साधक-आत्मा-रामाश्च, ब्रह्ममय-आत्मारामाश्च इत्यादि सभी आत्माराम होने पर भी श्रीकृष्ण की अहैतुकी भक्ति करते हैं, मुनि होने के कारण इन सबकी कृष्ण का मनन करने में आसक्ति होती है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३९। छय आत्माराम—साधक, ब्रह्ममय और प्राप्त ब्रह्मलय एवं मुमुक्षु, जीवन्मुक्त और प्राप्त स्वरूप,—ये छय प्रकार के 'आत्माराम' हैं।

आत्माराम, मुनि और निर्ग्रन्थ
व्यक्तियों का कृष्णभजन—

**''आत्मारामाश्च अपि'' करे कृष्णे अहैतुकी भक्ति।**
**''मुनयः सन्तः'' इति कृष्णमनने आसक्ति॥१४०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४०। ''मुनयः सन्तः'' इति कृष्णमनन में आसक्ति—आत्मारामगण 'मुनि' बनकर कृष्णमनन में आसक्त होते हैं।

**''निर्ग्रन्थाः''—अविद्याहीन, केह—विधिहीन।**
**जाँहा जेइ युक्त, सेइ अर्थेर अधीन॥१४१॥**

**१४१। प० अनु०—**उपरोक्त आत्मारामों के सम्बन्ध में निर्ग्रन्थ शब्द के अविद्याहीन तथा विधिहीन—यह दो अर्थ प्रयुक्त हो सकते हैं। उनमें से जिनके साथ इन दोनों में से जो अर्थ उपयुक्त हैं, वही प्रयोग किया जाना चाहिए।

अन्य एक प्रकार का अर्थ—

**च-शब्दे करि यदि 'इतरेतर' अर्थ।**
**आर एक अर्थ कहे परम समर्थ॥१४२॥**

**१४२। प० अनु०—**उपरोक्त छह प्रकार के अर्थों के अतिरिक्त 'च' शब्द का 'इतरेतर' समास के अनुसार अर्थ करने से आत्माराम श्लोक का अन्य एक परम समर्थ (उपयुक्त) अर्थ निकलता है।

**''आत्मारामाश्च आत्मारामाश्च'' करि बार छय।**
**पञ्च आत्माराम, छये च-कारे लुप्त हय॥१४३॥**
**एक 'आत्मारामः'-शब्दे अवशेष रहे।**
**एक 'आत्मारामः'-शब्दे छयजन कहे॥१४४॥**

**१४३-१४४।। प० अनु०—**छह प्रकार के आत्माराम की बात कही गयी है। उन छह प्रकार के आत्माराम के अर्थों में छह आत्माराम-शब्द इतरेतर समास में आबद्ध होने पर पहले वाले पाँच आत्माराम अन्तिम वाले आत्माराम में 'च' कार के कारण लोप हो (समा) जाते हैं। (संस्कृत व्याकरण के इस नियम के अनुसार) अन्त में एक 'आत्मारामः' ही रहता है तथा वही छहों आत्मारामों की सूचना प्रदान करता है।

दृष्टान्त—(विश्वप्रकाश में एवं पाणिनि में १/२/६४ और सिद्धान्त कौमुदी में अजन्त पुल्लिङ्ग शब्द के प्रकरण में)—

**''स्वरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ-**
**उक्तार्थानामप्रयोगः।''**
**रामश्च रामश्च**
**रामश्च रामा इतिवत्॥१४५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४५। समान रूप युक्त बहुत से शब्द रहने पर एकशेष और एक विभक्ति में जिनका अर्थ उक्त होता है, वहाँ एकस्वरूप को रखकर अन्य सब स्वरूपों का अप्रयोग होता है, यथा,—'रामश्च, रामश्च, रामश्च,—इसके स्थान पर एक 'रामाः' शब्द का प्रयोग होता है।

**तबे जे च-कार, सेइ 'समुच्चय' कय।**
**''आत्मारामाश्च मुनयश्च'' कृष्णेरे भजय॥१४६॥**

**१४६। प॰ अनु॰—**आत्माराम श्लोक में 'च'-कार 'समुच्चय' (समस्त) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् 'आत्मारामाश्च मुनयः'-इस पद का अर्थ होगा-'आत्मारामाश्च मुनयश्च'। जिसके अनुसार अर्थ होगा कि सभी आत्मारामगण तथा सभी मुनिगण—ये सभी श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

सात प्रकार के अर्थ—

**''निर्ग्रन्था अपि' र एइ 'अपि'—सम्भावने।**
**एइ सात अर्थ प्रथमे करिलुँ व्याख्याने॥१४७॥**

**१४७। प॰ अनु॰—**आत्माराम श्लोक में प्रयुक्त 'निर्ग्रन्था अपि' पद के 'अपि' शब्द का अर्थ यहाँ 'सम्भावना' है अर्थात् उन मुनिगणों में से कोई निर्ग्रन्था हैं और ऐसी भी सम्भावना हो सकती हैं कि कोई शास्त्र-विधि-हीन हों, तथापि वे सब निर्ग्रन्थ कृष्ण भजन करते हैं। इस प्रकार अब तक मैंने तुम्हें आत्माराम श्लोक के सात अर्थ बतलाये हैं।

परमात्मनिष्ठ दो प्रकार के आत्माराम—

**अन्तर्यामि-उपासके 'आत्माराम' कय।**
**सेइ आत्माराम योगीर दुइ भेद हय॥१४८॥**

**१४८। प॰ अनु॰—**अन्तर्यामी परमात्मा के उपासकों को भी आत्माराम कहते हैं। उन आत्माराम योगियों के भी दो भेद हैं।

(१) सगर्भ-योगी और (२) निगर्भ-योगी, दोनों ही तीन प्रकार के—

**सगर्भ, निगर्भ,—एइ हय दुइ भेद।**
**एक एक तिन भेदे छय विभेद॥१४९॥**

**१४९। प॰ अनु॰—**वे दो भेद—सगर्भ तथा निगर्भ है। पुनः इन दोनों के तीन-तीन भेद हैं, इस प्रकार कुल मिलाकर उनके छह विभेद हैं।

### अनुभाष्य

१४९। सगर्भ योगी,—जो उपास्य के रूप-ध्यान आदि का अवलम्बन करने वाले योगी हैं; एवं निगर्भ-योगी,— शून्यध्यानादि परायण अवलम्बन रहित योगी। इनके छह प्रकार के विभेद,—१) सगर्भ-योगारुरुक्षु, २) निगर्भ-योगारुरुक्षु, ३) सगर्भ-योगारूढ़, ४) निगर्भ-योगारूढ़, ५) सगर्भ-प्राप्त-सिद्धि, ६) निगर्भ-प्राप्तसिद्धि।

तृतीय पुरुष क्षीरोदशायी का ध्यान—
श्रीमद्भागवत (२/२/८) में—

**केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे**
**प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।**
**चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं**
**धारणया स्मरन्ति॥१५०॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१५०। [श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—] कोई-कोई योगी अपनी देह में स्थित हृदय में प्रादेशमात्र चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी पुरुष का धारणा के द्वारा स्मरण किया करता है,—यही 'सगर्भ' योगी का लक्षण है।

### अनुभाष्य

१५०। परीक्षित के समक्ष श्रीशुकदेव स्थूल जगत् के विषय-भोगों की निन्दापूर्वक उनसे निवृत्त वैराज-धारणा-निष्ठ योगी की बात बतलाकर उनसे श्रेष्ठ व्यष्टयन्तर्यामी चिद्घनरूप-ध्यानकारी योगी की बात बतला रहे हैं,—

केचित् (विरलाः) स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे (स्वेदहस्य निज-शरीरस्य अन्तः मध्ये यत् हृदयं तत्र यः अवकाशः तस्मिन्) वसन्तम् (अन्तर्यामितया कृतवास) प्रादेशमात्रं (अंगुष्ठतर्जन्यो-र्विस्तारः सः एव मात्रा प्रमाणं यस्य—तस्मिन् प्रादेश प्रमाण हृदये ध्येयत्वात्, तावन्मात्रप्रदेशेऽप्यचिन्त्यशक्तया पञ्चदशवर्षीय पुरुषाकार प्रमाणं) चतुर्भुजं

कञ्जरथाङ्ग-शङ्खगदाधरं (पद्म-चक्र-शङ्ख गदा-धारिणं) पुरुषं (क्षीरोदशायिनं तृतीयं) धारणया स्मरन्ति।

ध्यानयोग मिश्रा भक्ति में सिद्धि की प्राप्ति—
श्रीमद्भागवत (३/२८/३४) में—

**एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो**
**भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात्।**
**उत्कण्ठ्यवाष्पकलया मुहुरर्द्दयमान-**
**स्तच्चापि चितबड़िशं शनकैर्वियुङ्क्ते॥१५१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५१। [भगवान् श्रीकपिलदेव ने कहा—] इस प्रकार भगवान् श्रीहरि के प्रति भाव प्राप्त करके भक्ति के द्वारा हृदय के द्रवीभूत एवं आनन्द से भर जाने के कारण पुलक आदि उत्पन्न होते हैं, चित्त उत्कण्ठा के कारण आनन्द-अश्रु के द्वारा मुहुर्महुः क्रीड़ा करते हुए आनन्द में निमज्जित हुआ करता है; तब मछली को पकड़ने वाले काँटे की भाँति ध्यानयुक्त चित्त (ध्येय वस्तु की धारणा से) थोड़ा-थोड़ा करके मन के निग्रह बाहर फैंक देता है,—यही 'निगर्भ' योगी का उदाहरण है।

**अनुभाष्य**

१५१। शरणागत देवहूति को भगवान् श्री कपिलदेव निगर्भ योगी के लिये श्रीभगवान् की अप्राकृत श्रीमूर्त्ति के प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग के ध्यान की कर्त्तव्यता का उपदेश प्रदान करके ध्यान के फल मन-के निग्रह की बात बतला रहे हैं,—

एवं (ध्यानपथेन) भगवति हरौ प्रतिलब्धभावः (प्रतिलब्धः भावः प्रेमा येन सः) भक्त्या (श्रद्धया) द्रवहृदयः (द्रवत् आर्द्रीभवत् हृदयं यस्य सः) प्रमोदात् (हर्षप्रकर्षात्) उत्पुलकः (उद्गतानि पुलकानि यस्य सः रोमाञ्चितदेहः) उत्कण्ठावाष्पकलया (उत्कण्ठेन प्रवृत्तयः अश्रुकलया) मुहुः (पुनः पुनः) अदर्द्यमानः (आनन्दसत्प्लवे निमज्जमानः) च तत् अपि चितबड़िशं (दुर्ग्रहस्य भगवतः ग्रहणे बड़िशं मत्स्यवेधनम् इव उपायभूतं चित्तम् अपि) शनकैः (क्रमशः ध्येय-वस्तुनः) वियुङ्क्ते (तद्धारणे शिथिल-प्रयत्नः भवति)।

(क) आरुरुक्षु, (ख) आरुढ़ और (ग) प्राप्तसिद्धि के भेद से तीन प्रकार के योगी—

**'योगारुरुक्षु', 'योगारुढ़', 'प्राप्तसिद्धि' आर।**
**एइ तिन भेदे हय छय प्रकार॥१५२॥**

**१५२। प० अनु०—**सगर्भ योगारुरुक्षु, सगर्भ योगारुढ़ और सगर्भ प्राप्तसिद्धि तथा निगर्भ योगा-रुरुक्षु, निगर्भ योगारूढ़ और निगर्भ प्राप्तसिद्धि—सगर्भ और निगर्भ उपरोक्त इन तीन भेदों से कुल मिलाकर छह प्रकार के होते हैं।

शास्त्र प्रमाण—
श्रीमद्भगवद् गीता (६/३-४) में—

**आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।**
**योगारुढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥१५३॥**
**यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषजते।**
**सर्वसङ्कल्पसन्यासी योगारुढ़स्तदोच्यते॥१५४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५३-१५४। जिनकी योग में आरोहण करने की इच्छा है, वह 'आरुरुक्षु' है; उस आरुरुक्षु मुनि का यम, नियम, आसन और प्राणायाम रूप कर्म ही 'कारण' है। योगारुढ़ व्यक्ति का ध्यान-धारणा-प्रत्याहार रूप श्रम ही 'कारण' है। इन्द्रियों के उद्देश्य से कर्म में जब आसक्ति नहीं रहती, तब सभी सङ्कल्प परित्याग करके योगी 'समाधि'-से युक्त अथवा 'योगारुढ़' होते हैं।

**अनुभाष्य**

१५३। योगं (ज्ञानयोग) आरुरुक्षोः (प्राप्तु-मिच्छोः) मुनेः (तदारोहे) कर्म कारणं (साधनम्) उच्यते; योगारुढ़स्य (ज्ञानयोगमारुढ़स्य तु) तस्य

(ज्ञाननिष्ठस्य) एव शमः (ज्ञानपरिपाके समाधिश्चित्त-विक्षेपकर्मोपरमः) कारणम् उच्यते।

१५४। यदा हि इन्द्रियार्थेषु (इन्द्रिय भोग्येषु शब्दादिषु तत् साधनेषु च) कर्मसु न अनुषज्जते (आसक्तिं न करोति), तदा सर्वसङ्कल्पसन्यासी (सर्वान् भोगविषयान् कर्मविषयान् च आसक्तिमूल-भूतान् सङ्कल्पान् सन्यसितुं शीलं यस्य सः) योगारुढ़ (मुक्तः) उच्यते।

छह प्रकार के योगियों का साधुसङ्ग में योगमार्ग का त्याग और कृष्णभक्ति की प्राप्ति—

**एइ छय योगी साधुसङ्गादि-हेतु पाञा।**
**कृष्ण भजे कृष्णगुणे आकृष्ट हञा॥१५५॥**
**च-शब्दे 'अपि' र अर्थ इँहाओ कहय।**
**'मुनि', 'निर्ग्रन्थ'-शब्देर पूर्ववत् अर्थ हय॥१५६॥**

**१५५-१५६। प० अनु०—**यह छह प्रकार के योगी साधुसङ्ग आदि हेतु को प्राप्त करके श्रीकृष्ण के गुणों के प्रति आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण का भजन करते हैं। यहाँ भी 'च'-शब्द का अर्थ 'अपि' ही होता है तथा 'मुनि' और निर्ग्रन्थ शब्दों का अर्थ भी पूर्ववत् ही होगा।

यहाँ तक तेंरह प्रकार का अर्थ—

**'उरुक्रमे' 'अहैतुकी काँहा कोन अर्थ।**
**एइ तेर अर्थ कहिलुँ परम समर्थ॥१५७॥**
**एइ सब शान्त जबे भजे भगवान्।**
**'शान्त' भक्त करि' तबे कहि ताँर नाम॥१५८॥**

**१५७-१५८। प० अनु०—**उरुक्रम और अहैतुकी का अर्थ भी पूर्ववत् ही होगा। हे सनातन! इस प्रकार मैंने तुम्हें इस आत्माराम के तेरह अत्यन्त बलशाली अर्थ बतलाएँ हैं। उपरोक्त समस्त आत्मारामगण जब भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करते हैं, तब इन्हें शान्त भक्त कहा जाता है।

**अनुभाष्य**

१५७। यह तेरह,—१) साधक, २) ब्रह्ममय, ३) प्राप्तब्रह्मलय, ४) मुमुक्षु, ५) जीवन्मुक्त, ६) प्राप्तस्वरूप,—यह छह आत्माराम, एवं ७) निर्ग्रन्थमुनि, ८) सगर्भ-योगारुरुक्षु, ९) निगर्भ-योगारुरुक्षु, १०) सगर्भ-योगारुढ़, ११) निगर्भ-योगारुढ़, १२) सगर्भ-प्राप्त सिद्धि, १३) निगर्भ-प्राप्तसिद्धि।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१५८। एइ सब शान्त जबे भजे—ये सब योगी जब शान्तरस में आरुढ़ होकर भजन करते हैं, [ तब उन्हें शान्त भक्त कहा जाता है। ]

'आत्मारामाः'-पद के अन्तर्गत आत्मा-शब्द की (३) 'मन' अर्थ के द्वारा व्याख्या—

**'आत्मा' शब्दे 'मन' कह—मने जेइ रमे।**
**साधुसङ्गे सेइ भजे श्रीकृष्णचरणे॥१५९॥**

**१५९। प० अनु०—**आत्मा शब्द के अर्थ मन को स्वीकार करने पर आत्माराम का अर्थ होगा—जो मन में रमण करता है। ऐसा व्यक्ति भी साधुसङ्ग में श्रीकृष्ण के चरणों का भजन करता है।

मन का निग्रह करने वाले को परमपद की प्राप्ति—श्रीमद्भागवत (१०/८७/१८)—

**उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः**
**परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्।**
**तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं**
**पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे॥१६०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६०। [ आदि ऋषि श्रीनारायण ने कहा— ] (ऋषियों के सम्प्रदाय मार्ग में) जो कर्मयोग से उदर अर्थात् मणिपुर में स्थित ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे (अर्थात् 'शार्कराक्ष' ऋषिगण)—कुर्पदृक्

अर्थात् स्थूल दृष्टि एवं आरुणि ऋषिगण (सम्प्रदाय भुक्त ऋषिगण) नाड़ी समूह के प्रसरण-स्थान दहर अर्थात् हृदयाकाश में (सूक्ष्म ब्रह्म की) उपासना करते हैं। हे अनन्त, उससे उत्कृष्ट शिरोगत (मूलाधार से आरम्भ करके हृदय के मध्य में से होकर मस्तक, ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त प्रत्युदगत्) सहस्त्र दल-पद्म स्वरूप आपके (उपलब्धिक्षेत्र सुषुम्ना-नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्मय) धाम में उठकर योगीगण फिर से कृतान्तमुखे संसार में पतित नहीं होते।

**अनुभाष्य**

१६०। जनलोक में ब्रह्मसत्र-यज्ञ में श्रवण के इच्छुक ऋषियों के समीप में चतुःसन में से एक ब्रह्मर्षि सनन्दन ने जिन श्रुतियों के द्वारा इस भगवत्-स्तव का कीर्त्तन किया था, उसका ही बाद में आदि ऋषि श्रीनारायण, नारद के निकट वर्णन कर रहे हैं,—

ऋषिवर्त्मसु (ऋषीणां वर्त्मसु सम्प्रदायमार्गेषु) य कूर्पदृशः (कूर्पं शर्कराराजः विद्यते दृक्षु अक्षिषु येषां ते तथा रजः पिहितदृष्टयः शार्कराक्षाः स्थूलदृष्ट्यः) उदरम् (उदरावलम्बनं मणिपुरकस्थं ब्रह्म) उपासते (ध्यायन्ति); आरुणयः (आरुण्याख्याः ऋषयः) परिसर-पद्धतिं (परितः सरन्ति प्रसर्पन्तीति परिसराः नाड्यः तासां पद्धतिं मार्गं प्रसरणस्थान) हृदयं दहरम् (आकाशालम्बनं सूक्ष्ममेव ब्रह्म उपासते); हे अनन्त, ततः (हृदयात्) तव परमं (श्रेष्ठं ज्योतिर्मय) धाम (उपलब्धि स्थानं सुषुम्नाख्यं) शिरः (मूर्द्धानं प्रति) उद्गात (उद्सर्पत्) (मूलाधारात् आरभ्य हृदय-मध्यात् ब्रह्मरन्ध्रं प्रत्युद्गतमित्यर्थः),—यत् (तव धाम) समेत्य (प्राप्य) इह कृतान्तमुखे (कृतान्तस्य कालस्य मृत्योः मुखे संसारे) न पतन्ति।

निगृहीत-चित्त मुनियों द्वारा कृष्ण के गुणों से आकृष्ट होकर शुद्धभक्ति—

**एइ कृष्णगुणाकृष्ट महामुनि हञा।**
**अहैतुकी भक्ति करे निर्ग्रन्थ हञा॥१६१॥**

**१६१। प॰ अनु॰—**ऐसा व्यक्ति भी श्रीकृष्ण के गुणों के प्रति आकर्षित होने के कारण महामुनि बन जाता है तथा वह भी निर्ग्रन्थ होकर श्रीकृष्ण की अहैतुकी भक्ति करता है।

'आत्मारामाः'- पद के अन्तर्गत आत्मा-शब्द के (४) 'यत्न' अर्थ के द्वारा व्याख्या—

**'आत्मा'-शब्दे 'यत्न' कहे—यत्न करिया।**
**''मुनयोऽपि'' कृष्ण भजे निर्ग्रन्थ हञा॥१६२॥**

**१६२। प॰ अनु॰—**आत्मा शब्द के अन्य एक अर्थ यत्न को स्वीकार करने पर आत्माराम का अर्थ होगा यत्न-राम। ऐसे मुनि भी निर्ग्रन्थ होकर श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

नित्यसत्य वास्तव वस्तु के अनुसन्धान के लिये प्रयत्न करना कर्त्तव्य—
श्रीमद्भागवत (१/५/१८) में—

**तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो**
**न लभ्य यद्भ्रमतामुपर्य्यधः।**
**तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं**
**कालेन सर्वत्र गभीर-रंहसा॥१६३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६३। [श्रीनारद ऋषि ने श्रीवेदव्यास से कहा—] जो सत्यलोक अथवा ब्रह्मलोक आदि ऊपर के लोकों में एवं सुतल और अतल आदि निम्न लोकों में भ्रमण करने पर भी प्राप्त नहीं होती, ऐसी दुर्लभ वस्तु के लिये पण्डित को प्रयत्न करना चाहिए, क्योकि, चतुर्दशभुवन के ऊपर के और नीचे के लोकों में जो सुख हैं, वे सभी गम्भीर वेग से युक्त काल के द्वारा दुःख की भाँति अनायास ही प्राप्त होते हैं।

**अनुभाष्य**

१६३। जब श्रीव्यासदेव बहुत तपस्या का

अनुष्ठान और समस्त शास्त्रों का प्रणयन करने पर भी आत्म प्रसन्नता को प्राप्त करने में वञ्चित होकर सरस्वती नदी के तट पर मन-मन में अनेक प्रकार के कुतर्क और खेद कर रहे थे, तभी उनके अन्तर्यामी गुरुदेव श्रीनारद गोस्वामी उनके निकट आकर उपस्थित हुए। व्यासदेव के द्वारा तब उनके निकट आत्मप्रसन्नता के अभाव के कारण की जिज्ञासा करने पर श्रीनारद ने हरिभक्ति और हरिकथा के माहात्म्य को बतलाकर नित्यतत्त्व कृष्णभक्ति के लिये प्रयत्न करने के लिये कहा,—

उपर्य्यधः (उपरि आब्रह्मलोकात् अधः स्थावर-पर्यन्त) भ्रमतां (विवक्षायां षष्ठी, भ्रमद्भिः जीवैः) यत् (सुखं) न लभ्यते (नैव प्राप्यते), कोविदः (विवेकशीलः) तस्यैव (तादृशस्य सुखस्य एव) हेतोः प्रयतेत (यत्नं कुर्यात्); गभीर-रंहसा (अनति-क्रम्यवेगेन) कालेन दुःखवत् (अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनां, तथैव) तं सुखं (विषयसुखं) अन्यतः (अन्यस्मात् प्राक्तनकर्मतः) सर्वत्र (सर्वयोनिषु प्रयत्नं विनापि) लभ्यते, (प्राप्यते)।

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/१०३) में उद्धृत नारदीयवाक्य—

**सद्धर्मस्यावबोधाय येषां निर्बन्धिनी मतिः।**
**अचिरादेव सर्वार्थः सिद्धत्येषामभी प्सितः॥१६४॥**

१६४। सद्धर्म को उदित कराने के लिए जिनकी दृढ़ा मति है, उनकी शीघ्र ही अभिलषित सर्वार्थ अर्थात् सब प्रकार की सिद्धि होती है।

**अनुभाष्य**

१६४। मध्य विंश परिच्छेद १०६ संख्या द्रष्टव्य।

अत्यधिक आग्रहपूर्वक यत्न अथवा उत्साह और निश्चय से ही भक्ति की सिद्धि—

**च-शब्द अपि-अर्थे, 'अपि'-अवधारणे।**
**यत्नाग्रह बिना भक्ति ना जन्माय प्रेमे॥१६५॥**

**१६५। प॰ अनु॰—**च शब्द का अपि अर्थ तथा अपि शब्द का अर्थ अवधारण (निश्चयता) करने पर अर्थ होगा कि यत्न-आग्रह के बिना भक्ति भी प्रेम में पर्यवसित नहीं होती।

आसङ्ग ही आग्रह पूर्वक प्रयत्न—
भक्तिरसामृतसिन्धु (१/१/३५)—

**साधनौघेरनासङ्गैरलभ्या सुचिरादपि।**
**हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्यात सुदुर्लभा॥१६६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१६६। भक्ति दो प्रकार से सुदुर्लभ है,—अर्थात्, आसङ्ग (कृष्णप्रीतिवाञ्छा) रहित सैकड़ों साधनों के द्वारा भी शीघ्र प्राप्त नहीं होती और कृष्ण भी सहसा भक्ति नहीं देते।

**अनुभाष्य**

१६६। अनासङ्गैः (सङ्गरहितैः) साधनौघेः (साधन-पुञ्जैः) सुचिरात् (बहुकालेन) अपि भक्तिः, अलभ्या (लब्धुमशक्या) हरिणा (भगवता) आशु (शीघ्रम) अदेया ("मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्" इति (भाः ५/६/१८) वचनात् च—इति) सा सुदुर्लभा भक्तिः द्विधा स्यात् (प्रकारद्वयेनापि तस्याः दुर्ल्लभत्व-मित्यर्थः)।

सतत योग ही आग्रह पूर्वक प्रयत्न—
श्रीमद्भगवद्गीता (१०/१०) में—

**तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।**
**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥१६७॥**

१६७। नित्य-भक्तियोग के द्वारा जो प्रीति-पूर्वक मेरा भजन करते हैं, मैं उनको शुद्धज्ञान जनित विमल-प्रेमयोग दान करता हूँ। जिससे वह मेरे परमानन्दधाम को प्राप्त होते हैं।

**अनुभाष्य**

१६७। आदि प्रथम परिच्छेद ४९ संख्या द्रष्टव्य है।

'आत्मारामाः'-पद के अन्तर्गत आत्मा-शब्द के (५) 'धृति'—अर्थ के द्वारा व्याख्या—

**'आत्मा'-शब्दे 'धृति' कहे—धैर्ये जेइ रमे।**
**धैर्यवन्त हञा तबे करय भजने॥१६८॥**

**१६८। प॰ अनु॰—**आत्मा शब्द के अन्य एक अर्थ धृति को स्वीकार करने पर आत्माराम का अर्थ होगा—धैर्य में रमण करना। कोई धैर्यवन्त होकर श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

मुनि और निर्ग्रन्थ—इन दोनों शब्दों का अर्थ; विष्णु-वैष्णव की कृपा से दोनों को भक्ति की प्राप्ति—

**'मुनि'-शब्दे—पक्षी, भृङ्ग; 'निर्ग्रन्थे'—मूर्खजन।**
**कृष्णकृपाय साधुकृपाय दोंहार भजन॥१६९॥**

**१६९। प॰ अनु॰—**मुनि शब्द का अर्थ पक्षी अथवा भृङ्ग तथा निर्ग्रन्थ शब्द का अर्थ मूर्खजन है। ये दोनों अर्थात् पक्षी-भृङ्ग तथा मूर्खजन भी श्रीकृष्ण की कृपा तथा साधु की कृपा से श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

व्रज के पक्षी भी कृष्णनिष्ठ मुनि—
श्रीमद्भागवत (१०/२१/१४) में—

**प्रायो वताम्ब मुनयो विहगा वनेऽस्मिन्**
**कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्।**
**आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्**
**शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः॥१७०॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७०। [गोपियों ने कहा—] हे मातः, इस वन में यह सब पक्षी सुन्दर-सुन्दर पल्लवों से सुशोभित वृक्षोंकी शाखा आदि पर बैठकर नेत्र बन्द करके एवं कलरव करना बन्द करके कृष्ण के मुख से निकले कल-वेणुगीत को श्रवण करते हैं, वे भी प्रायः मुनि की भाँति ही हैं।

**अनुभाष्य**

१७०। व्रज में शरत्काल के उपस्थित होने पर कृष्ण ने वन-वन में वंशीध्वनि करके परिभ्रमण करना आरम्भ किया, उनकी उस वंशीध्वनि को सुनकर गोपियाँ कृष्ण के सङ्ग के लिये कामातुर होकर गान कर रही हैं,—

हे अम्ब, अस्मिन् वने ये विहगाः (पक्षिणः) ते प्रायः (प्रायेण) मुनयः एव, यतः ते (पक्षिणः) कृष्णेक्षितं (कृष्णदर्शनं पुष्पफलाद्यन्तरं बिना यथा भवति, तथा) रुचिरप्रवालान् (रुचिराः शोभनाः प्रवालाः येषां तान् विचित्रोपशाखायुतान्) द्रुमभुजान् (वृक्षाणां शाखाः) आरुह्य (केनापि सुखेन) मीलित-दृशः (निमीलित नयनाः) विगतान्यवाचः (व्यक्तान्य-शब्दाः सन्तः) तदुदितं (तेनैव कृष्णेन प्रकटित) कलवेणुगीतं (मधुर मुरलीनिनाद) श्रृण्वन्ति।

व्रज के भ्रमर भी कृष्णनिष्ठ मुनि—
श्रीमद्भागवत (१०/१५/७) में—

**एतेऽलिनस्तव यशोऽखिल-लोकतीर्थं**
**गायन्त आदिपुरुषानुपथं भजन्ते।**
**प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या**
**गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम्॥१७१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७१। [श्रीकृष्ण बलदेवजी से कह रहे हैं—] हे अनघ, हे आदिपुरुष, ये भँवरे समस्त लोकों को पवित्र करने वाले आपके यशसमूह का गान करते-करते (तुम्हारे जाने के मार्ग पर तुम्हारे पीछे जाकर) भजन कर रहे हैं; ये भँवरे का वेष धारण करने वाले मुनि आत्मदेवता रूपी तुम्हें तुम्हारे गूढ़रूप के होने पर भी परित्याग नहीं कर रहे हैं।

**अनुभाष्य**

१७१। पौगण्ड-अवस्था में पदार्पण करके भगवान् श्रीकृष्ण एक बार श्रीबलराम के साथ कुसुमाकर-वन में प्रवेश करके चारों ओर की शोभा देखकर विहार करने के अभिलाषी होकर अग्रज बलराम की प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं,—

हे आदिपुरुष (सर्वेषां सत्त्वानां कारणभूत-सन्धिनी-शक्ति-मद्विग्रह), एते अलिनः (भृङ्गाः) तव अखिललोकतीर्थं (सकललोकपावन) यशः गायन्तः अनुपथं (पथि पथि) भजन्ते; हे अनघ (शुद्ध सत्त्वाधीश विग्रह), अमी भवदीय मुख्याः (त्वदीयानां मुख्याः प्रधानाः) मुनिगणाः वने गूढम् (अज्ञातम्) अपि आत्मदैवं (सेश्वरं ता) प्रायः न जहति (न त्यजन्ति त्वयि मनुष्यवेषेण निगूढे सति मुनयोऽप्यालिवेषेण निगूढास्त्वां भजन्तीत्यर्थः)।

यहाँ पाठान्तर में,—(भाः १०/१५/७)—''नृत्यन्त्यमी शिखिन् ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति, गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन। सूक्तैश्च कोकिलगणाः गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः॥'' —यह श्लोक लक्षित होता है; इसका अर्थ है—''हे स्तुत्यह (पूजनीय), मयूर अपने घर में आये तुम्हें देखकर परमानन्द में नृत्य कर रहे हैं, हिरिणयाँ गोपियों के समान दृष्टि निक्षेप करके एवं कोयलें मधुर शब्द करके प्रीति उत्पन्न कर रही हैं; वृन्दावन-वासी ही धन्य हैं, क्योंकि इसी प्रकार ही अर्थात् अपनी-अपनी वस्तु को प्रदान करना ही साधुओं का स्वभाव है।

व्रज के हंस-सारस आदि पक्षी भी कृष्णनिष्ठ मुनि—श्रीमद्भागवत (१०/३५/११) में—

**सरसि सारसहंसविहङ्गाश्-**
**चारुगीतहृदचेतसएत्य।**
**हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त**
**मीलितदृशो धृतमौनाः॥१७२॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१७२। [ गोपियों ने कहा— ] श्रीकृष्ण जब वंशीध्वनि करते हैं, तब सारस, हंस आदि पक्षीगण उस वंशीध्वनि से आकृष्ट होकर नेत्र बन्द करके श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं।

### अनुभाष्य

१७२। दिन के समय कृष्ण के वन में जाने पर विरह से सन्तप्त गोपियाँ परस्पर इस प्रकार गीत का गान करती थीं,—(यर्हि अधरे कृष्णः सन्धितवेणुर्भवति तर्हीति पूर्वेणान्वयः, सरसि (सरोवरे) ये सारसहंसविहङ्गाः चारुगीतहृतचेतसः (चारुणा वेणुगीतेन हृतानि आकृष्टानि चेतांसि येषां ते) एत्य (आगत्य) हन्त (विषादे) यतचित्ताः (संयतमनाः) धृतमौनाः (निःशब्दाः) मीलितदृशः (मुदित-नेत्राः सन्तः) हरिम् उपासत (अभजन्त, तत्समीपे उपरिविशुर्वा)।

शुद्धभक्त की कृपा से अशुद्ध जाति की भी शुद्धि—श्रीमद्भागवत (२/४/१८)—

**किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कशा**
**आभीरशुह्मायवनाः खशादयः।**
**येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः**
**शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥१७३॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१७३। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा— ] किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, (शुम्भ), यवन और खशादि एवं और जो समस्त पापयोनि जातियाँ है, वे सब जातियाँ ही जिनके आश्रित-वैष्णवों के आश्रय से भली-भाँति शुद्ध हो जाती हैं, मैं ऐसे प्रभाव से युक्त विष्णु को नमस्कार करता हूँ।

### अनुभाष्य

१७३। श्रीशुक के मुख से हरिकथा सुनकर परीक्षित के द्वारा श्रीकृष्ण में एकान्तिक मति से युक्त होकर मायाधीश भगवान् की सृष्टि् आदि लीला के विषय में जिज्ञासा करने पर उसके उत्तर में श्रीशुक सर्वप्रथम भगवान् को प्रणाम करके मङ्गलाचरण कर रहे हैं,—

किरात हूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कशाः आभीर-शुम्भाः यवनाः खशादयः (पापयोनयः) अन्ये ये पापाः (स्व-स्व-प्राक्तन-कर्मतः पाप-जातयः) यदुपाश्रया-श्रयाः (यस्य भगवतः उपाश्रयाः आश्रिताः भागवत-वैष्णवाः तदाश्रयाः भक्ताश्रिताः सन्तः) शुद्ध्यन्ति (पवित्री भवन्ति) तस्मै प्रभविष्णवे (प्रभावशलिने भगवते विष्णवे) नमः।

'धृति'-शब्द का
अन्य अर्थ—

**किंवा 'धृति'-शब्दे निजपूर्णतादि-ज्ञान कय।**
**दुःखाभावे उत्तमप्राप्तये महापूर्ण हय॥१७४॥**

**१७४। प॰ अनु॰—**अथवा 'धृति' शब्द का अर्थ निज-पूर्णता आदि का ज्ञान भी किया जा सकता है। निजपूर्णता आदि का ज्ञान तभी सम्भव है जब कोई दुःख के अभाव तथा उत्तम वस्तु की प्राप्ति करके महापूर्ण हो जाता है।

धृति की संज्ञा—
भक्तिरसामृतसिन्धु (२/४/१४४)—

**धृतिः स्यात् पूर्णता-ज्ञानं दुःखाभावोत्तमाप्तिभिः।**
**अप्राप्तातीत-नष्टार्थानभिसंशोचनादिकृत॥१७५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७५। उत्तम लाभ के द्वारा दुःख का अभाव एवं पूर्णता-ज्ञान में ही 'धृति'। अप्राप्त एवं अतीत में संगृहीत अर्थ के नष्ट होने पर जो शोक होता है, उसे 'धृति' ही निवारण (रोकती) करती है।

**अनुभाष्य**

१७५। दुःखाभावोत्तमाप्तिभिः (दुःखस्य अभावः तेन उत्तमस्य, उद्गतं तमः यस्मात् सः प्रेमा, तस्य परमपुरुषार्थस्य प्रेमणः आप्तिभिः च यत्) पूर्णता-ज्ञानम् (आत्मप्रसादानुभवः, तत् एव) धृतिः, (सा)—अप्राप्तातीतनष्टार्थानभिशोचनादिकृत (अप्राप्तस्य अतीतस्य नष्टस्य च अर्थस्य विषयस्य हेतोः अनभिशोचनं करोति या सा, अभिशोचनाभावः या सम्पाद्यते इत्यर्थः)।

श्लोक का अर्थ—

**कृष्णभक्त—दुःखहीन, वाञ्छान्तर-हीन।**
**कृष्णप्रेम-सेवा-पूर्णानन्द-प्रवीण॥१७६॥**

**१७६। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण का भक्त दुःख से रहित तथा कृष्णभक्ति के अलावा अन्य सब प्रकार की वाञ्छाओं से रहित होता है एवं कृष्ण की प्रेम पूर्वक की गयी सेवा के पूर्णानन्द के आस्वादन में निपुण होता है।

कृष्णसेवा में ही भक्त सन्तुष्ट, असन्तोषजनक
अन्य कामना का अभाव—
श्रीमद्भागवत (९/४/६७) में—

**मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादि-चतुष्टयम्।**
**नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कृतोऽन्यात् कालविपलुतम्॥१७७॥**

१७७। [ श्रीभगवान् ने कहा— ] मेरी सेवा के द्वारा सालोक्य आदि चार प्रकार की मुक्तियाँ स्वयं आगमन करने पर भी, मेरी सेवा में सम्पूर्ण-रूप से मग्न शुद्धभक्त जब उन सबको ही स्वीकार नहीं करते, तब मायिक भोग एवं सायुज्य मुक्ति,—जो काल के द्वारा अति शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, उन सबकी इच्छा क्यों करेंगे? सायुज्यमुक्ति के द्वारा जीवों की सत्ता काल की चपेट में पतित हो जाती है; अतएव भुक्ति एवं सायुज्यमुक्ति—इन सबका स्थायित्व नहीं है।

**अनुभाष्य**

१७७। आदि चतुर्थ परिच्छेद २०८ संख्या द्रष्टव्य।

सभी इन्द्रियों के द्वारा कृष्ण के अनुशीलन में निष्ठ
भक्त ही धीर और स्थिर—
श्रीगोस्वामिपादोक्त-श्लोक—

**हृषीकेशे-हृषीकाणि यस्य स्थैर्यगतानि हि।**

**स एव धैर्यमाप्नोति संसारे जीवचञ्चले॥१७८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१७८। इस जीवचञ्चल अर्थात् क्षण-भङ्गुर संसार में जिस व्यक्ति की समस्त इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के अधिपति हृषीकेश-कृष्ण में स्थिर हुई हैं, उसी व्यक्ति ने ही धैर्य प्राप्त किया है।

**अनुभाष्य**

१७८। यस्य हृषीकाणि (इन्द्रियाणि) हृषीकेशे (सर्वनियन्तरि भगवति) स्थैर्यगतानि (उपशमं लब्धानि) स एव जीवचञ्चले (क्षणभङ्गुरे) संसारे धैर्यम् आप्नोति।

'आत्मारामाः'—धृतिमन्त, 'मुनयः'—पक्षिगण, 'निर्ग्रन्थाः'—मूर्खगण—

**'च'-अवधारणे, इहा 'अपि'—समुच्चये।**
**धृतिमन्त हञा भजे पक्षी-मूर्ख-चये॥१७९॥**

**१७९। प० अनु०—**यहाँ 'च' शब्द का अर्थ अवधारण (निश्चय) के रूप में तथा 'अपि' का समुच्चय के रूप में अर्थ करने पर श्लोकार्थ होगा कि पक्षी और मूर्ख भी धृतिमन्त होकर श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

'आत्मारामाः'-पद के अन्तर्गत आत्मा-शब्द के (६) 'बुद्धि'-अर्थ की व्याख्या—

**'आत्मा'-शब्दे 'बुद्धि' कहे बुद्धिविशेष।**
**सामान्यबुद्धियुक्त जत जीव अशेष॥१८०॥**

**१८०। प० अनु०—**आत्मा शब्द का अर्थ बुद्धि भी होता है। किन्तु यहाँ पर केवल बल्कि विशेष बुद्धि से सम्पन्न जीवों को ही ग्रहण नहीं किया गया बल्कि सामन्य बुद्धि से युक्त असंख्य जीवों को भी स्वीकार किया गया है।

पण्डित और मूर्ख के भेद से बुद्ध्याराम दो प्रकार के—

**बुद्ध्ये रमे आत्माराम—दुइ त' प्रकार।**
**'पण्डित' मुनिगण, निर्ग्रन्थ 'मूर्ख' आर॥१८१॥**

**१८१। प० अनु०—**बुद्धि में रमण करने वाले आत्माराम दो प्रकार के होते हैं—१) पण्डित मुनिगण तथा २) निर्ग्रन्थ (शास्त्र-ज्ञान रहित) मूर्ख।

साधु और कृष्ण की कृपा से सद्बुद्धि की प्राप्ति और कृष्णभजन—

**कृष्णकृपाय साधुसङ्गे रति-बुद्धि पाय।**
**सब छाड़ि' कृष्ण भक्ति शुद्धबुद्ध्ये पाय॥१८२॥**

**१८२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण की कृपा से साधु-सङ्ग में रति को प्रदान करने वाली बुद्धि को प्राप्त करके शुद्ध बुद्धि से युक्त व्यक्ति सबकुछ छोड़कर कृष्ण की भक्ति करता है।

**अनुभाष्य**

१८२। पाठान्तर में,—''सब छाड़ि' शुद्धभक्ति करे कृष्णपाय। कृष्णकृपाय साधुसङ्गे विचार-बुद्धि पाय॥''

श्रीमद्भगवद्गीता (१०/८)—

**अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।**
**इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥१८३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८३। [भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—] मैं सभी का प्रभव (उत्पत्ति)-स्थान हूँ एवं मुझसे ही सबकुछ प्रवर्तित हुआ है; ऐसा जानकर पण्डित व्यक्ति भक्तियुक्त होकर मेरा भजन करते हैं।

**अनुभाष्य**

१८३। अहं (कृष्णः) सर्वस्य (विधिरुद्राणां प्रपञ्चस्य च) प्रभवः (हेतु जन्मकारणम्); मत्तः (सर्वकारण कारण भूतात्) सर्वं (वस्तु) प्रवर्त्तते (मदधीनप्रवृत्तिकम्)—इति मत्वा बुधाः (कृष्ण-रसविदः) भाव समन्विताः (प्रेमयुक्ताः सन्तः) मां भजन्ते।

भक्त की कृपा से श्रौत-पथ का अनुसरण करते हुए नीच त्रिर्यक जाति की भी माया से मुक्ति—
श्रीमद्भागवत (२/७/४६) में—

**ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां**
**स्त्रीशूद्रहूणशवरा अपि पापजीवाः।**
**यद्यद्भुतक्रमपरायण-शील-शिक्षा-**
**स्तिर्यग् जना अपि किमु श्रुतधारणा ये॥१८४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८४। [श्रीब्रह्मा ने नारदजी से कहा—] स्त्री, शूद्र, हूण, शबर आदि पापजीव एवं पक्षी आदि तिर्यक-जातियाँ भी जब अद्भुतक्रम (भगवान् श्रीउरुक्रम) परायण (शुद्ध भक्तों के आचरण का अनुसरण करने से) शिक्षा प्राप्त (अर्थात् भगवद्-भक्त) होकर (दुस्तर दैवी) माया से उद्धार प्राप्त कर लेते हैं, तब श्रौत-पन्थी व्यक्तियों का तो कहना ही क्या?

**अनुभाष्य**

१८४। ब्रह्मा अपने शिष्य नारद के निकट भगवान् विष्णु के लीलावतार-समूह की क्रिया, प्रयोजन और विभूति समूह का कीर्तन करके उनकी अत्यधिक कठिनाई से पार की जा सकने वाली माया से मुक्त शरणागत उच्चकुल में उत्पन्न भक्तों के नामों का वर्णन करके निम्नकुल में उत्पन्न जनगण की भी श्रौत-पन्था में मुक्ति-प्राप्ति की योग्यता की बात बतला रहे हैं,—

यदि स्त्रीशूद्रहूणशबरा पापजीवाः (पापयोनयः) तथा त्रिर्यकजनाः अपि अद्भुतक्रमपरायणशील-शिक्षाः (अद्भुताः विस्मयोत्पादिकाः क्रमाः पादन्यासाः यस्य हरेः तस्य परायणाः हरिजनाः तेषां शीले स्वभावे शिक्षा येषां ते—ये शुद्धभक्त-शिष्याः सन्तः कृष्णभक्तसङ्गैः गठितचरित्राः भवन्ति, तर्हि एवम्भूता) ते अपि देवमायां वै विदन्ति (जानन्ति) अतितरन्ति (अतिक्रामन्ति) च; अतः, ये (भक्ताः) श्रुतधारणाः (श्रुतं भगवतः नामरूपगुण-लीलादि-तत्त्वं धारयन्ति श्रौतमार्गेण ये, ते) किमु (पुनः तेषां किं वक्तव्यम्?—निश्चितमेव ते मायां विदन्ति अतितरन्तीत्यर्थः)।

सद्बुद्धि और नित्य-अनित्य विचार पूर्वक कृष्ण-भजन से ही कृष्ण-प्राप्ति—

**विचार करिया जबे भजे कृष्ण-पा'य।**
**सेइ बुद्धि देन ताँरे, जाते कृष्ण पाय॥१८५॥**

**१८५। प॰ अनु॰—**विचार करके अर्थात् अपनी अवस्था के अनुसार जब कोई श्रीकृष्ण के चरण-कमलों का भजन करता है तो श्रीकृष्ण उसे स्वयं ऐसी बुद्धि प्रदान करते हैं, जिससे वह श्रीकृष्ण को प्राप्त कर सके।

श्रीमद्भगवद्गीता (१०/१०) में—

**तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।**
**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥१८६॥**

१८६। नित्य-भक्तियोग के द्वारा जो प्रीति-पूर्वक मेरा भजन करते हैं, मैं उनको शुद्धज्ञान जनित विमल-प्रेमयोग दान करता हूँ। जिससे वह मेरे परमानन्दधाम को प्राप्त होते हैं।

**अनुभाष्य**

१८६। आदि प्रथम परिच्छेद ४९ संख्या द्रष्टव्य।

सर्वश्रेष्ठ पाँच प्रकार के साधन—

**सत्सङ्ग, कृष्णसेवा, भागवत, नाम।**
**व्रजे वास,—एइ पञ्चसाधन प्रधान॥१८७॥**

**१८७। प॰ अनु॰—**सत्सङ्ग, श्रीकृष्ण की सेवा, भागवत का श्रवण, श्रीकृष्णनाम तथा व्रज में वास—सभी प्रकार के साधनों में यह पाँच साधन प्रधान हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८७। भागवत, नाम—श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्णनाम।

### अनुभाष्य

१८७। कृष्णभक्तसङ्ग, कृष्णसेवा, कृष्णकथा-विग्रह श्रीमद्भागवत, कृष्णनाम, कृष्णधाम श्रीव्रज में वास—ये पाँच ही प्रधान साधन हैं।

पाँच प्रकार के साधनों में से किसी एक के सामान्य अनुशीलन से ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

**एइ पञ्च-मध्ये एक 'स्वल्प' यदि हय।**
**सुबुद्धि जनेर हय कृष्णप्रेमोदय॥१८८॥**

**१८८। प० अनु०—**इन पाँच साधनों में से यदि किसी के द्वारा किसी एक अङ्ग का भी 'स्वल्प' मात्रा में पालन हो जाता है, तब उस सुबुद्धि व्यक्ति में कृष्णप्रेम उदित हो जाता है।

भक्तिरसामृतसिन्धु (१/२/२३८)—

**दुरुहाद्भुतवीर्योऽस्मिन् श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके।**
**यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भावजन्मने॥१८९॥**

१८९। सहसा दुरुह दुःसाध्य और अद्भुत वीर्य (शक्ति) से सम्पन्न अन्तिम पाँच अङ्गों में श्रद्धा की बात तो दूर रहे, बहुत कम सम्बन्ध उत्पन्न होने पर भी वह निरापराधी व्यक्ति की भावोत्पत्ति का कारण बन जाता है।

### अनुभाष्य

१८९। मध्य, द्वाविंश परिच्छेद १२९ संख्या द्रष्टव्य।

अनर्थमय और सकाम होने पर भी सुबुद्धिवशतः निरन्तर कृष्ण-भजन के फल से कामनाओं को त्यागकर निष्काम-सेवा और सिद्धि की प्राप्ति; वैसा होने पर भी किन्तु सकाम-भक्ति निष्काम-सेवा का 'कारण' नहीं—

**उदार महती जाँर सर्वोत्तमा बुद्धि।**
**नाना कामे भजे, तबु पाय भक्तिसिद्धि॥१९०॥**

**१९०। प० अनु०—**निरपराध तथा सर्वोत्तम वस्तु श्रीकृष्ण से सम्बन्धित होने के कारण जिनकी बुद्धि सर्वोत्तम हैं, वे अनेक प्रकार की कामनाओं की पूर्त्ति की अभिलाषा से भजन आरम्भ करने पर भी अन्त में भक्ति की सिद्धि की प्राप्ति करते हैं।

श्रीमद्भागवत (२/३/१०) में—

**अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।**
**तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥१९१॥**

१९१। पहले अकाम अर्थात् किसी भी प्रकार की कामना से रहित ही हो, सर्वकाम अर्थात् सब प्रकार की कामनाओं से युक्त ही हो अथवा मोक्ष की कामना करने वाला ही क्यों न हो, उदार बुद्धि होने मात्र से ही मनुष्य तीव्र शुद्धभक्तियोग से परमपुरुष कृष्ण का भजन करेंगे।

### अनुभाष्य

१९१। मध्य, द्वाविंश परिच्छेद ३६ संख्या द्रष्टव्य।

निरन्तर सेवा के प्रभाव से काम अथवा अनर्थ की निवृत्ति और शुद्ध सेवा की प्राप्ति—

**भक्ति-प्रभाव,—सेइ काम छाड़ाञा।**
**कृष्णपदे भक्ति कराय गुणे आकर्षिया॥१९२॥**

**१९२। प० अनु०—**श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रभाव ही ऐसा है कि वह उस व्यक्ति की समस्त प्रकार की कामनाओं को छुड़ाकर उसे श्रीकृष्ण के गुणों के प्रति आकर्षित कराके उसे श्रीकृष्ण की भक्ति में नियुक्त कर देती है।

श्रीमद्भागवत (५/१९/२६) में—

**सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां**
**नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः।**
**स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता**
**मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥१९३॥**

१९३। [श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—]

कृष्ण प्रार्थना किये जाने पर मनुष्यों की प्रार्थना को पूर्ण करते हैं, यह बात सत्य है, परन्तु जिस अर्थ (द्रव्य) से उनकी बार-बार प्रार्थना का उदय होता है, वह उस अर्थ को नहीं देते। अन्यकामी होकर जो केवल उनके पादपल्लव को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करने पर भी उनका भजन करते हैं, वे उन्हें स्वयं ही अन्यान्य कामनाओं को शान्त कर देने वाले अपने उन्हीं चरणकमलों को दिया करते हैं।

अनुभाष्य

१९३। मध्य, द्वाविंश परिच्छेद ४० संख्या द्रष्टव्य।

''आत्मारामाः''-पद के अन्तर्गत आत्मा-शब्द के (७) 'स्वभाव'-अर्थ की व्याख्या—

**'आत्मा'-शब्दे 'स्वभाव' कहे, ताते जेइ रमे।**
**आत्माराम जीव जत स्थावर-जङ्गमे॥१९४॥**

अनावृत्त शुद्धजीव स्वरूप और आवृत्त जीव स्वरूप का धर्म; शुद्ध 'अहं' और अशुद्ध 'अहं'—

**जीवेर स्वभाव—कृष्णे 'दास' अभिमान।**
**देहे आत्म-ज्ञाने आच्छादित सेइ 'ज्ञान'॥१९५॥**

**१९४-१९५। प॰ अनु॰—**आत्मा शब्द का एक अर्थ 'स्वभाव' भी होता है, इसके अनुसार आत्माराम का अर्थ हुआ जो स्वभाव में रमण करते है, ऐसे जितने भी स्थावर-जङ्गम जीव हैं, वास्तव में उन जीवों का स्वभाव कृष्ण के दास होने का अभिमान करना है, किन्तु देह के प्रति ही ज्ञान होने के कारण उनका यह वास्तविक ज्ञान आच्छादित रहता है।

**च-शब्दे 'एव', 'अपि'-शब्द समुच्चये।**
**'आत्मारामा एव' हञा श्रीकृष्ण भजये॥१९६॥**

**१९६। प॰ अनु॰—**इस स्थान पर 'च' शब्द का अर्थ 'एव' ही होगा तथा 'अपि' शब्द का अर्थ समुच्चय के अर्थ में ही ग्रहण किया जायेगा। इस प्रकार स्थावर-जङ्गम—जीव आत्माराम होकर श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

शुद्धस्वभाव 'आत्माराम' जीव और 'निर्ग्रन्थ' जीव का दृष्टान्त—

**एइ जीव—सनकादि सब मुनिजन।**
**'निर्ग्रन्थ'—मूर्ख, नीच, स्थावर-जङ्गम॥१९७॥**

**१९७। प॰ अनु॰—**स्वभाव में रमण करने वाले ऐसे जीवों में सनक आदि सब मुनि तथा निर्ग्रन्थ अर्थात् मूर्ख, नीच, स्थावर-जङ्गम आदि सभी सम्मिलित हैं।

मुक्तजीव व्यास आदि की कृष्ण सेवा—प्रसिद्ध, निर्ग्रन्थ अथवा निर्बोध के भजन का वर्णन—

**व्यास-शुक-सनकादिर प्रसिद्ध भजन।**
**'निर्ग्रन्थ-स्थावरादिर शुन विवरण॥१९८॥**

**१९८। प॰ अनु॰—**हे सनातन, श्री व्यासदेव, श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा श्री सनक आदि का भजन तो प्रसिद्ध है ही, अब तुम मुझसे निर्ग्रन्थ स्थावर आदि के विषय में श्रवण करो।

कृष्ण की कृपा से सभी का कृष्णभजन—

**कृष्णकृपादि-हेतु हैते स्वभाव उदय।**
**कृष्णगुणाकृष्ट हञा ताँहारे भजय॥१९९॥**

**१९९। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्ण की कृपा के कारण ही स्थावर आदि का कृष्णदास होने का स्वभाव उदित हो आता है, तथा वे श्रीकृष्ण के गुणों के प्रति आकृष्ट होकर उनका भजन करते हैं।

कृष्ण के चरण के स्पर्श से पृथ्वी धन्या, लक्ष्मी के भी काम्य वक्षःस्थल के स्पर्श से गोपियाँ धन्या—श्रीमद्भागवत (१०/१५/८) में—

**धन्येमद्य धरणी तृण-वीरुधस्त्वत्-**

**पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः।**
**नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-**
**र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः॥२००॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२००। [ श्रीकृष्ण ने अग्रज बलदेव से कहा— ] यह भूमि (व्रजभूमि) आज धन्य हो गयी है; आपके चरण के स्पर्श से तृण, गुल्म आदि, आपकी अङ्गुलि के स्पर्श से वृक्ष तथा लता (बेल) आदि, आपके सदय दृष्टिपात से नदी-पर्वत-पक्षी-मृग आदि एवं लक्ष्मी के लिये भी स्पृहणीय, आपके वक्षःस्थल को प्राप्त करके गोपियाँ धन्य हो गयी हैं।

**अनुभाष्य**

२००। पौगण्ड में पदार्पण करके श्रीकृष्ण एकबार श्रीबलदेव के साथ कुसुमाकर-वन में प्रवेश करके व्रज की शोभा को देखकर विहार करने के इच्छुक होकर अग्रज बलदेव की स्तुति के छल से स्वयं ही स्वयं की स्तुति कर रहे हैं,—

अद्य तव चरणस्पर्शात्, इयं धरणी धन्या, तथा, त्वतपादस्पृशः (तव पादौ स्पृशन्तीति अतः) तृणविरुधः (तृणगुल्मादयः) करजाभिमृष्टाः (नखैः स्पृष्टाः) द्रुमलताः (वृक्षवल्लर्यः) सदयावलोकैः (सकारुण्यदृष्टिभिः) नद्यः अर्द्रयः (गिरयः) खगमृगाः (खगाः पक्षिणः मृगाः पशवः) च (धन्याः), श्रीः अपि यत् स्पृहा (लक्ष्मीरपि यस्मै स्पृहयति, तेन) भुजयोः अन्तरेण (वक्षसा) गोप्यः च धन्याः।

कृष्ण की वंशी की ध्वनि से जङ्गम का स्थावरधर्म, स्थावर में जङ्गम के धर्म का उदय—
श्रीमद्भागवत (१०/२१/१९) में—

**गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-**
**वेणुस्वनैः कलपदेस्तनुभृत्सु सख्यः।**
**अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरुणां**
**निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्॥२०१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०१। [ गोपियों ने कहा— ] हे सखीगण, गैयाओं और गोपों के साथ वन-वन में जाने वाले, गैयाओं को बाँधने वाली रस्सी के गुच्छ को धारण करने आदि जैसे लक्षणों से युक्त कृष्ण-बलदेव की उदार वेणु-ध्वनि और गीत के द्वारा देही (प्राणियों) में से चलने-फिरने वाले तथा स्तम्भ एवं स्थावर वृक्ष आदि में पुलक हो रहा है,—यह सब बहुत विचित्र है।

**अनुभाष्य**

२०१। व्रज में शरत्-काल के उपस्थित होने पर, श्रीकृष्ण के द्वारा वन-वन में वंशीध्वनि करते हुए गो-चारण के छल से परिभ्रमण आरम्भ करने पर, गोपियाँ वंशीध्वनि के श्रवण के फल से कृष्ण के सङ्ग के लिये कामातुर होकर इधर-उधर भ्रमण करते-करते कृष्ण की गुणावली का कीर्त्तन कर रही हैं,—

हे सख्य, गोपकैः (गोप-बालकैः सह) अनुवनं (प्रतिवनं) गाः नयतोः (सञ्चारयतोः) निर्योगपाश-कृतलक्षणयोः (निर्युज्यन्ते गावः आभिः इति निर्योगाः दोहनकालीन-पादबन्धन-रज्जुः, अधृष्यगवां कर्षणार्थाः पाशाः च, तैः कृतं लक्षणं चिह्नं ययोस्तयोः शिरसि निर्योगवेष्टनेन स्कन्धस्थापने च गोपपरिवृढ़-श्रिया विराजमानयोः रामकृष्णयोः) कलपदैः (मधुर-शब्दैः) उदारवेणुस्वनैः (महावेणुनादैः) तनुभृत्सु (शरीर-धारिषु देहिषु) गतिमतां (ये गतिमन्तः, तेषाम्) अस्पन्दनं (स्थावरधर्म्मः) तरुणां पुलकः (जङ्गम-धर्मः—इति तु) विचित्रम् (अतिविचित्रम्)।

श्रीमद्भागवत (१०/३५/९) में—

**वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं**
**व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः।**
**प्रणतभारविटपा मधुधाराः**
**प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म॥२०२॥**

२०२। पुष्प और फलों से लदी हुई वन लता और भाव द्वारा झुके हुए समस्त वृक्षों और प्रेम से पुलकित शरीर से युक्त समस्त वनस्पतियों ने आत्मगत कृष्ण को प्रकट करते हुए मधु-धारा वर्षण की थी।

**अनुभाष्य**

२०२। मध्य, अष्टम परिच्छेद २७५ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (२/४/१८) में—

**किरातहूनान्ध्रपुलिन्दपुक्कशाः**
**आभीरशुम्भा यवनाः खशादयः।**
**येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः**
**शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥२०३॥**

२०३। [श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—] किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, शुम्भ, यवन और खशादि एवं अन्य जो समस्त पापयोनि जातियाँ है, वे सब जातियाँ ही जिनके आश्रित-वैष्णवों के आश्रय से भली-भाँति शुद्ध हो जाती हैं, ऐसे प्रभाव से युक्त विष्णु को नमस्कार करता हूँ।

**अनुभाष्य**

२०३। मध्य, चतुर्विंश परिच्छेद, १७३ संख्या द्रष्टव्य।

यहाँ तक उन्नीस प्रकार का अर्थ—

**आगे 'तेर' अर्थ करिलुँ, आर 'छय' एइ।**
**उनविंशति अर्थ हइल मिलि' एइ दुइ॥२०४॥**

**२०४। प० अनु०—**हे सनातन, मैंने तुम्हें पहले आत्माराम श्लोक के तेरह अर्थ बतलाये तथा अब छह अन्य अर्थ बतलाये हैं, इस प्रकार कुल मिलाकर उन्नीस अर्थ हुए।

**अनुभाष्य**

२०४। आगे तेर अर्थ (अर्थात् पहले तेरह अर्थ)—मध्य चतुर्विंश परिच्छेद में पूर्वोक्त १५७ श्लोक का अनुभाष्य द्रष्टव्य; अन्य छह यह हैं,—१) 'मनोरमणशील' (१५९ संख्या): २) 'यत्नेरमण-शील' (१६२ संख्या); ३) 'धैर्यशील' (१६८ संख्या); ४) 'बुद्ध्याराम पण्डितमुनि' (१८१ संख्या); ५) 'बुद्ध्याराम निर्ग्रन्थ मूर्ख (१८१ संख्या); ६) कृष्णदास-स्वभाव विशिष्ट' आत्माराम (१९५ संख्या)।

'आत्मारामाः'-पद के अन्तर्गत आत्मा-शब्द के (२) 'देह'-अर्थ की व्याख्या—

**एइ उनिश अर्थ करिलुँ, आगे शुन आर।**
**'आत्मा'-शब्दे 'देह' कहे,—चारि अर्थ तार॥२०५॥**

**२०५। प० अनु०—**इस प्रकार मैंने तुम्हें उन्नीस अर्थ बतलाये हैं, अब तुम आगे सुनो। 'आत्मा' शब्द का एक अर्थ है—'देह'। अतः आत्माराम का एक अन्य अर्थ हुआ, जो देह में रमण करते हैं। आत्मा का देह अर्थ करने पर आत्माराम श्लोक में अन्य चार अर्थ प्रकाशित होंगे।

**अनुभाष्य**

२०५। चारि अर्थ तार (चार अन्य अर्थ)—१) उपाधिक ब्रह्म देह (२०६ संख्या); (२) कर्मनिष्ठ याज्ञिकों का कर्मदेह (२०८ संख्या); तपोदेह (२१० संख्या); (४) सर्वकाम देह (२१२ संख्या)।

साधुसङ्ग के फल से देहात्मबुद्धि अथवा विवर्त्तवादियों को भी विवर्त्त बुद्धि के त्याग से कृष्ण भक्ति की प्राप्ति—

**देहारामी देहे भजे 'देहोपाधि ब्रह्म'।**
**सत्सङ्गे सेह करे कृष्णेर भजन॥२०६॥**

**२०६। प० अनु०—**देहारामी देह में ही देह उपाधियुक्त ब्रह्म का भजन करते हैं, यदि उन्हें भी सत्सङ्ग की प्राप्ति हो जायें, तो वे भी श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

**अनुभाष्य**

२०६। देहारामी देह को उपाधिक ब्रह्ममूर्त्ति समझकर अपनी देह की सेवा करते-करते साधु-सङ्ग में उस विवर्त्त-बुद्धि को छोड़कर कृष्णसेवा करते हैं।

श्रीमद्भागवत (१०/८७/१८) में—

**उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः**
**परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्।**
**तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं**
**पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे॥२०७॥**

२०७। [ आदि ऋषि श्रीनारायण ने कहा— ] (ऋषियों के सम्प्रदाय मार्ग में) जो कर्मयोग से उदर अर्थात् मणिपुर में स्थित ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे (अर्थात् 'शार्कशक्ष' ऋषिगण)—कुर्पदृक् अर्थात् स्थूल दृष्टि एवं आरुणि ऋषिगण (सम्प्रदाय भुक्त ऋषिगण) नाड़ी समूह के प्रसरण-स्थान दहर अर्थात् हृदयाकाश में (सूक्ष्म ब्रह्म की) उपासना करते हैं। हे अनन्त, उससे उत्कृष्ट शिरोगत (मूलाधार से आरम्भ करके हृदय के मध्य में से होकर मस्तक, ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त प्रत्युदगत्) सहस्त्र दल-पद्म स्वरूप आपका (उपलब्धिक्षेत्र सुषुम्ना-नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्मय) धाम में उठकर योगीगण फिर से संसार में पतित नहीं होते।

**अनुभाष्य**

२०७। मध्य, चतुर्विंश परिच्छेद १६० संख्या द्रष्टव्य।

साधुसङ्ग के फल से देहारामी कर्मी को भी कर्म का त्याग करके शुद्धभक्ति की प्राप्ति—

**देहारामी कर्मनिष्ठ—याज्ञिकादि जन।**
**सत्सङ्गे 'कर्म' त्यजि' करय भजन॥२०८॥**

**२०८। प॰ अनु॰—**कर्मनिष्ठ अर्थात् यज्ञ आदि करने वाले देहारामी भी सत्सङ्ग के प्रभाव से कर्म का त्याग करके श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

**अनुभाष्य**

२०८। देहारामी कर्मनिष्ठ—यज्ञादि परायण; वे भी सुकृति के फल से भक्त के सङ्ग में कर्मनिष्ठारूपी यज्ञ का त्याग करके कृष्ण का भजन करते हैं।

शौनक आदि के द्वारा कर्मकाण्ड की निन्दा एवं श्री सूत की हरिकथा के कीर्त्तन में प्रवृत्ति की प्रशंसा—
श्रीमद्भागवत (१/१८/१२)—

**कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान्।**
**आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु॥२०९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०९। (हे सूत,) आश्वास (अर्थात् निश्चय-फल की प्रत्याशा से) रहित इस कर्ममार्ग में धुएँ के द्वारा धूम से मलिन हो रहे हमें, आप गोविन्द के चरण-कमल के मधुमय आसव (चरणामृत) का पान करा रहे हैं।

**अनुभाष्य**

२०९। महाभागवत श्रीसूत-गोस्वामी के द्वारा शुश्रुषु शौनक आदि के निकट हरिकथा रूपी भागवत का कीर्तन आरम्भ करने पर ऋषिगण अपने द्वारा कृत तुच्छ कर्मकाण्ड के अनुष्ठान की निन्दा कर रहे हैं,—

अस्मिन् अनाश्वासे (अविश्वसनीये) कर्मणि (सत्रे) धूमधूम्रात्मनां (धूमेन धूम्रो विवर्णो आत्मनो शरीर-चित्ते येषां तेषां तान् इत्यर्थः) भवान् मधु (मधुर) गोविन्दपादपद्मासवं (श्रीकृष्ण-चरणाब्जयोः मकरन्दं श्रीहरिकथामृतमित्यर्थः) आपाययति (श्रावयति)।

साधुसङ्ग में देहारामी तपस्वी विषयी के भी तपस्यारूपी भोग के त्याग से शुद्धभक्ति की प्राप्ति—

**'तपस्वी' प्रभृति जत देहारामी हय।**

**साधुसङ्गे तप छाड़ि' श्रीकृष्ण भजय॥२१०॥**

**२१०। प० अनु०—**तपस्वी आदि जितने प्रकार के देह में रमण करने वाले होते हैं, वे सभी साधुसङ्ग के प्रभाव से तपस्या का परित्याग करके श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

**अनुभाष्य**

२१०। देहारामी तपस्वी आदि कृष्णभक्त के सङ्ग में तपस्या का त्याग करके कृष्ण-भजन करते हैं।

शास्त्र प्रमाण—
श्रीमद्भागवत (४/२१/३१) में—

**यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्वि-**
**नामशेषजन्मोपचितं मलं धियः।**
**सद्यः क्षिणोत्यन्वऽमेधती सती यथा**
**पदांगुष्ठविनिःसृता सरित्॥२११॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२११। कृष्ण के चरणकमल के अगूँठे से निकली गङ्गा-नदी की भाँति श्रीकृष्ण की चरण-सेवा की रुचि, प्रतिदिन वृद्धि प्राप्त करके (विषयी) तपस्वियों के अशेष जन्मों में एकत्रित बुद्धि के मल का शीघ्र ही नाश कर देती है।

**अनुभाष्य**

२११। प्राचीन काल में पृथ्वीपति पृथु महाराज ने एक महायज्ञ का अनुष्ठान करके वहाँ एकत्रित देवताओं, ऋषियों और राजाओं के समक्ष खड़े होकर पूर्व-पूर्व महाजनों के द्वारा अनुसृत विष्णुसेवा के विधेयत्व (निश्चित कर्त्तव्य) और प्रयोजनीयता का वर्णन कर रहे हैं,—

यत्पादसेवाभिरुचिः (यस्य हरेः पादयोः सेवायाम् अभिरुचिः), यथा (तस्य हरेः) पदाङ्गुष्ठविनिःसृता (पादपद्मोद्भवा) सरित् (नदी, गङ्गा, इवेत्यर्थः) अन्वहम् (अहनि अहनि प्रतिदिनम्) एधती (वर्द्धमाना) सती (सात्विकी सती) तपस्विनां (याज्ञिकाना) अशेषजन्मोपचितं (पूर्व-पूर्व-जन्मभिः संवृद्धं) धियः (बुद्धेः) मलं (कामादि-वासना-लक्षणं) सद्यः क्षिणोति (क्षपयति, तं यूयं स्वकर्मभिः भजतेति तृतीयेणान्वयः)।

कृष्ण की कृपा से सकाम देहारामी का भी
त्यक्तकाम अथवा निष्काम होकर शुद्ध कृष्णभजन—

**देहारामी, सर्वकाम—सब आत्माराम।**
**कृष्णकृपाय कृष्ण भजे छाड़ि' सब काम॥२१२॥**

**२१२। प० अनु०—**देह के सुख के लिये अनेक प्रकार की कामनाओं से युक्त व्यक्ति देहारामी कहे जाते हैं, अतः वे भी आत्माराम है। श्रीकृष्ण की कृपा से ऐसे लोग भी सब प्रकार की कामनाओं का परित्याग करके श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।

**अनुभाष्य**

२१२। देहारामी सर्वकामी आत्मारागमण सब प्रकार की कामनाओं रूपी अनर्थ का परित्याग करके कृष्ण के अनुग्रह के बल से कृष्ण भजन करते हैं।

हरिभक्तिसुधोदय के
धुव्रचरित्र (७/२८) में—

**स्थानाभिलाषी तपसि स्थितोऽहं**
**त्वां प्राप्तवान् देवमुनीन्द्रगुह्यम्।**
**काचं विचिन्वन्नपि दिव्यरत्नं स्वामिन्**
**कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे॥२१३॥**

२१३। श्रीकृष्ण की जब ध्रुव को वर देने की इच्छा की, तब ध्रुव ने कहा,—स्वामिन्, मैं स्थान प्राप्ति का अभिलाषी बनकर आपकी तपस्या में स्थित हुआ था, किन्तु अब देवताओं और मुनियों के लिये भी दुर्लभ आपको प्राप्त करके मैं कृतार्थ हो गया हूँ—सामान्य एक काँच को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुझे दिव्यरत्न मिल गया है। मैं और किसी अन्य वर की याचना नहीं करता हूँ।

### अनुभाष्य

२१३। मध्य द्वाविंश परिच्छेद ४२ संख्या द्रष्टव्य।

यहाँ तक तेईस प्रकार के अर्थ—

**एइ चारि अर्थ सह हइल 'तेईश' अर्थ।**
**आर तिन अर्थ शुन परम समर्थ॥२१४॥**

**२१४। प॰ अनु॰—**हे सनातन, इन चार अर्थों के साथ आत्माराम श्लोक के कुल तेइस अर्थ हो गये। अब तुम अन्य तीन अर्थ सुनो, जो कि बहुत महत्वपूर्ण हैं।

### अनुभाष्य

२१४। पहले कहे गये उन्नीस प्रकार के अर्थों के साथ (२०४ संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य) 'आत्माराम'-शब्द का अर्थ इन चार प्रकार के 'देहाराम' (२०५ संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य) को समझाने पर 'तेईस' प्रकार का अर्थ होता है।

और तीन अर्थ—१) च-शब्द का 'अन्वाचय'-अर्थ, (२) च-शब्द का 'एव-अर्थ और 'अपि'-शब्द का 'गर्हा'-अर्थ एवं (३) निर्ग्रन्थ-शब्द का 'निर्धन'-अर्थ।

च-शब्द की 'समुच्चय' के अर्थ में व्याख्या—

**च-शब्दे 'समुच्चये', आर अर्थ कय।**
**'आत्मारामाश्च मुनयश्च' कृष्णेरे भजय॥२१५॥**
**'निर्ग्रन्थाः' हञा ईँहा 'अपि'—निर्द्धारणे।**
**'रामश्च कृष्णश्च' यथा विहरये वने॥२१६॥**

**२१५-२१६। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

### अनुभाष्य

२१५। च-शब्द का समुच्चय अर्थ पहले ही (१४६ संख्या में) कथित हुआ है; उसके द्वारा 'आत्माराम' एवं 'मुनि' कृष्णभजन करते हैं। और अर्थ—'समुच्चय'-अर्थ के अलावा अन्य अर्थ।

२१६। 'अपि' निर्द्धारण के अर्थ में प्रयुक्त; 'निर्ग्रन्थाः' आत्माराम और मुनि, दोनों का 'विशेषण'। ईँहा-इस स्थान पर; यथा, 'राम और कृष्ण वन में विहार करते हैं' कहने पर दोनों का ही वनविहार उद्दिष्ट होता है।

च-शब्द की अन्वाचयार्थ में व्याख्या—

**च-शब्दे 'अन्वाचये' अर्थ कहे आर।**
**'वटो, भिक्षामट, गाञ्चानय' जैछे प्रकार॥२१७॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

२१७। ''वटो, भिक्षामट, गाञ्चानय'',—''हे वटु (ब्राह्मन), भिक्षा में चलो, गाय को भी लाओ।'' इस वाक्य में च-शब्द जिस प्रकार 'अन्वाचय' अर्थ करता है, आत्माराम-श्लोक में भी वैसा ही अर्थ करता है।

इस अर्थ से मुनि का मुख्य भजन, आत्माराम का गौण भजन—

**कृष्णमनने मुनि कृष्णे सर्वदा भजय।**
**'आत्मारामा अपि' भजे,—गौण अर्थ कय॥२१८॥**

**२१७-२१८। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

### अनुभाष्य

२१७-२१८। च-शब्द से अन्वाचय-अर्थ अर्थात् एक का प्राधान्य और अन्य का अप्राधान्य। उदाहरण में कहा जाता है,—'हे ब्राह्मण बालक, भिक्षा करो एवं यदि मिले, गाय को भी लाओ';—इस स्थान पर भिक्षा का ही प्राधान्य है एवं गाय को लाने का अप्राधान्य सूचित हुआ है; (उसी प्रकार) कृष्णमननशील मुनियों का ही सदैव कृष्ण-भजन में मुख्य रूप से 'प्राधान्य' एवं आत्माराम गणों का कृष्ण-भजन में गौण रूप से 'अप्राधान्य'—यही अन्वाचयार्थ का प्रयोग है।

च-शब्द की 'एव'-के अर्थ में और 'अपि'-शब्द की 'गर्हा'-के अर्थ में व्याख्या—

**'च' एवार्थे 'मुनयः एव' कृष्णेरे भजय।**
**'आत्मारामा अपि'—'अपि' 'गर्हा'-अर्थ कय॥२१९॥**

**२१९। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

२१९। च-शब्द 'एवार्थे' एवं अपि-शब्द 'निन्दार्थे' प्रयुक्त होने पर इस प्रकार का अर्थ होता है,—'आत्माराम होने पर भी वैसी अवस्था के गौरव को त्यागकर मुनिगण ही कृष्ण का भजन करते हैं।'

इन दोनों स्थानों पर ही 'निर्ग्रन्थ'-शब्द का विशेषण होना—

**'निर्ग्रन्थ हञा'—एइ दुँहार 'विशेषण'।**
**आर अर्थ शुन, जैछे साधुर सङ्गम॥२२०॥**

**२२०। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

२२०। 'निर्ग्रन्थ'—आत्माराम और मुनि, यह दोनों का ही 'विशेषण' है; अन्य तीसरा अर्थात् छब्बीसवाँ अर्थ,—साधु-श्रेष्ठ श्रीनारद के सङ्ग का फल व्याध में जिस प्रकार से लक्षित हुआ था, वैसे।

निर्ग्रन्थ-शब्द का अर्थ—

**निर्ग्रन्थ-शब्दे कहे तबे 'व्याध', 'निर्धन'।**
**साधुसङ्गे सेह करे श्रीकृष्ण-भजन॥२२१॥**

**२२१। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

२२१। निर्गन्थ-शब्द से 'अपि' निर्द्धारण के अर्थ में प्रयुक्त होने पर, साधन आदि के धन से विहीन अयोग्य व्याध भी नारद जैसे साधु के सङ्ग के प्रभाव से कृष्ण में रमणशील होकर भजन करता है।

साधुसङ्ग के फल से व्याध (शिकारी) की भी पाप से निवृत्ति और कृष्णगतचित्त होना अथवा महाभागवत होना—

**'कृष्णारामाश्च' एव कृष्ण-मनन।**
**व्याध हञा हय पूज्य भागवतोत्तम॥२२२॥**

**२२२। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

२२२। 'आत्मा'-शब्द का अर्थ—'कृष्ण'; कृष्ण में रमणशील होने के कारण कृष्णाराम एवं वही कृष्णाराम ही कृष्णमननशील है। [ व्याध होने पर भी वे पूज्य भागवतोत्तम बन गये। ]

स्कन्ध-पुराण में वर्णित व्याध और नारद के संवाद का वर्णन—

**एक भक्त-व्याधेर कथा शुन सावधाने।**
**जाहा हैते हय सत्सङ्ग-महिमार ज्ञाने॥२२३॥**

**२२३। प॰ अनु॰—**हे सनातन, एक भक्त व्याध (शिकारी) की कथा बहुत सावधानी पूर्वक सुनो, जिससे सत्सङ्ग की महिमा का ज्ञान होता है।

**एक दिन श्रीनारद देखि' नारायण।**
**त्रिवेणी-स्नाने प्रयाग करिला गमन॥२२४॥**

**२२४। प॰ अनु॰—**एक दिन श्रीनारद ने भगवान् श्रीनारायण का दर्शन करके त्रिवेणी में स्नान करने के लिये प्रयाग की ओर गमन किया।

**वनपथे देखे मृग आछे भूमे पड़ि'।**
**बाण-विद्ध भग्नपाद करे धड़फड़ि॥२२५॥**

**२२५। प॰ अनु॰—**वन के पथ पर चलते-चलते उन्होंने देखा कि एक हिरण भूमि पर पड़ा था तथा बाण के लगने के कारण उसकी टाँग टूट गयी थी और वह छटपट कर रहा था।

**आर कतदूरे एक देखेन शूकर।**
**तैछे विद्ध भग्नपाद करे धड़फड़॥२२६॥**

**२२६। प॰ अनु॰—**थोड़ी दूरी पर श्रीनारद को एक सुअर दिखलायी दिया, उसकी भी हिरण की ही भाँति बाण लगने के कारण टाँग टूट गयी थी तथा वह भी छटपट कर रहा था।

**ऐछे एक शशक देखे आर कत दूरे।**
**जीवेर दुःख देखि' नारद व्याकुल-अन्तरे॥२२७॥**

**२२७। प॰ अनु॰—**कुछ ही दूरी पर श्रीनारद ने देखा कि उसी प्रकार ही एक खरगोश करहा रहा था। जीवों के दुःख को देखकर श्रीनारद का हृदय व्याकुल हो उठा।

**कतदूरे देखे व्याध वृक्षे ओंत हञा।**
**मृग मारिवारे आछे बाण जुड़िया॥२२८॥**

**२२८। प॰ अनु॰—श्रीनारद ने कुछ ही दूरी पर देखा कि** एक व्याध वृक्ष की ओट में छिपकर खड़ा है तथा उसने अन्य एक मृग को मारने के लिये बाण का निशाना साध रखा है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२२८। उँत—अन्तराल में (छिपकर), बीच में जाकर।

**श्यामवर्ण, रक्तनेत्र, महाभयङ्कर।**
**धनुर्बाण हस्ते,—जेन यम दण्डधर॥२२९॥**

**२२९। प॰ अनु॰—**वह व्याध काले रङ्ग का था, उसकी लाल रङ्ग की आँखे बहुत ही भयङ्कर थी। हाथों में धनुष-बाण को पकड़े वह ऐसा लग रहा था मानो दण्डधारी साक्षात् यम हो।

**पथ छाड़ि' नारद तार निकटे चलिल।**
**नारदे देखि' मृग सब पलाञा गेल॥२३०॥**

**२३०। प॰ अनु॰—**श्रीनारद अपना मार्ग छोड़कर उसकी ओर चल दिये। श्रीनारद को देखकर सब हिरण भाग गये।

**क्रुद्ध हञा व्याध ताँरे गलि दिते चाय।**
**नारद-प्रभावे मुखे गलि नाहि आय॥२३१॥**

**२३१। प॰ अनु॰—**हिरणों को वहाँ से भागते देख व्याध को बहुत क्रोध आया तथा वह नारद जी को गाली देना चाहता था किन्तु श्रीनारद जी के प्रभाव से उसके मुख में कोई गाली आयी ही नहीं।

**''गोसाञि, प्रयाण-पथ छाड़ि' केने आइला।**
**तोमा देखि' मोर लक्ष्य मृग पलाइला॥''२३२॥**

**२३२। प॰ अनु॰—**व्याध ने कहा—हे गोसाञि, आप जाने वाले मार्ग को छोड़कर इस ओर क्यों आये हैं? आपको देखकर वे सब हिरण भाग गये हैं, जिन्हें मैंने निशाना बनाया था।

**अनुभाष्य**

२३२। प्रयाण-पथ—पाठान्तर में 'प्रमाण-पथ'; जिस निर्दिष्ट पथ से पथिक जाते हैं अर्थात् प्रचलित पथ।

**नारद कहे,—''पथ भूलि' आइलाङ्ग पूछिते।**
**मने एक संशय हय, ताहा खण्डाइते॥२३३॥**

**२३३। प॰ अनु॰—**श्रीनारद ने कहा—''मैं अपने मार्ग को छोड़कर तुमसे कुछ पूछने के लिये ही आया हूँ। मेरे मन में एक संशय है; मैं उसे दूर करना चाहता हूँ।

**पथे जे शूकर-मृङ्ग, जानि तोमार हय।''**
**व्याध कहे,—''जेइ कह, सेइ त' निश्चय॥''२३४॥**

**२३४। प॰ अनु॰—**मुझे लगता है कि मार्ग में पड़े हुए सुअर और हिरण तुम्हारे हैं।' व्याध ने कहा—'आप जो कह रहे हैं, वह परम सत्य है।

**नारद कहे,—''यदि जीवे मार' तुमि बाण।**
**अर्द्ध-मारा कर केने, ना लञो पराण?''२३५॥**

**२३५। प० अनु०—**श्रीनारद ने कहा—'यदि तुम किसी जीव को बाण मारते हो, तब फिर तुम उसे अधमरा क्यों करते हो, उसके प्राण ही क्यों नहीं ले लेते?'

**व्याध कहे,—"शुन गोसाञि, 'मृङ्गारि' मोर नाम।**
**पितार शिक्षाते-आमि करि ऐछे काम॥२३६॥**

**२३६। प० अनु०—**व्याध ने कहा—'हे गोसाञि, सुनो! मेरा नाम 'मृगारि' है तथा मैं अपने पिता की शिक्षा के अनुसार ही ऐसा कार्य करता हूँ।

**अर्द्ध-मारा जीव यदि धड़फड़ करे।**
**तबे त' आनन्द मोर बाड़ये अन्तरे॥"२३७॥**

**२३७। प० अनु०—**'अधमरा जीव जब छटपट करता है, तभी तो मेरे हृदय का आनन्द बहुत अधिक बढ़ जाता है।

**नारद कहे,—"एकवस्तु मागि तोमा स्थाने।"**
**व्याध कहे,—"मृगादि लह, जेइ तोमार मने॥२३८॥**

**२३८। प० अनु०—**श्रीनारद ने कहा—'मैं तुमसे एक वस्तु माँगना चाहता हूँ।' व्याध ने कहा—'हिरण आदि आपको जो कुछ लेने की इच्छा हो, आप ले लो।

**मृगछाल चाह यदि, आइस मोर घरे।**
**जेइ चाह, ताहा दिब मृगव्याध्राम्बरे॥"२३९॥**

**२३९। प० अनु०—**'यदि आप हिरण की छाल चाहते हैं, तब फिर आप मेरे घर पर चलो। आप हिरण की छाल, व्याध्र की छाल—जो कुछ भी चाहेंगे, मैं दे दूँगा।'

**नारद कहे,—"इहा आमि किछु नाहि चाहि।**
**आर एक दान आमि मागि तोमा-ठाञि॥२४०॥**

**२४०। प० अनु०—**श्रीनारद ने कहा—"मैं इनमें से कुछ भी नहीं चाहता हूँ। मैं तो अन्य एक दान तुमसे माँगता हूँ।

**कालि हैते तुमि जेइ मृगादि मारिबा।**
**प्रथमेइ मारिबा, अर्द्ध-मारा ना करिबा॥"२४१॥**

**२४१। प० अनु०—**'कल से तुम जिस हिरण आदि को मारोगे, उसे पहली बार में ही पूरी तरह से मार देना, उसे अधमरा मत करना।"

**व्याध कहे,—"किबा दान मागिला आमारे।**
**अर्द्ध मारिले किबा हय, ताहा कह मोरे॥"२४२॥**

**२४२। प० अनु०—**व्याध ने कहा—'आपने मुझसे यह कैसा दान माँगा है, आधा मारने से क्या होता है, पहले मुझे इसके विषय में बतलाइये।"

**नारद कहे,—"अर्द्ध मारिले जीव पाय व्यथा।**
**जीवे दुःख दितेछ, तोमार हइबे ऐछे अवस्था॥२४३॥**

**२४३। प० अनु०—**श्रीनारद ने कहा—"आधा मारने से जीव को कष्ट होता है। तुम जीवों को दुःख दे रहे हो, तुम्हारी भी ऐसी ही अवस्था होयेंगी।

**व्याध तुमि, जीव मार—'अल्प' अपराध तोमार।**
**कदर्थना दिया मार'—ए पाप 'अपार'॥२४४॥**

**२४४। प० अनु०—**तुम व्याध हो, इसलिए जीव को मारते हो, इसी कारण तुम्हारा बहुत कम अपराध होता है, किन्तु क्योंकि तुम उन्हें तड़फा-तड़फा कर मारते हो, यह तो अपार (घोर) पाप है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२४४। कदर्थना दिया—कष्ट देकर।

**कदर्थिया तुमि जत मारिला जीवेरे।**
**तारा तैछे तोमा मारिबे जन्म-जन्मान्तरे॥"२४५॥**

**२४५। प० अनु०—**तुमने इस प्रकार तड़फा-तड़फाकर जितने जीवों को मारा है, वे भी तुम्हें जन्म-जन्मान्तर तक वैसे ही मारेंगे।"

**नारद-सङ्गे व्याधेर मन परसन्न हइल।**
**ताँर वाक्य शुनि' मने भय उपजिल॥२४६॥**

**२४६। प० अनु०—**नारद के संग से व्याध का मन प्रसन्न हो गया किन्तु श्रीनारद के वचन सुनकर उसके मन में भय उत्पन्न हो गया।

**व्याध कहे,—"बाल्य हैते एइ आमार कर्म।**
**केमने तरिब आमि पामर अधम?२४७॥**

**२४७। प० अनु०—**व्याध ने कहा—"बचपन से ही मेरा यही कार्य है। मैं अधम, पामर किस प्रकार से तरुँगा?

**एइ पाप जाय मोर, केमन उपाये?**
**निस्तार करह मोरे, पडों तोमार पाये॥"२४८॥**

**२४८। प० अनु०—**"किस उपाय के द्वारा मेरे द्वारा किये गये ये पाप दूर हो सकते हैं? आप मेरा उद्धार कीजिए, मैं आपके चरणों में पड़ता हूँ।"

**नारद कहे,—"यदि धर आमार वचन।**
**तबे से करिते पारि तोमार मोचन॥"२४९॥**

**२४९। प० अनु०—**श्रीनारद ने कहा—"यदि तुम मेरे वचन मानो, तब मैं तुम्हारा उद्धार कर सकता हूँ।"

**व्याध कहे,—"जेइ कह, सेइ त' करिब।"**
**नारद कहे,—"धनुक भाङ्ग, तबे से कहिब॥"२५०॥**

**२५०। प० अनु०—**व्याध ने कहा—"आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगा।' नारद ने कहा—"धनुष तोड़ो, तब मैं कुछ बोलूँगा।"

**व्याध कहे,—"धनुक भाङ्गिले बाँचिब केमने?"**
**नारद कहे,—"आमि अन्न दिब प्रति दिने॥"२५१॥**

**२५१। प० अनु०—**व्याध ने कहा—"धनुष को तोड़ देने से मैं बचूँगा कैसे?" श्रीनारद ने कहा—"मैं प्रतिदिन तुम्हें भोजन की सामग्री अन्न आदि दूँगा।"

**धनुक भाङ्गि व्याध ताँर चरणे पड़िल।**
**तारे उठाञा नारद उपदेश कैल॥२५२॥**

**२५२। प० अनु०—**धनुष को तोड़कर व्याध श्रीनारद के चरणों में गिर पड़ा। उसे उठाकर श्रीनारद ने उसे उपदेश प्रदान किया।

**"घरे गिया ब्राह्मणे देह' जत आछे धन।**
**एक एक वस्त्र परि' बाहिर हओ दुइ जन॥२५३॥**

**२५३। प० अनु०—**श्रीनारद ने व्याध से कहा—'घर जाकर तुम्हारे पास जो भी धन है, वह सब 'ब्राह्मणों को दे दो। तुम और तुम्हारी पत्नी केवल एक-एक वस्त्र पहनकर उस घर को छोड़ दो।

**नदी-तीरे एकखानि कुँटिया करिया।**
**तार आगे एकपिण्डि तुलसी रोपिया॥२५४॥**

**२५४। प० अनु०—**नदी के तट पर एक कुटिया बनाकर उसके आगे एक चबूतरा बनाकर उस पर तुलसी का पौधा लगाओ।

**तुलसी-परिक्रमा कर, तुलसी-सेवन।**
**निरन्तर कृष्णनाम करिह कीर्त्तन॥२५५॥**

**२५५। प० अनु०—**तुम लोग तुलसी की परिक्रमा, तुलसी की सेवा तथा निरन्तर कृष्णनाम का कीर्त्तन करना।

**आमि तोमाय बहु अन्न पाठाइमु दिने।**
**सेइ अन्न लबे, जत खाओ दुइजने॥''२५६॥**

**२५६। प॰ अनु॰—**मैं दिन के समय तुम्हारे पास बहुत सी भोजन सामग्री भेजूँगा। तुम उसमें से उतनी ही सामग्री लेना, जितना तुम दोनों खा सको।''

**तबे सेइ मृगादि तिने नारद सुस्थ कैल।**
**सुस्थ हञा मृगादि तिने धाञा पलाइल॥२५७॥**

**२५७। प॰ अनु॰—**तब श्रीनारद ने उन अधमरे मृग आदि तीन पशुओं को स्वस्थ किया तथा स्वस्थ होने के साथ-ही-साथ मृग आदि तीन पशुओं तीनों पशु दौड़कर चले गये।

**देखिया व्याधेर मने हैल चमत्कार।**
**घरे गेल व्याध, गुरुके करि' नमस्कार॥२५८॥**

**२५८। प॰ अनु॰—**ऐसा देखकर व्याध का मन आश्चर्यचकित हो गया। अपने गुरु श्रीनारद को नमस्कार करके व्याध अपने घर लौट गया।

**यथा-स्थाने नारद गेला, व्याध घरे आइल।**
**नारदेर उपदेशे सकल करिल॥२५९॥**

**२५९। प॰ अनु॰—**श्रीनारद अपने गन्तव्य स्थान की ओर चल दिये तथा इधर व्याध अपने घर आ पहुँचा। व्याध ने श्रीनारद के उपदेशानुसार सब कार्य किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२५९। नारदेर उपदेशे—नारद के उपदेश के अनुसार।

**ग्रामे ध्वनि हैल,—'व्याध 'वैष्णव' हइल।'**
**ग्रामेर लोक सब अन्न आनिते लागिल॥२६०॥**

**२६०। प॰ अनु॰—**पूरे ग्राम में यह बात फैल गयी कि व्याध वैष्णव बन गया है। ग्राम के सभी लोग अन्न आदि भोजन सामग्रियाँ लाने लगे।

**एकदिन अन्न आने दश-बिश जने।**
**दिले तत लय, जत खाय दुइजने॥२६१॥**

**२६१। प॰ अनु॰—**एक दिन में दस-बीस लोग भोजन की सामग्री ले आते, किन्तु व्याध उतना ही स्वीकार करते, जितना दो लोग खा सकते थे।

**एकदिन नारद कहे,—''शुनह, पर्वते।**
**आमार एक शिष्य आछे, चलह देखिते॥''२६२॥**

**२६२। प॰ अनु॰—**एक दिन श्रीनारद ने श्रीपर्वत ऋषि से कहा—हे पर्वत! सुनो, मेरा एक शिष्य है, चलो उसे देखने के लिये चलें।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२६२। शुनह पर्वते—ओह पर्वत मुनि, सुनो।

**तबे दुइ ऋषि आइला सेइ व्याध-स्थाने।**
**दूर हैते व्याध पाइल गुरुर दरशने॥२६३॥**

**२६३। प॰ अनु॰—**तब श्रीनारद ऋषि और श्रीपर्वत ऋषि—दोनों व्याध के स्थान पर आये। व्याध ने दूर से ही अपने गुरु को आते देख लिया।

**आस्ते-व्यस्ते धाञा आसे, पथ नाहि पाय।**
**पथेर पिपीलिका इति-उति धरे पाय॥२६४॥**

**२६४। प॰ अनु॰—**व्याध अत्यधिक अस्त-व्यस्त होकर दौड़ते हुए उस दिशा को जाने लगे, जिस ओर से उनके गुरुदेव आ रहे थे, किन्तु उन्हें बीच में आने का मार्ग नहीं मिल रहा था, क्योंकि सब ओर चीटियां इधर-उधर आ-जा रही थी। इसी कारण व्याध अपने पैरों को इधर-उधर रख रहे थे।

**दण्डवत्-स्थाने पिपीलिकारे देखिया।**
**वस्त्रे स्थान झाड़ि' पड़े दण्डवत् हञा॥२६५॥**

**२६५। प० अनु०—**उस दण्डवत् वाले स्थान पर भी चीटियों को देखकर व्याध ने उस स्थान को अपने वस्त्र से झाड़कर साफ किया तथा फिर दण्डवत् किया।

**नारद कहे,—''व्याध, एइ ना हय आश्चर्य।**
**हरिभक्तये हिंसा-शून्य हय साधुवर्य॥"२६६॥**

**२६६। प० अनु०—**श्रीनारद ने कहा—हे व्याध, तुम्हारा ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हरिभक्ति के प्रभाव से व्यक्ति हिंसा रहित होने के कारण सर्वश्रेष्ठ साधु बन जाता है।

स्कान्दवचन—

**एते न ह्यद्भुता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः।**
**हरिभक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः परतापिनः॥२६७॥**

२६७। [ श्रीनारद ऋषि ने कहा— ] हे व्याध, तुममें जो अंहिसा आदि गुण उत्पन्न हुआ है, वह अद्भुत नहीं है, क्योकि, जो हरिभक्ति में प्रवृत्त होता है, वह दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाला नहीं होता।

**अनुभाष्य**

२६७। मध्य, द्वाविंश परिच्छेद १४२ संख्या द्रष्टव्य।

**तबे सेइ व्याध दोंहारे अङ्गने आनिल।**
**कुशासन आनि' दोंहारे भक्तये बसाइल॥२६८॥**

**२६८। प० अनु०—**तब वह व्याध उन दोनों को अपने आङ्गन में ले आया तथा उसने कुशासन लाकर उन दोनों को भक्तिपूर्वक बैठाया।

**जल आनि' भक्त्ये दोंहार पाद प्रक्षालिल।**
**सेइ जल स्त्री-पुरुषे पिया शिरे लइल॥२६९॥**

**२६९। प० अनु०—**व्याध ने जल लाकर भक्तिपूर्वक उन दोनों के चरणों का अभिषेक किया तथा व्याध और उसकी पत्नी दोनों ने उस जल का पान करके उसे अपने सिर पर धारण किया।

**कम्प-पुलकाश्रु हैल कृष्णनाम गाञा।**
**उर्द्ध्वबाहु नृत्य करे वस्त्र उड़ाञा॥२७०॥**

**२७०। प० अनु०—**व्याध की देह में कम्प-पुलक-अश्रु आदि उत्पन्न हो गये तथा वह कृष्णनाम का गान करते हुए दोनों हाथों को उठाकर और कपड़े को हाथों से उड़ाते हुए नृत्य करने लगे।

**देखिया व्याधेर प्रेम पर्वत-महामुनि।**
**नारदेरे कहे,—''तुमि हओ स्पर्शमणि॥''२७१॥**

**२७१। प० अनु०—**व्याध के प्रेम को देखकर महामुनि श्रीपर्वत ने श्रीनारद से कहा कि आप स्पर्शमणि हैं।

स्कान्दवचन—

**''अहो धन्योऽसि देवर्षे कृपया यस्य तत्क्षणात्।**
**नीचोऽप्युत्पुलको लेभे लुब्धको रतिमच्युते॥२७२॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७२। हे देवर्षे, आप ही धन्य हैं, आपकी कृपा से नीच लुब्धक अर्थात् व्याध ने भी पुलकित होकर कृष्ण के प्रति रति प्राप्त की है।

**अनुभाष्य**

२७२। हे देवर्षे (नारद), अहो, (विस्मये, त्वं) धन्यः असि, यस्य (तव) कृपया नीचः (नीचवृत्तिः) लुब्धकः (व्याधः) अपि उत्पुलकः (रोमाञ्चितदेहः सन्) अच्युते (भगवति विष्णो) रतिं लेभे (प्राप)।

परम वैष्णव प्रवर श्रीनारद की कृपा से भक्त-व्याध के योग और क्षेम का समाधान—

**नारद कहे,—''वैष्णव, तोमार अन्न किछु आय?''**

**व्याध कहे,—"जारे पाठाओ, सेइ दिया जाय॥२७३॥**
**एत अन्न ना पाठाओ, किछु कार्य नाइ।**
**सबे दुइजनार योग्य भक्ष्यमात्र चाइ॥"२७४॥**
**नारद कहे,—"ऐछे रह, तुमि भाग्यवान्।"**
**एत बलि' दुइजन हइला अन्तर्धान॥२७५॥**

**२७३-२७५। प० अनु०—**श्रीनारद ने व्याध से पूछा—'हे वैष्णव, तुम्हारे पास कुछ अन्न आदि भोजन सामग्री आती है तो?' व्याध ने उत्तर दिया—'आप जिन्हें भेजते हैं, वह दे जाते हैं। किन्तु आप इतनी अधिक भोजन सामग्री मत भेजा कीजिए, उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योकि हमें तो केवल दो प्राणियों का ही भोजन चाहिए।' श्रीनारद ने कहा—'ऐसे ही रहते रहो, तुम बहुत सौभाग्यशाली हो।' इतना कहकर श्रीनारद ऋषि और श्रीपर्वत ऋषि—दोनों अन्तर्द्धान हो गये।

व्याध के उपाख्यान के श्रवण से साधुसङ्ग के माहात्म्य की उपलब्धि—

**एइ त' कहिलुँ तोमाय व्याधेर आख्यान।**
**जा शुनिले हय साधुसङ्ग-प्रभाव-ज्ञान॥२७६॥**

**२७६। प० अनु०—**हे सनातन, इस प्रकार मैंने तुम्हें व्याध की कथा सुनायी है, जिसे सुनने से साधुसङ्ग के प्रभाव का ज्ञान होता है।

यहाँ तक छब्बीस प्रकार के अर्थ—

**एइ आर तिन अर्थ गणनाते पाइल।**
**एइ दुइ अर्थ मिलि' 'छाबिश' अर्थ हैल॥२७७॥**

**२७७। प० अनु०—**इस प्रकार (पयार संख्या २१९-२२० तथा २२२ में कहे गये) अन्य तीन प्रकार के अर्थ जो प्राप्त होते हैं एवं पूर्व में कहे गये तेईंस अर्थ—इस प्रकार दोनों कुल मिलकर छब्बीस अर्थ हो गये।

### अनुभाष्य

२७७। 'ये दो अर्थ मिलकर'—पहले कहे गये २३ प्रकार के अर्थ (२१४ संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य) एवं अब यह तीन प्रकार का अर्थ, अर्थात् छब्बीस प्रकार के अर्थ हुए।

छब्बीस प्रकार के अर्थों के अलावा स्थूलरूप से दो प्रकार के अर्थों में सूक्ष्मतः बत्तीस प्रकार के अर्थ—

**आर अर्थ शुन, जाहा—अर्थेर भाण्डार।**
**स्थूले 'दुइ' अर्थ, सूक्ष्मे 'बत्रिश' प्रकार॥२७८॥**

**२७८। प० अनु०—**'आत्माराम' श्लोक का एक अन्य अर्थ सुनो, जो अर्थों का भाण्डार है। जिसमें स्थूलदृष्टि से साधारणतः दो अर्थ दिखलायी देते हैं, किन्तु सूक्ष्मरूप से विचार करने पर इस अर्थ में बत्तीस प्रकार के अर्थ हैं।

### अनुभाष्य

२७८। स्थूले दुई (स्थूलतः दो)—लगभग साधारण रूप में दो प्रकार—१) वैधभक्त और २) रागभक्त। सूक्ष्म रूप में बत्तीस प्रकार—सूक्ष्म रूप से भेद की गणना करने पर बत्तीस प्रकार के अर्थ होते हैं। वैधभक्त—सोलह प्रकार के, यथा,—१) परिषद दास, २) पारिषद सखा, ३) पारिषद पिता आदि गुरु, ४) पारिषद कान्ता, ५) साधन सिद्ध दास, ६) साधनसिद्ध सखा, ७) साधनसिद्ध पिता आदि गुरु, ८) साधनासिद्ध- कान्ता, ९) जातरति साधक दास, १०) जातरति साधक सखा, ११) जातरति साधक पिता-आदि गुरु, १२) जातरति साधक कान्ता, १३) अजातरति साधक दास, १४) अजातरति साधक सखा, १५) अजातरति साधक पितादि-गुरु, १६) अजातरति साधक-कान्ता। रागभक्त भी इस प्रकार सोलह प्रकार के हैं;—कुल बत्तीस प्रकार के आत्माराम भक्त हैं।

आत्मा-शब्द से कृष्ण के सभी अवतार—

**'आत्मा'-शब्दे कहे,—सर्वविध भगवान्।**
**एक 'स्वयं भगवान्', आर 'भगवान्'-आख्यान॥२७९॥**

**२७९। प० अनु०—**आत्मा शब्द का एक अर्थ सब प्रकार के भगवान् के स्वरूप भी है। इसके अन्तर्गत स्वयं भगवान् तथा भगवान् के अन्यान्य स्वरूप परिगणित होते हैं।

**अनुभाष्य**

२७९। आत्म-शब्द के द्वारा सब प्रकार के भगवान् को जाना जाता है; 'सर्वविध'-के अर्थ में—सब प्रकार के शुद्ध भक्तों के आराध्य अर्थात् स्वयं भगवान् कृष्ण और अन्यान्य कृष्ण स्वरूप भगवान। 'एक' अर्थात् सर्वविध प्रतीतिमय भगवान् के भी भगवान्—एकमात्र पूर्णतम स्वयं भगवान् 'श्रीकृष्ण'; ज्ञानी और योगी की प्राप्य वस्तु भगवत् पर्याय में गिने जाने पर भी सच्चिदानन्द विग्रह नहीं हैं,—भगवान् की प्रतीति मात्र ही हैं, यहाँ पर एकमात्र स्वयंरूप व्रजेन्द्रनन्दन ही व्रज के रागभक्तिमार्ग से प्राप्य हैं, कृष्ण के अन्यान्य स्वरूप, सभी भगवान् के नाम में अभिहित उनसे अभिन्न भगवद्-विग्रह होने पर भी वैधभक्ति मार्ग से ही प्राप्य हैं।

स्थूल रूप में दो प्रकार के भक्त—(१) विधि पूजक (२) रागयुक्त भक्त—

**ताँते रमे जेइ, सेइ सब—'आत्माराम'।**
**'विधिभक्त', 'रागभक्त',—दुइविध नाम॥२८०॥**

**२८०। प० अनु०—**उन भगवान् में जो रमण करते हैं, वे सब 'आत्माराम' हैं। ऐसे आत्माराम विधि-भक्त और राग-भक्त—इन दो प्रकार के होते हैं।

दोनों में से प्रत्येक के चार प्रकार—(१) नित्यसिद्ध, (२) साधनसिद्ध एवं (३) और (४) दो प्रकार के साधक—

**दुइविध भक्त हय चारि चारि प्रकार।**
**पारिषद, साधनसिद्ध, साधकगण आर॥२८१॥**

कुल मिलाकर अष्ट प्रकार—

**जात-अजात-रतिभेदे साधक दुइ भेद।**
**विधि-राग-मार्गे चारि चारि—अष्ट भेद॥२८२॥**

**२८१-२८२। प० अनु०—**विधिभक्त और राग-भक्त—ये दोनों प्रकार के भक्त चार-चार प्रकार के होते हैं—१) पार्षद, २) साधनसिद्ध, ३) जात रति साधक तथा, ४) अजात रति साधक। इस प्रकार विधि भक्त चार प्रकार के और राग-भक्त चार प्रकार के—कुल मिलाकर आठ प्रकार के भेद से युक्त हैं।

वैधीभक्ति में उक्त चार प्रकार के भक्तों में से प्रत्येक के चार प्रकार के भेद, कुल मिलाकर सोलह प्रकार—

**विधि भक्तये, नित्यसिद्ध पारिषद—'दास'।**
**'सखा', 'गुरु', 'कान्तागण',—चारिविध प्रकाश॥२८३॥**
**साधनसिद्ध—दास, सखा, गुरु, कान्तागण।**
**जातरति साधकभक्त—चारिविध जन॥२८४॥**
**अजातरति साधकभक्त,—ए चारि प्रकार।**
**विधिमार्गे भक्ते षोड़श भेद प्रचार॥२८५॥**

**२८३-२८५। प० अनु०—**विधि भक्ति के जो नित्य पार्षद हैं, वे दास, सखा, माता-पिता गुरुजन तथा कान्तागण—ये चार प्रकार के हैं। विधि भक्ति के साधनसिद्ध भक्त भी दास, सखा, माता-पिता गुरुजन तथा कान्तागण—ये चार प्रकार के हैं। जो जातरति साधक भक्त हैं, वे भी दास आदि चार प्रकार के हैं तथा अजात रति साधक भी दास आदि चार प्रकार के हैं। इस प्रकार विधिमार्ग के कुल सोलह प्रकार के भक्त हैं।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**२८१-२८९।** पारिषद अर्थात् नित्यसिद्ध, साधनसिद्ध, जातरतिसाधक और अजातरति-साधक—वैध और रागानुग के भेद से चार प्रकार के हैं। नित्यसिद्ध पारिषद—दास-सखा-गुरु-कान्ता

के भेद से पुनः चार प्रकार के हैं। साधनसिद्ध, जातरति साधक, अजातरति साधक, ये सब भी पुनः चार-चार प्रकार के हैं।

रागमयी भक्ति भी वैधी-भक्ति की भाँति सोलह प्रकार की; अतएव आत्माराम बत्तीस प्रकार—

**रागमार्गे ऐछे भक्ते षोड़श विभेद।**
**दुइ मार्गे आत्मारामेर बत्रिश विभेद॥२८६॥**

**२८६। प० अनु०—**विधि मार्ग के भक्तों की भाँति रागमार्ग के भी सोलह प्रकार के भक्त हैं। इस प्रकार विधि मार्ग और रागमार्ग—इन दोनों मार्गों के भक्त मिलाकर कुल बत्तीस प्रकार के भक्त अर्थात् आत्माराम हैं।

इनके साथ मुनि, निर्ग्रन्थ, च और अपि का लगना—

**'मुनि', 'निर्ग्रन्थ', 'च', 'अपि',—चारि शब्देर अर्थ।**
**जाँहा जेइ लागे, ताहा करिये समर्थ॥२८७॥**

**२८७। प० अनु०—**'मुनि', 'निर्ग्रन्थ', 'च' एवं 'अपि'—इन चारों शब्दों के अर्थ, जहाँ जैसे युक्त हैं, वहाँ वैसे लग जायेंगे।

यहाँ तक ५८ प्रकार के अर्थ—

**बत्रिशे छाबिशे मिलि' अष्टपञ्चाश।**
**आर एक भेद शुन अर्थेर प्रकाश॥२८८॥**

**२८८। प० अनु०—**इस प्रकार विधि और रागमार्ग के बत्तीस प्रकार के आत्मारामों के साथ आत्माराम-श्लोक के बत्तीस अर्थ तथा पहले बतलाये गये छब्बीस अर्थ—कुल मिलाकर अट्ठावन अर्थ हो गये। अब एक ओर अर्थ श्रवण करो।

**अनुभाष्य**

२८८। भक्त की श्रेणी में बत्तीस प्रकार (२७८ संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य) एवं ज्ञानी और योगी की श्रेणी में छब्बीस प्रकार (२७८ संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य)—कुल मिलाकर अठ्ठावन प्रकार के हुए।

च-शब्द द्वारा अर्थ—

**इतरेतर 'च' दिया समास करिये।**
**'आटान्न' वार आत्माराम नाम लइये॥२८९॥**
**'आत्मारामाश्च आत्मारामाश्च' आटान्नबार।**
**शेषे सब लोप करि' राखि एकबार॥२९०॥**

**२८९-२९०। प० अनु०—**'च' शब्द का इतरेतर समास सम्बन्धित अर्थ करने से जो अट्ठावन प्रकार के अर्थ, आत्माराम शब्द के किये जा चुके हैं—उन अट्ठावन बार—आत्मारामाश्च, आत्मारामाश्च' में से सत्तावन बार आत्माराम शब्द लोप हो जायेंगे और अन्त में एकबार ही शब्द का उच्चारण होगा।

विश्वप्रकाश, पाणिनि और सिद्धान्त-कौमुदी—

**स्वरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ**
**उक्तार्थानामप्रयोग इति॥२९१॥**

२९१। समान रूप युक्त बहुत से शब्द रहने पर एकशेष और एक विभक्ति में जिनका अर्थ उक्त होता है, वहाँ एकस्वरूप को रखकर अन्य सब स्वरूपों का अप्रयोग होता है, यथा,—'रामश्च, रामश्च, रामश्च',—इसके स्थान पर एक 'रामाः' शब्द का प्रयोग होता है।

**अनुभाष्य**

२९१-२९३। मध्य चतुर्विंश परिच्छेद १४५ संख्या द्रष्टव्य।

**आटान्नबारे आत्माराम, सब लोप हय।**
**एक आत्माराम-शब्दे आटान्न अर्थ हय॥२९२॥**

**२९२। प० अनु०—**अठ्ठावन बार आत्माराम-शब्द का इतरेतर समास करने से 'च'-कार शब्द का भी लोप हो जायेगा। केवल एकबार आत्माराम

शब्द ही रह जायेगा जो अट्ठावन प्रकार के आत्माराम का सूचक होगा।

**''स्वरूपाणामेकशेष एक विभक्तौ-**
**उक्तार्थानामप्रयोगः॥''२९३॥**
**अश्वत्थवृक्षाश्च वटवृक्षाश्च कपित्थवृक्षाश्च।**
**आम्रवृक्षाश्च वृक्षाः॥२९४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२९४। 'वृक्षाः' शब्द से अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष, वट (बड़) का वृक्ष, कपित्थ वृक्ष, आम का वृक्ष उक्त हुआ है; अतएव इस स्थान पर उक्तार्थ अप्रयोग है।

**''अस्मिन् वने वृक्षाः फलन्ति'' जैछे हय।**
**तैछे सब आत्माराम कृष्णे भक्ति करय॥२९५॥**

**२९५। प० अनु०**—'अस्मिन् वने वृक्षाः फलन्ति' —अर्थात् इस वन में वृक्ष फलते हैं—इस वाक्य में वृक्ष से सब प्रकार के वृक्षों का बोध होता है, उसी प्रकार से सभी आत्माराम श्रीकृष्ण की भक्ति करते हैं।

'मुनयश्च'-पद को गिनकर
५९ प्रकार के अर्थ—

**'आत्मारामाश्च' समुच्चये कहिये च-कार।**
**'मुनयश्च' भक्ति करे,—एइ अर्थ तार॥२९६॥**
**'निर्ग्रन्था एव' हञा, 'अपि'—निर्द्धारणे।**
**एइ 'ऊनषष्टि' प्रकार अर्थ करिलुँ व्याख्याने॥२९७॥**

**२९६। प० अनु०**—च शब्द का अर्थ यहाँ समुच्चय में लिया गया है।

**अनुभाष्य**

२९६-२९७। अट्ठावन प्रकार के आत्माराम एवं मुनिगण निर्ग्रन्थ होकर कृष्ण की भक्ति करते है,—यही उन्सठवाँ अर्थ है।

और एक प्रकार का अर्थ—

**सर्वसमुच्चये आर एक अर्थ हय।**
**'आत्मारामाश्च मुनयश्च निर्ग्रन्थाश्च' भजय॥२९८॥**
**'अपि'-शब्द—अवधारणे, सेइ चारि बार।**
**चारिशब्द-सङ्गे 'एव' करिब उच्चार॥२९९॥**

**अनुभाष्य**

२९८-३०१। सर्व समुच्चय अर्थात् आत्माराम, मुनि एवं निर्ग्रन्थगण, सभी कृष्ण भजन करते हैं। अपि-शब्द का अवधारण अर्थात् निश्चित अर्थ ग्रहण करके साठ प्रकार के अर्थ हुए हैं।

महाप्रभुपादोक्त-व्याख्या—

**''उरुक्रमे एव भक्तिमेव अहैतुकीमेव कुर्वन्त्येव॥''३००॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३००। 'उरुक्रम', 'भक्ति', 'अहैतुकी' एवं 'कुर्वन्ति'—इन चार शब्दों के साथ 'एव' योग करके और एक अर्थ करुँगा।

यहाँ तक साठ प्रकार के अर्थ—

**एइ त' कहिलुँ श्लोकेर 'षष्ठि' संख्यक अर्थ।**
**आर एक अर्थ शुन प्रमाणे समर्थ॥३०१॥**

अन्त में और एक प्रकार का अर्थ—आत्मा-शब्द से 'क्षेत्रज्ञा-शक्ति'—

**'आत्मा'-शब्दे कहे—'क्षेत्रज्ञ-जीव'-लक्षण।**
**ब्रह्मादि कीटपर्यन्त—ताँर शक्तिते गणन॥३०२॥**

**३०२। प० अनु०**—आत्मा-शब्द का एक अर्थ है 'क्षेत्रज्ञ जीव'। ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त जितने भी जीव हैं—वे सभी कृष्ण की जीव-शक्ति के अन्तर्गत हैं।

अनुभाष्य

३०२। आत्मा शब्दका 'जीव' अर्थ करनेपर ब्रह्मा से आरम्भ करके कीट-पर्यन्त सभी जीवशक्ति

हैं, वह क्षेत्रज्ञ जीवगण निर्ग्रन्थ मुनि होकर कृष्ण भजन करते हैं—यही इकसठवाँ अर्थ है।

विष्णुपुराण (६/७/६१) में—

**विष्णुशक्तिः पराः प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।**
**अविद्या-कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥३०३॥**

३०३। विष्णुशक्ति तीन प्रकार की है,—परा, क्षेत्रज्ञा एवं अविद्या-संज्ञाविशिष्टा। विष्णु की पराशक्ति ही 'चिच्छक्ति' है; क्षेत्रज्ञाशक्ति ही जीवशक्ति है; (जिसे माया-रूपी 'अविद्या' से 'अपरा' [ भिन्ना ] के रूप में उक्त किया गया है); कर्मसंज्ञा-रूपी अविद्या-शक्ति का नाम 'माया' है।

**अनुभाष्य**

३०३। आदि सप्तम परिच्छेद ११९ संख्या द्रष्टव्य।

क्षेत्रज्ञ का पर्यायवाची शब्द—
अमरकोष के स्वर्गवर्ग (७) में—

**"क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम्॥"३०४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३०४। क्षेत्रज्ञ शब्द का अर्थ—आत्मा, पुरुष, प्रधान और प्रकृति होता है।

साधुसङ्ग के फल से कृष्ण भक्ति की प्राप्ति—

**भ्रमिते भ्रमिते यदि साधुसङ्ग पाय।**
**सब त्यजि' तबे तिंहो कृष्णेरे भजय॥३०५॥**
**षाटि अर्थ कहिलुँ, सब—कृष्णेर भजने।**
**सेइ अर्थ हय, एइ सब उदाहरणे॥३०६॥**

**३०५-३०६। प॰ अनु॰—**ऐसे आत्मारामगण अर्थात् जीव संसार में भ्रमण करते-करते यदि साधुसङ्ग को प्राप्त करते हैं, तब वे सब भी सबकुछ त्याग करके श्रीकृष्ण का भजन करते हैं। मैंने जो साठ अर्थ किये हैं, वे सभी आत्माराम श्रीकृष्ण का भजन करते हैं। इन समस्त उदाहरणों का यही अर्थ है।

कुल मिलाकर यहाँ तक इकसठ प्रकार के अर्थों की व्याख्या—

**'एकषष्टि' अर्थ एबे स्फुरिल तोमा-सङ्गे।**
**तोमार भक्ति-वशे उठे अर्थेर तरङ्गे॥"३०७॥**

**३०७। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'हे सनातन! मुझमें तुम्हारे सङ्ग से इकसठ अर्थ स्फुरित हुए हैं। तुम्हारी भक्ति के प्रभाव से आत्माराम श्लोक के अर्थों की तरङ्गे उठ रही हैं।

इकसठ प्रकार के अर्थों के श्रवण से सनातन का विस्मय और प्रभु की स्तुति—

**अर्थ शुनि' सनातन विस्मित हञा।**
**स्तुति करे महाप्रभुर चरणे धरिया॥३०८॥**

**३०८। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के मुख से आत्माराम श्लोक के इकसठ अर्थ सुनकर श्रील सनातन गोस्वामी विस्मित हो गये तथा वे श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़कर स्तुति करने लगे—।

पुरुषरूप में प्रभु के निश्वास छोड़ने के साथ ही वेदों का प्रकाश—

**"साक्षात ईश्वर तुमि व्रजेन्द्रनन्दन।**
**तोमार निश्वासे सर्ववेद-प्रवर्त्तन॥३०९॥**

**३०९। प॰ अनु॰—**आप साक्षात् भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दन हैं, आपके निश्वासों से सभी वेद प्रकाशित हुए हैं।

शेष-आदि विष्णु के रूप में प्रभु द्वारा ही भागवत की व्याख्या और उसके विषय में अभिज्ञता—

**तुमि—वक्ता भागवतेर, तुमि जान अर्थ।**
**तोमा बिना अन्य जानिते नाहिक समर्थ॥"३१०॥**

**३१०। प॰ अनु॰—**आप ही श्रीमद्भागवत के

वक्ता हैं तथा आप ही उसके समस्त अर्थों को जानते हैं। आपके अलावा श्रीमद्भागवत के अर्थों को जानने में कोई भी समर्थ नहीं है।

प्रभु के द्वारा भागवत के माहात्म्य का कीर्त्तन—

**प्रभु कहे,—"केने कर आमार स्तवन।**
**भागवतेर स्वरूप केने ना कर विचारण??३११॥**
**कृष्ण-तुल्य भागवत—विभु, सर्वाश्रय।**
**प्रति-श्लोके प्रति-अक्षरे नाना अर्थ कय॥३१२॥**

**३११-३१२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'हे सनातन! तुम मेरी स्तुति क्यों कर रहे हो? तुम भागवत के स्वरूप का विचार क्यों नहीं करते? 'श्रीमद्भागवत कृष्ण के ही समान विभु तथा सर्वाश्रय है। श्रीमद्भागवत के प्रति श्लोक के प्रति अक्षर के अनेक अर्थ निकलते हैं।

पूर्वकाल में श्री परीक्षित और शुकदेव एवं उसके बाद शौनक आदि और श्रीसूत के प्रश्नोत्तर में श्रीभागवत-प्रकाशित—

**प्रश्नोत्तरे भागवते करियाछे निर्द्धार।**
**जाँहार श्रवणे लोके लागे चमत्कार॥३१३॥**

**३१३। प० अनु०—**पहले श्रीपरीक्षित और श्रीशुकदेव तथा बाद में शौनक आदि और सूत गोस्वामी के प्रश्न-उत्तर के द्वारा श्रीमद्भागवत प्रकाशित हुयी है। जिसे सुनकर लोग चमत्कृत हो उठते हैं।

प्राचीनकृत श्लोक में श्रीशिव के वचन—

**अहं वेद्मि शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति ना वेत्ति वा।**
**भक्तया भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया॥३१४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१४। महादेव ने कहा,—मैं भागवत जानता हूँ, शुक भागवत जानते हैं, व्यास जानते हैं अथवा नहीं जानते हैं। भक्ति के द्वारा ही भागवत ग्रहण की जा सकती है, बुद्धि अथवा टीका के द्वारा कभी भी ग्रहण नहीं की जा सकती।

**अनुभाष्य**

३१४। अहं (शिवः भागवतं (शास्त्र), वेद्मि (जानामि), शुकः (वैयासकिः) वेत्ति (जानाति), व्यासः वेत्ति वा न वेत्तिति (सन्देहः); भागवतं (पारमहंसी संहित्याख्यं शास्त्र) भक्त्या (विष्णोः कीर्त्तन-श्रवण-धारा-पारम्पर्येण, विष्णो शरणा-गत्यात्मक-हरिसेवनेन एव) ग्राह्यं, बुद्ध्या न, टीकया न च (न तु तर्केणेत्यर्थः—''यस्य देवे परा भक्तिः'' इति ''नायमात्मा प्रवचनेन'' इति, ''तद्विधि प्रणि-पातेन'' इत्यादि-श्रुतिस्मृतिवचनेभ्यश्च)।

कृष्ण के अप्रकट होने पर भागवत ही ग्रन्थरूपी कृष्ण का विग्रह—

श्रीमद्भागवत (१/१/२३)—

**ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि।**
**स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः॥३१५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१५। [श्रीशौनक आदि ऋषियों ने श्रीसूत गोस्वामी से पूछा—] योगेश्वर ब्रह्मण्यदेव, धर्मवर्मस्वरूप कृष्ण के अपनी काष्ठा (नित्यधाम) को प्राप्त करने पर धर्म इस समय किसके शरणागत हुआ है, बतलाओ।

**अनुभाष्य**

३१५। नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषियों ने महाभागवत श्रीसूत गोस्वामी से जिन छह प्रश्नों के उत्तर की जिज्ञासा की थी, उनमें से यही सबसे अन्तिम छटा प्रश्न है एवं अगले श्लोक में श्रीसूत ने इसी का ही उत्तर प्रदान किया है,—

[हे सूत,] योगेश्वरे (योगिनः एव योगाः तेषाम् ईश्वरे षडेश्वर्यपूर्ण) ब्रह्मण्ये (ब्राह्मण-रक्षके) धर्मवर्मणि (सनातन-धर्मस्य वर्मणि कवचवद्-

गोप्तरि) कृष्णे स्वां काष्ठां (दिशं स्वरूपं, निजनित्यधाम, अप्रकटलीलामित्यर्थः) उपेते (प्राप्ते सति), धर्मः (सनातनः) अधुना कः शरणम् (आश्रय) गतः (प्राप्तः,—कमाश्रित्य सनातनो धर्मः तिष्ठति, तत्) ब्रूहि (कथय)।

श्रीमद्भागवत (१/३/४३) में—

**कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह।**
**कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः॥३१६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३१६। [श्रीसूत गोस्वामी ने उत्तर दिया—] धर्म ज्ञान आदि के साथ कृष्ण के स्वधाम जाने पर, नष्ट-चक्षु कलिहतजनों के हित के लिये यही पुराण अर्क (सूर्य) अब उदित हुए हैं।

**अनुभाष्य**

३१६। [यद् युष्माभिः पृष्टं—'धर्मः कं शरणं गतः?' इति तदिदमेव बुद्धस्वेत्याह—] धर्मज्ञानादिभिः (षड्भिः ऐश्वर्यैः) सह कृष्णे स्वधाम उपगते (प्रकटलीलां समाप्य अप्रकट-लीलां प्राप्ते सति) अधुना (सम्प्रति) कलौ (कलियुगे) नष्टदृशां (सद्धर्म-विष्णु भक्ति-तत्त्व ज्ञान रहितानां हिताय) एषः पुराणार्कः (सूर्य इव उद्धर्म्मशार्वरहरः श्रीमद्भागवत-ग्रन्थः) उदितः (आविर्भूतः, प्रकटितः इत्यर्थः)।

चैतन्य का अनुसरण करते हुए शुद्ध चिद्धर्म के स्फुरित होने से अप्राकृत कृष्ण-सेवोन्मत्त के लिये ही भागवत के अर्थ को जानने में योग्यता का निर्देश—

**एइ मत कहिलुँ एक श्लोकेर व्याख्यान।**
**वातुलेर प्रलाप करि' के करे प्रमाण??३१७॥**
**आमा-हेन जेबा केह 'वातुल' हय।**
**एइ दृष्टे भागवतेर अर्थ जानय॥"३१८॥**

**३१७-३१८। प० अनु०—**हे सनातन! इस प्रकार मैंने उसी श्रीमद्भागवत के केवल एक श्लोक की ही व्याख्या की है। किन्तु इसे पागल का प्रलाप समझकर कौन इसे प्रमाणित मानेगा? मेरे जैसा यदि कोई 'पागल' हो, तभी वह इस प्रकार से श्रीमद्भागवत के अर्थों को जान सकता है।

प्रभु के निकट सनातन द्वारा 'वैष्णव-स्मृति' के सम्बन्ध में दीनतापूर्वक जिज्ञासा और श्रीमुख से उपदेश को श्रवण करने की इच्छा—

**पुनः सनातन कहे जुड़ि' दुइ करे।**
**"प्रभु, आज्ञा दिला 'वैष्णवस्मृति करिबारे॥"३१९॥**

**३१९।। प० अनु०—**पुनः श्रील सनातन गोस्वामी ने दोनों हाथ जोड़कर श्रीमन्महाप्रभु से कहा—'हे प्रभु, मुझे आपने 'वैष्णवस्मृति' की रचना करने के लिये आज्ञा दी है।

**अनुभाष्य**

३१९। वैष्णवस्मृति—वैष्णवों के लौकिक आचार-विषयक व्यवहार-शास्त्र 'श्रीहरिभक्ति-विलास'-ग्रन्थ।

**मुञि—नीच-जाति, किछु ना जानि विचार।**
**मो-हैते कैछे हय स्मृति-परचार॥३२०॥**

**३२०। प० अनु०—**हे प्रभु! मैं नीच-जाति का हूँ, तथा वैष्णवस्मृति के विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ। मेरे द्वारा वैष्णवस्मृति का प्रचार किस प्रकार सम्भवपर हो सकता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३२०। नीचजाति—सनातन ने कहा, 'मैं म्लेच्छों के संसर्ग (सङ्ग, सम्पर्क से) पतित ब्राह्मण जाति वाला हूँ।'

**अनुभाष्य**

३२०। जाति तीन प्रकार की हैं—शौक्र, सावित्र और दैक्ष। यद्यपि श्रीसनातन पवित्र कर्णाट ब्राह्मणकुल में आविर्भूत हुए थे, तथापि लौकिक दृष्टि में म्लेच्छों की दास्यवृत्ति—नीच जाति होने

का निदर्शन मात्र है। वर्त्तमान काल में केवल शौक्रजन्म ही 'जाति' के रूप में परिचित है, वास्तव में यह अनभिज्ञता (नासमझी) का ही परिचायक मात्र है।

**सूत्र करि' दिशा यदि करह उपदेश।**
**आपने करह यदि हृदये प्रवेश॥३२१॥**
**तबे तार दिशा स्फुरे मो-नीचेर हृदये।**
**ईश्वर-तुमि,—जे कराह, सेइ सिद्ध हये॥"३२२॥**

**३२१-३२२। प० अनु०—**आप यदि सूत्ररूप (इङ्गित संक्षेप) में वैष्णवस्मृति की दिशा का कुछ उपदेश प्रदान करें तथा यदि आप स्वयं मेरे हृदय में प्रवेश करें, तभी वैष्णवस्मृति कैसी होनी चाहिए, उसकी दिशा मुझ नीच के हृदय में स्फुरित हो सकती है। आप ईश्वर हैं, आप जैसा करायेंगे, वही होगा।'

**अनुभाष्य**

३२१। दिशा-प्रणाली।

प्रभु के द्वारा सनातन को वर-प्रदान—

**प्रभु कहे,—"जे करिते करिबा तुमि मन।**
**कृष्ण सेइ सेइ तोमा कराबे स्फुरण॥३२३॥**

**३२३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'हे सनातन! तुम जो कुछ भी करने की इच्छा करोगे, श्री कृष्ण वही-वही तुम्हारे हृदय में स्फुरित करा देंगे।

प्रभु के द्वारा वैष्णव-स्मृति के सूत्र का वर्णन और 'हरिभक्तिविलास' की नींव की संस्थापना—

**तथापि एइ सूत्रेर शुन दिग्‌दरशन।**
**सकारण लिखि आदौ गुरु-आश्रयण॥३२४॥**

**३२४। प० अनु०—**'तब भी वैष्णवस्मृति के सूत्रों का दिग्दर्शन सुनो। सर्वप्रथम तुम गुरु के आश्रय लेने के विषय का सकारण उल्लेख करना।

**अनुभाष्य**

३२४। पाठान्तर में, 'सर्वकारण',—सभी के कारणस्वरूप। गुरु-आश्रयण—आदि प्रथम परिच्छेद ३५ संख्या से ४६ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीहरिभक्तिविलास के प्रथम-विलास में— "आदौ सकारणं लेख्यं श्रीगुर्वाश्रयणं ततः। गुरुशिष्यपरीक्षादिर्भगवान् मनवोऽस्य च॥ मन्त्राधिकारी सिद्धयादिशोधनं मन्त्रसंष्क्रिया। दीक्षा नित्यं ब्राह्मकाले शुभोत्थानं पवित्रता॥ प्रातः स्मृत्यादि कृष्णस्य वाद्याद्यैश्च प्रबोधनम्। निर्माल्योत्तारणाद्याद्यौ मङ्गलारात्रिकं ततः॥ मैत्रादिकृत्यं शौचाचमनं दन्तस्य धावनम्। स्नानं तान्त्रिक- सन्ध्यादि देवसद्मादि-संष्क्रिया॥ तुलस्याद्याहृतिर्गेह स्नान-मुष्णोदकादिकम्। वस्त्रं पीठं चौर्द्धपुण्ड्रं श्रीगोपीचन्दनादिकम्॥ चक्रादिमुद्रा माला च गृह-सन्ध्यार्चनं गुरोः। माहात्म्यञ्चार्थ कृष्णस्य द्वारवेश्मान्तरार्चनम्॥ पूजार्थासनमर्घ्यादिस्थापनं विघ्नवारणम्। श्रीगुर्वादिनतिर्भूतशुद्धिः प्राणविशोधनम्॥ न्यासा मुद्रापञ्चकञ्च कृष्णध्यानान्तरर्च्चने। पूजापदानि श्रीमूर्त्तिशालग्रामशिलास्तथा॥ द्वारकोद्भवचक्राणि शुद्धयः पीठपूजनम्। आवाहनादि तन्मुद्रा आसनादिसमर्पणम्॥ स्नपनं शङ्ख-घन्टादिवाद्यं नामसहस्रकम्। पुराणपाठो वसनमुपवीतं विभूषणम्॥ गन्धः श्रीतुलसीकाष्ठ चन्दनं कुसुमानि च। पत्रानि तुलसी चाङ्गोपाङ्गावरणपूजनम्॥ धूपो दीपश्च नैवेद्यं पानं होमो बलिक्रिया। अवगण्तुषाद्यास्यावासो दिव्य गन्धादिकं पुनः। राजोपचारा गीतादि महानीराजनं तथा॥ शङ्खादिवादनं साम्बुशंखनीराजनं स्तुतिः। नतिः प्रदक्षिणा कर्माद्यर्पणं जपयाचने। आगःक्षमापणं नानागांसि निर्माल्यधारणम्॥ शङ्खाम्बुतीर्थं तुलसीपूजा तन्मृत्तिकादि च। धात्री स्नान-निषेधस्य कालो वृत्तेरुपाजर्नम्॥ मध्याहेन वैश्व-देवादिश्राद्धं चानर्प्यमुच्यते। विनार्च्चामशने दोषास्तथानर्पित-भोजने॥ नैवेद्य-भक्षणं सन्तः सत्सङ्गोऽसदसङ्गतिः।

असद् गतिवैष्णवोपहासनिन्दादि-दुष्फलम्॥ सत्यं भक्तिर्विष्णुशास्त्रं श्रीमद्भागवतं तथा लीलाकथा च भगवद्धर्म्मा: सायं निज-क्रिया:॥ कर्मपातपरीहार-स्त्रिकालार्चा विशेषत:। नक्तं कृत्वान्यथो पूजा-फलसिद्धयादि-दर्शनम्॥ विष्णूर्थदानं विविधोपचारा न्यूनपूरणम्। शयनं महिमार्च्चाया: श्रीमन्नाम्नस्त-थाद्भुत:। नामापराधा भक्तिश्च प्रेमाथाश्रयणादय:। पक्षेष्वेकादशी साङ्गा श्रीद्वादश्यष्टकं महत्। कृत्यानि मार्गशीर्षादि-मासेषु द्वादशस्वपि। पुरश्चरणकृत्यानि मन्त्रं सिद्धस्य लक्षणम्॥ मूर्त्त्याविर्भावनं मूर्त्तिप्रतिष्ठा कृष्णमन्दिरम्। जीर्णोद्धृति: श्रीतुलसीविवाहोऽनन्यकर्म च॥'' [अर्थात् श्रीहरिभक्तिविलास में वर्णित विषयसमूह—सर्वप्रथम कारण-सहित श्रीगुरु के आश्रय को ग्रहण, उसके बाद गुरु के लक्षण, शिष्य के लक्षण, गुरु शिष्य-परीक्षा आदि, भगवान् के नाम का माहात्म्य, मन्त्र के अधिकारी, सिद्धयादि-शोधन, मन्त्र का संस्कार, दीक्षा, नित्य ब्रह्ममुहूर्त्त में उठना (अर्थात् कृष्ण-कृष्ण बोलते हुए शय्या से उठाना), नित्य पवित्रता (अर्थात् हाथ पैर धोना आदि), कृष्ण विषयक प्रात: स्मरण-कीर्त्तन-विज्ञप्ति पाठ-प्रणाम आदि, वाद्य-यन्त्र के साथ प्रबोधन (भगवान् को जगाना), निर्माल्य-अपसारण, उसके पश्चात् मङ्गलारात्रिक, उसके बाद पुरीष (मल) त्याग आदि कार्य, शौच, आचमन, दन्तधावन, तान्त्रिक सन्ध्या आदि, देव मन्दिर आदि का संस्कार, तुलसी आदि का चयन, अपने घर में स्नान, उष्णोदकादि में स्नान, वस्त्र परिधान, आसन, उर्द्धपुण्ड्र, श्रीगोपीचन्दन आदि, चक्रादि-मुद्रा, मालिका, गृहसन्ध्या, गुरुपूजा और गुरु माहात्म्य, उसके बाद श्रीकृष्ण के द्वार और घर में पूजा, पूजा के लिये आसन, अर्घ्य-पात्र आदि का स्थापन, विघ्न निराकरण, श्रीगुर्वादि प्रणाम, भूतशुद्धि, प्रणायाम, न्यास, मुद्रापञ्चक, कृष्ण ध्यान, उसके बाद अन्तर्याग, पूजा का स्थान, श्रीमूर्त्ति और शालग्राम-शिला का लक्षण, द्वारका से उद्भुत चक्रसमूह, श्रीमूर्त्ति-क्षालन आदि शुद्धि समूह, पीठ-पूजा, आवाहन-संस्थापन-सन्निधापन प्रभृति और वैसी-मुद्रा, आसन आदि समर्पण, स्नपन, उस समय शंख-घण्टा आदि वाद्य, सहस्त्र नाम, पुराण पाठ, वस्त्र, उपवीत, अलङ्कार, गन्ध, तुलसीकाष्ठ-चन्दन, पुष्प, विल्व पत्र आदि, तुलसी, अङ्ग-उपाङ्ग-आवरणपूजा, धूप, दीप, नैवेद्य, पान, होम, बलिक्रिया (विष्वक्सेनादि भक्तों को भगवान् का उच्छिष्ठ अंश प्रदान), गण्डुष निमित्त जल, लवङ्ग-ताम्बुल आदि मुखवास, पुन: दिव्यगन्ध द्रव्य आदि, छत्र-चामर आदि राजोपकरण, गीतादि, महानीराजन, शंख आदि वाद्य, सजलशंख द्वारा नीराजन, स्तुति, प्रणाम, प्रदक्षिण, कर्मादि-अर्पण, जप, प्रार्थना, नाना प्रकार के अपराध-क्षमापन, निर्माल्य-धारण, भगवन्-नीराजित शंखजल, तीर्थ (चरणामृत), तुलसी के कानन में भगवान् और तुलसी की पूजा, तुलसी-मृत्तिका-काष्ठ-प्रभृति, आँवले का माहात्म्य, स्नान का निषेध काल, जीविका-उपार्जन, मध्याह्न में वैश्य-देवतादि-श्राद्ध, भगवान् में जो सब द्रव्य अर्पण योग्य नहीं है, भगवान् की पूजा के अतिरिक्त भोजन में तथा अनिवेदित वस्तु के भोजन में दोष समूह, नैवेद्य भक्षण, भगवद्-भक्तगण, साधुसङ्ग, असाधुसङ्ग वर्जन, असद् व्यक्तियों की गति, उपासन आदि निजकृत्य, वैष्णवों के कर्मपात का दोष-निराकरण का सिद्धान्त, विशेष करके तीनों कालों में अर्चन का विधान-विशेष, रात्रि का कृत्य (अर्थात् गीत-वाद्य आदि पूर्वक भगवान् के शयनोपचार की रचना), पूजा के फल की सिद्धि इत्यादि, पूजा अथवा श्रीमूर्त्ति दर्शन, विष्णु प्रीति के लिये दान, विविध पूजोपचार, द्रव्य के अभाव में पूजा का समाधान, अपने शयन की विधि, श्रीभगवान् की पूजा तथा श्रीनाम की महिमा, नामापराधसमूह,

भक्ति का माहात्म्य, प्रेम सम्पत्ति लक्षण, आश्रयण (शरणागति), पक्ष समूह में अङ्गों सहित श्रीएकादशी-व्रतोपवास, अष्ट-महाद्वादशी, अग्रहाय- णदि द्वादश मासों के कृत्य, पुरश्चरण-कृत्य, मन्त्रसिद्धि के लक्षण, श्रीभगवान् की मूर्त्ति का शिल्प आदि द्वारा निष्पादन, श्रीमूर्त्ति प्रतिष्ठा, कृष्ण मन्दिर, जीर्णमन्दिर आदि का उद्धार, श्रीतुलसी विवाह एवं एकान्तिक भक्तों का कृत्य।]

**गुरुलक्षण, शिष्यलक्षण, दोंहार परीक्षण।**
**सेव्य—भगवान्, सर्वमन्त्र-विचारण॥३२५॥**

३२५। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।**

**अनुभाष्य**

३२५। **गुरु-लक्षण,—(पाद्मे)**—''महाभागवत-श्रेष्ठोब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम्। सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः॥ महाकुल-प्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। सहस्त्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्याद वैष्णवः॥'' भाः ७/३२/११ श्लोक में उक्त लक्षणों के अनुसार ही ब्राह्मण आदि 'वर्ण' निर्दिष्ट होते हैं। इस श्लोक की श्रीधरस्वामिपाद की टीका,—''शमादिभिरेव ब्राह्मणदि-व्यवहारो मुख्यः, न जाति-मात्रादित्याह-यस्येति। यद् यदि अन्यत्र वर्णान्तरेऽपि दृश्यते, तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षण-निमित्तेनैव वर्णेन विनिर्दिदशेत्, न तु जातिनिमित्तेने-त्यर्थः।'' महाभारत की टीका में नीलकण्ठ कहते हैं,—''शूद्रोऽपि शमाद्युपेत्य ब्राह्मण एव। ब्राह्मणोऽपि कामाद्युपेतः शूद्र एव।' [अर्थात् गुरुलक्षण—"महाभागवत श्रेष्ठ ब्राह्मण ही सभी मनुष्यों के गुरु हैं, वे सभी लोगों में से श्रीहरि के समान ही पूजनीय है। महाकुल में उत्पन्न होने पर भी, समस्त यज्ञों में दीक्षित होने पर भी एवं सहस्त्र शाखाओं का अध्ययन करने पर भी अवैष्णव होने पर वह 'गुरु'-पदवाच्य नहीं हैं" (पद्मपुराण)। 'शमादि गुण द्वारा ही ब्राह्मण आदि वर्ण-व्यवहार मुख्य—केवल जाति द्वारा नहीं, यही 'यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं' श्लोक में कहा गया है। यदि अन्यत्र अर्थात् अन्य वर्ण में भी शम आदि गुण दृष्ट हो, तब उस वर्णान्तर का उस वर्ण लक्षण के निमित्त द्वारा ही विनिर्देश करना चाहिए किन्तु जाति निमित्त द्वारा नहीं" (भाः ७/११/३५ श्लोक की श्रीधर स्वामि-कृत टीका)। शूद्रकुल में उत्पन्न व्यक्ति शम आदि गुणों से भूषित होने पर वह निश्चित ही 'ब्राह्मण' एवं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति कामादि से युक्त होने पर वह अवश्य ही 'शूद्र' है (महाभारत की टीका में श्रीनीलकण्ठ)।] ब्राह्मण कहकर अपना परिचय देने पर ही अथवा अनभिज्ञ (नासमझ) व्यक्तियों के द्वारा वैसा परिचय प्राप्त करने पर ही, कोई व्यक्ति गुरुपद के योग्य 'ब्राह्मण' कहकर विवेचित होंगे, ऐसा नहीं है। श्री ठाकुर नरोत्तम, श्यामानन्द आदि सद् ब्राह्मण-गुरुगण वास्तव में शुद्ध ब्राह्मण थे, इसलिए श्रीगङ्गानारायण, रामकृष्ण आदि शौक्र ब्राह्मणों ने उन्हें गुरुपद के योग्य विशुद्ध 'ब्राह्मण' कहकर निरुपण किया था। 'महाभागवत' कहने से ताप, पुण्ड्र, विष्णुदास्यपर नाम, मन्त्र और उपासना-युक्त पञ्चसंस्कार सम्पन्न, अर्चन, मन्त्रपठन, योग, याग, वन्दन, नाम-सङ्कीर्त्तन, सेवा, चिह्नद्वारा गात्राङ्कन, वैष्णवाराधन सम्पन्न,—ये नौ इज्या कर्मकारक एवं उपास्य भगवान्, तत्परमपद, तद्द्रव्य, तन्मन्त्र और जीवात्मा—इन अर्थपञ्चक-अज्ञ अर्थात् पञ्च-तत्त्वार्थविद् ब्राह्मण को ही जानने चाहिए। ''तापादि-पञ्चसस्क्कारी नवेज्या-कर्मकारकः। अर्थ-पञ्चकविद् विप्रो महाभागवतः स्मृतः॥'' इस प्रकार के महाभागवतों में श्रेष्ठता प्राप्त करके जो मनुष्यों में हरि के समान पूजनीय होते हैं, वे 'गुरु'-पदप्राप्ति के योग्य हैं। दूसरी ओर महान् कुल में जन्म लेने वाले, सभी यज्ञों में दीक्षित व्यक्ति एवं वेदों की सहस्त्र-शाखाओं के अध्ययन में पारङ्गत व्यक्ति

भी 'अवैष्णव' होने पर कभी भी 'गुरु' नहीं हो सकता। जहाँ वैष्णवता से ब्राह्मणता—'भिन्न' है अर्थात् जहाँ ब्राह्मण—वैष्णव आनुगत्यहीन है, वहाँ वैसे ब्राह्मण में गुरुयोग्य ब्रह्मण्य नहीं है; दूसरी ओर, जहाँ वैष्णवता है, वहाँ लौकिक-दृष्टि में शौक्र-वर्ण के अन्तर्गत दिखलायी देने पर भी वास्तविक शुद्ध-ब्राह्मणता का अभाव नहीं है। आचार्य द्वारा किये जाने वाले कार्य अध्ययन आदि आचार की अन्य वर्णों में सम्भावना नहीं होने के कारण गुरुपद की योग्यता में ब्राह्मणता—स्वतः सिद्ध है। वैष्णव-मात्र ही जगत् के गुरु हैं, अतएव उनका ब्राह्मण-आचार और ब्राह्मण होना सदैव साथ-साथ विद्यमान है। बाहर में अपना दैन्य ज्ञापन करते हुए अनेक वैष्णवों ने लौकिक-दृष्टियोग्य ब्राह्मण-आचार को ग्रहण नहीं किया, उससे वैष्णवों की ब्राह्मणता का कभी भी अभाव नहीं होता।

**शिष्यलक्षण—**''अमान्यमत्सरदक्षो निर्ममो दृढ़सौहृदः। असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक्॥'' [अर्थात् शिष्य अमानी, मात्सर्य-रहित, अलसता-रहित, स्त्री-पुत्र आदि में ममताहीन, गुरु-वैष्णवों में सौहार्दयुक्त, शास्त्र तत्त्वजिज्ञासु, असुया-रहित और वृथावाक्य शून्य होंगे। (भाः ११/१०/६)] जो जागतिक अभिमान के वशवर्ती नहीं होकर जो काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य (ईर्ष्या) का परित्याग करके अप्राकृत भगवद्-तत्त्व के विचार को ग्रहण करने में निपुण एवं प्राकृत वस्तु में 'मैं' और 'मेरे' की बुद्धि से रहित एवं अप्राकृत गुरुपादपद्म में अविनाशी (कभी भी नष्ट नहीं होने वाले) प्रणय से युक्त, धैर्यशीलता के क्रम से चञ्चलता-रहित, परमार्थ जिज्ञासा परायण, गुणों में दोष देखने के लिये जो प्रस्तुत नहीं है एवं अन्याभिलाष-कर्म-ज्ञानादि-सम्बन्धी वृथा कथा में प्रमत्त नहीं होकर जो हरिकथा में स्थिरबुद्धि वाला है, वही 'शिष्य' होने के योग्य है।

**दोहाँर परीक्षण (दोनों की परीक्षा)**—जो अप्राकृत वस्तु शिष्य के लिये आवश्यक है, उसका भिक्षु अर्थात् प्रार्थी होकर जब वह गुरुपादपद्म का आश्रय ग्रहण करने के लिये गमन करता है, तब वह वस्तु किसी गुरुयोग्य व्यक्ति में है या नहीं एवं किस परिमाण में है, उसे शिष्य को एक वर्ष तक देखना उचित है। शिष्य की अप्राकृत उपलब्धि की योग्यता कैसी है, उसे गुरु भी विशेषरूप से देखेंगे; क्योंकि, विषयी शिष्य के सङ्ग से क्रमशः गुरु-ब्रुव नामधारी गुरु का लघु होना अवश्यम्भावी है। गुरुब्रुव यदि शिष्य के प्रति 'योषा' अथवा 'भोग्य' बुद्धि करके जागतिक अर्थ-ग्रहण आदि के द्वारा उनके साथ अनित्य प्राकृत स्वार्थपर सम्बन्ध स्थापित करता है, तो वह लौकिक स्मार्तों की भाँति परमार्थ से च्युत हो जायेगा। ऐसे गुर्वाभिमानी व्यक्ति को 'वञ्चक' एवं शिष्यों को 'वञ्चित' कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति परमार्थ-धर्म से वञ्चित होकर स्वयं को आचार्य, सम्प्रदाय-आश्रित गोस्वामी मतानुसार स्थित कहकर अभिमान करने पर भी वे प्राकृत बाउल और सहजिया दल की ही शाखा में परिणत हो जाते हैं।

**सेव्य-भगवान्—**भगवान् विष्णु ही एकमात्र सेव्य हैं; विष्णु के अतिरिक्त अन्य किसी देवता की उपासना की आवश्यकता नहीं है। ''वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते। स्वमातरं परित्यज्य श्वपचीं वन्दते हि सः॥'' येऽपन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः। तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्य-विधिपूर्वकम्॥'' ''यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादि-देवतैः। समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥'' विशुद्ध सत्त्व गुण में अधिष्ठित होने पर निर्गुण जीव मुक्त होकर भी भगवान् की उपासना करता है। सत्त्वगुण में रजोगुण के संयुक्त होने पर जीव 'सूर्य की', सत्त्वगुण में तमोगुण के मिलने

पर 'गणपति' की, रजोगुण और तमोगुण के मिलने पर जीव 'मायाशक्ति' की, केवल तमोगुण में उपासना करने पर 'शिव' की एवं रजोगुण के प्रबल होने पर जीव पाँचो-उपास्यों में से सभी का ही भजन करता है। वास्तव में तीन गुणों के हाथ से मुक्त होने पर भगवान् विष्णु ही एकमात्र नित्य सेव्य हैं, यह समझ सकते हैं।

**सर्वमन्त्रविचारण—**द्वादशाक्षर, अष्टदशाक्षर, नारसिंह, राम, गोपाल आदि मन्त्रों की शक्ति के तारतम्य का विचार।

**मन्त्र-अधिकारी, मन्त्र-सिद्धयादि-शोधन।**
**दीक्षा, प्रातःस्मृति-कृत्य, शौच, आचमन॥३२६॥**

३२६। प० अनु०—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

३२६। मन्त्र-अधिकारी—''तान्त्रिकेषु च मन्त्रेषु दीक्षायां योषितामपि। साधवीनामधिकारोऽस्ति शूद्रादीनाञ्च सद्धियाम॥'' पाञ्चरात्रिकी मन्त्र दीक्षा में साध्वी स्त्री और सद्बुद्धि युक्त व्यक्ति की भाँति स्त्री और शूद्रों का भी अधिकार है। वैदिकी-दीक्षा में स्वाध्याय में रत ब्राह्मण का ही अधिकार है एवं अयोग्य, शूद्र अथवा स्त्रियों का वैदिकी-दीक्षा में अधिकार नहीं है। योग्यता प्राप्त व्यक्ति का ही भागवत-वैदिक अधिकार एवं योग्यताप्राप्ताङ्क्षाक्षी व्यक्ति का पाञ्चरात्रिक तान्त्रिकाधिकार,—दोनों मार्गों का फल 'एक' ही है।

सिद्धयादि—''सिद्ध-साध्य-सुसिद्धारि क्रमाज्ज्ञे-या विचक्षणैः।'' (१) सिद्ध, २) साध्य, ३) सुसिद्ध, ४) अरि—१) सिद्ध-सिद्ध, २) सिद्ध-साध्य, ३) सिद्ध-सुसिद्ध, ४) सिद्ध अरि; ५) साध्य-सिद्ध, ६) साध्य-साध्य, ७) साध्य-सुसिद्ध, ८) सुसिद्ध-अरि; ९) सुसिद्ध-सिद्ध १०) सुसिद्ध-साध्य ११) सुसिद्ध-सुसिद्ध १२) सुसिद्ध-अरि; १३) अरिसिद्ध, १४) अरि-साध्य, १५) अरि-सुसिद्ध, १६) अरि-अरि। अष्टादशाक्षर मन्त्र में सिद्धयादि प्राकृत-विचार नहीं है। ''न चात्र शात्रवा दोषा नर्णस्वादिविचारणा। ऋक्षराशि विचारो वा न कर्त्तव्यो मनो प्रिये॥ नात्र चिन्त्योऽरिशुद्ध्यादिर्नारि-मित्रादि लक्षणम्। सिद्ध-साध्यसुसिद्धारिरूपा नात्र विचारणा॥'' [ अर्थात् प्रिये! अष्टादशाक्षर गोपाल-मन्त्र में सिद्धि आदि शोधन-वर्णित अरिजनित दोष आदि नहीं है। ऋण-धन-विचार की भी आवश्यकता नहीं है। नक्षत्र-राशि का विचार करना भी कर्त्तव्य नहीं है (त्रैलोक्य-सन्मोहनतन्त्र में श्रीशिववाक्य)। श्रीकृष्ण मन्त्र में अरिशुद्धि आदि का विचार नहीं है, अरि-मित्र आदि लक्षणों को देखने की भी आवश्यकता नहीं है—इसमें सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरिविचार की आवश्यकता नहीं है। (वृहद्गौतमीय तन्त्र) ]

शोधन—''जननं जीवनञ्चेति ताडनं रोधनं तथा। अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः॥ तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दर्शेता मन्त्र-संस्क्रियाः। '' बलित्वात् कृष्णमन्त्राणां सस्कारापेक्षणं न हि।'' [ मन्त्रशोधन—जनन, जीवन, ताड़न, रोधन, अभिषेक, विमली-करण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गोपन—ये दस प्रकार के मन्त्र संस्कार हैं। कृष्णमन्त्र समूह बलवान् होने के कारण उक्त दस प्रकार के संस्कारों की अपेक्षा नहीं रखते। ]

दीक्षा—मध्य, पञ्चदश परिच्छेद १०८ संख्या द्रष्टव्य। पाञ्चरात्रिकी दीक्षा में दीक्षित व्यक्ति 'ब्राह्मणता' प्राप्त करता है', ''यथा काञ्चनतां याति कांस्य'' रसविधानतः। तथा दीक्षा-विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥'' दीक्षाकाल,—(तत्त्वसागरे) 'दुर्ल्लभे सद्गुरुणाञ्च सकृत्सङ्ग उपस्थिते। तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षावसरो महान्॥ ग्रामे वा यदि वारण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि। आगच्छति गुरुर्देवाद् यथा दीक्षा तदाज्ञया॥ यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरुपतः। न तीर्थं न व्रतं होमो न स्नानं न

जपक्रिया। दीक्षायाः करणं किन्तु स्वेच्छाप्राप्ते तु सद्गुरौ॥'' [अर्थात् दीक्षा—रसविधान के द्वारा जैसे कांसा सोना बन जाता है, उसी प्रकार दीक्षा-विधान के द्वारा मनुष्य में द्विजत्व उत्पन्न होता है। दीक्षा का समय—सद्गुरु का दुर्लभ सङ्ग, एकबार मात्र उपस्थित होने से, जब भी उनकी आज्ञा प्राप्त होती है, वही दीक्षा का शुभ काल है। गाँव में, जङ्गल में, दिन में अथवा रात्रि में गुरुदेव जब दैवात् आगमन करें, तभी उनकी आज्ञा से दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जब गुरु की इच्छा होगी, तभी उनकी आज्ञानुसार दीक्षा हो सकती है। सद्गुरु के स्वयं इच्छा करने पर तीर्थ, व्रत, होम, स्नान, जपक्रिया इत्यादि कुछ भी दीक्षा का कारण नहीं होते।]

**प्रातः स्मृति—**'ब्राह्ममुहूर्त्ते उत्थाय कृष्ण कृष्णेति कीर्त्तयन्। '' स्तुत्वा च कीर्त्तयन् कृष्णं स्मरंश्चैत-दुदीरयेत्॥-''जयति जननिवासः—इत्यादि (भाः १०/९०/४८)। 'स्मृते सकलकल्याण भाजनं यत्र जायते। पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥'' ''उद्गायतीनामरविन्दलोचनम्'' इत्यादि (भाः १०/४६/४६)। ''स्मर्त्तव्य सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्। सर्वे विधि निषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥''—(पाद्मे बृहत् सहस्त्रनाम-स्तोत्रे)। [अर्थात् प्रातः स्मृति—ब्रह्ममुहुर्त्त में 'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम कीर्त्तन करते-करते उठकर गुरुपादपद्म का ध्यान और स्तव करते हुए कृष्णकीर्त्तन और स्मरणपूर्वक यह श्लोक पाठ करना—'जयति जननिवासः' (भाः १०/९०/४८) इत्यादि। 'जिन्हें स्मरण करने से सब प्रकार के कल्याण को प्राप्त करने का पात्र बना जा सकता है, उन अज सनातन पुरुष श्रीहरि की शरण ग्रहण करता हूँ।' श्रीविष्णु को सदा ही स्मरण करना चाहिए—कभी भी भूलना नहीं चाहिए, समस्त 'विधि' और 'निषेध' इन दोनों बातों के अनुगत हैं।]

**प्रातः कृत्य—**मैत्रादिकृत्य,—''ततः कल्ये समुत्थाय कुर्यान्मैत्रं नरेश्वर दुरादावसथान्मूत्रं पुरीषञ्च समुत्सृजेत्॥'' [प्रातःकृत्य—अतःपर हे राजन्! उषाकाल में उठकर घर से दूर जाकर मल-मूत्र परित्याग करना]

**शौच—**''गुह्ये दद्यान्मृदं टेकां पायो पञ्चाम्बु सान्तराः। दश वामकरे चापि सप्तपाणिद्वये मृदः॥ एकैकां पदयोर्दद्यात् तिस्रः पाण्योर्मृदः स्मृताः। इत्थं शोचं गृही कुर्याद्-गन्ध लेपक्षयावधि॥'' [शौच—शिश्न में एकबार, मलद्वार में पाँचबार, वामहस्त में दस बार, दोनों हाथों में सात बार, दोनों पैरों में एकबार एवं पुनः दोनों हाथों में तीन बार, इस प्रकार बीच-बीच में जल के साथ में मिट्टी लगाना। जब तक गन्ध सम्पूर्ण रूप में दूर नहीं हो, तब तक गृहस्थ व्यक्ति यह शौच करेंगे। (गृहस्थ की अपेक्षा ब्रह्मचारी दो गुणा, वानप्रस्थ तीन गुणा तथा भिक्षु (संन्यासी) चार गुणा शौच का आचरण करेंगे]

**आचमन**—'अच्छेनागन्धफेनेन जलेनाबुद्बुदेन च। आचामेत मृदं भूयस्तथा दद्यात् समाहितः॥ निष्पादिताङ्घ्रिशौचस्तु पादावभ्युक्ष्य वै पुनः। त्रि पिवेत् सलिलं तेन तथा द्विः परिमार्जयेत्॥'' [आचमन—स्वच्छ, गन्धरहित, फेनहीन, बुलबुले से रहित जल के द्वारा आचमन करना होगा। पुनः सावधानी पूर्वक चरणों में मिटट्ी लगानी होगी। पाद-शौच समाप्त करके पुनः दोनों पैरों का प्रक्षालन करके तीन बार जलपान (आचमन) करना होगा एवं इसी जल के द्वारा ही दो बार मुख धोना होगा।]

**दन्तधावन, स्नान, सन्ध्यादि-वन्दन।**
**गुरुसेवा, उर्द्धपुण्ड्रचक्रादि-धारण॥३२७॥**

३२७। प० अनु०—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

३२७। **दन्तधावन—**''अथो मुखविशुद्ध्यर्थम्

गृह्णीयात् दन्त धावनम्। आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्माद-कृत्वा दन्तधावनम्॥ दन्त काष्ठ मखादित्वा यस्तु मामुपसर्पति। सर्वकालकृतं कर्म तेन चैकेन नश्यति॥'' [दन्तधावन—अतःपर मुख शोधन के लिये दातुँन करना, क्योंकि दाँतुन नहीं करने पर आचमन करने से भी मनुष्य अशुद्ध ही रहता है। दातुन को नहीं चबाकर जो व्यक्ति मेरी आराधना करता है, वह इसी एक काम के द्वारा ही अपने द्वारा किये गये समस्त कार्यों को ध्वंस कर लेता है।]

**स्नान—**''प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थ-योः। येतस्त्रिसवनं स्नानं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः॥ सर्वे चापि सकृत कुर्यरशक्तौ चोदकं बिना॥'' [स्नान—वानप्रस्थ और गृहस्थ के लिये प्रातःकाल और दोपहर में स्नान, संन्यासी के लिये तीनों संन्ध्याओं में एवं ब्रह्मचारी के लिये केवल एकबार मात्र स्नान करना कर्त्तव्य है। असमर्थ होने पर सभी के लिये एकबार मात्र स्नान करना चाहिए तथा उसमें भी असमर्थ होने पर जल के बिना मन्त्र-स्नान आदि करणीय है।]

**सन्ध्यावन्दन—**सन्ध्या दो प्रकार की है—वैदिकी और तान्त्रिकी। वैदिकी सन्ध्या—''ध्यात्वार्कमण्ड-लगतां सावित्रीं तां जपेद्बुधः। प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्यापासनमाचरेत्॥ विहाय सन्ध्या-प्रणतिं स याति नरकायुतम्॥'' [सन्ध्या-वन्दना—पण्डित व्यक्ति सूर्यमण्डलवर्त्तिनी गायत्री का ध्यान करके उसका जप करेंगे। ब्राह्मण सदैव पूर्व में मुख करके सन्ध्या उपासना करेंगे। सन्ध्या वन्दना वर्जन करके वह अयुत संख्यक नरक में जायेंगे।] 'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्'' इत्याचमनम्। प्रोक्षणानन्तरं सन्धामुपासयेत्। गायत्रीं दशधा जप्त्वा आपोमा-र्जनम्—'ॐ शन्न आपो धन्वन्याः शमनः सन्तु नूप्याः शन्नः समुद्रिया आपः शमनः सन्तु कूप्याः। ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुद्धन्तु मैनसः। ॐ आपो हिष्ठामयो भुवस्ता न उर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरङ्गामाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः। ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णव। समुद्रादर्णवादधि-संवत्सरोऽजयात। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तररीक्षमथो स्वः।''

**तान्त्रिकी सन्ध्या—**''मूलमन्त्रमथोच्चार्य ध्यायन् कृष्णाङ्घ्रिपङ्कजे। श्रीकृष्णं तर्पयामीति त्रिः सम्यक् तर्पयेत् कृती॥ ध्यानोद्दिष्टस्वरुपाय सूर्यमण्डल-वर्त्तिने। कृष्णाय कामगायत्र्या दद्यार्घ्यमनन्तरम्॥'' [तान्त्रिकी सन्ध्या—अतःपर करनेवाले व्यक्ति मूलमन्त्र उच्चारण करके श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान करके 'श्रीकृष्ण को अर्पित कर रहा हूँ'—यह कहकर तीन बार सम्यक् रूप से तर्पण करेंगे। उसके बाद ध्यान में जो स्वरूप उद्दिष्ट हुआ है, सूर्यमण्डलस्थ उन श्रीकृष्ण को कामगायत्री करते हुए अर्घ्य प्रदान करेंगे।]

**गुरुसेवा—**''प्रथमन्तु गुरुं पूज्य ततश्चैव ममार्च्चनम्। कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ऽन्यथा निष्फलं भवेत्॥ गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यमग्रतः। स दुर्गतिमवाप्नोति पूजनं तस्य निष्फलम्॥ नाहमिज्या-प्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च। तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रुषया यथा॥ गुरुशुश्रुषणं नाम सर्वधर्मोत्तमो-त्तमम्। तस्माद्धर्म्मात् परो धर्मः पवित्रं नैव विद्यते॥'' [गुरुसेवा—सर्वप्रथम गुरुदेव की पूजा करके उसके बाद मेरी पूजा करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है, अन्यथा वह निष्फल होती है। श्रीगुरुदेव के समक्ष जो व्यक्ति उनके आगे किसी अन्य की पूजा करता है, उसकी दुर्गति होती है एवं उसकी पूजा

भी निष्फल हो जाती है। सर्व-भूतात्मा मैं गुरुसेवा के द्वारा जिस प्रकार सन्तुष्ट होता हूँ,—इज्या, प्रजाति, तपस्या एवं उपशम द्वारा भी तथा गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचर्य और संन्यास धर्म के द्वारा भी वैसा सन्तुष्ट नहीं होता। गुरुसेवा ही सबसे श्रेष्ठ उत्तम धर्म है, इस धर्म से उत्तम अथवा पवित्र धर्म नहीं है। ]

उर्द्धपुण्ड्रधारण—''मद्भक्तो धारयेन्नित्यमुर्द्धपुण्ड्रं भयापहम्।'' यच्छरीरं मनुष्याणामुर्द्धपुण्ड्रं बिना कृतम्। द्रष्टव्यं नैव तत्तावत् श्मशानसदृशं भवेत्॥ वैष्णवानां ब्राह्मणानां उर्द्धपुण्ड्रं विधीयते। '' नासादिकेशपर्यन्तमुर्द्धपुण्ड्रं सुशोभनम्। मध्ये छिद्रसमायुक्तं तद्विद्याद्धरिमन्दिरम्॥ मध्ये विष्णुं विजनीयात् तस्मान्मध्यं न लेपयेत्॥ [ उर्द्धपुण्ड्र-धारण—मेरे भक्त भय का नाश करने वाले उर्द्धपुण्ड्र को नित्य धारण करेंगे। मनुष्य की जो देह उर्द्धपुण्ड्र रहित होती है, वह श्मशान के समान होने के कारण देखने के योग्य नहीं है। वैष्णवगण और ब्राह्मणों के लिये उर्द्धपुण्ड्र धारण करना अवश्य कर्त्तव्य है। नाक से लेकर केश तक विस्तृत, सुशोभन और बीच में छिद्र से संयुक्त उर्द्धपुण्ड्र को हरिमन्दिर समझना। उर्द्धपुण्ड्र में श्रीहरि अधिष्ठित रहते हैं, इसलिए मध्यभाग का लेपन मत करना। ] मध्य विंश परिच्छेद २०२ संख्या द्रष्टव्य।

**चक्रादि (मुद्रा)-धारण—**''चक्रञ्च दक्षिणे बाहौ शङ्ख वामेऽपि दक्षिणे। गदां वामे गदाधस्तात पुनश्चक्रञ्च धारयेत॥ शङ्खोपरि तथा पद्मं पुनः पद्मञ्च दक्षिणे। खड्गं वक्षसि चापञ्च सशरंशीर्ष्णि धारयेत्॥ इति पञ्चायुधान्यादौ धारयेद्वैष्णवो जनः। श्रीगोपीचन्दनैवं चक्रादीनि बुधोऽन्वहम्। धारयेच्छ-यनादौ तु तप्तानि किल तानि हि॥ शङ्ख चक्रोर्द्धपुण्ड्रादि रहितं ब्राह्मणाधमम्। गदर्दभन्तु समारोप्यं राजा राष्ट्रात प्रवासयेत्॥'' [ चक्रादि-धारण—दक्षिण हाथ में चक्र, बायीं और दायीं दोनों भुजाओं में शंख, वाम भुजा में गदा एवं गदा के नीचे पुनः चक्र धारण करना। शंख के ऊपर दोनों भुजाओं में पद्म, वक्षःस्थल में खड्ग एवं मस्तक पर बाण सहित धनुष को धारण करना। इन पाँच प्रकार के आयुधों को वैष्णवगण सर्वप्रथम धारण करेंगे। पण्डित व्यक्ति प्रतिदिन गोपीचन्दन द्वारा चिह्न समूह की रचना करेंगे एवं शयनद्वादशी एवं उत्थान द्वादशी में इन सब मुद्राओं को तप्त करके धारण करेंगे। शंङ्ख, चक्र और उर्द्धपुण्ड्र आदि से रहित अधम ब्राह्मण को राजा गद्हे के ऊपर बिठाकर राज्य से निकाल दें। ]

**गोपीचन्दन-माला-धृति, तुलसी-आहरण।**
**वस्त्र-पीठ-गृह-संस्कार, कृष्ण-प्रबोधन॥३२८॥**

३२८। प० अनु०—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

३२८। गोपीचन्दनधारण—''यस्यान्तकाले खग गोपीचन्दनं बाहेवार्ललाटे हृदि मस्तके च। प्रयाति लोकं कमलालयं प्रभोर्गोवालघाती यदि ब्रह्महा भवेत्॥'' ''दूताः श्रृणुत यद्भालं गोपीचन्दन-लाञ्छितम्। ज्वलदिन्धनवत् सोऽपि त्याज्यो दूरे प्रयत्नतः॥'' [ गोपीचन्दन धारण—हे गरुड़! मरण के समय जिसकी दोनों भुजाओं पर, ललाट पर, वक्षःस्थल पर तथा सिर पर गोपीचन्दन रहता है, वह गोघाती, शिशुघाती अथवा ब्रह्मघाती होने पर भी लक्ष्मी के आलय श्रीविष्णुधाम में गमन करता है। (गरुड़ पुराण)। हे यमदूतगण! मेरे वचन सुनो, जिसका ललाट गोपीचन्दन से अङ्कित हो, जलते हुए अङ्गारे की भाँति यत्नपूर्वक उसे दूर से ही वर्जन करना। ]

मालाधारण—''ततः कृष्णार्पिता माला धारये-त्तुलसीदलैः। पद्माक्षैस्तुलसीकाष्ठैः फलेर्धात्र्याश्च निर्मिताः। धारयेत्तुलसी-काष्ठ-भूषणानि च

वैष्णवः॥'' पद्माक्ष-शब्द से पद्म (कमल) के बीज की माला। अक्ष शब्द का अर्थ भ्रमवशतः कोई हड्डी की माला अथवा-रुदाक्ष' को न समझे। ''धारयन्ति न ये मालां हेतुकाः पापबुद्धयः। नरकान्न निवर्त्तन्ते दग्धाः कोपाग्निा हरेः॥'' ''ये कण्ठलग्नतुलसी नलिनाक्षमाला ये वा ललाट-पटले लसदूर्द्धपुण्ड्राः। ये बाहुमूल-परिचिह्नित-शङ्ख चक्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥'' [ माला धारण—उसके बाद तुलसीपत्र, पद्मबीज (कमल के बीज), तुलसी की लकड़ी और आँवले के फल के द्वारा निर्मित माला श्रीकृष्ण को अर्पित करके धारण करना। वैष्णवगण तुलसी की लकड़ी के भूषण धारण करेंगे। जो हेतुवाद परायण पापमति मनुष्य माला धारण नहीं करते, वे हरि की कोप रूपी अग्नि से दग्ध होते है तथा नरक से लौटकर नहीं आते। जिनके गले में तुलसीमाला अथवा पद्मबीज माला विद्यमान है, ललाट पर उर्द्धपुण्ड्र शोभायमान है, बाहु पर शंख-चक्र आदि चिह्न विराजमान हैं, वे वैष्णवगण शीघ्र ही जगत् को पवित्र किया करते हैं। ]

**तुलसी-आहरण—**''प्रणम्याथ महाविष्णुं प्राथ्या-यानुज्ञान्तु वैष्णवः। समाहरेत् श्रीतुलसीं पुष्पादिञ्च तथोदितम्॥ अस्नात्वा तुलसीं छित्वा यः पूजां कुरुते नरः। सोऽपराधी भवेत् सत्यं तत् सर्वं निष्फलं भवेत्॥'' आहरण-मन्त्र—''तुलस्यामृत जन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया। केशवार्थे विचिनोमि वरदा भव शोभने॥'' ''इत्युक्तवा तुलसीं नत्वा छिन्दयात् दक्षिणपाणिना (चयन-निषेधकाल) न छिन्द्यात् तुलसीं विप्रा द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित्॥'' [ तुलसी-आहरण—इसके बाद वैष्णवजन महाविष्णु को प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर श्रीतुलसी तथा प्रस्फुटित पुष्प आदि का चयन करेंगे। जो मनुष्य स्नान नहीं करके तुलसी चयन करके पूजा करते हैं, वे अवश्य ही अपराधी बनता है एवं उसका सबकुछ ही निष्फल होता है। चयन-मन्त्र—हे शोभने! हे तुलसी! अमृत से आपका जन्म हुआ है, आप सदैव श्रीकेशव की प्रिया है; केशव की पूजा के लिये मैं आपका चयन करता हूँ, आप वर प्रदान कीजिए। इस प्रकार कहकर तुलसी को प्रणाम करके दक्षिण हस्त से चयन करना चाहिए। हे ब्राह्मण! वैष्णव कभी भी द्वादशी में तुलसी नहीं तोड़ते। ]

वस्त्र-संस्कार—''तान्तवं मलिनं पूर्वमद्भिः क्षारैश्च शोधयेत्। अंशुभिः शोषयित्वा वा वायुना वा समाहरेत्। उर्णपटांशुक-क्षौमदुकूलाविकचर्मणाम्॥ अल्पाशौचेभवेच्छुद्धिः शोषण प्रोक्षणादिभिः॥ कुसुम्भकुङ्कमारक्तास्तथा लाक्षारसेन च। प्रक्षालनेन शुद्धयन्ति चण्डालस्पर्शने तथा॥'' [ वस्त्र-संस्कार—तान्तव (कपास के रेशे से निर्मित) वस्त्रादि जो मैले हो गये हैं, सर्वप्रथम क्षार और जल के द्वारा उन वस्त्रों को शुद्ध करना, बाद में सूर्य की किरणों अथवा वायु के द्वारा सुखाकर पहनना। रोमज वस्त्र, पट्टवस्त्र, क्षौम (रेशमी) दुकूल, मेष रोमज वस्त्र एवं चर्म—ये सब द्रव्यों का साधारण शुद्धिकरण अर्थात् थोड़ा अशुद्ध होने पर सुखाकर अथवा जल छिड़ककर शुद्ध हो जाते हैं। कुसुम्भ, कुंकुम और लाक्षारस द्वारा रञ्जित वस्त्र चण्डाल आदि के द्वारा स्पृष्ट होने पर प्रक्षालन के द्वारा शुद्ध होते हैं। ]

**पीठ-संस्कार—**'पादपीठञ्च कृष्णस्य बिल्व-पत्रेण घर्षयेत्। उष्णाम्बुनाञ्च प्रक्षाल्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥' [ पीठ-संस्कार—बेल के पत्ते द्वारा श्रीकृष्ण के पादपीठ का मार्जन करना। गर्म जल के द्वारा धोने पर सब प्रकार के पापों से मुक्त हुआ जा सकता है। ]

गृह-संस्कार—''मन्दिरं मार्जयेद्विष्णोर्विधाया-चमनादिकम्। कृष्णं पश्यन् कीर्त्तयंश्च दास्येनात्मान-मर्पयेत्॥ शुद्धं गोमयमादाय ततो मृत्स्नां जलं तथा।

भक्त्या ततपरितो लिम्पेदभ्युक्षेच्च तदङ्गनम्॥'' ''स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठ गुणानुर्वने। करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युत-सत्कथोदये॥'' ''सम्मार्जनोपलेपाभ्यां सेवकमण्डलवर्त्तनैः गृहशुश्रुषणं मह्यं दासवद्यद्-मायया॥'' [ गृह-संस्कार—आचमन आदि करके विष्णु का मन्दिर साफ करना चाहिए। बाद में श्रीकृष्ण के दर्शन एवं श्रीनाम कीर्त्तन करते-करते दास्य भाव से आत्मसमर्पण करना। उसके बाद शुद्ध गोमय (गोबर) मिट्टी तथा जल लेकर भक्तिपूर्वक मन्दिर के चारों ओर तथा उसके आङ्गन में लेपन और अभ्युक्षण अर्थात् गोबर से मिले जल का छींटा मारना। श्रीमद्भागवत (९/४/१८) राजर्षि अम्बरीष ने श्रीकृष्ण के चरणकमलों में मन को, वैकुण्ठ गुण के वर्णन में वचनों को, हरिमन्दिर के मार्जन में दोनों हाथों को, भगवान् की कथा के श्रवण में कानों को लगाया था (भाः ११/११/३९—) समार्जन, गोबर द्वारा लेपन, जल का छिड़काव और सब प्रकार से भद्र आदि की रचना के द्वारा सेवक की भाँति निष्कपट होकर मेरे घर की सेवा करना। ]

**कृष्णप्रबोधन—**''ततो देवालये गत्वा घन्टाद्युद्घोष-पूर्वकम्। प्रबोध्य स्तुतिभिः कृष्णं नीराज्य प्रार्थय-दिदम्॥—''देव प्रपन्नार्त्तिहर प्रसादं कुरु केशव। अवलोकनदानेन भूयो मां पालयाच्युत॥'' [ कृष्ण-प्रबोधन—इसके बाद देवालय में जाकर घण्टा आदि बजाकर प्रबोधन के लिये उपयोगी स्तुति के द्वारा श्रीकृष्ण को जगाकर नीराजन करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करना हे देव! शरणागत व्यक्ति के दुःख का नाश करने वाले! हे केशव! मेरे प्रति कृपा प्रकाशित कीजिए, हे अच्युत! पुनः दर्शन के द्वारा मुझे पवित्र कीजिए। ]

**पञ्च, षोड़श, पञ्चाशत उपचारे अर्चन।**
**पञ्चकाल पूजा आरति, कृष्णेर भोजन-शयन॥३२९॥**

३२९। प॰ अनु॰—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

### अनुभाष्य

३२९। पाठान्तर में—''पञ्च, दश, षोड़श, सपर्या चोघन। चौषट्टि षोडश दश पञ्चोपचारे अर्चन॥''

**पञ्चोपचार**—१) गन्ध, २) पुष्प, ३) धूप, ४) दीप और ५) नैवेद्य।

**षोड़शोपचार—**१) आसन, २) स्वागत (कुशल-प्रश्न), ३) अर्घ्य, ४) पाद्य, ५) आचमनीय, ६) मधुपर्क, ७) आचमन, ८) स्नान, ९) वस्त्र, १०) अलङ्कार ११) सुगन्ध, १२) सुपुष्प, १३) धूप, १४) दीप, १५) नैवेद्य और १६) वन्दना।

**पञ्चशोपचार—**हरिभक्तिविलास में पञ्चाशत उपचार की बात नहीं हैं, तब भी चौंसठ उपचारों में से चौदह छोड़ देने से पचास उपचार हो सकते हैं। कौन से चौदह छोड़ने चाहिए, उसका निरुपण करने का उपाय नहीं है।

**दशोपचार—**१) अर्घ्य, २) पाद्य, ३) आचमन, ४) मधुपर्क ५) आचमन, ६) गन्ध, ७) पुष्प, ८) धूप, ९) दीप, १०) नैवेद्य।

**चतुःषष्टि (चौंसठ) उपचार—**'चौघन' का अर्थ चौंसठ (हः भः विः ११/१२७-१४०) १) वाद्य-स्तव के द्वारा प्रबोधन, २) जय-शब्द का उच्चारण, ३) नमस्कार, ४) मङ्गलारात्रिक, ५) आसन, ६) दन्तकाष्ठ, ७) पाद्य, ८) अर्घ्य, ९) आचमन, १०) मधुपर्क सहित आचमन, ११) पादुका-समर्पण, १२) अङ्ग मार्जन, १३) तैलाभ्यञ्जन, १४) तैलाद्यपसारण, १५) सुगन्धि-पुष्पजल में स्नान, १६) दुग्धस्नान, १७) दधिस्नान, १८) धृतस्नान, १९) मधुस्नान, २०) शर्करास्नान, २१) मन्त्रजल में स्नान, २२) गामछा, २३) परिधान और उत्तरीय, २४) यज्ञसूत्र, २५) पुनराचमन, २६) अनुलेपन, २७) अलङ्कार २८) पुष्प, २९)

धूप, ३०) दीप, ३१) दुष्टदृष्टिनिवारण, ३२) नैवेद्य, ३३) मुखवास, ३४) ताम्बुल, ३५) उत्तम शय्या, ३६) केश-प्रसाधन, ३७) उत्तम वस्त्र, ३८) उत्तम मुकुट, ३९) उत्तम गन्ध लेपन, ४०) कौस्तुभ आदि भूषण, ४१० विचित्रदिव्यपुष्प, ४२) मङ्गलारात्रिक, ४३) दर्पण, ४४) उत्तम यान में मण्डप-यात्रा, ४५) सिंहासन पर उपवेशन, ४६) पुनः पाद्य, ४७) पुनर्नैवेद्य, ४८) महानीराजन, ४९) चामरव्यजन-छत्र, ५०) गीत, ५१) वाद्य, ५२) नृत्य, ५३) प्रदक्षिण, ५४) प्रणाम, ५५) श्रीचरण-युगल में स्तुति, ५६) चरण में मस्तक रखना, ५७) सिर पर निर्माल्य-धारण, ५८) उच्छिष्ट-भक्षण, ५९) पाद सम्वाहन हेतु उपवेशन, ६०) पुष्प-शय्या, ६१) हस्तप्रदान, ६२) शय्या में आगमन, ६३) पदप्रक्षालनपूर्वक शय्या में उपवेशन, ६४) सबसे अन्त में पलङ्ग पर शयन और पाद-सम्वाहन आदि।

**पञ्चकाल**—अरुणोदय, प्रातः, मध्याह्न, सायाह्न, प्रदोष।

**पूजारति**—पूजा एवं आरती और नीराजन आदि।

**कृष्णेर भोजन (कृष्ण का भोजन)**—(हः भः विः अष्टम विः ५०-५१) मञ्जुल व्यवहारेण भोजयन्ति हरिं मुदा।'' ''शालीभक्तं सुभक्तं शिशिर-करसितं पायसं पूपसूपम्। लेह्यं पेयं सुचुष्यं सितममृतफलं घारिकाद्यं सुखाद्यम्। आज्यं प्राज्यं समिज्यं नयनरुचिकरं वाजिकैलामरीचस्वादीयः शाकराजीपरिकरममृताहारजोषं जुषस्व॥'' [ कृष्ण का भोजन—भगवान् के भक्त सभ्य व्यवहार के द्वारा श्रीहरि को आनन्दपूर्वक भोजन कराते हैं,—हे भगवन्! शलि-धान्य का अन्न, चन्द्र के समान श्वेतवन अन्न, खीर, मालपुआँ, रसे वाली सब्जी, दाल, लेह्य, पेय, चुष्य और शुद्ध अमृत स्वरूप फल, घारिका (घी में बनी मिठाई) आदि अत्यधिक उत्कृष्ट खाद्य, घी, नेत्रों को प्रिय लगने वाला घी-इलाइची-काली मिर्च आदि से सजाये अति स्वादिष्ट घी से बने व्यञ्जन एवं सागादि—इन सब अमृत तुल्य वस्तुओं का आस्वादन करके सुख भोग कीजिए। ]

**कृष्णेर शयन**—(हः भः विः ११ विः) ''वलीयसा पदा स्वामिन पदवीमवधारय। आगच्छ शयनस्थानं प्रियाभिः सह केशव॥ एवं प्रार्थ्य समपर्यास्मै पादुके शयनालयम्। आनीय देवं तत्रत्यानुपचारान् प्रकल्पयेत्॥ विशेषतोऽर्पयेउत्र घनं दुग्धं सशर्करम्। ताम्बुलञ्च सकर्पूरं दिव्यमाल्यानु-लेपनम्॥'' [ कृष्ण का शयन—हे स्वामिन्! बलिष्ठ चरण के द्वारा पदवी अवधारण कीजिए। हे केशव! प्रियाओं के साथ आप शयन स्थान पर आगमन कीजिए। इस प्रकार प्रार्थना करते हुए पादुका समर्पण करके श्रीकृष्ण को शयन के स्थान पर लाकर शयन के उपयोगी उपचार समूह की रचना करना। विशेष करके शयन के स्थान पर मीठा घना दूध, कर्पूर से युक्त ताम्बुल, दिव्यमाला और अनुलेपन अर्पण करना चाहिए। ]

**श्रीमूर्त्तिलक्षण, आर शालग्रामलक्षण।**
**कृष्णक्षेत्र-यात्रा, कृष्णमूर्त्ति-दरशन॥३३०॥**

**३३०। प॰ अनु॰**—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

**३३०। श्रीमूर्त्तिलक्षण**—मध्य, विंश परिच्छेद २२४-२३८ संख्या द्रष्टव्य।

**शालग्रामलक्षण**—हः भः विः पञ्चम विभाग द्रष्टव्य।

**नाम महिमा, नामापराध दूरे वर्जन।**
**वैष्णव लक्षण, सेवापराध-खण्डन॥३३१॥**
**शङ्ख-जल-गन्ध-पुष्प-धूपादि-लक्षण।**
**जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत, वन्दन॥३३२॥**
**पुरश्चरण-विधि, कृष्णप्रसाद-भोजन।**

**अनिवेदित-त्याग, वैष्णवनिन्दादि-वर्जन॥३३३॥**

३३१-३३३। प० अनु०—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

**३३१। नाम महिमा—**हः भः विः एकादश विभाग द्रष्टव्य।

**नामापराध—**आदि अष्टम परिच्छेद २४ संख्या का अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य।

**वैष्णव-लक्षण—**''विष्णुरेव हि यस्येष देवता वैष्णवः स्मृतः।'' [अर्थात् वैष्णवलक्षण—विष्णु ही जिनके अभीष्ट देवता हैं, वे वैष्णव कहे जाते हैं।] हः भः विः १० विः द्रष्टव्य।

**सेवापराध-खण्डन—**स्कान्दे अवन्तीखण्डे श्रीव्यासवाक्य—''अहन्यहनि यो मर्त्त्यो गीताध्यायं पठेत्तु वै। द्वात्रिंशदपराधांस्तु क्षमते तस्य केशवः॥'' द्वारकामाहात्म्ये,—''सहस्त्र नाममाहात्म्यं यः पठेत् श्रृणुयादपि। अपराध-सहस्त्राणि न स लिप्येत् कदाचन॥ द्वादश्यां जागरे विष्णोर्यः पठेत्तुलसी-स्तवम्। द्वात्रिंशदपराधान् हि क्षमते तस्य केशवः। तुलस्या कुरुते यस्तु शालग्राम-शिलार्चनम्। द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते तस्य केशवः॥ [सेवा-पराध-खण्डन—जो मनुष्य प्रतिदिन गीता के अध्यायों का अध्ययन करता है, वह प्रतिदिन बत्तीस प्रकार के अपराधों से मुक्त हो जाता है। जो विष्णुसहस्त्र नाम की महिमा का पाठ करता है, अथवा श्रवण भी करता है, वह कभी भी सहस्त्र अपराधों में लिप्त नहीं होता। जो द्वादशी में जागरण पूर्वक तुलसी के स्तव का पाठ करते हैं, श्रीकेशव उनके बत्तीस प्रकार के अपराधों का मार्जन कर देते हैं। जो तुलसी द्वारा शालग्राम-शिला की पूजा करते हैं, श्रीकेशव उनके बत्तीस अपराधों को दूर करते हैं।] बत्तीस सेवापराध—१) यान अथवा पादुका पहनकर भगवान् के घर में गमन, २) भगवान् के सामने प्रणाम नहीं करना, ३) उच्छिष्ट अथवा अशौच अवस्था में भगवद्-वन्दन, ४) एक हाथ के द्वारा प्रणाम, ५) भगवान के समक्ष अन्यदेवता की परिक्रमा, ६) भगवान् के समक्ष पैर फैलाना, ७) दोनों जंघाओं को हाथ के द्वारा घेरकर बैठना, ८) शयन, ९) भोजन, १०) मिथ्या-बोलना, ११) ऊँचा बोलना, १२) परस्पर जल्पना, १३) क्रन्दन, १४) दूसरों पर कृपा, १५) कठोर वचनों का प्रयोग, १६) कम्बल ओढ़ना १७) दूसरों की निन्दा, १८) दूसरों की प्रशंसा, १९) अश्लील बात करना, २०) अधोवायु छोड़ना, २१) सामर्थ्य रहने पर भी उपचार के बिना पूजा, २२) अनिवेदित वस्तु का भक्षण, २३) मौसम के फल को अर्पण न करना, २४) अवशिष्ट (बचे हुए) अंश का निवेदन, २५) देवता को पीठ दिखाकर बैठना, २६) दूसरे का अभिवादन, २७) गुरु के आने पर उनका स्तव नहीं करके बैठे रहना, २८) आत्म-प्रशंसा, २९) देव निन्दा, ३०) अन्य व्यक्ति के प्रति निर्दयता, ३१) उत्सव नहीं मनाना, ३२) कलह (क्लेश)।

३३२। **पुष्प-लक्षण—**हः भः विः सप्तम विभाग द्रष्टव्य। **धूपादि लक्षण—**हः भः विः अष्टम विभाग द्रष्टव्य। जप स्तुति, परिक्रमा, दण्ड्वत और वन्दना—हः भः विः अष्टम विभाग आलोच्य।

३३३। **पुरश्चरण-विधि—**मध्य, पञ्चदश परिच्छेद १०८ संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य। **कृष्णप्रसाद भोजन—**''संभोज्य भोजनं कुर्यादन्यथा नरकं व्रजेत। अपूज्य भोजनं कुर्वन् नरकाणि व्रजेन्नरः॥'' [**कृष्णप्रसाद-भोजन—श्रीहरि को भोजन कराके स्वयं भोजन करना, अन्यथा नरक-गमन करना होगा। श्रीहरि की पूजा नहीं करके भोजन करने से मनुष्य को नरक की प्राप्ति होती है।**]

**अनिवेदित-त्याग—**''अनिवेद्य तु भुञ्जानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः। तस्मात् सर्वं निवेद्यैव विष्णोर्भुञ्जीत सर्वदा॥'' [**अनिवेदित-त्याग—**

**अनिवेदित द्रव्य उपभोग करने से मनुष्य प्रायश्चित के योग्य होता है, अतएव सदैव समस्त द्रव्य श्रीविष्णु को निवेदन करके भोजन करना चाहिए। ]** हः भः विः नवम विः १०८ संख्या द्रष्टव्य। वैष्णवनिन्दा-वर्जन-मध्य, पञ्चादश परिच्छेद २६१ संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

**साधुलक्षण, साधुसङ्ग, साधुसेवन।**
**असत्सङ्ग-त्याग, श्रीभागवत-श्रवण॥३३४॥**

**३३४। प० अनु०—**अर्थ स्पष्ट है।

**दिनकृत्य, पक्षकृत्य, एकादश्यादि-विवरण।**
**मासकृत्य, जन्माष्टम्यादि-विधि-विचारण॥३३५॥**

**३३५। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

३३५। **दिनकृत्य—**दिवस के कालोचित कृत्य-समूह। **पक्षकृत्य—**तिथि में, विशेषतः एकादशी आदि में अनुष्ठान योग्य कृत्य समूह। मासकृत्य—बारह महीने के कृत्य। **एकादशी आदि का विवरण—**हः भः विः १२ विः द्रष्टव्य। **जन्माष्टमी-विधि-विचारण—**हः भः विः १२ विः द्रष्टव्य।

**एकादशी, जन्माष्टमी, वामनद्वादशी।**
**श्रीरामनवमी, आर नृसिंहचतुर्दशी॥३३६॥**
**एइ सबे विद्धा-त्याग, अविद्धा-करण।**
**अकरणे दोष, कैले भक्तिर लभन॥३३७॥**

**३३६-३३७। प० अनु०—**३३७ का अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

३३७। एकादशी में अरुणोदय-विद्धा त्याग एवं अन्यव्रतों में भी सूर्योदय-विद्धा-त्याग करके अविद्ध व्रत ही पालनीय है। विद्ध-व्रत-का पालन 'दोष' एवं अविद्ध व्रत के पालन से ही 'भक्ति' होती है। विशेष रूप से जानने के लिये हः भः विः १२ और १३ विः द्रष्टव्य।

प्रभु के द्वारा सात्वत पुराण को 'प्रमाण' कहकर स्वीकार करना—

**सर्वत्र प्रमाण दिबे पुराण-वचन।**
**श्रीमूर्त्ति-विष्णु मन्दिर करण-लक्षण॥३३८॥**

**३३८। प० अनु०—**सर्वत्र पुराण के वचनों द्वारा प्रमाण प्रस्तुत करना। श्रीमूर्त्ति तथा विष्णु मन्दिर बनाने के लक्षण बतलाना।

हरिभक्तिविलास में सामान्य और वैष्णव सदाचार के वर्णन की आज्ञा—

**'सामान्य' सदाचार, आर 'वैष्णव'-आचार।**
**कर्त्तव्याकर्त्तव्य 'स्मार्त्त' व्यवहार॥३३९॥**

**३३९। प० अनु०—**वैष्णवस्मृति के अन्तर्गत सामान्य सदाचार तथा वैष्णव-सदाचार (के अन्तर) के विषय में बतलाना। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य आदि स्मार्त्त व्यवहार के विषय में भी लिखना।

सनातन को आशीर्वाद—

**एइ त' संक्षेपे कहिलुँ दिगदरशन।**
**जबे तुमि लिखिबा, कृष्ण कराबे स्फुरण॥"३४०॥**

**३४०। प० अनु०—**इस प्रकार मैंने संक्षेप में वैष्णव-स्मृति की विषय-वस्तु का दिगदर्शन कराया है। हे सनातन! जब तुम वैष्णव-स्मृति के विषय में लिखोगे, तब श्रीकृष्ण तुम्हें सबकुछ स्फुरित करायेंगे।

प्रभु के मुख से सनातन-शिक्षा अथवा सनातन के प्रति प्रभु के कृपा रूपी प्रसाद के श्रवण से अनर्थ-निवृत्ति और आत्म-प्रसाद का उदय—

**एइ त' कहिलु प्रभुर सनातने प्रसाद।**
**जाहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद॥३४१॥**

**३४१। प० अनु०—**श्रील कृष्णदास कविराज

गोस्वामी कह रहे हैं कि, इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रील सनातन गोस्वामी के प्रति की गयी उस कृपा का वर्णन किया, जिसके श्रवण से चित्त के समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं।

चैतन्यचन्द्रोदय-नाटक
में वर्णित—

**निज-ग्रन्थे कर्णपूर विस्तार करिया।**
**सनातने प्रभुर प्रसाद राखियाछे लिखिया॥३४२॥**

**३४२। प० अनु०—**श्रीकविकर्णपूर ने स्वरचित श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक में श्रील सनातन गोस्वामी के प्रति श्री मन्महाप्रभु की कृपा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

उपमा के द्वारा सनातन के महत्त्व का वर्णन— श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (९/३४-३५) श्लोक में प्रतापरुद्र के प्रति वार्त्ताहारि-वाक्य—

**गौड़ेन्द्रस्य सभा-विभूषणमणिस्त्यक्तवा य ऋद्धां श्रियं**
**रूपस्याग्रज एष एव तरुणीं वैराग्यलक्ष्मीं दधे।**
**अन्तर्भक्तिरसेन पूर्णसरसो वाह्येऽवधूताकृतिः**
**शैवालेः पिहितं मह्म-सर इव प्रीतिप्रदस्तद्विदाम्॥३४३॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३४३। गौड़ के राजा हुसैनशाह बादशाह की सभा में विभूषणमणि स्वरूप रूप गोस्वामी के अग्रज (ज्येष्ठ भ्राता) इन सनातन ने समृद्धराजश्री का परित्याग करके नवीनवैराग्य-लक्ष्मी को धारण किया था। अन्तः करण में भक्ति रस से पूर्ण हृदय, बाहर में अवधूत का आकार, शैवाल (काई) के द्वारा आच्छादित महासरोवर की भाँति वे श्रीसनातन भक्तितत्त्वविद् गणों को प्रीति प्रदान करने वाले थे।

**अनुभाष्य**

३४३। गौड़ेन्द्रस्य (गौड़ेश्वरस्य) सभावविभूषण-मणिः (सभायां विभूषणे अलङ्करणे मणिः इव) यः ऋद्धां (समृद्धां) श्रियं (राजसम्पदं) त्यक्त्वा (परित्यज्य) तरुणीं (नवीनां) वैराग्यलक्ष्मीं (वैराग्य-सम्पत्तिं) दधे (आश्रितवान्); शैवालैः पिहितम् (आच्छादित) महासरः (गभीर-सरोवरम्) इव अन्तः (हृदये) भक्तिरसेन (कृष्ण-प्रेमरसेन) पूर्णसरसः (रसितः) बाह्ये (बहिः) अवधूताकृतिः (अवधूतस्य परमहंसस्य इव आकृतिः यस्य सः) रूपस्य अग्रजः सः एषः (सनातनः) एव तद्विदां (भक्तितत्त्वाभिज्ञानां तत्त्वकोविदानां विदुषां देशिकानां) प्रीतिप्रदः (प्रेमभाक्) अभूत।

**तं सनातनमुपागतमक्ष्णोर्दृष्टि-**
**मात्रमतिमात्रदयार्द्रः।**
**आलिलिङ्ग परिधायत-दोर्भ्यां**
**सानुकम्पमथ चम्पक-गौरः॥३४४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३४४। सनातन के उपस्थित होने पर, उन्हें देखते-ही चम्पकवर्ण गौरसुन्दर ने अत्यन्त दया से आर्द्र होकर दो हाथ प्रसारित करके अनुकम्पा (कृपा) प्रकाश करते हुए उनका आलिङ्गन किया।

*चतुर्विंश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

**अनुभाष्य**

३४४। अतिमात्रदयार्द्रः (निरतिशयया दयया आर्द्रः) चम्पक-गौरः (चम्पक-कुसुमवत् पीतवर्णः) अक्ष्णोः (नयनयोः) दृष्टिमात्रं (दर्शनमात्रेण) उपागतं (हीनवेशेन समायात) तं सनातनं परिघायतदोर्भ्यां (परिघाभ्याम् इव आयताभ्यां दीर्घाभ्यां दोर्भ्यां भुजाभ्या) सानुकम्पम् (अनुकम्पा यथा स्यात्तथा कृपयेत्यर्थः) आलिलिङ्ग।

श्रीचैतन्य चन्द्रोदय-नाटक (९/३८)-

**कालेन वृन्दावनकेलि-वार्त्ता**
**लुप्तेति तां ख्यापयितुं विशिष्य।**

**कृपामृतेनाभिषिषेच देवस्तत्रैव**
**रूपञ्च सनातनञ्च॥३४५॥**

३४५। समय के प्रभाव से वृन्दावन लीला की वार्त्ता लुप्त हो गयी थी, उसी लीला को विशेष रूप से विस्तार करने के लिये श्रीगौराङ्ग देव ने कृपा रूपी अमृत के द्वारा वहाँ श्रीरूप को एवं श्रीसनातन को अभिषिक्त किया था।

**अनुभाष्य**

३४५। मध्य उनविंश परिच्छेद ११९ संख्या द्रष्टव्य।

*चतुर्विंश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

श्रीसनातन-शिक्षा के अनुशीलन के फलस्वरूप
अनर्थ से मुक्ति एवं सम्बन्ध-ज्ञान,
अभिधेय एवं प्रयोजन की प्राप्ति—

**एइ त' कहिलुँ सनातने प्रभुर प्रसाद।**
**जाहार श्रवणे चित्तेर खण्डे अवसाद॥३४६॥**
**कृष्णेर स्वरूपगणेर सकल हय 'ज्ञान'।**
**विधि-राग-मार्गे 'साधनभक्ति'र विधान॥३४७॥**
**'कृष्णप्रेम', 'भक्तिरस', 'भक्तिर सिद्धान्त'।**
**इहार श्रवणे भक्त जानेन सब अन्त॥३४८॥**

**३४६-३४८। प० अनु०—**श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कह रहे हैं कि इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रील सनातन गोस्वामी के प्रति की गयी कृपा का वर्णन किया है, जिसके श्रवण से चित्त के समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं। इसके श्रवण से श्रीकृष्ण के समस्त स्वरूपों का ज्ञान होता है तथा विधि और रागमार्ग की साधन-भक्ति के विधान का ज्ञान होता है। इसके श्रवण से भक्त 'कृष्णप्रेम', 'भक्तिरस' तथा 'भक्ति के सिद्धान्त' आदि की सीमा को जान जाता है।

निताइ-गौर-अद्वैत के एकान्तिक भक्तों की ही
कृष्णप्रेमधन को प्राप्त करने की योग्यता—

**श्रीचैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण।**
**जाँर प्राणधन, सेइ पाय एइ धन॥३४९॥**

**३४९। प० अनु०—**श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के श्रीचरण ही जिनके प्राणधन हैं, वही इस धन को प्राप्त कर सकता है।

**श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।**
**चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥३५०॥**

*श्रीचैतन्यचरितामृत के मध्य खण्डे में*
*आत्मारामाश्चेति-श्लोक-व्याख्याया सनातनानुग्रह*
*नामक चतुर्विंश परिच्छेद समाप्त।*

**३५०। प० अनु०—**श्रीरूप-रघुनाथ के चरणों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास चैतन्य चरितामृत का गान कर रहा है।

❋ ❋ ❋

# पञ्चविंश परिच्छेद

**कथासार—**महाराष्ट्रीय ब्राह्मण महाप्रभु का दास था। प्रभु का यश सुनने से उसे आनन्द मिलता है। एक दिन सन्यासियों और महाप्रभु को निमन्त्रण करके एकत्रित करते हुए उन्होंने सन्यासियों को महाप्रभु का कृपापात्र बनाया था; यह आदिलीला के सप्तम परिच्छेद में लिखा गया है। उस दिन से वाराणसीपुर में प्रभु का माहात्म्य प्रचारित हुआ। नगरवासी बहुत से व्यक्ति महाप्रभु के अनुगत बने। प्रकाशानन्द सरस्वती का कोई शिष्य भी महाप्रभु का अनुगत था। जब उन्होंने मायावाद की निन्दा और महाप्रभु के द्वारा उपदिष्ट शुद्धभक्तिवाद के माहात्म्य का वर्णन किया, तब प्रकाशानन्द-स्वामी ने अनेक युक्तियों के द्वारा उसके पक्ष का समर्थन किया। पञ्चनदी में स्नान करने के बाद महाप्रभु ने जब भक्तों के साथ बिन्दुमाधव के मन्दिर में कीर्त्तन आरम्भ किया था, तब शिष्यों सहित प्रकाशानन्द भी वहाँ उपस्थित थे। प्रकाशानन्द ने महाप्रभु के चरणों को पकड़कर उनमें गिरकर अपने पूर्व कार्यों को धिक्कार एवं वेदान्त-सङ्गत भक्तितत्व के विषय में जिज्ञासा की। महाप्रभु ने उन्हें ब्रह्म-सम्प्रदाय में सिद्ध अपूर्व भक्तिवाद सिखलाकर श्रीमद्भागवत ही ब्रह्मसूत्र का भाष्य है, उसे दिखला दिया एवं चतु:श्लोकी की व्याख्या में समस्त तत्व बोले। उस दिन से संन्यासीगण 'भक्त' बन गये। महाप्रभु ने सनातन को उपदेश देकर एवं वृन्दावन जाने की आज्ञा देकर पुरुषोत्तम की यात्रा की। उसके उपरान्त कविराज-गोस्वामी ने श्रीरूप, श्रीसनातन और सुबुद्धि-राय का इतिहास कुछ-कुछ वर्णन किया है। झाड़िखण्ड से होकर महाप्रभु बलभद्र के साथ यात्रा करके श्रीपुरुषोत्तम में उपस्थित हुए। इस परिच्छेद के अन्तिम भाग में मध्य लीला के प्रत्येक अध्याय के विषयों को बतलाकर श्री कविराज-गोस्वामी ने सभी जीवों को इस श्रीचैतन्य चरितामृत का पाठ करने (पढ़ने) का उपदेश दिया है।

(अः प्रः भाः)

कृष्ण-विमुख मायावादी को कृष्णोन्मुख
बनाने वाले श्रीगौरसुन्दर—

**वैष्णवीकृत्य सन्यासिमुखान् काशीनिवासिनः।**
**सनातनं सुसंस्कृत्य प्रभुर्नीलाद्रिमागमत्॥१॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१। संन्यासी आदि काशीवासियों को 'वैष्णव' बनाकर एवं सनातन का उत्तम रूप से संस्कार करके प्रभु ने नीलाद्रि आगमन किया।

**अनुभाष्य**

१। प्रभुः (श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रः) काशीनिवासिनः (वाराणसी-वास्तव्यान्) सन्यासिमुखान् (तुर्याश्रमि-प्रमुखान् प्रकाशानन्दादीन्) वैष्णवीकृत्य (शुद्धभक्ति-मार्गे समानीय) सनातनं सुसंस्कृत्य (सुवैष्णवेशं दत्त्वा च) नीलाद्रिं (श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रम्) आगमत्।

**जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।**
**जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥**

**२। प० अनु०—**श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो, श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

सनातन को काशी में दो मास तक शिक्षा-प्रदान—

**एइ मत महाप्रभु दुइ मास पर्यन्त।**
**शिखाइला ताँरे भक्तिसिद्धान्तेर अन्त॥३॥**

**३। प० अनु०—**इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामी को दो मास तक भक्ति के सिद्धान्तों की उच्च सीमा तक शिक्षा प्रदान की।

परमानन्द कीर्त्तनीया द्वारा प्रभु की सेवा—

**'परमानन्द कीर्त्तनीया'—शेखरेर सङ्गी।**
**प्रभुरे कीर्त्तन शुनाय, अति बड़ रङ्गी॥४॥**

**४। प० अनु०—**श्रीचन्द्रशेखर के साथी परमानन्द कीर्त्तनीया नामक अति निपुण भक्त श्रीमन्महाप्रभु को अत्यधिक आनन्दपूर्वक कीर्त्तन सुनाते थे।

भक्त की वाञ्छा को पूर्ण करने के लिये ही काशी के मायावादी का उद्धार-करना—

**सन्यासीर गण प्रभुरे यदि उपेक्षिल।**
**भक्त-दुःख खण्डाइते तारे कृपा कैल॥५॥**

**५। प० अनु०—**यद्यपि मायावादियों सन्यासियों ने श्रीमन्महाप्रभु की उपेक्षा कर दी थी, तब भी श्रीमन्महाप्रभु ने भक्तों के दुःख को दूर करने के लिये उन मायावादी संन्यासियों पर कृपा की।

पूर्व में आदि लीला में मायावादी का उद्धार वर्णित, पुनः संक्षेप में वर्णन—

**सन्यासीरे कृपा पूर्वे लिखियाछों विस्तारिया।**
**उद्देशे कहिये इँहा संक्षेप करिया॥६॥**

**६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने किस प्रकार मायावादी सन्यासियों पर कृपा की, उसका मैं पहले ही विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुका हूँ, तब भी यहाँ पर किसी कारण पुनः उसका संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

६। पूर्वे लिखियाँछो विस्तारिया (पूर्व में विस्तारपूर्वक लिखा है)—आदि सप्तम परिच्छेद द्रष्टव्य।

मायावादी सन्यासियों के द्वारा प्रभु की निन्दा; महाराष्ट्रीय विप्र के मन के दुःख के कारण मायावादियों के कल्याण की चिन्ता-भावना—

**जाँहा ताँहा प्रभुर निन्दा करे सन्यासीर गण।**
**शुनि' दुःखे महाराष्ट्रीय विप्र करये चिन्तन॥७॥**

**७। प० अनु०—**काशी में जहाँ-तहाँ मायावादी सन्यासी श्रीमन्महाप्रभु की निन्दा करते थे, उनके मुख से श्रीमन्महाप्रभु की निन्दा सुनकर महाराष्ट्रीय ब्राह्मण विचार करने लगे—

प्रभु के परमेश्वर होने का स्वरूप-लक्षण—

**'प्रभुर स्वभाव,—जेबा देखे सन्निधाने।**
**'स्वरूप' अनुभवि' ताँरे 'ईश्वर' करि' माने॥८॥**

**८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के स्वभाव को जो कोई भी निकट आकर देखता है, वह श्रीमन्महाप्रभु के स्वरूप का अनुभव करके उन्हें ईश्वर मानने लगता है।

सभी को एकसाथ सम्मिलन कराने की इच्छा—

**कोन प्रकारे पारों यदि एकत्र करिते।**
**इहा देखि' सन्यासिगण हबे ईँहार भक्ते॥९॥**

**९। प० अनु०—**यदि किसी प्रकार से मैं श्रीमन्महाप्रभु तथा मायावादी सन्यासियों को एक

ही स्थान पर मिला पाऊँ, तभी मायावादी सन्यासी श्रीमन्महाप्रभु को देखकर इनके भक्त बन जायेंगे।

**वाराणसी-वास आमार हय सर्वकाले।**
**सर्वकाल दुःख पाब, इहा ना करिले॥''१०॥**

**१०। प० अनु०—**मैं तो सब समय वाराणसी में ही रहता हूँ, इसलिए यदि मैं ऐसा नहीं कर पाया, तो मैं सब समय दुःख ही भोग करूँगा।

मायावादी सन्यासियों को अपने घर पर निमन्त्रण—
**एत चिन्ति' निमन्त्रिल सन्यासीर गणे।**
**तबे सेइ विप्र आइल महाप्रभुर स्थाने॥११॥**

**११। प० अनु०—**ऐसा सोचकर उन महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने सभी मायावादी सन्यासियों को निमन्त्रित किया तथा फिर वे ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु के स्थान पर आ गये।

चन्द्रशेखर एवं तपनमिश्र का भी युगपत् प्रभु से एक ही निवेदन—
**हेनकाले निन्दा शुनि' शेखर, तपन।**
**दुःख पाञा प्रभु-पदे कैला निवेदन॥१२॥**

**१२। प० अनु०—**मायावादियों के मुख से श्रीमन्महाप्रभु की निन्दा सुनकर श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपनमिश्र भी उसी समय श्रीमन्महाप्रभु के निकट आकर उनके श्रीचरणों में दुःखित होकर निवेदन करने लगे—।

भक्त की वाञ्छा को पूर्ण करने के लिये प्रभु की कृपा-अभिलाषा—
**भक्त-दुःख देखि' प्रभु मनेते चिन्तिल।**
**सन्यासीर मन फिराइते मन हइल॥१३॥**

**१३। प० अनु०—**भक्तों के दुःख को देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने मन-ही-मन कुछ चिन्ता की तथा श्रीमन्महाप्रभु की मायावादी सन्यासियों के मन को परिवर्तित करने की इच्छा उत्पन्न हो गयी।

महाराष्ट्रीय विप्र का आगमन और प्रभु को निमन्त्रण—
**हेनकाले विप्र आसि' करिल निमन्त्रण।**
**अनेक दैन्यादि करि' धरिला चरण॥१४॥**

**१४। प० अनु०—**उसी समय महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने आकर श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया तथा अनेक दैन्य आदि करके उसने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण किया।

प्रभु द्वारा निमन्त्रण स्वीकार—
**तबे महाप्रभु ताँर निमन्त्रण मानिला।**
**आर दिन मध्याह्न करि' ताँर घरे गेला॥१५॥**

**१५। प० अनु०—**तब श्रीमन्महाप्रभु ने उस ब्राह्मण के निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया तथा अगले दिन दोपहर का स्नान करके श्रीमन्महाप्रभु उस ब्राह्मण के घर पर गये।

मायावादी सन्यासी का उद्धार—पहले आदिलीला के सप्तम परिच्छेद में वर्णित—
**ताँहा जैछे कैला प्रभु सन्यासी-निस्तार।**
**पञ्चतत्त्वाख्याने ताहा कैरछि विस्तार॥१६॥**

**१६। प० अनु०—**वहाँ पर जाकर श्रीमन्महाप्रभु ने जिस प्रकार उन सन्यासियों का उद्धार किया, उसका मैंने पञ्चतत्व के प्रसङ्ग (आदि सप्तम परिच्छेद) में पहले ही विस्तृत रूप से वर्णन कर दिया है।

**अनुभाष्य**

१६। आदि सप्तम परिच्छेद—पञ्चतत्त्व के आख्यान के प्रसङ्ग में यह लीला विस्तृत रूप से वर्णित हुई है।

पुनरुक्ति भय—

**ग्रन्थ बाड़े, पुनरुक्ति हय त' कथन।**
**ताँहा जेन ना लिखिलुँ, ताहा करिये लिखन॥१७॥**

**१७। प० अनु०—**पुनः उसका वर्णन करने से एक तो ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जायेगा तथा पुनरुक्ति भी हो जायेगी। वहाँ पर मैंने जिस प्रसङ्ग का वर्णन नहीं किया, अब केवल उसी के विषय में ही लिखूँगा।

मायावदियों की कृपाप्राप्ति के दिन से बहुत से तार्किकों का प्रभु के साथ तर्क करने के लिये आना—

**जे-दिवस प्रभु सन्यासीरे कृपा कैल।**
**से-दिवस हैते ग्रामे कोलाहल हैल॥१८॥**
**लोकेर संघट आइसे प्रभुरे देखिते।**
**नाना शास्त्रे पण्डित आइसे शास्त्र विचारिते॥१९॥**

**१८-१९। प० अनु०—**जिस दिन श्रीमन्महाप्रभु ने मायावादी सन्यासियों पर कृपा की, उसी दिन से सम्पूर्ण वाराणसी में सर्वत्र इसकी चर्चा होने लगी। श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये लोगों की भीड़ आने लगी। अनेकानेक शास्त्रों को जानने वाले पण्डित श्रीमन्महाप्रभु से शास्त्रों का विचार करने के लिये आते।

शुद्धभक्तिसिद्धान्तपूर्ण अकाट्य-युक्ति के बल से प्रभु के द्वारा सभी के कुतर्क का खण्डन—

**सर्वशास्त्र खण्डि' प्रभु 'भक्ति' करे सार।**
**सयुक्तिक वाक्ये मन फिराय सबार॥२०॥**

**२०। प० अनु०—**सभी शास्त्रों का खण्डन करके श्रीमन्महाप्रभु 'भक्ति' को ही सभी शास्त्रों के सार के रूप में स्थापित करते तथा अत्यन्त सुन्दर युक्ति के द्वारा वे सभी के मन का परिवर्तन कर देते।

सभी को प्रभु की शिक्षा की प्राप्ति और हरि-सङ्कीर्तन—

**उपदेश लञा करे कृ**ष्ण-सङ्कीर्तन।
सर्वलोक हासे, गाय, कर**ये नर्त्तन॥२१॥**

**२१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के उपदेश को धारण करके सभी कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन करते हुए हँसते, गाते तथा नृत्य करने लगते।

सन्यासियों के द्वारा मायावाद छोड़कर कृष्ण की कथा का अलाप करते हुए इष्टगोष्ठी—

**प्रभुरे प्रणत हैल सन्यासीर गण।**
**आत्ममध्ये गोष्ठी करे छाड़ि' अध्ययन॥२२॥**

**२२। प० अनु०—**सभी मायावादी संन्यासी श्रीमन्महाप्रभु के शरणागत हो गये तथा वे वेदान्त के अध्ययन को छोड़कर परस्पर में इष्टगोष्टी करने लगे।

**अनुभाष्य**

२२। सन्यासी निज-निज वेदान्त के पठन का परित्याग करके अपनी गोष्ठी में मिलकर महाप्रभु के द्वारा प्रदर्शित भक्तिपथ के सम्बन्ध में आलाप करने में प्रवृत्त हुए।

प्रकाशानन्द सरस्वती के किसी एक शिष्य के द्वारा सभा में चर्चा करते हुए प्रभु को 'नारायण' मानकर उनके द्वारा की गयी वेदान्त की चिद्-विलास व्याख्या की स्तुति और शङ्कर के मायावाद की व्याख्या की निन्दा—

**प्रकाशानन्देर शिष्य एक ताँहार समान।**
**सभामध्ये कहे प्रभुर करिया सम्मान॥२३॥**
**श्रीकृष्णचैतन्य हय 'साक्षात् नारायण'।**
**'व्याससूत्रेर' अर्थ करेन अति-मनोरम॥२४॥**
**उपनिषदेर करेन मुख्यार्थ व्याख्यान।**
**शुनिया पण्डित-लोकेर जुड़ाय मन-काण॥२५॥**

**सूत्र-उपनिषदेर मुख्यार्थ छाड़िया।**
**आचार्य 'कल्पना' करे आग्रह करिया॥२६॥**
**आचार्य-कल्पित अर्थ जे पण्डित शुने।**
**मुखे 'हय' 'हय' करे, हृदय ना माने॥२७॥**

**२३-२७। प॰ अनु॰—**प्रकाशानन्द सरस्वती के एक शिष्य जो कि ज्ञान में उन्हीं के ही समान थे, वे सभा में श्रीमन्महाप्रभु का सम्मान करते हुए कहने लगे—श्रीकृष्णचैतन्य साक्षात् नारायण हैं तथा वे 'व्याससूत्र' (वेदान्त सूत्र) का अत्यन्त मनोरम अर्थ करते हैं। वे उपनिषदों के भी मुख्य अर्थ की व्याख्या करते हैं, जिसे सुनकर पण्डितों के भी मन और कान तृप्त हो जाते हैं। व्याससूत्र तथा उपनिषदों के मुख्य अर्थ को छोड़कर श्रीशङ्कराचार्य ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक कल्पना करके उनके गौण अर्थ को प्रकाशित किया है। श्रीशङ्कराचार्य के द्वारा कल्पित अर्थों को जो पण्डित श्रवण करता है, वह अपने मुख से कहता है कि 'हाँ' 'हाँ' बहुत अच्छा अर्थ है, किन्तु वह हृदय में इस बात को स्वीकार नहीं करता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२६। आचार्य—शङ्कराचार्य।

ज्ञानमार्ग में फल्गु-वैराग्य के द्वारा माया अजय—

**श्रीकृष्णचैतन्य-वाक्य दृढ़ सत्य मानि।**
**कलिकाले संन्यासे 'संसार' नाहि जिनि॥२८॥**

**२८। प॰ अनु॰—**मैं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के वचनों को परम सत्य मानता हूँ कि कलिकाल में संन्यास के द्वारा संसार से उद्धार प्राप्त नहीं किया जा सकता।

प्रभु के द्वारा की गयी 'हरेर्नाम' श्लोक के अर्थ की व्याख्या की प्रशंसा—

**हरेर्नाम-श्लोकेर जेइ करिला व्याख्यान।**
**सेइ सत्य सुखदार्थ परम प्रमाण॥२९॥**

**२९। प॰ अनु॰—**श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने हरेर्नाम श्लोक की जो व्याख्या की है, वही सत्य तथा सुख प्रदान करने वाला परम प्रमाण है।

भक्ति ही मुक्ति प्रदान करने वाली और नामाभास ही मुक्ति प्रदान करने वाला—

**भक्ति बिना मुक्ति नहे, भागवते कय।**
**कलिकाले नामाभासे सुखे मुक्ति हय॥३०॥**

**३०। प॰ अनु॰—**श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भक्ति के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती तथा कलियुग में नामाभास से ही सुगमता-पूर्वक मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।

श्रीमद्भागवत (१०/१४/४) में—

**श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो**
**क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।**
**तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते**
**नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥३१॥**

३१। [श्रीब्रह्मा कह रहे है—] हे विभो, आपके प्रति की गयी भक्ति ही श्रेयः पथ है, उसे परित्याग करके जो सब व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये अर्थात्, 'मैं ब्रह्म' हूँ, इसी को ही स्थिर रूप में जानने के लिये अनेक प्रकार के कष्ट स्वीकार करते हैं, स्थूल-भूसी को पीसने वालों को जिस प्रकार चावल नहीं मिलते, उसी प्रकार, अन्त में उन्हें कष्टमात्र ही प्राप्त होता है, और कुछ भी नहीं।

**अनुभाष्य**

३१। मध्य द्वाविंश परिच्छेद २२ संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (१०/२/३२) में—

**येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्व्य-**
**स्तभावादविशुद्धबुद्धयः।**
**आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः**
**पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥३२॥**

३२। हे अरविन्दाक्ष, जो 'विमुक्त हो गया हूँ' ऐसा कहकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिरहित होने के कारण अविशुद्ध (अपवित्र) बुद्धि वाले हैं। वे अत्यधिक कष्ट करके माया से अतीत परमपद ब्रहम पर्यन्त आरोहण करके भी भगवद् भक्ति के अनादर के कारण अधःपतित होते हैं।

**अनुभाष्य**

३२। मध्य द्वाविंश परिच्छेद ३० संख्या द्रष्टव्य।

ब्रह्म-शब्द का वास्तविक अर्थ—

**'ब्रह्म'-शब्दे कहे 'षड़ेश्वर्यपूर्ण भगवान्'।**
**ताँरे 'निर्विशेष' स्थापि, 'पूर्णता' हय हान॥३३॥**

**३३। प० अनु०—**ब्रह्म शब्द का यथार्थ अर्थ षड़ेश्वर्यपूर्ण भगवान् होता है, उनको निर्विशेष कहकर स्थापना करने से उनकी 'पूर्णता' में हानि होती है।

**अनुभाष्य**

३३। भगवान् को 'निर्विशेष' कहकर स्थापित करने से उनके अप्राकृत सविशेष होने के अभाव से उनकी पूर्णशक्तिमता में हानि होती है। निर्विशेष होना—एक शक्ति का अपूर्ण परिचय मात्र है।

श्रुति और पुराण में अवरोह-पथ से अप्राकृत-चिद्-विलास का दर्शन, तर्क मूलक आरोहपथ से मायातीत चिद्-विलास को मायिक जड़ विलास समझना ही पाषण्डता अथवा महापराध—

**श्रुति-पुराण कहे,—कृष्णेर चिच्छक्ति-विलास।**
**ताहा नाहि मानि' पण्डित करे उपहास॥३४॥**
**चिदानन्द कृष्णविग्रहे 'मायिक' करि' मानि।**
**एइ बड़ 'पाप',—सत्य चैतन्येर वाणी॥३५॥**

**३४-३५। प० अनु०—**श्रुति तथा पुराण कृष्ण की चित्शक्ति के विलास के विषय में बतलाते हैं, उसे नहीं मानकर पण्डित लोग उसका उपहास उड़ाते हैं। जो लोग चिदानन्दमय भगवान् श्रीकृष्ण के विग्रह को मायिक समझते हैं, वे बहुत बड़ा पाप करते हैं,—श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा कहे गये ये वचन सत्य ही हैं।

**अनुभाष्य**

३४। वेदशास्त्र और पुराण कृष्ण के चिद्शक्ति विलास के परमनित्य होने को स्थापित करते हैं। अपने भोगमय जड़ीय-पाण्डित्य के द्वारा अभिमान-वशतः पण्डिताभिमानी ज्ञानी 'चिद् शक्ति के विलास नहीं हो सकते एवं वह मायाशक्ति में से ही एक हैं',—ऐसे असत्ज्ञान से भ्रान्त होकर उनका उपहास करते हैं।

३५। निर्विशेषवादी सच्चिदानन्द कृष्ण विग्रह को माया-कल्पित ईश्वर विग्रह मानकर भगवान् के नित्य सविशेष होने को समझने में अक्षम होते हैं। यही दाम्भिकता (घमंड) अथवा नास्तिकता ही गुरुतर (बहुत बड़ा) अपराध है। श्रीमन्महाप्रभु के वचनानुसार सविशेष सच्चिदानन्द कृष्ण विग्रह—नित्य-सत्यचिद् विलासमय है, यही वास्तविक सत्य है।

निर्विशेष-रूप की अपेक्षा चिद्विलासमय रूप का परमतत्व—

श्रीमद्भागवत (३/९/३) में—

**नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप—**
**मानन्दमात्र मविकल्पमविद्धवर्चः।**
**पश्यामि विश्वसृजमेक मविश्वमात्मन्**
**भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि॥३६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३६। [ श्रीब्रह्मा ने कहा— ] हे परम, आपके इस आनन्दमात्र अविकल्प एवं मायातीत तेजः-स्वरूप,—जिस स्वरूप को मैं अब देख रहा हूँ, इससे श्रेष्ठ स्वरूप और कोई नहीं है। हे आत्मन्, विश्वसृजनकारी होने पर भी विश्व से पृथक भूतेन्द्रियात्मक आपका यह जो रूप देख रहा हूँ,—मैं इसी के ही उपाश्रय (शरणागत) हो रहा हूँ।

**अनुभाष्य**

३६। गर्भोदकशायी की नाभि से ब्रह्मा के उत्पन्न होने पर भी वे उन पुरुष को नहीं जान पाने के कारण, जल में प्रविष्ट होकर तपस्या के द्वारा भगवान् का स्तव करते-करते निम्नलिखित दो श्लोकों में उनके निर्विशेष रूप की अपेक्षा सविशेष चिद्विलासमय सच्चिदानन्द विग्रह के श्रेष्ठ होने का वर्णन कर रहे हैं,—

हे परम (परमेश), अविद्धवर्च्चः (अविद्धं प्रकृत्या अनाक्रान्तं वर्चः तेजः यस्य तत् मायातीत-स्वरूपत्वात् अनावृत-प्रकाशम् अतः) अविकल्पं (न विद्यते विचित्रः कल्पः सृष्टिः यत्र तम् अद्वय-ज्ञानम्) आनन्दमात्रं (आनन्दं निर्विशेषचिद्रूपं ब्रह्म मात्रा अंशः यस्य ते) यत् भवतः (तव) स्वरूपं (पूर्णभगवद्रूपं) तत अतः (रूपात्) परं (भिन्न) श्रेष्ठं वा न पश्यामि। हे आत्मन् (परमात्मन्), विश्वसृजं (विश्वसृष्टि कर्त्तारम्) एकम् (अद्वितीयम्) अविश्वं (नश्वरात् विश्वस्मात् अन्यत भिन्नम् अक्षयत्वात्) भूतेन्द्रियात्मकं (भूतानाम् इन्द्रियाणां च आत्मकं कारणम्) ते (तव) अदः (अप्राकृत) रूपम् उपाश्रितः अस्मि (शरणं यामि)।

निर्विशेषवादियों के द्वारा 'मायाधीश' भगवद्-विग्रह को 'मायिक' समझना नरक गामी—
श्रीमद्भागवत (३/९/४) में—

**तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय**
**ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम्।**
**तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं**
**योऽनादृतो नरक भाग्भिरसत् प्रसङ्गैः॥३७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३७। हे भुवनमङ्गल, हमारे मङ्गल के लिये हमारी उपासना के योग्य आपका यह स्वरूप,—जिसे आपने ध्यान में दिखलाया है, उसी भगवद्-स्वरूप को—हम नमस्कार करते हैं एवं उसी की परिचर्या करते हैं। असत् प्रसङ्ग से दूषित नरकगामी व्यक्ति इस नित्यमूर्त्ति का आदर नहीं करते।

**अनुभाष्य**

३७। हे भुवनमङ्गल (जीवैककल्याणनिलय) तत् वै (तदेव इदं रूपम्) उपासकानां नः (अस्माक) मङ्गलाय ध्याने ते (त्वया) दर्शितं स्म। असत्प्रसङ्गैः (श्रौत मार्ग विरोधि-निर्विशेष-ब्रह्म-विचारपर-कुतर्क निष्ठैः अज्ञानकल्पितवाक्यैः) नरक भाग्भिः (नरक-गामिभिः केश्चित् नास्तिकैः) यः (पुरुषः त्वं) न आदृतः (नैव स्वीकृतः), तस्मै भगवते तुभ्यं नमः अनुविधेम (वयम् अनुवृत्त्या नमस्करवाम)।

अप्राकृत कृष्ण की नराकृति को देखकर ही पाषण्डियों की प्राकृत मर्त्त्यबुद्धि—
श्रीमद्भगवद्गीता (९/११) में—

**अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।**
**परं भावमजानन्तो सर्वभूतमहेश्वरम्॥३८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३८। मनुष्य का आकार धारण करने वाले मेरी, मूढ़लोग निन्दा करते हैं, अर्थात् मेरी नित्य चिन्मयदेह को मायाश्रित मानकर मेरी अवज्ञा करते है; क्योंकि, वे सभी प्राणियों के महेश्वर-स्वरूप कृष्णमूर्त्ति के सर्वोत्तम चिन्मय स्वभाव को जानते नहीं हैं।

**अनुभाष्य**

३८। सर्वभूतमहेश्वरं (सर्वप्राणिनामधीश्वरं मम) परं भावम् (अप्राकृत-रसविग्रह-तत्त्वम्) अजानन्तः मूढ़ाः (अक्षज-ज्ञान-मुग्धाः) मानुषीं (भक्तेच्छावशात् भक्ताह्लादन-निमित्तात् मनुष्याकारा) तनुं (शुद्ध-सत्त्वमयीमपि) आश्रितं (धृत) माम् (अवतीर्णम्) अवजानन्ति (अवमन्यन्ते)।

पाषण्डियों की गति—
श्रीमद्भगवद्गीता (१६/१९) में—

**तानहं द्विषतः क्रूरान संसारेषु नराधमान्।**
**क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥३९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

३९। मैं मेरी श्रीमूर्त्ति के विरोधी क्रूर नराधम आदि को इस संसार में आसुरी आदि योनियों में मुहुर्मुहुः (पुनः पुनः) डालता हूँ।

**अनुभाष्य**

३९। मां, द्विषतः (द्वेषपरायणान्) क्रूरान् (हिंस्रान्) अशुभान् (निषिद्धाचाररतान्) नराधमान् तान् (जनान्) एव संसारेषु (जन्म मृत्युमार्गेषु) आसुरीषु योनिषु (हिंसालोभसमन्वितासु त्रिर्यक-पश्वादि-योनिषु) अजस्त्रं (पुनः पुनः) अहं क्षिपामि (तेषां भीषणा-पराधानां तादृशमेव फलं ददामीत्यर्थः)।

गुर्वज्ञा अथवा गुरु के विरोध के कारण तर्कपन्था में श्रौतपन्था के शक्ति-परिणाम को अस्वीकार करने के कारण विवर्तवाद—

**सूत्रेर परिणाम-वाद, ताहा ना मानिया।**
**'विवर्तवाद' स्थापे, 'व्यास भ्रान्त' बलिया॥४०॥**

**४०। प॰ अनु॰—**वेदान्तसूत्र के परिणाम-वाद को स्वीकार नहीं करके श्रीशङ्कराचार्य व्यासदेव को भ्रान्त कहकर विवर्त्तवाद की स्थापना करते हैं।

**अनुभाष्य**

४०। आदि, सप्तम परिच्छेद १२१-१२६ संख्या द्रष्टव्य।

विवर्तवाद के आश्रय में लक्षणा-वृत्ति से वेदान्त-उपनिषद के कल्पित अर्थ के द्वारा असुरों और पाषण्डियों का मोहित होना—

**एइ त' कल्पित अर्थ मने नाहि भाय।**
**शास्त्र छाड़ि' कुकल्पना पाषण्डे बुझाय॥४१॥**

**४१। प॰ अनु॰—**किन्तु श्रीशङ्कराचार्य द्वारा किया गया कल्पित अर्थ मन को नहीं भाता, क्योकि शास्त्रों के विचार को छोड़कर केवल कल्पना करने को तो पाखण्ड ही कहा जाता है।

परमार्थ भगवत्-कृपा को छोड़कर बाँझ वितण्डे का आश्रय—

**परमार्थ-विचार गेल, करि मात्र 'वाद'।**
**काँहा मुक्ति पाब, काँहा कृष्णेर प्रसाद॥४२॥**

**४२। प॰ अनु॰—**श्रीशङ्कराचार्य द्वारा किये अर्थ में परमार्थ का विचार तो बहुत दूर हो गया, केवल उसमें उन्होंने स्वकल्पित 'वाद' को ही स्थापित किया है। उनके विचारों को मानने से कैसे मुक्ति तथा कृष्ण की कृपा को प्राप्त किया जा सकता है।

शाङ्कर भाष्य रूपी मेघ के द्वारा वेदान्त
रूपी सूर्य को ढकना—

**व्याससूत्रेर अर्थ आचार्य करियाछे आच्छादन।**
**एइ हय सत्य श्रीकृष्णचैतन्य-वचन॥४३॥**

**४३। प० अनु०—**श्रीशङ्कराचार्य ने व्यास-सूत्रों के अर्थों को आच्छादित किया है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु द्वारा कहे गये ये वचन सत्य ही हैं।

चैतन्य-मत ही 'सार'; अचैतन्य अर्थात् अद्वैत-मत
सम्पूर्णतः असार—

**चैतन्य-गोसाञि जेइ कहे, सेइ मत सार।**
**आर जत मत, सेइ सब छारखार॥''४४॥**

**४४। प० अनु०—**श्रीचैतन्य गोसाञि जो कुछ कहते हैं, वही सभी मतों का सार हैं। उसके अलावा अन्य जितने मत हैं, वे सब सारहीन हैं।

गौरभक्त प्रकाशानन्द की उक्ति; उद्धार के बाद
उनके 'प्रबोधानन्द' नाम की प्राप्ति के
प्रमाण का अभाव—

**एत कहि' सेइ करे कृष्णसङ्कीर्तन।**
**शुनि' प्रकाशानन्द किछु कहेन वचन॥४५॥**

**४५। प० अनु०—**इतना कहकर प्रकाशानन्द सरस्वती का वह शिष्य कृष्ण-सङ्कीर्त्तन करने लगा, जिसे सुनकर प्रकाशानन्द सरस्वती कहने लगे—।

'केवलाद्वैतवाद' को स्थापित करने के उद्देश्य से
शङ्कर का सात्वत शास्त्रों के खण्डन करने की
चेष्टा से 'प्रच्छन्न नास्तिकता' अथवा
भगवद्-अविश्वास—

**''आचार्येर आग्रह—'अद्वैतवाद' स्थापिते।**
**ताते सूत्रेर व्याख्या करे अन्य रीते॥४६॥**
**'भगवता' मानिले 'अद्वैत' ना जाय स्थापन।**
**अतएव सब शास्त्र करये खण्डन॥४७॥**

कुतर्क पर आधारित मतवाद का फल—

**जेइ ग्रन्थकर्त्ता चाहे स्व-मत स्थापिते।**
**शास्त्रेर सहज अर्थ नहे ताँहा हैते॥४८॥**

छह प्रकार के दार्शनिकों के विभिन्न मतवाद और
वैदिक मत—

**'मीमांसक' कहे,—'ईश्वर हय कर्मेर अङ्ग।'**
**'सांख्य' कहे,—'जगतेर प्रकृति कारण॥''४९॥**
**'न्याय' कहे,—'परमाणु हैते विश्व हय।'**
**'मायावादी'—निर्विशेष-ब्रह्मे 'हेतु' कय॥५०॥**
**'पातञ्जल' कहे,—'ईश्वर हय स्वरूप-आख्यान।'**
**वेदमते कहे ताँरे—'स्वयं भगवान्'॥५१॥**

व्यास द्वारा रचित ब्रह्म सूत्र में सभी मतों का खण्डन—

**छयेर छय मत व्यास कैला आवर्त्तन।**
**सेइ सब सूत्र लञा 'वेदान्त'-वर्णन॥५२॥**

'वेदान्त' के मतानुसार ब्रह्म—चिद्विलास सविशेष
अथवा सच्चिदानन्दमय विग्रह—

**'वेदान्त'-मते,—ब्रह्म 'साकार' निरुपण।**
**'निर्गुण'—व्यतिरेके, तिंहो हय त' 'सगुण'॥५३॥**

दूसरों के मत का खण्डन करके अपने-अपने
मतवाद को स्थापित करने की चेष्टा—

**परम कारण ईश्वर केह नाहि माने।**
**स्व-स्व-मत स्थापे पर मतेर खण्डने॥५४॥**

अनिश्चयता पर आधारित मनोधर्मी तर्कपन्थी
षड्दर्शन को छोड़कर श्रौतपन्थी महाजन अथवा
शुद्धभक्त ही आश्रय ग्रहण करने योग्य—

**ताते छय दर्शन हैते 'तत्व' नाहि जानि।**
**'महाजन' जेइ कहे, सेइ 'सत्य' मानि॥५५॥**

**४६-५५। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

४६-५५। अन्य सन्यासियों के भक्ति-सापेक्ष वचनों को श्रवण करके प्रकाशानन्द सरस्वती कह रहे हैं,—'शङ्कराचार्य के अद्वैत स्थापन में अत्यधिक आग्रह से युक्त सूत्र की अन्यप्रकार की व्याख्या की गयी है। भगवत्ता मानने पर 'अद्वैतवाद' रहता नहीं। इसलिए आचार्य ने भगवद्तत्त्व को स्थापित करने वाले अन्य सभी शास्त्रों के खण्डन की चेष्टा की है, अपने मत को स्थापित करने के लिये शास्त्रों के सहज अर्थ का परित्याग करना ही मायावाद का नियम है। देखो (१) जैमिनी आदि मीमांसको ने वेदों का मुख्य तात्पर्य जो भक्ति है, उसे त्याग करके ईश्वर को 'कर्म का अङ्ग' बना डाला है। (२) कपिल आदि निरीश्वर सांख्यकार ने वास्तविक वेदार्थ का परित्याग करके प्रकृति को जगत् का कारण कहकर निर्देश किया है। (३) गौतम और कणाद आदि ने न्याय और वैशेषिक-शास्त्रों में परमाणु को ही विश्व का कारण कहा है। (४) उसी प्रकार अष्टाव्रक आदि मायावादी ने निर्विशेष-ब्रह्म को ही जगत् का कारण कहकर दिखलाया है। (५) पतञ्जलि आदि राजयोगी ने अपने योगशास्त्र में उक्त कल्पनामय ईश्वर को 'स्वरूप-तत्त्व' कहकर स्थापित किया है। इन सभी मतवाद परायण आचार्यों ने वेदसिद्ध स्वयं भगवान् को परित्याग करके उनके खण्ड-प्रतीतिमय एक-एक 'मत' को स्थापित किया है। षड्दर्शन के छह मतों की उत्तम रूप से आलोचना करके उनके मतों का खण्डन करके श्रीव्यासदेव ने भगवत् प्रतिपादक सभी वेदसूत्रों का अवलम्बन करके वेदान्त सूत्र की रचना की है। वेदान्त के मतानुसार, ब्रह्म सच्चिदानन्द-स्वरूप साकार हैं। निर्विशेषवादी ब्रह्म को 'निर्गुण' एवं विशेष-स्थान पर भगवान् को 'सगुण' (त्रिगुणमय) कहकर प्रतिपादित करते हैं; वास्तव में तत्त्ववस्तु केवल निर्गुण अथवा त्रिगुणातीत नहीं है; परन्तु वह—अनन्तचिद्गुण राशि का आधार 'सगुण' विग्रह है। मतवादियों के मतानुसार परम कारण ईश्वर (विष्णु) को प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् कोई भी सर्वेश्वरेश्वर सर्वकारण विष्णु को नहीं मानता, (बल्कि सभी ने दूसरे-दूसरे मतों का खण्डन करके अपने-अपने मत को स्थापित करने का प्रयास किया है); अतएव महाजन जो कहते हैं, उसे ही 'सत्य' कहकर मानना पड़ेगा।

महाभारत के वनपर्व (३१३/११७) में—

**तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना**
**नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।**
**धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां**
**महाजनो जेन गतः स पन्थाः॥५६॥**

५६। तर्क सहज रूप में ही प्रतिष्ठा शून्य होता है, सभी श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं, जिनका मत भिन्न न हो, वह 'ऋषि' ही नहीं हो सकता ; इतने पर भी धर्मतत्त्व गूढ़ रूप से ढ़का हुआ है अर्थात् शास्त्र आदि पढ़कर धर्मतत्त्व को जानना कठिन है। अतएव जिन्हें 'महाजन' कहकर साधुओं ने स्थिर किया है, उन महाजनों ने जिस मार्ग को 'शास्त्र-पन्था' कहा है, उसी मार्ग पर ही अन्य सभी व्यक्तियों का चलना उचित है।

### अनुभाष्य

५६। मध्य, सत्तरह परिच्छेद १८६ संख्या द्रष्टव्य।

चैतन्य-सिद्धान्त-वाणी ही अनुसरणीय—

**श्रीकृष्णचैतन्य-वाणी—अमृतेर धार।**
**तिंहो जे कहये वस्तु, सेइ 'तत्व'—सार॥''५७॥**

**५७। प० अनु—**श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती ने

कहा—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की वाणी अमृत की धार के समान है, उन्होंने जिस विचार को कहा है, वही सभी तत्त्वों का सार है।

महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के द्वारा प्रभु को शुभ-सन्देश देने के लिये जाना—

**ए सब वृतान्त शुनि' महाराष्ट्रीय ब्राह्मण।**
**प्रभुरे कहिते सुखे करिला गमन॥५८॥**

**५८। प० अनु०—**श्रीप्रकाशानन्द तथा उनके शिष्य के मुख से इस वृतान्त को सुनकर महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने आनन्दपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु को इस संवाद को देने के लिये उनके स्थान की ओर गमन किया।

काशी में दैनिक नियम के अनुसार पञ्चनद में स्नान के बाद प्रभु का श्रीबिन्दु माधव के दर्शन के लिये जाना—

**हेनकाले महाप्रभु पञ्चनदे स्नान करि'।**
**देखिते चलियाछेन 'बिन्दुमाधव हरि'॥५९॥**

**५९। प० अनु०—**दूसरी ओर, उस समय श्रीमन्महाप्रभु पञ्चनद में स्नान करने के बाद बिन्दुमाधव हरि का दर्शन करने के लिये जा रहे थे।

महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के मुख से भक्त-प्रकाशानन्द की बात सुनकर प्रभु की प्रसन्नता—

**पथे सेइ विप्र सब वृतान्त कहिल।**
**शुनि' महाप्रभु सुखे ईषत हासिल॥६०॥**

**६०। प० अनु०—**मार्ग में ही उस ब्राह्मण की श्रीमन्महाप्रभु से भेंट हुयी तथा उस ब्राह्मण ने श्रीमन्महाप्रभु को प्रकाशानन्द सरस्वती तथा उनके शिष्य के समस्त वृतान्त को कह सुनाया, जिसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु प्रसन्नतापूर्वक मन्द-मन्द मुस्कराने लगे।

श्रीबिन्दुमाधव के दर्शन से प्रभु का आवेश और नृत्य—

**माधव-सौन्दर्य देखि' आविष्ट हइला।**
**अङ्गनेते आसि' प्रेमे नाचिते लागिला॥६१॥**

**६१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु बिन्दुमाधव के सौन्दर्य को देखकर प्रेमाविष्ट हो गये तथा मन्दिर के आङ्गन में आकर प्रेमपूर्वक नृत्य करने लगे।

चारों भक्तों का सङ्कीर्त्तन—

**शेखर, परमानन्द, तपन, सनातन।**
**चारिजन मिलि' करे नाम-सङ्कीर्तन॥६२॥**

**६२। प० अनु०—**श्रीचन्द्रशेखर उनके साथी श्री परमानन्द कीर्त्तनीया, श्रीतपन मिश्र, तथा श्रील सनातन गोस्वामी—चारों मिलकर नाम-सङ्कीर्त्तन करने लगे।

नाम सङ्कीर्तन—

**''हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।**
**गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥''६३॥**

**६३। प० अनु०—**अर्थ स्पष्ट है।

चारों ओर से असंख्य लोगों द्वारा हरिध्वनि—

**चौदिकेते लक्ष लोक बले 'हरि' 'हरि'।**
**उठिल मङ्गलध्वनि स्वर्ग-मर्त्त्य भरि'॥६४॥**

**६४। प० अनु०—**चारों ओर से लाखों लोग 'हरि' 'हरि' कहने लगे तथा उनके मुख से निकलती मङ्गल ध्वनि से स्वर्ग-मर्त्त्य भर गया।

सशिष्य प्रकाशानन्द का वहाँ आगमन—

**निकटे हरिध्वनि शुनि' प्रकाशानन्द।**
**देखिते कौतुके आइला लञा शिष्यवृन्द॥६५॥**

**६५। प० अनु०—**निकट से ही आ रही हरिध्वनि को सुनकर श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती भी अपने

शिष्यों को साथ लेकर उस स्थान पर कौतुहलवशतः आ पहुँचे।

प्रभु के नृत्य और प्रेम-माधुर्य के दर्शन से उनका भी कीर्त्तन—

**देखिया प्रभुर नृत्य, प्रेम, देहेर माधुरी।**
**शिष्यगण-सङ्गे सेइ बले 'हरि' 'हरि'॥६६॥**

**६६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के नृत्य, उनके प्रेम तथा उनकी देह की माधुरी को देखकर श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती भी अपने शिष्यों सहित 'हरि', 'हरि' बोलने लगे।

भाव को देखकर काशीवासियों को विस्मय—

**हर्ष, दैन्य, चापल्यादि 'सञ्चारी' विकार।**
**देखि' काशीवासी लोकेर हैल चमत्कार॥६७॥**

**६७। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु में हर्ष, दैन्य, चापल्य आदि सञ्चारी विकारों को देखकर काशीवासी लोग बहुत चमत्कृत हो उठे।

लोगों की भीड़ और संन्यासियों के दर्शन से प्रभु के द्वारा अपने भाव-नृत्य का सम्वरण—

**लोकसङ्घट देखि' प्रभुर 'बाह्य' जबे हैल।**
**सन्यासीर गण देखि' नृत्य सम्वरिल॥६८॥**

**६८। प० अनु०—**लोगों की भीड़ को देखकर जब श्रीमन्महाप्रभु में बाह्य आवेश आया तब उन्होंने अपने समक्ष खड़े सन्यासियों को देखकर नृत्य का सम्वरण कर लिया।

प्रभु और प्रकाशानन्द, दोनों द्वारा परस्पर की वन्दना—

**प्रकाशानन्देर प्रभु वन्दिला चरण।**
**प्रकाशानन्द आसि' ताँर धरिल चरण॥६९॥**

**६९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीप्रकाशानन्द के चरणों की वन्दना की तथा श्रीप्रकाशानन्द ने आकर उनके चरणों को पकड़ लिया।

प्रभु द्वारा दैन्य-ज्ञापन—

**प्रभु कहे,—"तुमि जगद्गुरु पूज्यतम।**
**आमि तोमार ना हइ 'शिष्येर शिष्य, सम॥७०॥**
**श्रेष्ठ हञा केने कर हीनेर वन्दन।**
**आमार सर्वनाश हय, तुमि ब्रह्म-सम॥७१॥**
**यद्यपि तोमार सब ब्रह्म-सम भास।**
**लोकशिक्षा लागि' ऐछे करिते ना आइस॥"७२॥**

**७०-७२। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्री प्रकाशानन्द सरस्वती से कहा—आप परम पूजनीय जगद्गुरु हैं तथा मैं आपके शिष्य के शिष्य के समान भी नहीं हूँ। आप श्रेष्ठ होकर किसलिए अधम की वन्दना करते हैं, आपके द्वारा ऐसा करने से तो मेरा सर्वनाश हो जायेगा, क्योकि आप तो ब्रह्म के समान हैं। यद्यपि आपको सभी ब्रह्म के समान प्रतीत होते हैं, तथापि आप लोक-शिक्षा के लिये ही सही, ऐसा मत कीजिए।

प्रभु के चरण स्पर्श करके प्रकाशानन्द द्वारा अपराध से मुक्त होने के विषय में बतलाना—

**तेंहो कहे,—"तोमार निन्दा पूर्वे जे करिल।**
**तोमार चरण-स्पर्शे, सब क्षय गेल॥"७३॥**

**७३। प० अनु—**श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती ने कहा—मैंने पहले आपकी जो निन्दा की थी, आपके चरणों का स्पर्श करने से उससे हुआ मेरा अपराध दूर हो गया है।

मुक्तों की भी भगवद्-अपराध के फल से बन्धनदशा—वासना-भाष्य में उद्धृत परिशिष्ट-वचन—

**जीवन्मुक्ता अपि पुनर्यान्ति संसारवासनाम्।**
**यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः॥७४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७४। जीवन्मुक्त भी यदि अचिन्त्य महाशक्ति भगवान् के प्रति अपराधी होते हैं, तो फिर वे पुनः संसार-वासना में पतित हो जाते हैं।

**अनुभाष्य**

७४। अचिन्त्यमहाशक्तौ (अप्राकृत-चिच्छक्ति-मति) भगवति (अधोक्षजे) यदि अपराधिनः भवन्तिः, तदा जीवन्मुक्ताः अपि पुनः संसारवासनां (भोग-वासनामूलम् अनर्थ) यान्ति (लभन्ते)।

भगवद्-पाद के स्पर्श से अपराध-मोचन—
श्रीमद्भागवत (१०/३४/९)—

**स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः।**
**भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम्॥''७५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

७५। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीपरीक्षित महाराज को बतला रहे हैं— ] उस साँप ने श्रीकृष्ण के चरण के स्पर्श से, अशुभ-रहित होकर सर्प-शरीर परित्याग करके विद्या-धरों के द्वारा अर्चित पूर्व रूप को प्राप्त किया।

**अनुभाष्य**

७५। व्रज में एक बार देवयात्रानुष्ठान-क्रिया में गोपराज श्रीनन्द ने बन्धु-बान्धवों सहित सरस्वती नदी के तट पर उपस्थित होकर व्रत धारण करके स्वयं वन में शयन किया, उसी समय अङ्गिरस-ऋषियों के उपहास के फल से उनके अभिशाप से सर्प-योनि को प्राप्त सुदर्शन-नामक गन्धर्व ने नन्द पर आक्रमण किया, नन्द के कातर होकर पुकारने से कृष्ण ने आकर उस सर्प पर चरण के द्वारा प्रहार किया तथा इस प्रकार नन्द की सर्प के मुख से रक्षा की। कृष्ण के चरण के स्पर्श के फल से सर्प का अशुभ दूर हो गया था, इसी का श्रीशुक, परीक्षित के समक्ष वर्णन कर रहे हैं,—

सः (सर्पः) वै भगवतः (कृष्णस्य) श्रीमत्पाद-स्पर्शहताशुभः (श्रीमतः पादस्य स्पर्शेन हतम् अशुभम्—अङ्गिरसां विरूपदर्शनात् तान् उपहसनेन तेभ्यं शापरूपं यस्य तथात्रभूतः सन्) सर्पवपुः (सर्पयोनिमित्यर्थः) हित्वा (परित्यज्य) विधाधरार्चितं (विद्याधरेषु अर्चितं पूजित) रूपं भेजे (प्राप)।

स्वयं भगवान् होने पर भी लोक-शिक्षा हेतु प्रभु द्वारा जगद्‌गुरु आचार्य के रूप में स्वयं को दीन जीव मानना—

**प्रभु कहे,—''विष्णु', 'विष्णु', आमि क्षुद्र जीव हीन।**
**जीवे विष्णु मानि—एइ अपराध-चिह्न॥७६॥**

**७६। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—'विष्णु', 'विष्णु'! मैं तो एक छोटा-सा हीन जीव हूँ। जीव को विष्णु मानना अपराध का लक्षण है।

पाषण्डियों का कार्य
अथवा परिचय—

**जीवे 'विष्णु' बुद्धि करे,—जेइ ब्रह्मा-रुद्र-सम।**
**नारायणे माने, तारे 'पाषण्डीते' गणन॥७७॥**

**७७। प॰ अनु॰—**जीव को जो विष्णु मानता है तथा जो नारायण को ब्रह्मा-रुद्र के समान मानता है, वह 'पाषण्डी (पाखण्डी)' कहलाता है।

शास्त्र-प्रमाण—वैष्णवतन्त्र-वाक्य और
पाद्मोत्तर-खण्ड (२३/१२) में—

**यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदेवतैः।**
**समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्॥''७८॥**

७८। जो श्रीनारायण को ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओं के साथ 'एक समान' मानते हैं, वे निश्चित रूप से 'पाषण्डी' हैं।

**अनुभाष्य**

७८। मध्य अष्टादश परिच्छेद ११६ संख्या द्रष्टव्य।

प्रभु के प्रति प्रकाशानन्द का सुदृढ़ विश्वास और श्रद्धा—

**प्रकाशानन्द कहे,—"तुमि साक्षात् भगवान्।**
**तबु यदि कर ताँर 'दास'-अभिमान॥७९॥**
**तबु पूज्य हओ तुमि आमा सबा-हैते।**
**सर्वनाश हय मोर तोमार निन्दाते॥८०॥**

**७९-८०। प० अनु०—**श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती ने कहा—आप साक्षात् भगवान् हैं। किन्तु तब भी यदि आप भगवान् का दास होने का भी अभिमान रखते हैं, वैसा होने पर भी आप हम सबसे पूज्य हैं, आपकी निन्दा करने से मेरा सर्वनाश हो जायेगा।

श्रीमद्भागवत (६/१४/५) में—

**मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।**
**सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥८१॥**

८१। हे महामुने, करोड़ो-करोड़ो मुक्तों और सिद्धों में से नारायण परायण प्रशान्त आत्मा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है।

**अनुभाष्य**

८१। मध्य उनविंश परिच्छेद १५० संख्या द्रष्टव्य।

महत् अथवा वैष्णव की निन्दा से सर्वनाश—
श्रीमद्भागवत (१०/४/४६) में—

**आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।**
**हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥८२॥**

८२। आयु, श्री, यश, धर्म, लोक और आशीर्वाद,—ये सब श्रेष्ठ वस्तुएँ ही मनुष्य के महद् अतिक्रम (महान् व्यक्ति के अनादर अथवा मर्यादा के भङ्ग) करने से नाश हो जाती हैं।

**अनुभाष्य**

८२। मध्य पञ्चदश परिच्छेद २७० संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (७/५/३२) में—

**नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं**
**स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।**
**महीयसां पादरजोऽभिषेकं**
**निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥८३॥**

८३। जब तक मनुष्यों की मति निष्किञ्चन भगवद्भक्तों की पदधूलि द्वारा अभिषिक्त नहीं होती, तब तक वह अनर्थनाशक कृष्णपादपद्मों का स्पर्श नहीं कर पाते।

**अनुभाष्य**

८३। मध्य द्वाविंश परिच्छेद ५३ संख्या द्रष्टव्य।

अहङ्कार का त्याग करके कृष्ण के चरणों में प्रणाम के फल से शुद्ध भक्ति की प्राप्ति—

**एबे तोमार पादाब्जे उपजिबे भक्ति।**
**तथि लागि' करि तोमार चरणे प्रणति॥८४॥**

**८४। प० अनु०—**अब आपके चरणकमलों में मेरी भक्ति उदित हो, इसी कारण मैं आपके चरणों में प्रणाम कर रहा हूँ।

सभी का वहाँ पर बैठना और प्रकाशानन्द की प्रभु के मुख से शङ्कर के मायावाद की समालोचना और ब्रह्मसूत्र के वास्तविक तात्पर्य के श्रवण की इच्छा—

**एत बलि' प्रभुरे लञा तथाय बसिल।**
**प्रभुरे प्रकाशानन्द पुछिते लागिल॥८५॥**

**८५। प० अनु०—**इतना कहकर श्रीप्रकाशानन्द

सरस्वती श्रीमन्महाप्रभु को लेकर वहीं बैठ गये तथा वे श्रीमन्महाप्रभु से पूछने लगे—।

**''मायावादे करिला जत दोषेर आख्यान।**
**सबे एइ जानि' आचार्येर कल्पित व्याख्यान॥८६॥**

**८६। प० अनु०—**आपने मायावाद में जितने सब दोष दिखलाये हैं, उन्हें सुनकर अब मैं केवल उनके विषय में यही जानता हूँ कि वह सब श्रीशङ्कराचार्य द्वारा की गयी कल्पित व्याख्या है।

**सूत्रेर करिला तुमि मुख्यार्थ-विवरण।**
**ताहा शुनि' सबार हैल चमत्कार मन॥८७॥**

**८७। प० अनु०—**आपने सूत्रों के मुख्य अर्थ का वर्णन किया है, जिसे सुनकर सभी का मन चमत्कृत हो गया है।

**तुमि त' ईश्वर, तोमार आछे सर्वशक्ति।**
**संक्षेपरूपे कह तुमि, शुनिते हय मति॥''८८॥**

**८८। प० अनु०—**आप तो ईश्वर हैं, तथा आपमें सम्पूर्ण शक्ति है, इसलिए आप वेदान्तसूत्रों का अर्थ संक्षेप में बतलाइये, उसे सुनने की अभिलाषा है।

### अमृतप्रवाह भाष्य

८८। संक्षेपरूपे कह (संक्षेप में बतलाइये)—प्रत्येक सूत्र का मुख्य-अर्थ, जो आपने कहा था, उसे मैंने सुना है। अब मैं वेदान्त के मुख्य तात्पर्य को संक्षिप्त रूप में सुनने की इच्छा करता हूँ।

श्रौतपन्थी प्रभु का दैन्य वशतः स्वयं को शिष्यरूपी दीन जीव मानकर व्यास-गुरु-पूजा—

**प्रभु कहे,—''आमि 'जीव', अति तुच्छ-ज्ञान!**
**व्याससूत्रेर गम्भीर अर्थ, व्यास—भगवान्॥८९॥**

**८९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—मैं एक जीव हूँ तथा मुझे बहुत कम ज्ञान है। व्यास सूत्र का अर्थ तो बहुत गम्भीर है, क्योकि व्यास तो भगवान् हैं।

जीवों के हित के लिये व्यासदेव स्वयं सूत्रकार होने पर भी भाष्यकार, उसी में वास्तविक तात्पर्य के बोध को स्वीकार करना—

**ताँर सूत्रेर अर्थ कोन जीव नाहि जाने।**
**अतएव आपने सूत्रार्थ कैराछे व्याख्याने॥९०॥**
**जेइ सूत्रकर्त्ता, से यदि करये व्याख्यान।**
**तबे सूत्रेर मूल अर्थ लोकेर हय ज्ञान॥९१॥**

**९०-९१। प० अनु०—**श्रीव्यास के द्वारा रचित सूत्रों का अर्थ कोई भी जीव नहीं जानता है, इसलिए उन्होंने स्वयं ही सूत्रों के अर्थ की व्याख्या है। वास्तव में जो सूत्र की रचना करने वाला होता है, वे स्वयं ही यदि अपने द्वारा रचित सूत्र की व्याख्या करे, तभी सूत्र के मुख्य अर्थ को लोग जान सकते हैं।

वेद रूपी वृक्ष का बीज—प्रणव, माता (अंकुर)—गायत्री, फल—चतुःश्लोकी भागवत—

**प्रणवेर जेइ अर्थ, गायत्रीते सेइ हय।**
**सेइ अर्थ चतुः श्लोकीते विवरिया कय॥९२॥**

ब्रह्म-सम्प्रदाय में आम्नाय-परम्परा में भागवत-कीर्त्तन-वर्णन—

**ब्रह्मारे ईश्वर चतुः श्लोकी जे कहिला।**
**ब्रह्मा नारदे सेइ उपदेश कैला॥९३॥**
**नारद सेइ अर्थ व्यासेरे कहिला।**
**शुनि' वेदव्यास मने विचार करिला॥९४॥**

ब्रह्मसूत्र के भाष्यस्वरूप चतुःश्लोकी का विस्तार अथवा भागवत की रचना का सङ्कल्प—

**'एइ अर्थ—आमार सूत्रेर व्याख्यानुरूप।**
**'भागवत' करिब सूत्रेर भाष्यस्वरूप॥''९५॥**

**९२-९५। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**९२-९५।** प्रणव ही सभी वेदों का 'महावाक्य' है; उस प्रणव में जो अर्थ है, वही गायत्री में है एवं वही अर्थ श्रीभागवत में 'अहमेवासमेवाग्रे' इस श्लोक से चार श्लोकों में विवृत हुआ है। भगवान् से ब्रह्मा, ब्रह्मा से नारद, नारद से श्रीव्यास,—इस प्रकार सत्सम्प्रदाय के क्रमान्वय से वेद और उनका तात्पर्य श्रीभागवत में आया है। [श्रीनारद के मुख से चतुःश्लोकी को सुनकर श्रीवेदव्यास ने मन-ही-मन विचार किया कि श्रीनारदजी के मुख से सुना यही अर्थ ही मेरे सूत्र की व्याख्या के अनुरूप है, मैं अपने सूत्रों के भाष्य स्वरूप 'श्री भागवत' की रचना करूँगा।] श्रीमद्भागवत ही 'ब्रह्म सूत्र का भाष्य' स्वरूप है।

वेद और उपनिषदों के सार का भली-भाँति उद्धार—

**चारिवेद-उपनिषदे जत किछु हय।**
**तार अर्थ लञा व्यास करिला सञ्चय॥९६॥**

**९६। प० अनु०—**श्रीव्यास देव ने चारों वेदों तथा उपनिषदों में जो कुछ भी है, उसके अर्थों का सञ्चय (संग्रह) किया।

सूत्र के मूल-स्वरूप श्रुति मन्त्रसमूह ही भागवत में श्लोकों के आकार में बन्धे हुए—

**जेइ सूत्रे जेइ ऋक—विषय-वचन।**
**भागवते सेइ ऋक् श्लोके निबन्धन॥९७॥**

**९७। प० अनु०—**श्रीव्यासदेव ने वेदान्त-सूत्र के जिस सूत्र में ऋक्वेद का जो विषय बतलाया गया है, उन्होंने भागवत में उसी ऋक्वेद के वचन को श्लोक के रूप में व्यक्त किया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९७। ऋक—वेदमन्त्र; विषयवचन—उद्देश्य। श्रीमद्भागवत में वही ऋक श्लोक के रूप में निबद्ध हुआ है।

एक ही उपनिषद के मन्त्र का अर्थ ही भागवत के श्लोकों में व्यक्त—

**अतएव ब्रह्मसूत्रेर भाष्य—श्रीभागवत।**
**भागवत-श्लोक, उपनिषत् कहे 'एक' मत॥९८॥**

**९८। प० अनु०—**अतएव श्रीमद्भागवत ही ब्रह्मसूत्र का भाष्य है। श्रीमद्भागवत के श्लोक तथा उपनिषद के मन्त्र एक ही तात्पर्य पर हैं।

दृष्टान्त; सब कुछ ही विष्णुमय है, उसके अलावा कोई वस्तु नहीं है, भोक्ता की बुद्धि का त्यागकर युक्त वैराग्य के साथ सभी विषय विष्णु से सम्बन्धित अथवा विष्णु के भोग के रूप में सेव्य—श्रीमद्भागवत (८/१/१०) में—

**आत्मावास्यामिदं विश्वं**
**यत् किञ्चितजगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा**
**गृधः कस्यस्विद्धनम्॥९९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

९९। [श्रीमनु ने कहा—] जो कुछ भी इस जगत् में देख रहे हो, सब कुछ ही अर्थात् यह विश्व ही आत्मा के द्वारा व्याप्त है। हे जीव, वही आत्मा ही तुम्हारा नियन्ता और पालन करने वाला है, उसके द्वारा कृपापूर्वक प्रदत्त द्रव्य समझकर जगत के समस्त द्रव्यों का भोग करो, अन्यों का धन हरण मत करना। तात्पर्य यह है कि, जिस

ब्रह्मसूत्र के ईशोपनिषद के ''ईशावास्यमिदं जगत'' -मन्त्र अर्थात् श्रुतिमन्त्र विषय-वचन हैं, श्रीमद्भागवत में वही ऋक (मन्त्र)''आत्मावास्यमिदं'' कहकर श्लोक के रूप में निबद्ध हुए हैं। इस प्रकार समस्त सूत्रों के ही ऋक-वचन भागवत के श्लोकों में निबद्ध हैं।

**अनुभाष्य**

९९। परीक्षित के द्वारा स्वायम्भुव-मनु की वंशावली का श्रवण करके अन्यान्य मनुओं के विषय और मन्वन्तरावतारसमूह के क्रिया-कलाप की जिज्ञासा करने पर, श्रीशुक सर्वप्रथम मनु की उक्ति बतला रहे हैं,—

जगत्यां (लोके) यत् किञ्चित् जगत् (बद्धजीव भोग्यं मायाशक्ति परिणतम् इन्द्रियसुखकरं, तत्) इदं विश्वं (सर्वम्) आत्मावास्यं (प्रेमाञ्जनच्छुरित-भक्तिविलोचेन अप्राकृत दर्शनेन आत्मना भगवता आवास्यं सत्ता-चैतन्याभ्यां व्याप्त) तेन (हेतुना) त्यक्तेन (सेवाकामाय भगवदर्पणेन्, यद्वा) तेन (इश्वरेण) त्यक्तेन (किञ्चित् त्यक्तं दत्तं यद्धनं तेनैव भगवत्यक्तोच्छिष्टत्वेनेत्यर्थः) भुञ्जीथाः (गृहाण, स्वीकुर्वित्यर्थः); कस्यस्वित (जड़ भोक्तृबुद्धया आसक्तस्य जनस्य सम्बन्धे) धनं (भगवदितर-माया-दर्शनात् प्राकृत-विषयभोगादिक) मा गृधः (नैवा-काङ्क्षीः;—तथा च श्रुतिः ''ईशावास्यमिदम्'' इति यथा श्लोकमेव)।

आदि चतुःश्लोकी भागवत में सम्बन्ध-
अभिधेय और प्रयोजन
का निरुपण—

**भागवतेर सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन।**
**चतुःश्लोकीते प्रकट तार कैराछे लक्षण॥१००॥**

**१००। प॰ अनु॰—**श्रीमद्भागवत में निरुपित जो सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्व हैं, उनके लक्षण चतुःश्लोकी में ही प्रकटित किये गये हैं।

ब्रह्मा के निकट श्रीकृष्ण के द्वारा चतुःश्लोकी में वर्णित तीन तत्वों की संक्षेप में व्याख्या—विषय बोध रूपी भगवत्-स्वरूप-निर्धारण ही केवल चिन्मात्रमय 'ज्ञान', आश्रय की चिद्-विलासानुभव रूपी भगवद्स्फूर्ति ही 'विज्ञान', रहस्य अथवा प्रेम ही 'प्रयोजन', तदङ्ग (उसके अङ्ग) साधनभक्ति ही 'अभिधेय'—

**'आमि—'सम्बन्ध'-तत्व, आमार ज्ञान-विज्ञान।**
**आमा पाइते साधन-भक्ति 'अभिधेय'-नाम॥१०१॥**
**साधनेर फल—'प्रेम' मूल-प्रयोजन।**
**सेइ प्रेमे पाय जीव आमार 'सेवन'॥१०२॥**

**१०१-१०२। प॰ अनु॰—**उस चतुःश्लोकी में सम्बन्ध, अभिधेय एवं प्रयोजन—इन तीन तत्त्वों का भी भगवान् ने संक्षेप से इस प्रकार वर्णन किया है—श्रीकृष्ण ने कहा—मैं और मेरा ज्ञान-विज्ञान ही सम्बन्ध-तत्त्व है, मुझे प्राप्त करने के लिये जो साधन-भक्ति की जाती है, उसका नाम अभिधेय है। साधन का फल प्रेम ही मुख्य प्रयोजन है तथा उसी प्रेम से ही जीव मेरी सेवा को प्राप्त करता है।

[भगवान् के द्वारा ब्रह्माजी को बतलाये गये] छय श्लोकों में से चतुः श्लोकी के अलावा इस श्लोक में सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन का वर्णन; ज्ञान और विज्ञान ही 'सम्बन्ध', रहस्य ही 'प्रयोजन', तदङ्ग ही 'अभिधेय'—

श्रीमद्भागवत (२/९/३०) में—

**ज्ञानं मे परमगुह्यं यद्विज्ञान्-समन्वितम्।**
**सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥१०३॥**

१०३। विज्ञानसमन्वित रहस्य तथा तदंगयुक्त मेरा जो परम गोपनीय ज्ञान है। वह तुम्हें कृपापूर्वक कह रहा हूँ, उसे तुम स्वीकार करो।

**अनुभाष्य**

१०३। आदि, प्रथम परिच्छेद ५१ संख्या द्रष्टव्य।

अवरोह-पन्था में भगवद्-कृपा के प्रभाव से तत्व की स्फूर्त्ति—

**एइ 'तिन' तत्व आमि कहिनु तोमारे।**
**'जीव' तुमि एइ तिन नारिबे जानिबारे॥१०४॥**

**१०४। प० अनु०—**हे ब्रह्मा! इन तीन तत्त्वों का मैंने तुम्हारे समक्ष वर्णन किया है, तुम जीव हो, अतएव तुम स्वयं से इन तीनों तत्त्वों को नहीं समझ सकते थे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१०४। जीव तुमि—हे ब्रह्मन्, तुम—'जीव' हो; मेरी कृपा के बिना तुम परम गुह्य ज्ञान को नहीं जान पाओगे।

**अनुभाष्य**

१०४। ऐई तीन (ये तीन)—सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन।

नाम रूप-गुण-लीलामय भगवान् केवल 'निर्विशेष' नहीं—

**जैछे आमार 'स्वरूप', जैछे आमार 'स्थिति'।**
**जैछे आमार गुण, कर्म, षड़ेश्वर्य-शक्ति॥१०५॥**
**आमार कृपाय एइ सब स्फुरुक तोमारे।'**
**एत बलि' तिन तत्व कहिला ताँहारे॥१०६॥**

**१०५-१०६। प० अनु०—**'जैसा मेरा स्वरूप है तथा जैसे मेरी स्थिति है, जैसे मेरे गुण, मेरे कर्म तथा मेरी षड़ेश्वर्यमयी शक्ति है, मेरी कृपा से यह सब तुम्हारे हृदय में स्फुरित हो।' इतना कहकर भगवान् ने ब्रह्मा को तीनों तत्त्वों की शिक्षा प्रदान की।

[भगवान् के द्वारा ब्रह्माजी को बतलाये गये] छह श्लोकों में चतुःश्लोकी के अलावा इस श्लोक में कृपा-रूपी आशीर्वाद-वर्षण—
श्रीमद्भागवत (२/९/३१)—

**यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।**
**तथैव तत्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥१०७॥**

१०७। [श्रीभगवान् ने ब्रह्मा से कहा—] मेरा स्वरूप, मेरा लक्षण, मेरा रूप, गुण और लीला—जिस प्रकार की है, उसका तत्त्व-विज्ञान, तुम्हें मेरे अनुग्रह से प्राप्त हो।

**अनुभाष्य**

१०७। आदि प्रथम परिच्छेद ५२ संख्या द्रष्टव्य।

चतुःश्लोकी की व्याख्या आरम्भ; उसमें से प्रथम श्लोक में सम्बन्ध-तत्व अहं-शब्द-वाच्य स्वरूप शक्तिमान् नित्य-सत्य-सनातन-विग्रह कृष्ण के 'ज्ञान' का लक्षण—

**'सृष्टिर पूर्वे षड़ेश्वर्यपूर्ण आमि त' हइये।**
**'प्रपञ्च', 'प्रकृति', 'पुरुष' आमातेर लये॥१०८॥**

**१०८। प० अनु०—**श्रीभगवान् ने ब्रह्मा से कहा—सृष्टि से पहले षड़ेश्वर्यपूर्ण केवल मैं ही था, प्रपञ्च, प्रकृति तथा पुरुष मुझसे ही उत्पन्न होते हैं।

**सृष्टि करि' तार मध्ये आमि त' बसिये।**
**'प्रपञ्च जे देख सब, सेह आमि हइये॥१०९॥**
**प्रलये अवशिष्ट आमि 'पूर्ण' हइये।**
**प्राकृत प्रपञ्च पाय आमातेइ लये॥''११०॥**

**१०९-११०। प० अनु०—**सृष्टि करके उसमें मैं ही बैठता हूँ। प्रपञ्च में तुम जो कुछ भी देखते हो, वह सब मैं ही हूँ। प्रलय होने पर भी अन्त में

मैं ही 'पूर्ण' रहता हूँ। प्राकृत प्रपञ्च मुझमें ही लय हो जाता है।

चतुःश्लोकी का प्रथम श्लोक—
श्रीमद्भागवत (२/९/३२) में—

**अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् यत् सदसत्परम्।**
**पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्॥१११॥**

१११। इस जगत् की सृष्टि होने से पहले केवल मैं ही था। सत्, असत् और अनिर्वचनीय निर्विशेष ब्रह्म तक अन्य कुछ भी मुझ से पृथक्रूप से विद्यमान नहीं था। सृष्टि होने के उपरान्त इन सभी स्वरूपों में मैं ही विराजित हूँ तथा सृष्टि का लय होने के पश्चात् केवल मैं ही अवशिष्ट रहूँगा।

**अनुभाष्य**

१११। आदि प्रथम परिच्छेद ५३ संख्या द्रष्टव्य।

श्लोक का तात्पर्य—कृष्ण का
सच्चिदानन्द विग्रह होना—

**"अहमेव"-श्लोके 'अहम्'—तिन बार।**
**पूर्णैश्वर्ये-विग्रहेर स्थितिर निर्द्धार॥११२॥**

**११२। प० अनु०**—'अहमेव'-श्लोक में 'अहम' शब्द तीन बार आया है जो पूर्णैश्वर्यविग्रह की स्थिति को निर्द्धारित करता है।

**अनुभाष्य**

११२। 'अहमेव' श्लोक में तीन बार 'अहम्' शब्द है। प्रथम चरण के 'अहमेव' पद में' तृतीय चरण के 'पश्चादहं' पद में एवं चतुर्थ चरण के 'सोऽस्म्यहं'-पद में अहं-शब्द विद्यमान है; इसके द्वारा भगवान का व्यक्तिगत विग्रह निर्धारित हुआ—वे केवल निर्विशेष नहीं हैं।

निराकारवादियों
का खण्डन—

**जे 'विग्रह' नाहि माने, 'निराकार' माने।**
**तारे तिरस्करिवारे करिला निर्द्धारणे॥११३॥**

**११३। प० अनु०**—जो विग्रह को नहीं मानता, निराकार को ही मानता है, उनका निरस्कार करने के लिये ही भगवान् ने तीन बार 'अहम्' शब्द का प्रयोग किया है।

**अनुभाष्य**

११३। निर्विशेषवादी भगवान् के व्यक्तिगत सविशेष विग्रह को स्वीकार नहीं करते, इसलिए उनका विचार भ्रमपूर्ण और सब प्रकार से त्याज्य है—इसी बात की हृदय में धारणा कराने के लिये तीनबार 'अहमेव' कहकर 'सम्बन्ध' स्थापित किया है।

चतुःश्लोकी के द्वितीय श्लोक में 'अन्तरङ्ग-स्वरूप'
के अलावा 'तटस्थ-जीव' और 'बहिरङ्गा
गुण-माया'-शक्ति का लक्षण और उसकी
प्रतीति का विचार; जीव और गुण
मायातीत-स्वरूप, अथवा अन्तरङ्ग-दर्शन
में निरपेक्ष विशुद्ध स्वरूपानुभव, अथवा—
'विज्ञान', जीव अथवा गुणमाया का
दर्शन 'स्वरूप-दर्शन' नहीं—

**एइ सब शब्दे हय—'ज्ञान'-'विज्ञान'-विवेक।**
**माया-कार्य, माया हैते आमि—व्यतिरेक॥११४॥**

**११४। प० अनु०**—चतुःश्लोकी के प्रथम श्लोक तथा ऋतेऽर्थं नामक द्वितीय श्लोक के शब्दसमूह से भगवतत्त्व के ज्ञान का एवं भगवत्-रूवरूप के विज्ञान का विवेक प्राप्त होता है। श्रीभगवान् ने कहा—'माया का कार्य अर्थात् जगत तथा माया—मैं इन दोनों से भिन्न हूँ।

सूर्य, आभास और तमः—एक ही वस्तु की विभिन्न प्रतीतियों का दृष्टान्त—

**जैछे सूर्येर स्थाने भासये 'आभास'।**
**सूर्य बिना स्वतः तार ना हय प्रकाश॥११५॥**

'ज्ञान' और 'विज्ञान' को लेकर ही सम्बन्ध-तत्व निरूपित—

**मायातीत हैले हय आमार 'अनुभव'।**
**एइ 'सम्बन्ध'-तत्त्व कहिलुँ, शुन आर सब॥११६॥**

**११४-११६। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

११६। **ज्ञान—**शास्त्र से उत्पन्न, विज्ञान—अनुभव; गुरु अथवा शास्त्र के अलावा अन्य कहीं से आने वाला विवेक—बहुत बार मनोधर्म अथवा निर्विशेष-परायण होता है। अपनी अनुभूति से विवेक के उदित होने पर भगवद्-विग्रह की उपलब्धि होती है। भगवान् का अपना-विग्रह—माया और मायिक कार्य से भिन्न है। विज्ञान के उदित नहीं होने तक जीव को यह बोध नहीं होता। जिस प्रकार सूर्य में किरणें प्रकाशित होती हैं, किन्तु किरणें—सूर्य से भिन्न हैं, पुनः सूर्य के बिना किरणों का स्वतन्त्र प्रकाश भी सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार भगवान् और माया—इन दोनों की (विजातीय) विभिन्न प्रतीति को जीव माया से अतीत नहीं होने पर अनुभव नहीं करता अर्थात् माया के अन्तर्गत रहने वाली बुद्धि से भगवद्-विग्रह को समझा नहीं जा सकता।

चतुःश्लोकी का द्वितीय श्लोक—
श्रीमद्भागवत (२/९/३३) में—

**ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।**
**तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः॥११७॥**

११७। पूर्व श्लोक में परमतत्त्व का स्वरूपज्ञान निर्णीत हुआ है। किन्तु स्वरूप से पृथक् तत्त्व के ज्ञान के द्वारा स्वरूपतत्त्व का ज्ञान जब तक दृढ़ नहीं बन जाता, तब तक विज्ञान नहीं होता। स्वरूपतत्त्व से पृथक तत्त्व का नाम 'माया' है। उस मायातत्त्व का ज्ञान इस श्लोक में विस्तार से दिया जा रहा है। स्वरूपतत्त्व ही अर्थ अर्थात् यथार्थतत्त्व है। उस तत्त्व के बाहर जो कुछ भी दिखाई देता है एवं उस स्वरूपतत्त्व में जिसकी प्रतीति नहीं है, उसे ही आत्मतत्त्व का मायावैभव जानना चाहिए। यह सहज में समझ नहीं आता है, इसलिए इसको समझने के लिए दो प्रादेशिक उदाहरण दिये जा रहे हैं। स्वरूपतत्त्व को सूर्य के समान मानना चाहिए। सूर्य से पृथक् जो तत्त्व विद्यमान हैं, वे दो रूपों में प्रतीत होते हैं—एक आभास रूप में और दूसरा तम रूप में। सूर्य का प्रतिबिम्ब, जल से दूसरे स्थान पर है, उसे आभास कहते हैं। सूर्य का प्रभाव जिस ओर दिखाई नहीं देता, उसे 'तमः' अर्थात् 'अन्धकार' कहते हैं। चिज्जगत् भगवत्स्वरूप की किरण है। उससे मिलता-जुलता आभासरूप माया-वैभव—यही आभास का उदाहरण है। चित्तत्त्व से बहुत दूर स्थित वह अन्धकार-रूप तमस मायावैभव है; यही द्वितीय उदाहरण है। तात्पर्य यही है कि, आत्मतत्त्व एवं मायातत्त्व में परस्पर दो प्रकार का सम्बन्ध है; प्रथम सम्बन्ध यह है कि, आत्मस्वरूप के अतिरिक्त जो अन्य-स्वरूप प्रकाशित होता है, वही 'माया' है और आत्मस्वरूप से दूर स्थित अनात्म अज्ञान भी माया है।

**अनुभाष्य**

११७। आदि, प्रथम परिच्छेद ५४ संख्या द्रष्टव्य।

तृतीय श्लोक में श्रौत-पन्था में देश-काल-
पात्र-दशा के निरपेक्ष अभिधेय साधन-
भक्ति की आवश्यकता
का विचार—

**'अभिधेय' साधनभक्तिर शुनह विचार।**
**सर्व-जन-देश-काल-दशाते व्याप्ति जार॥११८॥**

**११८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती से कहा—अब आप अभिधेय साधन भक्ति का विचार सुनिये। जो अभिधेय साधन भक्ति सभी पात्र, देश, काल एवं अवस्था में व्याप्त है।

**अनुभाष्य**

११८। अभिधेय 'साधन भक्ति' सभी पात्र, देश, काल एवं अवस्था में व्याप्त है।

साधन भक्ति का अभिधेय—
चतुर्वर्ग से अतीत—

**'धर्मादि' विषये जैछे ए 'चारि विचार।**
**साधन-भक्ति—एइ चारि विचारेर पार॥११९॥**

**११९। प० अनु०—**अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

११९। गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार धर्मशास्त्र में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार तत्व विचारित हुए हैं, तत्त्व शास्त्र में भी उसी प्रकार विचार करने के लिये 'ज्ञान', 'विज्ञान', 'तदङ्ग' और 'तद्रहस्य' का उपदेश किया गया है। किन्तु यहाँ पर द्रष्टव्य यह है कि, धर्म आदि चार विषय—सामान्य संसार-नीति के अनुगत है, किन्तु इन तात्विक चारों (ज्ञान आदि का) विचार वैसा नहीं है। तात्विक चारों में प्राथमिक जो साधन भक्ति है, वह भी धर्म आदि चार तत्त्वों से ऊपर अथवा श्रेष्ठ है।

सद्गुरु की सेवा और परिप्रश्न के द्वारा दिव्य-ज्ञान
की प्राप्ति के साथ शुद्धभक्ति के तत्त्व को
श्रवण करने की आवश्यकता—

**सर्व-देश-काल-दशाय जनेर कर्त्तव्य।**
**गुरु-पाशे सेइ भक्ति प्रष्ट्व्य, श्रोतव्य॥१२०॥**

**१२०। प० अनु०—**सभी स्थानों पर, सब समय तथा सभी अवस्थाओं में एक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह गुरु के निकट भक्ति के विषय में ही पूछे तथा उसी के विषय में सुने।

चतुःश्लोकी का तृतीय श्लोक—
श्रीमद्भागवत (२/९/३५) में—

**एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनात्मनः।**
**अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥१२१॥**

१२१। जो आत्मतत्त्व के जिज्ञासु हैं, उन्हें अन्वय-व्यतिरेक भाव के द्वारा उस वस्तु का अनुसन्धान करना चाहिए, जो सर्वत्र और सदा विद्यमान है। तात्पर्य यह है कि—प्रेम-रहस्य जिस उपाय के द्वारा साधित होता है, उसका नाम साधनभक्ति है। तत्त्वजिज्ञासु व्यक्ति सद्गुरु के चरणों का आश्रय ग्रहण करने से अन्वय-व्यतिरेक भाव से अर्थात् विधिनिषेध की शिक्षा के द्वारा तत्त्व के सम्बन्ध में अनुशीलन करते-करते तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करेंगे।

**अनुभाष्य**

१२१। आदि प्रथम परिच्छेद ५६ संख्या द्रष्टव्य है।

चतुर्थ-श्लोक में अभिधेय के अङ्गी 'रहस्य' अथवा
प्रयोजन का वर्णन; भक्त के हृदय में भक्त के प्रेम
के वशीभूत भगवान् और भगवान् के हृदय में
भगवान् के प्रेम के वशीभूत भक्त—परस्पर—
समाश्लिष्ट अथवा आलिङ्गन करता हुआ विग्रह;
भक्त और भगवान् में अचिन्त्य भेदाभेद—

**आमाते जे 'प्रीति', सेइ 'प्रेम'—'प्रयोजन'।**
**कार्यद्वारे कहि तार 'स्वरूप'-लक्षण॥१२२॥**
**पञ्चभूत जैछे भूतेर भितरे-बाहिरे।**
**भक्तगणे स्फुरि आमि बाहिरे-अन्तरे॥१२३॥**

**१२२-१२३। प० अनु०—**श्रीभगवान् ने ब्रह्मा से कहा—मेरे प्रति जो प्रीति है, वही प्रेम हैं, वही प्रयोजन है। प्रेम की क्रिया का उल्लेख करके प्रेम के स्वरूप लक्षण का वर्णन करता हूँ। पञ्चभूत जैसे जीवों के भीतर तथा बाहर व्याप्त हैं, उसी प्रकार मैं भक्तों के भीतर तथा बाहर स्फुरित होता हूँ।

**अनुभाष्य**

१२३। जिस प्रकार प्राणियों के भीतर एवं बाहर में पञ्चभूत हैं, उसी प्रकार मैं भक्तों के भीतर और बाहर स्फूर्त्ति को प्राप्त होता हूँ। भक्त स्वयं को भगवान् की प्रीति-सेवा का उपकरण-विग्रह समझते हैं एवं भक्ति के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को भी भगवद् प्रीति सेवा का उपकरण मात्र ही समझते हैं।

चतुः श्लोकी का चतुर्थ श्लोक—
श्रीमद्भागवत (२/९/३४) में—

**यथा महान्ति भूतानि भूतेषुच्चावचेष्वनु।**
**प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥१२४॥**

१२४। जिस प्रकार महाभूत समूह बृहद् और क्षुद्र जीवों में प्रविष्ट होते हुए भी अप्रविष्टरूप से स्वतन्त्र वर्त्तमान हैं, उसी प्रकार मैं इस जगत् के सर्वजीवों में सत्त्व-आश्रय रूप परमात्मभाव से प्रविष्ट रहते हुए भी पृथक् भगवद्रूप में नित्य विराजमान रहता हूँ तथा भक्तजनों का एकमात्र प्रेमास्पद हूँ। तात्पर्य यह है कि भूमि-जल-अग्नि-वायु-आकाशरूप महाभूत समूह जिस प्रकार पाँचों एकसाथ मिलकर स्थूल-जगत् को प्रकाशित करते हैं उसके उपकरण के रूप में उन सबके बीच स्थित होकर भी महाभूतस्वरूप में स्वतन्त्रता विद्यमान हैं, उसी प्रकार चिन्मय परमेश्वर निज जड़शक्ति और जीवशक्ति के द्वारा जगत् सृष्टि करके एक अंश में जगत् में सर्वव्यापी रहकर भी एकसाथ अपने चिद्धाम में पूर्णचिद्विग्रहरूप में नित्य विराजमान रहते हैं। पुनः चिद्विग्रह के किरण-परमाणु-स्वरूप जीव समूह शुद्ध प्रेममार्ग में उनके विमलप्रेम का आस्वादन करते हैं—यही रहस्य है।

**अनुभाष्य**

१२४। आदि प्रथम परिच्छेद ५५ संख्या द्रष्टव्य।

भगवान् भक्त के प्रेम के बन्धन में बन्धे हुए—

**भक्त आमा बान्धियाछे हृदय-कमले।**
**जाँहा नेत्र पड़े, ताँहा देखये आमारे॥१२५॥**

**१२५। प० अनु०—**भक्तों ने मुझे अपने हृदय कमल में बाँधकर रखा हुआ है तथा उनके नेत्र जहाँ भी पड़ते हैं, वे वहीं पर मुझे ही देखते हैं।

श्रीमद्भागवत (११/२/५५) में—

**विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरि-**
**रवशयाभिहितोऽप्यघौघनाशः।**
**प्रणयरसनया धृताङ्घ्रिरपद्मः**
**स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥१२६॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२६। [ श्रीहवि ऋषि ने कहा— ] सब प्रकार के पापों का विनाश करने वाले हरि अवश होकर पुकारे जाने पर भी जिनके हृदय को परित्याग नहीं करते, प्रणयरज्जु (प्रेम की डोर) के द्वारा उनके चरणकमल जिनके हृदय में आबद्ध हैं, वही 'भागवत-प्रधान' है।

**अनुभाष्य**

१२६। विदेहराज निमि के द्वारा तीन प्रकार के भक्त अथवा भागवत के लक्षण, आचरण और तारतम्य (उच्च-नीच) के विषय में जिज्ञासा करने पर, उसके उत्तर में नवयोगेन्द्रों में से एक हवि-ऋषि ने कहा,—अवशाभिहितः (अवशेन कीर्त्तितः) अपि अघौघनाशः (अघौघम् अपराधपुञ्जं नाशयति यः सः) हरिः (एव) साक्षात् यस्य हृदयं न विसृजति (मुञ्चति), प्रणय रसनया (प्रेम-रज्जुना) धृताङ्घ्रिपद्मः (धृतम् अन्तर्बद्धम अङ्घ्रिपद्मं चरणकमलं येन सः) सः भागवतप्रधानः (इति) उक्तः भवति।

श्रीमद्भागवत (११/२/४५) में—

**सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।**
**भूतानि भगवत्यात्मन्येषु भागवतोत्तमः॥१२७॥**

१२७। जो उत्तम भागवत होते है, वे सभी प्राणियों में आत्मा के भी आत्म रूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को ही देखते हैं एवं आत्मा के आत्म स्वरूप श्रीकृष्ण में समस्त जीवों को देख पाते हैं।

**अनुभाष्य**

१२७। मध्य अष्टम परिच्छेद २७४ संख्या द्रष्टव्य।

चिन्मय आश्रय को सर्वत्र कृष्ण सम्बन्धि-चिन्मय-वस्तु का दर्शन—
श्रीमद्भागवत (१०/३०/४) में—

**गायत्य उच्चैरमुमेव संहताः**
**विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम्।**
**पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु**
**सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्॥१२८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१२८। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित से कह रहे हैं— ] एक साथ मिलकर गोपियाँ कृष्ण के गुणों का उच्च स्वर से गान करते-करते उन्मत्त की भाँति कृष्ण को एक वन से अन्य वन में ढूँढ़ने लगी एवं आकाश की भाँति बाहर और अन्तर में स्थित उन परमपुरुष कृष्ण के विषय में वनस्पतियों से जिज्ञासा करने लगीं।

**अनुभाष्य**

१२८। रासस्थली से श्रीकृष्ण के अचानक श्रीराधा के साथ अन्तर्ध्यान होने पर कृष्णगतचित्त वाली कृष्णमयी गोपियाँ कृष्ण की विविध चेष्टाओं का अनुकरण करते हुए विरह में सन्तप्त होकर इधर-उधर श्रीकृष्ण को ढूँढ़ने लगीं, श्रीशुकदेव उसका परीक्षित के समक्ष कीर्त्तन कर रहे हैं,—

संहता (अन्योऽन्यं सम्मिलिताः सत्यः) उच्चै गायन्त्यः वनाद् वनं (वनान्तरम्) अमुं (कृष्णम्) एव उन्मत्तकवत् विचिक्युः (अमृगयन्); आकाशवत् (महाभूतवत्) भूतेषु (प्राणिषु) बहिः अन्तरं (मध्ये) सन्तं (वर्त्तमान) पुरुषं (प्रेमविवर्त्तवशात् सर्वत्र कृष्ण-स्फूर्त्तयः सत्यः) वनस्पतीन् (चेतन-मयान् दृष्ट्वा) प्रपच्छुः (जिज्ञासयामासुः)।

भागवत में सर्वत्र सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-तत्त्व वर्णित—

**अतएव भागवते एइ 'तिन' कय।**
**सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-मय॥१२९॥**

**१२९। प० अनु०—**अतएव भागवत में सम्बन्ध-अभिधेय तथा प्रयोजन—ये तीन तत्त्व ही आलोचित हुए हैं।

सम्बन्ध-द्योतक श्लोक का दृष्टान्त—
श्रीमद्भागवत (१/२/११) में—

**वदन्ति ततत्त्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।**
**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते॥१३०॥**

१३०। तत्त्वविदगण अद्वयज्ञान को तत्त्व कहते हैं। उसी अद्वयज्ञान की प्रथम प्रतीति—ब्रह्म, द्वितीय प्रतीति—परमात्मा और तृतीय प्रतीति—भगवान् हैं।

**अनुभाष्य**

१३०। आदि द्वितीय परिच्छेद ११ संख्या द्रष्टव्य।

भागवत में सर्वत्र अभिधेय 'कृष्णभक्ति' वर्णित—

**ऐइ त' 'सम्बन्ध', शुन 'अभिधेय'-भक्ति।**
**भागवते प्रति-श्लोके व्यापे जार स्थिति॥१३१॥**

**१३१। प॰ अनु॰**—श्रीमन्महाप्रभु ने श्री प्रकाशानन्द सरस्वती से कहा—अब तक मैंने तुम्हें सम्बन्ध के विषय में बतलाया है, अब आप अभिधेय भक्ति के विषय में सुनिये। भागवत के प्रत्येक श्लोक में जिसकी स्थिति व्याप्त है।

**अनुभाष्य**

१३१। यहाँ पर पाठान्तर में और भी दो श्लोक उद्धत हुए हैं—१) भाः (३/५/२३)-''भगवान के आसेदमग्र आत्मात्मनां विभुः। आत्मेच्छानुगता-वात्मनानामत्युप-लक्षणः॥'' अर्थात् सृष्टि से पहले यह विश्व भगवान् के साथ एक था; जीवों के अर्थ-स्वरूप एवं वैकुण्ठादि अनेक वैभव के उपलक्षण से युक्त होकर उस समय सृष्टादि की इच्छा उन्हीं में लीन थी एवं वही भगवान् ही अद्वयतत्त्व के रूप में विराजित थे। (२) भाः (१/३/२८)—'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे॥'' भागवत के प्रत्येक श्लोक में ही अभिधेय साधन-भक्ति की कथा है।

अभिधेय-द्योतक श्लोक का दृष्टान्त—
श्रीमद्भागवत (११/१४/२१) में—

**भक्त्याऽमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।**
**भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥१३२॥**

१३२। साधुओं का प्रिय मैं, अनन्य श्रद्धा से उत्पन्न भक्ति द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। भक्ति ही मुझमें निष्ठा रखने वाले चण्डाल का भी जन्मदोष से उद्धार करती है।

**अनुभाष्य**

१३२। मध्य, विंश परिच्छेद, १३८ संख्या द्रष्टव्य है। यहाँ पाठान्तर में और भी दो श्लोक अधिक उद्धत हुए हैं;—१) भाः ११/१४/२०—'न साधयति मां योगो न साख्यं धर्म उद्धव। न स्वा-ध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥'' आदि सप्तदश परिच्छेद ७६ संख्या द्रष्टव्य। (२) भाः ११/२/३७—''भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशाद-पेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः। तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्येकयशं गुरुदेवतात्मा॥'' मध्य २०/११९ द्रष्टव्य।

प्रयोजन कृष्णप्रेम का 'बाह्य' लक्षण—

**एबे शुन, प्रेम, जेइ—मूल 'प्रयोजन'।**
**पुलकाश्रु-नुत्य-गीत—जाहार लक्षण॥१३३॥**

**१३३। प॰ अनु॰**—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती से कहा—अब आप प्रेम के विषय में सुनिये, जो मूल 'प्रयोजन' है तथा पुलक-अश्रु-नृत्य एवं गीत जिसके लक्षण हैं।

प्रयोजन कृष्णप्रेम-द्योतक श्लोक का दृष्टान्त—
श्रीमद्भागवत (११/३/३१) में—

**स्मरन्तः स्मारयन्तश्च**
**मिथोऽघोघहरं हरिम्।**
**भक्त्या संजातया भक्तया**
**विभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥१३४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३४। [श्रीप्रबुद्ध ऋषि ने कहा—] अघसमूह

का हरण करने वाले हरि का परस्पर स्मरण करते-करते और स्मरण कराते-कराते उन्होंने साधन भक्ति से भली-भाँति उत्पन्न प्रेम-भक्ति के द्वारा उत्पुलकित देह धारण की।

**अनुभाष्य**

१३४। वसुदेव के निकट श्रीनारद भागवतधर्म का वर्णन करते हुए विदेहराज निमि और नवयोगेन्द्र के संवाद का कीर्त्तन कर रहे हैं। 'देहात्म की बुद्धि से अनजान व्यक्ति किस प्रकार सहज में ही माया को जय कर सकता है?'—निमि के इस प्रश्न के उत्तर में नवयोगेन्द्रों में से एक प्रबुद्ध-ऋषि बद्ध जीवों के गुरुपादाश्रय करके निरपराध कीर्त्तनाख्य-भक्ति का साधन करते-करते अनर्थ-निवृत्ति के बाद साध्य भाव भक्ति-प्राप्त करने की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं,—

एवं वर्त्तमानानां साधकानां, भक्त्या (साधन-भक्त्या) सञ्जातया (लब्ध्या प्रेमलक्षणया भक्त्या) अघौघहरं (पापपुञ्जं हरति विनाशयति यः त) हरिः स्मरन्तः मिथः (परस्पर) स्मारयन्तः (सङ्कीर्त्तयन्तः) च ते भक्ताः, उत्पुलकां (रोमाञ्चित) तनुं विभ्रति (धरन्ति)।

श्रीमद्भागवत (११/२/४०) में—

**एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या**
**जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।**
**हसत्यथो रोदिति रौति**
**गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥१३५॥**

१३५। कृष्णसेवा-व्रती पुरुष विवश-चित्त होकर निज प्रियतम श्रीकृष्ण के नामकीर्तन में जातानुरागवश श्लथ-हृदय (नरमदिल के) होते हैं; वे उन्मत्त की भाँति लोक-बाह्य अर्थात् अपेक्षा-रहित होकर कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी शोर मचाते हैं, कभी गाते हैं, कभी नृत्य करते हैं।

**अनुभाष्य**

१३५। आदि, सप्तम परिच्छेद ९४ संख्या द्रष्टव्य।

अतएव ब्रह्मसूत्र और ब्रह्मसूत्र-भाष्य भागवत—एक ही अर्थ के प्रतिपादक—

**अतएव भागवत—सूत्रेर 'अर्थ'-रूप।**
**निज-कृत सूत्रेर निज-'भाष्य'-स्वरूप॥१३६॥**

**१३६। प० अनु०—**अतएव श्रीमद्भागवत वेदान्त-सूत्र का अर्थ-स्वरूप है। वह श्रीव्यासदेव द्वारा रचित सूत्रों का उन्हीं के द्वारा रचित भाष्य-स्वरूप है।

श्रीमद्भागवत—(१) ब्रह्मसूत्र का भाष्य, (२) महाभारत के अर्थ का तात्पर्य, (३) गायत्रीभाष्य और (४) वेद के अर्थ का विस्तार—
गरुणपुराण-वाक्य—

**अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णयः।**
**गायत्रीभाष्यरुपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहितः।**
**ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्त्रः श्रीमद्भागवताभिधः॥१३७॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३७। यह श्रीमद्भागवत—ब्रह्मसूत्र का अर्थ, महाभारत का तात्पर्य-निर्णय, गायत्री का भाष्य-रूप एवं समस्त वेदों के तात्पर्य द्वारा सम्वर्द्धित है। यह श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ १८ हजार श्लोकों से पूर्ण है।

**अनुभाष्य**

१३७। अयं भागवताभिधः (भागवत-नामा) ग्रन्थः ब्रह्मसूत्राणाां (उत्तर-मीमांसाख्य-वेदान्त सूत्राणाम्) अर्थः (भाष्यत्वेन अभिधेयरूपः) भारतार्थ-विनिर्णयः (महाभारतस्य अर्थानां निर्णयः यस्मिन् सः) असौ (महाग्रन्थः) गायत्रीभाष्यरूपः (वेदमातुः

ब्रह्मगायत्र्याः तात्पर्यप्रकाशकः) वेदार्थ-परिबृंहितः (वेदार्थैः संवर्द्धितः) च अष्टादशसाहस्त्रः (अष्टादश-सहस्त्रैः श्लोकैः परिनिर्मितः) १) पाठान्तर में एक अधिक श्लोक उद्धृत हुआ है—''पुराणानां सामरूपः साक्षाद्-भगवतोदितः। द्वादशस्कन्ध युक्तोऽयं शत-विच्छेद संयुक्तः॥''

''भारतादि स्मृत्येतिह्यार्थ-विनिर्णयः''—
श्रीमद्भागवत (१/३/४२)—

**सर्व-वेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्॥१३८॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३८। श्रीवेदव्यास ने समस्त वेदों और इतिहास से भली-भाँति उद्धृत सारस्वरूप (श्रीमद्भागवत को अपने पुत्र श्रीशुकदेव को अध्ययन कराया)।

**अनुभाष्य**

१३८। सर्ववेदेतिहासानां (सकल-निगमैतिह्याना) समुद्धृतं (संग्रहीतं, सङ्कलित) सारं सारं (सर्वोत्कृष्ट-भाग स्वरूपं, श्रीमद्भागवतं स्वसुतं ग्राह्यामासेति पूर्वाणान्वयः)।

''ब्रह्मसूत्र का अर्थ''—
श्रीमद्भागवत (१२/१३/१५)—

**सर्ववेदान्तसारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते।**
**तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित्॥१३९॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१३९। श्रीमद्भागवत को वेदान्त का सार कहा जाता है, भागवत के रस रूपी अमृत से तृप्त व्यक्ति की अन्य किसी शास्त्र में रति नहीं होती।

**अनुभाष्य**

१३९। महाभागवत श्रीसूत शौनकादि ऋषियों के निकट श्रीमद्भागवत का वर्णन समाप्त करके अठारह महापुराणों के श्लोक की संख्या का निर्देश करके उपसंहार में भी श्रीमद्भागवत की महिमा का कीर्त्तन कर रहे हैं,—

सर्ववेदान्तसारं (सकलोपनिषद्ब्रह्मसूत्राणाम् उत्कृष्ट भागः) हि श्रीभागवतम् इष्यते (अभिधीयते) यतः तद्रसामृत-तृप्तस्य (तस्यभागवतस्य रस एव अमृतं तेन तृप्तस्य जनस्य)अन्यत्र (शास्त्रादौ भागवतेतर-जनादिषु वा) क्वचित् (कदाचिदपि) रतिः न स्यात् (न सम्भवेत्)।

''गायत्रीर-भाष्य-रूप''—

**गायत्रीर अर्थे एइ ग्रन्थ-आरम्भन।**
**'सत्यं परं'—सम्बन्ध, ''धीमहि''—साधने प्रयोजन॥१४०॥**

**१४०। प॰ अनु॰—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१४०। इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थ के आरम्भिक श्लोक में ही गायत्री का अर्थ है। परम सत्य ही 'सम्बन्ध', ध्यानचेष्टा अथवा साधन भक्ति का अनुष्ठान ही 'अभिधेय' एवं प्राप्त-फल ध्यान अथवा प्रेमभक्ति ही अभिधेय का प्राप्य 'प्रयोजन' फल है।

श्रीमद्भागवत (१/१/१-२)—

**जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्**
**तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।**
**तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा**
**धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥१४१॥**

१४१। इस विश्व का जन्म, स्थिति और लय जिस तत्त्व से हुआ है, कहकर निश्चित होता है, अन्वय-व्यतिरेक द्वारा विचार करने पर जो समस्त अर्थ अथवा व्यापार में एकमात्र परम 'ज्ञ-तत्त्व' अर्थात् 'स्वरूपतत्त्व' के रूप में स्थिर होते हैं; जो दृश्यमान जगत् में एकमात्र स्वराट् अर्थात् स्वतन्त्र राजा है; जिन्होंने आदिकवि ब्रह्मा को अन्तर्यामी

के रूप में ब्रह्म तत्त्व की शिक्षा दी है; जिनके प्रति समस्त बुद्धिमान् पण्डितों में मुहर्मुहु (बारम्बार) मोह उत्पन्न होता है; जिनमें तेजोवारि- मृत्तिका (अग्नि, जल और मिट्टी) आदि भूतों का विनमय अर्थात् पृथक् रूप में सत्ता है; जिनमें तीन प्रकार की सृष्टि अर्थात् चिद् उदय रूप सृष्टि, जीव-प्राकट्य रूप सृष्टि और मायिक ब्रह्माण्ड रूप सृष्टि—सत्यरूप में वर्त्तमान है; उन्हीं आत्म शक्ति द्वारा नित्य-कुहक-शून्य परमसत्य तत्त्वरूपी श्रीकृष्ण का हम ध्यान करते हैं।

**अनुभाष्य**

१४१। मध्य, अष्टम परिच्छेद २६५ संख्या द्रष्टव्य है।

**धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां**
**वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।**
**श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किम्वापरेरीश्वरः**
**सद्यो हृदयवरुद्ध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रुषुभिस्तत्क्षणात्॥१४२॥**

१४२। यह श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ आदि काल में महामुनि श्रीनारायण द्वारा चतुःश्लोकी के रूप में निर्मित हुआ था। इसमें निर्मत्सर अर्थात् सभी जीवों के प्रति दयावान् व्यक्तियों के लिये धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष तक कैतव-रहित परम धर्म वर्णन हुआ है। यह धर्म जीवों के तीन प्रकार के तापों का नाश करने वाला, शिवद (मङ्गलप्रद) और वास्तववस्तु के तत्त्व-ज्ञान को प्रदान करने वाला है। श्रीमद्भागवत का श्रवण करने के इच्छुक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ईश्वर को अपने हृदय में अवरुद्ध करने में समर्थ होते हैं। इसलिए श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्यशास्त्रों का क्या प्रयोजन है?

**अनुभाष्य**

१४२। आदि, प्रथम परिच्छेद ९१ संख्या द्रष्टव्य है।

**'कृष्णभक्ति-रसस्वरूप' श्रीभागवत।**
**ताते वेदशास्त्र हैते परम महत्व॥१४३॥**

**१४३। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

**अनुभाष्य**

१४३। श्रीभागवत—कृष्णभक्तिरस स्वरूप है। भगवद्-वाणीमय वेदशास्त्र—वृक्ष के समान है, श्रीमद्भागवत—उसी वृक्ष का प्रपक्व (भली-भाँति पका हुआ) फल है, अतएव वेद की अपेक्षा तारतम्य के विचार से परम-महत्तर (अत्यधिक महान्) है।

''वेदार्थपरिवृंहित''—वेद का परिपक्व फल—श्रीमद्भागवत (१/१/३) में—

**निगम कल्पतरोर्गलितं फलं**
**शुकमुखादमृतद्रवसंयुत्तम्।**
**पिबत भागवतं रसमालयं**
**मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥१४४॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१४४। यह श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पवृक्ष का स्वेच्छा से नीचे गिरने वाला पक्का हुआ फल और शुकदेव के मुख के अमृत से संयुक्त है, हे रसिकगण, रसतत्त्व में परमलय अर्थात् निमग्न भाव जब तक न हो, तब तक इस जगत में (अप्राकृत) भावुक के रूप में भागवत का आस्वादन करो, निमग्न होने पर भी इस परम रस का पुनः नित्य ही पान करते रहना।

### अनुभाष्य

१४४। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के तृतीय श्लोक में आशीर्वाद रूप मङ्गलाचरण—

अहो (हे) रसिकाः (भगवत्सेवारसविदः,) भावुकाः (रसविशेषभावनचतुराः,) शुकमुखात् (व्यास शिष्यप्रशिष्यादि-पारम्पर्य-क्रमेण) भुवि (पृथिव्याम्) गलितम् (अखण्डमेव अवतीर्णं, स्वेच्छया पतितं, न तु बलात् पातितं परिपक्वत्वात्) अमृत द्रवसंयुतं (अमृतं परमानन्दः स एव द्रवः रसः तेन संयुक्तं विशिष्ट) निगमकल्पतरोः (वेदरूपकल्पवृक्षस्य) रसं (त्वगष्ट्यादि-कठिन-हेयांश-रहितं केवल रसरूप) फलं भागवतं आ-लयं (मोक्षानन्दामभिव्याप्य) मुहुः पिबतः (परमादरेण सेवधवम्)।

भागवत में जड़सुलभ तृप्ति नहीं—
श्रीमद्भागवत (१/१/१९) में—

**वयन्तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे।**
**यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे॥१४५॥**

### अमृतप्रवाह भाष्य

१४५। हम उत्तमश्लोक श्रीकृष्ण के विक्रम के विषय में जितना सुन रहे हैं, उतनी ही हमारी तृष्णा वर्द्धित हो रही है, तृष्णा की समाप्ति रूपी तृप्ति नहीं हो रही हैं; क्योंकि, रसज्ञ श्रोताओं में कृष्णकथा में पद-पद पर स्वाद उदित होता है।

### अनुभाष्य

१४५। नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषि महाभागवत श्रील सूत गोस्वामी को रखकर श्रीहरि की लीला और अवतार की कथाओं के समूह का कीर्त्तन करने का अनुरोध करके अपनी निरन्तर वर्द्धित होने वाली श्रवण की पिपासा का वर्णन कर रहे हैं,—

यत् (यद्विक्रम) शृण्वतां (श्रवणकारिणा) रस-ज्ञानां (रसिकाना) पदे-पदे (प्रतिक्षण) स्वादु स्वादु (स्वादुतोऽपि स्वादु भवतीति शेषः) तस्मिन् उत्तमः-श्लोक विक्रमे (उत् उद्गच्छति तमः यस्मात् स उत्तमः, तथाभूतः श्लोकः यशः यस्मिन् तस्य कृष्ण-स्य विक्रमे गुणवीर्यकथादौ) वयं तु (अन्ये तु तृप्यन्तु नाम) न वितृप्यामः (विशेषेण न तृप्यामः—अलमिति न मन्यामहे इत्यर्थः)।

भागवत में ही श्रुति का तात्पर्य निहित—

**अतएव भागवत करह विचार।**
**इहा हैते पाबे सूत्र-श्रुतिर अर्थ-सार॥१४६॥**

**१४६। प० अनु०—**अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

### अनुभाष्य

**१४६।** भागवत का विचार करने से ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषद् आदि का वास्तविक सार-अर्थ जान पाओगे। भागवत का विचार नहीं करके जो वेदान्त पढ़ना अथवा उपनिषद् का अर्थ जानना चाहता है, उसके लिये असार-अर्थ की प्राप्ति अवश्यम्भावी है।

निरन्तर कीर्त्तन करने का आदेश, नामाभास से मुक्ति—

**निरन्तर कर कृष्णनाम-सङ्कीर्तन।**
**हेलाय 'मुक्ति' पाबे, पाबे प्रेमधन॥१४७॥**

**१४७। प० अनु०—**हे प्रकाशानन्द सरस्वती! निरन्तर कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन कीजिए। इससे आपको अनायास ही मुक्ति की प्राप्ति होगी तथा प्रेमधन मिलेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता (१८/५४) में—

**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।**
**समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥१४८॥**

१४८। गीता में कहा गया है,—अभेद ब्रह्मवाद

रूपी ज्ञान चर्चा द्वारा स्वयं प्रसन्नात्मा, शोक और वांछा रहित तथा सभी जीवों में समभाव युक्त ब्रह्मणता प्राप्त करने के बाद मेरी पराभक्ति की प्राप्ति होती है। तात्पर्य यह है कि, पहले कर्ममिश्रा भक्ति का उल्लेख हुआ था, उसकी अपेक्षा ज्ञानमिश्रा भक्ति श्रेष्ठ है।

**अनुभाष्य**

१४८। मध्य, अष्टम परिच्छेद ६५ संख्या द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भागवत (१०/८७/२१) श्लोक में श्रीधरउद्धृत सर्वज्ञ भाष्यकार की व्याख्या और नृसिंह तापनी (२/५/१६) में—

**मुक्ता अपि लीलया विग्रहं**
**कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥१४९॥**

१४९। मुक्तगण भी लीला में विग्रह बनाकर अर्थात् देह धारण करके भगवान् का भजन करते हैं।

**अनुभाष्य**

१४९। मध्य, चतुर्विंश परिच्छेद १०७ संख्या द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भागवत (२/१/९) में—

**परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमःश्लोकलीलया।**
**गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥१५०॥**

१५०। [ श्रीशुकदेव गोस्वामी कह रहे हैं— ] हे राजर्षे, नैर्गुण्य में प्रतिष्ठित होने पर भी श्रीकृष्ण-लीला के प्रति आकर्षित होकर मैंने श्रीमद्भागवत का पाठ किया था।

**अनुभाष्य**

१५०। मध्य, चतुर्विंश परिच्छेद ४६ संख्या द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भागवत (३/१५/४३) में—

**तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-**
**किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।**
**अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां**
**संक्षोभमक्षर जुषामपि चिततन्वोः॥१५१॥**

१५१। उन कमल-नेत्र-भगवान् के पदकमल के किञ्जल्क (केसर, चन्दन, अगरु आदिसे) मिश्रित तुलसी की मधुर गन्ध से युक्त वायु ने निर्विशेष-ब्रह्मपरायण चतुःसन की नासिका के छिद्र के माध्यम से अन्दर जाकर उनके चित्त में हर्ष और देह में रोमाञ्च उत्पन्न कर दिया था।

**अनुभाष्य**

१५१। मध्य, सप्तदश परिच्छेद १४२ संख्या द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भागवत (१/७/१०) में—

**आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।**
**कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥"१५२॥**

१५२। आत्मा में ही जिनकी रति हैं, ऐसी वासना रूपी ग्रन्थियों से शून्य मुनिगण भी बृहद्कर्मा श्रीकृष्ण के प्रति अहैतुकी भक्ति करते हैं; क्योंकि, जगत् के चित का हरण करनेवाले हरि का एक ऐसा ही (अद्‌भुत) गुण है।

**अनुभाष्य**

१५२। मध्य, षष्ठ परिच्छेद १८६ संख्या द्रष्टव्य है।

महाराष्ट्रीय विप्र के द्वारा प्रभु के ६१ प्रकार के अर्थ की व्याख्या की क्षमता की प्रंशसा—

**हेनकाले सेइ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण।**
**सभाते कहिल सेइ श्लोक-विवरण॥१५३॥**
**"एइ श्लोकेर अर्थ प्रभु 'एकषष्टि' प्रकार।**
**कैराछेन, जाहा शुनि' लोके चमत्कार॥"१५४॥**

**१५३-१५४। प० अनु०—**उसी समय उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने सभा में आत्माराम श्लोक का विवरण कह सुनाया। उन्होंने कहा कि इस आत्माराम श्लोक के श्रीमन्महाप्रभु ने इकसठ प्रकार के अर्थ किये हैं, जिसे सुनकर लोग चमत्कृत हो उठे।

सभी के आग्रह करने पर प्रभु द्वारा इकसठ प्रकार के अर्थों की व्याख्या—

**तबे सब लोक शुनिते आग्रह करिल।**
**'एकषष्टि' अर्थ प्रभु विवरि' कहिल॥१५५॥**

**१५५। प० अनु०—**उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के मुख से ऐसा सुनकर सभी लोगों ने श्रीमन्महाप्रभु से उन इकसठ अर्थों को सुनने का आग्रह किया। श्रीमन्महाप्रभु ने इकसठ प्रकार के अर्थों का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया।

प्रभु के पाण्डित्य से सभी का विस्मय और उनका परमेश्वर श्रीकृष्ण के रूप में निर्द्धारण—

**शुनिया लोकेर बड़ चमत्कार हैल।**
**चैतन्यगोसाञि—'श्रीकृष्ण', निर्द्धारिल॥१५६॥**

**१५६। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के मुख से इकसठ प्रकार के अर्थों को सुनकर लोग बहुत आश्चर्यचकित हुए तथा उन्होंने निर्द्धारित किया कि श्रीचैतन्य गोसाञि श्रीकृष्ण हैं।

प्रभु का घर में प्रत्यागमन—

**एत कहि' उठिया चलिला गौरहरि।**
**नमस्कार करे लोक हरिध्वनि करि॥१५७॥**

**१५७। प० अनु०—**इतना कहकर श्रीगौरहरि उठकर चल दिये। सभी लोगों ने हरिध्वनि करते हुए उन्हें प्रणाम किया।

काशी में कीर्त्तन की वन्या (बाढ़)—

**सब काशीवासी करे नाम सङ्कीर्त्तन।**
**प्रेमे हासे, काँदे, गाय, करये नर्तन॥१५८॥**

**१५८। प० अनु०—**इस प्रकार समस्त काशीवासी नाम-सङ्कीर्त्तन करने लगे तथा प्रेम में हँसने, रोने, गाने तथा नृत्य करने लगे।

प्रभु के द्वारा काशी का उद्धार—

**संन्यासी पण्डित करे भागवत विचार।**
**वाराणसीपुर प्रभु करिला निस्तार॥१५९॥**

**१५९। प० अनु०—**सभी सन्यासी पण्डित भागवत पर विचार करने लगे, इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने वाराणसी का उद्धार कर दिया।

प्रभु के आगमन से काशी कृष्ण-कोलाहल से मुखरित—

**निज-लोक लञा प्रभु आइला वासाघर।**
**वाराणसी हैल द्वितीय नदीया-नगर॥१६०॥**

**१६०। प० अनु०—**अपने भक्तों को लेकर श्रीमन्महाप्रभु अपने वासस्थान पर लौट आये, वाराणसी दूसरी नदिया-नगरी बन गयी।

मायावाद से ग्रस्त कृष्ण नाम प्रेम विमुख भक्तों के आग्रह से किञ्चित् श्रद्धा के मूल्य से प्रभु द्वारा ब्रह्मा के लिये भी दुर्लभ अक्षय नाम-प्रेम-भाण्डार का काशीवासियों के बिना अधिकार का विचार किये वितरण—

**निजगण लञा प्रभु कहे हास्य करि'।**
**"काशीते आमि आइलाङ्ग बेचिते भाव कालि॥१६१॥**
**काशीते ग्राहक नाहि, वस्तु ना बिकाय।**
**पुनरपि देशे बहि' लओया नाहि जाय॥१६२॥**
**आमि बोझा बहिमु, तोमा-सबार दुःख हैल।**
**तोमा-सबार इच्छाय बिनामूल्ये बिलाइल॥"१६३॥**

**१६१-१६३। प० अनु०—**अपने भक्तों को श्री मन्महाप्रभु हास्य करते हुए कहने लगे कि मैं काशी में अपनी भाव कालि को बेचने के लिये आया था। काशी में कोई ग्राहक नहीं होने के कारण वस्तु बिक नहीं रही थी, तथा उसे पुनः ढोकर ले जाना भी सम्भव नहीं था। यह सोचकर कि मैं पुनः बोझा ढ़ोकर ले जाऊँगा, आप सबको बहुत दुःख हुआ, इसलिए मैंने तुम सबकी इच्छा से उस वस्तु को बिना मूल्य के ही बाँट दिया।''

काशी में प्रेम की बाढ़ से डुबो देने
वाले प्रभु की स्तुति—

**सबे कहे,—''लोक तारिते तोमार अवतार।**
**'पूर्व' 'दक्षिण' 'पश्चिम' करिला निस्तार॥१६४॥**
**'एक' वाराणसी छिल तोमाते विमुख।**
**ताह्य निस्तारिया कैला आमा-सबार सुख॥''१६५॥**

**१६४-१६५। प० अनु०—**सभी भक्तों ने कहा कि लोगों का उद्धार करने के लिये ही आपका अवतार हुआ है। आपने पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम भारत के सभी स्थानों का उद्धार कर दिया है। एकमात्र वाराणसी ही आपसे विमुख थी, उसका उद्धार करके आपने हम सबको बहुत आनन्दित कर दिया है।

प्रतिदिन असंख्य लोगों का समागम, सङ्कीर्ण स्थान
होने के कारण प्रभु के दर्शन का अभाव—

**वाराणसी-ग्रामे यदि कोलाहल हैल।**
**शुनि' ग्रामी देशी लोक आसिते लागिल॥१६६॥**

**१६६ प० अनु०—**सम्पूर्ण वाराणसी में श्री मन्महाप्रभु द्वारा सन्यासियों के उद्धार की बात फैल गयी तथा उस बात को सुनकर ग्रामवासी तथा शहरवासी सभी लोग श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये आने लगे।

**लक्ष कोटि लोक आइसे, नाहिक गणन।**
**सङ्कीर्णस्थाने प्रभुर ना पाय दरशन॥१६७॥**

**१६७। प० अनु०—**लाखों-करोड़ों लोग आने लगे, उनकी गणना नहीं की जा सकती, किन्तु सङ्कीर्ण (छोटा) स्थान होने के कारण सभी को श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन प्राप्त नहीं होते थे।

विश्वेश्वर दर्शन के लिये जाते समय असंख्य
तृष्णार्त्त लोगों को प्रभु के दर्शन की प्राप्ति—

**प्रभु जबे स्नाने जान, विश्वेश्वर-दरशने।**
**दुइदिके लोक करे प्रभु-विलोकने॥१६८॥**

**१६८। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु जब स्नान करने के बाद विश्वेश्वर के दर्शन के लिये जाते, तो उनके दोनों ओर से लोग उन्हें निहारते।

सभी के द्वारा हरिबोल की ध्वनि—

**बाहु तुलि' प्रभु कहे—बल 'कृष्ण' 'हरि'।**
**दण्डवत् करे लोके हरिध्वनि करि'॥१६९॥**

**१६९। प० अनु०—**अपनी भुजाओं को उठाकर श्रीमन्महाप्रभु सभी को 'कृष्ण' 'हरि' बोलने के लिये कहते तथा लोग हरिध्वनि करते हुए उन्हें दण्ड्वत प्रणाम करते।

काशी में पाँच दिन रहकर प्रभु की पुरी यात्रा—

**एइमत दिन पञ्च लोक निस्तारिया।**
**आर दिन चलिला प्रभु उद्विग्न हञा॥१७०॥**

**१७०। प० अनु०—**इस प्रकार पाँच दिनों तक लोगों का उद्धार करने के बाद अगले दिन उद्विग्न होकर श्रीमन्महाप्रभु ने जाने का निश्चय किया।

पाँच भक्तों द्वारा प्रभु का अनुसरण—

**राते उठि' प्रभु यदि करिला गमन।**
**पाछे लाग लइला तबे भक्त पञ्चजन॥१७१॥**

पाँच भक्तों के नाम—

**तपनमिश्र, रघुनाथ, महाराष्ट्रीय-ब्राह्मण।**
**चन्द्रशेखर, कीर्त्तनीया-परमानन्द,—पञ्चजन॥१७२॥**

**१७१-१७२। प० अनु०—**रात्रि के समय उठकर जब श्रीमन्महाप्रभु जाने लगे, तब श्रीतपन मिश्र, श्रीरघुनाथ भट्ट, महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, चन्द्रशेखर वैद्य और कीर्त्तनीया परमानन्द—ये पाँच भक्त भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

सभी की ही प्रभु के पीछे-पीछे पुरी जाने की इच्छा होने पर भी प्रभु द्वारा उन्हें विदायी देना—

**सबे चाहे प्रभु-सङ्गे नीलाचल जाइते।**
**सबारे विदाय दिला प्रभु यत्न-सहिते॥१७३॥**

**१७३। प० अनु०—**सभी श्रीमन्महाप्रभु के साथ नीलाचल जाना चाहते थे किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने अत्यन्त यत्नपूर्वक उन्हें विदायी दी।

अकेले झारिखण्ड के मार्ग से पुरी जाने की इच्छा—

**''जाँर इच्छा, पाछे आइस आमारे देखिते।**
**एबे आमि एका जाब झारिखण्ड-पथे॥''१७४॥**

**१७४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—जिनकी इच्छा हो, वे बाद में मुझसे मिलने के लिये पुरी आना। अभी तो मैं अकेला ही झारिखण्ड के पथ से जाऊँगा।

सनातन को वृन्दावन में रूप-अनुपम के पास भेजना—

**सनातने कहिला,—''तुमि जाह' वृन्दावन।**
**तोमार दुइ भाइ तथा कैराछे गमन॥१७५॥**

**१७५। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामी से कहा—'तुम वृन्दावन जाओ। तुम्हारे दो भाई रूप तथा अनुपम भी वहीं गये हैं।

करुणापूर्ण स्वर से भक्तवत्सल भगवान् का अपने वृन्दावन-यात्री भक्तों के सुख-विधान के लिये सनातन को आदेश—

**काँथा-करङ्गिया मोर काङ्गाल भक्तगण।**
**वृन्दावने आइले ताँदेर करिह पालन॥''१७६॥**

**१७६। प० अनु०—**यदि मेरे गरीब (कङ्गाल) भक्त (काँथा) फटे-पुराने कपड़ों से बने कम्बल और (करोंया) जल के पात्र को लेकर वृन्दावन आयेंगे तो तुम उनका पालन करना।

सभी को आलिङ्गन करके निरपेक्ष प्रभु की यात्रा, भक्तों का मूर्च्छित होना—

**एत बलि' चलिला प्रभु सबा आलिङ्गिया।**
**सबेइ पड़िला तथा मूर्च्छित हञा॥१७७॥**

**१७७। प० अनु०—**इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने सबका आलिङ्गन किया तथा चल पड़े, सभी भक्त मूर्च्छित होकर वहाँ गिर पड़े।

इन पाँच भक्तों का काशी में आगमन, सनातन की वृन्दावन यात्रा—

**कतक्षणे उठि' सबे दुःखे घरे आइला।**
**सनातन-गोसाञि वृन्दावनेरे चलिला॥१७८॥**

**१७८। प० अनु०—**कुछ समय के बाद उठकर सभी भक्त दुःखी होकर घर लौट आये तथा श्रील सनातन गोस्वामी वृन्दावन की ओर चल दिये।

रूप-गोस्वामी के साथ सुबुद्धि राय का मिलन—

**एथा रूप-गोसाञि जबे मथुरा आइला।**
**ध्रुवघाटे ताँरे सुबुद्धिराय मिलिला॥१७९॥**

**१७९। प० अनु०—**दूसरी ओर, जब श्रील रूप गोस्वामी मथुरा पहुँचे, वहाँ ध्रुवघाट पर उन्हें सुबुद्धि राय मिले।

सुबुद्धिराय और हुसैन शाह के पूर्ववृतान्त का वर्णन—

**पूर्वे जबे सुबुद्धि-राय छिला गौड़े 'अधिकारी'।**
**हुसैन-खाँ 'सेयद' करे ताहार चाकरी॥१८०॥**

**१८०। प॰ अनु॰—**पहले जब सुबुद्धिराय गौड़ देश के अधिकारी थे, तब हुसैन खाँ सैयद उनकी दासता करता था।

**दीधि खोदाइते तारे 'मुन्सीफ' कैला।**
**छिद्र पाञा राय तारे चाबुक मारिला॥१८१॥**

**१८१। प॰ अनु॰—**तालाब खुदवाने के लिये सुबुद्धिराय ने हुसैन खाँ सैयद को उस कार्य का दायित्व सौंपा तथा हुसैन खाँ सैयद के द्वारा कुछ त्रुटि करने पर सुबुद्धिराय ने उसे चाबुक से मारा।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८१। **मुन्सीफ—**'इन्साफ' शब्द से 'मुन्सीफ' शब्द की उत्पत्ति हुई है; जो जिस विषय को प्रधान व्यक्ति से समझ लेता है, उसे 'मुन्सीफ' कहते हैं। छिद्रपाञा—दोष देखकर।

**पाछे जबे हुसेन-खाँ गौड़े 'राजा' हइल।**
**सुबुद्धि-रायरे तिंहो बहु बाड़ाइल॥१८२॥**

**१८२। प॰ अनु॰—**बाद में जब हुसैन खाँ सैयद गौड़देश का राजा बना, तब उन्होंने सुबुद्धिराय का बहुत सम्मान किया।

**तार स्त्री तार अङ्गे देखे मारणेर चिह्ने।**
**सुबुद्धि-रायेरे मारिते कहे राजा-स्थाने॥१८३॥**

**१८३। प॰ अनु॰—**हुसैन खाँ सैयद की पत्नी ने जब उनके शरीर पर चाबुक लगने के चिह्न (निशान) को देखा, तो उसने हुसैन खाँ सैयद से सुबुद्धिराय को मारने के लिये कहा।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८३। **तार स्त्री (उनकी स्त्री)**—हुसैनशाह की बेगम; मारणेर-चिह्न (मारने के चिह्न)—सुबुद्धि-राय ने जो चाबुक मारे थे, उसके चिह्न।

**राजा कहे,—"आमार पोष्टा राय हय 'पिता'।**
**ताहारे मारिब आमि,—भाल नहे कथा॥"१८४॥**

**१८४। प॰ अनु॰—**हुसैन खाँ सैयद ने कहा—सुबुद्धिराय मेरा पालन-पोषण करने वाले होने के कारण मेरे पिता के समान है। मैं उन्हें मारूँ—यह तो कोई अच्छी बात नहीं है।

**स्त्री कहे,—जाति लह', यदि प्राणे ना मारिबे।**
**राजा कहे,—जाति निले इँहो नाहि जीबे॥१८५॥**

**१८५। प॰ अनु॰—**हुसैन खाँ सैयद की पत्नी ने कहा—'यदि तुम सुबुद्धिराय को प्राणों से नहीं मारना चाहते तो फिर तुम उसे जाति से भ्रष्ट कर दो।' हुसैन खाँ सैयद ने कहा—'यदि मैं सुबुद्धिराय को जाति से भ्रष्ट कर दूँगा तो वह जीवित नहीं रहेंगे'।

**स्त्री मरिते चाहे, राजा सङ्कटे पड़िल।**
**करोंयार पानि तार मुखे देउयाइल॥१८६॥**

**१८६। प॰ अनु॰—**हुसैन खाँ सैयद की पत्नी ने कहा कि यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं मर जाऊँगी। उसकी बात सुनकर हुसैन खाँ सैयद द्विधा (धर्मसङ्कट) में फस गया। अन्ततः उसने अपने जल पात्र से सुबुद्धिराय के मुख में करोया का पानी डलवा दिया (इस प्रकार उसने सुबुद्धिराय की जाति भ्रष्ट कर दी)।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८६। **करोंयार पानि** (करोया का पानी)—

जिस पात्र में मुसलमानों का जल रहता है, उसे 'करोंया' कहते हैं। उस 'करोंया' से मुसलमानों के द्वारा स्पर्श किया गया जल सुबुद्धिराय के मुख में दिया गया था।

सुबुद्धि-राय का अकेले काशी में आगमन—

**तबे सुबुद्धि-राय सेइ 'छद्म' पाञा।**
**वाराणसी आइला, सब विषय छाड़िया॥१८७॥**

**१८७। प० अनु०—**तब सुबुद्धिराय इस सुयोग को प्राप्त करके सब विषयों को छोड़कर वाराणसी आ गये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१८७। छद्म—छल। सुबुद्धि राय की पहले से ही विषय-त्याग की इच्छा थी; जातिनाश होने के छल से उन्होंने परिवार का त्याग कर दिया।

स्मार्त्त पण्डितों से प्रायश्चित के विषय में जिज्ञासा करने पर अनेक लोगों द्वारा अनेक विधान—

**प्रायश्चित पुछिला तिंहो पण्डितेर गणे।**
**ताँरा कहे,—तप्त-धृत खाञा छाड़' प्राणे॥१८८॥**

**१८८। प० अनु०—**सुबुद्धिराय ने पण्डितों से इसका प्रायश्चित पूछा तथा पण्डितों ने कहा कि गर्म घी पीकर तुम अपने प्राण त्याग दो।

सुबुद्धि-राय को प्रायश्चित की व्यवस्थाओं के प्रति सन्देह—

**केह कहे,—एइ नय, 'अल्प' दोष हय।**
**शुनिया रहिला राय करिया संशय॥१८९॥**

**१८९। प० अनु०—**किसी अन्य पण्डित ने कहा—ऐसा मत करो क्योकि यह तो छोटा सा दोष है। सुबुद्धिराय बिना कुछ किये संशयचित्त वाले होकर रहने लगे।

प्रभु के काशी आने पर, सम्पूर्ण वृतान्त का वर्णन करके प्रायश्चित की व्यवस्था की जिज्ञासा—

**तबे यदि महाप्रभु वाराणसी आइला।**
**ताँरे मिलि' राय आपन-वृतान्त कहिला॥१९०॥**

**१९०। प० अनु०—**जब फिर श्रीमन्महाप्रभु वाराणसी में आये, तब सुबुद्धिराय ने उनसे मिलकर उन्हें अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

१९०। महाप्रभु मथुरा जाने से पूर्व जब वाराणसी में आये, उस समय सुबुद्धिराय के साथ उनका मिलन हुआ।

प्रभु के द्वारा सबसे उत्तम व्यवस्था-प्रदान और सुबुद्धि राय को शिक्षा—

**प्रभु कहे,—''इँहा हैते जाह' वृन्दावन।**
**निरन्तर कर कृष्णनामसङ्कीर्त्तन॥१९१॥**

**१९१। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने सुबुद्धिराय से कहा—तुम यहाँ से वृन्दावन चले जाओ और निरन्तर कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन करो।

नामाभास और शुद्धनाम के फल का भेद—

**एक 'नामाभासे' तोमार पाप-दोष जाबे।**
**आर 'नाम' लइते कृष्णचरण पाइबे॥१९२॥**
**आर कृष्णनाम लैते कृष्णस्थाने स्थिति।**
**महापातकेर हय एइ प्रायश्चित्ति॥''१९३॥**

**१९२-१९३। प० अनु०—**एक नामाभास के प्रभाव से ही तुम्हारे पाप का दोष चला जायेगा तथा दूसरा नाम ग्रहण करने से तुम श्रीकृष्ण के चरण प्राप्त करोगे और तीसरा नाम ग्रहण करने पर तुम कृष्ण के स्थान पर पहुँच जाओगे। महापातक तक के लिये भी यही प्रायश्चित है।

अयोध्या के मार्ग से राय का नैमिषारण्य में जाना और कुछ दिन वास—

**पाञा आज्ञा राय वृन्दावनेरे चलिला।**
**प्रयाग, अयोध्या दिया नैमिषारण्ये आइला॥१९४॥**

**१९४। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा प्राप्त करके सुबुद्धिराय वृन्दावन की ओर चल दिये, तथा प्रयाग और अयोध्या से होते हुए नैमिषारण्य आ पहुँचे।

इसी बीच प्रभु का वृन्दावन से लौटकर पुनः प्रयाग में आगमन—

**कतक दिवस राय नैमिषारण्ये रहिला।**
**प्रभु वृन्दावन हैते प्रयाग जाइला॥१९५॥**

**१९५। प० अनु०—**कुछ दिनों तक सुबुद्धिराय नैमिषारण्य में ही रह गये। इसी बीच श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन से प्रयाग चले गये।

मथुरा में प्रभु का दर्शन नहीं पा करके राय को खेद—

**मथुरा आसिया राय प्रभुवार्त्ता पाइल।**
**प्रभुर लाग ना पाञा मने बड़ दुःख हैल॥१९६॥**

**१९६। प० अनु०—**मथुरा में आकर जब सुबुद्धिराय ने श्रीमन्महाप्रभु के विषय में पूछताछ की तो उन्हें श्रीमन्महाप्रभु के विषय में कुछ भी पता नहीं चला, जिससे उनका मन बहुत दुःखी हुआ।

राय का वैराग्य और दैन्य-आचरण—

**शुष्ककाष्ठ आनि' राय बेचे मथुराते।**
**पाँच छय पयसा हय एक एक बोझाते॥१९७॥**
**आपने रहे एक पयसार चाना चाबाञा।**
**आर पयसा बाणिया-स्थाने राखेन धरिया॥१९८॥**

गौड़ीय वैष्णवों का प्रिय अभ्यास—

**दुःखी वैष्णव देखि' ताँरे करान भोजन।**
**गौड़ीया आइले दधि, भात, तैल-मर्द्दन॥१९९॥**

**१९७-१९९। प० अनु०—**सुबुद्धिराय सूखी लकड़िया चुनकर मथुरा में बेचने लगे तथा उन्हें एक-एक बार लकड़ी बेचने के पाँच-छह पैसे मिल जाते। सुबुद्धिराय स्वयं तो एक पैसे का चना चबाकर जीवन यापन करते तथा बचे हुए पैसे बनिये के स्थान पर जमा कर देते। सुबुद्धिराय किसी दुःखी वैष्णव को देखकर उसे भोजन कराते तथा किसी बङ्गाल से आये भक्त को देखकर उसे दही, चावल तथा शरीर पर लगाने के लिये तेल ले देते।

उन्हें लेकर श्रीरूप का वृन्दावन में द्वादश वनों के दर्शन कराना—

**रूप-गोसाञि आसि' ताँरे बहु प्रीति कैला।**
**आपन-सङ्गे लञा 'द्वादश वन' देखाइला॥२००॥**

**२००। प० अनु०—**श्रील रूप गोस्वामी ने आकर सुबुद्धिराय से बहुत प्रीति की तथा उन्हें अपने साथ ले जाकर द्वादश वनों का दर्शन कराया।

श्रीरूप का सनातन को ढूँढ़ने के उद्‌देश्य से वृन्दावन से प्रयाग में आगमन—

**मासमात्र रूप-गोसाञि रहिला वृन्दावने।**
**शीघ्र चलि' आइला सनातनानुसन्धाने॥२०१॥**
**गङ्गातीर-पथे प्रभु प्रयागेरे आइला।**
**ताहा शुनि' दुइभाइ से पथे चलिला॥२०२॥**

**२०१। प० अनु०—**श्रील रूप गोस्वामी केवल एक मास तक वृन्दावन में रहे तथा वहाँ से श्रील सनातन गोस्वामी को ढूँढ़ने के लिये शीघ्र चले आये। श्रीमन्महाप्रभु गङ्गा के तट वाले मार्ग से प्रयाग गये थे, ऐसा सुनकर श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रीवल्लभ—दोनों भाई भी उसी मार्ग पर चल दिये।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०२। 'ताहाँ शुनि' (उसे सुनकर)—रूप गोस्वामी ने मथुरा में सुना कि पहले महाप्रभु गङ्गा के तट के मार्ग से मथुरा गये थे, अब उस मार्ग को देखने के उत्साह से अनुपम के साथ उस मार्ग से आये।

इसी बीच सनातन का प्रयाग से मथुरा आगमन—

**एथा सनातन गोसाञि प्रयागे आसिया।**
**मथुरा आइला सनातन राजपथ दिया॥२०३॥**

**२०३। प० अनु०—**दूसरी ओर, श्रीील सनातन गोस्वामी वाराणसी से चलकर प्रयाग आ गये तथा प्रयाग से वे राजमार्ग पर चलते हुए मथुरा आ पहुँचे।

मथुरा में राय के साथ मिलन और रूप-अनुपम के वृत्तान्त का श्रवण—

**मथुराते सुबुद्धि-राय ताँहारे मिलिला।**
**रूप-अनुपम-कथा सकलि कहिला॥२०४॥**

**२०४। प० अनु०—**मथुरा में सुबुद्धि राय की श्रील सनातन गोस्वामी से भेंट हुई तथा उन्होंने श्रील सनातन गोस्वामी को श्रील रूप गोस्वामी तथा अनुपम के विषय में बतलाया।

तीनों भाइयों के नहीं मिलने का कारण—

**गङ्गापथे दुइभाइ, राजपथे सनातन।**
**अतएव ताँहा सने ना हैल मिलन॥२०५॥**

**२०५। प० अनु०—**श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रीअनुपम—ये दोनों भाई तो गङ्गा के तट वाले मार्ग से मथुरा से प्रयाग गये तथा श्रील सनातन गोस्वामी राजमार्ग से प्रयाग से मथुरा गये, अतएव इसी कारण उनकी आपस में भेंट नहीं हुयी।

सनातन के प्रति राय का पूर्व-आश्रमोचित व्यवहार, सनातन की उसके प्रति अप्रीति अथवा उदासीनता—

**सुबुद्धि-राय बहु स्नेह करे सनातने।**
**व्यवहार-स्नेह सनातन नाहि माने॥२०६॥**

**२०६। प० अनु०—**सुबुद्धि राय श्रील सनातन गोस्वामी से बहुत स्नेह करते थे, किन्तु श्रील सनातन गोस्वामी संसार-सम्बन्धी-स्नेह से प्रसन्न नहीं थे।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२०६। व्यवहार-स्नेह—संसार सम्बन्धी स्नेह।

कृष्ण को ढूँढ़ने वाले महावैरागी सनातन प्रभु—

**महा-विरक्त सनातन भ्रमेन वने वने।**
**प्रतिवृक्षे, प्रतिकुञ्जे रहे रात्रि-दिने॥२०७॥**

**२०७। प० अनु०—**महावैराग्यशाली श्रीसनातन गोस्वामी वन-वन में भ्रमण करते थे तथा प्रत्येक वृक्ष और प्रत्येक कुञ्ज में रात-दिन रहते थे।

सनातन के द्वारा साम्प्रदायिक आचार्य के कार्य का सम्पादन—

**मथुरा-माहात्म्य-शास्त्र संग्रह करिया।**
**लुप्ततीर्थ प्रकट कैला वनेते भ्रमिया॥२०८॥**

**२०८। प० अनु०—**श्रील सनातन गोस्वामी ने मथुरा-माहात्म्य नामक ग्रन्थ का संग्रह किया तथा वन-वन में भ्रमण करके उन्होंने लुप्ततीर्थों का उद्धार किया।

सनातन का वृन्दावन में एवं रूप और अनुपम का काशी में वास—

**एइमत सनातन वृन्दावनेते रहिला।**
**रूप-गोसाञि दुइभाइ काशीते आइला॥२०९॥**

**२०९। प० अनु०—**इस प्रकार श्रील सनातन

गोस्वामी वृन्दावन में रह गये तथा श्रील रूप गोस्वामी और श्रीवल्लभ—दोनों भाई काशी में पहुँच गये।

काशी में तीन भक्तों के साथ उनका मिलन—

**महाराष्ट्रीय द्विज, शेखर, मिश्र-तपन।**
**तिनजन-सह रूप करिला मिलन॥२१०॥**

**२१०। प० अनु०—**श्रील रूप गोस्वामी ने महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, श्रीचन्द्रशेखर तथा श्रीतपन मिश्र—इन तीनों से भेंट की।

छोटे भाई के साथ श्रीरूप का भी शेखर के गृह में वास और तपनमिश्र के घर भिक्षा—

**शेखरेर घरे वासा, मिश्र-घरे भिक्षा।**
**मिश्रमुखे शुने, सनातने प्रभुर 'शिक्षा'॥२११॥**

**२११। प० अनु०—**श्रील रूप गोस्वामी श्रीवल्लभ के साथ श्रीचन्द्रशेखर के घर पर रहने लगे तथा भिक्षा (भोजन) श्रीतपन मिश्र के घर पर ग्रहण करने लगे। श्रील रूप गोस्वामी श्रीतपनमिश्र के मुख से श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रील सनातन गोस्वामी को दी गयी 'शिक्षा' के विषय में श्रवण करने लगे।

काशी में प्रभु द्वारा दी गयी सनातन-शिक्षा और मायावादी सन्यासियों के उद्धार के वृतान्त को सुनकर आनन्द—

**काशीते प्रभुर चरित्र शुनि' तिनेर मुखे।**
**सन्यासीरे कृपा शुनि' पाइला बड़ सुखे॥२१२॥**

**२१२। प० अनु०—**महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, श्रीचन्द्र-शेखर तथा श्रीतपन मिश्र—इन तीनों के मुख से श्रीमन्महाप्रभु के चरित्र को सुनकर एवं मायावादी सन्यासियों के प्रति श्रीमन्महाप्रभु की कृपा के विषय में सुनकर श्रील रूप गोस्वामी बहुत आनन्दित हुए।

प्रभु के प्रति लोगों के आनुगत्य रूपी भावों को देखकर और कीर्तन के श्रवण से श्रीरूप को सुख की प्राप्ति—

**महाप्रभुर उपर लोकेर प्रणति देखिया।**
**सुखी हैला लोकमुखे कीर्त्तन शुनिया॥२१३॥**

**२१३। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु के प्रति लोगों की शरणागति देखकर तथा उनके मुख से कीर्त्तन सुनकर श्रील रूप गोस्वामी बहुत प्रसन्न हुए।

दस दिन काशी में रहने के बाद श्रीरूप आदि की गौड़-यात्रा—

**दिन दश रहि' रूप गौड़े यात्रा कैल।**
**सनातन-रूपेर एइ चरित्र कहिल॥२१४॥**

**२१४। प० अनु०—**दस दिन तक वाराणसी में रहने के बाद श्रीरूप गोस्वामी ने गौड़देश की ओर यात्रा की। यहाँ तक मैंने श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील रूप गोस्वामी के विषय में बतलाया।

साथी बलभद्र के साथ प्रभु की कृष्ण को ढूँढ़ने की चेष्टा करते-करते पहले की भाँति झारिखण्ड के मार्ग से पुरी की यात्रा—

**एथा महाप्रभु यदि नीलाद्रि चलिला।**
**निर्जन वनपथे महासुख पाइला॥२१५॥**
**सुखे चलि' आइसे प्रभु बलभद्र-सङ्गे।**
**पूर्ववत् मृगादि-सङ्गे कैला नानारङ्गे॥२१६॥**

**२१५-२१६। प० अनु०—**दूसरी ओर, श्रीमन्महाप्रभु नीलाद्रि (जगन्नाथ पुरी) की ओर चल पड़े, निर्जन वन के पथ पर चलते हुए उन्हें अत्यन्त सुख की प्राप्ति हुई। श्रीमन्महाप्रभु प्रसन्नतापूर्वक श्रीबलभद्र भट्टाचार्य के साथ चलते जा रहे थे तथा उन्होंने झारिखण्ड के वन में पहले की भाँति हिरण आदि के साथ बहुत लीलाएँ की।

आठारनाला में आकर बलभद्र द्वारा पुरी में स्थित भक्तों का आह्वान—

**आठारनालाते आसि' भट्टाचार्य ब्राह्मणे।**
**पाठाञा बोलाइला निज-भक्तगणे॥२१७॥**

**२१७। प॰ अनु॰—**आठारनाला पहुँचकर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीबलभद्र भट्टाचार्य तथा उनके सेवक ब्राह्मण को भेजकर अपने भक्तों को बुलवा भेजा।

प्रभु के आगमन के विषय में सुनकर भक्तों को मृत-सञ्जीवनी-मन्त्र की प्राप्ति—

**शुनिया भक्तेर गण जेन पुनरपि जीला।**
**देहे प्राण आइल,—जेन इन्द्रिय उठिला॥२१८॥**

**२१८। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु के आने का संवाद सुनकर भक्त मानो पुनः जीवित हो गये हो, उनकी देह में प्राणों का सञ्चार हो आया तथा उनकी इन्द्रियों में शक्ति आ गयी।

नरेन्द्र-सरोवर के निकट आकर सभी के द्वारा प्रभु का दर्शन—

**आनन्दे विह्वल भक्तगण धाञा आइला।**
**नरेन्द्रे आसिया सबे प्रभुरे मिलिला॥२१९॥**

**२१९। प॰ अनु॰—**आनन्द में विह्वल होकर भक्त दौड़ते हुए चल पड़े तथा नरेन्द्र सरोवर पर आकर सभी श्रीमन्महाप्रभु से मिले।

भक्तों और प्रभु का परस्पर के प्रति यथायोग्य प्रणाम और आलिङ्गन आदि—

**पुरी, भारतीर प्रभु वन्दिलेन चरण।**
**दोंहे महाप्रभुरे कैला प्रेम-आलिङ्गन॥२२०॥**

**२२०। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीपरमानन्द पुरी तथा श्रीब्रह्मानन्द भारती के चरणकमलों की वन्दना की तथा उन दोनों ने श्रीमन्महाप्रभु को प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया।

**दामोदर-स्वरूप, पण्डित गदाधर।**
**जगदानन्द, काशीश्वर, गोविन्द, वक्रेश्वर॥२२१॥**
**काशी-मिश्र, प्रद्युम्न-मिश्र, पण्डित-दामोदर।**
**हरिदास-ठाकुर, आर पण्डित-शङ्कर॥२२२॥**

भक्त और भगवान् के मिलन से दोनों में ही प्रेम का आवेश—

**आर सब भक्त प्रभुर चरणे पड़िला।**
**सबा आलिङ्गिया प्रभु प्रेमाविष्ट हैला॥२२३॥**

२२१-२२३। **प॰ अनु॰—**श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी, श्री गदाधर पण्डित, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीकाशीश्वर, श्रीगोविन्द, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्री काशी मिश्र, श्रीप्रद्युम्न मिश्र, श्री दामोदर पण्डित, श्रील हरिदास ठाकुर तथा श्रीशङ्कर पण्डित और अन्य सब भक्त श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में पड़ गये, उन सब भक्तों को आलिङ्गन करके श्रीमन्महाप्रभु प्रेम में आविष्ट हो गये।

सभी को साथ में लेकर प्रभु द्वारा जगन्नाथ के दर्शन—

**आनन्द-समुद्रे भासे सब भक्तगणे।**
**सबा लञा चले प्रभु जगन्नाथ-दरशने॥२२४॥**

**२२४। प॰ अनु॰—**सभी भक्त आनन्द के समुद्र में निमग्न हो गये। श्रीमन्महाप्रभु उन सबको अपने साथ लेकर श्रीजगन्नाथ के दर्शन के लिये चल पड़े।

प्रभु का प्रेमावेश और नृत्यगीत—

**जगन्नाथ देखि' प्रभु प्रेमाविष्ट हैला।**
**भक्त-सङ्गे बहुक्षण नृत्य-गीत कैला॥२२५॥**

**२२५। प॰ अनु॰—**श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन करके श्रीमन्महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये तथा उन्होंने बहुत देर तक भक्तों के साथ नृत्य-गीत किया।

जगन्नाथ की प्रसादी-माला की प्राप्ति,
पड़िछाओं द्वारा प्रणाम—

**जगन्नाथ-सेवक आनि' माला-प्रसाद दिला।**
**तुलसी-पड़िछा आसि' चरण वन्दिला॥२२६॥**

**२२६। प॰ अनु॰—**श्रीजगन्नाथ के सेवक ने आकर श्रीमन्महाप्रभु को प्रसादी माला पहनायी तथा तुलसी-पड़िछा ने आकर उनके श्रीचरणों की वन्दना की।

चारों ओर प्रभु के आगमन के संवाद का विस्तार,
कटक से राय और भट्टाचार्य द्वारा आकर
प्रभु का दर्शन—

**'महाप्रभु आइला'—ग्रामे कोलाहल हैल।**
**सार्वभौम, रामानन्द, वाणीनाथ मिलिल॥२२७॥**

**२२७। प॰ अनु॰—**'श्रीमन्महाप्रभु जगन्नाथपुरी लौट आये हैं'—सर्वत्र यह बात फैल गयी। कट्टक से श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीरामानन्द राय तथा श्री द्विज वाणीनाथ ने आकर श्रीमन्महाप्रभु से भेंट की।

प्रभु का काशीमिश्र के गृह में वास और
सार्वभौमका निमन्त्रण—

**सबा सङ्गे लञा प्रभु मिश्र-वासा आइला।**
**सार्वभौम-पण्डित गोसाञिरे निमन्त्रण कैला॥२२८॥**

**२२८। प॰ अनु॰—**सभी को अपने साथ लेकर श्रीमन्महाप्रभु श्रीकाशीमिश्र के घर पर आ गये। श्री सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया।

भक्तों के साथ प्रसाद के सेवन की इच्छा हेतु प्रसाद
लाने के लिये आदेश—

**प्रभु कहे,—''महाप्रसाद आन' एइ स्थाने।**
**सबा-सङ्गे इँहा आजि करिमु भोजने॥''२२९॥**

**२२९। प॰ अनु॰—**श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य से कहा—''आज महाप्रसाद यही पर ले आइये। आज मैं सबके साथ बैठकर यही पर ही भोजन करूँगा।''

भक्तों के साथ महाप्रभु द्वारा महाप्रसाद का सम्मान—

**तबे दुँहे जगन्नाथप्रसाद आनिला।**
**सबा-सङ्गे महाप्रभु भोजन करिला॥२३०॥**

**२३०। प॰ अनु॰—**तब दोनों (?) श्रीजगन्नाथ प्रसाद को लेकर आये तथा श्रीमन्महाप्रभु ने सबके साथ बैठकर भोजन किया।

वृन्दावन से पुरी-आगमन की यात्रा वर्णित—

**एइ त' कहिलुँ, —प्रभु देखि' वृन्दावन।**
**पुनः करिलेन जैछे नीलाद्रि-गमन॥२३१॥**

**२३१। प॰ अनु॰—**इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु के नीलाचल से चलकर वृन्दावन के दर्शन तथा पुनः वृन्दावन से पुरी आगमन के विषय में बतलाया है।

श्रवण करने वालों को चिद्-वृत्ति की
स्फूर्त्ति और कृष्ण प्राप्ति—

**इहा जेइ श्रद्धा करि' करये श्रवण।**
**अचिरात पाय सेइ चैतन्य-चरण॥२३२॥**

**२३२। प॰ अनु॰—**इसे श्रद्धापूर्वक जो कोई भी श्रवण करता है, उसे बहुत शीघ्र ही श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरण-कमलों की प्राप्ति होती है।

मध्यलीला का दिगदर्शन और चौबीस वर्षों में से
छह वर्ष भारत में नामप्रेम के प्रचार के उद्देश्य से
भ्रमण—

**मध्यलीलार करिलुँ एइ दिगदरशन।**
**छय वत्सर कैला जैछे गमनागमन॥२३३॥**

**२३३। प० अनु०—**छय वर्ष तक श्रीमन्महाप्रभु ने जिस प्रकार गमनागन किया, मैंने मध्यलीला में उसका दिगदर्शन किया है।

बाकी के अठारह वर्ष पुरी में
भक्तों के साथ कीर्त्तन-उल्लास—

**शेष अष्टादश वत्सर नीलाचले वास।**
**भक्तगण-सङ्गे करे कीर्त्तन-विलास॥२३४॥**

**२३४। प० अनु०—**अन्तिम अठारह वर्ष तक श्रीमन्महाप्रभु ने नीलाचल में वास किया तथा वहाँ पर उन्होंने भक्तों के साथ कीर्त्तन-विलास किया।

भागवत में व्यास की रीति का अनुसरण करते हुए संक्षेप में मध्य-लीला के परिच्छेदों का वर्णन करते हुए पुनः चर्चा—

**मध्यलीलार क्रम एबे करि अनुवाद।**
**अनुवाद कैले हय कथार आस्वाद॥२३५॥**

**२३५। प० अनु०—**अब मैं मध्यलीला का क्रमशः वर्णन करता हूँ क्योकि क्रमपूर्वक वर्णन करने से कथा का आस्वादन होता है।

**प्रथम परिच्छेदे—शेष लीलार सूत्रगण।**
**तथि-मध्ये कोन भागेर विस्तार वर्णन॥२३६॥**

**२३६। प० अनु०—**मध्यलीला के प्रथम परिच्छेद में शेषलीला का सूत्र रूप में वर्णन किया है तथा उसी में ही किसी-किसी भाग का विस्तारपूर्वक भी वर्णन किया है।

**द्वितीय परिच्छेदे—प्रभुर प्रलाप-वर्णन।**
**तथि-मध्ये नाना-भावेर दिग्‌दरशन॥२३७॥**

**२३७। प० अनु०—**मध्य लीला के द्वितीय-परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के प्रलाप का वर्णन हुआ है तथा उसी के बीच में अनेक-भावों का दिग्दर्शन किया गया है।

**तृतीय परिच्छेदे—प्रभुर कहिलुँ सन्यास।**
**आचार्येर घरे जैछे करिला विलास॥२३८॥**

**२३८। प० अनु०—**मध्य लीला के तृतीय परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के सन्यास का वर्णन किया गया है तथा उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के अद्वैताचार्य के घर पर किये गये विलास का वर्णन है।

**चतुर्थे—माधव पुरीर चरित्र-आस्वादन।**
**गोपाल-स्थापन, क्षीर-चुरीर वर्णन॥२३९॥**

**२३९। प० अनु०—**मध्य लीला के चतुर्थ परिच्छेद में श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद के चरित्र का आस्वादन, उनके द्वारा गोपाल के स्थापन तथा गोपीनाथ के खीर-चोरी करने का प्रसङ्ग वर्णित हुआ है।

**पञ्चमे—साक्षी गोपाल-चरित्र वर्णन।**
**नित्यानन्द कहे, प्रभु करेन आस्वादन॥२४०॥**

**२४०। प० अनु०—**मध्य लीला के पञ्चम परिच्छेद में श्रीनित्यानन्द प्रभु के द्वारा साक्षी गोपाल के चरित्र का वर्णन तथा श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उसके आस्वादन का वर्णन हुआ है।

**षष्ठे—सार्वभौमेर करिला उद्धार।**
**सप्तमे—तीर्थयात्रा, वासुदेव-निस्तार॥२४१॥**

**२४१। प० अनु०—**मध्य लीला के षष्ठ परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के उद्धार का वर्णन हुआ है तथा सप्तम परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु की तीर्थ-यात्रा तथा उनके द्वारा श्रीवासुदेव विप्र के उद्धार का वर्णन हुआ है।

**अष्टमे—रामानन्द-संवाद विस्तार।**
**आपने शुनिला 'सर्व-सिद्धान्तेर सार'॥२४२॥**

**२४२। प० अनु०**—मध्य लीला के अष्टम परिच्छेद में श्रीरामानन्द-संवाद का वर्णन हुआ है, जिसमें स्वयं श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरामानन्द राय के मुख से सभी सिद्धान्तों के सार का श्रवण किया।

**नवमे—कहिलुँ दक्षिण-तीर्थ-भ्रमण।**
**दशमे—कहिलुँ सर्व वैष्णव-मिलन॥२४३॥**

**२४३। प० अनु०**—मध्य लीला के नवम परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा किये गये दक्षिण भारत के तीर्थों का भ्रमण तथा दशम परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के साथ सभी वैष्णवों के मिलन का वर्णन हुआ है।

**एकादशे—श्रीमन्दिरे 'बेड़ा-सङ्कीर्तन'।**
**द्वादशे—गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन-क्षालन॥२४४॥**

**२४४। प० अनु०**—मध्य लीला के एकादश परिच्छेद में श्रीजगन्नाथ मन्दिर में हुए 'बेड़ा-सङ्कीर्त्तन' का तथा द्वादश परिच्छेद में गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन का वर्णन हुआ है।

**त्रयोदशे—रथ-आगे प्रभुर नर्त्तन।**
**चतुर्दशे—'हेरापञ्चमी'-यात्रा-दरशन॥२४५॥**

**२४५। प० अनु०**—मध्य लीला के त्रयोदश परिच्छेद में रथ के आगे श्रीमन्महाप्रभु द्वारा किये गये नृत्य का तथा चतुर्दश परिच्छेद में 'हेरा-पञ्चमी' यात्रा के दर्शन का वर्णन हुआ है।

**तार मध्ये व्रजदेवीर भावेर श्रवण।**
**स्वरूप कहिला प्रभु कैला आस्वादन॥२४६॥**

**२४६। प० अनु०**—उसी चतुर्दश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा श्रीस्वरूप दामोदर द्वारा वर्णित व्रजदेवियों के भावों का श्रवण करके उसके आस्वादन का वर्णन हुआ है।

**पञ्चदशे—भक्तेर गुण आपने कहिल।**
**सार्वभौम-घरे भिक्षा, अमोघ तारिल॥२४७॥**

**२४७। प० अनु०**—मध्य लीला के पञ्चदश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा अपने भक्तों के गुणों का वर्णन, उनके द्वारा सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर भिक्षा करने तथा अमोघ के उद्धार का भी वर्णन हुआ है।

**षोड़शे—वृन्दावन-यात्रा गौड़देशे-पथे।**
**पुनः नीलाचले आइला, नाटशाला-हैते॥२४८॥**

**२४८। प० अनु०**—षोड़श परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु की गौड़ (बङ्गाल) से होते हुए वृन्दावन यात्रा का वर्णन तथा पुनः उनके कानाई नाटशाला से नीलाचल में आने के प्रसङ्ग का वर्णन हुआ है।

**सप्तदशे—वनपथे मथुरा-गमन।**
**अष्टादशे—वृन्दावन-विहार-गमन॥२४९॥**

**२४९। प० अनु०**—सप्तदश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के वन के मार्ग से मथुरा जाने तथा अष्टादश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के वृन्दावन विहार के गमन का वर्णन हुआ है।

**उनविंशे—मथुरा हैते प्रयाग-गमन।**
**तार मध्ये श्रीरूपेरे शक्ति-सञ्चारण॥२५०॥**

**२५०। प० अनु०**—उन्नविंश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के मथुरा से प्रयाग जाने तथा उसी में ही श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रील रूप गोस्वामी में शक्ति-सञ्चार करने का वर्णन हुआ है।

**विंशति परिच्छेदे—सनातनेर मिलन।**
**तार मध्ये भगवानेर स्वरूप-वर्णन॥२५१॥**

**२५१। प० अनु०**—विंश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के साथ श्रील सनातन गोस्वामी के मिलन का

तथा उसी में ही श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कथित भगवान् के स्वरूप का वर्णन हुआ है।

**एकविंशे—कृष्णेश्वर्य-माधुर्य-वर्णन।**
**द्वाविंशे—द्विविध साधन भक्तिर विवरण॥२५२॥**

**२५२। प० अनु०—**एकविंश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कथित कृष्ण के ऐश्वर्य तथा माधुर्य का वर्णन एवं द्वाविंश परिच्छेद में दो प्रकार की साधनभक्ति का विवरण दिया गया है।

**त्रयोविंशे—प्रेमभक्तिरसेर कथन।**
**चतुर्विंशे—'आत्मारामा'-श्लोकार्थ-वर्णन॥२५३॥**

**२५३। प० अनु०—**त्रयोविंश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा वर्णित प्रेमभक्तिरस का वर्णन तथा चतुविंश परिच्छेद में 'आत्मारामाः' श्लोक के अर्थ का वर्णन हुआ है।

**पञ्चविंशे—काशीवासीरे वैष्णवकरण।**
**काशी हैते पुनः नीलाचले आगमन॥२५४॥**

**२५४। प० अनु०—**पञ्चविंश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा काशीवासियों को वैष्णव बनाने तथा श्रीमन्महाप्रभु के काशी से पुनः नीलाचल आने का वर्णन हुआ है।

**पञ्चविंशति परिच्छेदे एइ कैलुँ अनुवाद।**
**जाहार श्रवणे हय ग्रन्थार्थ-आस्वाद॥२५५॥**

**२५५। प० अनु०—**पञ्चविंश परिच्छेद में मैंने इस प्रकार सम्पूर्ण मध्यलीला में वर्णित लीलाओं का क्रमशः पुनः संक्षेप में वर्णन किया है, जिसके श्रवण से ग्रन्थ के अर्थ का आस्वादन होता है।

संक्षेप में मध्य-लीला वर्णित—
**संक्षेपे कहिलुँ एइ मध्यलीला-सार।**
**कोटिग्रन्थे वर्णन ना जाय इहार विस्तार॥२५६॥**

**२५६। प० अनु०—**इस प्रकार मैंने संक्षेप में मध्यलीला के सार का वर्णन किया है, विस्तार से तो इसका करोड़ो ग्रन्थों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

जीवों के उद्धार के लिये प्रभु का सम्पूर्ण भारत-भ्रमण और स्वयं आचरण करके प्रचार—
**जीव निस्तारिते प्रभु भ्रमिला देशे-देशे।**
**आपने आस्वादि' भक्ति करिला प्रकाशे॥२५७॥**

**२५७। प० अनु०—**जीवों का उद्धार करने के लिये श्रीमन्महाप्रभु ने स्थान-स्थान पर भ्रमण किया तथा स्वयं भक्ति का आस्वादन करते हुए उन्होंने भक्ति को प्रकाशित किया।

प्रभु के प्रचार के विषय-समूह—
**कृष्णतत्व, भक्तितत्व, प्रेमतत्व आर।**
**भावतत्व, रसतत्व, लीलातत्व-सार॥२५८॥**
**श्रीभागवत-तत्वरस करिला प्रचारे।**
**कृष्णतुल्य भागवत, जानाइला संसारे॥२५९॥**

**२५८-२५९। प० अनु०—**श्रीमन्महाप्रभु ने कृष्ण-तत्त्व, भक्तितत्त्व, प्रेमतत्त्व, भावतत्त्व, रसतत्त्व, लीलातत्त्व के सार एवं श्रीभागवत तत्त्व के रस का प्रचार किया तथा उन्होंने संसार को बतलाया कि श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण के समान ही है।

कभी श्रोता के रूप में, कभी वक्ता के रूप में शुद्धभक्ति का प्रचार—
**भक्त लागि' विस्तारिला आपन-वदने।**
**काँहा भक्त-मुखे कहाइ शुनिला आपने॥२६०॥**

**२६०। प० अनु०—**कभी तो श्रीमन्महाप्रभु ने भक्तों के लिये स्वयं अपने मुख से भागवत के

तत्वों का वर्णन तथा कभी उन्होंने स्वयं भक्तों के मुख से उसका श्रवण किया।

अनुपम भक्तवत्सल, अद्वितीय और
अहैतुकी कृपा के सागर—

**श्रीचैतन्य-सम आर कृपालु, वदान्य।**
**भक्तवत्सल ना देखि त्रिजगते अन्य॥२६१॥**

**२६१। प० अनु०—**श्रीचैतन्य महाप्रभु के समान त्रिजगत में अन्य किसी कृपालु, वदान्य तथा भक्तवत्सल को नहीं देखता हूँ।

अन्धविश्वास छोड़कर वास्तव-वस्तु में दृढ़-विश्वास के फलस्वरूप ही परतत्व चैतन्य-कृष्ण की प्राप्ति—

**श्रद्धा करि' एइ लीला शुन, भक्तगण।**
**इहार श्रवणे पाइबा चैतन्य-चरण॥२६२॥**
**इहार प्रसादे पाइबा कृष्णतत्वसार।**
**सर्वशास्त्र-सिद्धान्तेर ईँहा पाइबा पार॥२६३॥**

**२६२-२६३। प० अनु०—**हे भक्तो! श्रद्धापूर्वक इन लीलाओं का श्रवण करो, इनके श्रवण से आपको श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों की प्राप्ति होगी। इस ग्रन्थ की कृपा से आपको कृष्णतत्त्व के सार की प्राप्ति होगी। इसी में आपको सभी शास्त्रों के सिद्धान्तों की सर्वोच्च सीमा प्राप्त होगी।

कृष्णलीला और चैतन्यलीला—अभिन्न अमृत की
नदी, वह केवलमात्र शुद्धचित्त भक्त के द्वारा
ही आस्वाद्य—

**कृष्णलीला अमृत-सार, तार शत**
**शत धार, दशदिके बहे जाहा हैते।**
**से चैतन्यलीला हय, सरोवर**
**अक्षय, मनो हंस चराह' ताहाते॥२६४॥**

**२६४। प० अनु०—**श्रीकृष्ण की लीला अमृत का सार है, जिसमें से दसों दिशाओं में सैकड़ों-सैकड़ों धाराएँ बहती हैं, वही कृष्ण लीला ही चैतन्यलीला रूपी अक्षय सरोवर है, हे भक्तो! अपने मन रूपी हंस को उसी में चराओ।

ग्रन्थकार की दीनतापूर्वक प्रार्थना—

**भक्तगण, शुन मोर दैन्य-वचन।**
**तोमा-सबार पदधूलि, अङ्गे विभूषण करि',**
**किछु मुञि करों निवेदन॥२६५॥ध्रु.॥**

**२६५। प० अनु०—**हे भक्तो! मेरे दैन्यपूर्ण वचनों का श्रवण करो। आप सबके श्रीचरणों की धूलि को अपने अङ्गों का विभूषण बनाकर मैं कुछ निवेदन करता हूँ।

भक्तिसिद्धान्तसमूह और कृष्णप्रेमरस के
आस्वादन के लिये भक्तों से अनुरोध—

**कृष्णभक्ति सिद्धान्त गण, जाते प्रफुल्ल पद्मवन,**
**तार मधु करि' आस्वादन।**
**प्रेमरस-कुमुदवने, प्रफुल्लित रात्रि-दिने,**
**ताते चराओ मनोभृङ्गगण॥२६६॥**

**२६६। प० अनु०—**श्रीचैतन्य चरितामृत रूपी अक्षय सरोवर में श्रीकृष्ण भक्ति विषयक सिद्धान्त समूह—प्रफुल्लित कमलों के वन सदृश्य है, आप उन कमलों के मकरन्द का आस्वादन कीजिए। इस सरोवर में प्रेमरस रूपी कुमुदवन दिन-रात प्रफुल्लित हो रहा है, हे भक्तों! उसमें अपने मन रूपी भ्रमर को चराओ।

### अनुभाष्य

२६४-२६६। कृष्णलीला ही-'अमृत सार वस्तु' है; उसके अलावा,—सबकुछ ही 'असार' है। कृष्णलीलामृत सार की सैकड़ों-सैकड़ों धाराएँ कृष्णलीलामृत से दसों दिशाओं में प्रवाहित हैं। कृष्ण-लीलामृत सार ही पुनः श्रीचैतन्य लीला है।

चैतन्यलीला को कृष्ण लीला से पृथक मानकर वर्त्तमान काल में नयी-नयी कल्पनाओं के प्रभाव से उत्पन्न ''नदीया और गौर-नगरी लीला'' आदि नये मतवादों की सृष्टि करने की चेष्टा चल रही है। थियसफिस्ट (राजा राम मोहन राय के द्वारा प्रचलित मत का पालन करने वाले) दल के कुछ-कुछ लोग और अन्यान्य भक्ति-विरोधी प्राकृत बाउल और सहजिया दल के कोई-कोई व्यक्ति उनकी अपनी-अपनी दुर्दमनीय प्राकृत-वृत्ति के साँचे में डालकर श्रीगौराङ्ग को राजनैतिक-नेता, कोई शक्ति के उपासक, कोई अवैध नगरी का लम्पट होने की धारणा करते हैं। गोलोक की नित्यलीला ही प्रकटकाल में प्रपञ्च में उदित होती है; उस समय श्रीरूप-आदि गौरलीला के पार्षदवर्ग कोई भी जब गौरनागर-लीला नहीं देख अथवा समझ पाये, तब वह निश्चित ही चैतन्यलीला नहीं है। श्रीरूपानुग वैष्णव-गुरु के पदाङ्क का अनुसरण करके गौरभक्ति करना ही कर्त्तव्य है। कल्पना के सरोवर में अवगाहन करके 'नवगोरार दल' बनाने से कोई भी फल नहीं है। चैतन्यलीला—अक्षय सरोवर; कृष्ण भक्ति के सिद्धान्त-समूह—उस सरोवर के कमल के वन हैं; प्रेमरस—कुमुदवन हैं; एवं भक्तों का मन—भँवरे के समान है।

कृष्णलीला का वैचित्र्य-समूह ही भक्तों का जीवन—

**नाना-भावेर भक्तजन, हंस-चक्रवाकगण,**
**जाते सबे करेन विहार।**
**कृष्णकेलि-मृणाल, जाहा पाइ सर्वकाल,**
**भक्त-हंस करये आहार॥२६७॥**

**२६७। प० अनु०—**अनेक भावों के हंस, चक्रवाक आदि रूपी भक्त इस सरोवर में सदैव विहार करते हैं, श्रीकृष्णलीला रूपी मृणाल वहाँ सदैव विद्यमान रहता है तथा भक्त रूपी हंस सदैव उसका आहर करते हैं।

**अनुभाष्य**

२६७। कृष्णकेलिमृणाल ही भक्त रूपी हंस का 'आहार' है। नित्यसम्भोग रस-विग्रह कृष्णचन्द्र की लीला—नित्यविप्रलम्भरसविग्रह अभिन्नकृष्ण-तनु श्रीगौरसुन्दर के आश्रित नित्यसेवक भक्तों की आहार योग्य वस्तु है।

वैसे आस्वादन से ही प्रेमोल्लास की वृद्धि—

**सेइ सरोवरे गिया, हंस-चक्रवाक हञा,**
**सदा ताँहा करह विलास।**
**खण्डिबे सकल दुःख, पाइबा परम-सुख,**
**अनायासे हबे प्रेमोल्लास॥२६८॥**

**२६८। प० अनु०—**हे गौर भक्तों! आप भी हंस, चक्रवाक बनकर उस सरोवर में जाकर सदैव वही विलास करो। इससे आपके समस्त दुःख दूर हो जायेंगे तथा आपको परम सुख की प्राप्ति होगी और अनायास ही प्रेमोल्लास उत्पन्न होगा।

**अनुभाष्य**

२६८। हे गौरभक्त! चैतन्यलीला के सरोवर में अवगाहन करके नित्यकाल श्रीगौर पदाश्रित हंस-चक्रवाक् के रूप में कृष्ण का भजन करते-करते श्रीगौर-उपासना रूपी सरोवर में विलास करते रहो। तभी गौराङ्ग को नदीया-नागरी की भाँति भोग्य जड़ विशेष के रूप में कल्पना करके तुम्हें कृष्ण के अतिरिक्त सेवा रूपी 'दुःख' को प्राप्त नहीं करना पड़ेगा एवं तभी तुम कृष्ण सेवारूपी परम सुख को प्राप्त करके (तुम) कृष्णप्रेम के उल्लास में मत्त हो जाओगे।

शुद्धभक्तों के द्वारा विश्ववासियों में
गौरकृष्णलीला-अमृत का वितरण—

**एइ अमृत अनुक्षण, साधु-महान्त-**
**मेघगण, विश्वोद्याने करे वरिषण।**
**ताते फले अमृत-फल, भक्त खाय**
**निरन्तर, तार प्रेमे जीये जगजन॥२६९॥**

**२६९। प॰ अनु॰—**साधु-महान्त पुरुष मेघ बनकर विश्व रूपी उद्यान में इस लीला रूपी अमृत का अनुक्षण वर्षण करते हैं, उसके फलस्वरूप प्रेम रूपी अमृत फल फलता है जिसे भक्त निरन्तर खाते हैं तथा जगत्वासी उन भक्तोंकी कृपा से जीवित रहते हैं।

**अनुभाष्य**

२६९। गौरपदाश्रित साधु महान्त ही मेघसमूह हैं, सदैव जगत्रूपी उद्यान में कृष्णलीलामृत का वर्षण करते हैं। इस वर्षा को सीचनें के प्रभाव से प्रेमामृत-फल के फलने पर भक्तगण उसे निरन्तर भक्षण करते हैं एवं उनके प्रेम में विश्ववासी जीवन धारण करते हैं।

गौरलीला—घने दूध का पूर (खोआ), उसमें
कृष्णलीला—सुकर्पूर, श्रौत-पन्था में हरि-गुरु-वैष्णव
की कृपा से उसके आस्वादन की सम्भावना—

**चैतन्यलीला—अमृतपूर, कृष्णलीला—सुकर्पूर,**
**दुहे मिलि' हय सुमाधुर्य।**
**साधु-गुरु-प्रसादे, ताहा जेइ आस्वादे,**
**सेइ जाने माधुर्य-प्राचुर्य॥२७०॥**

**२७०। प॰ अनु॰—**श्रीचैतन्य लीला अमृत उस प्रेमामृत का 'पुर' सदृश है तथा कृष्णलीला-सुकर्पूर के समान हैं, इन दोनों लीलाओं का मिलन अत्यधिक माधुर्यपूर्ण हो जाता है। साधु-गुरु की कृपा से जो कोई उसका आस्वादन करता है, वही माधुर्य की चरमसीमा को जान पाता है।

**अनुभाष्य**

२७०। चैतन्यलीलामृत—उस प्रेमामृत के 'पूर' के समान है एवं कृष्णलीला—सुकर्पूर-तुल्य है; इन दोनों लीलाओं के एक साथ मिलना ही सुमाधुर्यमय है। कृष्णलीला माधुर्य चैतन्यलीलामृत के सहयोग से पुष्ट होकर सुमाधुर्यमय हो गयी है। गौर-विरोधी असुरों का दल गौरलीला अथवा गौरमन्त्र को स्वीकार नहीं करता, अतएव उनके द्वारा कृष्णलीला के माधुर्य का आस्वादन करने की सम्भावना नहीं है। दूसरी ओर, कृष्ण-विरोधी दैत्यों का दल कृष्ण-लीलामृत से उदासीन होकर नदीया-नागरी के अनुगत नागरी-अभिमान से विप्रलम्भरस विग्रह राधाकृष्ण-अभिन्न-तनु गौर को कृष्ण से अलग करके अर्थात् सम्भोगरसविग्रह मानकर गौर-लीला के वैचित्र्य के माधुर्य का समूल (जड़ सहित) विनाश करते हैं। श्रीरूपानुग-साधु-गुरु कृपा के क्रम से अर्थात् श्रीरूपानुगत्य में गौरलीलामृत और कृष्णलीलामृत को परस्पर 'अभिन्न' जानने पर दोनों लीलाओं के एक साथ सम्मिलन से ही केवल प्रचुर माधुर्य का आस्वादन होता है;—श्रीरूपानुग व्यक्ति केवलमात्र उसी पर ही दृढ़भाव से विश्वास करते हैं।

ये दोनों लीलामृत ही भक्तों का आहार, इसके
अलावा अन्नग्रहण करने पर भी भक्त-जीवन
की अपुष्टि—

**ये लीला-अमृत बिने, खाय यदि अन्नपाने,**
**तबे भक्तेर दुर्बल जीवन।**
**जार एकबिन्दु-पाने, उत्फुल्लित तनुमने,**
**हासे, गाय, करये नर्तन॥२७१॥**

**२७१। प॰ अनु॰—**इस लीला रूपी अमृत के बिना भक्त अन्न आदि खाने पर भी वास्तव में दुर्बल रहता है और इस लीला रूपी अमृत के एक बिन्दु का पान करने पर ही तन-मन से

अत्यधिक प्रफुल्लित होकर हँसता, गाता तथा नृत्य करता है।

**अमृतप्रवाह भाष्य**

**२७१।** मनुष्य अन्नपान के द्वारा पुष्ट होता है; भक्तगण बहिर्मुख व्यक्तियों की भाँति अन्नपान ग्रहण करके भी कृष्णलीला से सम्पर्कित चैतन्य-लीलामृत का पान नहीं करने पर दुर्बल हो जाते हैं।

**अनुभाष्य**

**२७१)** पाठान्तरे—'खाय यदि अनुपाने।'

तर्कपन्था से यह अमृत दुर्लभ—

**ए अमृत कर पान, जार सम नाहि आन,**
**चित्ते करि' सुदृढ़ विश्वास।**
**ना पड़' कुतर्क-गर्त्ते, अमेध्य-कर्कश-आवर्त्ते,**
**जाते पड़िले हय सर्वनाश॥२७२॥**

**२७२। प० अनु०—**हे भक्तों! इस अमृत का पान करो, इसके समान अन्य कुछ भी नहीं है, चित्त में ऐसा सुदृढ़ विश्वास रखो। आप कुतर्क रूपी गढ़ढ़े में मत पड़ो, अमेध्य (खाने के अयोग्य अपवित्र दुर्गन्धयुक्त) कर्कश आवर्त्त (भँवर) में मत जा पड़ना, उसमें गिर पड़ने से सर्वनाश हो जाता है।

**अनुभाष्य**

**२७२।** कृष्ण और गौर लीला को परस्पर भिन्न समझकर कुतर्क के आधार पर अपवित्र कर्कश घूमने वाली वायु द्वारा चलायमान होकर कृष्णभजन छोड़कर गौरभजन करने अथवा गौरसेवा को छोड़कर कृष्णभजन करने पर, मूढ़ व्यक्तियों का सर्वनाश होता है।

पञ्चतत्व को और श्रोताओं को प्रणाम—

**श्रीचैतन्य, नित्यानन्द, श्रीअद्वैत, भक्तवृन्द,**
**आर जत श्रोता भक्तगण।**
**तोमा-सबार श्रीचरण, करि शिरे विभूषण,**
**जाहा हैते अभीष्ट-पूरण॥२७३॥**

**२७३। प० अनु०—**श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, समस्त भक्तवृन्द तथा जितने श्रोता भक्तवृन्द हैं, मैं आप सबके श्रीचरणों को अपने सिर का विभूषण बनाता हूँ, उसी से ही अभीष्ट की पूर्त्ति होती हैं।

अभीष्ट आराध्य को प्रणाम—

**श्रीरूप-सनातन-रघुनाथ-जीव-चरण,**
**शिरे धरि,—जार करि आश।**
**कृष्णलीलामृतान्वित चैतन्यचरितामृत,**
**कहे किछु दीन कृष्णदास॥२७४॥**

**२७४। प० अनु०—**श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी तथा श्रील जीव गोस्वामी के उन श्रीचरणों को सिर पर धारण करता हूँ, जिनकी मैं सदैव आशा करता हूँ। श्रीकृष्णलीला से समन्वित श्रीचैतन्य-चरितामृत का दीन कृष्णदास कुछ वर्णन करता है।

**श्रीमदन गोपाल-गोविन्ददेव-तुष्टये।**
**चैतन्यार्पितमस्त्वेतच्चैतन्यचरितामृतम्॥२७५॥**

**अमृतप्रवाह भाष्य**

२७५। श्रीमदन गोपाल और गोविन्द देव की तुष्टि के लिये यह चैतन्यचरितामृत कृष्णचैतन्यार्पित हो।

### अनुभाष्य

२७५। श्रीमन्मदनगोपाल-गोविन्ददेव-तुष्टये (श्रीमन्मदनगोपालः गोविन्ददेवः च तयोः तुष्टये प्रीत्यै) एतत् चैतन्यचरितामृतं चैतन्यार्पितमस्तु (श्रीकृष्णचैतन्याय समर्पयामि)।

अभक्तों की निन्दा-प्रशंसा के प्रति निरपेक्ष ग्रन्थकार का भक्तों के सुख से ही स्वयं को कृतार्थ मानना—

**तदिदमतिरहस्यं गौरलीलामृतं यत्**
**खलु समुदय-लोकैर्नादृतं तैरलभ्यम्।**
**क्षतिरियमिह का मे स्वादितं यत् समन्तात्**
**सहृदय-सुमनोभिर्मोदमेषां तनोति॥२७६॥**

*श्रीचैतन्य चरितामृत के मध्यखण्ड में काशीवासि-वैष्णवकरणं पुनर्नीलाचल-गमनञ्च नामक पञ्चविंश परिच्छेद समाप्त।*

### अमृतप्रवाह भाष्य

२७६। इस अतिरहस्यमय गौरलीलामृत के भक्तों के प्राणधन होने पर भी अनधिकारी निश्चय ही इसका आदर नहीं करेंगे; किन्तु इसमें मेरी कोई हानि नहीं है, परन्तु यह लीलामृत जिन सब सहृदय साधुओं के द्वारा सम्पूर्णरूप से आस्वादित होगा, यह ग्रन्थ उन महात्माओं के आनन्द का विस्तार करे।

*पञ्चविंश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।*

### अनुभाष्य

२७६। अतिरहस्यं (परमगोपनीयं) तत् गौर-लीलामृतम् (इदंग्रन्थरत्नं) खलु (निश्चितं) समुदय-लौकेः (असद्भिरनधिकारिभिः सर्वैः) न आदृतं, यतः (इद) तैः (असद्भिः) अलभ्यं (लब्धुमशक्यम्); इह (अत्र) मे (मम) इयं का क्षतिः (हानिः)?—यत् (यत्र) सहृदयसुमनोभिः (निष्कपटैः सुधीभिः एकान्ति-कचित्तैः) एषा (सुमनसा) समन्तात् (सर्वतः) स्वादितं (सत्) मोदं तनोति (विस्तारयति)।

*पञ्चविंश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।*

## मध्यलीला समाप्त।

❋ ❋ ❋